

कृष्ण

मेरी दृष्टि में



श्री रजनीश

•

सपादन

महीपाल

•

सयोजन :

किशोरीरमण टण्डन



प्रकाशक .
जीवन जागृति केन्द्र,
३१ इजराइल मोहल्ला,
भगवान भुवन,
मसजिद बंदर रोड,
बम्बई – ४००००९

प्रथम सस्करण १९७४

मूल्य ४० रुपये

पर्व २, ४, ६, ८, ९, १०, ११
१२, १६, १७, १८ एव १९ के
प्रारभिक चित्रो का सर्वाधिकार सुरक्षित
कलैण्डर इम्पोरियम, बम्बई का है,
जिनके सौजन्य से प्राप्त इन चित्रो
के लिए जीवन जागृति केन्द्र उनका
आभारी है।

हिंदी 'रत्नदीप', 'नवनीत' एव
कनुभाई के प्रति भी केन्द्र कृतज्ञ है,
जिनकी कला-कृतियो से इस ग्रथ की
शोभावृध्दि हुई है।

मुखपृष्ठ सज्जाकार : अर्हत

मुद्रक : एस् आर् सावत
अशोक प्रिंटिंग प्रेस,
२०१, खेतवाडी मेनरोड,
बम्बई – ४



अत्ता हि अत्तनो नाथो ....



मनाली (कुल्लू) की उपत्यका में
नयनाभिराम हिमश्रृंगो के तले
ता. २६ सितम्बर से ५ अक्तूबर १९७० तक
बहुचर्चित भगवान कृष्ण के विभिन्न पहलुओं और जीवन स्तर पर
आचार्यश्री रजनीश के सान्निध्य में
जिज्ञासु मित्रों और साधको के बीच
अत्यत गहराई से विचार विमर्श हुआ।
मीमांसा, व्याख्या या टीका को एक ओर छोड़ कर
आचार्यश्री कृष्ण के
एक-एक आयाम और एक-एक स्तर को
मात्र उघाड़ते चले गये ।
प्रस्तुत संकलन उसी अभिव्यक्ति का शब्दांकन है।



अन्तर्वस्तु





क्या और क्यों यह ग्रंथ

देखिए ! यदि आप को अभी किसी अनिवार्य कार्य से बाहर जाना हो, समय पर दफ्तर पहुँचना हो, किसी 'एंगेजमेंट' के पालन की शिष्टता निभानी हो, ट्रेन या बस पकड़नी हो अथवा ऐसा ही कोई अन्य कार्य करना हो जिसमे समय की पाबन्दी का प्रश्न सर्वोपरि हो, तो इस पुस्तक को खोलकर इसकी ८–१० पक्तियाँ भी पढने की भूल न करे ! और यदि कर बैठे, तो निश्चय मानिए आपको यह पुस्तक पकड लेगी और आपकी ट्रेन छूट जाएगी। दफ्तरवाले आपकी राह देखते ही रह जाएगे और आपका दिल और दिमाग एक विचित्र प्यास की छटपटाहट लिये जिज्ञासा और समाधान की पटरियो पर दौडता हुआ न जाने किस आनन्द लोक मे जा पहुँचे ! मेरा कथन आपको भले ही कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण लगे, पर मेरे लिए तो यह अनुभूत सत्य है—इसीलिए आपको भी सावधान कर रहा हूँ ! आचार्य रजनीश की वाणी मे कुछ ऐसा ही जादू है—ऐसी ही पकड है और फिर इस पुस्तक का तो विषय ही है आकर्षण की प्रतिमूर्ति और पूर्णता के रहस्यमय प्रतीक भगवान कृष्ण ! योगेश्वर कृष्ण ! रसिकबिहारी कृष्ण ! गोपेश्वर कृष्ण !

भगवान कृष्ण ! विश्व-इतिहास के एक अद्भुत महापुरुष ! आश्चर्यजनक व्यक्तित्व ! एक ऐसी हस्ती कि जिसका कोई जवाब नहीं —'अणोरणीयान' और

'महतोमहीयान'! वे योगी भी है और भोगी भी, (और दोनो से उपर भी!) वे नर्तक भी है, योद्धा भी! ग्वाले भी, राजा भी! उत्कट प्रेमी भी और नितान्त निर्मोही भी। नीतिज्ञ ऐसे कि पाच पाडवो को लाखो के सैन्यबल पर विजय दिला दें, और विनम्र इतने कि राजसूय यज्ञ मे अतिथियो के चरण प्रक्षाल्न का भार स्वय अपने पर ले। महान् इतने कि **"सेस, गनेस, दिनेस, महेस, सुरेसहु जाहि निरतर ध्यावै"** और लघु इतने कि, **"ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं!"** आरम्भ से अत तक विरोधाभासो और असगतियो से पूर्ण जीवन! वस्तुत इन विरोधो मे ही कृष्ण की पूर्णता का रहस्य छिपा है। जीवन की अट्टालिका एक दूसरे के विरोध मे रखी गई ईंटो से ही तो निर्मित है। मृत्यु के बिना जीवन की, दु ख के बिना सुख की, अधकार के बिना प्रकाश की और हिंसा के बिना अहिंसा की कल्पना ही असम्भव हो जाएगी। वास्तव मे ये द्वन्द्व एक ही सिक्के के दो पहलू है जिसमे से एक का सग्रह और दूसरे का त्याग असम्भव है और हम है कि इसी भ्रामक प्रयास मे उलझे हुए पूरा जीवन 'हाय-हाय' करते करते बिता देते है! इसी से कृष्ण कृष्ण है और हम हम है। जीवन के इस मूल-भूत रहस्य को आचार्य रजनीश ने इस पुस्तक मे जितनी सरलता से समझाया है, वैसी सुन्दर और स्पष्ट व्याख्या अन्यत्र मिलनी दुर्लभ है।

कृष्ण जीवन को समग्र और सहज रूप मे स्वीकारते है। वे जीवन के तथाकथित 'असुन्दर' पक्ष को भी उतने ही प्रेम से स्वीकारते है जितने प्रेम से 'सुन्दर' पक्ष को। उनके जीवन पथ मे राधा जैसी सुदरी आती है तो वह भी स्वीकार है, और कुब्जा जैसी कुबडी आ जाती है तो वह भी उतनी ही सहजता से स्वीकार है। गोकुल मे थे, तो रमते रहे गोप-गोपागनाओ के प्रेम में, और मथुरा गये, तो भूल गये गोकुल की प्रेम लीलाए और जुट गये राजकाज में। वे सृष्टि निर्मात्री काम ऊर्जा को भी सहज रूप मे स्वीकार करते है—न दमन, न निषेध। सम्भव है उस युग मे भी वैदिक युग की भाति नर-नारी के सहज और स्वच्छन्द ससर्ग को सामाजिक मान्यता प्राप्त रही हो, अन्यथा कृष्ण की स्वच्छन्द प्रेम-क्रीडाओ को असामाजिक और अनैतिक व्यवहार घोषित करके प्राचीन ग्रथकार उनकी बुराई किये बिना कभी न रहते। परन्तु वे तो जन-जन के हृदय मे उपास्य देव बनकर युग-युग से अपना आसन जमाये हुए है और उनका वह आसन अडिग है। केवल हिन्दू ही नही रसखान जैसे भावुक मुसलमान भी उनमे मनुष्यता के पूर्ण और सहज रूप के दर्शन करके गा उठे थे —

"मानुस हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मझारन॥"

बुद्ध, महावीर और ईसा आदि अन्य दिव्य पुरुषो ने जहां जीवन के शुभ को ही स्वीकार किया और 'अशुभ' का दमन किया वहां कृष्ण ने शुभ और अशुभ दोनो को उनके सहज रूप मे स्वीकारा । इधर परम्परागत चिंतन से ग्रसित हमारी बुद्धि भी जीवन को खड खड करके देखने की आदी है, भले और बुरे, शुभ और अशुभ मे भेद करके समझने की अभ्यस्त है, अत बुद्ध, महावीर और ईसा के क्रिया-कलाप और उनकी साधना तो हमारी समझ मे आ जाती है परतु कृष्ण के विरोधाभासपूर्ण जीवन का औचित्य समझना हमारे लिए कठिन हो जाता है। यही कारण है कि सहज जीवन के अतिशय दमन पर आधारित हमारी आधुनिक सस्कृति मे जन्मे-पले कुछ विद्वानो ने गोकुल और महाभारत के कृष्ण को भिन्न बताकर दो कृष्ण होने की कल्पना कर डाली तो कुछ ने उनकी प्रेम क्रीडाओ को मिथ्या अतिशयोक्तिया बता कर सतोष किया और कुछ अन्यो ने तो कृष्ण जैसी विभूति के अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिन्ह खडा कर दिया है।

आचार्य रजनीश कृष्ण के लोक-प्रसिद्ध रूप को ही स्वीकार करके चले है और उन्हे अपना मनोवाछित रूप देने के प्रयत्नो को उन विचारको की दमित प्रवृत्तियो का ही परिचायक मानते है।

आचार्य रजनीश के अनुसार श्रीकृष्ण को 'व्यक्तित्व' की अपेक्षा अस्तित्व मात्र मानना ही अधिक उचित है। वे पूर्ण है, शून्य हैं, अखडनीय है जिन्हे 'सु' और 'कु' मे भेद करने की अभ्यस्त बुद्धि सही रूप मे ग्रहण नही कर पाती। कृष्ण तो दर्पण की तरह स्वच्छ, निर्लिप्त और व्यक्तित्वहीन है—जैसे दर्पण मे हर व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब देख सकता है पर उन प्रतिबिम्बो मे से कोई भी दर्पण का अपना व्यक्तित्व नही होता। उसी प्रकार कृष्ण में भी हर व्यक्ति अपना मनोवाछित कृष्ण रूप निहार सकता है, पर उसे उनका निश्चित स्वरूप नही माना जा सकता। वे वास्तव मे "**जिन्ह कें रही भावना जैसी, प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी**" चौपाई को ही चरितार्थ करते है। गीता में भी तो स्वय कृष्ण यही कहते है कि जो भक्त मुझे जिस रूप मे भजता है मै उसे उसी रूप मे प्राप्त होता हू।

इसी से कृष्ण के क्रिया-कलाप को 'चरित्र' सज्ञा न देकर 'लीला' कहा गया है। उन्होने जो कुछ किया वह अभिनय मात्र था क्योकि वे सर्वथा निर्लिप्त और कर्तृत्व भावना से मुक्त थे। सूर-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् डा ब्रजेश्वर वर्मा के विचार भी इस सदर्भ मे अवलोकनीय हैं। वे कहते हैं, "वास्तव मे तथ्य यही है कि कृष्ण चरित्त जीवन के वास्तविक चित्रण अथवा आदर्श चित्रण के रूप मे रचा ही नही गया, उनका चरित वास्तव में परब्रह्म की लीला मात्र है जिसका प्रयोजन लीलानन्द के अति-

रिक्त अन्य कुछ नही। उसका उद्देश्य अखण्ड आनन्द मे जीवन की आध्यात्मिक परिपूर्णता की व्यजना करना ही है। भक्त कवियो ने उस आनन्द का रूप स्त्री-पुरुष के रति-भाव मे कल्पित किया है – श्रीकृष्ण परम आनन्दरूप मे परम पुरुष हैं और उनकी पराशक्तिरूपा राधा हैं जिनके सयोग मे ही परमानन्द की परिपूर्णता सिद्ध होती है।" (हिंदी साहित्य कोश सागर)

ऐतिहासिक दृष्टि से कृष्ण का उल्लेख विशेष रूप से ऋग्वेद, छादोग्य उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रथो, बौद्ध जातक कथाओ, विभिन्न पुराणो, भागवत और महाभारत में मिलता है, जिनमे से वैदिक साहित्य के कृष्ण तो भागवत और महाभारत दोनो के कृष्ण से सर्वथा भिन्न हैं पर शेष ग्रथो के वर्णनो मे किसी के कृष्ण भागवत के लीलामय तथा आनद-विलास-प्रिय कृष्ण से मिलते है तो किसी के महाभारत के योगेश्वर कृष्ण से। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि पुराणो मे कृष्ण की एक सर्वाधिक प्रिय परमसुदरी गोपी का उल्लेख तो मिलता है, पर 'राधा' वहां कही नही है। राधा का सर्वप्रथम उल्लेख हाल रचित 'गाटा सतसई' नामक प्राकृत भाषा के ग्रथ मे मिलता है जिसे कुछ विद्वान् प्रथम शताब्दी और कुछ सातवी शताब्दी ईस्वी का मानते है। ऐसे ही कुछ कारणो से चिंतनशील व्यक्तियो के मन मे कृष्ण सम्बन्धी अनेक प्रश्न समय समय पर उठते रहे है और विभिन्न धर्माचार्य एवम् साहित्याचार्य उनका समाधान भी अपने ढग से करते रहे है।

ऐसे ही प्रश्नो का समाधान आचार्य रजनीश ने भी अपने मनाली (कुल्लू) २६ सितम्बर १९७० से ५ अक्तूबर १९७० के साधना शिविर मे किया था। उन्ही प्रवचनो का सग्रह प्रस्तुत ग्रथ मे हुआ है और उन्हे प्रश्नोत्तर रूप मे ही प्रकाशित किया जा रहा है।

आचार्य रजनीश एक अतर्ज्ञानी मत्र-द्रष्टा युवा ऋषि है। वे दार्शनिक गुत्थियो को तो चुटकियो मे सुलझाते ही है, जीवन की अन्य ज्वलत समस्याओ की भी जैसी सरल, तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक व्याख्या करते है, वह उनके पाडित्य की अपेक्षा अतर्दृष्टि की ही अधिक परिचायक है। चाहे राजनीति का प्रसग आ जाए, चाहे समाजशास्त्र का, चाहे शिक्षा की समस्या हो चाहे सैक्स की, चाहे व्यापारिक महत्व का विषय हो, चाहे विज्ञान का, उनकी व्याख्या सम्बन्धित विषय की नवीनतम जानकारी से युक्त होती है और उसका आधार प्राचीन शास्त्रोक्तियो का अन्धानुकरण न होकर वैज्ञानिक विश्लेषण और तार्किक विवेचन ही होता है। विभिन्न विषयो की ऐसी तलस्पर्शी व्याख्या कोई अतर्दृष्टि प्राप्त ज्ञानी महात्मा ही कर सकता है, पुस्तकीय जानकारी बटोरनेवाला पडित नही। वे अत्यत

निर्भीक महात्मा हैं और अपनी बात दृढ़ता पूर्वक कहते है, फिर चाहे वह आधुनिक नैतिक या सामाजिक मान्यताओं से विपरीत ही क्यो न जाती हो। सब से बड़ी बात यह, कि वे किसी सम्प्रदाय से बंधे नही हैं। वे जितने अधिकार पूर्वक कृष्ण पर बोलते हैं, उतनी ही गहराई से महावीर पर भी, ईसा मसीह पर भी, बुद्ध और लाओत्से पर भी! वे न किसी के अनुयायी हैं और न किसी का अनुकरण करने की सलाह ही देते है। वे महापुरुषो के जीवन को चिंतनीय मानते हैं, अनुकरणीय नहीं, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न परिस्थितियो मे जन्मता और जीता है, अत वह जो है, वही हो सकता है, उससे भिन्न कुछ नही हो सकता श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ मे 'स्वधर्म' का अर्थ उन्होने व्यक्ति की इसी 'निजता' से लिया है। 'निजता' का अनुकरण स्वतन्त्रता है, 'परता' का परतन्त्रता। हम अपने ही मार्ग पर चल कर मुक्त हो सकते हैं, किसी अन्य का अंधानुकरण करके नही। इसी प्रसग मे उन्होंने बताया है कि कृष्ण ने गीता के उपदेश द्वारा अर्जुन को जो वह था, उससे भिन्न कुछ और बनाने का प्रयत्न नही किया है, केवल जो वह था उसे उघाडा भर है। अपनी भूली हुई निजता का स्मरण मात्र कराया है। उक्त श्लोक का यही आशय है कि अपने ढग से मरना भी उत्तम है पर दूसरे के ढग से जीना मरने से भी बुरा है।

मनाली साधना-शिविर मे आचार्य रजनीश से कृष्ण सम्बन्धी विविध प्रकार के अनेक प्रश्न पूछे गये और उन्होने उनके विस्तृत उत्तर अपने प्रवचनो द्वारा दिये। इन प्रश्नो मे गोपाल कृष्ण की बाल-लीलाओ सम्बन्धी प्रश्न भी है और गोपीवल्लभ रूप की प्रेम-क्रीडाओ सम्बन्धी भी। उनके योगेश्वर रूप मे गीता के सारगर्भित उपदेश सम्बन्धी जिज्ञासाएँ भी है और महाभारत एवम् गोकुल के जीवन मे विरोधाभास सम्बन्धी भी।

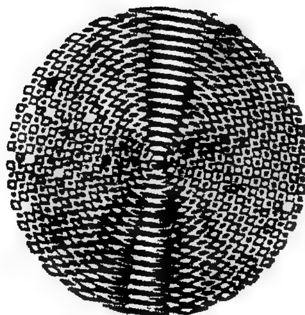
एक सज्जन को आपत्ति है कि कृष्ण केवल सुदामा की दरिद्रता दूर करके ही क्यो रह गये, उन्होने समाज की अर्थ-व्यवस्था ही बदल डालने के विषय मे क्यो न सोचा, तो एक अन्य मित्र ने यह प्रश्न उठाया है कि गीता के दसवे अध्याय मे कृष्ण ने स्वय को प्रत्येक वर्ग का श्रेष्ठ प्रतिनिधि ही बताया है, तो क्या वे निम्न और निकृष्ट वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करते? एक भाई ने तो हिसाब लगा कर यह भी सवाल उठाया है कि गीता के पारायण मे लगभग चार घण्टे लगते है, तो क्या कुरुक्षेत्र के मैदान मे कृष्णार्जुन सवाद के समय चार घण्टे तक युद्ध स्थगित रहा? ऐसे पचीसो प्रश्नों के प्राय. असाधारण उत्तर आपको इस ग्रथ मे मिलेगे। इसके अतिरिक्त प्रासगिक चर्चा के रूप मे अनेक विषयो

पर आचार्यश्री के मौलिक और तथ्यपूर्ण विचार भी इस ग्रथ मे पढने का सुअवसर आपको प्राप्त होगा, जैसे—ब्रह्मा, विष्णु और महेश क्या हैं? क्या इन्हें आधुनिक विज्ञान के अनुसार सृजन प्रक्रिया के मूलतत्त्व प्रोटान, इलैक्ट्रान और न्यूट्रान के प्रतीक माना जा सकता है? क्या जीसस की उपाधि 'क्राइस्ट' का 'कृष्ट' या कृष्ण से कोई सम्बन्ध है? जीसस और कृष्ण के जीवन की घटनाओ मे कोई साम्य है?

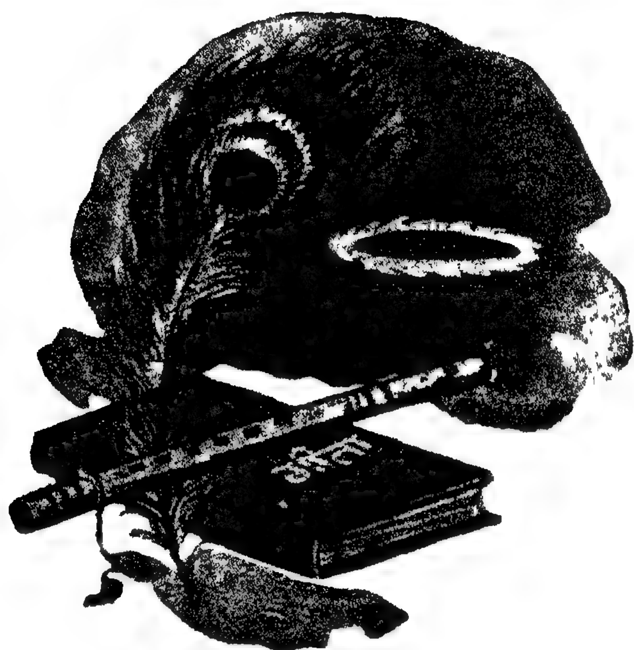
सक्षेप मे मैं यही कहना चाहता हूँ कि कृष्ण के जीवन और सिद्धातो के किसी भी अध्येता का ज्ञान इस पुस्तक का अध्ययन किये बिना अपूर्ण ही रहेगा। मेरा काम आपको इस जीवन रस से परिपूर्ण अध्यात्म गगा की एक झाँकी मात्र दिखाना था, अब गगा आपके समक्ष है, इसमे डुबकी लगाइए और आनन्द मे खो जाइए!

गणपतिचन्द्र भंडारी

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
जोधपुर विश्वविद्यालय,
जोधपुर (राजस्थान)



हमारा वर्तमान युग उस भविष्य के करीब पहुंच रहा है जहाँ कृष्ण की प्रतिमा निखरती जाएगी और एक हंसता हुआ धर्म, एक नाचता हुआ धर्म जल्दी ही निर्मित होगा। धर्म की बुनियादों में कृष्ण का पत्थर जरूर रहना चाहिए



विषय प्रवेश

कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत अनूठा है। अनूठेपन की पहली बात तो यह है कि कृष्ण हुए तो अतीत में, लेकिन हुए भविष्य मे। मनुष्य अभी भी इस योग्य नही हो पाया कि कृष्ण का समसामयिक बन सके। अभी भी कृष्ण मनुष्य की समझ के बाहर है। भविष्य में ही यह सम्भव हो पायेगा कि कृष्ण को हम समझ सके। इसके कुछ कारण हैं। सबसे बडा कारण तो यह है कि कृष्ण अकेले ही ऐसे व्यक्ति है जो धर्म की तरल गहराइयो और ऊचाइयो पर होकर भी गम्भीर नही है, उदास नही हैं, रोते हुए नही हैं। साधारणत सन्त का लक्षण ही रोता हुआ होना है—जिन्दगी से उदास, हारा हुआ, भागा हुआ। कृष्ण ही अकेले नाचते हुए व्यक्ति है — हसते हुए, गीत गाते हुए। कृष्ण को छोडिए। अतीत का सारा धर्म उदास, आसुओ से भरा हुआ है। हसता हुआ धर्म, जीवन को समग्र रूप से स्वीकार करने वाला धर्म, अभी पैदा होने को है। निश्चित ही पुराना धर्म मर गया है और पुराना ईश्वर भी जिसे हम अब तक ईश्वर समझते थे, जो हमारी धारणा थी, वह भी मर गई है। जीसस के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह कभी हसे नही। शायद जीसस का यह उदास व्यक्तित्व और सूली पर लटका हुआ उनका शरीर ही हम दुखी चित्त लोगो को बहुत आकर्षण का कारण बन गया है। महावीर या बुद्ध बहुत गहरे अर्थों मे इस जीवन के विरोधी हैं— कोई और जीवन है परलोक में, कोई मोक्ष है उसके पक्षपाती हैं। समस्त धर्मों ने दो हिस्से कर रखे है जीवन के—एक वह जो स्वीकार योग्य है, एक वह जो इन्कार के योग्य है। कृष्ण अकेले ही समग्र जीवन को पूरा ही स्वीकार किये हुए हैं। जीवन की समग्रता की स्वीकृति उनके व्यक्तित्व मे फलित हुई है। इसलिए, इस देश में सभी अवतारो को

आंशिक अवतार कहा है, कृष्ण को पूर्ण अवतार कहा है। राम भी अंश ही हैं परमात्मा के। लेकिन कृष्ण पूरे ही परमात्मा हैं। और यह कहने का, यह सोचने का, ऐसा समझने का कारण है। और वह कारण यह है कि कृष्ण ने सभी कुछ आत्मसात कर लिया है।

अल्बर्ट श्वाइत्ज़र ने भारतीय धर्म की आलोचना मे एक बडी कीमत की बात कही है और वह यह है कि भारत का धर्म जीवन निषेधक 'लाइफ निगेटिव' है। यह बात बहुत दूर तक सच है यदि कृष्ण को विचार मे न लिया जाय। यदि कृष्ण को विचार मे ले लिया जाय, तो यह बात एकदम ही गलत हो जाती है। श्वाइत्ज़र यदि कृष्ण को समझते तो ऐसी बात न कहते। लेकिन, कृष्ण की कोई व्यापक छाया अभी हमारे विश्व पर नही पडी है। यह अकेले दु ख के महासागर मे नाचते हुए एक छोटे से वीर हैं। या ऐसा समझिए—उदास, निषेध, दमन और निंदा के बडे मरुस्थल मे एक बहुत छोटे से नाचते हुए उद्यान है। वह हमारे पूरे जीवन की धारा को नही प्रभावित कर पाये। हम ही इस योग्य न थे, हम उन्हे आत्मसात न कर पाये।

मनुष्य का मन अबतक द्वैत पर सोचता रहा, द्वन्द्व करके सोचता रहा कि शरीर को इन्कार करना है, आत्मा को स्वीकार करना है। आत्मा और शरीर को लडा देना है। परलोक को स्वीकार कर लेना है, इहलोक को इन्कार कर देना है। इहलोक और परलोक को लडा देना है। स्वभावत यदि हम शरीर को इन्कार कर देंगे तो जीवन उदास हो जाएगा। जीवन के सारे वस्त्र और सारा स्वास्थ्य, जीवन का सारा सगीत और सारी सवेदनाएँ शरीर से आ रही है, तो शरीर को जो धर्म इन्कार कर देगा तो वह पीतवर्ण हो जाएगा। रक्त शून्य हो जाएगा। लाली खो देगा। वह पीले पत्ते की तरह सूखा हुआ धर्म होगा। उस धर्म की मान्यता जिनके मन मे बैठी थी वह भी पीले पत्ते की तरह गिरने की तैयारी मे सलग्न हैं। मरने के लिए तैयार है। कृष्ण अकेले हैं जो शरीर को उसकी समग्रता मे स्वीकार कर लेते है—उसकी 'टोटलिटी' मे। यह एक आयाम मे नही, सभी आयाम मे सच है। शायद कृष्ण को छोड़कर पूरी मनुष्यता के इतिहास मे जरस्थुस्त्र एक दूसरा आदमी है जिसकी बाबत यह कहा जाता है कि वह जन्म लेते ही हसा है। सभी बच्चे रोते हैं। एक बच्चा सिर्फ मनुष्यता के इतिहास मे जन्म लेकर हसा है। यह सूचक है इस बात का कि हंसती हुई मनुष्यता पैदा नही हो पायी। कृष्ण को हसती हुई मनुष्यता ही स्वीकार हो सकी, इसलिए कृष्ण का बहुत भविष्य है। फ्रायड से पूर्व धर्म की जो दुनिया थी

वह फ्रायड के पश्चात् नही हो सकती थी। एक बडी क्रान्ति घटित हो गयी है और बडी दरार पड गयी है मनुष्य की चेतना मे। हम जहा थे फ्रायड के पहले अब हम वही कभी नही पहुच सकेगे। एक नया शिखर छू लिया गया है और एक नयी समझ पैदा हो गयी है। वह बात समझ लेनी चाहिए। पुराना धर्म सिखाता था आदमी को दमन — 'सप्रेशन'। काम है, क्रोध है, लोभ है, सभी को दबाना है और नष्ट कर देना है। तभी आत्मा उपलब्ध होगी और तभी परमात्मा उपलब्ध होगा। यह लडाई बहुत लम्बी चली है। इस लडाई के हजारो साल के इतिहास मे मुश्किल से दस-पाच लोग है जिनको हम कह पायें कि उन्होने परमात्मा को पा लिया। एक अर्थ मे यह लडाई सफल नही हुई। क्योकि, अरबो-खरबों लोग बिना परमात्मा को पाये मरे है। जरूर कही कोई बुनियादी भूल है। यह ऐसे ही है जैसे कि कोई माली पचास करोड पौधे लगाये और एक पौधे मे फूल आ जाय और फिर भी हम उस माली के शास्त्र को मानते चले जाय और हम कहे कि देखो एक पौधे मे फूल आये और हम इस बात का ख्याल ही भूल जाय कि पचास करोड पौधो मे से अगर एक पोधे मे फूल आये है, तो यह माली की वजह से न आये होगे, यह माली से किसी तरह बच गया होगा पौधा इसलिए आ गये है। यदि माली के पचास करोड पौधे जिन मे फूल नही आते, पत्ते नही लगते, सूखे ठूठ रह जाते है तो एक बुद्ध, एक महावीर, एक क्राइस्ट अगर परमात्मा को उपलब्ध हो जाते है तो द्वन्द्वग्रस्त धर्मों के बावजूद यह कोई धर्मों की सफलता का प्रमाण नही है। धर्मों की सफलता का प्रमाण तो तब होगा, माली को तब सफल समझा जाएगा, जब पचास करोड पौधो मे फूल लगें और एक मे न लग पाये, तो क्षमा करना ही होगा। तब यह कहा जा सकेगा कि यह पौधे की ही गलती होगी। इसमे माली की गलती नही हो सकती। पौधा बच गया होगा माली से, इसलिए सूख गया है, इसलिए फूल नही आये।

फ्रायड के साथ ही एक नयी चेतना का जन्म हुआ और वह यह कि दमन गलत है। दमन मनुष्य को आत्महिंसा मे डाल देता है। आदमी अपने से ही लडने लगे तो सिर्फ नष्ट हो सकता है। अगर मै अपने बाये और दाये हाथ को लडाऊ, तो न तो बाया न दाया जीतेगा, लेकिन मैं हार जाऊगा। दोनो हाथ लडेंगे और मैं मिटूगा। तो, दमन ने मनुष्य को आत्मघाती बना दिया। उसने अपनी ही हत्या अपने हाथो कर ली। फ्रायड के बाद जो चेतना का जन्म हुआ है, और जो समझ आयी है, उस समझ के लिए कृष्ण ही अकेले सार्थक मालूम पड़ते हैं या मनुष्य जाति के इतिहास मे कृष्ण अकेले हैं जो दमनवादी नही हैं। वे जीवन के

सब द्वन्द्वो को स्वीकार किए हुए हैं। वे प्रेम से भागते नही, वे पुरुष होकर स्त्री से पलायन नही करते, वे परमात्मा को अनुभव करते हुए युद्ध से विमुख नहीं होते। वे करुणा और प्रेम से भरे होते हुए भी युद्ध मे लडने की सामर्थ्य रखते हैं। अहिंसक चित्त है उनका, फिर भी हिंसा के ठेठ दावानल मे उतर जाते हैं। अमृत की स्वीकृति है उनकी, लेकिन जहर से कोई भय भी नही है। और, सच तो यह है कि जिसे भी अमृत का पता चल गया है उसे जहर का भय मिट जाना चाहिए। ऐसा अमृत ही क्या जो जहर से डरता चला जाय! जिसे अहिंसा का सूत्र मिल गया उसे हिंसा का भय मिट जाना चाहिए। ऐसी अहिंसा ही क्या, जो अभी हिंसा से भयभीत और घबडायी हुई है। ऐसी आत्मा ही क्या, जो शरीर से भी डरती है और बचती भी है। और, ऐसे परमात्मा का क्या अर्थ है, जो सारे ससार को अपने आलिंगन मे न ले सकता हो। कृष्ण द्वन्द्व को एक साथ स्वीकार कर लेते हैं। इसलिए, द्वन्द्व के अतीत हो जाते हैं।

भविष्य के लिए कृष्ण की बडी आवश्यकता है और भविष्य मे कृष्ण का मूल्य निरतर बढता ही जाने का है। जब कि सबके मूल्य फीके पड जाएगे, और द्वन्द्व भरे धर्म जबकि पीछे अन्धेरे मे डूब जायेंगे और इतिहास की राख उन्हे दबा देगी, तब भी कृष्ण का अगार चमकता हुआ रहेगा तथा और भी निखरेगा। क्योकि, पहली दफा मनुष्य इस योग्य होगा कि कृष्ण को समझ पायेगा, नही तो समझना बडा कठिन है। आसान है यह बात समझना कि एक आदमी ससार को छोडकर चला जाय और शान्त हो जाय। कठिन है इस बात को समझना कि ससार के सघर्ष के बीच मे खडा होकर शान्त हो जाय। आसान है यह बात समझ लेना कि एक आदमी विरक्त हो जाय। आसक्ति से सम्बन्ध तोड के भाग जाय। कठिन है यह बात समझनी कि जीवन के सारे उपद्रवो के बीच, जीवन के सारे उपद्रवो मे लिप्त, जीवन के सारे दूर-दराज कोहरे और आधियो मे खडा हुआ 'दिया' हिलता न हो, उसकी लौ कपती न हो। कठिन है यह समझना। इसलिए, कृष्ण को समझना बहुत कठिन है। निकटतम जो कृष्ण के थे वे भी नही समझ सकते थे। लेकिन, पहली दफा एक महान प्रयोग हुआ है। पहली दफा आदमी मे अपनी शक्ति का पूरा परीक्षण कृष्ण ने किया। ऐसा परीक्षण कि सम्बन्धो मे रहते हुए असबद्ध रहा जा सके। युद्ध के क्षण मे भी करुणा न मिटे। हिंसा की तलवार हाथ मे हो तो भी प्रेम का दिया मन से न बुझे। इसलिए कृष्ण को जिन्होंने पूजा भी है, जिन्होने आराधना भी की है उन्होने भी कृष्ण के टुकडे-टुकडे करके की है। सूरदास के कृष्ण कभी बच्चे से बडे नही हो पाये। बडे कृष्ण के साथ

खतरा है। सूरदास बर्दाश्त न कर सके। क्योंकि, बाल कृष्ण अगर गांवो की स्त्रियो को छेड आता है तो हमे बहुत कठिनाई नही है। लेकिन, युवा कृष्ण जब गावो की स्त्रियो को छेड देगा तो फिर बहुत मुश्किल हो जाएगी। फिर हमे समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि हम अपने ही तल पर तो समझ सकते हैं। हमारे अपने तल के अतिरिक्त समझने का हमारे पास कोई उपाय नही है। कोई कृष्ण के एक रूप को चुन लेगा, कोई दूसरे रूप को चुन लेगा, तो गीता से प्रेम करने वाले भागवत की उपेक्षा कर जायेंगे, क्योकि भागवत का कृष्ण और ही है। भागवत को प्रेम करने वाले गीता की चर्चा मे न पडेंगे। क्योकि कहा राग-रग और कहा युद्ध का मैदान! इनके बीच कोई ताल-मेल नही है। शायद कृष्ण से बडा विरोधो को एक साथ पी लेने वाला कोई व्यक्तित्व ही नही है। इसलिए, कृष्ण की एक-एक शक्ल को लोगो ने पकड लिया है। जो जिसे प्रीतिकर लगी है उसे छाट लिया है। बाकी शक्ल को उसने निकाल दिया है। गाधी गीता को माना कहते है, लेकिन गीता को आत्मसात नही कर सके। क्योकि गाधी की अहिंसा युद्ध की सम्भावनाओ को कहा रखेगी?

इस सन्दर्भ मे राम और कृष्ण को एक साथ ले तो लगता है राम बडे गम्भीर हैं। कृष्ण गम्भीर नही है। राम मर्यादाओ मे बधे हुए व्यक्ति हैं। मर्यादाओ के बाहर वे एक कदम भी नही बढेंगे। मर्यादा पर वे सब कुर्बान कर देंगे। कृष्ण के जीवन मे मर्यादा जैसी कोई चीज नही है। उनका जीवन अमर्याद, पूर्ण स्वतत्र है, जिसकी कोई सीमा नही, जो कही भी जा सकता है। ऐसी कोई जगह नही जहा वह रुके। ऐसी कोई सीमा नही जहा वह भयभीत हो और कदम को ठहराये। यह अमर्यादा भी कृष्ण के आत्म-अनुभव का अतिम फल है। तो, हिंसा भी बेमानी हो गयी है वहा, क्योकि हिसा हो नही सकती। और जहा हिंसा ही बेमानी हो गई है वहा अहिंसा भी बेमानी हो जाती है। जब तक हिसा सार्थक है और हिंसा हो सकती है तभी तक अहिंसा भी सार्थक है। असल मे हिंसक अपने को मानना भौतिकवाद है, अहिंसक अपने को मानना इसी भौतिकवाद का दूसरा छोर है। एक मानता है, मैं मार डालूगा। एक मानता है, मै मारूगा नही, मै मारने को राजी ही नही हूँ। लेकिन, दोनो मानते हैं कि मारा जा सकता है। ऐसा अध्यात्म जो युद्ध को भी खेल मान लेता है और जीवन की सारी दशाओ— राग की, प्रेम की, भोग की, काम की, योग की, ध्यान की समस्त दशाओ को एक साथ स्वीकार कर लेता है। इस समग्रता के दर्शन को समझने की सम्भावना रोज बढ़ती जा रही है। क्योकि अब हमे कुछ बाते पता

चली हैं जो कभी भी पता नही थी। लेकिन कृष्ण को निश्चित ही पता रही हैं। जैसे, हमें आज आकर पता चला है कि शरीर और आत्मा जैसी दो चीजें नहीं हैं। आत्मा का जो छोर दिखाई पडता है वह शरीर है, और शरीर का जो छोर दिखाई नही पडता है वह आत्मा है। परमात्मा और ससार जैसी दो चीजें नहीं हैं। परमात्मा और प्रकृति जैसा द्वन्द्व नही है कही। परमात्मा का जो हिस्सा दृश्य हो गया है वह प्रकृति है, जो अदृश्य है वह परमात्मा है। कही भी कोई ऐसी जगह नहीं है जहा प्रकृति खतम होती है और परमात्मा शुरू होता है। बस प्रकृति ही लीन होते होते परमात्मा बन जाती है। परमात्मा ही प्रकट होते होते प्रकृति बन जाता है। अद्वैत का यही अर्थ है। और इस अद्वैत की अगर हमें धारणा स्पष्ट हो जाय, इसकी प्रतीति हो जाय, तो कृष्ण को समझा जा सकता है। साथ ही भविष्य मे कृष्ण का मूल्य और कृष्ण की सार्थकता और ज्यादा बढने को है। तब कृष्ण मनुष्य के और निकट आ जायेंगे।

बडे लम्बे सघर्ष और बडे लम्बे ज्ञान की खोज के बाद ज्ञात हो सका है कि जिन शक्तियो से हम लडते है वे शक्तिया हमारी है और वो हम ही हैं। इसलिए, उनसे लडने से बडा कोई पागलपन नही हो सकता। और यह भी ज्ञात हुआ है कि जिससे हम लडते है हम सदा के लिए उसी से घिरे रह जाते है। और यह भी ज्ञात हुआ है कि जिस से हम लडते हैं उसे हम कभी रूपान्तरित नही कर पाते, उसका 'ट्रांसफर्मेशन' नही होता। अगर कोई व्यक्ति काम से लडेगा तो उसके जीवन मे ब्रह्मचर्य कभी भी घटित नही होगा। अगर ब्रह्मचर्य घटित हो सकता है तो एक ही उपाय है कि वह काम की ऊर्जा को कैसे रूपान्तरित करे। काम की ऊर्जा से लडना नही है, काम की ऊर्जा से सहयोग करना है। काम की ऊर्जा से दुश्मनी नही लेनी है, काम की ऊर्जा से मैत्री साधनी है। हम सिर्फ उसी को बदल सकते हैं जिससे हमारी मैत्री है। जिसके हम शत्रु हो गये उसके बदलने का सवाल नही। जिसके हम शत्रु हो गये उसको समझने का भी उपाय नही। समझ भी हम उसे ही सकते है जिससे हमारी मैत्री हो। जो हमे निकृष्टतम दिखाई दे रहा है वह भी श्रेष्ठतम का ही छोर है। पर्वत का जो बहुत ऊपर का शिखर है वह, और पर्वत के पास की जो बहुत गहरी खाई है वह, दो घटनाएँ नही हैं। यह एक ही घटना के दो हिस्से है। यह जो खाई बनी है, यह पर्वत के ऊपर उठने से बनी है। यह जो पर्वत ऊपर उठ सका है यह खाई के बनने से ऊपर उठ सका है। यह दो चीजें नहीं हैं। यह पर्वत और खाई हमारी भाषा मे दो हैं, अस्तित्व

मे एक ही चीज के दो छोर हैं। 'नीत्से' का एक बहुत कीमती वचन है। नीत्से ने कहा है जिस वृक्ष को आकाश की ऊचाई छूनी है उसे अपनी जड पाताल की गहराई तक पहुचानी पडती है। अगर कोई वृक्ष अपनी जडों को पाताल तक पहुचाने से डरता है, तो उसे आकाश तक पहुचने की आकाक्षा भी छोड देनी पडती है। असल मे जितनी ऊचाई हो, उतने गहरे भी जाना पडता है। जितना ऊचा जाना है, उतने ही नीचे भी जाना पडता है। नीचाई और ऊचाई दो चीजें नही है। एक ही चीज के दो आयाम है और वे सदा समानुपाती हैं। एक ही अनुपात मे बढते हैं। मनुष्य के मन ने सदा चाहा कि वह चुनाव कर ले, सदा चाहा कि स्वर्ग को बचा ले और नर्क को छोड दे। उसने चाहा कि शान्ति को बचा ले, तनाव को छोड दे। उसने चाहा कि शुभ को बचा ले, अशुभ को छोड दे। उसने चाहा, प्रकाश-ही-प्रकाश रहे, अन्धकार न रहे। मनुष्य के मन ने अस्तित्व को दो हिस्सो मे तोड के एक हिस्से का चुनाव किया और दूसरे को इन्कार किया। इससे द्वन्द्व पैदा हुआ, इससे द्वैत पैदा हुआ। कृष्ण दोनो को एक साथ स्वीकार करने के प्रतीक है। और, जो दोनो को एक साथ स्वीकार करता है वही पूर्ण है, नही तो अपूर्ण ही रह जाएगा। जितने को चुनेगा उतना हिस्सा रह जायेगा और जिसमे इन्कार करेगा उससे सदा बधा रहेगा, उससे बाहर नही जा सकता। जो व्यक्ति काम का दमन करेगा उसका चित्त कामुक से कामुक होता चला जाएगा। इसलिए जो सस्कृति, जो धर्म काम का दमन सिखाता है, वह सस्कृति, वह धर्म कामुकता पैदा कर रहा है।

अब हमे दिखाई पडना शुरू हुआ है कि काम की ऊर्जा, जो 'सेक्स इनर्जी' है वही ऊर्ध्व गमन करती है। ब्रह्मचर्य के उच्चतम शिखरों को छू पाती है। जीवन मे किसी से भागना नही है और जीवन मे किसी को छोडना नही है। जीवन को पूरा ही स्वीकार करके जीना है। उसको जो समग्रता से जीता है वह जीवन की पूर्णता को उपलब्ध हो जाता है। इसलिए, मैं कहता हूँ कि भविष्य के सन्दर्भ मे कृष्ण का बहुत मूल्य है। हमारा वर्तमान युग उस भविष्य के करीब पहुच रहा है जहां कृष्ण की प्रतिमा निखरती जाएगी और एक हसता हुआ धर्म, एक नाचता हुआ धर्म जल्दी ही निर्मित होगा। धर्म की बुनियादो मे कृष्ण का पत्थर जरूर रहना चाहिए।

प्रश्न कृष्ण चाहते तो महाभारत का युद्ध रोक सकते थे लेकिन उन्होंने वैसा नहीं किया और भारत का उससे पतन हुआ, जिसकी बहुत बडी जिम्मेवारी कृष्ण पर है, कृष्ण पर इसका लांछन लग सकता है ?

उत्तर युद्ध और शान्ति के सम्बन्ध मे भी बात यही है। हम चाहते है शान्ति ही बचे, सघर्ष न बचे। हम फिर चुनाव शुरू करते है। और जगत द्वन्द्वो का सम्मेलन है। जगत बृहद् विरोधी स्वरो का सम्यक सगीत है। जगत इकसुरा नही हो सकता। मैने सुना है कि एक आदमी कोई वाद्य यत्र बजाता था और वह तार पर एक ही जगह अगुली रखकर घटो उसी जगह को रगडता रहता था। घर के लोग तो परेशान हो ही गये, उसके पास-पडोस के लोग भी परेशान हो गये। अनेक लोगो ने उससे प्रार्थना की कि हम लोगो ने बहुत वाद्य बजाने वाले देखे, लेकिन सभी का हाथ सरकता है, सभी के भिन्न स्वर निकलते हैं, तुमने यह क्या राग ले रखा है? उस आदमी ने कहा—"वह इसलिए कि वे अभी ठीक स्थान खोज रहे है। मैने ठीक स्थान पा लिया है। मै ठीक स्थान पर रुका हुआ हूँ। इसलिए मुझे अब कोई खोज की जरूरत नही है।" हमारा मन भी यही कर सकता है कि हम एक ही स्वर चुन लें जीवन का। लेकिन, एक ही स्वर सिर्फ मृत्यु मे हो सकता है। जीवन तो विरोधी स्वरो पर ही खडा होगा। तुमने अगर किसी मकान के दरवाजे पर 'आर्च' (मेहराब) देखा है बना हुआ—कितनी विरोधी ईंटें लगी हुई है उसमे। ये विरोधी ईंटें एक-दूसरे के विरोध मे खडी होने की वजह से भवन के बडे वजन को उठा लेती है। कोई सोच सकता है कि इन्हे एक ही दिशा मे क्यो न लगा दे? फिर तो भवन गिरेगा, फिर भवन बनेगा नही।

जीवन की सारी व्यवस्था विरोधी स्वरो के तनाव पर है। युद्ध भी उस तनाव का हिस्सा है। युद्ध नुकसान ही पहुचाये ऐसा जो सोचते है वह गलत सोचते है, वह अधूरा सोचते है। अगर हम मनुष्यता के विकास को समझ ले, तो हमें पता चलेगा कि मनुष्यता के विकास का अधिकतम हिस्सा युद्धो के माध्यम से हुआ है। आज मनुष्य के पास जो कुछ है वह सब उसने प्राथमिक रूप से युद्धो मे खोजा है। अगर आज हमे दिखाई पडते है कि सारी पृथ्वी पर रास्ते फैल गये है, तो पहली दफा वे रास्ते युद्धो के लिए बने थे, फौजो को भेजने के लिए बने थे। दो आदमियो को मिलाने के लिए नही बने थे, बारात ले जाने के लिए नही बने थे। और भी जितने साधन हैं, जैसे अगर आज हम बड़े मकान देख रहे है तो पहले बडा मकान नही बना था, बडा किला बना था और वह युद्ध की जरूरत थी। पहली दीवाल दुश्मन के खिलाफ लडने के लिए बनायी गयी थी। फिर दीवाले बनी और अब आकाश को छूते हुए मकान है। आज हम सोच भी नही सकते कि आकाश को छूता हुआ मकान युद्ध की जरूरत है। मनुष्य के पास जितनी भी सम्पन्नता है, जितने भी साधन है, जितने भी वैज्ञानिक

अविष्कार हैं, वे सब युद्ध के माध्यम से हुए हैं। असल मे युद्ध ऐसे तनावों की स्थिति पैदा कर देता है, ऐसी चुनौती कि हमारे भीतर जो सोयी शक्तिया हैं, उन सबको जाग कर सक्रिय होना पडता है। शांति के क्षण मे हम आलस्य मे हो सकते है, तमस मे हो सकते है। युद्ध हमारे राजस को उभारता है। हमारे भीतर सोयी शक्तियो को चुनौती के मौके पर उठना ही पडता है। इसलिए युद्ध के क्षण मे हम साधारण नही रह जाते हैं, हम असाधारण हो जाते हैं और मनुष्य का मस्तिष्क अपनी पूरी शक्ति से काम करने लगता है। युद्ध मे एक छलाग लग जाती है मनुष्य की प्रतिभा की, जो कि शाति के काल मे सैकडो वर्षों मे नही लग पाती।

अनेक लोगो का ऐसा ख्याल है कि अगर कृष्ण ने महाभारत का युद्ध रोका होता तो भारत बडा सपन्न होता, भारत ने बडे विकास के शिखर छू लिये होते। बात इसके बिल्कुल उल्टी है। अगर हमे कृष्ण जैसे दस-पाच और भारत के इतिहास मे मिले होते और हमने एक महाभारत नही, दस-पाच महाभारत लडे होते, तो हम विकास के शिखरो पर होते। महाभारत को हुए अन्दाजन पाच हजार से ज्यादा वर्ष हुए होगे। पाच हजार वर्षों मे हमने इधर कोई बडा युद्ध नही किया। बाकी हमारी लडाइयो की कोई ज्यादा कीमत नही है, वे छोटे–मोटे झगडे है, उनको युद्ध कहना भी उचित नही है। पाच हजार वर्षों से हमने कोई बडा युद्ध नही लडा। अगर छोटे युद्धो की वजह से हानि हुई होती और विध्वस हुआ होता तब तो हमे पृथ्वी पर सबसे ज्यादा सपन्न और विकास-मान होना चाहिए था। लेकिन, हालते उल्टी है। जिन मुल्को ने बडे युद्ध लडे हैं, वे बहुत विकासमान है और बहुत सम्पन्न है। पहले महायुद्ध के बाद लोग सोच रहे थे कि जर्मनी अब सदा के लिए डूब जाएगा, लेकिन दूसरे महायुद्ध मे जर्मनी पहले महायुद्ध के जर्मनी से अनन्तगुना शक्तिशाली हो कर प्रकट हुआ—सिर्फ बीस साल के फासले पर। कोई सोच भी नही सकता था कि पहले महायुद्ध के बाद दूसरा महायुद्ध जर्मनी कर सकेगा। दो-चार सौ साल तक कुछ भी नही कर सकेगा, इसकी ही सभावना थी। इन बीस सालो मे जर्मनी अनत-गुना शक्तिशाली होकर बाहर आया। पहले महायुद्ध ने उसकी शक्तियो को जिस तीव्रता पर पहुँचा दिया, उस तीव्रता का उसने उपयोग कर लिया। पिछले दूसरे महायुद्ध मे लगता था कि अब तो शायद युद्ध का होना मुश्किल हो जायगा। लेकिन, दो देश जो सबसे ज्यादा मिटे थे— जर्मनी और जापान—वे दोनो के दोनो फिर सपन्न होकर खडे हो गये हैं। आज जापान को देखकर

कोई कह सकता है कि बीस साल पहले एटम बम इसी मुल्क पर गिरा था ? हिंदुस्तान को देखकर जरूर हम कह सकते हैं कि एटम बम गिरते ही रहे होंगे इस पर। हमारी दुर्दशा देखकर लगता है कि यहां पर तो युद्ध होता ही रहा होगा। महाभारत के कारण हिन्दुस्तान का बहुत हित नही हुआ, क्योकि महाभारत की छाया मे हिन्दुस्तान मे जो शिक्षक पैदा हुए वे सब युद्ध विरोधी थे। उन्होने महाभारत का शोषण किया और कहा कि ऐसा युद्ध और ऐसी हिंसा ! न अब युद्ध करना है, न अब हिंसा करनी है। अब लडना ही नही है। महाभारत के पीछे कृष्ण की क्षमता के व्यक्तियो की शृखला हम पैदा नही कर पाये, अन्यथा महाभारत ने जिस ऊचाई से हमारे देश की लहर को छुआ था, हम हर बार इससे ज्यादा ऊचाई की इस लहर को छू सकते थे और शायद आज हम पृथ्वी पर सबसे ज्यादा सपन्न और सबसे ज्यादा विकसित समाज होते। यह भी सोचने जैसा है कि महाभारत जैसा युद्ध विपन्न समाजो मे घटित नही होता। युद्ध होने के लिए भी सपन्न होना जरूरी है और सपन्नता के लिए भी युद्ध का होना जरूरी है। आज करीब करीब पश्चिम उस जगह है जहा महाभारत के दिनो मे हम पहुच गये थे। आज जितने अस्त्र-शस्त्रो की बाते है, करीब करीब वे सभी अस्त्र-शस्त्र किसी न किसी रूप मे महाभारत मे प्रयोग किये गये थे। बडा सपन्न, बडा प्रतिभाशाली और बहुत वैज्ञानिक उन्नति का शिखर था वह। उस युद्ध के बाद ही निराशा के क्षण ने हमे पकडा। उस निराशा के क्षण का दुरुपयोग हुआ। उस निराशा के क्षण को पश्चिम मे भी पकड़ा है कुछ ने। पश्चिम भी भयभीत हो गया है। और पश्चिम का अगर पतन होगा तो वह पश्चिम मे जो शातिवादी है, उनकी वजह से होगा। अगर पश्चिम ने शातिवादियो की बात मान ली तो वह वही पहुच जायगा जैसे महाभारत के बाद हम पहुचे है। हिंदुस्तान ने शातिवादियो की बात मान ली थी, इसलिए पाच हजार साल का लबा चक्कर चला। इसे थोडा सोच लेना जरूरी है।

कृष्ण युद्धवादी नही है, लेकिन युद्ध को भी जीवन के खेल का हिस्सा मानते है। वे युद्धखोर नही हैं, किसी को मिटाने की कोई आकाक्षा नही है, किसी को दु ख देने का कोई ख्याल नही है। युद्ध न हो उसके सारे उपाय उन्होंने कर लिये थे। लेकिन जीवन की, शक्ति की और धर्म की कीमत पर युद्ध को बचाने के लिए वे राजी न थे। आखिर किसी भी चीज के बचाने की एक सीमा है। वे युद्ध को इसलिए नही करना चाहते थे कि जीवन को कोई नुकसान न पहुच सके। लेकिन अगर युद्ध के न होने से ही जीवन को

नुकसान पहुंच रहा है, तो फिर क्या अर्थ रह जायेगा इस शाति का! आखिर शातिवादी यही तो कहता कि युद्ध न हो, कही शाति खडित न हो जाय। लेकिन अगर युद्ध के न होने से ही शाति खडित हो रही है, तो उसे एक निर्णायक युद्ध की सामर्थ्य चाहिए। तो कृष्ण असल मे युद्धखोर या युद्धवादी नही हैं। लेकिन युद्ध से भयभीत और युद्ध से भागने वाले पलायनवादी भी नही है। कृष्ण कहते हैं कि युद्ध न हो तो ठीक, लेकिन युद्ध होना ही हो, तो भागना ठीक नही है। अगर युद्ध होना ही हो और ऐसा क्षण आ जाय कि मनुष्य के मगल के लिए और मनुष्य के हित के लिए युद्ध अनिवार्य हो जाय तो उस अनिवार्य युद्ध को फिर आनद से स्वीकार कर ले। फिर उसे बोझ की तरह ढोना भी ठीक नही, क्योकि जो बोझ की तरह युद्ध मे जायेगा उसकी हार सुनिश्चित है। जो सिर्फ रक्षा के लिए युद्ध मे जायगा उसकी हार भी सुनिश्चित है। क्योकि रक्षा के भाव से भरा हुआ 'डिफेसिव' जो चित्त है, लडने मे सामर्थ्य और शौर्य नही दिखा पाता, वह सिर्फ बचाव के ही उपाय करता रहता है और सिकुडता जाता है। तो कृष्ण लडने को भी आनन्द बनाने को कहते है— दूसरे को दुख पहुचाने का सवाल ही नही है। लेकिन जिन्दगी मे चुनाव सदा अनुपात के है– शुभफलित होगा या अशुभ? जरूरी नही है कि युद्ध से अशुभ ही फलित होगा। कभी युद्ध न करने से भी अशुभ फलित हो सकता है।

यह देश हमारा हजार साल तक गुलाम रहा। यह हमारे युद्ध करने की क्षमता की क्षीणता का परिणाम था। पाच हजार वर्ष से गरीब और दीन-हीन देश—हमारे शौर्य और हमारे व्यक्तित्व मे जो अभय चाहिए उसकी कमी का परिणाम है। जो फैलाव चाहिए, विस्तार का जो भाव चाहिए उसकी कमी का परिणाम है। तो कृष्ण के कारण नुकसान नही हुआ, कृष्ण की श्रृंखला नही पैदा हो सकी, हम और कृष्ण पैदा नही कर सके, इसलिए नष्ट हो गये। महाभारत के युद्ध के बाद स्वाभाविक था कि निराशावादी सर्व प्रमुख हो। सदा होता है। और निराशावादी शिक्षक लोगो को समझायें कि व्यर्थ था यह सब— देखो, कितनी हानि हो गयी है! और वह स्वर हमारे मन मे बैठ गया है। तभी तो पाच हजार साल से हम डरी हुई कौम है। जो कौम मरने से डर जाय और युद्ध से डर जाय, वह कौम बहुत गहरे मे जीने से भी डर जाती है। हम जीने से भी डर गये है। हम काप रहे है। न हम जी रहे हैं, न हम मर रहे है। हम दोनो के बीच मे त्रिशकु की भाति हैं। अब मेरी

समझ यह है कि बर्ट्रेन्ड रसेल या गाधी या विनोबा— इनकी बात अगर दुनिया मान लेगी तो नुकसान होगा। युद्ध से भय की कोई जरूरत नही है। अब पृथ्वी युद्ध के लिए बहुत छोटी पड गयी है, यह बात जरूर है। असल मे युद्ध के लिए भी जगह चाहिए। हमारे पास साधन इतने बडे हो गये हैं कि अब पृथ्वी पर युद्ध नही हो सकेगा, यह बात जरूर सच है। लेकिन यह इस लिए सच नही है कि शातिवादी की बात भय के कारण मानने योग्य है। यह इसलिए सच कि अब हमारे पास साधन बडे है और पृथ्वी छोटी है। अब पृथ्वी पर युद्ध बेमानी है। अब युद्ध की शकल बदलेगी। अब युद्ध का विस्तार बढेगा—चाद-तारो पर, मगल पर, ग्रहो-उपग्रहो पर—कहीं युद्ध शुरू होगा। वैज्ञानिको का अदाज है कि लगभग पचास करोड ग्रह होने चाहिए सारे जगत मे जिन पर जीवन होगा। तो आदमी भयभीत हो गया है कि हाईड्रोजन बम मत बनाओ, एटम बम मत बनाओ। अगर इससे भयभीत आदमी की बात को मान लिया गया, तो इस जगत के विस्तार पर जो अभियान हो सकता है, जो यात्रा हो सकती है, वह नही हो पायेगी। अब पृथ्वी जरूर उस जगह पहुच गयी है जहा युद्ध बेमानी है। लेकिन यह किसलिए हुआ है, यह भी समझने जैसी बात है। युद्ध आज अर्थहीन हो गया है, इसलिए नही कि शातिवादी की बात समझ मे आ गयी, युद्ध इसलिए अर्थहीन हो गया कि युद्ध के विज्ञान का पूरा विकास हो गया है, 'टोटल वार' का विकास हो गया है। युद्ध इतना समग्र हो गया है अब, कि पृथ्वी पर लाना बेमानी है। क्योकि युद्ध का तभी तक अर्थ है जब कोई जीतता हो और कोई हारता हो। अब जो युद्ध होगा उसमे न कोई जीतेगा, न कोई हारेगा, उसमे दोनो एक साथ मर जायेंगे। अब युद्ध का पृथ्वी पर कोई मतलब नहीं है। और मैं मानता हू कि इसी वजह से पृथ्वी अब एक हो जायेगी। अब एक 'ग्लोबल विलेज' से ज्यादा उसकी हालत नही है, जमीन एक छोटा-सा गाव हो गयी है, शायद गाव से भी छोटी। दो गावो के बीच यात्रा मे जितना समय लगता था अब पूरी पृथ्वी का चक्कर लगाने मे उतना समय नही लगता है। अब पृथ्वी पर अगर युद्ध होता है तो वह नासमझी की बात है। इसका यह मतलब नही है कि युद्ध नहीं हो, इसका यह मतलब नही है कि युद्ध अब नही होगे। युद्ध तो होते रहेंगे, लेकिन नयी भूमियो पर होगे, नयी यात्राए होगी उनकी और नये अभियान होगे। युद्ध बन्द नहीं हुआ, इतने समझाने वालो के बाद भी। वह बन्द नहीं हो सकता। वह जीवन का हिस्सा है। अब यह बड़े मजे की बात है कि युद्ध से क्या पैदा हुआ? अगर हम बहुत गौर से देखें तो हमारे सहयोग की, 'कोआपरेशन'

की सारी व्यवस्था युद्ध के लिए पैदा हुई है। 'कोआपरेशन फार कान्फ्लिक्ट' सारा सहयोग संघर्ष के लिए है। अगर जमीन पर युद्ध न हो तो कोई 'कोआपरेशन', कोई सहयोग नही।

तो कृष्ण को समझना बहुत जरूरी है। कृष्ण शातिवादी नही है, कृष्ण युद्धवादी नही है। असल मे 'वाद' का मतलब होता है कि दो मे से हम एक को चुने। कृष्ण अ-वादी है। कृष्ण कहते है शाति से सुख फलित होता है तो स्वागत है। युद्ध से सुख फलित होता है तो स्वागत है। कृष्ण कहते है, जिससे मगल-यात्रा गतिमान होती है, जिससे धर्म विकसित होता है, जिससे जीवन मे आनद की सभावना बढती है उसका स्वागत है। ऐसा स्वागत चाहिए भी। हमारा देश अगर कृष्ण को समझा होता तो हम इस भाति नपुसक न हो गये होते। हमने बहुत अच्छी अच्छी बातो के पीछे बहुत बहुत न मालूम कैसी कुरूपताए छिपा रखी है। हमारी अहिंसा की बात के पीछे हमारी कायरता छिप के बैठ गयी है। हमारे युद्ध-विरोध के पीछे हमारे मरने का डर छिपकर बैठ गया है लेकिन हमारे युद्ध न करने से युद्ध बन्द नही होता। कोई और हम पर युद्ध जारी रखता है। हम लडने न जाये, इससे लडाई बन्द नही होती, सिर्फ हम गुलाम बनते है। हम लडाइयो मे घसीटे जाते रहे है सदा। अब यह बडे मजे की बात है कि हम नही लडे, कोई हम पर हावी हो गया और हमे गुलाम बना लिया, फिर हम उसकी फौजो मे लडते रहे। लडाई बन्द नही हुई। कभी हम मुगलो की फौज मे लडे, कभी हम तुर्को की फौज मे लडे, कभी हूणो की फौज मे लडे। हम गुलाम ही रहे और अपनी गुलामी को बचाने के लिए लडते रहे। फिर हम अग्रेजो की फौज मे लडे। लडाई तो बन्द नही हुई। बस इतना ही हो गया कि वैसे हम अपनी स्वतत्रता के लिए लडते, अपने जीवन के लिए लडते, फिर हम अपनी परतत्रता के लिए लडे। यह दुखद फल हुआ। यह महाभारत के कारण नही हुआ, यह सिर्फ हम महाभारत की हिम्मत न जुटा पाये उसके कारण हुआ। इसलिए मै कहता हू कि कृष्ण को समझना थोडा मुश्किल तो है। बहुत आसान है समझ लेना एक युद्धवादी की बात —एक हिटलर, एक मुसोलिनी, एक चगेज, एक तैमूर, एक नेपोलियन, एक सिकदर की बात। युद्धखोरो की बात समझ लेना बहुत आसान है। वे कहते है कि युद्ध ही जीवन है। शातिवादी बर्टेन्ड रसेल है, गाधी है, उनकी बात भी समझ लेना बहुत आसान है— वे कहते है कि नही, शाति ही जीवन है। कृष्ण की बात समझनी बहुत मुश्किल है, क्योकि वह कहते है कि जीवन इन दोनो द्वारो से गुजरता है।

वह शांति से भी गुजरता है, वह युद्ध से भी गुजरता है। और अगर तुम्हें शांति बनाये रखनी हो, तो तुम्हे युद्ध की सामर्थ्य रखनी होगी। और अगर तुम्हे युद्ध जारी रखना है, तो तुम्हे शाति की तैयारी भी करनी होगी। ये दो पैर हैं जीवन के। इनमे से एक को भी काटा तो लगडे और पगु हो जाते हैं। तैमूर, चगेज और मुसोलिनी भी लगडे है, गाधी और रसेल भी लगडे है। उनके एक-एक पैर है। उनसे गति नही हो सकती। इसलिए अगर एक-एक पैर वाले आदमी रहे तो फिर एक पैर मुसोलिनी का चलता है, एक पैर गाधी का चलता है। जब मुसोलिनी अपना युद्ध कर लेता है, हिटलर, स्टालिन अपने युद्ध से गुजर जाते है, तब रसेल, गाधी और विनोबा की बात हमे एकदम अपील करने लगती है। पर दस - बीस साल इनकी बात अपील करती है। चूकि एक लगडा पैर ज्यादा दिन नही चल सकता, तो दूसरे पैर की जरूरत पड जाती है। उसपर कोई माओ खडा होगा, फिर कोई और खडा होगा। फिर युद्ध बीच मे आता है। कृष्ण के पास दोनो पैर है। कृष्ण लगडे आदमी नही है। और मैं मानता हू कि दोनो पैर प्रत्येक के पास होने चाहिए। जो आदमी लड न सके उसमे कुछ कमी होती है, और जो आदमी लड न सके वह आदमी ठीक अर्थों मे शात भी नही हो पाता। वह लगडा हो जाता है। जो आदमी शात न हो सके, वह विक्षिप्त हो जाता है। और जो आदमी शात न हो सके वह लडेगा कैसे ? लडने के लिए भी एक शाति चाहिए। कृष्ण इस अर्थ मे भी भविष्य के लिए उपयोगी है। क्योकि भविष्य मे यदि निर्णायक एक बात तय होती है कि सारी दुनिया को शातिवादी बनाना है तो एक तरह का मुर्दापन छा जायगा। लेकिन शातिवादी मानेगा नही, वह अपना जुलूस निकालता रहेगा और शाति के नारे लगाता रहेगा। लेकिन युद्धखोर अपने युद्ध की तैयारी करता रहेगा। फैशन बदलते रहते है। दस-बीस साल इसका प्रभाव रहता है। और ये दोनो एक दूसरे के साझे मे काम चलाते रहते है। कृष्ण की बात समग्र जीवन की है और अगर हमारी समझ मे आ जाय, तो न तो शाति को छोडने की जरूरत है, न युद्ध को छोडने की जरूरत है। लेकिन युद्ध के तल बदलते जायेंगे। अगर आदमी आदमी से न लडे तो सब आदमी मिलकर प्रकृति से लडना शुरू कर देंगे।

अब यह जरा सोचने जैसी बात है कि जिन कौमो मे युद्ध चलते रहे, उन्ही कौमो के लिए विज्ञान भी विकसित हुआ, क्योकि लडने की क्षमता है उनमे। वे आदमी से भी लडते हैं, रस मिलता है तो प्रकृति से भी लड लेते हैं। लेकिन हमारी कौम ने महाभारत के बाद प्रकृति से भी कोई लडाई

नहीं लड़ी। हम आंधी से भी नहीं लड़े, पहाड़ से भी नहीं लड़े, प्रकृति के किसी तत्व से भी नहीं लड़े, इसलिए हमारे देश मे विज्ञान विकसित नहीं हुआ हम प्रकृति से लड़ेंगे तो विकास होगा। आदमी लड़ता रहे, तो आज वह जमीन की प्रकृति से लड़ेगा और जमीन के राज खोज लेगा। फिर कल वह चाद तारे की प्रकृति से लड़ेगा। उसका अभियान रुकेगा नहीं। इसलिए ध्यान रहे, जो समाज युद्ध मे डूबे और उबरे, वही समाज चाद पर भी अपने आदमी को उतार पाये हैं। हम नही उतार पाये, शातिवादी नही उतार पाये। और चाद आज नही कल, युद्ध के अर्थ मे बड़ा कीमती है। क्योकि आने वाले युद्ध मे जिसके हाथ चाद पर लग जायेंगे पृथ्वी उसके ही हाथो मे होगी। इसलिए अब झगडा पृथ्वी से हट गया है। पर यह सब—जैसे फिलीपाईन है, वियतनाम है, कम्बोडिया है या कुछ और है या हिन्दुस्तान है, पाकिस्तान है, इन सब मे लड़ाई-झगडे नही, ये तो सिर्फ नासमझो के चित्त को उलझा रखने की तरकीबे हैं। असली लड़ाई अब दूसरे तल पर शुरू हो गयी है। चाद पर जाने की दौड का बहुत गहरा अर्थ दूसरा ही है। वह अर्थ यह है कि जिसके हाथ मे कल चांद होगा उसको पृथ्वी पर चुनौती देने का कोई उपाय नही रह गया है। उसके एटम और उसके हाईड्रोजन बम की तोपें चाद से पृथ्वी की तरफ लगी होगी। एक एक मुल्क के ऊपर उडकर बम गिराने की जरूरत न रह जायेगी, मुल्क अपने आप बम के ताप के सामने आते रहेगे हर चौबीस घटे मे। घूमती रहती है पृथ्वी पूरे वक्त, सामने आते रहते हैं विभिन्न मुल्क अपने आप। तब अलग अलग किसी मुल्क पर जाकर एटम को गिराने की जरूरत नही है। इसलिए, अरबो डालर जो खर्च हुआ, एक आदमी को चाद पर उतारने मे, यह कोई खेल नही था। इसमे कुछ कारण थे पीछे, और कौन पहले उतार देता है वह जरूरी था। यह दौड वैसी ही है जैसे एक दौड आज से कोई तीन सौ साल पहले योरोप से एशिया की तरफ लग गयी थी। सारे जहाज एशिया की तरफ भागे जा रहे थे—पुर्तगीज भी, स्पेनिश भी और अंग्रेज भी, फ्रेंच भी और जर्मन भी—सब भागे जा रहे थे। तीन सौ साल पहले जैसे एशिया की जमीन पर कब्जा करना जरूरी हो गया था विस्तार-वादी के लिए, विकास के लिए, वह अब बेमानी हो गया। अब कोई मतलब नही रहा। एशिया के लोग समझ रहे हैं कि हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई ने हमको आजाद किया है। इसमे आधी ही सचाई है। आधी सचाई तो दूसरी है, और वह यह है कि अब एशिया की जमीन पर कब्जा करने का कोई मतलब नहीं रह गया। वह बात खत्म हो गयी है, वह दौर खत्म हो गया है।

अब तो लडाई कही और दूसरी जमीन पर कब्जा करने की है। अब वहां दृष्टि चली गयी है। अब वहा की दौड है। कल चांद-तारो पर और दूर तक दौड हो जायेगी। शक्ति का एक अभियान है जीवन मे। उस अभियान मे जो मुर्दापन को पकड लेते हैं वे धीरे धीरे नष्ट हो जाते है। हम ऐसी ही नष्ट हो गयी कौम है। इसलिए, कृष्ण का सदेश बडा अर्थपूर्ण है। हमारे लिए ही नहीं, मैं मानता हूँ, पश्चिम भी उस जगह खडा हो गया है, जहा उसे निर्णायक लडाई शायद एक बार और लडनी पडे। निश्चित ही वह लडाई पृथ्वी पर नही होगी।

इस निर्णायक लडाई मे क्या होगा ? शायद हालते फिर वैसी खडी हो जायेंगी जो महाभारत के समय थी। महाभारत के समय भी दो वर्ग थे—एक वर्ग था जो निपट भौतिकवादी था, जिसकी पूरी दृष्टि शरीर के अतिरिक्त किसी को स्वीकार नही करती थी। जिसकी दृष्टि भोग के अतिरिक्त किसी तरह के योग के लिए कोई क्षमता न रखती थी। जिन्दगी थी भोग, लूट-खसोट। जिन्दगी शरीर और शरीर की इद्रियो के बाहर कोई अर्थ न रखती थी। उसी वर्ग के खिलाफ वह सघर्ष हुआ था। कृष्ण को उस सघर्ष को करवाना पडा था। वह जरूरी हो गया था कि शुभ की शक्तिया कमजोर और नपुसक सिद्ध न हो। वह अशुभ की शक्तियो के सामने खडी हो सके। आज फिर करीब-करीब हालत वैसी हो गयी है, और हो जायेगी बीस साल के भीतर। एक तरफ भौतिकवाद, 'मैटीरियलिज्म' अपनी पूरी ताकत के साथ खडा हो जायगा और दूसरी तरफ शुभ की कमजोर ताकते। शुभ मे एक बुनियादी कमजोरी है। वह लडने से हटना चाहता है। अर्जुन भला आदमी है। अर्जुन शब्द का मतलब होता है सीधा-सादा। तिरछा-विरछा जरा भी नही। बहुत सीधा-सादा आदमी है, सरल चित्त है। देखता है कि फिजूल की झझट कौन करे ? अर्जुन सदा ही हटता रहा है। क्योकि, जो सीधा-सादा आदमी है वह हट जाता है, वह कहता है, मत झगडा करो। कृष्ण अर्जुन से कही ज्यादा सरल है, लेकिन सीधे-सादे नही है। कृष्ण की सरलता की कोई माप नही है, लेकिन सरलता कमजोरी नही है और सरलता पलायन नही है। वे जम के खडे हो गये हैं, वे नहीं भागने देंगे।

हो सकता है शायद, फिर पृथ्वी दो हिस्सो मे बट जाये। सदा ऐसा होता है जब ऐसे निर्णायक क्षण आ जाते है, या लडने की बात होती है तो उसमे गाधी और विनोबा और रसेल काम नही देते, क्योकि एक अर्थ मे वे सब अर्जुन हैं। वे कहेंगे कि हट जाओ, वे कहेंगे कि मर जाओ, लेकिन

लड़ो मत। कृष्ण जैसे व्यक्तित्व की बड़ी जरूरत है जो कहे कि शुभ को भी लडना चाहिए, शुभ को भी तलवार हाथ मे लेने की हिम्मत रखनी चाहिए। शुभ जब हाथ मे तलवार लेता है तो किसी का अशुभ नही होता है। अशुभ हो नही सकता, क्योकि लडने के लिए कोई लडाई नही है, लेकिन अशुभ न जीत पाये, इसलिए लडाई है। तो धीरे-धीरे दो हिस्से दुनिया के बट जायेंगे—यानी एक हिस्सा भौतिकवादी होगा और एक हिस्सा स्वतत्रता, लोकतत्र, व्यक्ति और जीवन के मूल्यो के लिए होगा। लेकिन, क्या ऐसे दूसरे शुभ के वर्ग को कृष्ण मिल सकते है? मिल सकते हैं। क्योकि, जब भी मनुष्य की स्थितिया ऐसी जगह आ जाती है जहा कि कुछ निर्णायक घटना घटने को होती है तब हमारी स्थितियां उस चेतना को भी पुकार लेती हैं, उस चेतना को भी जन्म दे देती है, और वह व्यक्तित्व भी जन्म पा जाता है। इसलिए मै कहता हू कि कृष्ण का भविष्य के लिए बहुत अर्थ है।

महाभारत के बाद हिन्दुस्तान मे बहुत अच्छे आदमी हुए— बुद्ध है, महावीर है, इनकी अच्छाई की कोई कमी नही है, इनकी अच्छाई की कोई सीमा नही। लेकिन, इनकी अच्छाई के प्रभाव मे मुल्क सिकुड गया। हमारा चित्त सिकुड गया और उस सिकुडे हुए चित्त पर सारी दुनिया के आक्रामक टूट पडे। आक्रमण करने ही हम नही जाते है, आक्रमण को बुलाते भी हमी है, अत जब तुम किसी को मारते हो तभी तुम जिम्मेवार नही होते, जब तुम किसी की मार खाते हो तब भी तुम ही जिम्मेवार होते हो। क्योकि, किसी के चेहरे पर चाटा मारना भी एक कृत्य है, जिसमे पचास प्रतिशत तुम जिम्मेवार हो, पचास प्रतिशत वह आदमी जिम्मेवार है जिसने चाटे को निमत्रित किया, सहा, स्वीकार किया, बुलाया, कि मारो। अगर तुमको कोई चाटा मारता है तो पचास प्रतिशत तुम भी जिम्मेवार होते हो, तुम बुलाते हो। अच्छे आदमियो की इस लबी कतार मे, निपट अच्छे आदमियो ने, इस मुल्क के मन को सिकोड दिया, उन्होने बुलाया, आमत्रण दिया कि आओ। हमारा आमत्रण मानकर बहुत लोग आये, उन्होने हमे वर्षों तक गुलाम रखा, दबाया, परेशान किया। लेकिन, अभी भी हमारी मनोदशा सकोच की है, हम फिर किसी को बुला सकते है। अगर कल माओ प्रवेश कर जाये इस मुल्क मे, तो उसका जिम्मेवार अकेला माओ नही होगा। लेनिन ने बहुत वर्षों पहले एक भविष्यवाणी की थी कि मास्को से कम्युनिजम पेकिंग और कलकत्ता होता हुआ लदन पहुचेगा। उसकी भविष्यवाणी बडी सही मालूम पड़ती है। पेकिंग तो पहुच गया, कलकत्ते मे उसकी पग-ध्वनि सुनायी

पडने लगी है। लदन ज्यादा दूर नही है। अब कलकत्ते मे कम्युनिजम को प्रवेश करने मे कोई कठिनाई नही है, क्योकि भारत का नाम सिकुडा हुआ है, वह आ जायेगा, उसको स्वीकार करके देश और दब जायेगा।

इसलिए, इस देश को तो कृष्ण पर पुर्नविचार करना ही चाहिए।

प्रश्न कृष्ण यदि आज होते तो यह विश्व जो दो गुटो में बंटा है, उसमें किस गुट का पक्ष लेते ?

उत्तर असल मे जब भी ऐसा सकट का क्षण होता है, जब कि निर्णय करना हो कि कौन शुभ है, कौन अशुभ है, तब सदा ही कठिनाई होती है। महाभारत काल मे भी आसान नही थी बात। क्योकि, उस तरफ दुर्योधन ही नही था भीष्म भी थे, उस तरफ अच्छे लोग भी थे। और इस तरफ, कृष्ण ही नही थे अर्जुन ही नही थे, इस तरफ बुरे लोग भी थे। निर्णय एक क्षण मे तय करना सदा ही मुश्किल होता है। दुर्योधन किस लिए लडता था ? आदमी उसके पास अच्छे थे या बुरे, यह उतना मूल्यवान नही है। वह लड किस लिए रहा था, उस लडने के मूल्य क्या थे ? कृष्ण अगर लडने को प्रेरित कर रहे थे अर्जुन को, तो मूल्य क्या थे ? बडे से बडा निर्णायक मूल्य था—न्याय, 'जस्टिस'। न्याय क्या था, न्याययुक्त क्या था ? यदि आज हमे फिर यह निर्णय करना पडे कि न्याययुक्त क्या है तो मेरी समझ मे, स्वतत्रता न्याय है, परतत्रता अन्याय है। जो ग्रुप, जो वर्ग, जो गुट मनुष्य को किसी तरह की परतन्त्रता मे ढकेलता हो, वह अन्याय का पक्ष है। उस तरफ अच्छे आदमी भी हो सकते है, क्योकि अच्छे आदमी जरूरी नही है कि दूरद्रष्टा हो। वे कन्फ्यूज्ड भी हो सकते है। उनको भी पता नही होता कि वह जो कर रहे हैं वह बुरे के पक्ष मे जा रहा है।

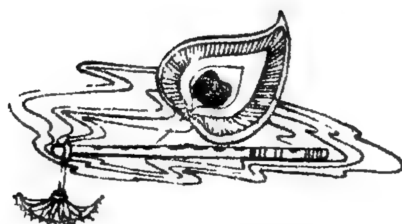
स्वतत्रता बहुत ही कसौटी की बात है। मनुष्य की स्वतत्रता जिस बात मे बढती हो, ऐसा समाज, ऐसा जगत चाहिए। जिस बात से स्वतंत्रता कम होती हो ऐसा समाज और ऐसा जगत नही चाहिए। स्वभावत जो लोग परतत्रता लाना भी चाहेगे वे भी परतत्रता शब्द का उपयोग नही करेगे। वे भी ऐसे शब्द खोजेंगे जिनसे परतत्रता आती हो, लेकिन परतत्रता का भाव न प्रकट होता हो। ऐसा एक नया शब्द 'समानता' है। यह शब्द बहुत चालाकी से भरा हुआ है। कुछ लोग है जो स्वतत्रता को एक तरफ काटकर समानता की गुहार करते हैं। वे कहते हैं कि समानता चाहिए। वे यह भी कहते हैं कि समानता के बिना स्वतत्रता कैसे हो सकती है ? वे कहते हैं कि प्राथमिक चीज समानता है। और, यह बात समझ

मे न भी पडेगी अनेको को, क्योकि ठीक ही तो बात है, सब लोग समान नही, तो सब लोग स्वतन्त्र कैसे हो सकते है ? और तब यदि समानता को लाने के लिए स्वतन्त्रता काटनी भी पडती हो, तो फिर हम तैयार हो जायेंगे। अब यह बडे मजेदार तर्क है। समानता इसलिए लानी है कि स्वतन्त्रता आ सके, और स्वतन्त्रता इसलिए काटनी पडती है, क्योकि समानता लानी है। और एक बार स्वतन्त्रता खोने के बाद उसे लाना बहुत असभव है। कौन लायेगा ? मै तुमसे कहता हूँ, यहा सब इकट्ठे है, मै इनको भी कहता हूँ कि तुम सबको समान करने के लिए सबको पहले जजीर पहननी पडेगी। किसी के हाथ बडे हैं, किसी के पैर छोटे हैं तो सबको समान करने के लिए पहले जजीरे डाल दी जायगी, फिर सबके हाथ-पैर काट के हम सबको समान कर देंगे। लेकिन, जो सबको समान करेगा वह तो असमान ही रह जायेगा ! वह तो आप सबके बाहर हो जायेगा, उसके हाथ तो खुले होंगे ! जजीरे नही होगी, लेकिन उसके हाथ मे तलवार होगी। और एक बार जब सबके हाथो मे जजीरे होगी और कुछ लोगो के हाथो मे तलवारे होगी और हाथ-पैर कट चुके होगे, तब तुम करोगे क्या ? ऐसा ख्याल था मार्क्स का कि एक बार समानता लाने के लिए स्वतन्त्रता खोनी पडेगी, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नष्ट करनी पडेगी, एक अधिनायकशाही, एक डिक्टेटरशिप चाहिए मुल्क मे। फिर जब पूरा हो जायगा काम समानता का, तब स्वतन्त्रता दे दी जायेगी। लेकिन, जिनके हाथ मे इतनी ताकत होगी सबको समान करने की, वे भला स्वतन्त्रता देंगे ? लक्षण नही दिखायी पडते। बल्कि, जितनी ताकत उनकी बढ जाती है और जितना दूसरा आदमी पगु हो जाता है, उतनी हो स्वतन्त्रता की बात खत्म हो जाती है। क्योकि पगु पूछ भी नही सकते, आवाज भी नही उठा सकते, बगावत भी नही कर सकते ! समानता की आड मे स्वतन्त्रता कटेगी और स्वतन्त्रता एक बार कट जाय तो लौट आना बहुत मुश्किल मामला है। क्योकि, जब स्वतन्त्रता कट जाती है, तो काटनेवाला स्वतन्त्रता के भविष्य की सभावनाओ को भी काट देता है। दूसरी बात यह कि स्वतन्त्रता तो एक बिल्कुल ही सहज तत्व है जो प्रत्येक को मिलना चाहिए, और समानता बिल्कुल असहज बात है जो मिल नही सकती। यह अमनोवैज्ञानिक बात है कि हम आदमी को समान करे। आदमी समान हो नही सकता। आदमी समान है ही नही। आदमी मूलत असमान है। स्वतन्त्रता जरूर चाहिए। इतनी स्वतन्त्रता चाहिए, कि जो व्यक्ति जो हो सकता है वह हो सके, उसमे उसको पूरा मौका चाहिए।

मेरी दृष्टि मे स्वतन्त्रता का पक्ष कृष्ण का पक्ष है। समानता का नहीं हो सकता। स्वतन्त्रता हो तो धीरे-धीरे असमानता कम हो सकती हैं। ध्यान रहे, मै कह रहा हूँ,

असमानता कम हो सकती है। यह नही कह रहा हूँ कि समानता आ सकती है। लेकिन, समानता अगर जबरदस्ती थोपी जाय तो स्वतत्रता कम होती चली जायगी। जबरदस्ती कोई भी थोपी गयी चीज परतत्रता का पर्याय है। तो, फिर मूल्य चुनने पडेगे। व्यक्ति का मूल्य कीमती है सदा से ही। जो अशुभ है वह व्यक्ति को मूल्य नही देना चाहता। क्योकि व्यक्ति ही विद्रोह का तत्व है, इसलिए अशुभ की शक्तिया समूह को मानती है, व्यक्ति को नही मानती। और, यह भी जानकर तुम हैरान होगे कि अगर तुम्हे कोई अशुभ काम करना हो, तो व्यक्ति से करवाना बहुत मुश्किल है, समूह मे करवाना सदा आसान है। एक अकेले हिन्दू से मस्जिद मे आग लगवानी बहुत मुश्किल है, हिन्दुओ की भीड मे लगवानी बहुत आसान है। एक अकेले मुसलमान से हिन्दू बच्चे की छाती मे छुरा घुसवाना बहुत कठिन है, लेकिन मुसलमानो की भीड मे बिल्कुल आसान है। असल मे जितनी बडी भीड होती है, आत्मा उतनी कम हो जाती है, क्योकि आत्मा के होने का जो तत्व है वह व्यक्तिगत दायित्व है, 'इन्डीवीजुअल रिसपासिबिल्टी' है। जब मै तुम्हारी छाती मे छुरा भोकता हू तो मेरा अत करण कहता है कि क्या कर रहे हो? लेकिन, जब मै एक भीड के साथ चलता हूँ, आग लगती है तो मै सिर्फ भीड का हिस्सा होता हूँ। मेरा अत करण कभी भी नही कहता कि तुम क्या कर रहे हो? मै कहता हूँ लोग कर रहे है, हिन्दू कर रहे है, मै तो सिर्फ साथ हूँ। मुझे कभी व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार नही ठहराया जा सकता है। अशुभ सदा ही समाज को आकर्षित करना चाहता है, अशुभ भीड पर निर्भर करता है और अशुभ चाहता है कि व्यक्ति मिट जाय, भीड रह जाय। शुभ व्यक्ति को स्वीकार करता है और चाहता है भीड धीरे-धीरे खत्म हो जाय और व्यक्ति रह जाये। व्यक्ति रहेगे तो सबध रहेगे, लेकिन वह भीड नही होगी, वह समाज होगा। यह भी थोडा समझ लेने जैसा है—जहा व्यक्ति हो वही समाज हो सकता है और जहा व्यक्ति की सत्ता कम हो जाय वहा सिर्फ भीड रहती है, समाज नही रहता। समाज और भीड मे इतना ही फर्क है। व्यक्तियो के अतरसबध का नाम समाज है, लेकिन व्यक्ति होना चाहिए। मै स्वतत्र रूप से तुमसे स्वतत्र व्यक्ति के नाते जब सबधित होता हूँ, तो समाज बनता है। एक जेलखाने मे समाज नही होता। सिर्फ भीड होती है। कैदी भी सबधित होते है, एक दूसरे को देखकर हसते भी है, सिगरेट-बीडी भी भेज देते है, लेकिन वहा भीड होती है, समाज नही होता। वे सब वहा इकट्ठे किये गये है। अपनी स्वतत्रता का उनका चुनाव नही है। इसलिए स्वतत्रता, व्यक्ति, व्यक्तित्व, आत्मा, धर्म, अदृश्य और अज्ञात की सभावना जिस पक्ष की ओर प्रबल होगी उसी तरफ शुभ की चेतना होगी।

प्रबल कह रहा हूँ इसलिए, क्योंकि सिर्फ होना ही इस बात का निर्णायक नहीं होता कि बहुत इस पक्ष की तरफ है और उस पक्ष की तरफ बिल्कुल नही है। राम और रावण लडते हैं तब भी पक्का नही होता है, बहुत साफ नही होता है, क्योकि रावण मे भी थोडा राम तो होता ही है और राम मे थोडा रावण तो होता ही है। कौरव मे थोडा पाडव तो होता ही है, पाडव मे भी थोडा कौरव होता ही है। ऐसा कोई अच्छे से अच्छा आदमी नही है पृथ्वी पर, जिसमे बुरा थोडा-सा न हो। और ऐसा बुरा आदमी भी नही खोजा जा सकता, जिसने थोडा-सा अच्छा न हो। इसलिए, सवाल सदा अनुपात का और प्रबलता का है। स्वतत्रता, व्यक्ति, आत्मा, धर्म—ये मूल्य है जिनकी तरफ शुभ की चेतना होगी।



पर्व : एक

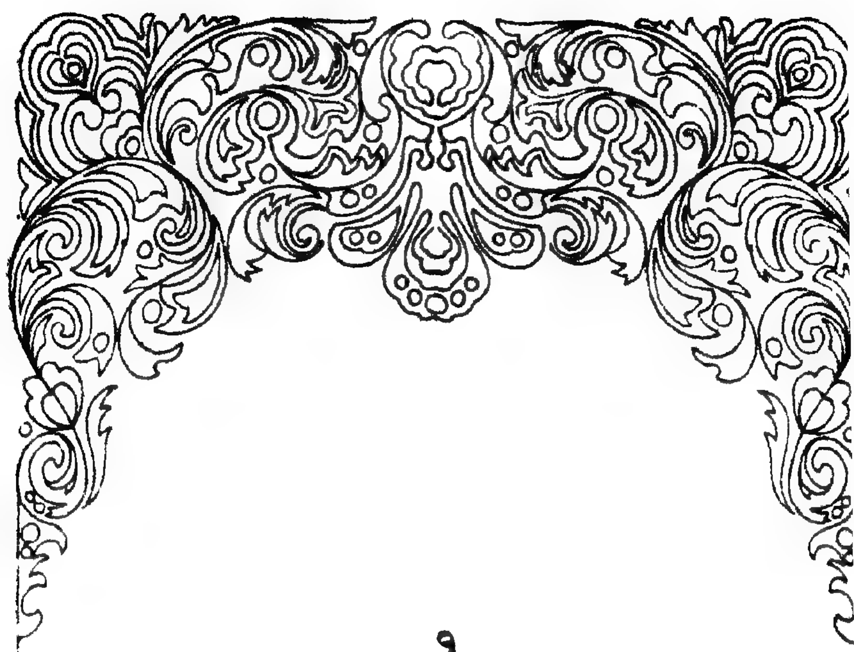
कृष्ण संबंधी चर्चा का मूलाधार

सामान्य जीवन में युद्ध

सन्यास और युद्धवाद

कृष्ण और पूर्णावतार





१

प्रश्न आपको श्रीकृष्ण पर बोलने की प्रेरणा कैसे व क्यो हुई ? इस लम्बी चर्चा का मूल आधार क्या है ?

उत्तर : यदि सोचना हो, बोलना हो, समझना हो तो कृष्ण से ज्यादा महत्त्व-पूर्ण व्यक्ति खोजना मुश्किल है। ऐसा नही कि और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति नही हुए, ऐसा भी नही कि और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति नही होगे। लेकिन कृष्ण का महत्त्व अतीत के लिए कम और भविष्य के लिए ज्यादा है। सच तो यह है कि कृष्ण अपने समय के कम से कम पाच हजार वर्ष पहले पैदा हुए। सभी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति अपने

समय के पहले पैदा होते हैं, और सभी गैर महत्त्वपूर्ण व्यक्ति अपने समय के बाद पैदा होते हैं। महत्त्वपूर्ण और गैर महत्त्वपूर्ण व्यक्ति मे इतना ही फर्क है। सभी साधारण व्यक्ति अपने समय के साथ पैदा होते है। कृष्ण तो अपने समय के बहुत पहले पैदा हुए। शायद आने वाले भविष्य मे हम उन्हे समझने के योग्य हो सके। अतीत कृष्ण को समझने के योग्य नही हो सका। यह भी ख्याल कर ले कि जिसे हम समझने मे योग्य नही हो पाते, जो हमारी समझ के बाहर छूट जाता है, उसकी हम पूजा करने लगते हैं। या तो हम गाली देते हैं, या हम प्रशसा करते है। दोनो ही पूजाए हैं। एक शत्रु की है, एक मित्र की है। जिसे हम नही समझ पाते, उसे हम भगवान बना लेते है। असल मे अपनी नासमझी को स्वीकार करना बहुत कठिन होता है, दूसरे को भगवान बना देना बहुत आसान होता है। लेकिन दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू है। जिसे हम नही समझ पाते, उसे हम आखिर क्या कहे ? इसीलिए हम उसे भगवान कहना शुरू कर देते है। भगवान कहने का कुल मतलब इतना है कि जैसे हम भगवान को नही समझ रहे है वैसे ही इस व्यक्ति को भी नही समझ पा रहे है। जैसे भगवान अबूझ है वैसे यह व्यक्ति भी अबूझ है। जैसे भगवान रहस्य है वैसे यह भी रहस्य है। जैसे भगवान को हम नही छू पाते, पकड पाते, स्पर्श कर पाते, वैसे ही इस व्यक्ति का भी नही छू पाते हैं, नही पकड पाते है। जैसे भगवान सदा ही जानने को शेष रह जाता है वैसे यह व्यक्ति भी सदा जानने को शेष रह जाता है। अपितु समय के पहले जो लोग पैदा हो जाते है, उनकी पूजा शुरू हो जाती है। लेकिन, वक्त करीब आ रहा है, जब कृष्ण की पूजा का अर्थ नही होगा, कृष्ण को जिया जा सकेगा। इसीलिए कृष्ण को चुना है, चर्चा के लिए, क्योकि आने वाले भविष्य के सदर्भ में सबसे सार्थक व्यक्तित्व उन्ही का मुझे मालूम पडता है।

दो तीन बाते इस सम्बन्ध मे आपसे कहू एक बात—कृष्ण को छोडकर दुनिया के समस्त अद्भुत व्यक्ति – चाहे महावीर, चाहे बुद्ध, चाहे क्राइस्ट, या कोई और – ये सभी परलोक के लिए जी रहे थे, आने वाले किसी जीवन के लिए, मोक्ष के लिए, स्वर्ग के लिए। मनुष्य का पूरा अतीत पृथ्वी पर इतना दुखद था कि पृथ्वी पर तो जीना ही सम्भव नही था। पूरा अतीत इतनी पीडा, इतनी 'सफरिंग', इतनी कठिनाइयो का था कि इस पृथ्वी के जीवन को स्वीकार करना मुश्किल था। अतीत के समस्त धर्म पृथ्वी को अस्वीकार करने वाले धर्म हैं, अकेले कृष्ण को छोडकर। कृष्ण इस पृथ्वी के पूरे जीवन को पूरा ही स्वीकार करते है। वे किसी परलोक मे जीने वाले व्यक्ति नही है, इसी लोक

मे जीने वाले व्यक्ति है। बुद्ध-महावीर का मोक्ष इस पृथ्वी के पार कही दूर है, कृष्ण का मोक्ष पृथ्वी पर, यही और अभी है।

इस जीवन की, जिसे हम जानते हैं, इतनी गहरी स्वीकृति किसी व्यक्ति ने कभी भी नही दी है। आने वाले भविष्य में पृथ्वी पर दुख कम हो जायेंगे, सुख बढ़ जायेंगे और पहली बार पृथ्वी पर त्यागवादी व्यक्तियो की स्वीकृति मुश्किल हो जायेगी। दुखी समाज त्याग को स्वीकार कर सकता है, सुखी समाज त्याग को स्वीकार नही कर सकता। दुखी समाज मे त्याग, सन्यास, 'रिनन्सिएशन', समाज को या जीवन को छोडकर भाग जाना अर्थपूर्ण हो सकता है, सुखी समाज मे अर्थपूर्ण नही हो सकता। क्योकि दुखी समाज मे कोई कह सकता है कि सिवाय दुख के जीवन मे क्या है ? हम छोडकर जाते है। सुखी समाज मे यह नही कहा जा सकता कि जीवन मे सिवाय दुख के क्या है ! अर्थहीन हो जायेगी यह बात। इसलिए त्यागवादी धर्म की कोई बात भविष्य के लिए सार्थक नही है। विज्ञान उन सारे दुखो को अलग कर देगा जो जिन्दगी मे दुख मालूम पडते थे। बुद्ध ने कहा है – जन्म दुख है, जीवन दुख है। जरा दुख है, मृत्यु दुख है। ये सब दुख अब मिटाये जा सकेंगे। जन्म दुख नही होगा – न मा के लिए, न बेटे के लिए। जीवन दुख नही होगा – बीमारिया काटी जा सकेगी। जरा नही होगी, बुढापे से आदमी को जल्दी ही बचा लिया जा सकेगा और जीवन को लम्बा भी किया जा सकेगा। इतना लम्बा किया जा सकेगा। कि तब विचारणीय यह नही होगा कि आदमी क्यो मर जाता है ? विचारणीय यह होगा कि आदमी इतका लम्बा क्यो जिये ? निकट भविष्य मे सब हो जाने वाला है। उस दिन बुद्ध का वचन – जन्म दुख है, जरा दुख है, जीवन दुख है, मृत्यु दुख है, समझना बहुत मुश्किल हो जायेगा। उस दिन कृष्ण की बासुरी सार्थक हो सकेगी। उस दिन कृष्ण का गीत और कृष्ण का नृत्य सार्थक हो सकेगा। उस दिन जीवन सुख है यह चारो ओर नाच उठेगी घटना ! जीवन सुख है, इसके फूल चारो ओर खिल आयेंगे। इन फूलो के बीच मे नग्न खडे हुए महावीर का सन्दर्भ खो जाता है। इन फूलो के बीच मे जीवन के प्रति पीठ करके जाने वाले व्यक्तित्व का अर्थ खो जाता है। इन फूलो के बीच मे तो जो नाच सकेगा वही सार्थक हो सकेगा। इसलिए मै सोचता हू कि कृष्ण की उपयोगिता रोज रोज बढ़ती जाने वाली है।

अभी तक हम सोच ही नही सकते कि धार्मिक आदमी के ओठो पर बांसुरी कैसे है ? अभी तक हम सोच नही सकते कि धार्मिक आदमी, और मोर का पंख लगाकर नाच कैसे रहा है ? धार्मिक आदमी प्रेम कैसे कर सकता है, गीत कैसे गा

सकता है ? धार्मिक आदमी का हमारे मन मे ख्याल ही यह है कि जो जीवन को छोड रहा है, त्याग रहा है। उसके ओठ से गीत नही उठ सकते, उसके ओठ से दुख की आह उठ सकती है। उसके ओठो पर बासुरी नही हो सकती। यह असभव है। इसलिए कृष्ण को समझना अतीत को करीब करीब असभव हुआ। कृष्ण को समझा ही नही जा सका। इसलिए अतीत के सदर्भ मे कृष्ण बहुत ही बेमानी, बहुत एब्सर्ड, बहुत असगत ठहरे। किन्तु भविष्य के सदर्भ मे कृष्ण रोज सगत होते चले जायेगे और ऐसा धर्म पृथ्वी पर शीघ्र ही पैदा हो जायेगा जो नाच सकता है, गा सकता है, खुश हो सकता है। जहा अतीत का समस्त धर्म रोता हुआ, उदास, हारा हुआ, थका हुआ, पलायनवादी, एस्केपिस्ट है वहां भविष्य का धर्म जीवन को, जीवन के रस को स्वीकार करने वाला, आनन्द से, अनुग्रह से नाचने वाला, हसने वाला धर्म होने वाला है।

जीवन की यह जो सभावना है, इन सभावनाओ को ख्याल मे रखकर कृष्ण पर बात करने का मैने विचार किया है। हमे भी समझना मुश्किल पडेगा क्योकि हम भी अतीत के दुख के सस्कारो से ही भरे हुए हैं। धर्म को हम भी आसुओ से जोडते है, बासुरियो से नही। शायद ही हमने कोई ऐसा आदमी देखा हो जो इसलिए सन्यासी हो गया हो कि जीवन मे बहुत आनन्द है। हा, किसी की पत्नी मर गयी और जीवन दुख हो गया, तो वह सन्यासी हो गया है। किसी का धन खो गया , दिवालिया हो गया , आखे आसुओ से भर गयी है, तो सन्यासी हो गया है। कोई उदास है, दुखी है, पीडित है और सन्यासी हो गया है। दुख से सन्यास निकला है, लेकिन आनन्द से ? आनन्द से सन्यास नही निकला।

कृष्ण मेरे लिए एक ही व्यक्ति है जो आनन्द से सन्यासी है। निश्चित ही आनन्द से जो सन्यासी है वह दुख वाले सन्यासी से आमूल रूप से भिन्न होगा। जैसे मै कह रहा हू कि भविष्य का धर्म आनन्द का होगा, वैसे यह भी कहता हू कि भविष्य का सन्यासी आनन्द से सन्यासी होगा। इसलिए नही कि एक परिवार दुख दे रहा था इसलिए वह सब छोडकर सन्यासी हो गया, बल्कि एक परिवार उसके आनन्द के लिए बहुत छोटा पडता था इसलिए पूरी पृथ्वी को परिवार बनाने के लिए सन्यासी हो गया। इसलिए नही कि एक प्रेम जीवन मे बन्धन बन गया है, इसलिए कोई प्रेम को छोडकर सन्यासी हो गया, बल्कि इसलिए कि एक प्रेम इतने आनन्द के लिए बहुत छोटा था, सारी पृथ्वी का प्रेम जरूरी था इसलिए सन्यासी हो गया है। जीवन की स्वीकृति, जीवन के आनन्द और जीवन के रस से निकले हुए सन्यास को जो समझ पायेगा, वह कृष्ण को भी समझ पायेगा। भविष्य

मे अगर कोई कहेगा कि मैं दुख के कारण सन्यासी हो गया तो हम कहेंगे कि दुख से कोई सन्यासी कैसे हो सकता है ? दुख से जो सन्यास निकलेगा वह आनन्द को ले आने वाला नही होगा। क्योकि दुख से जो सन्यास निकलेगा वह दुख को कम कर सकता है। भले ही आनन्द को पैदा नहीं कर सकता। आनन्द से जिस सन्यास का जन्म होगा, जो गगा आनन्द से पैदा होगी, वही आनन्द के सागर तक पहुच सकेगी। क्योकि तब आनन्द को बढ़ाना ही साधना होगी। अतीत की साधना दुख को कम करने की साधना थी। दुख को कम करनेवाला साधक दुख को कम कर लेगा, लेकिन वह 'निगेटिव', नकारात्मक होगा। ज्यादा से ज्यादा उपलब्धि उसकी उदासी की होगी, जो दुख का क्षीणतम रूप है। इसलिए हमारा सन्यासी उदास, हारा हुआ, भागा हुआ सन्यासी है, जीवन्त और आनन्द से नाचता हुआ सन्यासी नही है।

आनन्द के सन्यास की इस सभावना के कारण जानकर ही मैंने कृष्ण को चुना कि उन पर बात करू। ऐसा नही है कि कृष्ण पर बाते नही की गयी है, लेकिन कृष्ण पर जिन्होने बाते की है वे भी दुख से भरे हुए सन्यासी थे। इसलिए कृष्ण की आज तक की व्याख्या कृष्ण के साथ अन्याय करती रही है। करेगी ही। अगर शकर कृष्ण की व्याख्या करेगे तो एक उल्टा ही आदमी कृष्ण की व्याख्या कर रहा है। शकर की व्याख्या कृष्ण के साथ न्यायसगत नही हो सकती। कृष्ण की व्याख्या अतीत मे सगत हो ही नही सकी। क्योकि जो व्याख्याकार थे, जो कृष्ण पर कह रहे थे, बोल रहे थे, वे सब दुख से आये हुए थे। वे इस जगत को माया सिद्ध करना चाहते थे। वे इस जगत को असार कहना चाहते थे और कृष्ण इस जगत को सार कह रहे है। इस जगत को भागवत्, 'डिवाइन', दिव्य कह रहे है। कृष्ण के लिए सब स्वीकार है। अस्वीकार कुछ है ही नही। 'टोटल एक्सेप्टबिलिटी'—समस्त को स्वीकार कर लेने का भाव। ऐसा व्यक्तित्व कभी पैदा ही नही हुआ है। धीरे धीरे जब हम बात करेगे तो बहुत बाते ख्याल मे आ सकेगी। मेरे लिए 'कृष्ण' शब्द भविष्य के लिए बहुइगित और बहुसूचक है। इसलिए इसपर बात करने को तय किया है।

प्रश्न आपने कहा कि बुद्ध और महावीर जैसे संन्यासी दुखवादी हैं लेकिन संन्यास उनके वैभवपूर्ण जीवन से निकला है। संन्यास उनके वैभव का अगला चरण है। इसलिए उसके आधार में आप दुख को नहीं रख सकेंगे ?

उत्तर : नहीं, मैंने महावीर और बुद्ध को दुखवादी सन्यासी नहीं कहा।

अतीत का सन्यास दुखवादी था। महावीर का व्यक्तित्व भी अगर हम देखें, और बुद्ध का व्यक्तित्व अगर देखें, तो वो भी जीवन को छोडने वाला है। महावीर और बुद्ध दुखवादी है, ऐसा मैंने नही कहा, क्योकि मैं महावीर और बुद्ध को मानता हू कि उन्होने पाया। महावीर का दुख बहुत भिन्न है। महावीर का दुख, सुख की ऊब है। बुद्ध का दुख, सुख से ऊब जाना है। उनका दुख, सुख का अभाव नहीं है, 'एब्सेस' नही है। ऐसा नही है कि महावीर को सुख की कमी थी इसलिए वह सन्यासी हो गये। न, अति सुख हो जाय तो सुख व्यर्थ हो जाता है। लेकिन फिर भी वे सुख को छोडकर गये। छोडना उन्हे अब भी सार्थक है। सुख तो निरर्थक हुआ लेकिन छोडना सार्थक रहा। कृष्ण को सुख भी व्यर्थ है, छोडना भी व्यर्थ है। कृष्ण के लिए व्यर्थता की गहराई बहुत ज्यादा है।

समझें, अगर मै किसी चीज को पकडता हू तो भी मेरे लिए उसमे कुछ अर्थ है। और अगर मै उसे छोडता हू तो भी निषेधात्मक अर्थ है। नही छोडूगा तो दुख पाऊगा, इतना अर्थ तो है ही। महावीर और बुद्ध का सन्यास दुख से निकला, ऐसा मै नही कहता। सुख से ही निकला, लेकिन सुख की ऊब से निकला। वे किसी और बडे सुख की खोज मे इस सुख को छोडकर चले गये। कृष्ण मे उनसे भेद है। कृष्ण किसी बडे सुख की खोज मे इस सुख को छोड कर नहीं जाते। इस सुख को भी उस बडे सुख की खोज की सीढी ही बनाते है, छोडकर नही जाते। इस सुख मे और उस सुख मे उन्हे विरोध नही दिखायी पडता। वह जो बडा सुख है, इसी सुख का विस्तार है। वह इसी गीत की अगली कडी है। वह नृत्य का अगला चरण है। वह जो बडा सुख है, वह जो आनन्द है, वह इस सुख का विरोधी नही है बल्कि कृष्ण के लिए इस सुख मे भी उस बडे आनन्द की ही झलक है, यह उसकी ही शुरुआत है। बुद्ध और महावीर भी सुख से ही जाते है। लेकिन उनकी दृष्टि छोडने की दृष्टि है। वह जो छोडने की दृष्टि है वह हम दुखवादियो को और भी महत्त्वपूर्ण मालूम पडी। बुद्ध और महावीर सुख से ऊब कर गये हैं, लेकिन हम दुखी लोगो को ऐसा लगा है कि दुख से ही गये है। तो बुद्ध और महावीर की व्याख्या भी हमने जो की है वह भी दुखवादियो की व्याख्या है। जैसे कृष्ण के साथ अन्याय हुआ, उससे थोडा कम सही, लेकिन बुद्ध और महावीर के साथ भी अन्याय हुआ है।

हम दुखी हैं। हम जब छोडकर जाते हैं तो दुख के कारण छोडकर जाते हैं। बुद्ध और महावीर जब छोडकर जाते है तो सुख के कारण छोडकर जाते हैं। हममे और बुद्ध और महावीर मे भी फर्क है। हमारे छोडने का मूल आधार दुख होता है,

उनके छोडने का मूल आधार सुख होता है। हैं तो वे भी सुख से गये हुए सन्यासी, लेकिन कृष्ण मे और उनमे भी एक फर्क है। वह फर्क यह है कि वे सुख छोडकर गये है कृष्ण छोडकर नही जा रहे है, कृष्ण स्वीकार कर रहे है जो है। असल मे सुख को छोडने योग्य भी नही पा रहे है वह, भोगने योग्य का सवाल ही नही है। जीवन जैसा है, उसमे कुछ भी रद्दोबदल करने की कृष्ण की कोई इच्छा नही है।

एक फकीर ने कही कहा है अपनी एक प्रार्थना मे कि हे परमात्मा ! तू तो मुझे स्वीकार है लेकिन तेरी दुनिया नही। सभी फकीर यही कहेगे कि तू तो मुझे स्वीकार है लेकिन तेरी दुनिया नही। ये नास्तिक से उल्टे है। नास्तिक कहता है कि तेरी दुनिया तो स्वीकार है, तू नही। आस्तिक कहता है, तेरी दुनिया नही, तू स्वीकार है। ये दोनो एक ही सिक्के के दोहरे पहलू हुए। कृष्ण की आस्तिकता बहुत अद्भुत है। कहना चाहिए, कृष्ण ही आस्तिक है। वे कहते हैं तू भी स्वीकार है, तेरी दुनिया भी स्वीकार है। और यह स्वीकृति इतनी गहरी है कि कहा तेरी दुनिया समाप्त होती है और कहा तू शुरू होता है, यह तय करना मुश्किल है। असल मे तेरी दुनिया भी तेरा फैला हुआ हाथ है और तू तेरी दुनिया का छिपा हुआ अन्तरतम है। इससे ज्यादा कोई फर्क नही है।

कृष्ण समस्त को स्वीकार कर रहे है, इसे ध्यान मे रखना जरूरी है – दुख को भी नही छोड रहे, सुख को भी नही छोड रहे है। छोडने का भाव ही नही है। छोडने की बात ही नही है। छोडने से ही, अगर हम ठीक से समझे तो व्यक्ति शुरू हो जाता है। जैसे हम छोडते है, 'मै' शुरू हो जाता है। लेकिन अगर हम कुछ छोडते ही नही तो मेरे होने का उपाय ही नही। इसलिए कृष्ण-सा निरहंकारी व्यक्तित्व खोजना मुश्किल है। और निरहकारी है इसलिए ही उन्हे अहकार की बात करने मे भी कोई कठिनाई नही होती। वह अर्जुन से कह सकते है, तू सबको छोडकर मेरी शरण मे आ जा। यह बडे मजे की बात है, यह बडे अहकार की घोषणा है। इससे ज्यादा 'इगोइस्ट' घोषणा क्या होगी कि कोई आदमी किसी को कहे कि तू सबको छोड और मेरी शरण मे आ जा ! हमको भी दिखायी पडता है कि यह अहकार की घोषणा है, क्या कृष्ण को दिखायी नही पडा होगा ? इतनी अक्ल तो रही ही होगी जितनी हममें है। इतना तो कृष्ण को भी दिखायी पड सकता है कि अहकार की घोषणा है ! लेकिन इसे वह बडी सहजता से कह सके। यह वह आदमी कह सकता है, जिसके पास अहकार हो ही नही। यह वही आदमी कह सकता है कि आ जा मेरी शरण मे, जिसको 'मेरे' का कोई पता ही

नहीं। इसलिए जब वह कह रहे हैं कि 'आ आ मेरी शरण' तब वह यही कह रहे हैं कि 'शरण मे आ जा', छोड दे सब। अपना होना छोड दे और जीवन जैसा है उसे स्वीकार कर ले। बडे मजे की बात है, कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि तू युद्ध मे लड। अगर दोनो की बातो को देखें तो अर्जुन ज्यादा धार्मिक मालूम पड़ता है। कृष्ण की बात बहुत धार्मिक नही मालूम पडती। कृष्ण कहते हैं, लड। अर्जुन कहता है, मारूगा, दुख होगा, पीडा होगी, ये अपने हैं, प्रियजन हैं, सम्बन्धी हैं मित्र हैं, गुरु हैं। इनको मारूगा, बहुत दुख होगा। इन सबको मार कर मैं बडे से बडा सुख भी न चाहूगा। इससे तो बेहतर है कि मैं भाग जाऊ और भीख माग लू। आत्मघात कर लू यह भी सरल मालूम पड़ता है बजाय इन सबको मारने के। कौन धार्मिक होगा जो कहेगा कि कृष्ण को अर्जुन जो कह रहा है, वह गलत कह रहा है। सभी धार्मिक कहेगे, ठीक कहता है। अर्जुन के मन मे धर्मबुद्धि पैदा हुई लेकिन कृष्ण उससे कहते है कि तू विचलित हो गया। तेरी धर्मबुद्धि नष्ट हो गयी। क्योकि कृष्ण यह कहते हैं कि पागल, तू सोचता है किसी को मार सकेगा, कोई मरता है कभी ? तू सोचता है कि ये जो लडे हैं तू इन्हे बचा सकेगा, कोई किसी को बचा सका है कभी ? तू सोचता है, तू युद्ध से बच सकेगा, लेकिन तू अहिंसक हो सकेगा ? लेकिन जहा 'मैं' है, खुद को बचाना है, वहा अहिंसा हो सकती है? नही, जो आ गया है, उसे स्वीकार कर अपने को छोड और लड। जो सामने है उसमे डूब। सामने युद्ध है, सामने कोई मदिर नही है। सामने कोई प्रार्थना नही चल रही है, सामने कोई भजन कीर्तन नही हो रहा है कि उसमे डूब। सामने युद्ध है। लेकिन कृष्ण कहते है, इसमे तू डूब। अपने को छोड। तू कौन है ? और एक बहुत मजे की बात कहते हैं कि जिन्हे तू देखता है कि मरेंगे, मै जानता हू कि वे पहले ही मर चुके है। वे सिर्फ मरने की प्रतीक्षा कर रहे है। तू ज्यादा से ज्यादा निमित्त हो सकता है। तू अपने को ऐसा मत मान कि तू मार रहा है क्योकि ऐसा मानने पर तू निमित्त न रह जाएगा, कर्ता हो जाएगा। तू ऐसा भी न मान कि अगर तू छोडकर भागेगा तो तू सोचेगा कि तूने बचाया है। तब भी भ्रम होगा। न तेरे बचाने से ही कोई बचेगे न तेरे मारने से ही कोई मरेगे। तू इसमे पूरा हो, इसमे पूरा डूब। जो तुझपर आ गया है तू उसे पूरा निभा। और पूरा तू तभी निभा सकता है जब तू अपनी बुद्धि छोड। तू यह छोड कि मैं हू, तू 'मैं' के दृष्टिकोण से देखना छोड।

इसको अगर ठीक से समझे तो इसका मतलब क्या हुआ ? इसका मतलब यह हुआ कि अगर कोई मैं के दृष्टिकोण को छोडे तो कर्ता न रह जाएगा, अभिनेता

ही रह सकता है। मैं राम हूं और मेरी सीता खो जाय तब मैं जिस भांति रोऊंगा, और एक रामलीला में काम करूं और सीता खो जाय तब भी रोऊंगा। हो सकता है यह रोना मेरा असली राम के रोने से ज्यादा कुशल हो। होगा ही। क्योंकि असली राम को रिहर्सल का कोई मौका नही। सीता एक ही बार खोती है। जब खो जाती है तभी पता चलता है। इसकी कोई पूर्व तैयारी भी नही होती, और राम पूरे कर्ता की तरह डूब जाते है। चिल्लाते हैं, रोते हैं, दुखी हैं, पीडित हैं। इसलिए राम को इस देश ने कभी पूर्ण अवतार नही कहा। पूरे अभिनेता भी वे नही है। एक्टिंग अधूरी है। करते है और चूक चूक जाते हैं। कर्ता हो जाते हैं। इसलिए राम के व्यक्तित्व को हम 'चरित्र' कहते हैं। अभिनेता का कोई चरित्र नही होता। अभिनेता की लीला होती है, खेल होता है। इसलिए कृष्ण के चरित्र को हम 'लीला' कहते हैं। कृष्ण की है— लीला, वह कृष्ण-लीला है। राम का है— चरित्र, वह राम-चरित्र है। चरित्र बडी गम्भीर चीज है। उसमे होना पडता है। चुनाव करना पडता है कि यह करना है और यह नही करना है। यह शुभ है और यह अशुभ है। अर्जुन चरित्रवान बनना चाहता था और कृष्ण उसको लीलावान बनाने के लिए उत्सुक हैं। अर्जुन कहता था, मैं यह न करूं, यह बुरा है। और यह करूं तो अच्छा है। कृष्ण कहते है, तू अपने को बीच मे खडा मत कर, और जो सामने आ जाता है उसे होने दे। यह पूर्ण स्वीकृति है। इस पूरी स्वीकृति मे कुछ भी छोडना नहीं है। बडी कठिन है बात, क्योंकि पूर्ण स्वीकृति का मतलब है, न कुछ अशुभ है, न कुछ शुभ है। न अच्छा है, न बुरा है। न सुख है, न दुख है। पूर्ण स्वीकृति का मतलब है कि हमारी वह जो द्वन्द्वात्मक सोचने की व्यवस्था है, हम जो दो मे तोडकर ही सोचते है सब चीजो को, वह गयी। कृष्ण कहते हैं, न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। न कोई जन्मा है, न कोई मरेगा इसलिए तू बेफिक्री से कूद। न कोई मारता है, न कोई बचाता है इसलिए तू बेफिक्री से खेल। कृष्ण यह कह रहे हैं कि तेरी द्वन्द्व मे सोचने की जो आदत है कि यह ठीक है, यह मैं करूं और यह ठीक नही है, यह मै नही करूं, यह तू छोड। इस पृथ्वी पर जो भी है वह परमात्मा है। इसलिए ठीक और गैर ठीक का फासला नही किया जा सकता। बडी कठिन है यह बात। नैतिक मन को तो बडी कठिन पडेगी। इसलिए कृष्ण नैतिक मन को जितने कठिन पडे हैं, उतना अनैतिक आदमी कठिन नही पडता। अनैतिक आदमी को नैतिक आदमी निपट जाता है कह कर कि बुरा है। कृष्ण को क्या कहे ? बुरा कहते भी नही बनता क्योंकि आदमी बुरा दिखायी पडता नही। अच्छे कहने की हिम्मत जुटाने वाले बहुत कम लोग हैं क्योंकि अच्छा कहो तो यह आदमी ऐसी बातो मे अर्जुन को डाल रहा है जो कि बुरी हैं। इसलिए

गांधी जी ने जब कृष्ण पर बात शुरू की तो उनको बडी कठिनाई हो गयी। क्योकि सच तो यह था कि गाधी जी से मेलजोल था अर्जुन का। कृष्ण का कोई भी मेल-जोल नही हो सकता। कृष्ण युद्ध मे कुदा रहे है। गांधी क्या करे ? कृष्ण इतने बुरे हो कि साफ साफ तय हो जाय कि बुरे हैं तो गाधी छुटकारा पा सकते हैं। लेकिन वह साफ साफ तय हो नही सकता, क्योकि कृष्ण को बुरा और भला दोनो स्वीकार हैं। वह भले हैं। चरम कोटि के भले हैं और चरम कोटि के बुरे है, और एक साथ हैं। उनका भलापन तो साफ है। उनका बुरापन भी है। उस बुरेपन को गाधी क्या करे ? तो गाधी को सिवाय इसके कोई उपाय नही रह जाता कि वह कहे कि यह सारा युद्ध 'पैरेबल' है, कहानी है। 'मिथ' है, पुराण कथा है। यह युद्ध कभी हुआ नही। क्योकि कृष्ण असली युद्ध मे कैसे अर्जुन को उतार सकते है ? अगर युद्ध असल मे हुआ हो तो युद्ध हिंसा हो जायेगी। तब गाधी को एक ही उपाय है कि वह कहे कि यह सारी कथा है। और यह जो युद्ध हो रहा है यह असली युद्ध नही है। इस प्रकार गाधी पुराने द्वन्द्व पर वापस लौट जाते है जिसके खिलाफ कृष्ण है। गान्धी कहते है, यह अच्छाई और बुराई का युद्ध है। पाण्डव अच्छे हैं और कौरव बुरे हैं। वही पुराना अच्छे और बुरे का द्वन्द्व जिसमे कृष्ण कह रहे है कि अच्छे की तरफ से लड। यह रास्ता उन्हे खोज लेना पडा है। पूरी कथा को झूठ कहना पडा। पूरी कथा को काव्य कहना पडा। लेकिन कृष्ण को बहुत वक्त हुआ। कृष्ण और गाधी के बीच पाच हजार साल का फासला पडता है। इसलिए किसी पाच हजार साल पुरानी कहानी को 'मिथ' कहना, कल्पना कहना कठिन नही है।

जैनो का इतना फासला नही था इसलिए जैन कृष्ण की कथा को कहानी नही कह सके। वह घटना घटी है। जैन चिन्तन उतना ही पुराना है जितने वेद पुराने है। जैनो के पहले तीर्थंकर का नाम वेद मे उपलब्ध है। हिन्दू और जैनो की प्राचीनता बिल्कुल बराबर है। जैन इन्कार नही कर सकते थे कि युद्ध नही हुआ, और कृष्ण ने युद्ध नही करवाया। अब जैन क्या करे ? अगर उनको भी सुविधा होती तो जो गाधी ने किया, जो कि बहुत गहरे मन से जैन थे शरीर से हिन्दू थे, वही जैन भी करते। गाधी तो पुराण कह कर टाल सके, जैन नही टाल सकते थे। वह समसामयिक थे। अपितु उन्हें कृष्ण को नर्क में डालना पडा। उन्हे अपने शास्त्रो मे लिखना पडा कि कृष्ण नर्क गये। इतनी बडी हिंसा करवा कर कोई आदमी नर्क न जाए तो चींटी मारने वाले का क्या होगा ? इतनी बडी हिंसा करके भी कोई नर्क न जाय तो मुह पर पट्टी बाधने वाले को स्वर्ग कैसे मिलेगा? बहुत मुश्किल हो जायगा। कृष्ण को नर्क में डालना पडा। यह सम-

सामयिक लोगो का वक्तव्य है। अगर वक्त ज्यादा गुजर जाता तो कृष्ण की अच्छाई इतनी थी कि नर्क मे डालना भी मुश्किल हो जाता। मुश्किल उनको भी पडा। इसलिए उनको दूसरी कहानी भी गढ़नी पडी। कृष्ण आदमी तो अद्भुत था! युद्ध तो करवाया था, वह सच है। नाचा था स्त्रियो के साथ, वह सच है। स्त्रियो के कपडे उघाडकर झाड पर बैठ गया था, वह भी सच है। आदमी अच्छा था, काम बुरे किये थे वह भी सच है। तो नर्क मे डालकर भी चैन नही पड सकता कि कैसे इतने अच्छे आदमी को नर्क मे डाल दे। क्योकि फिर अच्छे आदमी भी सदिग्ध हो जायेगे कि इतना अच्छा आदमी नर्क मे डाल दिया जाय, तो अच्छे आदमियो को फिर पक्का नही हो सकता स्वर्ग जाने का। इसलिए जैनो को दूसरी बात भी तय करनी पडी कि कृष्ण आने वाले कल्प मे पहले जैन तीर्थंकर होगे। उधर नर्क मे डालना पडा, इधर आने वाले कल्प मे पहले तीर्थंकर की जगह भी देनी पडी। यह बैलेस, यह सतुलन खोजना पडा क्योकि यह नर्क मे भेजने जैसा तो आदमी नही है। लेकिन भेजना भी पडेगा क्योकि नैतिकता कहती है कि यह आदमी ठीक नही है। परन्तु इस आदमी का व्यक्तित्व कहता है कि यह आदमी तो तीर्थंकर होने योग्य है। तो यही रास्ता बन सकता था कि इसे फिलहाल नर्क मे डालो और भविष्य मे पहला तीर्थंकर बनाओ। जब सारी सृष्टि नष्ट हो जायेगी और फिर से नई सृष्टि शुरू होगी तो पहला तीर्थंकर,—यह 'कम्पनसेशन' है। यह सात्वना है अपने मन को। कृष्ण को इससे कुछ लेना देना नही है। गाधी के लिए सुविधा है कि वे एक साथ निपटा दे दोनो बाते – न नर्क मे डाले, न पहला तीर्थंकर बनाये। पूरी कथा को कह दे कहानी। युद्ध कभी हुआ नही, सिर्फ एक प्रबोध कथा है। गाधी की तकलीफ वही है जो जैनो की है। वह अहिंसा की तकलीफ है। अहिसा नही मान सकती कि हिसा की कोई भी जगह हो सकती है। वही शुभ की तकलीफ है। शुभ कैसे माने कि अशुभ की भी सुविधा हो सकती है।

लेकिन कृष्ण कहते है, जगत द्वन्द्व का मेल है। वहा दोनो एक साथ है। न ऐसा कभी हुआ कि हिंसा न हो, न ऐसा कभी हुआ कि अहिंसा न हो। इसलिए जो भी एक को चुनते है वह अधूरे को चुनते है और कभी भी तृप्त नही हो सकते। ऐसा कभी भी नही हुआ कि अन्धेरा न हो, ऐसा कभी नही हुआ कि प्रकाश न हो। इसलिए जो एक को चुनते है वह अधूरे को चुनते है। और अधूरे को चुनने वाला तनाव मे पडा ही रहेगा। क्योकि शेष आधा मिट सकता नही, वह सदा मौजूद है। और मजा तो यह है कि जिस आधे को हम चुनते है वह उस बाकी आधे पर ही ठहरा होता है जिसको हम चुनते नही, इन्कार करते है। सारी अहिंसा हिंसा

पर ही खडी होती है। सारा प्रकाश अन्धेरे के ही कारण होता है। सारी भलाई अशुभ की ही पृष्ठभूमि में जन्मती और जीती है। सब सन्त दूसरे छोर पर, वह जो बुरे आदमी खडे है, उनसे ही बधे होते हैं। 'पोलेरेटीज' जो हैं वह सभी एक दूसरे से बँधी होती हैं। ऊपर नीचे से बधा है, बुरा भले से बंधा है, नर्क स्वर्ग से बधा है। ये ध्रुव हैं एक ही सत्य के। और कृष्ण कहते हैं, दोनो को स्वीकार करो, क्योकि दोनो हैं। दोनो से राजी हो जाओ, क्यो कि दोनो हैं। चुनाव ही मत करो। अगर कहें तो कृष्ण पहले आदमी है जो 'च्वाइसलेसनैस' की बात करते हैं। चुनाव-रहितता की बात कहते हैं। वह कहते है, चुनो ही मत। चुना कि भूल मे पडे। चुना कि भटके। चुना कि आधे का क्या होगा ? वह आधा भी है। और यह हमारे हाथ मे नही कि वह नही हो जाय। हमारे हाथ मे कुछ भी नही है, वह है। हम नही थे तब भी था, हम नही होगे तब भी होगा। लेकिन नैतिक मन, या जो अब तक धार्मिक समझा जाता रहा है उसकी बडी कठिनाई है। वह द्वन्द्व मे जीता है। वह शुभ और अशुभ को बाटकर जीता है। उसका सारा मजा अशुभ की निन्दा मे है। तभी वह शुभ मे मजा ले पाता है। सत का सारा मजा असत के विरोध मे है, अन्यथा वह मजा नही ले पाता। स्वर्ग जाने का सारा सुख नर्क में गये लोगो के दुख पर खडा है। अगर स्वर्ग मे जो लोग हैं उनको एकदम पता चल जाय कि नर्क है ही नही, तो स्वर्ग के लोग एकदम दुखी हो जाय। अगर नर्क है ही नही तो बेकार सब मेहनत गयी। वे चोर और वे बदमाश जिन्हें नर्क भेजना चाहा था वे सब स्वर्ग मे ही आ गये हैं, क्योकि वे जायेंगे कहा ? स्वर्ग मे जो रस है वह नर्क मे दुख भोगनेवाले लोगो पर खडा है। अमीर का जो सुख है वह गरीब की गरीबी मे है, अमीर की अमीरी मे नही है। अच्छे आदमी का जो सुख है वह बुरे आदमी के बुरे होने मे है, अच्छे आदमी के अच्छे होने मे नही है। जिस दिन सारे लोग अच्छे हो जायेंगे उस दिन साधु का मजा चला जायेगा। साधु बिल्कुल ही अर्थहीन मालूम पडेगा। हो सकता है कि उस वक्त साधु कुछ लोगो को तैयार करे कि तुम असाधु हो जाओ अन्यथा मेरा क्या होगा ? इस जगत की सारी अर्थवत्ता विरोध मे है किन्तु वास्तव मे इस जगत को जो पूरा देखेगा वह पायेगा कि जिसे हम बुरा कहते हैं वह अच्छे का ही छोर है। जिसे हम अच्छा कहते हैं वह बुरे का छोर है।

कृष्ण चुनावरहित है, कृष्ण समग्र हैं। 'इन्टीग्रेटेड' हैं। और इसीलिए पूर्ण हैं और इसलिए हमने किसी दूसरे व्यक्ति के पूर्ण होने की बात नही कही, क्यो कि वह अधूरा होगा ही। राम कैसे पूर्ण हो सकते है ? वह अधूरे होंगे ही। आधे का उनका चुनाव है। जो नही चुनता वही पूरा हो सकता है। लेकिन जो नही चुनता

उसे कठिनाइयो मे पडना पडेगा । क्योंकि उसकी जिन्दगी मे वह भी कभी कभी दिखायी पडेगा जो अन्धेरा है । और वह भी कभी कभी दिखायी पड़ेगा जो उजाला है । उसकी जिन्दगी धूप—छाव का तालमेल होगी । उसकी जिन्दगी सीधी और एकरस नही हो सकती । एकरस जिन्दगी उनकी ही हो सकती है जिनका चुनाव है । एक जिन्दगी के कोने को वह साफ सुथरा कर सकते हैं, लेकिन जिस कचरे को उन्होने हटाया है वह जिन्दगी के किसी दूसरे कोने मे इकट्ठा होता रहेगा । लेकिन जिसने पूरे मकान को स्वीकार कर लिया है—कचरे को भी स्वीकार कर लिया , धूप को भी और अन्धेरे को भी—तब उसका क्या होगा ? उस आदमी की बाबत हमारी दृष्टि क्या होगी ? हमारा चुनाव ही हमारी नजर होगी । हम कह सकते हैं, यह आदमी बुरा है क्योकि अगर हम बुरा उसमे देखना चाहे तो दिखायी पड जायेगा । हम कह सकते हैं, यह आदमी भला है क्योकि हम भला देखना चाहे तो दिखायी पड जायेगा । उसमे दोनो हैं । दोनो भी हमारी भाषा की वजह से कहना पडते है । उसमे तो एक ही है । लेकिन उस एक के ही दोनो पहलू हैं । इसलिए, बुद्ध और महावीर को मैं मानता हू कि उनका चुनाव है । वे शुभ हैं, पूर्ण शुभ है, और इस-लिए पूर्ण नही हो सकते । क्योकि पूर्ण मे उस अशुभ का क्या होगा ? बुद्ध, महावीर और कृष्ण को एक साथ खडा करे तो हमे बुद्ध और महावीर ज्यादा आकर्षक मालूम होंगे । ज्यादा साफ सुथरे और निखरे दिखायी पडेंगे । धब्बा ही नही है उनकी चादर पर । चादर बिल्कुल साफ सुथरी है, एकदम शुभ्र है । उसमे काले की कोई गोट भी नही है । कृष्ण थोडे थोडे सन्देह मे छोड जायेंगे । कृष्ण सदा ही सन्देह मे छोड गये है । इस आदमी मे दोनो बाते एक साथ हैं । यह महावीर जैसा शुभ्र भी है, और अशुभ्र मे किसको रखें महावीर के मुकाबले ? यह चगेज या हिटलर जैसा अशुभ्र भी होने की हिम्मत रखता है । अगर हम महावीर को युद्ध मे तलवार लेकर खडा कर सके, जो हम कर न सकेंगे, तो वैसा है यह आदमी । या अगर हम चगेज को राजी कर ले कि वह महावीर जैसा हो जाय, सब छोडकर नग्न खडा हो जाय, शान्त और निर्मल हो जाय, जो हम कर न सकेंगे, तो वैसा है यह आदमी । लेकिन इस आदमी के साथ क्या करे ? निर्णय क्या करे ? कृष्ण के साथ सब निर्णय टूट जाता है, कृष्ण के साथ अनिर्णायक रहना पडेगा । इसलिए कृष्ण के साथ केवल वे ही खडे हो सकते हैं जो निर्णय लेते ही नही । कृष्ण के साथ निर्णय लेने वाला चित्त बहुत जल्दी भाग जायेगा । क्योकि जब उसे शुभ दिखायी पडेगा तब पैर पकड लेगा और जब अशुभ दिखायी पडेगा तब क्या करेगा ? इसलिए कृष्ण के भक्तो ने भी चुनाव किया है । अगर सूर कृष्ण की बहुत चर्चा करते हैं तो बालपन की बहुत चर्चा करते हैं, बाद का हिस्सा छोड़ देते हैं ।

वह सूर की हिम्मत के बाहर है। सूर तो बहुत कमजोर हिम्मत के आदमी हैं, आखे फोड ली है एक स्त्री को देखने के डर से। यह जरा सोचने जैसा है कि ये आखें किसी स्त्री के प्रेम मे न डाले, ये आखें किसी वासना मे न ले जाय सूरदास ने अपनी आखे फोड ली है। यह आदमी कृष्ण को पूरा स्वीकार कर सकेगा ? बडा प्रेम है सूर का कृष्ण से । शायद कम ही लोगो का ऐसा प्रेम रहा है। तो फिर कृष्ण को इसे दो हिस्सो मे बाटना पडेगा। बालपन के कृष्ण को यह पकड लेगा। युवा कृष्ण को छोड देगा। क्योकि युवा कृष्ण समझ के बाहर है। क्योकि युवा कृष्ण समझ मे आ सकता था अगर सूर आखे न फोड लेते। तब सूरदास से सगति बैठ जाती। लेकिन युवा कृष्ण की आखे — ऐसी आखे ही कम लोगो के पास रही है। इतनी स्त्रिया आकर्षित हो जाय, ऐसी आखें पाना बहुत मुश्किल है। बडा सवाल यह नही है कि इतनी स्त्रिया कैसे आकर्षित हुई, बडा सवाल यह है कि एक आदमी की आखो पर ! यह आकर्षण असाधारण रहा होगा। ये आखे 'मेगनेटिक' रही होगी , ये आखे बडा चुम्बक रही होगी। सूरदास के पास इतनी कीमती आखें नही थी क्योकि सूरदास ही उत्सुक थे, कोई स्त्री उत्सुक थी इसका मुझे पता नही है ।

सूरदास कैसे चुनाव करेगे ? क्या करेगे ? तो बच्चे को पकड लेगे, स्वीकार कर लेगे बालकृष्ण को। इसलिए कृष्ण पर रचे गये शास्त्र भी चुनाव के शास्त्र है। सूरदास किसी और कृष्ण को पकडते है, केशवदास किसी और कृष्ण को पकडते है। केशव बालकृष्ण मे बिल्कुल उत्सुक नही है। केशव का मन राग और रग का मन है। केशव का मन युवा का मन है। वह आँख फोडनेवाला मन नही है। रात भी आख बन्द न करनी पडे ऐसा मन है। केशव क्या करेगे ? केशव बालकृष्ण की बात ही भूल जायेगे, उससे कुछ लेना देना नही। वह उस कृष्ण को चुन लेगे जो नाच रहा है। इसलिए नही कि कृष्ण के नाचने को समझ रहे हैं वह, बल्कि इसलिए कि नाचने वाला उसका मन है। इसलिए कृष्ण पर नाचना थोप लेगे। उस कृष्ण को पकड लेगे जो स्त्रियो के वस्त्र लेकर वृक्ष पर चढ़ गया है, नग्न छोडकर। इस-लिए नही कि कृष्ण जिस तरह उन स्त्रियो को नग्न छोड गया था उसे केशव समझ सकते है। बल्कि इसलिए कि स्त्रियो को नग्न करना चाहते है। तो केशव का अपना चुनाव है। सूर का अपना चुनाव है। भागवत अलग कृष्ण की बात करती है, गीता अलग कृष्ण की बात करती है। यह सब चुनाव बट गये है, क्योकि यह आदमी पूरा है और इसे पूरा पचा लेने का साहस पूरे आदमी मे ही हो सकता है। अधूरा आदमी इसमे से बाट लेगा, छाट लेगा। कहेगा इतने तक ठीक, इसके आगे आख बन्द कर लेते है। इसके आगे तुम नही हो। या इसके आगे होगे भी, तो कहानी

हो। या इसके आगे होओगे भी तो नर्क मे फल पाओगे। अगर इसके आगे भी तुम हो तो हमारे काम के नहीं हो।

इसलिए कृष्ण के व्यक्तित्व पर मील के पत्थर लगा दिये है। सबने अपना अपना हिस्सा बांट लिया है। जिसको जो प्रीतिकर लगता है वह चुन लेता है, लेकिन कृष्ण एक सागर की तरह हैं जिसमे हम अपना घाट भले बना ले, वह घाट पूरे सागर पर नही बनता है। वह घाट हमारी जमीन पर ही बनता है, हम पर ही बनता है, वह सागर का बन्धन नही है। वह हमारी समझ की सूचना है। इसलिए मै तो पूरे कृष्ण की बात करूगा जो बात बहुत जगह अबूझ हो जायेगी, बहुत जगह मुश्किल मे भी डाल देगी, और बहुत जगह आपकी समझ के बाहर भी जाने लगेगी। वहा आप थोडा समझकर बाहर चलने की भी हिम्मत करना। नही तो आप अपनी समझ की जगह रह जायेंगे। वह मील का पत्थर आ जायेगा। उसके आगे का कृष्ण आपके काम का न रह जायेगा। कृष्ण अगर है काम के, तो पूरे के पूरे है। कोई भी व्यक्ति पूरा ही काम का होता है। काट काट कर, मुर्दा अग हाथ मे आते ही जिन्दा आदमी समाप्त हो जाता है। इसलिए जिन्होने भी कृष्ण को काटा है, किसी के हाथ मे हाथ है कृष्ण का, किसी के पास पैर है, किसी के पास आख है, किसी के पास गला है, लेकिन पूरे कृष्ण हाथ मे नही हो सकते। पूरे कृष्ण के हाथ मे होने की तो एक ही सम्भावना है कि आप पूरे को बिना चुने समझने को राजी हो जाय और यह समझना बडे आनन्द की यात्रा होगी, क्योकि समझने मे आप भी पूरे हो सकते है। इस समझने मे आपका पूरा होना भी शुरू हो जायेगा। अगर इस समझने के लिए आप राजी हुए और चुनाव न किया तो आप अचानक भीतर पायेंगे कि आपके भी विरोधी छोर घुलने-मिलने लगे। आपकी भी धूप-छाव एक होने लगी। आपके भीतर भी वह जो कटा कटा व्यक्तित्व है, वह अखण्ड होने लगा। आप भी योग को उपलब्ध होने लगे।

कृष्ण के लिए योग का एक ही अर्थ है — अखण्ड, एक हो जाना। योग की दृष्टि अखण्ड ही हो सकती है। योग का मतलब है 'दी टोटल', जोड। इसलिए कृष्ण को महायोगी कहा जा सका। योगी तो बहुत है लेकिन वह भी योगी नही है, क्योकि जोड वहा नही है, सब चुनाव है। 'च्वाइसलेसनेस' वहा नहीं है। इस अखण्ड कृष्ण की चर्चा कठिन तो पडेगी, बहुत कठिन पडेगी, क्योकि बुद्धि की जो 'केटेगरीज' है, बुद्धि के सोचने के जो मापदण्ड हैं वह बटे हुए हैं, बटखरे है बुद्धि के। इससे बहुत फर्क नही पडता कि किसी के पास पुराने बाट हैं और किसी के पास नये बांट हैं। इससे फर्क नही पडता कि मेट्रिक प्रणाली के बांट है कि पुराना

सेर, पुराना पाव या पुराने छटांक हैं। बुद्धि चाहे पुरानी हो चाहे नयी, बुद्धि चाहे अतीत की हो चाहे आज की, चाहे प्राचीन बुद्धि हो शास्त्रो की, चाहे नयी हो विज्ञान की, इससे फर्क नही पडता। बुद्धि का एक धर्म है कि वह बांटकर चलती है, तोड़कर चलती है। निर्णय करती है, यह ठीक और यह गलत। अगर आपको कृष्ण को समझना हो तो इन दस दिनो मे निर्णय ही मत करना। इन दस दिनो मे सुनना, समझना, निर्णय मत करना। और जहा जहा नासमझी की जगह आ जाय कि अब समझ में नहीं आता वहां वहां फिक्र मत करना बल्कि नासमझी मे भी जाने की हिम्मत करना। 'इर्रेशनल' बहुत जगह आ जायेगा क्योकि कृष्ण को 'रेशनल' नही बनाया जा सकता। कृष्ण को बुद्धिगत नही बनाया जा सकता, वह जो अबुद्धि है, जो बुद्धि अतीत है वह भी वहा है। इसलिए कृष्ण को तर्कयुक्त ढाचो में बिठाना असम्भव है। वह तर्क मानते नही, वह खण्ड मानते नही। वह सब खण्डो मे बहते चले जाते हैं। हमारे घाट मानते नही, सब घाटो को छूते हैं, इसलिए कठिनाई पडेगी। बडी कठिनाई यही पडेगी कि आपका घाट चुकने लगेगा और कृष्ण न चूकेगे। वह कहेंगे, मै आगे भी हू। तुम्हारा घाट भी मै छूता हू, लेकिन मै और घाट भी छूता हू। मै बुरे के घाट पर भी लहरे पहुचाता हू, भले के घाट पर भी लहरे पहुचाता हू। शान्ति का मेरा छोर नही और युद्ध में मै चक्र लेकर भी खडा हो जाता हू। प्रेम का मेरा अन्त नही, लेकिन तलवार से गर्दन भी काट सकता हू। सन्यासी मैं पूरा हू, लेकिन गृहस्थी होने मे मुझे कोई पीडा नही। परमात्मा से मेरा बडा लगाव है, लेकिन ससार से रत्ती भर कम नही है। न मैं ससार के लिए परमात्मा छोड सकता, न परमात्मा के लिए ससार को छोड सकता हू। मैंने तो पूरे के लिए राजी होने की कसम ले ली। मैं हर रग मे रहूगा। इसलिए कृष्ण को अभी तक पूरा भक्त नही मिला। अर्जुन भी नही था। नही तो इतनी मेहनत न करनी पडती। युद्ध के मैदान पर गीता जैसा लम्बा वक्तव्य देना पडा हो तो हम सोच सकते है कि अर्जुन कैसा शका-शील, कैसा सदेही, कैसा तर्क उठाने वाला व्यक्तित्व रहा होगा। युद्ध की रणभेरी बज चुकी हो, सेनाए आमने सामने खडी हो गयी हो, युद्ध का घण्टनाद शुरू हो गया हो और वहां इतनी लम्बी गीता समझानी पडे! अर्जुन यों राजी नही हो गया होगा। उसकी बुद्धि बार बार जोर मारती रही कि आप ऐसा भी कहते है और आप ऐसा भी कहते हैं? वह बार बार जो सवाल उठाता है वह 'कण्ट्राडिक्शन' के हैं। वह कृष्ण से कहता है कि आपमें विरोधाभास है। आप एक तरफ ऐसा भी कहते हैं और दूसरी तरफ ऐसा भी कहते हैं? आप दोनो बातें कहते हो? उसके सारे सवाल गीता मे बडे तर्कसगत हैं। वह यही कह

रहा है कि तुम यह भी कहते हो और यह भी कहते हो ? तो फिर मेरी समझ में नही आता । अब तुम मुझे फिर से समझाओ । कृष्ण जैसा पूरा व्यक्ति भी उसे समझा नही पाता । जब समझाने से थक जाते हैं तो फिर वे दूसरा उपाय करते हैं। अपने को पूरा दिखा देते हैं । क्योंकि यह आदमी मानता नही और यह तर्क जो उठाता है ठीक ही उठाता है । कृष्ण भी समझते हैं कि तर्क तो ठीक है । पर कृष्ण की बाते उसे उल्टी लगती हैं, 'इनकसिस्टेंट' लगती हैं। अर्जुन यही कहता है कि 'कसिस्टेंसी' चाहता हू, संगति चाहता हूं, हे कृष्ण ! तुम सगति बताओ । तुम जो कहते हो उस से मुझे भ्रम जाल मे मत डालो, उससे तुम मुझे 'कन्फ्यूज्ड' मत करो । लेकिन कृष्ण उसको 'कन्फ्यूज' किये चले जाते हैं । वह एक वक्तव्य देते नही कि तत्काल दूसरा देते हैं जो उसका खण्डन कर जाता है । करुणा-ममता भी समझाये चले जाते हैं, हिंसा भी करवाने की बात कहे चले जाते हैं।

ऐसा जो आदमी है, उसके पास फिर एक ही उपाय रह गया । युद्ध की घडी बढी जाती है, योद्धा सब तैयार हैं, लगामे खिंच गयी हैं और यह आदमी मानता नही, और इसी आदमी पर सब निर्भर है । यह भाग जाय तो सब गडबड़ हो जायगा । यह सारा खेल, यह सारा नाटक, इतना बडा इन्तजाम, यह सब व्यर्थ हो जायगा । जब थक जाते हैं कृष्ण, तो उसको अपना पूरा रूप ही दिखा देते हैं । पूरे रूप को देखकर वह घबडा जाता है । कोई भी घबडा जायेगा । पूरे रूप का मतलब ही यह है कि वे सारे विरोधाभासो के साथ इकट्ठे मौजूद हो जाते हैं। उनके भीतर सब दिखायी देने लगता है – जन्म भी और मरण भी और सब एक साथ । हमे सुविधा पडती है – सत्तर साल पहले जन्म होता है, सत्तर साल बाद मरना होता है । दोनो मे इतना फासला होता है कि व्यवस्था बिठा लेते हैं कि जन्म अलग चीज है, मृत्यु अलग चीज । पर वहा तो एक साथ जन्म और मृत्यु दिखने लगते हैं उनके भीतर । एक साथ जगत बनता और विसर्जित होता दिखायी पडने लगता है । एक साथ बीज और वृक्ष दिखायी पडने लगते हैं । एक साथ प्रलय आती है और सृजन होने लगता है । वह घबडा जाता है; वह कहता है कि बन्द करो अपना यह रूप । मैं मर जाऊगा । मैं इसे और नहीं देख सकता । इसे बन्द करो । लेकिन इसके बाद वह सवाल नही उठाता । इसके बाद एक बात उसे दिखायी पड जाती है कि जिन्हे हम असगतिया कहते हैं, विरोध कहते है वे एक सत्य के हिस्से हैं । वह युद्ध मे चला जाता है । इसका यह मतलब मत समझ लेना कि वह राजी होकर गया । वह राजी होकर नही जा पाया । दिखायी तो पड गया उसे, लेकिन उसकी बुद्धि सवाल उठाती है । बुद्धि का काम ही सवाल उठाना है । तो जितने सवाल आपको मुझसे उठाने हो, उठाना । लेकिन कृष्ण को समझने मे सवाल मत उठाना । आपकी सारी

बुद्धि मुझपर लगाना। लेकिन कृष्ण बहुत जगह बुद्धि को छोडकर निर्बुद्धि मे प्रवेश करने लगेंगे। बहुत धैर्य की, बहुत साहस की वहा जरूरत पडेगी, वहा चलने को राजी होना। आपका प्रकाशित क्षेत्र खो जायेगा। अन्धेरा शुरू होगा। आपके द्वार दरवाजे वहा दिखायी नही पडेंगे। वहा साफ सुथरे रास्ते नही होगे, वहा सब 'मिस्टीरियस' और रहस्यपूर्ण हो जायेगा। वहा चीजे पुरानी रूपरेखा और पुराने आकार मे नही होगी। वहा सब आकार डाबाडोल हो जायेगे। वहा सब सगतियां गिर जायेगी, सब विरोध गिर जायेंगे और तभी आपको उस विराट के निकट पहुचने का मौका मिल सकता है। और अगर आप राजी हुए तो कुछ ऐसा नही है कि अर्जुन की कोई विशेष योग्यता थी कि उसको विराट दिखायी पडा। सभी उतनी योग्यता के पात्र है। और जो सवाल अर्जुन ने उठाये थे वह कोई भी उठा सकता है। लेकिन अगर आप भी उस रहस्यपूर्ण मे, उस मिस्टीरियस मे, वह जो बुद्धि के पार चला जाता है, चलने को राजी हुए तो विराट की प्रतीति आपको भी हो सकती है। वह विराट आपके सामने भी आ सकता है। उस विराट को लाने की ही मै कोशिश करूगा, उस विराट का ही व्यक्तिवाची नाम कृष्ण है। कृष्ण से कुछ बहुत लेना देना नही है। वह जो विराट है, समस्त का जोड है, उसका ही प्रतीकवाची नाम कृष्ण है। इसलिए बहुत बार चर्चा कृष्ण से इधर उधर छूट जायेगी, उससे घबडा मत जाना। मै तो उस विराट की तरफ ही पूरे समय कोशिश करूगा। अगर आप राजी हुए तो घटना घट सकती है। कुरुक्षेत्र मे ही घटे, ऐसा कुछ नही, मनाली मे भी घट सकती है।

प्रश्न **आचार्यजी, चर्चा को आगे बढाने के पहले पीछे का एक प्वाइट छूट गया था जो स्पष्ट कर लू। बुद्ध के दुख की धारणा जीवन का तथ्य है फिर तथ्य को सामने रखने मे क्या गलती है? जैसा सामान्य जीवन अभी है, क्या उसमे दुख नहीं है?**

उत्तर दुख जीवन का तथ्य है, लेकिन अकेला दुख ही जीवन का तथ्य नही है, सुख भी जीवन का तथ्य है। और जितना बडा तथ्य दुख है उससे छोटा तथ्य सुख नही है। और जब हम दुख को ही तथ्य मानकर बैठ जाते है तो अतथ्य हो जाता है, 'फिक्शन' हो जाता है। क्योकि तब सुख कहा छोड दिया? अगर जीवन मे दुख ही होता तो बुद्ध को किसी को समझाने की जरूरत न पडती। और बुद्ध इतना समझाते है लोगो को, फिर भी कोई भाग तो जाता नही। हम भी दुख में रहते है, लेकिन फिर भी भाग नही जाते। दुख से भिन्न भी कुछ होना चाहिए जो अटका लेता है, जो रोक लेता है।

किसी को प्रेम करने मे दुख है। क्योंकि प्रेम की अपनी कठिनाइयां, अपनी जटिलताएं हैं। क्योंकि किसी को प्रेम करने मे अगर सुख न हो तो इतने दुख को झेलने को कौन राजी होगा? यदि कण भर सुख के लिए पहाड भर दुख झेल लेता है आदमी तो मानना होगा कि कण भर सुख की तीव्रता पहाड भर दुख से ज्यादा होगी। सुख भी सत्य है। समस्त त्यागवादी सिर्फ दुख पर जोर देते हैं, इसलिए वह असत्य हो जाता है। समस्त भोगवादी सुख पर जोर देते हैं, इसलिए वह असत्य हो जाता है। भौतिकवादी सुख पर जोर देते हैं, इसलिए वह असत्य हो जाता है। वह कहते है, दुख है ही नही, सुख ही सत्य है। वही जैसा मैने कहा तब आधे सत्य असत्य हो जाते हैं। सत्य होगा तो पूरा ही होगा आधा नही हो सकता। कोई कहे, जन्म ही है तो असत्य हो जाता है। क्योंकि जन्म के साथ मृत्यु है। कोई कहे मृत्यु ही है तो असत्य हो जाता है। क्योंकि मृत्यु के साथ जन्म है। जीवन दुख है, ऐसा अगर अकेला ही प्रचारित हो तो यह असत्य हो जाता है। लेकिन जीवन सुख-दुख है, ऐसा तथ्य है। इसे और गौर से देखें तो हर सुख के साथ दुख जुडा है। हर दुख के साथ सुख जुडा है। इसे और गहरे देखें तो पता लगाना मुश्किल हो जायेगा कि दुख कब सुख हो जाता है, सुख कब दुख हो जाता है। 'ट्रासफरेबल' है। 'कन्वर्टीबल' भी है। एक दूसरे मे बदलते भी चले जाते हैं। ऐसा रोज ही होता है। असल मे 'एम्फेसिस' का ही शायद फर्क है। जो चीज आज मुझे सुख मालूम पडती है, कल दुख मालूम पडने लगती है। जो कल मुझे सुख मालूम पडती थी वह आज दुख मालूम पड़ने लगती है। अभी मै आपको गले लगा लू, सुख मालूम पडता है। फिर मिनट, दो मिनट न छोडूं तो दुख शुरू हो जाता है। आधी घडी न छोडू तो आप आसपास देखते हैं कि कोई पुलिस वाला उपलब्ध होगा कि नही होगा। अब कैसे होगा छूटना? इसलिए जो जानते हैं, वह आपके छूटने के पहले छोड़ देते हैं। जो नही जानते वे अपने सुख को दुख बना लेते है और कोई कठिनाई नही है। हाथ लिया हाथ मे कि छोड़ना शुरू कर देना, अन्यथा बहुत जल्दी दुख शुरू हो जायेगा। हम सभी अपने सुख को दुख बना लेते हैं। सुख को हम छोडना नही चाहते तो जोर से पकड़ते है। जोर से पकडते हैं कि दुख हो जाता है। फिर जिसको इतने जोर से पकडा उसको छोडने मे भी मुश्किल हो जाती है। दुख को हम एकदम छोडना चाहते हैं। छोडना चाहते है इसलिए दुख गहरा हो जाता है। पकडे रहें दुख को भी तो थोडी देर मे पायेंगे कि सुख हो गया। दुख का मतलब है, शायद हम अपरिचित हैं, थोड़ी देर मे परिचित हो जायेंगे। सुख का भी मतलब है, शायद हम अपरिचित हैं और थोड़ी देर में परिचित हो जायेंगे और परिचय सब बदल देगा।

मैंने सुना है एक आदमी की बाबत कि वह एक नये गांव में गया। किसी आदमी से उसने रुपये उधार मांगे। उस आदमी ने कहा, अजीब हैं आप भी। मैं आपको बिल्कुल नहीं जानता और आप रुपये मांगते हैं। उस आदमी ने कहा, मैं अजीब हूं कि तुम ? मैं अपना गांव इसलिए छोड़कर आया क्योंकि वहां लोग कहते हैं कि हम तुम्हें भली भांति जानते हैं कैसे उधार दें। और तुम इस गांव मे कहते हो, हम जानते नहीं हैं, इसलिए नहीं देंगे। जब भली भांति जान लोगे तब दोगे। लेकिन पुराने गांव मे सब लोग भली भांति जानते थे और वहां इसीलिए नहीं देते हैं। अब मैं कहां जाऊं ? ऐसा भी कोई गांव है जहां मुझे रुपये उधार मिल सकते हैं ?

हम सब भी – हम जो तोड़कर देखते हैं, उससे कठिनाई शुरू होती है। नहीं, ऐसा कोई गांव नहीं है। सब गांव एक जैसे हैं। ऐसी कोई जगह नहीं है जहां सुख ही सुख हैं। ऐसी कोई जगह नहीं है जहां दुख ही दुख है। इसलिए स्वर्ग और नर्क सिर्फ कल्पनाएं हैं। वह हमारी इसी कल्पना की दौड़ है कि एक जगह हमने दुख ही दुख इकट्ठा कर दिया है, एक जगह हमने सुख ही सुख इकट्ठा कर दिया है। नहीं, जिन्दगी जहां भी है वहां सुख भी है, दुख भी है। नर्क मे भी विश्राम के सुख होंगे और स्वर्ग मे भी थक जाने के दुख होंगे।

बर्ट्रेन्ड रसल ने कही एक बात कही है कि मैं स्वर्ग न जाना चाहूंगा क्योंकि जहां सुख ही सुख होगा वहां सुख मालूम कैसे पड़ेगा ! जहां कोई बीमार ही नहीं पड़ता होगा वहां स्वास्थ्य का पता कैसे चलेगा ? और जहां जो भी चाहिए हो, मिल जाता होगा, वहां मिलने का क्या सुख होगा ? मिलने का सुख, न मिलने की लम्बाई से आता है। इसलिए तो जो चीज मिल जाती है, हम समाप्त हो जाते है। प्रतीक्षा मे ही सब सुख होता है। नहीं मिलता, सुख ही सुख होता है। मिला कि हाथ एकदम खाली हो जाता है। हम फिर पूछने लगते हैं, अब किसके लिए दुखी हो ? अर्थात् अब हम किसके लिए सुख मांगें प्रतीक्षा में। अब हम किसकी प्रतीक्षा करे, अब हम क्या पाने की राह देखें जिसमे सुख मिले ?

रथचाइल्ड नाम का एक बहुत बड़ा अरबपति मर रहा था। एक कहानी उसकी बाबत प्रचलित है, पता नहीं सच है या झूठ है। उसने अपने बेटे से कहा कि तूने देख ही लिया होगा मेरी जिन्दगी से कि अरबों रुपये हो, तब भी सुख नहीं मिलता। धन सुख नहीं है। संपत्ति सुख नहीं है। उसके बेटे ने कहा, देख लिया आपकी जिन्दगी से। लेकिन एक और बात भी देखी कि धन पास मे हो तो

अपने मन का दुख चुना जा सकता है। उस बेटे ने कहा, धन पास हो तो 'यू कैन हैव योर ओन च्वाइस ऑफ सफरिंग एण्ड च्वाइस इज प्लीजफुल'। उसने कहा, वह जो चुनाव है वह बड़ा सुख का है। इतना मैं जानता हूं कि सुखी तो आप न थे लेकिन जो भी दुख चाहते थे, चुन लेते थे। एक गरीब आदमी जो भी दुख चाहे नहीं चुन सकता। गरीब और अमीर के दुख में बहुत फर्क नही होता, चुनाव मे फर्क होता है। गरीब को उसी स्त्री के साथ दुख भोगना पड़ता है जो मिल गयी। अमीर वह स्त्रियां चुन लेता है जिनके साथ दुख भोगना है। लेकिन यह भी कोई कम सुख है। जिनको हम सुख-दुख कहते हैं, बहुत गहरे में जायेंगे, तो वह एक ही चीज के दो रूप हैं। शायद एक ही चीज की सघनताएं, 'डेन्सीटीज' हैं। फिर जो दुख मेरे लिए दुख है, वह आपके लिए सुख हो सकता है। मेरे पास अगर करोड़ रुपये हैं और पचास लाख रुपये मैं खो दूं, फिर भी मेरे पास पचास लाख रुपये बचेंगे, लेकिन मैं दुखी हो जाऊंगा। आपके पास अगर पचास लाख रुपये नही हैं और आपको पचास लाख मिल जाय तो हम दोनो की स्थिति एक होगी। मेरे पास भी पचास होंगे लेकिन मैं रोऊंगा छाती पीटकर और आपके पास भी पचास होंगे और आप नाचेंगे छाती ठोक कर। हम दोनो की स्थिति यह होगी, पचास मेरे पास भी होंगे, लेकिन मैंने पचास खोये और पचास आपके पास भी होंगे, लेकिन आपने पचास पाये। लेकिन ध्यान रहे, आप कितनी देर तक छाती ठोककर नाचेंगे, क्योंकि जिसके पास पचास लाख हो जाते हैं उसके पास पचास लाख खोने की सम्भावना हो जाती है। और मैं कितनी देर रोऊंगा पचास लाख खो गये उनके लिए। क्योंकि जो पचास लाख खोता है वह फिर पचास लाख पैदा करने मे लग जाता है। खोजने मे लग जाता है। नहीं, न मेरा सुख आपका सुख बन सकता है, न मेरा दुख आपका दुख बन सकता है। सुख और दुख आकाश मे छा गयी बदलियां जैसे हैं—आते है, जाते हैं। लेकिन दोनो ही सत्य हैं।

दोनो ही सत्य हैं, यह भी कहना पड़ता है क्योंकि हमारी सारी भाषा दो को मानकर चलती है। एक ही सत्य है जो कभी सुख जैसा दिखायी पड़ता है, कभी दुख जैसा। सुख और दुख हमारे 'इन्टरप्रिटेशन' हैं। सुख और दुख हमारी व्याख्याएं हैं। हम किस चीज की क्या व्याख्या करते हैं, इसपर सबकुछ निर्भर करता है। और व्याख्याएं हजार चीजो पर निर्भर होती है। लेकिन दोनो ही एक साथ सत्य हैं अगर यह स्मरण मे आ जाय तो फिर बुद्ध का सत्य अधूरा मालूम पड़ेगा। 'एमफैटिक' मालूम पड़ेगा। हालांकि कारगर होगा। बुद्ध को शिष्य मिल जायेंगे करोड़ो, कृष्ण को नहीं मिल सकेंगे। चार्वाक को अनुयायी मिल जायेंगे अरबों, कृष्ण को नहीं मिल सकेंगे। दोनो चुनाव करते है। एक अति का चुनाव

करते है और साफ कह देते हैं कि चीजें ऐसी है। और जब हमे चीजें वैसी दिखायी पडती हैं तो हम कहते हैं कि बिल्कुल ठीक कहते है। तुम्हे भी बुद्ध हर हालत में ठीक दिखायी न पडेगे। तुम्हे भी उस हालत मे ठीक दिखायी पडेगे जब तुम दुख मे हो। अगर तुम दुख मे नही हो तो बुद्ध ठीक दिखायी नही मालूम पडेंगे। सुखी आदमी बुद्ध की उपेक्षा कर जायेगे। परन्तु जो अभी अपने को सुखी समझ रहा है, दुखी होते ही बुद्ध के वचन सार्थक होने शुरू हो जायेंगे उसे। इसमे बुद्ध सार्थक हो रहे हैं कि आप ? लेकिन कृष्ण हमेशा बेबूझ रहेगे। आप चाहे दुख में हो तो भी बेबूझ रहेगे, आप चाहे सुख मे हो तो भी बेबूझ रहेगे। कृष्ण तो जब आप दोनो मे एक साथ एक जैसे राजी हो जाय तो आपकी सूझबूझ मे आना शुरू होंगे। जिस दिन आप कह सके , दुख है तो भी राजी और सुख है तो भी राजी। जिस दिन आप कह सके कि दुख है, यह भी आने वाला सुख है, और सुख है, यह भी आने वाला दुख है। जिस दिन आप कह सके कि हम इन दोनो को अलग नाम ही नही देते, अब हमने नाम देना ही बन्द कर दिया है। अब जो आ जाता है आ जाता है। अब हम व्याख्या ही नही करते। उस दिन आप कहां होंगे ? उस दिन आप आनन्द मे होंगे। उस दिन आप सुख मे भी नही होंगे, दुख मे भी नही होंगे। आपने व्याख्याए बन्द कर दी। जिस आदमी ने व्याख्याए बन्द कर दी घटनाओ की, वह आदमी आनन्द मे प्रविष्ट हो जाता है। और जो आनन्द मे है वह कृष्ण को समझ सकेगा। वही समझ सकेगा।

आनन्द का मतलब यह नही है कि अब दुख नही आयेंगे। आनन्द का मतलब यह है कि अब आप ऐसी व्याख्या नही करेंगे जो उन्हे दुख बना दे। आनन्द का यह मतलब नही है कि अब सुख ही सुख आये चले जायेंगे। नही, आनन्द का इतना ही मतलब है कि अब आप वे व्याख्याए छोड देंगे जो उन्हे सुख बनाती थी या सुख की सतत माग करवाती थी। अब चीजें जैसी होंगी, होंगी। धूप धूप होगी, छाया छाया होगी। कभी धूप होगी, कभी छाया होगी। और अब आप उनसे प्रभावित होना बन्द हो जायेंगे, क्योकि अब आप जानते है कि चीजें आती हैं, चीजे चली जाती है। और आप पर सब आता है और जाता है फिर भी आप आप ही रह जाते है। और यह रह जाना है, यह जो रिमेनिंग, यह जो पीछे आपकी चेतना है यही कृष्ण चेतना है। जिसको 'कृष्ण कासेसनैस' कहें, वह यह घडी है जब सुख और दुख आते है और जाते हैं और आप देखते रहते हैं। आप कहते हैं, सुख आया, दुख गया। और यह भी दूसरो की व्याख्या है, मेरी नही। यह भी कि दूसरे इसको सुख कहते हैं और दूसरे इसको दुख कहते है जो आया। यह भी मेरी व्याख्या नही है। ऐसा हो रहा है, मुझसे गुजर

रहा है। तब आप आनन्दित होगे। कृष्ण के लिए जो सार्थक है जीवन का शब्द, वह आनन्द है । दुख और सुख दोनो सार्थक नही हैं। वह आनन्द को ही बाटकर पैदा किये गये हैं । जिस आनन्द को आप स्वीकार करते हैं उसे सुख कहते है और जिस आनन्द को आप स्वीकार नहीं करते उसको दुख कहते है। वह आनन्द को दो हिस्सो में बाट कर पैदा की गयी व्याख्या है। इसलिए जब तक आप उस आनन्द को स्वीकार करते है वह सुख है और जब नही करते वह दुख हो जाता है । आनन्द सत्य है, पूर्ण सत्य है। इसलिए आनन्द से उल्टा कोई शब्द नही है। सुख का उल्टा दुख है। प्रेम का उल्टा घृणा है। बन्धन का उल्टा मुक्ति है । आनन्द का कोई उल्टा शब्द नही है। आनन्द मे उल्टी कोई अवस्था ही नही है। आनन्द से उल्टी भी अगर कोई अवस्था है तो यह सुख दुख की ही कह सकते है, और कोई उल्टी अवस्था नही है । इसलिए स्वर्ग के खिलाफ नर्क है लेकिन मोक्ष के खिलाफ कुछ भी नही है। क्योकि मोक्ष आनन्द की अवस्था है। उसके खिलाफ कोई जगह बनाने का उपाय नही है। मोक्ष का मतलब ही यह है, कि अब सुख दुख दोनो के लिए एक-सा राजीपन आ गया, एक-सी स्वीकृति का भाव आ गया।

प्रश्न . कृष्ण को पूर्णावतार कहने के क्या कारण है ? कुछ और नये कारण बतायें और चौंसठ कलाओ के सन्दर्भ मे सविस्तार प्रकाश डालें।

उत्तर पूर्ण कहने का और कोई कारण नही है, जो व्यक्ति शून्य हो जाता है वह पूर्ण हो जाता है। शून्यता पूर्ण की भूमिका है। अगर ठीक से कहे तो शून्य ही एकमात्र पूर्ण है। इसलिए आप आधा शून्य नही खीच सकते, जामेट्री मे भी नहीं खीच सकते । आप अगर कहे कि मैंने आधा शून्य खीचा तो यह शून्य नही रह जायगा। आधा शून्य होता ही नही। शून्य सदा पूर्ण ही होता है। पूरा ही होता है, अधूरे का कोई मतलब ही नही होता। शून्य के दो हिस्से कैसे करिएगा ? और जिसके दो हिस्से हो जाय उसको शून्य कैसे कहिएगा ? शून्य कटता नही, बटता नही, 'इन्डीवीजिबल' है। विभाजन नही होता। जहा से विभाजन शुरू होता है वहा से सख्या शुरू हो जाती है। इसलिए शून्य के बाद हमे एक से शुरू करना पडता है। एक, दो, तीन... यह फिर सख्या की दुनिया है। सब सख्याए शून्य से निकलती और शून्य मे खो जाती हैं। शून्य एकमात्र पूर्ण है। शून्य कौन हो सकता है? वही जो पूर्ण हो सकता है। कृष्ण को पूर्ण कहने का अर्थ है। क्योकि आदमी बिल्कुल शून्य है। शून्य वह हो सकता है जिसका कोई चुनाव नही, जिसका चुनाव है वह तो कुछ हो गया। उसने 'समबडीनेस' स्वीकार कर ली। उसने कहा कि मैं

चोर—यह कुछ हो गया, शून्य कट गया। उसने कहा, मैं साधु ! यह कट गया। शून्य कट गया। यह आदमी कुछ हो गया। इसने कुछ होने को स्वीकार कर लिया, 'समबडीनेस' आ गयी, 'नथिंगनेस' खो गयी। अगर कृष्ण से आकर कोई पूछे कि तुम कौन हो ? तो कृष्ण कोई सार्थक उत्तर नही दे सकते, चुप ही रह सकते है। कोई भी उत्तर देंगे तो चुनाव शुरू हो जायेगा। वह कुछ हो जायेंगे। असल में जिसको सब कुछ होना है उसे ना कुछ होने की तैयारी चाहिए। जेन फकीरों के बीच एक 'कोड' है। वह कहते हैं, "वन हू हेज टु बी एवरीव्हेयर, मस्ट नाट बी ऐनीव्हेयर"—जिसे सब कहीं होना हो उसे कही नही होना चाहिए या न कही होना चाहिए। जो सब होना चाहता है, वह कुछ नही हो सकता। कैसे कुछ होगा ? कुछ और सब का क्या मेल होगा ? चुनाव नही, च्वाइसलेसनेस शून्यता ला देती है। फिर आप जो हैं, लेकिन कह नही सकते कौन हैं, क्या है ? इसलिए अर्जुन उनसे पूछता है कि आप बतलायें आप कौन है ? तो उत्तर नही देते, अपने को ही बता देते हैं। उसमे भी सब है। पूर्ण का तो बहुत गहरा कारण उनका शून्य व्यक्तित्व है। जो कुछ है, वह अडचन मे पडेगा। क्योकि जिन्दगी ऐसी जगह उसको ले जायेगी जहा उसका कुछ होना बन्धन हो जायेगा। अगर मैने कुछ भी होने का तय किया तो जिन्दगी उन घडियो को भी लायेगी जब मेरा कुछ होना ही मेरे लिए मुश्किल पड जायगी।

कबीर के घर बहुत लोग रुकते थे और कबीर सबको कहते, खाना खा जाओ। एक दिन बडी मुश्किल हो गयी। कबीर के बेटे ने कहा, कब तक यह चलेगा। हम उधारी से दबे जाते हैं। तो कबीर ने कहा, उधारी लेते रहो। उसके बेटे ने कहा, चुकायेगा कौन ? कबीर ने कहा, जो देता है वही चुका भी लेगा, हम क्यो फिकर करे। लेकिन बेटे की समझ मे न आया। वह गणित और हिसाब किताब का आदमी था। उसने कहा, बातो से कुछ नही चलेगा। यह कोई अध्यात्म नही है। यहा जिनसे हम लेते है वह मागते है। और न देंगे तो चोर हो जायेंगे। बेईमान सिद्ध होंगे। कबीर ने कहा, सिद्ध हो जाय। इसमे हर्ज क्या है ? और अगर लोगों ने हमे बेईमान कहा, तो हमारा क्या बिगड जायेगा ? लेकिन बेटे ने कहा, नही, यह हमारी बर्दाश्त के बाहर हैं। आप कृपा करके इतने उपद्रव मे न डालकर लोगो से 'खाना खायें यहा' आग्रह करना बन्द कर दें। कबीर ने कहा, होगा तो हो जायेगा। लेकिन दूसरे दिन फिर लोग आये और कबीर ने कहा, खाना खाकर जाना। लोगो ने खाना खाया और उसके लड़के ने कहा, वह नही हुआ। कबीर ने कहा, मै कोई वचन नही दे सकता क्योकि मै कोई बन्धन में नही पड सकता। हो जायेगा तो हो जायेगा। किसी दिन नही कहूगा तो नही कहूगा और जब तक होता है, कहना निकलता है तो कहता हू। उस लडके ने कहा, फिर अब ज्यादा नही चल

सकेगी बात। अब तो मुझे चोरी ही करनी पड़ेगी। उधार भी देने को गांव मे कोई तैयार नही है। तो कबीर ने कहा, पागल, यह पहले ही क्यो न सोचा, उधारी की झंझट से बचने के लिए। लेकिन बेटा बड़ी मुश्किल में पड गया। क्योंकि कबीर साधु, सदा अच्छी बात कहता रहा। यह हो क्या गया ? बेटे ने कहा, परीक्षा ही कर ले, कहीं यह मजाक तो नही है। तो रात उसने कबीर को उठाया कि मै चोरी को जाता हूँ, आप भी साथ चलेगे ? कबीर ने कहा, जब उठा ही लिया है तो चला चलता हू। बेटे ने सोचा, क्या सच मे ही ये चोरी को राजी हो जायेंगे ? लेकिन बेटा भी कबीर का था। उसने सोचा इतनी जल्दी लौट जाना ठीक नही, हो सकता है मजाक ही हो। वह गया। उसने जाकर दीवाल तोडनी शुरू की, सेंध लगायी। कबीर किनारे खडे थे। उसने देखा कि वह अभी भी कुछ नही कहते कि अब रुक जाओ। लेकिन वह डर रहा है। कबीर उसे कहते है, डरते क्यो हो ? क्या मजे की बात है, वह कहता है, चोरी कर रहे है और डरे न ? कबीर ने कहा डरते हो, इसलिए अपने को चोर समझ रहे हो, नही तो और कारण ही क्या चोर समझने का। डरो मत, और ठीक से खुदाई करो नही तो घर के लोगो की नाहक नीद खराब हो जायेगी। बेटे ने किसी तरह खुदायी की, सोचा कि शायद मजाक यहा खत्म हो जायेगा। उसने कहा, भीतर चले। कबीर ने कहा, चलो। भीतर गये। कोई धन तो चुराना न था, भोजन की ही तकलीफ थी। तो एक गेहू का बोरा खींचकर बाहर निकाला। जब बोरा बाहर निकल आया तो कबीर ने कहा, अब तो सुबह भी होने के करीब हो गयी, नीद मे कोई बाधा भी न पडेगी। घर के लोगो को जगाकर कह आओ कि हम गेहू का एक बोरा चुराये लिए जाते है। तो उसके बेटे ने कहा, चोरी करने आये है कि कोई साहूकारी करने आये है ? कबीर ने कहा, लेकिन घर के लोगो को परेशानी होगी कि कहा गया, क्या हुआ, ढूढने की मुसीबत होगी।

कबीर की इस घटना को कबीर को मानने वाला छाट ही जाता है। क्योंकि यह बेबूझ हो गयी बात। कबीर साधु है कि कबीर चोर है, तय करना मुश्किल है। चोर होने मे कोई कमी नही, चोरी की गयी है। साधु होने मे जरा शक नही क्योकि कहता है, डरता क्यो है, क्योकि कहता है, जगा कर घर के लोगो को खबर कर दे, उनको परेशानी न हो। वह खोजें न कि कौन ले गया। नाहक मुसीबत मे न पडे। लडका कहता है कि घर मे खबर करूंगा जाकर तो वह चोर समझेंगे। कबीर कहता है, चोरी तो की है तो चोर है। इसमे वह समझेंगे तो गलत तो न समझेंगे, ठीक ही समझेंगे। वह लड़का कहता है कि गांव भर मे खबर फैल जायेगी कि तुम चोर हो। कौन आयेगा तुम्हारे पास ? कबीर ने कहा, तेरी मुसीबत मिटेगी, न कोई आयेगा,

न मैं खाने के लिए कहूगा । मगर उस लडके की समझ मे नही आता, वह सारी बात उल्टी होती चली जाती है ।

कृष्ण के पूरे होने का दूसरा अर्थ है कि कृष्ण के जीवन में वह सब कुछ है जो एक ही जीवन मे होना मुश्किल है। असम्भव लगता है। सब कुछ है — विरोधी, ठीक विरोधी। कृष्ण से ज्यादा असगत, 'इनकसिस्टेंट' व्यक्तित्व नही है। जीसस के व्यक्तित्व मे एक सगति है, महावीर के व्यक्तित्व मे एक सगति है, बुद्ध के व्यक्तित्व मे एक तर्क है, सगतिपूर्ण व्यवस्था है। एक 'सिस्टम' है, बुद्ध का एक हिस्सा समझ लो तो पूरे बुद्ध समझ मे आ जाते है। रामकृष्ण ने कहा कि एक साधु समझ लो, सब साधु समझ में आते है। यह कृष्ण की बाबत न लगेगा। रामकृष्ण ने कहा कि समुद्र की एक बूद समझ लो तो पूरा समुद्र समझ में आ जाता है, लेकिन कृष्ण की बाबत न लगेगा। समुद्र एकरस है। एक बूद चखो तो खारी है, दूसरी बूद चखो तो खारी है। सब नमक ही है। लेकिन कृष्ण मे शक्कर भी मिल सकती है, तो पक्का नही कि पडोस की बूद मे शक्कर हो ही। कृष्ण का व्यक्तित्व जो है सब रस है। ठीक ऐसी ही उनके व्यक्तित्व मे सारी कलाए है। कृष्ण कलाकार नही है, क्योकि कलाकार मे एक कला होती है। कृष्ण कला ही है। तब सब पूरा हो जाता है। और इसलिए, जिन्होने उनको देखा, जाना, पहचाना, उनको सब तरह की अतिशयोक्ति करनी पडी। हम सबकी बाबत 'एक्जझरेशन' से बच सकते है या एक ही दिशा मे 'एक्जझरेट' कर सकते है। कृष्ण के साथ कठिनाई खडी हो जाती है क्योकि हमारे पास जो अति आखिरी शब्द है वह हमे उपयोग करने पडेगे। वे ठण्डे और गरम एक साथ है। ऐसे पानी भी ठण्डा और गरम एक साथ ही होता है। हमारी व्याख्या से कठिनाई खडी होती है। हम ठण्डे और गर्म को अलग अलग कर देते है। हम बाट देते है दो हिस्से मे। पानी का गरम और ठण्डा होना आपके प्रति रिलेटिव है, आपके प्रति सापेक्ष है। अगर आप एक हाथ सिगडी पर रखकर गरम कर ले और एक बर्फ रखकर ठण्डा कर ले और फिर एक ही बाल्टी मे डाल लें तो आप उसी मुश्किल मे पड जायेगे जो कृष्ण के साथ खडी होती है। तब पानी ठण्डा और गरम दोनो मालूम पडेगा। एक हाथ कहेगा ठण्डा है, एक हाथ कहेगा गरम है। हाथ असल मे जो भी खबर देगा है वह अपनी सापेक्षता मे, अपनी 'रिलेटीविटी' मे देता है। अगर आप कृष्ण को प्रेम करने वाली राधा से पूछेंगे तो वह कुछ और खबर देगी कि कृष्ण कौन है। वह इसे पूर्ण भगवान शायद न भी कहे या शायद कहे, वह उस पर निर्भर होगा। कृष्ण पर निर्भर नही होगा। राधा पर ही निर्भर होगा। वह 'रिलेटिव' है। अगर राधा ने किसी और स्त्री के साथ कृष्ण को नाचते देख लिया तो भगवान कहना

उसे बहुत मुश्किल पड़ेगा। अब यह पानी बिल्कुल ठण्डा मालूम पड़ेगा। पानी भी न मालूम पड़े, यह भी हो सकता है। लेकिन कृष्ण अगर राधा के साथ नाचे है तो वह इतना पूरा नाचते है उसके साथ भी, कि उसे लगता है पूरे ही उसके हैं। तब वह उन्हे भगवान भी कह सकती है। सभी राधाए, जब उनके साथ पूरा कोई नाचता है तो उसे भगवान कह देती हैं। लेकिन क्षण भर मे वह आदमी शैतान भी हो सकता है। लेकिन ये सारे वक्तव्य सापेक्ष वक्तव्य हैं। अर्जुन से पूछियेगा, पाण्डवो से पूछियेगा तो कृष्ण भगवान मालूम होगे। कौरवो से पूछियेगा तो यह आदमी भगवान कैसे मालूम होगा ? इस आदमी से ज्यादा शैतान और कौन होगा ! यही तो कौरवो की पराजय बनता है, यही तो उनकी मृत्यु बनता है।

कृष्ण कौन है, इसके हजार वक्तव्य हो सकते हैं। लेकिन बुद्ध कौन हैं, इसकी बाबत वक्तव्य हजार नही होगे। क्योकि बुद्ध जो है, वह सब सापेक्ष सबधो मे अपने को अलग कर लेते है। इसलिए वह एक रस हैं। उन्हे कही से भी चखो, वह खारे है। इसलिए बुद्ध की बाबत बहुत विवाद खडा नही होता। बुद्ध एकरस है। उन्हे पहचान सकते है कि वह ऐसे है। उनकी बाबत हमारे 'स्टेटमेट' का, वक्तव्य का अर्थ हो सकता है। कृष्ण हमारे 'स्टेटमेट' को धोखा दे जायेंगे। और चूकि उन्होने सभी वक्तव्यो को धोखा दिया इसलिए मै कहता हू कि वह पूर्ण हैं। कोई वक्तव्य उनको पूरा नही घेर पाता, कुछ बाकी रह जाता है और उलटे वक्तव्य से घेरना पडता है। और सभी वक्तव्य मिलकर ही उनको घेर पाते है तो विरोधी हो जाते है।

कृष्ण की पूर्णता का अर्थ सिर्फ इतना ही है कि कृष्ण के पास अपने जैसा कोई व्यक्तित्व नही है। वह खाली अस्तित्व है। 'एक्जीस्टेंस' है, अस्तित्व है— बस, खाली। कहे कि दर्पण की तरह है। जो उसके सामने आ जाता है वही उसमें दिखायी पडता है। 'ही जस्ट मिरर्स'। जब जो दिखायी पड जाता है वही दिखायी पडता है। जब आपको अपनी शक्ल उसमे दिखायी पडती है तो आप सोचते है, मेरे जैसे है। आप हटे नही कि वह शक्ल गयी, और कृष्ण फिर खाली हैं। जो भी सामने आता है वह अपने जैसा बता देता है। ये सभी खबर देते हैं कि कृष्ण मेरे जैसे हैं। गीता मे जिसने झाका उसने कह दिया कि गीता मेरे जैसी है, इसलिए हजार टीकाए हो गयी। बुद्ध के वचनो की इतनी टीकाए नही हैं। उसका कारण है। जीसस के वचनो की इतनी टीकाए नही हैं। दस पाच टीकाए हैं, क्योकि उनमे फासले बहुत कम हैं। असल मे हजार अर्थ कृष्ण पर ही थोपे जा सकते हैं। बुद्ध पर थोपे नही जा सकते। बुद्ध जो कहते हैं, 'डेफिनेट' है। सुनि-

श्चित है। वक्तव्य पूरा है, साफ है, सुथरा है, तर्कयुक्त है। वह जो कहते हैं उसमे थोडे बहुत फर्क हो सकते है हमारी बुद्धि के अनुसार, लेकिन बहुत फर्क नही हो सकते। ऐसे ही महावीर पर अगर कोई झगडा हुआ है तो केवल दो पथ बन सके। उनमे भी बहुत ज्यादा झगडा नही है। बहुत छोटी बातो पर झगडा है कि महावीर नग्न थे या नही थे। महावीर के वक्तव्य से झगडा नही है। श्वेताम्बरो दिगम्बरो मे महावीर के वक्तव्य पर कोई झगडा नही है। महावीर का वक्तव्य साफ है। महावीर पर पथ नही खडे किये जा सकते। कृष्ण पर भी पथ खडे नही किये जा सकते। लेकिन कारण बिल्कुल उल्टा है। कृष्ण पर पथ खडे करो तो लाख खडे हो सकते है और फिर भी कृष्ण पीछे बाकी बच जायेगे कि नये पथ बनाना चाहे कोई तो नयी भूमि उपलब्ध हो जायेगी। इसलिए कृष्ण पर पथ तो खडे नही हुए, व्याख्याए खडी हुई। बहुत अनूठी घटना घटी कृष्ण पर। जीसस पर पथ खडे हो गये। व्याख्याए हो गयी, दो या तीन। दो या तीन पथ हो गये। कृष्ण पर पथ खडा नही हो सका इस अर्थ मे, व्याख्याए खडी हुई। गीता की हजार व्याख्याए है। और एक व्याख्या दूसरी व्याख्या की बिल्कुल दुश्मन है। रामानुज जो व्याख्या करेगे तो शकर को कह सकते है कि तुम बिल्कुल ही मूढ हो। तुम कुछ जानते ही नही। तुम्हे कृष्ण का कुछ पता ही नही है। शकर जो व्याख्या करेगे उसमे रामानुज को कह सकेगे कि बिल्कुल ना-समझ हो, तुम्हे कुछ पता ही नही। और दोनो सही हो सकते है। कोई कठिनाई नही है। कारण सिर्फ इतना है कि कृष्ण का व्यक्तित्व सुनिश्चित नही है, उसकी रूप रेखा नही है, निराकार है। इस अर्थ मे भी पूर्ण है, क्योकि सिर्फ पूर्ण ही निराकार हो सकता है।

और भी व्याख्याए है — इसलिए मै कहता हू कि गीता की कोई भी व्याख्या कृष्ण की व्याख्या नही है। जिन्होने व्याख्या की है वे उनकी ही व्याख्याए है। शकर जो जानते हैं उसकी व्याख्या गीता मे खोज लेते है और मिल जाती है। शकर खोज लेते है कि जगत माया है। रामानुज खोज लेते है कि भक्ति-मार्ग है। तिलक खोज लेते हैं कि कर्म-द्वार है। गाधी गीता मे भी खोज लेते है कि अहिंसा सत्य है। इसमे कोई अडचन नही आती किसी को भी। कृष्ण किसी को बाधा नही देते। सबका स्वागत है। दर्पण की तरह है, अपनी शक्ल देखो, हट जाओ। इस प्रकार बहुत बहुत अर्थों मे वह पूर्ण है। और पूर्ण बहुत अर्थों मे ही होगे क्योकि अगर एकाध अर्थों मे ही पूर्ण है तो अपूर्ण हो जायेंगे। क्योकि एक अर्थ मे जो पूर्ण है, उस अर्थ मे तो महावीर भी पूर्ण हैं। एक अर्थ मे जीसस भी पूर्ण हैं। एक व्यक्तित्व की पूर्णता तो जीसस हैं ही। यानी, शायद उस तरह के व्यक्तित्व मे कुछ बचा नहीं है जो कि

जीसस में नहीं है। जैसे गुलाब पूर्ण है। चमेली की तरह नही, गुलाब की तरह। चमेली की तरह गुलाब कैसे पूर्ण हो सकता है ? चमेली की तरह चमेली ही पूर्ण होती है। लेकिन चमेली गुलाब की तरह पूर्ण नही हो सकती।

बुद्ध पूर्ण हैं, महावीर पूर्ण है। क्राइस्ट पूर्ण हैं, बहुत और अर्थों मे, बहुत अपूर्ण अर्थों मे। एक व्यक्तित्व की दिशा को उन्होने पूरा छू डाला है। उस दिशा मे कुछ बाकी नही छोडा। लेकिन कृष्ण की पूर्णता बहुत भिन्न है। वह 'वन डायमेंशनल' नही है, एक आयामी नही हैं। 'मल्टी डायमेशनल' है। वह बहु आयामी है। वह सभी दिशाओ मे प्रवेश कर जाता है। वह चोर है तो पूरे चोर है और साधु हैं तो पूरे साधु है। याद करते है तो पूरा याद करते हैं, भूलते हैं तो पूरा ही भूल जाते है। इसलिए जब छोडकर चले गये एक जगह को तो उस जगह को भूल गये है। उस जगह के लोग परेशान है, रो रहे हैं, चिल्ला रहे हैं और कृष्ण को बहुत कठोर ठहरा रहे हैं। बाकी वह बेचारा कठोर जरा भी नही है या पूर्ण हैं कठोरता में। जो पूरा याद करता है वह आदमी पूरा भूल जाता है। जो आधा आधा याद करता है, वह आधा आधा याद रखता है। दर्पण आपको पूरा झलका देता है, मामला खत्म हो गया। बात निपट गयी, आप चले गये दर्पण खाली हो गया। वह जहा पहुच गये है वही पहुच गये है। जिसको प्रेम करना पड रहा है उसको वह प्रेम कर रहे है। जिससे लडना पड रहा है उससे लड रहे है। जो उनके सामने है वह है। यह 'मल्टी डायमेशनल' है। तो पूर्णता कृष्ण की बहु आयामी है। जब एक आयाम मे पूर्ण होना बहुत कठिन है, तो बहु आयाम मे पूर्ण होना, कठिन कहना भी उचित नही, असभव है। लेकिन असभव भी घटित होता है और तभी चमत्कार हो जाता है, जब असभव घटित होता है तो 'मिरेकल' हो जाता है। कृष्ण का व्यक्तित्व बिल्कुल चमत्कार है। वह बिल्कुल 'मिरेकल' है।

हम सब तरह के व्यक्तियो की तुलना खोज सकते हैं। महावीर और बुद्ध के व्यक्तित्व बडे सन्निकट हैं। बहुत थोडे फर्क है। जो है वे भी बाह्य व्यक्तित्व के फर्क है। भीतरी अन्तरात्मा बडी एक जैसी है। लेकिन कृष्ण की तुलना हम खोजने जाय तो मुश्किल मे पड जायेंगे। इस पृथ्वी पर अब तक नही हो सकी। स्वभावत इस तरह के असभव व्यक्तित्व को कुछ फायदे होंगे, कुछ नुकसान होंगे। जो व्यक्ति सभी आयामो मे पूर्ण होगा वह किसी भी एक आयाम के पूर्ण व्यक्तित्व के सामने उस आयाम मे फीका पड जायेगा। जैसे महावीर की सारी शक्ति एक आयाम मे लगती है।

अगर उस आयाम मे कृष्ण महावीर के साथ खडे होंगे तो फीके पड जायेंगे।

क्योकि उनकी शक्ति बहुआयामी है। वह सबमे फैली हुई है। इसलिए अगर एक एक के सामने हम कृष्ण को खडा करे तो कृष्ण जीत न पायेंगे। क्राइस्ट के साथ हार जायेंगे अगर उसी आयाम मे खडा कर दें। लेकिन अगर हम समग्र व्यक्तित्व को सोचे तो बात ही और हो जायेगी। तब महावीर, बुद्ध और क्राइस्ट जीत नही सकते। बहुआयामी व्यक्तित्व – यानी एक ऐसे फूल की हम कल्पना करे जो जुही भी हो जाता है कभी, जो कमल भी हो जाता है, गुलाब भी हो जाता है, कभी घास का फूल भी हो जाता है और आकाश कुसुम भी हो जाता है। सब हो जाता है। जब भी हम जाते है तब पाते है कि कुछ और हो गया। कृष्ण के व्यक्तित्व मे एक बिस्तार है, एक 'एक्सटेशन' है। फैलाव है, अन्तहीन फैलाव है। इसलिए कृष्ण की पूर्णता का अर्थ अनन्तता है। महावीर की पूर्णता का अर्थ एक दिशा को पूरा उपलब्ध कर लेना है। उस दिशा मे उन्होने कुछ भी नही छोडा। अब कोई साधु कुछ पा नही सकेगा उस दिशा मे भी महावीर ने पा लिया। पर जो व्यक्ति एक डायमेशन मे पूर्ण होगा, स्वभावत दूसरे डायमेशन मे बिल्कुल अपरिचित हो जायेगा। दूसरे आयाम मे उसकी कोई गति नही होगी। कृष्ण कुशलता से चोरी कर सकते है। महावीर एकदम बेकाम चोर साबित होगे। पकडे ही जाने-वाले है। कृष्ण कुशलता से युद्ध भी लड सकते है। बुद्ध न लड सकेगे। जीसस की हम कल्पना ही नही कर सकते कि वे बासुरी बजा सकते है, लेकिन कृष्ण शूली पर चढ सकते है। कृष्ण को शूली पर चढने मे दिक्कत न आयेगी। बिल्कुल मजे से चढ जायेंगे। इसकी कल्पना करने मे कोई आन्तरिक कठिनाई न पडेगी कि कृष्ण को शूली लग जाय लेकिन क्राइस्ट बासुरी बजाये, यह बडा मुश्किल है – क्योकि क्राइस्ट का व्यक्तित्व ऐसा सोचा ही नही जा सकता। ईसाई तो कहते हैं, 'जीसस नेवर लाफ्ड' जीसस कभी हँसे ही नही। हसे ही नही तो बासुरी बजाना और पैर पर पैर रखकर मोर मुकुट बाधकर खडे हो जाना हो तो जीसस कहेगे इससे शूली बेहतर। शूली बिल्कुल 'ऐट ईज'। शूली पर लटक कर वह जितने खुश थे मैं सोचता हू जिन्दगी मे कभी नही थे। शूली पर लटककर वह कह सके, इन सबको माफ कर देना। शूली पर लटक कर वह बडी शाति से गुजर सके। यह आयाम उनका आयाम है। इस आयाम मे उन्हे कोई अडचन न आयी।

परन्तु कृष्ण का मामला बहुत मुश्किल है। कृष्ण के मामले मे 'प्रिडिक्शन' नही हो सकता कि क्या होगा ? कुछ भी नही कहा जा सकता कि आदमी शूली पर मरेगा, कि आदमी फूल-हारो मे मरेगा, कि यह आदमी बडी भीड मे मरेगा। क्या होगा इसका ? और मरे भी तो वे एक ऐसी जगह – चुपचाप एक

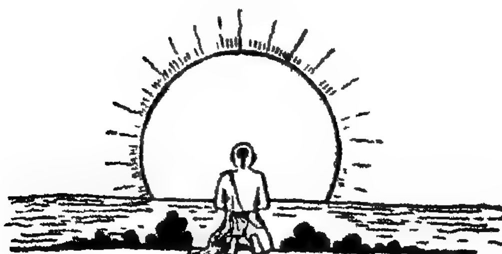
वृक्ष के नीचे लेटे हुए। कुछ बात ही न थी मरने की। किसी ने समझा कि हरिण दिखायी पड रहा है उनका पैर! तीर मार दिया और वह मर गये। इतनी 'एक्सीडेंटल' मौत किसी की भी नही है। सबकी मौत मे भी एक निश्चय है, कृष्ण की मौत बिल्कुल अनिश्चित है। ऐसे मरते हैं वह बेकाम ढग से कि जिसकी कोई युटिलिटी नही मालूम होती, कोई उपयोगिता नही मालूम होती। जीसस की मौत काम आयी। सच तो यह है कि अगर जीसस को शूली न लगती तो दुनिया में 'क्रिश्चियनिटी' होती ही नही, जो जीसस की वजह से नही है, क्रास की वजह से है। इस आदमी को कौन जानता था? शूली महत्वपूर्ण बनी, इसलिए 'क्रास' प्रतीक बन गया ईसाइयत का। वही है घटना जिसने ईसाइयत को जन्म दिया। आज जीसस दुनिया मे हैं तो उसका मतलब है, वह 'क्रूसीफिकेशन' की वजह से है। लेकिन कृष्ण की मौत तो बडी बेमानी है। बडी अजीब सी है। यह भी कोई मरने का ढग है? ऐसे भी कोई आदमी मरते हैं? आप लेटे है वृक्ष के नीचे, कि कोई तीर मार दे। बिना कुछ खबर दिये, बिना कुछ बात हुए — अकारण। कोई ऐतिहासिक घटना नही बनती कृष्ण की मौत से। बस ऐसे ही आते है और चले जाते है, जैसे फूल खिलते है और मुर्झा जाते हैं। कब गिर जाते है, किस सांझ, कुछ पता नहीं चलता। कौन सी हवा या झोका गिरा जाता है, उस पर कोई सील नही होती। बहुआयामी होने के कारण कुछ कहा नहीं जा सकता कि क्या हो जायेगा? कृष्ण के व्यक्तित्व में कौन से फूल खिलेगे? इसको इस तरह सोचे कि अगर महावीर और पचास साल जिन्दा रहे तो हम कह सकते है कि जिन्दगी कैसी होगी। अगर जीसस और पचास साल जिन्दा रहे तो क्या होने वाला है, हम कह सकते है। 'प्रिडिक्टेबल' है। ज्योतिषी की पकड के भीतर है। वे जो करेंगे वह पिछले वर्षों की पुनरुक्ति ही होनेवाली है। लेकिन कृष्ण को अगर दस दिन भी मिल जाय, तो इन दस दिनो मे क्या क्या होगा इस दुनिया मे, बिल्कुल नही कहा जा सकता। क्योकि पिछली कोई पुनरुक्ति होनेवाली नही है। यह आदमी किसी हिसाब से जी ही नही रहा है। गैर हिसाब से जी रहा है। जो हो जायेगा हो जायेगा। इन अर्थों मे भी एक 'इनफिनीटी' है। कहीं चीजें पूरी होती मालूम नही पडती।

पूर्ण सिर्फ वही है, जो पूरा होता मालूम नही पडता। जो पूरा हो जाता है वह किसी अर्थ मे समाप्त हो जाता है। अब यह बहुत उल्टा लगेगा, क्योकि हमारा आमतौर से ख्याल यह होता है कि 'पूर्ण' का मतलब यह है कि जो समाप्त हो जाता है। जिसके आगे कुछ बचता नही। अगर आपका ऐसा अर्थ है पूर्ण का तो आपको 'वन डायमेन्शनल परफेक्शन' का ख्याल है। आपको एक आयाम मे पूर्णता का ख्याल है। कृष्ण की पूर्णता ऐसी नही है जो समाप्त हो जाती है। कृष्ण की पूर्णता

का मतलब यह है कि कितना ही यह आदमी जिये और चले और रहे, यह समाप्त नही होने वाला है। यह सदा शेष रह जायेगा। इसलिए उपनिषदो ने जो पूर्ण की व्याख्या की है वही ठीक है। उपनिषद कहते हैं, पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। अगर हम कृष्ण से हजार कृष्णो को निकालते चले जाय तो भी वह आदमी पीछे शेष रह जायेगा और फिर कृष्णो को निकाल सकता है। उसमे कोई कठिनाई नही पडेगी। उसे कोई अडचन न आयेगी क्योकि वह कुछ भी हो सकता है। महावीर को हम आज पैदा नही कर सकते। आज पैदा करना मुश्किल हो जायेगा। क्योकि महावीर एक सिचुएशन, एक विशेष परिस्थिति मे, एक आयाम मे पूर्ण हुए। वह आयाम उसी स्थिति मे पूर्ण हो सकता है। जीसस को आज पैदा नही किया जा सकता। अगर आज जीसस को हम पैदा करे तो कोई शूली ही नही लगायेगा, पहली बात। वह कितना ही शोर-गुल मचाये, लोग कहेगे, 'निगलेक्ट'। क्योकि पहले ही गलती की शूली लगाकर। आज एक अरब आदमी ईसाई हो गये। अब आज कोई यहूदी शूली नही लगायेगा जीसस को। वह कहेगा झझट में नही पडो इस आदमी की। इसको जो कहना है कहने दो, जो करना है करने दो। क्योकि जिन्दा रहकर वे बहुत थोडे लोगो को उत्सुक कर पाये। मरकर उन्होंने उत्सुकता बहुत पैदा की। जीसस के वक्त मे जिस दिन एक लाख आदमी जीसस को शूली लगाने इकट्ठे हुए, तो सिर्फ आठ दस आदमी ऐसे थे जो उन को प्रेम करने वाले थे एक लाख आदमियो मे। वह आठ दस भी इतने हिम्मतवर नही थे कि अगर उनसे कोई पूछता कि तुम जीसस के साथी हो तो वे कहते कि नही हम जानते ही नही जीसस को। शूली लग जाने के बाद जिसने उनकी लाश नीचे उतारी वह कोई सज्जन या अच्छे घर की महिला नही थी। क्योकि अच्छे घर तक जीसस का प्रभाव पहुचना मुश्किल था। वह एक वेश्या थी। वह हिम्मत जुटा सकी कि अब मेरा और क्या कोई बिगाडेगा। उसने जीसस की लाश को उतारा। आज जीसस को 'निगलेक्ट' किया जा सकता है क्योकि उनके वक्तव्य बडे 'इनोसेंट' थे और अगर 'निगलेक्ट' न किया जाय तो हम उनको पागल समझ सकते है। क्योकि जिन बातो पर झगडा हुआ है वह यह था कि जीसस कहते हैं, मै ईश्वर-पुत्र हू। हम कहेगे, कहने दो, बिगडता क्या है। इसमे हर्ज क्या है? कहो ईश्वर-पुत्र। जीसस को आने के लिए वही 'मोमेंट' चुनना पडा जो था। इसलिए जीसस 'हिस्टारिक' है। इसलिए आप ध्यान रखें कि सिर्फ जीसस को मानने वाले लोगो ने हिस्ट्री पैदा की दुनिया मे। बाकी लोग हिस्ट्री पैदा नही कर सके। इतिहास जीसस से शुरू होता है। इसलिए आकस्मिक नही है कि सन् और सदी जीसस से चलती है। जीसस एक 'हिस्टारिक'

घटना और एक खास 'हिस्टारिक' मोमेंट मे ही हो सकते हैं। कृष्ण की हमने कोई कहानी नहीं लिखी है। कोई पक्का पता नहीं है कि वह आदमी किस तारीख मे हुआ और किस तारीख मे मरा। इसका पता रखना बेकार है। यह किसी भी तारीख को हो सकता है। यह कभी भी हो सकता है। यह किसी भी स्थिति मे काम आ जायेगा। क्योकि कोई झझट ही नही है अपने होने की। इसका अपना कोई आग्रह नही कि मैं ऐसा होऊगा। अगर आपका आग्रह है कि आप ऐसे होगे तो आपको उस विशेष स्थिति की जरूरत पडेगी। किन्तु आपका कोई आग्रह नही ह, आप कहते हैं कि चलेगा। महावीर तो नग्न होने का आग्रह करेगे। कृष्ण जो हैं, वह पतली मोहडी का फुलपैंट भी पहन सकते है। कोई अडचन न आयेगी, बल्कि वह कहेगे कि पहले क्यो नही बनाया। मैं उसी वक्त पहनता। उन्हे कोई युग अडचन नही दे सकता। वे किसी भी युग मे खडे हो जायेंगे और राजी हो जायेंगे। वे उसी युग के हो जायेंगे और उसी युग मे उनका फूल खिल सकता है। इसलिए मै कहता हू कि सभी—महावीर, बुद्ध या जीसस 'हिस्टारिक पर्सनलटीज' है। ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं। इसका मतलब यह नही है कि वह हुए है और कृष्ण नही हुए। हुए तो कृष्ण भी है लेकिन कृष्ण इस अर्थ मे 'हिस्टारिक' नही है, इस अर्थ मे ऐतिहासिक नही है।

कृष्ण पुराण पुरुष हैं, कथा पुरुष है, अभिनेता है। वे कभी भी हो सकते है। उनका चरित्र का कोई मोह नही है। वह विशेष राधा को न मागेंगे। कोई भी राधा कारगर हो सकती है। विशेष समय न मागेंगे, कोई भी समय उनके लिए अर्थपूर्ण हो सकता है। जरूरी नही कि वह बासुरी ही बजाये। किसी भी युग का वाद्य उन्हे काम दे जायेगा। इस अर्थ मे पूर्ण हैं। पूर्ण मे से कितना ही निकाल ले, वह व्यक्ति फिर शेष रह जाता है। वह फिर हो सकता है।



पर्व : दो

अहंकार और निर अहंकारिता
शून्य और बहुआयामिता
बुद्ध पूर्णता के पश्चात्





२

प्रश्न सारी गीता में कृष्ण परम अहंकारी मालूम पड़ते हैं। लेकिन आपने सुबह के प्रवचन मे दर्शाया कि निरहकारी होने से ही कृष्ण कह सके कि 'सब छोड़ कर मेरी शरण मे आ।' मै ही सब कुछ हू—आदि ..! लेकिन बुद्ध और महावीर ऐसा नहीं कहते है। क्या इनकी निरहकारिता भिन्न भिन्न है? उनका मौलिक अन्तर क्या है?

उत्तर : निरहकारिता दो ढग से उपलब्ध हो सकती है। एक तो इस ढग से उपलब्ध हो सकती है कि कोई अपने को मिटाता चला जाय। अपने को

समाप्त करता चला जाय। अपने को काटता चला जाय। और ऐसी घडी आ जाय कि फिर काटने को कुछ न बचे। तो निरहकारिता उपलब्ध होती है। लेकिन यह निरहकारिता 'निगेटिव' है, नकारात्मक है। और इसमे यह अहकार बहुत गहरे मे शेष रह ही जायेगा कि मैने अपने अहकार को काट दिया है।

एक और ढग से भी निरहकारिता उपलब्ध होती है, कि कोई अपने को फैलाता चला जाय और इतना बडा करता चला जाय कि उसके अलावा फिर कुछ शेष ही न रह जाय। वही शेष रह जाय। सब उसमे समा जाय। तब भी निरह-कारिता, 'इगोलेसनेस' उपलब्ध होती है। लेकिन तब पीछे कहने को इतना भी नही रह जाता कि मै निर–अहकारी हो गया हू। जो लोग अहकार को काट कर चलेगे वे लोग अन्तत आत्मा को उपलब्ध होगे। आत्मा का अर्थ होगा, उनका अतिम अहकार शेष रह जायगा कि 'मै हू'। मै की और सारी चीजे नष्ट हो जायेगी, शुद्ध 'मै' ही शेष रह जायेगा। लेकिन जो व्यक्ति अहकार को काटकर चलेगा वह कभी परमात्मा को उपलब्ध नही होगा। जो व्यक्ति अहकार को भी विस्तीण करता चला जायगा, इतना विस्तीर्ण कि सब उसमे समा जाय, उस दिन आत्मा का बोध नही रह जायेगा, परमात्मा का ही बोध रह जायेगा। कृष्ण का जो व्यक्तित्व है वह 'पोजिटिव है', विधायक है। वह निषेधात्मक नही है। वे जीवन मे किसी भी चीज का निषेध नही करते। वे अहकार का भी निषेध करते नही। वे तो कहते है कि अहकार को इतना बडा कर लो कि सभी उसमे समा जाय। तू बचे ही न, तो फिर स्वय को मै कहने का कोई उपाय नही रह जायगा। हम अपने को मै तभी तक कह सकते है जब तक तू बाहर अलग खडा है। तू के विरोध मे ही मै की आवाज है। तू गिर जाय, तू न बचे, तो मै भी बचूगा नही। इसलिए उपनिषद के ऋषि कह सके, 'अह ब्रह्मास्मि'। वह यह कह सके, मै ही ब्रह्म हू। इसका यह मतलब नही कि तू ब्रह्म नही है। इसका मतलब यह कि तू तो है ही कहा, मै ही हू। वह जो हवाओ मे लहरा रहा है वह भी मै हू, वह जो वृक्षो मे लहर खा रहा है वह भी मैं ही हू। वह जो जन्मा है वह भी मै ही हू, जो मरेगा वह भी मै ही हू। वह जो पृथ्वी है वह भी मै ही हू, जो आकाश है वह भी मै ही हू। मेरे अतिरिक्त कोई भी नही है। इसलिए अब मैं के बचने के लिए कोई जगह नही बची। मै किससे कहू कि मै हू। किसके विरोध मे कहू कि मै हू। तो कृष्ण का पूरा का पूरा व्यक्तित्व विराट के साथ फैलाव का है, विस्तार का है। इसलिए कृष्ण कह सकते है मै ब्रह्म हू। इसमे कोई अहकार नही है। यह भाषा का ही मै का प्रयोग है। मै जैसा कोई पीछे बचा नही।

एक दूसरा रास्ता, जो मैंने कहा निषेध का है, नकार का है, इन्कार का है, तोडने का है, त्याग का है। छोडते जाय। धन 'मैं' को मजबूत करता हैं, धन को छोड दे। अमीर का अहकार होता है, लेकिन गरीब का नहीं होता है, इस भूल मे मत पडना। गरीब का भी अहकार होता है पर वह गरीब होता है,' पुअर इगो' होता है। धन का दावा नही कर सकता। गृहस्थी का अहकार होता है, लेकिन सन्यासी का नही होता हैं, ऐसा मत सोचना। सन्यासी का भी अहकार होता है। अगर मैं छोडता चला जाऊ और जिन जिन चीजो से अहकार बढता है, मजबूत होता है, वह सब छोड दू। धन छोड दू, मकान छोड दू, पत्नी छोड दू, बच्चे छोड दू, घर बार छोड दू तो मेरे अहकार को टिकने को कोई जगह न रह जायेगी, कोई खूटी न रह जायेगी जहा मैं अहकार को टाग सकू और कह सकू कि मै धनी हू, कह सकू की मै ज्ञानी हू, कह सकू कि मैं त्यागी हू। ऐसी कोई जगह न रह जायेगी, लेकिन इमसे मैं मिट नही जाऊगा। और जब मेरे मैं को टिकने के लिए कोई खूटी नही रहेगी तो मैं फिर बहुत सूक्ष्म मे मुझसे ही टिका रह जायेगा। फिर आखिर मे मैं ही रह जाऊगा ।

यह जो मैं का सूक्ष्म अनुभव है, यह निषेध से उपलब्ध होगा। बहुत लोग इसमें अटके रह जा सकते हैं, बहुत से लोग अटक कर रह जाते है। क्योकि यह दिखायी भी नही पडता, यह बहुत सूक्ष्म है। धनी का अहकार दिखायी पडता है, त्यागी का कैसे दिखायी पडेगा ? धनी का अहकार क्या है, कि मेरे पास धन है। त्यागी का अहकार क्या है, कि मैंने त्याग किया है। कि मैंने धन छोडा है। गृहस्थी का अहकार दिखायी पडता है, – यह रहा उसका घर, यह रही उसकी सीमा। सन्यासी का अहकार दिखायी नही पडता। लेकिन उसकी भी सीमाए है। वह हिन्दू है, मुसलमान है, ईसाई है, जैन है। उसके भी आश्रय है, उसकी भी सीमाए हैं, उसके भी बन्धन है, वह भी अटका है। लेकिन वह दिखायी नही पडता। यह जो घडी है निषेध की, इसमे कोई अटक सकता है। अगर अटक जाय तो लगेगा बिल्कुल निरहकारी है। क्योकि वह 'मैं' शब्द का भी उपयोग न करेगा। मैं भी छोड देगा। इससे कोई फर्क नही पडता। लेकिन इससे भी पार जाना पडेगा। महावीर और बुद्ध इसके पार तो चले जाते है लेकिन यह पार जाना, उस आखिरी सूक्ष्म 'मैं' के पार जाना उन्हे बहुत ही कठिन पडता है। वही असली तपश्चर्या है। बडी तपश्चर्या की बात हो जाती है क्योकि जो मेरे पास था, जो मेरा था उसको तो छोड दिया। वह गया। अब मै ही बचा हू, अब इसको कैसे छोडूगा ? इसको कसे छोडियेगा ? इसलिए निषेध की प्रक्रिया से अगर हजार लोग चलेंगे तो एक ही आदमी निरहकारिता तक पहुच पाता है। नौ सौ निन्यानवे आदमी सूक्ष्म

मै पर खडे होकर रह जाते हैं। महावीर तो निकल जायेंगे लेकिन महावीर के पीछे चलने वाला सन्यासी अटक जायेगा। अति दुरूह है यह बात। सहारे तोड देना तो बहुत आसान है। जिन सहारो से मेरा मै मजबूत होता है मै उनको गिरा सकता हू, लेकिन फिर मै बच रहूगा, उसको कैसे गिराऊगा ?

तो निषेध से चलने वाले व्यक्ति की जो तकलीफ है वह आखिरी क्षण मे है और विधेय से चलने वाले की जो तकलीफ है वह पहले क्षण मे है। पहले स्टेज पर विधेय से चलनेवाले को बडी कठिनाई आती है कि तू को कैसे इन्कार कर दू। तू है। दिखायी पड रहा है। उसको कैसे इन्कार करू ? कृष्ण की साधना की तकलीफ, पहले चरण पर है। असली तकलीफ वही है, इसके बाद फिर कोई तकलीफ नही होगी। महावीर और बुद्ध की साधना की असली तकलीफ आखिरी चरण पर है। पहले बहुत आसान है मामला। आखिरी क्षण मे, जब कि मै के सब सहारे टूट जायेगे तो शुद्ध मै बच रहेगा। 'प्युरीफाईड इगो' रह जायेगी। उसको कैसे छोडियेगा ? उसको छोडने का क्या करियेगा ?

पहले चरण पर जो करना पडेगा विधायक साधक को, वही अंतिम चरण पर निषेध के साधक को करना पडेगा। पहले चरण पर विधेय का साधक क्या करेगा ? वह तू मे भी मै को खोजने की कोशिश करेगा। निषेध का साधक अंतिम चरण पर क्या करेगा ? वह मै मे तू को खोजने की कोशिश करेगा। लेकिन तू मे मै को देखना बहुत आसान है मै मे तू को देखना बहुत कठिन है। और शुद्ध मै मे तो और कठिन हो जाता है क्योकि बहुत सूक्ष्म मै का भाव बचता है। वह इतना बारीक हो जाता है कि उसमे तू को कहा समाये ? बुद्ध और महावीर की कठिनाई आती है आखिरी चरण मे, इसलिए बुद्ध या महावीर की साधना मे आखिरी चरण के पहले से भी गिरना सभव है। आखिरी कदम के पहले भी कोई लौट सकता है, रुक सकता है, डिग सकता है। जब पूरी जिन्दगी इस मै को बचाया, पूरी साधना मे बचाया तो आखिरी क्षण मे एकदम से छोडना बहुत मुश्किल हो जायेगा। छोडा जा सकता है। एक ही रास्ता है कि इस मै के बिन्दु मे तू दिखायी पड जाय। इसलिए महावीर या बुद्ध की जो आखिरी साधना की कडी है उसका नाम है "केवल ज्ञान"। ज्ञानी न रह जाय सिर्फ ज्ञान रह जाय। जानने वाला न रह जाय, सिर्फ जानना रह जाय। उस जानने मे झलक मिल सकती है एकता की। आखिरी मुक्ति, मै से मुक्ति है। मै को मुक्त नही होना है, मै से मुक्त होना है। लेकिन जो अनुयायी है उसको कठिनाई हो जाती है। वह यही पूछता रहता है कि मुझे मोक्ष कैसे होगा ? असल मे 'मुझे' कभी मोक्ष

हुआ ही नही । जब भी मोक्ष हुआ है तो मुझसे हुआ है । इसलिए महावीर की साधना-परम्परा मे जो लोग पीछे आयेंगे उनके अहकार के पोषण की बडी सुविधा है । महावीर की साधना मे चलने वाला साधक अति अहकारी हो जाय तो आश्चर्य नही । त्याग, तपश्चर्या, अहकार को मजबूत करते चले जाते है । मै कठोर होता जायेगा, सख्त होता जायेगा । आखिर मे सब छूट जायेगा और एक मै की गाठ बच जायेगी । उसको तोडना बहुत मुश्किल पडेगा । वह टूट सकती है, टूटी है । महावीर की टूटी है । उस क्षण के अलग प्रयोग है कि वह मै की गाठ कैसे छूट जाय ।

कृष्ण की साधना मे, कृष्ण के व्यक्तित्व मे, मै की गाठ को पहले ही तोड देना है । जिस बीमारी को आखिर मे गिराना पडे उसे इतनी देर तक ढोना भी उचित नही है । इतनी देर मे वह सक्रामक भी बनेगी । उसे पहले ही तोड देना । इसलिए जिसको महावीर 'केवल ज्ञान' कहेगे वह अतिम घडी मे आयेगा, जिसको कृष्ण साक्षी भाव कहेगे वह पहली ही घडी मे आ जायगा । इस सत्य को जानना है कि मै अलग नही हू । लेकिन अगर मै अलग नही हू तो फिर त्याग बेमानी हो जायेगा । छोडेगे किसको, मै ही हू । छोडेगा कौन ? जिसे छोडकर जा रहा हू वह भी मै ही हू । भागूगा कहा से, जहा से भाग रहा हू वह भी मै ही हू । भागूगा कहा ? जहा भागना है वह भी मैं ही हू ।

रवीन्द्रनाथ ने एक बहुत गहरा मजाक यशोधरा से करवाया है बुद्ध के प्रति । बुद्ध जब ज्ञान लेकर वापस लौटे है तो यशोधरा उनसे पूछती है, मुझे सिर्फ एक ही सवाल पूछना था, तुम आ गये हो तो मै पूछ ही लू । तुमसे यह पूछना चाहती हू कि जो तुमने जगल जाकर पाया, वह क्या इस घर मे मौजूद नही था ? बुद्ध बडी मुश्किल मे पड गये है । क्योकि जिस रात छोडकर गये थे उसे बिना बताये ही जाना पडा था। अगर बुद्ध यह कहे कि वह यहा भी था जो जगल मे था तो यशोधरा कहेगी, पागलपन किया इतने दिन ! जो यही था उसे खोजने वहा गये ! अगर वह यह कहे कि वह यहा नही था, जगल मे ही था तो गलत होगा । क्योकि बुद्ध अब जानते है कि वह यहा भी है जो जगल मे मिला है । कृष्ण कही छोडकर नही जा रहे है । बुद्ध को जो आखिरी घडी मे दिखायी पडता है वह कृष्ण को पहली घडी से ही दिखायी पड रहा है, बुद्ध जो आखिरी क्षण मे जान पाते है, वही है सब जगह । कृष्ण पहले ही जान रहे हैं कि वही है सब जगह ।

मैने एक फकीर के सम्बन्ध मे सुना है कि वह एक गाव के किनारे पडा रहा जीवन भर । जब भी कोई उससे पूछता कि तुम साधना नही कर रहे हो तो वह कहता, किसे साधू ? जिसे साधूगा वह साधा ही हुआ है। कोई उससे पूछता,

तुम कही जाते दिखायी नही पडते, वह कहता, मै कहा जाऊ ? जहा पहुचना था, वहा मै पहुचा ही हुआ हू। कोई उससे पूछता, तुम्हे कुछ पाना नही है, तो वह कहता, जिसे पाना है वह सदा से प्राप्त है। यह फकीर क्या साधना करेगा ?

इसलिए कृष्ण की साधना विकसित नही हो पायी। कृष्ण का साधक कही भी न मिलेगा जो साधना कर रहा है। साधना किसकी करनी है ? साधना उसकी की जा सकती है जो नही मिला है और मिल सकेगा। साधना उसकी की जा सकती है जो नही पाया है, और पाया जा सकता है। साधना सभावना की है। साधना उपलब्ध की कभी नही होती। जो है ही, उसको कैसे पाइयेगा ? बुद्ध को भी जब आखिरी क्षण मे ज्ञान हुआ और किसी ने पूछा कि आपको क्या मिला हमे बताये ? बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नही। जो मिला ही हुआ था, उसका पता भर चला है। जो था ही मेरे पास, लेकिन मुझे पता नही था। अब मैने जाना कि यह तो मेरे पास ही था।

मिला कुछ भी नही है, जो था ही मात्र उसका पता चला है। जब नही था पता, तब भी वह इतना ही था, कमी कुछ भी नही थी। लेकिन बुद्ध ने यह आखिरी क्षण मे कहा। कृष्ण यही पहले क्षण मे कहेगे। कृष्ण कहेगे कहा जा रहे हो ? क्योकि जहा जाना चाहते हो वहा तो तुम खडे हो। जिसे तुम मजिल कह रहे हो वह तो तुम्हारा मुकाम ही है। किस तरफ दौड रहे हो ? क्योकि जहा तुम दौडकर पहुचोगे वहा तो तुम पहुचे ही हुए हो। इसलिए बुद्ध और महावीर के जीवन मे साधना का काल है, फिर सिद्धि की अवस्था है। कृष्ण सदा ही सिद्ध है, उनके जीवन मे साधना का कोई काल नही है। कृष्ण ने कब साधा सत्य को, पता है ? कौन सा ध्यान किया ? कौन सा योग किया, किस जगल मे गये ? कौन सी तपश्चर्या की, कौन से उपवास किये ? कौन से आसन, कौन से व्यायाम किये ? कृष्ण के जीवन मे साधना जैसी कोई चीज ही दिखायी नही पडती। साधना है ही नही।

बुद्ध और महावीर आखिरी क्षण मे सिद्ध होते है। कृष्ण जैसे सिद्ध है ही तब साधना कैसी, साधना किसकी ? ये बुनियादी फर्क है। कृष्ण को जो दिखायी पड रहा है उसमे अहकार का कोई उपाय नही है क्योकि तू है ही नही कही। कबीर की बात सुबह कर रहा था। कबीर ने एक दिन अपने बेटे को जगल मे भेजा है घास काट लाने को। जैसे यहा पौधे हवा मे नाच रहे थे ऐसे ही जगल मे नाच रहे थे। हसिया लेकर वह घास काट रहा है। सुबह से साझ होने लगी है पर वह नही लौट रहा है। सबने कहा, कुछ पता लगाओ, घास काटने मे इतनी देर की कोई जरूरत न थी, दोपहर तक आ जाना था। अब तो साझ भी हो गयी, अन्धेरा घिर

आयेगा थोडी देर मे। तो कबीर के साथ सारे लोग खोजने निकले हैं कि वह कहां गया है ? देखा जाकर तो गले गले वह घास मे खडा है। खडा कहना गलत है। हवाएं नाच रही हैं, वह भी नाच रहा है। जैसे वृक्ष नाच रहे है, पौधे नाच रहे है, घास के पत्ते नाच रहे हैं, वैसे वह भी नाच रहा है। उसे हिलाया, उसने आख खोली। उन सबने कहा, तुम यह क्या कर रहे हो ? घास काटी नही ? उसने कहा, ठीक याद दिलाया। हंसिया उठाया। उन लोगो ने कहा, अब तो सांझ हो गयी, वापस चले। लेकिन तुम दिन भर कर क्या रहे थे ? उस लडके ने कहा, मै घास हो गया। मै भूल ही गया कि मै भी हू। मैं भूल ही गया कि कोई घास है और उसको काटना है। इतनी आनन्द की थी सुबह, सब इतना नाचता हुआ था कि मैं नाचने लगा। फिर तो मुझे याद ही न रहा कि कौन घास है और कौन कमाल है, जो काटने आया? यह तो आप आये तो आपने मुझे ख्याल दिला दिया।

कृष्ण भी इतना नाचने मे मग्न हो गये इस जगत मे। कबीर का बेटा तो घास के साथ नाचा, कृष्ण पूरे जगत के साथ नाचे। इसके चाद-तारो के साथ नाचे, इसके स्त्री-पुरुषो के साथ नाचे, इसके फूलो के साथ नाचे, इसके कांटो के साथ नाचे। वह इस जगत के साथ नाचने मे ऐसे लीन हो गये कि कौन है मैं, कौन है तू, इसकी कोई जगह न रही। उन्हे जो निरहकार उपलब्ध हुआ वह महावीर और बुद्ध को अत्यन तपश्चर्या और लबी यात्रा के अतिम पडाव पर उपलब्ध होता है। वे बहुत दौड कर उस जगह आते है जहा से कृष्ण कभी दौडे ही नही। वे बहुत यात्रा करके उस जगह का पता लगा पाते है जहा से उन्होने यात्रा शुरू की थी।

इसलिए कृष्ण साधक नही है। कृष्ण को साधक कहना ही मुश्किल है। और इस सिद्ध अवस्था मे, इस चित्त की दशा मे जो भी उन्होने कहा उसमे हमे अहकार दिखायी पड सकता है। क्योकि वह मैं का शब्द जो हम उपयोग करते हैं वह वे भी कर रहे हैं। लेकिन हमारे और उनके मै की अभिव्यक्ति और अर्थ मे बडा फर्क है। जब हम कहते है 'मैं' तो मतलब होता है इस शरीर के भीतर जो कैद है वह। और जब कृष्ण कहते हैं 'मैं' तो वह कहते हैं, जो सब जगह फैला है वह। इसलिए हिम्मत से कह सकते है अर्जुन को कि सब छोड मेरी शरण मे आ जा। यह अगर शरीर के भीतर घिरा हुआ मैं होता तो इतनी हिम्मत से नही कही जा सकती थी बात। और अगर यह शरीर के भीतर बन्द मैं होता तो अर्जुन भी कहता कि आप कैसी बात कह रहे है ? मै आपकी शरण मे क्यो आऊ ? फिर तो अर्जुन के मै को भी चोट लगती, क्योकि जब भी एक तरफ से मै बोलता है तो दूसरी तरफ के मै मे प्रतिध्वनि पैदा होती है। अगर आप मैं की भाषा बोलते हैं तो दूसरा आदमी

तत्काल मैं की भाषा बोलना शुरू कर देता है। 'मैं' एक दूसरे की बात बडे ढग से पहचानते है और तत्काल प्रतिक्रिया मे सन्नद्ध हो जाते है। लेकिन कृष्ण कह सके कि तू मेरी शरण मे आ । क्योकि इस मेरी शरण का अर्थ है समस्त की शरण। इसका अर्थ है यह सब फैला हुआ है, इसकी शरण मे चला जा, तू अपने को छोड ।

निर–अहकार महावीर और बुद्ध को आता है लबी यात्रा के बाद। किन्तु महावीर और बुद्ध की यात्रा पर चलने वाले बहुत साधको को कभी नही आयेगा। क्योकि वह आखिरी बात है जो वह कर पायें, शायद न भी कर पायें। लेकिन कृष्ण की धारा मे जो बहेगा उसके लिए तो पहली ही बात होगी। न कर पाये तो उस धारा मे बह ही नही सकते। महावीर के साथ बहुत दूर तक चल सकते है अपने मैं को बचाकर। कृष्ण के साथ तो पहले कदम पर ही नही चल सकते। चलना ही है तो मैं छोडकर ही चलना होगा नही तो चल ही न पायेगे। वहा तो पहले ही क्षण मे यह जानना, 'द फर्स्ट इज द लास्ट'—कृष्ण के लिए। महावीर और बुद्ध के लिए 'द लास्ट इज द फर्स्ट'। वह जो आखिरी है वह पहला है। और कृष्ण के लिए जो पहला है वही आखिरी है। यही बहुत बुनियादी फर्क है। यह ख्याल मे आ जाय तो सारी स्थिति और होगी।

कृष्ण के साथ साधना क्या करियेगा ? नाच सकते है, गीत गा सकते है, डूब सकते है। साधना क्या करियेगा ? या फिर इसको ही साधना कहे तो बात और है। इसलिए कृष्ण किसी से और कोई अपेक्षा नही करते। जब पहला ही चरण निर–अहकारिता का है तब और अपेक्षा नही की जा सकती। महावीर और बुद्ध के पास जाकर आप कहेगे कि अहकारी हू, मैं क्या करू, तो वह आपको रास्ता बता सकते है। वह कहेगे, पहले यह छोडो, पहले यह छोडो, अहकार को पीछे देख लेगे। कृष्ण के पास जाकर आप कहे कि मैं अहकारी हू तो वह कहेगे कि कोई रास्ता ही नही रहा। क्योकि अहकार ही जाय, वही तो शुरुआत है। इसलिए कृष्ण कोई साधको का सघ नही बना सके। बहुत मुश्किल हो गयी बात। साधक तो यही कहेगा, अहकार तो छूटता नही, धन छोड सकता हू। कृष्ण कहेगे, धन छोडने से क्या होगा ? धन छोडकर भी बीमारी तो वही रहेगी।

जैसे एक आदमी आया, वह कहता है कैंसर है मुझे। कैंसर तो नही छोड सकता, सिर घुटवा सकता हू। तो घुटवा ले, इससे कोई अन्तर, इससे कोई सगति नही। कैंसर अपनी जगह रहेगा। सिर घुटवाने के बाद फिर कैंसर को ही ठीक करना पडेगा। वह आदमी कहता है, मैं कपडे भी छोड सकता हू। कृष्ण कहेगे, कपडे

छोडने से कुछ लेना-देना नही । लेकिन महावीर कहेंगे, ठीक है, फिलहाल सिर घुटवाओ — फिलहाल जो भी तुम कर सकते हो करो। महावीर और बुद्ध उसको लौटा नही देंगे। महावीर और बुद्ध के द्वार पर सभी का प्रवेश हो जायेगा। वह सभी के लिए तैयार है कि ठीक है, जो तुम कर सकते हो करो, आखिरी बात आखिर मे देखेंगे। लेकिन कृष्ण कहते हैं, आखिरी बात करो तो ही मेरे मकान मे प्रवेश है। इसलिए कृष्ण का मकान करीब करीब खाली रह गया। उसमे प्रवेश बहुत मुश्किल हुआ। महावीर के साथ पचास हजार सन्यासी चलते थे। सभव था यह। कृष्ण के साथ मुश्किल है। पचास हजार निरहकारी आदमी पहले दिन कैसे खोजियेगा ? महावीर और बुद्ध को अगर हम ठीक से कहे तो 'ग्रेजुअल एन्लाइटनमेट' की बात है वहा — क्रमिक है। क्रम की बात हमे समझ मे आती है। एक रुपये से दो रुपये हो सकते है, तीन रुपये हो सकते है, चार रुपये हो सकते है, हमारी समझ मे आ सकता है। लेकिन गरीब एकदम अमीर हो सकता है, यह हमारी समझ मे नही आता। कृष्ण जो बात कर रहे है, वह 'सडन एन्लाइटनमेट' की है। वह कहते है, नाहक इतनी परेशानी क्यो करते हो ? एक रुपया है तब भी तुम गरीब हो, एक रुपया वाले गरीब हो। दो रुपये है तब भी तुम गरीब हो, दो रुपये वाले गरीब हो। तीन रुपये है तब भी तुम गरीब हो, तीन रुपये वाले गरीब हो। करोड है तो भी तुम गरीब हो, करोड रुपये वाले गरीब हो। कृष्ण कहते है, हम तुम्हे सम्राट बनाते है। रुपये का तुम हिसाब किताब छोडो। एक रुपये से भी छूट सकता है, दो से भी छूट सकता है, तीन से भी छूट सकता है, करोड से भी छूट सकता है। हम तुम्हे सम्राट ही बनाये देते है। बनाये क्या देते है, हम तुम्हे याद दिलाना चाहते है, तुम सम्राट हो। इसलिए महावीर और बुद्ध की पद्धति साधना है, कृष्ण की पद्धति सिर्फ 'रिमेम्बरिंग' है, स्मरण है। स्मरण करो कि तुम कौन हो, बस मामला पूरा हुआ जाता है। 'जस्ट रिमेम्बर'।

एक कहानी मैने सुनी है, वह मै आपसे कहू। मैने सुना है, एक सम्राट ने अपने बेटे को निकाल बाहर किया। नाराज था। एक ही बेटा था। वह बेटा कुछ भी न जानता था। सम्राट के बेटे क्या जान सकते है ? न वह पढा-लिखा था, वह कुछ भी नही कर सकता था। हा, कभी शौक मे कुछ गीत गाना और नाचना सीखा था। तो सडको पर नाच नाच कर भीख मागने लगा। बाप ने उसको देश निकाले की आज्ञा दी थी। देश छोड देना पडा था उसे। फिर बाप बूढा हुआ। इस बात को बरसो बीत गये। वह लडका भूल ही गया था कि मै सम्राट हू। दस साल जो भीख मागे, उसको याद भी कैसे रहे कि वह सम्राट है। था तो वह सम्राट ही। और दस साल जब उसने भीख मागी थी तो रोज सम्राट होने का ज्यादा अधिकारी होता

चला गया था, क्योंकि उसका बाप बूढा होता चला गया था। एक ही बेटा था बाप का। उस के जूते फट गये है, धूप है तेज, और एक रेगिस्तानी मुल्क मे भटक रहा है। एक साधारण से होटल के सामने भीख माग रहा है, लोगो के सामने बर्तन फैला रहा है, कह रहा है–कुछ पैसे दे दें क्योकि जूते की जरूरत है। धूप बढती जाती है। पैर पर फफोले पड गये है। उधर सम्राट ने अपने वजीरो को खोजने भेजा कि उस बेटे को वापस लौटा लाओ। क्योकि अब राज्य कौन सम्हालेगा ? किसी के न सम्हालने से बेहतर है कि वह जो नासमझ है वही सम्हाले। सम्राट के वजीर उसे खोजने गये, बडी मुश्किल से सम्राट का प्रधान वजीर उस गाव मे पहुच गया जहा वह भीख माग रहा था। अपना टूटा हुआ टीन का बर्तन बजा रहा था और कह रहा था, कुछ पैसे मिल जाय तो मै जूते खरीद लू। रथ रुका, वजीर नीचे उतरा। चेहरा पहचाना हुआ था। कपडे वही थे जो दस साल पहले पहने निकला था। फट गये थे, चीथडे हो गये थे। नगे पैर था, चेहरा सावला और काला पड गया था। वजीर ने उसके पैर छुये और कहा कि पिता ने आपको क्षमा कर दिया है और वापस बुलाया है। एक क्षण – एक क्षण का भी हजारवा हिस्सा और वह जो हाथ मे टीन का टुकडा था वह फिक गया। उस युवक की आखे एकदम बदल गयी। वह भिखारी नही रहा। सम्राट हो गया। उसने वजीर से कहा, जाओ शीघ्र, जूते खरीदो, कपडे लाओ, स्नान का इन्तजाम करो। वह रथ पर बैठ गया। वह जिनसे भीख मागता था वह सब भीड लगाकर खडे हो गये। उन्होने देखा, वह आदमी दूसरा हो गया। उनकी तरफ देख भी नही रहा। वह उनको पहचानता भी नही। उन्होने कहा, अरे हमे भूल गये। उसने कहा, तुम्हे तभी तक याद रख सकता था जब तक अपने को भूले हुए था। अपनी याद आ गयी। अब भूल जाओ उस आदमी को जो भीख मागता था।

कृष्ण की प्रक्रिया इतनी ही है, वह आदमी को सिर्फ इतनी याद दिलाने की बात है कि तुम कौन हो ? यह साधने की बात नही है। स्मरण की है। और इस याद के साथ एक क्षण मे सब बदल जाता है। ककड, ठीकरा बाहर फिक जाता है। जिनसे हम भीख माग रहे थे, अचानक हाथ खीच लेते है। हम खुद ही सम्राट हो जाते है। लेकिन यह सम्राट होना 'सडन' है। और ध्यान रहे, सम्राट आदमी सडन ही होता है। भिखारी ग्रेजुअल होता है। सम्राट होने के लिए भी कोई सीढिया हो तो आखिरी सीढी पर खडे होकर आप थोडे अच्छे ढग के भिखारी ही होगे। पैसे वाले भिखारी होगे, और कोई खास फर्क नही पडने वाला है। लेकिन भीख जारी रहेगी। और एक दिन आपको छलाग लगानी पडेगी। जहा आप ग्रेजुअली चढ चढ कर पहुचे वहा से कूद जाना पडेगा। यही घडी महावीर और

बुद्ध की साधना मे आखिरी क्षण आती है जिस दिन छलाग लगानी पडती है, और कृष्ण के मामले मे पहले ही आ जाती है। कहते हैं, छलाग लगाओ, आगे फिर दूसरी बात है। फिर दूसरी बात तो करने की कोई जरूरत नही होती। छलाग लगाने की बात है। गीता मे पूरे वक्त वह अर्जुन को कुछ खास नही समझा रहे हैं। सिर्फ याद दिला रहे हैं कि तू कौन है। वह कोई उपदेश नही दे रहे। वह सिर्फ चोटे दे रहे है कि तू कौन है। वह किसी को समझा नही रहे, किसी को जगा रहे हैं। वह सिर्फ हिला रहे है, झकझोर रहे है कि तू उठकर देख कि तू कौन है। तू भी कहा की छोटी छोटी बातो मे पडा है कि यह मर जायगा, वह मर जायगा। तू जागकर देख, कोई कभी मरा ही नही। मगर वह नीद में है और अपने सपने मे है। वह यही पूछे जा रहा है कि यह मेरा भाई है, यह मेरा रिश्तेदार है, ये मेरे गुरु है। इनको मै कैसे मारू ? वह सपने मे ही है। कृष्ण उसको समझा नही रहे है, उसको धक्के दे रहे है। तू नीद खोल, जरा आख खोल कर देख, क्या सपना देख रहा है ? या तो सभी सबके है या कोई किसी का नही है। दोनो हालत मे मतलब एक है। या तो सभी लोग मर ही जाते है, तब मारने न मारने से फर्क नही पडता, या मरते ही नही है। तब भी मारने न मारने से कोई फर्क नही पडता।

कृष्ण की जीवन चिन्तना स्मरण की है। इसलिए साधना नही है वहा। वह सीधे सिद्ध होने मे छलाग है। हम उतनी हिम्मत नही जुटा पाते है इसलिए कहते है, यह अपना काम नही। हम तो कही जाय, जहा धीरे धीरे एक एक कदम हम चलेगे। लेकिन हर कदम पर आप अपने को बचाते हुए चलेगे। ध्यान रखना, इसीलिए तो छलाग नही लगाते। छलाग लगाने मे बचने का खतरा है। बच नही सकते। बचने मे खतरा है। आप कहते है, हम तो एक एक कदम चलेगे जिसमे अपने को बचाकर चले। लेकिन जिसको आप बचा रहे है वह आखिरी कदम मे भी बचा रहेगा। वह फिर भी कहेगा, अपने को बचाकर किसी तरह निकल सकते हो तो निकल जाओ। अपने को बचाकर कोई मोक्ष मे प्रवेश नही कर सकता। अपने को खोकर ही प्रवेश कर सकता है। आखिरी क्षण मे वही दिक्कत आयेगी। और मै मानता हू, जो दिक्कत आखिरी क्षण मे आनी हो, वह पहले क्षण में ही आ जाय क्योकि इतना समय क्यो व्यय करना है, इतना समय क्यो व्यर्थ खोना है। आखिरी क्षण मे महावीर और बुद्ध को जो घटित होता है वह स्मरण है, वह साधना का फल नहीं है। लेकिन हमने साधना देखी। एक आदमी गाव मे बीस चक्कर लगाता है, फिर उसे स्मरण आता है कि मै कौन हू। एक आदमी एक भी चक्कर नही लगाता है और उसे स्मरण आता है, मै कौन हू। लेकिन हम जो देखने वाले हैं, हम कहेगे, इस आदमी को बीस चक्कर लगाने से

स्मरण आया। अगर हम भी बीस चक्कर लगायें तो हमे भी स्मरण आ सकता है। बीस चक्कर लगाने से कोई 'काज-एफेक्ट' का सम्बन्ध नही है। यह बात जरा आपको ठीक से समझ लेनी चाहिए।

महावीर ने क्या किया ? और महावीर को क्या हुआ ? इसमे कोई 'काजल लिंक' नही है। इसमे कोई कार्य-कारण का सम्बन्ध नही है कि महावीर ने ऐसा किया इसलिए ऐसा हुआ। अगर ऐसा है तो फिर जीसस को नही हो सकेगा, क्योकि जीसस ने वह कुछ भी नही किया जो महावीर ने किया। फिर बुद्ध को नही हो सकेगा, क्योकि बुद्ध ने वह कुछ भी नही किया जो महावीर ने किया। अगर सौ डिग्री पानी गर्म होने से ही भाप बनता है तो तिब्बत मे बनाया जाय, हिन्दुस्तान मे बनाया जाय, चीन मे बनाया जाय, अमरीका मे बनाया जाय, वह सौ डिग्री पर ही भाप बनेगा। उसको सौ डिग्री पर भाप बनना काजल है। उसमे कार्य-कारण है। आध्यात्मिक जीवन काजल नही है, उसमे कार्य-कारण नही है। इसीलिए तो आध्यात्मिक जीवन मुक्त हो सकता है। कार्य-कारण की श्रृखला मे मुक्ति कभी भी नही हो सकती। कार्य-कारण का मतलब ही बन्धन है। हर चीज पिछली चीज से बधी है। और जो चीज से पिछली चीज बधी है वह अगली चीज से बधी होगी। उसमे एक 'चेन सीरीज' है। सब चीजे बधी है। अगर पानी भाप बनेगा तो अभी तक पानी के नियमो से बधा था, अब भाप के नियमो से बध जायेगा। अगर पानी बर्फ बन जायेगा तो अभी तक पानी के नियमो से बधा था, अब बर्फ के नियमो से बध जायेगा। आगे पीछे दोनो तरफ बन्धन होगे। जिसको मुक्ति कहते है, वह 'नान काजल' है। उसके पीछे कोई कारण नही है कि जिस कारण से फला आदमी मुक्त हुआ। किस कारण से मुक्त हुआ ? क्योकि इसने इतना उपवास किया इसलिए मुक्त हुआ, तो कोई भी आदमी उतना उपवास करे तो मुक्त होना चाहिए, लेकिन यह नही होता। सौ डिग्री पर कोई भी पानी गरम होता है। भाप बनता है। लेकिन कोई भी आदमी उपवास करे तो मुक्त नही होता। महावीर करते है तो होते है। कोई भी आदमी नग्न खडा हो जाय तो मुक्त हो जाय, नही होता। बहुत लोग ऐसे ही नग्न है, कपडे ही नही है। लेकिन महावीर खडे हो जाते है और मुक्त हो जाते है। तो क्या नग्नता से मुक्ति का कोई 'काजल रिलेशनशिप' है, कोई कार्य-कारण सम्बन्ध है ? अगर सम्बन्ध है तो फिर सबको करना ही पडेगा। नही, सम्बन्ध नही है। असल मे मुक्ति का अर्थ ही कार्य-कारण की श्रृखला के बाहर हो जाना है। वह जो कार्य-कारण की श्रृखला है कि ऐसा करने से ऐसा होता है, ऐसा न करने से ऐसा नही होता इस सबके बाहर हो जाना ही मुक्ति का अर्थ है। असल मे कार्य-कारण की सीमा

मे जो बधा है उसी का नाम पदार्थ है, और कार्य कारण की सीमा के जो बाहर है उसी का नाम परमात्मा है। लेकिन किस जगह इसके बाहर होगे आप ? हम प्रत्येक घडी को कार्य-कारण से जोडते है । अभी मैं एक कहानी कह रहा था

एक आदमी एक ट्रेन में सवार हुआ है पहली दफा। उसके गांव के लोगो ने उसकी जन्म जयन्ती मनायी। पचहत्तर साल का हो गया है, बूढा है। और गांव गरीब है। उसको क्या भेंट दे ? तो उन्होने सोचा कि हमारे गाव मे कभी कोई ट्रेन पर सवार नही हुआ जब से पहली दफा ट्रेन चली, तो हम सब गाव के लोग चन्दा इकट्ठा करके इसको ट्रेन पर भेज दे। तो उसको ट्रेन से भेजा। साथ मे एक मित्र और ट्रेन पर गया। वह दोनो सवार हुए। पहली दफा गाडी मे बैठे। बडे आनदित है और तभी गाडी मे चीजे बिकने आ गयी। गाववालो ने पाकेट खर्च भी उसको दिया था कि कुछ खर्च भी करना, आते जाते आनन्द लेना। एक आदमी सोडा बेच रहा था। उन्होने कहा, पता नही क्या खतरनाक चीज है लेकिन पहले कोई पीता हो तो अपन देख ले। एक आदमी ने लेकर पिया तो उन्होने कहा, ठीक है, पिया जा सकता है। पर उन्होंने कहा एक ही ले पहले। आधा तुम पी लो, आधा मैं पी लू क्योकि जचे भी, न जचे। उन्होने एक सोडे की बोतल ली। एक आदमी ने आधी बोतल पी। पहली दफे पी थी और जैसे ही उसने बोतल पी वैसे ही ट्रेन एक 'टनेल' मे, एक बोगदे मे प्रवेश कर गयी। वह आधी बोतल के आगे पीता चला गया तो दूसरे ने उसे रोका। उसने कहा, तुम आधे के आगे जा रहे हो। उसने बोतल नीचे की, आख खोली घनघोर अन्धेरा था। उसने दूसरे आदमी से कहा, 'डोन्ट टच दिस स्टफ, आइ हैव बीन स्टफ ब्लाइन्ड'। इसको छूना ही मत। मै अन्धा हो गया हू। भूल के मत पीना, अब जो मेरे साथ हो गया, हो गया।

स्वभावत वह जो अन्धेरा घटित हुआ था वह उसे 'काजल लिंक' मे ही सोच सकता है। सोडा पीने से आखें एकदम अन्धी हो गयी। हम जिन्दगी मे इसी भाषा मे सोचते हैं। इससे बडी भ्रातिया पैदा होती है। मुक्ति का जो अनुभव है वह 'बियोन्ड काजल लिंक' है, वह हमारे सब कार्य-कारण के बाहर है। बुद्ध ने जो किया है, उसके कारण वह उपलब्ध नही हुए, उसके करने के बावजूद उपलब्ध हुए, 'इन्सपाइट आफ दैट'। महावीर ने जो किया है उसके कारण उपलब्ध नही हुए, उसको करने के बावजूद उपलब्ध हुए। इसलिए अगर कोई महावीर की पूरी नकल भी कर ले तो उपलब्ध नही होगा। पूरी नकल कर ले, टोटल, कि उसमे सौ परसेन्ट आकडे देने पडे कि अब इसमे कोई कमी नही रह गयी, फिर भी नही होगा। इसका कोई सम्बन्ध नही है। मुक्ति 'एक्सप्लोजन' है। एक विस्फोट है कार्य-कारण की श्रृखला के बाहर। कृष्ण कहते हैं कि अगर यह ख्याल मे आ जाय

तो वह अभी हो सकता है । पात्र अपात्र का सवाल नही, सभी पात्र हैं । साधना का उतना सवाल नही लेकिन कुछ लोग थोडा चक्कर खायेंगे । उनको अगर अपने घर भी आना हो तो वह पूरी बस्ती मे घूमे बिना नही आ सकते । उनके लिए जरूरी होगा कि वह पूरा गाव घूम आये । कुछ लोग, अपने पास भी उनको आना है, 'वाया दी अदर', वह दूसरे के बिना अपने पास भी नही आ सकते । उनका रास्ता ही वह है । फिर हमारे अपने अपने चक्कर हैं । वह चक्कर हम पूरा करेगे । लेकिन कृपा करके अपना ही चक्कर पूरा करे, तब भी ठीक है । दूसरे ने जो चक्कर पूरा किया है उसको करने निकल जाते है आप तब बहुत मुश्किल मे पड जायेगे । वह आपका चक्कर ही नही है । कोई दूसरा उस चक्कर से अपने तक आया था । लेकिन आप वह नही हैं, आप दूसरे आदमी है, आप उस चक्कर स नही आ सकते हैं अपने तक ।

पहली बार, जब उपनिषद पश्चिमी भाषाओ मे अनुवादित हुए तो वहा जिन लोगो ने पढा, उनको पहली जो तकलीफ हुई वह यह थी कि इनमे तो कोई साधना बतायी नही है कि क्या करना, क्या नही करना । क्या खाना, क्या नही खाना । क्या पहनना, क्या नही पहनना । क्या बुरा है, क्या भला है, यह सब उसमे कुछ बताया हुआ नही है । किस तरह के धर्मग्रन्थ है ? क्योंकि बाइबिल मे सब बहुत साफ है । क्या करो, क्या न करो, यह बहुत साफ है । जाहिर है–यह करना है और यह नही करना है । यह तो धर्मग्रन्थ है । यह उपनिषद किस तरह का धर्मग्रन्थ है ! जिसमे कोई चर्चा ही नही । जिसमे कोई साधना की प्रक्रिया नही, आचरण की कोई व्यवस्था नही । कठिन है समझना, कि बाइबिल मे जो उपदेश है, धर्म से उसका कोई लेना-देना नही । वह नैतिक है । लेकिन नीति को धम समझ लिया जाता है । उपनिषद ठीक अर्थों मे धर्म है । वहा नीति से कोई लेना देना नही है । वह सिर्फ रिमेम्बरिंग की बात है । वे यह कह रहे है कि तुम स्मरण करो, जिसे तुम भूल गये हो, जो तुम हो, जो तुम इसी वक्त हो, इसे स्मरण करो । इसे कही पाने नही जाना है, अभी और यही, हो ही तुम । सिर्फ स्मरण करो । यह सिर्फ विस्मृति है ।

कृष्ण की दृष्टि मे, जो हमे पाना है वह सिर्फ विस्मृत हुआ है । खोया नही है । जो हमे पाना है वह हम भूल गये हैं । बस, इससे ज्यादा नही है । वह हमें याद नही रहा है । इसलिए पहले ही चरण मे उसको याद करो और कूद जाओ । इस लिए जो साधनाए, जो नैतिकताए, जो व्यवस्थाए धर्म देगा, वह कृष्ण नही दे रहे है। कृष्ण का अहकार पहले ही क्षण मे नही है। और जो आदमी भी आख खोलकर

देखेगा उसका अहंकार नही रह जायेगा। आंख बन्द करके हम जीते हैं इसलिए अहकार रह जाता है। आप कहेंगे, कृष्ण को हुआ, मुझे क्यो नही होता है? आप आख बन्द करके जीते हैं। आपने कभी अपने जन्म के सम्बन्ध मे सोचा है कि किसने आपको पैदा किया? आपने पैदा किया? कम से कम इतना तो तय है कि आपने पैदा नही किया। और कुछ तय न हो कि किसने आपको पैदा किया, इतना तय है कि आपने पैदा नही किया। आप जैसे हैं, ऐसा आपको आपने नही बनाया, इतना तो तय है। लेकिन हमे भी वहम पैदा हो जाता है। हमारे बीच मे भी कई 'सेल्फ मेड' पागल होते हैं। वह सोचते हैं, मैने अपने को बनाया। वह भगवान तक को तकलीफ नही देते उनको बनाने की। वह खुद ही पर अपना सब थोप लेते हैं कि मैने अपने को बनाया। हम अपने को नही बनाते है। हमारा होना भी तो हमारे हाथ मे नही है। ऐसे सीधे से सत्य भी हमे दिखायी नही पडते कि मेरा होना भी मेरे हाथ मे कहा है? मै हू, इसके लिए मेरी जिम्मेवारी कहा? मैं नही होता तो मै किससे शिकायत करने जाता? जो नही है वह कहा शिकायत कर रहे है? नही होता तो नही होता, हू तो हू। मै ऐसा हू तो ठीक, और ऐसा नही होता और वैसा होता तो क्या करता? अगर हम जीवन के तथ्यो मे थोडी आख डालकर देखें तो हमे दिखायी पडेगा कि न जन्म हमारे हाथ, न मृत्यु हमारे हाथ। हमारे हाथ भी हमारे हाथ मे नही है। जरा अपने हाथ से अपने हाथ को ही पकडने की कोशिश करे तो पता चले। कुछ भी हमारे हाथ मे नही है। जहां कुछ भी हमारे हाथ मे नही है वहा मैं कहने का अर्थ क्या है, प्रयोजन क्या है। जहा सभी कुछ होना है, जहा सभी कुछ एक साथ घट रहा है। कहा नही जा सकता कि आज बगीचे मे जो फूल खिले हैं, अगर वह आज न खिलते तो जरूरी था कि मै फिर भी यहा होता। कोई नही कह सकता था। आम तौर से हम कहेंगे, इससे क्या सम्बन्ध है। बगीचे मे फूल नही होते तो भी मै यहा हो सकता था। जरूरी नही है। वह जो बगीचे मे एक फूल खिला है, उसकी मौजूदगी और मेरा होना एक ही होने के दो छोर है। अब यह सूरज ही शात हो जाय तो हम सब यहीं शात हो जायेंगे। सूरज बहुत दूर है। करोडो मील दूर है। उसके होने पर हम निर्भर है। और सूरज भी किन्ही महासूर्यों के होने पर निर्भर है। और वे महासूर्य भी और किन्ही महासूर्यों के होने पर निर्भर है। सब निर्भर है। यहा जीवन 'इन्टरडिपेंडेंट' है। यहा जीवन परस्पर निर्भर है। यहा जीवन कटा कटा, अलग अलग नही। हम छोटे छोटे द्वीप नही है। हम महासागर है, यहा सब इकट्ठा है। इसको जरा सी आख खोलकर देख ले तो कोई याद दिलाना नही पडेगा कि मैं और तू हमारे मानवीय आविष्कार हैं, और बडे गलत आविष्कार हैं। यह दिखायी पड जाय तो उसका

स्मरण आ जायेगा, जो है। जब तक यह दिखायी न पडे, तब तक उसका स्मरण मुश्किल होगा। तब तक हम, अपने को मैं माने चले जायेंगे, दूसरे को तू माने चले जायेंगे और एक कल्पना मे, एक पुराण मे जी लेगे, एक 'मिथ' मे जी लेंगे। कृष्ण पहले ही चरण मे कहते है, स्मरण करो, और कुछ मत करो। बस स्मरण करो। कौन हो, क्या हो, कहा हो, इसका स्मरण करो तो सब प्रकट हो जायेगा।

प्रश्न आचार्यजी, पूर्णता के सम्बन्ध मे एक प्रश्न था। आपने सुबह कहा कि पूर्णता का मूल लक्षण आप शून्यता मानते है। बुद्ध भी तो परम शून्य थे। क्या उन्हे पूर्ण नहीं कहा जा सकता ? और इसी के साथ क्या शून्यता स्वय मे बहुआयामी नहीं है ?

उत्तर दो तीन बाते है। एक तो बुद्ध शून्यता पर पहुचे, जैसा अभी मै कह रहा था। बुद्ध शून्यता पर पहुचे, वह उनका 'अचीवमेट' है। वह उन्होन पाया। वे शून्य हुए। जो शून्यता पायी जायेगी वह 'वन डायमेशनल हो जाती है। उसकी एक दिशा हो जाती है। वह पाने वाले पर निर्भर हो जाती है। इसका ऐसा समझें। असल मे मै अपने भीतर से जिस चीज को शून्य कर दूगा, जिस चीज को काट डालूगा, अलग कर दूगा, वह समाप्त हो जायेगी, मेरे भीतर से हट जायेगी। एक तरह का शून्य उपलब्ध होगा। लेकिन वह शून्यता किसी चीज का अभाव होकर आयेगी। एक और शून्यता भी है, जो हम लाते नही। जो हमारे होने के बोध मे ही जन्मती है। हम है ही शून्य। हम होने नही। शून्यता हमारा स्वभाव है। ऐसे हम है ही। जिस दिन शून्यता हमारा स्वभाव होती है, – साधना नही, अभ्यास नही, उपलब्धि नही, उस दिन शून्यता बहुआयामी, 'मल्टीडायमेशनल' हो जाती है। हमने किसी चीज को खाली करके अपने को शून्य नही किया। हम शून्य है ही, इसको स्मरण किया है। तो बुद्ध की जो शून्यता हमे दिखायी पडती है वह शून्यता लायी हुई है। और जो शून्यता लायी हुई है वही हम दिखायी पडती है। कृष्ण म हमे शून्यता कभी नही दिखायी पडी। कृष्ण को तो आदमी कहेगे, बहुत भरे-पूरे आदमी है। बहुत 'आकुपाइड' आदमी है। कृष्ण की 'प्रेजेन्स' तो अनुभव होती है, कृष्ण मे 'एबसेस' अनुभव नही होती। कृष्ण मे कुछ मौजूद है, यह तो पता चलता है। कृष्ण खाली है, यह पता नही चलता। पता हमें चलता है कि बुद्ध खाली है। उसका कारण है। जो हममे भरा है उसको बुद्ध ने निकाल दिया है, इसलिए बुद्ध हमे खाली लगते है। अगर हममे क्रोध है तो बुद्ध ने उसे निकाल दिया। अगर हममे हिंसा है तो बुद्ध ने उसे निकाल दिया। अगर हममे राग है तो

बुद्ध ने उसे निकाल दिया, अगर हममें मोह है तो बुद्ध ने उसे निकाल दिया। जिससे हम भरे हैं, बुद्ध उससे खाली हैं। इसलिए हमें लगता है कि यह शून्यता है। बुद्ध शून्य हुए।

असल में जिससे हम भरे हैं वह उनमें नहीं है। हम उनकी शून्यता को पहचान लेते हैं। कृष्ण की शून्यता हमें पहचान में नहीं आती। क्योंकि इस आदमी में अगर लोभ नहीं है तो भी आदमी जुआ खेलने बैठ सकता है। अगर इस आदमी में क्रोध नहीं है तो यह आदमी हाथ में चक्र लेकर कैसे उतर जाता है युद्ध में? अगर इस आदमी में हिंसा नहीं है तो अर्जुन को क्यों उकसाता है हिंसा के लिए? अगर इसमें राग नहीं है तो यह प्रेम क्यों करता है? जिससे हम भरे हैं, वह हमें कृष्ण में दिखायी पड़ता है। कृष्ण की शून्यता हमारी पकड़ में नहीं आ सकती। असल में जिस जिस को हम मनुष्यता की बीमारियां कहते हैं बुद्ध में उनका अभाव है। जहां तक मनुष्य के बीमार होने का सम्बन्ध है, बुद्ध बिल्कुल शून्य हैं। आदमी की कोई बीमारियां उनमें नहीं हैं। बस यहीं तक बुद्ध हमें दिखायी पड़ते हैं। इसके बाद बुद्ध एक और छलांग लेते हैं। वह हमें कभी दिखायी नहीं पड़ती। बुद्ध मर रहे हैं और आखिरी क्षण में भी उनके शिष्य उनसे पूछते हैं कि जब आप मर जायेंगे तो आप कहां जायेंगे? कहीं तो होंगे आप? मोक्ष में होंगे, निर्वाण में होंगे, कहां होंगे? बुद्ध कहते हैं, मैं कहीं नहीं होऊंगा। मैं होऊंगा ही नहीं। यह उनकी पकड़ में नहीं आता। क्योंकि वह मानते हैं कि जिसने लोभ छोड़ा, क्रोध छोड़ा, मोह छोड़ा, उसे कहीं होना चाहिए। हां, इस जमीन पर नहीं, मोक्ष में होना चाहिए, लेकिन कहीं होना चाहिए। बुद्ध कहते हैं, मैं कहीं नहीं होऊंगा। मैं ऐसे ही मिट जाऊंगा जैसे पानी पर खींची गयी रेखा मिट जाती है। जब हम पानी पर रेखा खींचते हैं तब वह होती है, और जब मिट जाती है तब बुद्ध पूछते हैं, वह कहां होती है? कहां चली जाती है, कहां रहती है? बस मैं पानी पर खींची गयी रेखा की तरह मिट जाऊंगा। मैं कहीं भी नहीं होऊंगा। बुद्ध की यह बात उनके शिष्यों की समझ में नही आयी। कृष्ण ऐसी ही पानी पर खींची रेखा की तरह जिन्दगी भर जीते हैं इसलिए कोई शिष्य भी नहीं खोज पाते। तो किसी की भी समझ में नहीं आते। बुद्ध और महावीर आखिरी क्षण में उस छलांग को भी पूरा करते हैं जो एक आयामी शून्यता से परम शून्य में छलांग हो जाती है। लेकिन उस शून्य को पकड़ नहीं पाते हम। उसको हम देख नहीं पाते। कृष्ण के साथ तो हमारी कठिनाई और ज्यादा हो जाती है क्योंकि वे उस शून्य में जीते ही हैं। वह रेखा किसी दिन मिटेगी नहीं ऐसा नहीं, वह प्रतिपल खींचते हैं और मिट जाती है।

न केवल खींचते हैं और मिट जाती है, बल्कि उससे विपरीत रेखा भी खींच देते हैं। रेखाएं रेखाएं हो जाती हैं। सब मिटता है, सब होता रहता है । बुद्ध शून्यता को किसी दिन उपलब्ध होते हैं, कृष्ण शून्य ही हैं और इसलिए इस कृष्ण की शून्यता को पकड़ना मुश्किल होता है। जिस दिन बुद्ध शून्य होते हैं उस दिन बुद्ध के भीतर जो कैद थी चेतना, जो अस्तित्व, वह मुक्त होकर विराट के साथ एक हो जाता है। लेकिन उस दिन वह बुद्ध नहीं रह जाते। उस दिन वह जो गौतम सिद्धार्थ पैदा हुआ था वह मरा था, उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। वह जो भीतर एक शून्य था अस्तित्व का, वह विराट अस्तित्व के साथ एक हो गया। उस शून्य की कोई कथा नहीं है हमारे पास ।

कृष्ण पूरे जीवन ऐसे जीते हैं कि उस शून्य की हमारे पास एक कथा है कि अगर बुद्ध भी उस शून्य के बाद जगत में जियें तो कैसा जियेंगे। वहां तो हमें मौका नहीं मिलता। वह मौका हमें कृष्ण में मिलता है। बुद्ध का शून्य होना और समाप्त हो जाना एक साथ घटित होते हैं, कृष्ण का शून्य होना और होना एक साथ चलते हैं। अगर बुद्ध पूर्ण निर्वाण को, महानिर्वाण को पाकर वापस लौट आयें तो वह कृष्ण जैसे होंगे। फिर वह चुनाव नहीं करेंगे। फिर वह यह नहीं कहेंगे कि यह बुरा है और यह भला है। फिर वह छोड़ेंगे, पकड़ेंगे नहीं । फिर वे कुछ भी नहीं करेंगे, फिर वे जियेंगे। कृष्ण वैसे जीते ही हैं। बुद्ध की जो परम उपलब्धि है, कृष्ण का वह सहज जीवन है। और इसलिए बहुत कठिनाई है। परम उपलब्ध लोग समाप्त हो जाते हैं। उपलब्ध होते होते खो जाते हैं इसलिए हमें बहुत परेशानी में नहीं डालते। जब तक वे होते हैं, हमारी नैतिक धारणाओं की परिपुष्टि उनसे होती मालूम पड़ती है, लेकिन यह आदमी होता ही शून्य है। इसलिए हमारी किसी नैतिक मान्यता को इससे पुष्टि नहीं मिलती। यह हमारा सारा का सारा अस्तव्यस्त कर जाता है। यह आदमी हमें बड़े भ्रम में छोड़ जाता है। हम समझ ही नहीं पाते कि अब क्या करें और क्या न करें। असल में बुद्ध और महावीर से करने के सूत्र निकलते हैं, कृष्ण से होने का सूत्र निकलता है। बुद्ध और महावीर से 'डूइंग' के लिए रास्ता मिलता है, कृष्ण से सिर्फ 'बीइंग' के लिए रास्ता मिलता है। कृष्ण सिर्फ हैं।

एक झेन फकीर से किसी आदमी ने जाकर पूछा कि मुझे ध्यान सिखायें। तो उस फकीर ने कहा, तुम मुझे देखो और सीख सको तो सीख लो। वह आदमी बहुत मुश्किल में पड़ गया क्योंकि वह फकीर अपने बगीचे में गढ़े खोद रहा है। उसने थोड़ी देर तो देखा, उसने कहा कि गढ़ा खोदना मैं बहुत देख चुका हूं, मैंने

भी बहुत खोदे हैं। आप कृपा करके ध्यान सिखायें। उस फकीर ने कहा, तुम अगर मुझे देखकर नहीं सीख सकते तो मैं और कैसे सिखा सकता हूं, मैं ध्यान हूं। मैं जो भी कर रहा हूं वह ध्यान है। मेरे गढ़े खोदने को ठीक से देखो। उस आदमी ने कहा, मुझे तो लोगों ने भेजा था कि बड़े ज्ञानी के पास भेज रहे हैं, मैं भी कहां आ गया? गढ़ा खोदना मुझे देखना होता तो मैं कहीं भी देख लेता। उस फकीर ने कहा, एक दो दिन रुक जाओ। कभी वह फकीर खाना खाने बैठता, कभी वह सो जाता, कभी वह स्नान करता, कभी वह गड्ढा खोदता, कभी वह बीज बोता। दो दिन में वह आदमी घबड़ा गया। उसने कहा, मैं ध्यान सीखने आया हूं इन सब बातों से मुझे कोई मतलब नहीं है। उस फकीर ने कहा, लेकिन मैं करना नहीं सिखाता हूं, मैं होना सिखाता हूं। अगर तुम मुझे गड्ढा खोदते देखो तो समझो कि ध्यान कैसे गड्ढा खोदता है। अगर तुम मुझे खाना खाते देखते हो तो देखो कि ध्यान कैसे खाना खाता है। मैं ध्यान करता नहीं, मैं ध्यान हूं। उस आदमी ने कहा, मैं भी किस पागल के पास आ गया। मैंने सदा यही सुना था कि ध्यान किया जाता है। अब तक मैंने सुना नहीं कि कोई ध्यान होता है। उस फकीर ने कहा, यह तो बहुत मुश्किल सवाल है कि पागल हम दोनों में से कौन है? और हम दोनों तो इसको तय कर ही न सकेंगे। हम सबने प्रेम किया है, हम कभी प्रेम नहीं हुए। इसलिए कोई आदमी अगर हमारे बीच आ जाए जो प्रेम है, तो मुश्किल में डाल देगा क्योंकि हम तो प्रेम करते हैं। 'लव ऐज ऐन ऐक्ट'-हमारे लिए आता है। 'लव ऐज बीइंग'-हमारे लिए कभी नहीं है। इसको प्रेम करते, उसको प्रेम करते, कभी करते नहीं, कभी करते। वह हमारा काम-धाम है। लेकिन एक आदमी जो प्रेम ही है वह हमें मुश्किल में डाल देगा। उसका होना ही प्रेम है। वह जो भी करता है वह प्रेम है। वह जो नहीं करता है वह भी प्रेम है। वह लड़ता है तो प्रेम है, वह गले लगाता है तो प्रेम है। वह जो भी करता है प्रेम है। यह आदमी हमें मुश्किल में डाल देगा। हम में से बहुत कहेंगे कि भाई हमें प्रेम करो। वह कहेगा, प्रेम मैं कैसे करूं? मैं प्रेम हूं। प्रेम तो वे कर सकते हैं जो प्रेम न हों।

कृष्ण की यही कठिनाई है। कृष्ण का अस्तित्व शून्य है। शून्य हुए नहीं हैं। उन्होंने कुछ खाली नहीं किया। उन्होंने कुछ हटाकर जगह रिक्त नहीं बनायी। उन्होंने तो जो है उसको स्वीकार कर लिया। इसलिए शून्य हो गये। इस शून्यता में और बुद्ध और महावीर की शून्यता में आखिरी क्षण के एक क्षण पहले तक फर्क रहेगा। बुद्ध और महावीर आखिरी क्षण तक 'होंगे कुछ'। आखिरी छलांग में 'न

कुछ' हो जायेंगे। लेकिन कृष्ण पूरे जीवन 'न कुछ' हैं। यह शून्यता, जिसको कहें 'लिविंग नथिंगनेस' है। जीवंत शून्यता है। बुद्ध और महावीर की शून्यता जीवंत नहीं है। जीने के आखिरी क्षण तक तो वे उस शून्यता से भरे रहते हैं जो शून्यता हम पहचान लेते हैं कि यह यह खाली किया है। आखिरी क्षण में छलांग लेते हैं। इसलिए महावीर और बुद्ध दोनों कहेंगे, लौटना नहीं है —लौटना नहीं है। लेकिन कृष्ण राधा से कह सकता है कि हम बहुत बार पहले भी आये और नाचे, और बहुत बार फिर भी आयेंगे और नाचेंगे। बुद्ध और महावीर के लिए शून्यता महामृत्यु है। उसके बाद कोई लौटना नहीं है, खो जाना है। वह आवागमन का बन्द हो जाना है। कृष्ण कह सकता है कि आवागमन से मुझे क्या डर है। मैं शून्य हूं ही। मुझे मोक्ष में और ज्यादा क्या मिलेगा ? मैं जहां हूं वहां मोक्ष है ही। मैं आता रहूंगा। इसलिए वह बड़ी अद्‌भुत बात कहते हैं। वह अर्जुन से कहते हैं, जब भी मुसीबत हो, मैं आ सकता हूं। जब भी धर्म की ग्लानि हो मैं आ जाऊंगा। ऐसा बुद्ध और महावीर नहीं कह सकते। ऐसा उनका कोई वक्तव्य नहीं है कि दुनिया में मुसीबत हो, अन्धेरा हो, बीमारी हो, तकलीफ हो, अधर्म हो तो मैं आ जाऊंगा। क्यों कि वह कहेंगे, मैं आऊंगा कैसे, मैं तो मुक्त हो चुका हूं। लेकिन कृष्ण कहते हैं, तुम फिक्र मत करना, कोई मुसीबत हो तो मैं आ सकता हूं। आ सकने का यह मतलब नहीं है कि आ जायेंगे। इस आ सकने का कुल मतलब यह है कि इस आदमी को आने-जाने में कोई फर्क नहीं है। इसमें कोई बाधा नहीं पड़ती। यह शून्य है ही। इसलिए आने से क्या बिगड़ेगा, कुछ भी नहीं बिगड़ेगा।

शून्यता का यह फर्क है। महावीर और बुद्ध शून्यता को मुक्ति के अर्थों में ही ले पायेंगे। क्योंकि जीवन भर मुक्ति की आकांक्षा ही उनकी साधना है। इस-लिए जब शून्यता आयेगी, वह कहेंगे, अब मुक्त हुए, विश्राम में गये। 'प्वाइंट आफ नो रिटर्न', अब इससे लौटना नहीं है। क्योंकि लौटने का उनके लिए एक ही मतलब साफ होगा कि वही क्रोध, वही लोभ, वही मोह, वही संसार, वही जंजाल, वही उपद्रव, वही मुसीबत। अब लौटना नहीं है। अब हम सबके बाहर हुए। इस लिए शून्य की घटना जब उनके चित्त में घटेगी तो वह डूब जायेंगे उसमें, खो जायेंगे विराट में। वह नहीं लौटने की बात कर सकते हैं। लेकिन कृष्ण के लिए कोई फर्क नहीं पड़ता। वह क्रोध में भी वही हैं। प्रेम में भी वही हैं, राग में भी वही हैं। सबमें वही हैं। इसलिए वह कहेंगे, अगर लौटना है तो मजे से लौट आयेंगे। उसमें कोई तकलीफ नहीं है। इधर कोई बेचैनी, कोई कठिनाई नहीं होती। आना जाना हो सकता है। इसमें बाधा नहीं है। इसलिए वह कह सकते हैं। उनका शून्य

जीवन्त है। लेकिन अनुभूति में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। चाहे महावीर और बुद्ध का शून्य आपको मिल जाय तो भी आप आनन्द को उपलब्ध हो जायेंगे, चाहे कृष्ण का शून्य आपको मिल जाय तो भी आप आनन्द को उपलब्ध हो जायेंगे। लेकिन महावीर और बुद्ध का आनन्द जो है वह विश्राम में ले जायेगा। कृष्ण का जो आनन्द है वह हो सकता है विराट सक्रियता में ले जाय। तो अगर हम ऐसा शब्द बना सकें, 'एक्टिव वायड' सक्रिय शून्य, तो कृष्ण पर लागू होगा। अगर हम ऐसा कोई शब्द बना सकें, निष्क्रिय शून्य, 'नानएक्टिव वायड' तो वह महावीर और बुद्ध पर लागू होगा। अनुभूति तो आनन्द की ही होगी। लेकिन एक आनन्द सृजनात्मक हो जायेगा, एक आनन्द लीन हो जायेगा। वह फर्क है।

प्रश्न : बुद्ध पूर्णता अर्थात् महाशून्यता के बाद भी तो चालीस साल जीते हैं ?

उत्तर : महावीर भी चालीस साल जीते हैं, बुद्ध भी चालीस साल बयालीस साल जीते हैं। लेकिन बुद्ध कहते हैं मरने के पहले कि वह जो निर्वाण मुझे हुआ था चालीस साल पहले, वह निर्वाण था, अब जो हो रहा है वह महानिर्वाण है। पहले निर्वाण में बुद्ध ने वही शून्य पाया था, जो हमें दिखायी पड़ता है। दूसरे महानिर्वाण में बुद्ध उस शून्य को पाते हैं जो हमें दिखायी नहीं पड़ता, जो कृष्ण को दिखायी पड़ सकता है। जब बुद्ध चालीस साल जीते हैं उस जीने में वह परम शून्य नहीं हैं। उस जीने में एक छोटी सी बाधा तो है ही। उस जीने में भी अभी कष्ट है। अभी होना चल रहा है। इसलिए बुद्ध अगर गांव गांव जा भी रहे हैं तो वह करुणावश जा रहे हैं, आनन्दवश नहीं। अगर वह दूसरे को समझा रहे हैं तो करुणा के कारण कि जो मुझे मिला है वह आपको भी कह दूं कि शायद आपको मिल जाय। लेकिन कृष्ण अगर दूसरे को कुछ कह रहे हैं तो आनन्द के कारण, वह कोई करुणा के कारण नहीं। कृष्ण में करुणा को न खोज पाओगे। बुद्ध का व्यक्तित्व 'कम्पेशन' है। चालीस साल करुणावश वह जा रहे हैं, आ रहे हैं, लेकिन उस आखिरी क्षण की प्रतीक्षा है जब यह आना-जाना भी छूट जायेगा। इससे भी मुक्ति होगी। इसलिए बुद्ध कहते हैं, दो तरह के निर्वाण हैं— एक निर्वाण वह है, जो समाधि से मिलता है और एक महानिर्वाण है जब कि शरीर भी खो जाता है। मन ही नहीं खोता, शरीर भी खोता है। वही परम निर्वाण है। परम शून्य उससे ही मिलेगा। कृष्ण के लिए ऐसा नहीं है। कृष्ण के लिए निर्वाण और महानिर्वाण दो नहीं हैं, एक हैं।



पर्व : तीन

कृष्ण का जन्म कब

कृष्ण के वर्णित शरीर की काल-गणना

कृष्ण का धर्म से आशय

स्वधर्म की महत्ता

कृष्ण गुरु नहीं

'संशयात्मा विनश्यति ....'

३

प्रश्न : आचार्यजी, कृष्ण का जन्म आज से कितने वर्ष पहले हुआ था ? इस संबंध में आज तक क्या शोध हुई है ? आपका अपना निर्णय क्या है ? और क्या समाधिस्थ व्यक्ति इसका ठीक उत्तर नहीं दे सकता है ?

उत्तर : कृष्ण कब जन्मे, कब मरे, इसका कोई हिसाब नहीं रखा गया है। न रखने का कारण है, जिन्हें हम सोचते हैं कि जो कभी जन्मते नहीं और कभी मरते नहीं, उनका हिसाब रखना हमने उचित नहीं माना। हिसाब



उनका रखना उचित है, जो कभी जन्मते है और मरते है। ऐसा नही कि हिसाब हम नही रख सकते थे, इसमे कोई कठिनाई न थी, लेकिन वैसा हिसाब कृष्ण के व्यक्तित्व के बिल्कुल ही खिलाफ पडता था। हमने कोई तिथि-वार का हिसाब कभी नही रखा।

पूरब के मुल्को ने अपने महापुरुषो के जन्म और मृत्यु का कोई हिसाब रखने की कोशिश नही की। पश्चिम के मुल्को ने ही कोशिश की है। उसका कारण है। पर जबसे पश्चिम का प्रभाव पूरब पर बढा तबसे हमने भी फिक्र की है। उसका भी कारण है। पश्चिम की एक धारणा है सभी उन धर्मों की, जो यहूदी परम्परा मे पैदा हुए है, चाहे ईसाइयत, चाहे इस्लाम, उनकी धारणा है एक ही जन्म की। एक जन्म और एक मृत्यु के बीच सब समाप्त हो जाता है। न उसके पीछे कुछ, न उसके आगे कुछ। फिर कोई जन्म नही। स्वभावत जिनकी ऐसी धारणा होगी कि एक जन्म तिथि और मृत्यु तिथि के बीच जीवन पूरा हो जाता है— न उसके पीछे, न उसके आगे जीवन की कोई यात्रा है, उन्हे जन्म और मृत्यु की तिथि को रखने का अगर बहुत मोह रहा है तो आकस्मिक नही है। लेकिन जिन्होने ऐसे जाना हो कि ये जन्म बहुत बार होता है, बहुत बार आता है और जाता है, अनन्त बार आना होता है, अनन्त बार जाना होता है, वह हिसाब भी रखे तो कितना हिसाब रखे! कैसे हिसाब रखे! उनका हिसाब रखना उनके अपने ही विचार को झुठलाना होगा। इसलिए उन्होने हिसाब नही रखा।

जानकर ही यह हुआ है, सोचकर यह हुआ है, समझकर यह हुआ है। हिसाब नही रख सकते थे, ऐसी कोई कमी के कारण नही हुआ है। सवत्, सन् नही थे हमारे पास, ऐसा नही है। दुनिया मे सबसे पुराना सवत् हमने ही पैदा किया। लेकिन जानकर हमने यह बात छोड दी।

दूसरी बात पूछी है कि क्या समाधिस्थ व्यक्ति यह नही बता सकता कि ठीक तारीख क्या है जब कृष्ण पैदा हुए? गैर समाधिस्थ बता भी दे, समाधिस्थ बिल्कुल नही बता सकता है। क्योकि समाधि का समय से कोई सम्बन्ध नही है। समाधि जहा शुरू होती है वहा समय समाप्त हो जाता है। समाधि 'नानटेम्पोरल' है। समय का उससे कोई वास्ता नही, वह कालातीत है। समाधि का अर्थ ही है समय के बाहर हो जाना। जहा घडी-पल मिट जाते है, जहा परिवर्तन सो जाता है, जहा वही रह जाता जो सदा से है। जहा अतीत नही होता, जहा भविष्य नही होता, सिर्फ वर्तमान रह जाता है। जहा घडी के काटे एकदम ठहर जाते है और

नही चलते। समाधि क्षण मे घटित नही होती क्षण के बाहर घटित होती है। समाधिस्थ तो बिल्कुल नही बता सकेगा। कृष्ण कब पैदा हुए और कब मरे, यह बता नही सकेगा। समाधिस्थ यह भी नही बता सकेगा कि मैं कब पैदा हुआ और कब समाप्त हो जाऊगा। समाधिस्थ इतना ही कह सकेगा, कैसा पैदा होना, कैसा मरना! न मै कभी पैदा हुआ, न मै कभी मरूगा। अगर समाधिस्थ से हम पूछें कि यह जो समय की धारा बह रही है, यह जो क्षण आते हैं और जाते है, यह कुछ आता है, व्यतीत हो जाता है, कुछ आ रहा है, कुछ अतीत हो गया है, कुछ भविष्य है इसके सम्बन्ध मे क्या ख्याल है? तो समाधिस्थ कहेगा, न कुछ आता है, न कुछ जाता है। जो जहा है वही है। सब वही ठहरा है। जाने और आने का ख्याल समय की धारणा है, गैर समाधिस्थ मन की धारणा है। 'टाइम ऐज सच', समय ही मन की उत्पत्ति है। जैसे ही हम मन के बाहर गये, वहा कोई समय नही है। इसे दो तीन बातो मे समझने की कोशिश करे।

समय मन की उत्पत्ति है, जब हम कहते है तो बहुत कारणो से कहते है। पहला कारण तो यह है कि अगर आप सुख मे है तो समय सिकुड जाता है। अगर आप दुख मे है तो समय फैल जाता है। अगर आप किसी प्रियजन से मिल रहे ह तो घडिया जल्दी भागती मालूम पडती है और किसी शत्रु से मिलते है तो बडी मुश्किल से गुजरती मालूम पडती है। घडी अपने ढग से काटे घुमाये चली जाती है। लेकिन मन? अगर रात घर मे कोई मर रहा है, मरण शैय्या पर पडा है, रात कटती हुई मालूम नही होती। रात बहुत लम्बी मालूम होती है। ऐसा लगता है, कि यह रात समाप्त होगी कि नही होगी। घडी अपने ढग से घूमती है; लेकिन ऐसा लगता है, आज घडी घूम रही है या नही घूम रही है। काटे धीमे चल रहे है। लेकिन कोई प्रियजन आ गया है, रात ऐसे बीत जाती है जैसे क्षण मे बीत गयी। और डर लगता है कि अब बीती अब बीती, जल्दी क्यो बीत रही है, घडी जल्दी क्यो चल रही है? घडी जल्दी नही चलती। घडी अपने ही ढग से चलती रहती है। लेकिन मन की स्थितियो पर समय का माप निर्भर करता है।

आइन्स्टीन से लोग जब पूछा करते थे कि तुम्हारी 'रिलेटीविटी', यह सापक्षता की जो धारणा है, यह हमे समझाओ। तो आइन्स्टीन कहता था कि यह बडा कठिन है। शायद जमीन पर दस बारह आदमी है, जिनसे मै बात कर सकता हू इस सम्बन्ध मे, सभी से बात नही कर सकता। लेकिन फिर भी तुम्हारी समझ मे आ सके, ऐसा मैं तुम्हे उदाहरण देता हू। वह कहता था कि अगर किसी आदमी को गर्म स्टोव के पास बिठा दिया जाय तो समय और तरह से बीतता है। उसे

अपनी प्रेयसी के पास बिठा दिया जाय तो समय और तरह से बीतता है। हमारा सुख, हमारा दुख हमारे समय की लम्बाई को तय करता है।

समाधि सुख और दुख के बाहर है। समाधि आनन्द की अवस्था है। वहां कोई लम्बाई ही नही रह जाती। वहा समय बचता ही नही। समाधि के क्षण मे कोई नही कह सकता कि कृष्ण कब पैदा हुए, कब विदा हुए। समाधि के क्षण मे तो कोई कहेगा कि कृष्ण है ही। उनका होना शाश्वत है। और कृष्ण का होना ही शाश्वत नही है, होना तो हमारा भी शाश्वत है। सब होना शाश्वत है।

रात आप स्वप्न देखते है। शायद कभी ख्याल न किया हो कि स्वप्न की समय की स्थिति बिल्कुल बदल जाती है जागने से। एक आदमी ने झपकी ली है क्षण भर को, लेकिन वह सपना देखता है इतना बडा जिसे देखने मे वर्ष भर लग जाय। वह देखता है, उसका विवाह हो गया, उसे बच्चे हो गये, वह बच्चो की शादिया कर रहा है। बरसो लग जाय। क्षण भर झपकी लगी है और झपकी टूटी कि हम कहते है, इतना लम्बा सपना देखा। हम उससे कहेगे, पागल हो गये हो? इतना लम्बा सपना क्षण भर मे कैसे देखोगे? अभी तो तुम जागते थे। अभी आख लगी ही थी और खुल गयी। इस पलक झपने मे तुम इतना लम्बा सपना देख कैसे सकोगे? वह कहेगा, देख कैसे सकूगा नही, मैने देखा।

स्वप्न मे मन बदल जाता है। इसलिए समय की धारणा बदल जाती है। गहरी नीद मे, सुषुप्ति मे समय नही रह जाता। इसलिए आप जब बताते है कि रात बहुत गहरी नीद आयी तब भी आप जब समय का पता लगाते है वह पता गहरी नीद से नही लगता। वह कब आप सोये और कब आप जागे, इन दो क्षणो के बीच मे जो गुजर गया उसका हिसाब आप रख लेते है। लेकिन आपको बताया न जाय कि कब आप सोये और कब आप जागे तो आप कितनी देर सोये, तब आप बता न सकेगे।

मैं एक स्त्री को देखने गया। वह नौ महीनो से बेहोश है। और चिकित्सक कहते है, वह तीन साल तक बेहोश रहेगी और शायद बेहोशी मे ही मरेगी। सभावना कम है कि उसका होश वापस आये। अगर तीन साल बाद वह स्त्री होश में आयी तो क्या बता सकेगी कि तीन साल वह बेहोश थी? इधर घडी हजारो बार घूम गयी होगी। इधर कलेण्डर हजारो बार फट गया होगा। न, वह स्त्री कुछ न बता सकेगी कि वह तीन साल बेहोश थी। सुषुप्ति मे चित्त सो जाता है। इसलिए वहा भी समय का कोई बोध नही रह जाता। समाधि मे चित्त खो जाता है, समाप्त हो

जाता है, रहता ही नही। समाधि अचित्त या 'नो माइण्ड' की अवस्था है। समाधि से कोई पता नही चलेगा कि कृष्ण कब हुए और कब नही हुए।

एक जेन फकीर हुआ रिझाई। उसने एक दिन सुबह अपने वक्तव्य मे कहा कि पागलो, कौन कहता है कि बुद्ध हुए! उसके सुनने वालो ने कहा, आपका दिमाग तो ठीक है न! आप, और कहते हैं, कौन कहता है बुद्ध हुए? बुद्ध के ही मदिर मे रहता है वह फकीर। बुद्ध की ही मूर्ति पर चढाता है फूल। बुद्ध की मूर्ति के साथ मे नाच लेता है। बुद्ध का प्रेमी है। और एक दिन सुबह कहता है कि कौन कहता है बुद्ध हुए? और उस रिझाई ने कहा, पागल मैं था क्योकि हो तो वही सकता है जो एक दिन न भी हो जाय। लेकिन जो सदा है उसके होने का क्या अर्थ? आज मैं तुमसे कहता हू, बुद्ध कभी नही हुए, ये झूठी कहानिया है। लोगो ने कहा, शास्त्र कहते हैं कि हुए। वे चले है इस पृथ्वी पर, उठे, बैठे, बोले है। गवाहिया हैं इस बात की। चश्मदीद गवाह है। उस फकीर ने कहा, छाया चली होगी, छाया उठी होगी, छाया गिरी होगी। बुद्ध न कभी उठते, न कभी बैठते, न कभी चलते। 'दी शैडो ओनली'। जो पैदा होता है, जो मरता है वह हमारी छाया से ज्यादा नही है, वह हम नही हैं। इसलिए जानकर हिसाब नही रखा गया, सोचकर हिसाब नही रखा गया।

धर्म इतिहास नही है। इतिहास होता है उसका, जो आता है, जाता है। इति-वृत्ति—शुरू होता है, समाप्त होता है। आदि होता है, अन्त होता है। धर्म सनातन है। सनातन का अर्थ होता है जो सदा है। हम ही कब हुए है और कब नही हो जायेगे। सदा से है, 'इटरनिटी', शाश्वतता है। लेकिन हमे तो समय का हिसाब है पूरे वक्त। सुबह होती है, साझ होती है। घडिया बीतती है, गुजरती हैं। हमे समय का ख्याल है। हमारे पास एक गज है समय का, हम उससे नापते है। हमारा नापना स्वाभाविक है। सत्य नही। हमारी समझ जैसी है वैसा हमारा नाप है। हमारा नाप वैसा ही है जैसे कुए के मेढक ने सागर से आये मेढक से कहा था कि तेरा सागर कितना बडा है? कुए के मेढक ने छलाग लगायी— आधे कुए तक गया और कहा, इतना बडा? सागर से आये मेढक ने कहा, माफ कर, तेरे कुए से कोई हिसाब न बैठेगा। तो उसने कहा, और कितना बडा होगा? उसने पूरी छलाग लगायी — कुए के एक कोने से दूसरे कोने तक, और कहा, इतना बडा। लेकिन जब सागर के मेढक की आखो मे फिर भी सदेह देखा तो उस कुए के मेढक ने कहा, तेरा दिमाग खराब मालूम होता है। कुए से बडी कोई जगह है? एक और रास्ता है उसने कहा, आखिरी माप तुझे बताये देता हू।

उसने कुए का पूरा गोल चक्कर लगाया और कहा, इतना बडा ! उस सागर के मेढक ने कहा कि भाई तेरे कुए से हम सागर को नापेंगे तो बहुत मुश्किल मे पड जायेंगे। कोई इकाई ही नही बनती। उस कुए के मेढक ने कहा, बाहर हो जाओ कुए के। कुए से बडी कभी कोई चीज देखी ? आकाश भी कुए के बराबर ही देखा है। जब भी उस कुए के मेढक ने ऊपर देखा तो आकाश भी कुए के बराबर ही दिखायी पडा था। उसने कहा, आकाश, जो सबसे बडी चीज है, वह भी कुए से बड़ी नही है। सागर क्या तुम्हारा आकाश से भी बडा होगा ?

हम समय के कुए मे जीते है। सब चीजे आती है, जाती है। सब चीजे बटी है, कुछ है जो अतीत हो गया, कुछ है जो भविष्य है, और एक छोटा-सा क्षण वर्तमान का है जो आता भी नही कि चला जाता है। तो हम पूछते है, किस क्षण मे कौन हुआ ? हम किसी क्षण मे अपने को अनुभव करते है किसी कुए मे कैद, इसलिए हम पूछते हैं कि वे किस कुए मे थे ? किस क्षण की सीमा मे थे ? नही, न जीसस, न बुद्ध, न महावीर, न कृष्ण, कोई समय की सीमा मे नही बाधे जा सकते। हम बाधते है, वह हमारी सीमाओ का आग्रह है। जिस दिन पश्चिम की समझ और थोडी बढेगी उस दिन वह क्राइस्ट के जन्म दिन और मृत्यु दिन को भूल जाएगा, छोड देगा। पूरब की समझ इस मामले में बहुत गहरी रही है। इसके कारण अजीब घटनाए घट गयी है। इसलिए हमारे जो सोचने के ढग है और कहने के ढग है वह दुनिया नही समझ पाती।

अगर हम तीर्थंकरो की उम्र की बात पूछने जाय तो कोई लाखो वर्ष जीता है, कोई करोडो वर्ष जीता है। अब कोई यह कैसे मानेगा ? यह नही हो सकता। कोई हजारो फीट ऊचा है। किसी का सिर आकाश को छूता है। यह कैसे हो सकता है ? यह कोई मानेगा नही। मानने की बात भी नही है। समझने की बात है। अगर कुए का मेढक बहुत ही हिम्मत करे तो वह क्या कहेगा ? वह कहेगा हजार कुए के बराबर होगा, और क्या कहेगा। लाख कुए के बराबर होगा, करोड कुए के बराबर होगा। कोई सख्या तो होनी ही चाहिए। कुए से ही नापा जाना चाहिए सागर। तो जो अनादि है, जो सनातन है, उनको हम कहे कि करोड वर्ष है उनकी उम्र, लेकिन वर्ष तो मौजूद रहेगा ही। उससे ही हम नापेंगे। जिनका ओर-छोर नही, तो हम कहेगे, जमीन पर उनके पैर होते है, सिर आकाश को छूता है। लेकिन फिर भी गज और फीट से ही नाप चलेगा। जो जानते थे उन्होने यह सब नाप, सब मापदण्ड तोड दिये है। उन्होंने कहा, हम यह हिसाब ही छोड दे ' हम यह हिसाब रखते ही नही। बिना हिसाब के कृष्ण है।

समाधिस्थ इस सम्बन्ध में इतना ही कहेगा, कृष्ण सदा हैं।

प्रश्न. आचार्यजी, क्राइस्ट का हिसाब रखा जा सका, वह १९७० साल पहले हुए, तो क्या कृष्ण का हिसाब नहीं रखा जा सकता ?

उत्तर: रखा जा सकता था। आस-पास जो लोग थे, उनपर निर्भर करती थी बात। जीसस के आस-पास जो लोग थे उनपर निर्भर हुआ। जीसस ने नही रखा है हिसाब। क्योकि जीसस के अगर वचन देखोगे तो समझोगे। जीसस का एक वचन है -- अब्राहम एक पैगम्बर हुआ जीसस के सैकडो वर्ष पहले। जीसस से किसी ने पूछा कि अब्राहम तो आपके पहले हुआ, तो जीसस ने कहा—'नो, बिफोर अब्राहम वाज, आइ वाज'। इसके पहले कि अब्राहम था, मैं था। इसका क्या मतलब हुआ? जीसस ने तो टाइम तोड दिया। जीसस ने समय तोड दिया। अब्राहम तो सैकडो हजारो साल पहले हुआ, लेकिन जीसस कहता है, अब्राहम होने के पहले मैं था। लेकिन जो लोग उनके आस-पास थे उनके पास समय की एक धारणा थी। उन्होने कोई सागर नही देखा था। उन्होने कुआ देखा था। उनको यह बात बडी 'मिस्टीरिअस' लगी होगी। उन्होने कहा, ठीक है, कहते हैं तो कुछ रहस्य की बात होगी। लेकिन वह समझे नही कि वह समय कि धारणा तोडने की बात है। जीसस से कोई पूछता है कि तुम्हारे प्रभु के राज्य मे खास बात क्या होगी? तो जीसस कहते है, 'देअर शैल्ल बी टाइम नो लागर'। एक खास बात होगी कि वहा समय नही होगा। लेकिन जो लोग आस-पास थे 'रिकार्ड' रखते थे — 'रिकार्ड' जीसस थोडे ही इकट्ठा करते है, रिकार्ड कृष्ण थोडे ही रखते है। कृष्ण के आस-पास जो लोग थे वैसे लोग जीसस को नही मिले इस मामले मे। इस जमीन पर जो लोग पैदा हुए उनका सौभाग्य बहुत और है। जीसस के आस-पास 'क ख ग' कक्षा के लोग थे। इसीलिए तो उन्होने उनको सूली पर लटका दिया। क्योकि वह आदमी इतना बेबूझ हो गया कि सिवाय मारने के कोई उपाय न रहा। हमने कृष्ण को, महावीर को या बुद्ध को सूली नही दी। इसका कारण यह नही है कि ये जीसस से कुछ कम खतरनाक लोग थे। इसका कुल कारण इतना ही है कि एक लम्बी यात्रा है इस देश की जिसमे हमने बहुत खतरनाक लोगो को सहा। जिसमे हमने बहुत खतरनाक लोग देखे, जिसमे हमने बहुत अलौकिक, अद्भुत आदमी देखे। और हम धीरे-धीरे राजी हो गये। हमारे पास कुछ समझ पैदा हो गयी जिसका हम उपयोग कर सके। इसका उपयोग जीसस के वक्त मे नही हो सका। इसका उपयोग मुहम्मद के वक्त मे नही हो सका। मुहम्मद के पास वे लोग न थे जो महावीर के पास थे।

जीसस के पास वे लोग न थे जो कृष्ण के पास थे। इसलिए फर्क पडा। इसलिए ही फर्क पडा, और कोई कारण नही है। यह समझ लेना चाहिए ठीक से कि न तो कृष्ण ने कुछ लिखा है, न तो क्राइस्ट ने कुछ लिखा है। जिन्होने सुना है, उन्होने लिखा है।

क्राइस्ट एक गाव मे ठहरे हुए है। भीड लगी है लोगो की उन्हे देखने, और तभी भीड मे आवाज आती है कि रास्ता दो। जीसस की मा मिलने आ रही है। तो क्राइस्ट हसते है, वह कहते हैं मेरी कैसी मा? क्योकि मै पैदा कब हुआ? लेकिन 'रिकार्ड' रखने वालो ने तारीख तय कर रखी है। उन्होंने लिख लिया कि वह कब पैदा हुए। अब यह आदमी कहता है, कैसी मेरी मा, कौन मेरी मा? मै कब पैदा हुआ? मै सदा से हू। रिकार्ड लिखने वालो ने यह भी लिख दिया है कि उन्होने ऐसा कहा और यह भी लिख दिया कि वह कब पैदा हुए। कृष्ण को जो रिकार्ड लिखने वाले लोग मिले वह ज्यादा समझदार थे। उन्होंने कहा, जो आदमी कहता है, मै सदा से हू। जो अर्जुन से कहता है कि यह मै तुमको ही नही समझा रहा, इसके पहले मैने फला को समझाया था, इसके और पहले मैने फला को समझाया था, इसके और पहले मैने फला को समझाया था और ऐसा नही है कि तुमको समझाकर सब चुक जायेगा। मै आता रहूगा और समझाता रहूगा। और यह सामने जो लोग खडे है, तुम सोचते हो, मर जायेगे, तो तुम पागल हो, नासमझ हो। यह पहले भी हुए और मर गये, उसके पहले भी हुए थे, अभी भी मरेगे और फिर होते रहेगे।

इस आदमी की जन्मतिथि लिखना ठीक न था। अन्यायपूर्ण था। नही लिखी गयी। इतिहास खोज करेगा तो मुश्किल मे पडेगा। क्योकि हमने जानकर रिकार्ड गवाये। हमने सब उपाय किये है कि रिकार्ड बचाये न जा सके। हमने सब उपाय किये है कि तिथि का कोई पता ही न रहे। उपनिषद किसने लिखे, वेद किसने लिखे? लेखक का नाम जानकर गवाया गया है, क्योकि वह जो कह रहा था, वह कह रहा था कि यह मै नही कह रहा हू यह परमात्मा बोल रहा है। तो कोई जरूरत नही है। मुझे छोडा जा सकता है। मेरे बिना काम चल सकता है। पश्चिम ने रिकार्ड रखे है। जीसस जगह जगह कहते हैं, यह मै नही बोल रहा हू, वह परम पिता आकाश मे जो है, वही बोल रहा है। 'नाट आइ, बट माई फादर स्पीक्स'। लेकिन लिखने वाला तो लिखेगा कि जीसस के वचन है।

कोई कमी नही है इस देश की, कि इस देश के पास कोई 'हिस्टारिक सेन्स' नही है। ऐसा नही है कि इतिहास का कोई बोध नही है हमारे पास। लेकिन

इतिहास के बोध को हमने जानकर झुठलाया है, क्योकि हमारे पास इतिहास के कुए से भी बडा एक बोध है 'इटरनिटी' का, शाश्वतता का बोध है। हमे घटनाओ का उतना मूल्य नहीं है जितना घटनाओ के भीतर छिपी हुई आत्मा का मूल्य है। हमने इस बात की फिक्र नही की कि कृष्ण ने क्या खाया और क्या पिया। हमने इस बात की फिक्र की कि वह कौन था कृष्ण के भीतर जो खाने को भी देखता था, पीने को भी देखता था। हमने इसकी फिक्र नही की कि वह कब पैदा हुए और कब मरे। हमने इसकी फिक्र की कि वह कौन था जो पैदा होने मे आया और मौत मे विदा हुआ। वह कौन था जो भीतर था। हमने उस 'इनरमोस्ट स्प्रिट' की, भीतरी अन्तरात्मा की चिन्ता की। उसके लिए कोई तारीखें अर्थपूर्ण नही है।

प्रश्न आचार्यजी, यह ठीक है, कृष्ण या क्राइस्ट जैसे लोगों का आत्मिक व्यक्तित्व इटरनल है, लेकिन वर्णित शरीर तो आता है और जाता है। हम कृष्ण के वर्णित शरीर की काल गणना जानना चाहते हैं। कृष्ण लीलाए कब हुई, महाभारत कब हुआ? ये स्थूल घटनाए तो जानी जा सकती है। इसकी कुछ जानकारी हो?

उत्तर · शरीर का जिनके लिए मूल्य है उनके लिए स्थूल घटनाओ का भी मूल्य है। शरीर को जो छाया समझते है उनके लिए कोई मूल्य नही रह जाता। कृष्ण कहते ही नही कि यह जो शरीर दिखायी पड रहा है यह मै हू। जीसस भी नही कहते कि यह शरीर जो दिखायी पड रहा है यह मै हू। वे खुद ही इन्कार कर जाते है कि इस पर ख्याल मत करना, क्योकि यह मै नही हू। अगर इसका तुमने हिसाब रखा तो मेरा हिसाब नही होगा। बुद्ध के मरने के बाद पाच सौ वर्षों तक बुद्ध की कोई प्रतिमा नही बनायी गयी, क्योकि बुद्ध ने कहा था कि तुम मेरी प्रतिमा बनाना, इस शरीर की मत बनाना। अब कैसे हम बुद्ध की प्रतिमा बनाये? तो पाच सौ वर्ष तक बुद्ध के मरने के बाद बुद्ध जिस वृक्ष के नीचे बैठते थे - बोधिवृक्ष, जहा वह घटना घटी जिससे वे बुद्ध हुए — उस वृक्ष का चित्र बनाकर नीचे जगह खाली छोड देते थे।

स्थूल देह छाया से ज्यादा नही है। उसका हिसाब रखने का कोई प्रयोजन भी नही है। जिन्होने भी उसका हिसाब रखा है उन्होंने इसीलिए हिसाब रखा है कि उन्हे सूक्ष्म का कोई पता नही था। जिन्हे भी सूक्ष्म का पता है उनके लिए स्थूल व्यर्थ हो जाता है। आप अपने सपनो का कोई हिसाब रखते है? कौन से सपने आपने देखे और कब देखे? सपने देखते है और भूल जाते है। क्यो हिसाब नही रखते? क्योकि उन्हे सपना समझ लेते है। कृष्ण की जो जिन्दगी हमे दिखायी

पडती है वह सपने से ज्यादा नही है। जीसस ने कौन से सपने देखे, हमने हिसाब रखा है ? वह हिसाब हमने नही रखा। हो सकता है, कभी वह जमाना आये कि आदमी पूछने लगे कि तुम्हारे कृष्ण हुए तो उन्होने कोई सपने देखे थे या नही। हुए होंगे तो सपने तो जरूर देखे होगे और अगर सपने देखें ही नही तो होने मे भी शक आ जाता है। यह हो सकता है फिर कि अगर सपने बहुत महत्त्वपूर्ण बन जाय और कोई कौम सपनो का बहुत हिसाब रखने लगे तो ठीक है, उनका हिसाब भी महत्त्व-पूर्ण हो जायेगा। और जिस आदमी के सपनो का हमे कोई पता न हो तो उस आदमी के होने का भी सदेह हो जायगा। जिस जिन्दगी को हम स्थूल कहते है, कृष्ण या क्राइस्ट या महावीर या बुद्ध उस जिन्दगी को सपना समझते है। और अगर उनके आस-पास के लोगो को भी यह समझ मे आ गया हो कि वह सपना है तो हिसाब नही रखा जायेगा। और हिसाब नही रखा गया। हिसाब न रखा जाना बहुत सूचक है। हिसाब रखा गया होता तो समझा जाता कि लोगो ने कृष्ण को नही समझा, इसलिए हिसाब रख लिया।

मै कह रहा था कि पाच सौ वर्ष तक बुद्ध की प्रतिमा नही बनी। कोई चित्र नही बना। अगर कोई चित्र भी बनाता था तो बोधिवृक्ष का चित्र बनाता था और नीचे जगह खाली छोड देता था जहा बुद्ध होने चाहिए। खाली जगह! बुद्ध एक खाली जगह ही थे। पाच सौ साल बाद चित्र और मूर्तिया बनायी गयी, क्योकि पाच सौ साल मे वे लोग खो गये जिन्होने समझा था कि बुद्ध की स्थूल जिन्दगी तो सिर्फ सपना है, और पाच सौ साल मे वे लोग प्रमुख हो गये जिन्होने कहा, हिसाब तो रखना पडेगा—बुद्ध पैदा कब हुए, बुद्ध मरे कब, बुद्ध ने कहा क्या ? उनकी शक्ल कैसी थी ? उनका शरीर कैसा था ? वह सब हिसाब बहुत दिन के बाद रखा गया। ज्ञानियो ने हिसाब नही रखा। जब ज्ञानी खो गये तो अज्ञानियो ने हिसाब रखा। स्थूल शरीर का हिसाब अज्ञान से ही जन्मता है। और फिर इससे क्या फर्क पडता है कि कृष्ण न भी हुए हो। कोई फर्क नही पडता। कृष्ण के होने मे आपको क्या फर्क पडेगा ? नही, लेकिन हम कहेगे कि अगर कृष्ण न हो तो हमे फर्क पड जायेगा। मै कहता हू, कृष्ण हुए या न हुए, इससे कोई फर्क नही पडेगा। कृष्ण के होने की जो सम्भावना है आन्तरिक, वह हो सकती है या नही हो सकती है, सवाल यह है। यह सवाल नही है कि कृष्ण हुए या नही हुए, सवाल यह है कि ऐसा व्यक्ति हो सकता है या नही हो सकता। अगर हो सकता है और हुए, तो भी फर्क नही पडता। और अगर नही हो सकता है फिर भी हुए तो भी कोई फर्क नही पडता। समाधिस्थ चित्त को इससे कोई प्रयोजन नही है।

अगर मुझसे कोई आकर कहे कि वह हुए ही नही, क्योंकि कोई रिकार्ड नहीं है, तो मै कहूगा कि मानो कि नही हुए। हर्ज क्या है? सवाल यह है ही नही। महत्त्व-पूर्ण सवाल यह है कि क्या ऐसे आदमियो की 'पॉसिबिलिटी' है? अगर आपके मन को यह समझ मे आ जाय कि ऐसा आदमी सम्भव है तो आपकी जिन्दगी बदल सकती है। उधर यह भी पक्का हो जाय, पत्थर मिल जाय लिखे हुए कि वह हुए, सारी कहानी मिल जाय, परन्तु आपका मन इस बात को मानने को राजी न हो कि ऐसा व्यक्ति हो सकता है तो आप कहेगे कि नही, लिखा है पत्थरो पर, लिखा है किताबो मे, लेकिन कहानी होगी यह आदमी हो नही सकता, क्योंकि इसकी सभावना नही है। कृष्ण के होने की सम्भावना है। इसीलिए हुए। इसीलिए हो सकते हैं। इसीलिए है भी। लेकिन इस आन्तरिक व्यक्तित्व को ध्यान मे लेने की जरूरत है। हमे तो शरीर दिखायी पडता है, वह जो आतरिक है वह दिखायी नही पडता। लिहाजा हम बहुत उत्सुक होते है उस शरीर मे। अभी मैंने कहा था की बुद्ध मर रहे है और कोई उनसे पूछता है कि आप मरने के बाद कहा होगे? तो बुद्ध उससे कहते है—कही भी नही, क्योंकि पहले भी मै कही नही था। और जो तुम्हें दिखायी पड रहा है, वह मै नही हू। जो मुझे दिखायी पड रहा है वह मै हू। इसलिए बाहर की जिन्दगी सिर्फ देखी गयी एक कहानी और एक नाटक हो जाती है। उसका कोई मूल्य नही है। और हमने कोई हिसाब नही रखा है। लेकिन इस मुल्क का मन अब कमजोर पडा है और वह भयभीत भी हुआ है। उसे डर पैदा हो गया है कि क्राइस्ट तो 'हिस्टारिक' मालूम पडते है, ऐतिहासिक मालूम पडते हैं। हमारे कृष्ण कहानी मालूम पडते है। कृष्ण का, क्राइस्ट के मुकाबले मे, हमारे पास कोई प्रमाण नही है। क्राइस्ट के लिए तो प्रमाण है। हमारा चित्त भी उन्ही धारणाओ से प्रभावित हुआ है जिन धारणाओ ने क्राइस्ट की जिन्दगी को बचाकर रखने की कोशिश की है। तो हम भी पूछते है उन्ही बातो को जो बेमानी है। अच्छा होगा, जिस दिन हमारी हिम्मत फिर बढ सकेगी और हम उनसे कह सकेगे कि तुम भी पागल हो, क्राइस्ट जैसा आदमी हुआ है और तुम मरने–जीने की तारीखो का हिसाब रखते हो। तुमने समय गवाया। इतने कीमती आदमी की बाबत इतनी गैरकीमती जानकारी रखने की कोई जरूरत नही है। इसलिए मैं कहता हू, उसकी चिन्ता ही न करे। उसकी चिन्ता आपके मन की खबर देती है कि आपके लिए महत्त्वपूर्ण क्या है। जन्म और मरण? शरीर का होना? घटनाए? ये बाहर की परिधि हैं जीवन की। या वह महत्त्वपूर्ण है जो इन सबके बीच खडा है, इन सबके भीतर खड़ा है अलिप्त, असग? आप भी लौटकर देखें अपनी पिछली जिन्दगी – तो उसे आप जिये थे सच में, या सपना देखा था? इन दोनो में फर्क कैसे कर

पायेंगे ? आप कैसे तय कर पायेंगे कि सच मे मै यह जिया था जो मुझे याद आता है या मैंने सपना देखा था ।

च्वागत्से ने एक बहुत गहरी मजाक की है । च्वांगत्से एक दिन सुबह उठा और उसने कहा कि मैं बडी मुश्किल मे पड गया हू । तुम सब इकट्ठे हो जाओ, मेरी मुश्किल को हल करो । आश्रम के सारे लोग इकट्ठे हो गये । बडे हैरान हुए, क्योकि उन सबकी मुश्किल च्वागत्से हमेशा हल करता था । वह भी मुश्किल मे पड सकता था, यह उन्होने सोचा भी नही था । उन्होने पूछा, तुम और मुश्किल मे ? हम तो सोचते थे, तुम मुश्किल के पार चले गये । च्वागत्से ने कहा, मुश्किल ऐसी ही है जिसको पार की मुश्किल कह सकते हो । उन्होने पूछा, क्या है सवाल तुम्हारा ? च्वागत्से ने कहा, रात मैंने एक सपना देखा कि मै तितली हो गया हू और फूलो पर उड रहा हू । तो उन्होने कहा, इसमे क्या मुश्किल है ? हम सभी सपने देखते है । च्वागत्से ने कहा, मामला खत्म नही होता अभी । सुबह मैं उठा और मैंने देखा कि मैं फिर च्वागत्से हो गया हू । अब सवाल यह है कि कही ऐसा तो नही है कि तितली सो गयी हो और सपना देख रही हो कि च्वागत्से हो गयी है । अगर आदमी सो कर सपना देख सकता है, अगर आदमी सपने मे तितली हो सकता है तो तितली भी सपने मे आदमी हो सकती है । तो मै तुमसे यह पूछता हू कि असली क्या है ? रात जो मैंने सपना देखा तितली होने का, वह च्वागत्से सपना देख रहा था या अब तितली सपना देख रही है । मै बडी मुश्किल मे पड गया हू । आश्रम के लोगो ने कहा, यह हम से हल न हो सकेगा । आपने तो हमे भी मुश्किल मे डाल दिया । अभी तक तो हम निश्चित है कि रात जो देखते है वह सपना है और दिन मे जो देखते है वह असलियत है । लेकिन च्वागत्से ने कहा, पागलो ! रात तुम जो देखते हो तब दिन मे जो देखा था वह भूल जाता है, उसी तरह जैसे दिन मे जब तुम जागते हो तो वह भूल जाता है जो रात देखा था और जो सपना था । बल्कि और मजे की बात है, दिन मे जागकर रात का सपना तो थोडा याद भी रह जाता है, लेकिन रात मे सपने मे सोते वक्त दिन का जागा हुआ बिल्कुल याद नही रह जाता । अगर याददाश्त ही निर्णायक है तो रात का सपना ज्यादा असलियत होगा दिन के सपने से । और अगर एक आदमी सोया रहे और न जागे तो कैसे सिद्ध कर पाये कि जो वह देख रहा है वह सपना है । सपने में तो सपना सत्य ही मालूम होता है । सपना नही मालूम होता । असल मे जिसे हम जिन्दगी कहते है, जिसे हम स्थूल कहते हैं वह कृष्ण जैसे व्यक्तित्व के लिए सपने से ज्यादा नही है । जो उनके पास थे उनकी भी समझ मे आ गया है कि वह सपना है । इसलिए कोई हिसाब नही रखा गया । यह जान कर हुआ है ।

यह होश पूर्वक छोडा गया रिकार्ड है। इसके छोडने मे सूचना है, इगित है कुछ, कि इसका हिसाब तुम भी मत रखना। इस हिसाब मे पडना ही मत। इसमे पड जाओगे तो शायद उसका पता न चल सके जो हिसाब के बाहर खडा हस रहा है।

प्रश्न आचार्यजी, हम पूर्णतया सहमत है। कृष्ण के सम्बन्ध मे जानने की हमें कोई आवश्यकता नहीं कि वह कब पैदा हुए, कब उनका मरण हुआ, कृष्ण कैसे जिये, उन्होंने क्या कहा, उनके जीवन की कथा का क्या रहस्य है ? परन्तु अभी अभी आपने कहा है कि धर्म इतिहास नहीं है, धर्म सनातन है। तो कृष्ण गीता के अध्याय तीन और श्लोक पैतीस मे कहते है कि दूसरे के धर्म से अपना गुणरहित धर्म भी अति उत्तम है, अपने धर्म मे मरना भी कल्याणकारक है, दूसरे का धर्म भयावह है। तो कृष्ण का आशय किस धर्म से है? उस धर्म से, जो रूढिगत है, जो व्यक्तिगत है, अथवा उस धर्म से जो शाश्वत है और सनातन है और सबका है। तब तो अच्छा और बुरा, अपना और पराया कहने की क्या जरूरत थी कृष्ण को ?

उत्तर बहुत जरूरत थी। कृष्ण जब कहते है कि स्वय के धर्म मे मर जाना भी श्रेयस्कर है—स्वधर्मे निधनम् श्रेय, और दूसरे के धर्म मे मरना बहुत भयावह है तो दो-तीन बाते समझ लेनी जरूरी है। एक तो यह कि यहा धर्म से अर्थ हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, जैन का नही है। यहा जो धर्म का फासला वे कर रहे है वह स्व और पर का है। वह हिन्दू है, मुसलमान है, ईसाई है इससे कोई प्रयोजन नही है। यहा सवाल है निजता और परता का। यहा वे यह कह रहे है कि तुम नकल मे मत पडना। तुम किसी और के रास्ते पर मत चलने लगना, तुम किसी और को 'इमीटेट' मत करने लगना, तुम किसी और का अनुकरण मत करने लगना। तुम किसी के अनुयायी मत हो जाना। तुम किसी को गुरु मत बना लेना, तुम अपने गुरु रहना। तुम अपनी निजता को किसी से आच्छादित मत हो जाने देना। तुम किसी के पीछे मत चल पड़ना, क्योकि कोई जहा जा रहा है, हो सकता है वह उसकी निजता हो, परन्तु तुम्हारे लिए परतन्त्रता बन जायगी और बनेगी ही। महावीर के लिए जो निजता है वह किसी दूसरे के लिए निजता नही हो सकती। क्राइस्ट के लिए जो मार्ग है वह किसी दूसरे के लिए मार्ग नही हो सकता। उसके कारण है। हम कही भी जायेंगे तो हम स्वय होकर ही जा सकते हैं। पहुचकर खो जायेगा 'स्व', लेकिन अभी है। और जिस दिन 'स्व' खो जायेगा उस दिन 'पर' भी खो जायेगा। उस

दिन जो धर्म उपलब्ध होगा, वह धर्म शाश्वत है, सनातन है। लेकिन अभी हम सागर की तरह नही है, नदियो की तरह है। अभी हर नदी को अपने रास्ते से जाना होगा सागर तक। सागर मे पहुचकर नदिया भी खो जायेगी, रास्ते भी खो जायेगे। लेकिन यह बात नदियो से की जा रही है, सागर से नही की जा रही। यह बात अर्जुन से की जा रही है। कृष्ण नदी से कहते है, अपना मार्ग छोडकर दूसरी नदी के मार्ग पर मत पड जाना। दूसरी नदी का अपना मार्ग है, अपनी गति है, अपनी दिशा है। वह अपने माग, अपनी गति, अपनी दिशा से सागर तक पहुचेगी। और तू भी नदी है। तू अपना माग, अपनी गति, अपना रास्ता बनाना और सागर तक पहुच जाना। नदी है तो सागर तक पहुच ही जायेगी। कोई नदी बधे बधाये रास्तो पर नही चलती। कोई जीवन बधे बधाये रास्ती पर नही चलता। और जब भी हम दूसरे का अनुकरण करते है, हमारे लिए बधा बधाया रास्ता 'रेडीमेड' मिल जाता है। तब हम आत्मघाती हो जाते है, तब हम अपने को मारने लगते है और दूसरे को ओढने लगते है। अगर कोई मेरे पीछे चलेगा तो वह अपने को मारेगा। उसे ध्यान मुझपर रखना पडेगा यानी जो मै करता हू वैसा वह करे। जैसा मै जीता हू वैसा वह जिये। जैसा मै उठता हू वह उठे। वह अपने को मारेगा मुझे ओढेगा। वह मुझे कितना ही ओढ ले तो भी मै उसके लिए वस्त्र से ज्यादा नही हो सकता। मै वस्त्र ही रहूगा। बडे गहरे मे तो वह वही रहेगा जो है। गहरे मे तो वह वही रहेगा जिसने ओढा है, वह वह नही हो सकता जो ओढा गया है। ओढने वाला भीतर अलग ही खडा रहेगा।

कृष्ण जब कहते है—'स्वधर्मे निधनम् श्रेय' तो वह यह कहते है कि अपने ढग से मर जाना भी श्रेयस्कर है। दूसरे के ढग से जीना भी श्रेयस्कर नही। क्योकि दूसरे के ढग से जीने का मतलब ही जिये हुए मरना है। अपने ढग से मरने का अर्थ नये जीवन को खोज लेना है। अगर मैं अपने ढग से मर सकता हू, और मरने मे भी निजता रख सकता हू तो मेरी मौत भी 'आथेंटिक' हो जायेगी, प्रामाणिक हो जायेगी। मेरी मौत है। मैं मर रहा हू। लेकिन हमने अपनी जिन्दगी को भी उधार और 'बॉरोड' कर लिया है तो वह 'आथेंटिक' नही है। तो कृष्ण कहते है, जीवन मे प्रामाणिक होना। प्रामाणिक होने का एक ही अर्थ है कि निजता को बचाना। चारो तरफ से हमले होगे। चारो तरफ वे लोग होगे जो चाहेगे, आओ मेरे पीछे आ जाओ। असल मे कोई अगर मेरे पीछे चले तो मेरे अहकार को बडी तृप्ति मिलती है। एक चले तो, दो चले तो। अगर दस चले और लाख चले तो भारी तृप्ति मिलती है। तब मुझे लगता है कि मैं कुछ ऐसा हू जिसके पीछे चलना

पडता है। मैं कुद्ध हू। और जो भी मेरे पीछे चलेगा उसे मैं पूरी तरह गुलाम बनाना चाहूगा। उस पर मैं अपनी आज्ञा, अपना अनुशासन पूरा थोप देना चाहूगा। मै उसकी स्वतत्रता जरा सी भी बचने न देना चाहूगा। क्योकि उसकी स्वतन्त्रता मेरे अहकार को चुनौती होगी। इसलिए मै चाहूगा, वह मिट जाय। मै उसपर आरोपित हो जाऊगा। सभी गुरु यही करेंगे। लेकिन जब कृष्ण यह कह रहे हैं तो बहुत अद्भुत बात कह रहे हैं —जो कि गुरु कहने की हिम्मत नही कर सकता, सिर्फ मित्र कर सकता है। इसलिए ध्यान रहे, कृष्ण अर्जुन के गुरु नही है, सिर्फ सखा है। और कभी भी गुरु की जगह खडे नही होते। सिर्फ मित्र की जगह खडे होते है। गुरु सारथी बनकर नही बैठ सकता था। गुरु कहता, मैं बैठूगा रथ मे, तू सारथी बन। गुरु कहता, मै और लगाम पकडू ? घोडा चलाऊ ? मै बैठूगा रथ मे। तू घोडा बन, तू लगाम बन। कृष्ण बैठ सके सारथी बनकर, यह बडी अद्भुत घटना है। घटना यह कहती है कि नाता मित्रता का है। मित्रता मे नीचे और ऊपर कोई नही होता। जब कृष्ण अर्जुन से यह कह रहे है कि स्व को खोज, तू निजता को खोज, तो वे यह कह रहे है कि वह जो तेरी 'इन्डीवीजुअलिटी' है, वह जो तेरा होना है उसको प्रामाणिक रूप से पहचान और वही तू बन। तू उससे भिन्न मत कर, न बन। किस कारण से उन्हे उस क्षण यह कहना पडा ?

अर्जुन की पूरी अन्तरात्मा क्षत्रिय की है। एक लडाके की, एक 'फाईटर' की है। उसका रोया रोया लडने वाले का है। वह एक सैनिक है। लेकिन बाते वह कर रहा है सन्यासी की। बाते वह भगोडे की कर रहा है इस समय, योद्धा की नही। अगर वह जगल मे सन्यास लेकर बैठ जाय और उसे सिंह दिखायी पडे तो वह भजन नही करेगा, जूझ जायेगा उससे। वह आदमी न तो ब्राह्मण है, न आदमी वैश्य है। न वह शूद्र है कि श्रम करके आनद पा सकता है। न वह ज्ञान की चर्चा करके आनन्द पा सकता है, न वह धन कमा कर आनन्द पा सकता है। उसका आनन्द चुनौती मे है। उसका आनन्द कही जूझने मे है। वह किसी अभियान मे ही अपने को पा सकता है। किसी 'एडवेचर' मे ही अपने को पा सकता है। लेकिन बाते वह दूसरी करता है। इसलिए वह स्वधर्म से च्युत हो रहा है। कृष्ण उससे कहते है कि तू बाते कैसी कर रहा है? मै तो सोचता था, तू क्षत्रिय है। मैने तो समझा था अर्जुन, कि तू लडाका है। तू 'एस्केपिस्ट' नही है, तू भगोडा नही है। पर, तू बाते पलायनवादी की कर रहा है। तू कहता है कि यह मर जायेंगे, कि मै मर जाऊगा, कि मर जाने से बडा बुरा हो जायेगा। तू कही किसी और को तो नही ओढ़ रहा है ? कही तूने सुनी सुनायी बाते तो नही अपने ऊपर ओढ़ ली। क्योकि

सुनी सुनायी बाते तू ओढकर कुछ कर न पायेगा। तू भटक जायेगा। तू जो है उसकी खोज कर। अगर वह ब्राह्मण है तो कृष्ण न कहेगे उसको कि तू लड। अर्जुन भी यह कहने की हिम्मत नही जुटा सकता कि वह ब्राह्मण है। वह ब्राह्मण है नही। उसके सारे व्यक्तित्व की जो धार है वह तलवार की है। उसके हाथ मे तलवार हो तो ही वह निखरेगा। युद्ध के गहरे क्षण मे ही वह अपनी आत्मा को खोज पायेगा। उसे अपनी आत्मा और कही मिलने वाली नही है। इसलिए वह उससे कहते है कि अपने धर्म मे मर जाना बेहतर है। तू क्षत्रिय होकर मर जा। अगर तुझे मारना न जचता हो तो मरना तो जच ही सकता है? तू लड और मर जा। लेकिन लडने से मत भाग। क्योकि उससे भागकर तू जियेगा जरूर, लेकिन वह मरा हुआ जीना होगा, वह 'डैड लाइफ' होगी और 'डैड लाइफ' से 'लिविंग डैथ' बेहतर है।

धर्म से यहा प्रयोजन निजताओ से है और इस मुल्क ने निजताओ को चार बडे विभाग मे बाटा है। जिनको हम वर्ण कहते रहे है, वह मोटे विभाजन हैं निजताओ के। ऐसा नही है कि दो ब्राह्मण एक जैसे होते है। या दो क्षत्रिय एक जैसे होते है। नही, दो क्षत्रिय दो जैसे ही होते है। लेकिन फिर भी क्षत्रिय होने की एक समानता, एक 'सिमिलेरिटी' उनमे होती है। मनुष्य को बहुत खोज बीन करके चार हिस्सो मे बाटा है। कोई है, जो सेवा किये बिना रस न पा सकेगा। लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि वह नीचा है। वहा भूल हो गयी। जिन्होने जाना था उनके ऊपर उन्होने नियम ठहरा दिये जो नही जानते थे। जिन्होने जाना था उनका कहना कुल इतना था कि कोई है जो सेवा करके ही कुछ आनन्द पा सकेगा। उससे उसकी सेवा छीन ली जाय, वह आनन्द से रिक्त हो जायगा, उसकी आत्मा खो जायेगी। कोई स्त्री मेरे पास आती है, वह कहती है दो क्षण मुझे पैर दाब लेने दें। न मैंने उससे कहा, न मैंने उससे आग्रह किया, न पैर दाबने से मुझसे कुछ मिलेगा। लेकिन उसे क्या हो रहा है? वह पैर दाबकर जरूर कुछ पायेगी। अपनी आत्मा पायेगी। मुझसे कुछ नही मिल सकता, लेकिन सेवा उसका रस है तो वह अपनी आत्मा पायेगी, वह अपनी निजता पायेगी।

कोई है, जो सब धन छोड सकता है ज्ञान के लिए। भूखो मर सकता, भीख माग सकता, घर-द्वार छोड सकता है। हमे बडी हैरानी होगी। एक वैज्ञानिक है, वह एक जहर को अपनी जीभ पर रख सकता है इस बात का पता लगाने के लिए कि क्या आदमी इससे मर जाता है? वह इस आविष्कार मे मरेगा, लेकिन ब्राह्मण है वह। ज्ञान की उसकी खोज है। वह अपनी आत्मा को पा लेगा। जहर

को जीभ पर रखकर जान लेगा कि हां, इससे आदमी मर जाता है। शायद यह कहने को भी न बचे वह, लेकिन उसका मर जाना कह देगा। लेकिन इससे वह तृप्त होगा। इससे वह अपनी आत्मा को पा लेगा। हमे बडी हैरानी होगी कि पागल है यह आदमी ! हजार सुख थे इस दुनिया मे, उन्हे छोडकर जहर की जाच करने गया ! कोई और रास्ता न था, कोई और जाच न कर सकता था ? जाच ही कर लेनी थी तो कुछ और कर लेता। इसके चित्त की जो धारा है वह जानने की है। इसे सेवा से कोई रस न मिलेगा। इसे कोई कितना ही कहे कि पैर दबाने से बहुत रस आता है, तो यह कहेगा कि तुम्हे आता हो तो तुम मेरे पैर दबा दो। मैं तो नही दबाता। यह रस इसकी समझ के बाहर पडेगा।

कोई है जो किसी युद्ध के क्षण मे, वह युद्ध चाहे किसी भाति का हो, अपनी पूरी चमक को पा लेता है। उसकी चमक युद्ध के क्षण मे ही निखरती है। वह एक क्षण को उस जगह पहुच जाता है जहा उसका सब दांव पर लग जाता है। पूरा जीवन दाव पर लग जाता है, जहा तय करना मुश्किल हो जाय कि जिन्दगी या मौत ! उस क्षण मे उसके भीतर जो छिपा है वह प्रगट होगा और फूल बन जायेगा। वह क्षत्रिय है।

फिर कोई राकफेलर है, कोई मार्गन है ! मार्गन से किसी दिन मजाक मे उसके सेक्रेटरी ने कहा कि जब मै आपको नही जानता था तब तो मै सोचता था और सपने देखता था कि कभी मै भी मार्गन हो जाऊ ! लेकिन जब आपके निकट आया और निजी सेक्रेटरी की तरह रहा तब से, आपसे कहना चाहता हू, अगर भगवान मुझे फिर से मौका दे तो मै मार्गन कभी न होना चाहूगा। मार्गन ने कहा, तुम्हे मुझमे ऐसी क्या तकलीफ दिखायी पडती है। सेक्रेटरी ने कहा, मै बडा हैरान हू, आपके दफ्तर के चपरासी साढे नौ बजे दफ्तर पहुचते है, दस बजे क्लर्क पहुचते है, साढ़े दस बजे सेक्रेटरी पहुचते है, बारह बजे डाइरेक्टर्स पहुचते है। तीन बजे डाइरेक्टर्स चले जाते हैं, चार बजे सेक्रेटरी चले जाते हैं, पाच बजे क्लर्क चले जाते है। साढे पाच बजे चपरासी चले जाते है। आप दफ्तर सुबह पाच बजे पहुच जाते है, शाम को सात बजे जाते है। मै आपका चपरासी होऊ तो भी ठीक। आप यह क्या कर रहे है ? मार्गन को वह आदमी न समझ सकेगा। मार्गन के पास वैश्य का चित्त है। वह तृप्त हो रहा है। वह अपनी आत्मा को खोज रहा है। वह हसता है। वह कहता है चपरासी होकर साढ़े नौ बजे आने मे कहा वह आनन्द जो मालिक होकर सुबह सात बजे आने मे है। माना कि डाइरेक्टर्स तीन बजे चले जाते है, लेकिन डाइरेक्टर बिचारे चले ही जायेंगे, मै मालिक हू।

यह व्यक्ति, किसी गहरी मालकियत मे ही तृप्त हो सकता है। इस मुल्क ने हजारो लाखो व्यक्तियो के हजारो साल के अध्ययन के बाद यह तय किया था कि आदमी चार मोटे विभाजन मे बाटे जा सकते हैं। इस विभाजन मे कोई नीचा-ऊपर न था। लेकिन बहुत जल्दी, जो नही जानते थे उन्होने तय कर दिया कि कौन नीचा, कौन ऊपर। उससे कष्ट खडा हो गया। वर्ण की तो अपनी वैज्ञानिकता है। वर्ण व्यवस्था का अपना ढग है। वह एक अन्तर्दृष्टि है मनुष्य के व्यक्तित्वो मे, और व्यक्तित्व ऐसे हैं।

कृष्ण अर्जुन से यह कह रहे हैं कि तू ठीक से पहचान ले कि तू है कौन ? और तू जो है उसी मे मर, और तू जो नही है उसमे जीने का पागलपन मत कर। इस स्व के होने मे वर्ण पर्याप्त नही है, क्योकि वर्ण बहुत मोटे विभाजन है। दो व्यक्ति भी एक जैसे नही, एक एक व्यक्ति अपने ही जैसा है। 'यूनीक' है, बेजोड है। असल मे, परमात्मा कोई 'मेकेनिक' कोई यत्नविद् नही है। एक 'क्रियेटर' है। एक स्रष्टा है।

अगर रवीन्द्रनाथ से कोई कहे कि एक कविता जो आपने लिखी थी, वैसी ही दूसरी लिख दो तो रवीन्द्रनाथ कहेगे, तुमने क्या मुझे चुका हुआ समझा है, खत्म हुआ समझा है। क्या मै मर गया ? जो कविता मैने एक दफा लिख दी, लिख दी, बात खत्म हो गयी। अब दुबारा मै वही लिखू तो मतलब हुआ, मेरा कवि मर चुका। मै दूसरी कविता लिख सकता हू। कोई चित्रकार दुबारा वही चित्र नही बना सकता।

एक दफा बहुत मजे की घटना घटी। पिकासो का एक चित्र तीन या चार लाख रुपये मे बिका। जिसने खरीदा था, वह पिकासो के पास ही दिखाने लाया। उसने कहा, यह 'आथेंटिक' तो है ? प्रामाणिक तो है न, आपका ही है न बनाया हुआ ? कोई नकल तो नही है। पिकासो ने कहा, आथेंटिक नही है, नकल है। तूने मुफ्त पैसे खराब किये। उस आदमी ने कहा, क्या कह रहे है आप ? आपकी पत्नी ने गवाही दी है कि आपने ही बनाया है। पिकासो की पत्नी आ गयी, उसने कहा कि यह चित्र तो आपका बनाया हुआ है। मैने आपको बनाते देखा, ये दस्तखत आपके है, यह नकल नही है। पिकासो ने कहा, यह मैने कब कहा कि मैने नही बनाया ? ऐसा मैने नहीं कहा। लेकिन यह मेरे पुराने चित्र की प्रतिकृति है, मैंने फिर से इसे बनाया है। इसलिए यह नकली है 'आथेंटिक' नही है। इसको कोई दूसरा चित्रकार भी उतार सकता था। इसको बनाते वक्त मै क्रियेटर नही था। इसको बनाते वक्त मैं

सिर्फ 'इमीटेटर' था। किसी पिछले पिकासो की नकल है यह। वह जो पहला चित्र था वह आथेंटिक था, वह मैंने बनाया था। वह मैंने उतारा नही था।

परमात्मा सृजन कर रहा है। वह एक सा दूसरा पत्ता नही बनाता। एक सा दूसरा फूल नही बनाता, एक सा दूसरा ककड नही बनाता। एक सा दूसरा आदमी नही बनाता। वह चुक नही गया। जिस दिन चुक जायेगा उस दिन वह रिपीट करना शुरू कर देगा। तब वह 'नान आथेटिक' आदमी बनाने लगेगा। वह महावीर एक दफा बनाता है, कृष्ण एक दफा, बुद्ध एक दफा, आपको भी एक दफा बनाता है। आपको भी नही दोहराया कभी। यह बडी गरिमा की बात है। आप भी एक ही बार बनाये गये है— न पहले, न पीछे, न आगे।

तो जो आप है, उस निजता को आप नकल मे मत गवा देना। क्योकि परमात्मा तक ने नकल नही की जब उसने आपको बनाया, आप कही नकल करके नकली मत बन जाना। इसलिए कृष्ण कहते है —"स्वधर्मे निधनम् श्रेय"। अपने ही धर्म मे मर जाना बेहतर है। "परधर्मो भयावह ' —दूसरे का धर्म बहुत भय का है। उससे बचना, उससे सावधान रहना, उससे भयभीत रहना। भूलकर भी दूसरे के रास्ते पर मत जाना, भूलकर भी दूसरा बनने की कोशिश मत करना। स्व बनने की चेष्टा ही धर्म है, नदी के लिए। सागर के लिए तो न कोई स्व है, न कोई पर है। लेकिन वह सिद्धि की बात है। वह आखिरी जगह है जहा हम पहुचते है। जहा से हम चलते है वह जगह नही है। जहा से हम चलते है वहा से हमे व्यक्ति की तरह चलना होगा। जहा हम पहुचते है वहा हम अव्यक्ति हो जाते है। वहा न कोई स्व है, न कोई पर है। लेकिन उस जगह पहुचेगे आप 'स्व' की तरह, 'पर' की तरह आप कभी न पहुचेगे। उसको ध्यान मे रखकर वह बात कही गयी है।

प्रश्न स्वधर्म की महत्ता पर इसी सदर्भ मे प्रकाश डालें। आपने कहा कि कृष्ण कभी गुरु की तरह खडे नहीं होते, लेकिन अर्जुन तो हर बार शिष्य की तरह नीचे बैठकर, उनके चरणो मे नत होकर प्रश्न पूछता है?

उत्तर इसमे दो तीन बाते समझनी चाहिए — एक, अर्जुन के व्यक्तित्व को थोडा भी समझेंगे तो यह नही कहा जा सकता कि क्षत्रिय होना उसकी निजता नही है। वह क्षत्रिय ही है। और जब विषाद उसे पकडता है तब वह विषाद क्षण भर को आयी हुई घटना है। अर्जुन को विषाद पकडने का कारण यह नही है कि कोई मर जायेगा। अर्जुन को विषाद पकडने का कारण है कि अपने लोग मर जायेंगे।

अगर अर्जुन के सामने युद्ध के मैदान मे सगे सम्बन्धी न होते तो अर्जुन बिल्कुल मूलियो की तरह उन्हे काट सकता था। अर्जुन को विषाद हिंसा के कारण नही पकड रहा है, ममत्व के कारण पकड रहा है। अर्जुन को ऐसा नही लग रहा है कि मारना बुरा है। मारना बुरा है, यह तो वह 'रेशनलाइजेशन' खोज रहा है। बुनियादी विषाद तो यह है कि ये अपने ही प्रियजन है। कोई सगे बन्धु हैं, कोई रिश्तेदार है। गुरु सामने खडे है, जिनसे सब सीखा। वह द्रोण हैं, पितामह भीष्म हैं। कौरव भी सब भाई हैं जिनके साथ बचपन मे खेले और बडे हुए, जिनको कभी सोचा नही कि मारना पडेगा। एक ममत्व उसे पकड रहा है। इसलिए ब्राह्मण होने की बात नही है यह, क्योकि ब्राह्मण होने का मतलब ही है कि ममत्व छूटे। सच तो यह है कि कृष्ण जो जो कह रहे हैं वह ममत्व छोडने को कह रहे है। अगर अर्जुन यह कहता है कि मारना ही मेरे मन मे नही उठता तो कृष्ण ने यह बाते न कही होती, जो कही है। कृष्ण महावीर को नही समझा सकते थे। ऐसे महावीर भी क्षत्रिय के घर म जन्मे थे। व्यवस्था से क्षत्रिय थे। लेकिन महावीर यह नही कह रहे थे कि ये मेरे है। उनका विषाद यह नही था कि मेरो को कैसे मारू, मेरो को तो वह बिल्कुल बिना विषाद के छोडकर चले आये। मेरो का तो कोई सवाल न था। नही, उनका प्रश्न ही और था। वह प्रश्न यह था कि मारना ही क्यो ? मारने का प्रयोजन ही क्या ? मारने का अर्थ ही क्या ? मारने मे धर्म ही नही है, यह उनका सवाल था। यदि कृष्ण उनसे कहते कि 'स्वधर्मे निधनम् श्रेय' तो वह कहते, मेरा स्वधर्म यह है कि मै न मारू और मर जाऊ। वह कृष्ण से कहते कि तुम अपनी बात मुझमे मत कहो। वह परधर्म हो जायेगा। ठीक यही गीता अगर महावीर से कही होती तो महावीर रथ से उतरते, नमस्कार करते और जगल चले जाते। कोई फर्क नही पडने वाला था। अर्जुन को ये बात जँच गयी। जँच गयी उसका कारण यह नही कि कृष्ण जंचा सके। जँच गयी इसलिए कि था तो वह क्षत्रिय। 'टेम्परेरी फेज' आ गयी थी उसमे इन बातो की, कि ये मर जायेगे, ये मेरे है। इसलिए कृष्ण उस 'फेज' को हटा सके। यह आकाश न था उसके मन का, बादल आ गये थे जो हटाये जा सकते थे। अगर यह उसके मन का आकाश होता तो कृष्ण के हटाने का सवाल न उठता, न वे हटाने की कोशिश ही करते। गीता घटती ही नही। लेकिन पूरी जिन्दगी अर्जुन की कहती है कि उसका आकाश तो क्षत्रिय का है। इसलिए कृष्ण जिसे हटाते है, वह 'टेम्परेरी फेज' है। और मैं मानता हूँ, अगर वह स्वधर्म होता तो अर्जुन को हटने की जरूरत क्या है ? कृष्ण यही तो कह रहे हैं कि अपने स्वधर्म मे मर जाना बेहतर है। अर्जुन कहता, मेरा स्वधर्म है कि मैं मर जाऊँ। अब आप मुझे क्षमा करे, अब मै जाता हूँ। बात खत्म हो गयी है।

क्योंकि कृष्ण यह कहा कह रहे हैं कि तू पराई बात मान ले। वह यही तो कह रहे हैं कि जो तेरा स्वधर्म है उसे पहचान। सारी चेष्टा पूरी गीता में अर्जुन का जो स्व है, उसे अर्जुन पहचाने इसके लिए है। अर्जुन के ऊपर कोई चीज थोपने की आकांक्षा नही है। दूसरी बात आप कहते है, वह भी सोचने जैसी है।

मैंने यह कहा कि कृष्ण गुरु नही हैं, वह सखा हैं। मैंने यह नही कहा कि अर्जुन शिष्य नही है। अर्जुन शिष्य हो सकता है। वह अर्जुन की तरफ से सम्बन्ध है। वह सम्बन्ध कृष्ण की तरफ से नही है। और अर्जुन शिष्य है। वह सीखना चाहता है। सीखना चाहता है इसलिए पूछता है। प्रश्न शिष्य करते है। अर्जुन पूछता है। पूछने का अपना अनुशासन है। पूछना हो तो नीचे बैठना पडता है। वह पूछने का हिस्सा है। पूछना हो तो हाथ फैलाने पडते है। पूछना हो तो समझने की उत्सुकता दिखानी पडती है। पूछना हो' तो विनम्रता से समझना पडता है। इसमे कृष्ण नही कह रहे उसको कि वह विनम्र हो। इसमे वह नही कह रहे कि वह नीचे बैठे। वह गुरु नही है। उनकी तरफ से अर्जुन मित्र है। मित्र है इसलिए समझा रहे हैं। उनकी तरफ से मित्रता की ही बात है। इसीलिए इतना ज्यादा समझा पाये। अगर गुरु होते तो बहुत जल्दी नाराज हो गये होते। कहते कि बस अब बहुत हुआ। जो मैं कहता हूँ, मान। सन्देह करना ठीक नही, शक करना उचित नही। गुरु पर श्रद्धा रख। जब मैं कहता हूँ लड, तो लड, समझाने की क्या जरूरत है। नही, इतनी लम्बी गीता कृष्ण की तरफ से इस बात की सूचना है कि समझाने के लिए वे निरन्तर तत्पर हैं। इसमे कही भी वे जल्दबाजी मे नही हैं। अर्जुन बार-बार वही सवाल उठाता है। सवाल नये नही है। गीता मे सब सवाल घूम फिर कर फिर वही है। लेकिन कृष्ण उससे एक बार भी नही कहते कि तू फिर वही पूछ लेता है।

गुरु होगा तो नाराज होगा, कहेगा कि बस, यह तुम पूछ चुके। हम कह चुके, अब समझो और मानो। नही, यह सवाल नही है। आप बार-बार पूछते हो, उसका मतलब यह है कि नही समझ मे आया, फिर समझाने की कोशिश जारी रहेगी। इसलिए इतनी लम्बी गीता सम्भव हो पायी। यह गीता कृष्ण का दान नही है, अर्जुन की कृपा है। अर्जुन पूछे चला जा रहा है। अर्जुन पूछे चला जाता है। इसलिए कृष्ण को कहते जाना पडता है। और बाद मे हमे ऐसा लगता है कि कृष्ण ने करवा लिया। इतना समझाकर कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध मे डाल दिया। यह हमे लग सकता है। यह हमे इसलिए लग सकता है कि अर्जुन भाग रहा था। फिर भागा नही, युद्ध किया। लेकिन कृष्ण पूरे समय

अर्जुन को मुक्त ही कर रहे है और वह जो हो सकता है, जो होने की उसकी क्षमता है, उसे प्रकट कर रहे है। उसे जाहिर कर रहे है। अगर पूरी गीता सुनकर भी अर्जुन कहता कि सुना सब, लेकिन मै जा रहा हूँ, तो कृष्ण उसे हाथ पकडकर रोकने वाले नही थे।

बडे मजे की बात है कि कृष्ण ने युद्ध मे भाग न लेने का निर्णय लिया। खुद वह युद्ध मे लडने वाले नही है, और युद्ध मे न लडने वाले अर्जुन को समझा रहे है कि युद्ध मे लड! खुद वह युद्ध के बाहर खडे है। मजा यह है कि अर्जुन उस आदमी मे समझ रहा है जो आदमी युद्ध मे लडने वाला नही है। बडी महत्त्व की बात है यह। अर्जुन को भी अगर यह ख्याल आ जाय कि कृष्ण अपने को मेरे ऊपर थोप रहे है तब उचित तो यही होता है कि कृष्ण समझाते कि भाग जा, क्योंकि मै खुद ही लड नही रहा हूँ। कृष्ण का एक नाम आपको पता है, वह है रणछोडदास, युद्ध से जो भाग खडे हुए। रणछोडदास समझा रहे है कि लडो। अगर अपने को ही थोपना होता कृष्ण को तो कहना चाहिए, बिल्कुल ठीक, तू मेरा शिष्य हुआ, चलो हम दोनो भाग जायँ। नही, अपने को थोपने की बात जरा भी दिखायी नही पडती। क्योकि कृष्ण, सिर्फ इतना ही कह रहे है कि ऐसा मै समझता हूँ कि तू क्षत्रिय है। ऐसा मै तुझे जानता हू बहुत निकट से कि तू क्षत्रिय है। जितने निकट से तू भी अपने को नही जानता उतने निकट से मै तुझे पहचानता हूँ, कि तू क्षत्रिय है। तुझे इतना ख्याल दिला रहा हूँ। पूरी गीता में इतना ही ख्याल दिलाने की बात है कि तू कौन है? और जब तुझे ख्याल आ जाय, तब जो भला लगे तू कर। होता है वह जो कृष्ण समझा रहे है, इसलिए हमे यह ख्याल आ सकता है कि उन्होने वही करवा लिया जो वे वह चाहते थे। लेकिन कृष्ण कुछ भी नही चाह रहे है। क्योकि इस अचाह के कई अदभुत कारण है। कृष्ण खुद अकेले लड रहे है अर्जुन की तरफ, उनकी सारी फौजें लड रही है दूसरी तरफ से। लडने वाला का यह ढग नही है कि खुद की फौजे दुश्मन की तरफ से लडे। लडने वालो के ये ढग कभी सुने नही गये। हिटलर राजी हो सकता है कि फौजे लडे दुश्मन की तरफ से? कभी राजी नही हो सकता। फौजे होती ही इसलिए है कि अपनी तरफ से लडे। लडने वाले का चित्त लडने का पूरा इन्तजाम करता है। यह बडी अजीब लडाई चल रही है। इसमे एक आदमी है जो लड रहा है इस तरफ से, उसकी सारी फौजे लड रही है दुश्मन की तरफ से। निश्चित ही यह आदमी लडने मे बहुत रस वाला नही है। लडने से इसे बहुत प्रयोजन नही है। लेकिन स्थिति लडने की है। इसलिए अपने को भी दो हिस्सो मे बाँटा है कि बाद मे आप दोषारोपण न कर सके।

कृष्ण की स्थिति बहुत ही अद्भुत है। उनके सारे व्यक्तित्व की बनावट बहुत अद्भुत है। और यह लडाई भी बहुत मजे की है। साँझ हो जाती है। युद्ध बन्द हो जाता है और सब एक दूसरे के खेमो मे गपशप करने चले जाते हैं। एक दूसरे से जाकर पूछने लगते हैं कि आज कौन मर गया और कौन क्या हो गया ? सवेदना भी प्रकट करने जाते है। बडी अजीब लडाई है। यह लडाई ऐसी नही लगती कि दुश्मनो की है। दुश्मनी जैसे नाटक है। जैसे खेल है। जैसे अपरिहार्यता है, एक 'इनएवीटेबिलिटी' है जो ऊपर आकर पडी है। लेकिन कोई दुश्मनी नही मालूम पडती। और कैसे मजे की बात है, युद्ध समाप्त हो जाता है और कृष्ण ही सलाह देते है पाण्डवो को कि वे भीष्म से जाकर शाति का पाठ ले ले। भीष्म मे जो उस तरफ से युद्ध का अग्रणी है! युद्ध का जो सेनापति है दुश्मन की तरफ से, उससे शान्ति का पाठ लेने के लिए शिष्य की तरह बैठ जाते है लोग जाकर। भीष्म का जो सन्देश है वह शाति पर्व है। बहुत अजीब बात है। बडी 'मिरेकलस' है। दुश्मन से कभी कोई शान्ति का पाठ लेने गया है! मरते हुए भीष्म से शाति का पाठ लिया जा रहा है। धर्म का राज समझा जा रहा है। युद्ध साधारण युद्ध नही है। बहुत असाधारण है। इस युद्ध के मैदान पर खडे हो गये योद्धा साधारण लडाई मे गये हुए सैनिक नही है, इसलिए इसे गीता 'धर्म-युद्ध' कह पाती है।

कृष्ण समझा-बुझा कर युद्ध नही करवा लेते है। कृष्ण समझा-बुझा कर अर्जुन के क्षत्रिय होने को प्रकट कर देते है। एक मूर्तिकार का मुझे स्मरण आता है। एक मूर्तिकार एक पत्थर मे मूर्ति खोद रहा है। कोई आदमी देखने आया है उसके मूर्ति बनाने को। पत्थर छिदते जाते है, छेनी पत्थर काटती चली जाती है, मूर्ति उघडने लगती है। फिर पूरी मूर्ति उघड जाती है। वह जो देखने आया है वह कहता है, तुम अद्भुत कारीगर हो। तुमने जैसी मूर्ति बनायी ऐसी मैने किसी को बनाते नही देखा। वह कहता है, माफ करना, तुम कुछ ग़लत समझे। मै मूर्ति को बनाने वाला नही हूँ, सिर्फ उघाडने वाला हूँ। इधर से गुजरता था, मूर्ति मुझे दिखायी पडी इस पत्थर मे कि अरे, इस पत्थर मे एक मूर्ति छिपी है! मैने सिर्फ गैर जरूरी पत्थर अलग कर दिये और मूर्ति जो छिपी थी वह प्रकट हो गयी। मैं बनाने वाला नही हूँ, उघाडने वाला हूँ।

अर्जुन को कृष्ण सिर्फ उघाडते है, बनाते नही। वह जो था, उघाड देते हैं। उनकी छेनी सिर्फ गैर जरूरी पत्थर अलग कर देती है। बाद मे जो अर्जुन प्रकट होता है वह अर्जुन का होना है, उसकी निजता है। ऐसा वह आदमी था।

पर हमे तो लगेगा कि मूर्ति बनायी है। हमने छेनी से पत्थर काटते देखा है। लेकिन यह एक मूर्तिकार का कहना नही है, बहुत मूर्तिकारो का कहना है कि उन्हे मूर्तियाँ पहले पत्थरो मे दिखायी पडती है, फिर वह उन्हे उघाडते हैं। पत्थर बोलते हैं मूर्तिकार से, कि आओ इधर, इधर कुछ छिपा है। इधर उघाडो। सभी पत्थर काम नही आते है, किसी पत्थर मे जहाँ छिपा होता है, उस निजता को उघाडा जाता है। इसलिए पूरी गीता एक उघाडने की प्रक्रिया है। उसमे अर्जुन जैसा हो सकता था वैसा प्रकट हुआ है।

प्रश्न आप एक शब्द बहुत इस्तेमाल करते हैं —वह शब्द है 'अद्भुत'। वही शब्द मे आप पर निरूपित करता हूँ और मै आपसे ही पूछता हूँ कि क्या आप अद्भुत नहीं हैं?

उत्तर (हँसी) इसे बाद मे लेगे।

प्रश्न . आपने कहा कि कृष्ण अर्जुन के गुरु नहीं मित्र हैं। इसलिए वे अर्जुन की लबी शकाओ का धैर्यपूर्वक स्वागत करते हैं। लेकिन गीता मे ही वे अन्यत्र कहते हैं कि 'सशयात्मा विनश्यति'। इन दोनो बातो मे सगति कैसे बैठे? सशयात्मा अर्जुन नष्ट नहीं हुआ, लेकिन कौरव जो सशयात्मक नहीं थे वे नष्ट हुए। कृपया इसे समझायें?

उत्तर सशयात्मा विनष्ट हो जाते है यह बडा सत्य है। लेकिन सशय के अर्थ समझने मे भूल हो जाती ह। सशय का अर्थ सदेह नही है। सशय का अर्थ 'डाउट' नही है। सशय का अर्थ है 'इनडिसीसिवनेस' सशय का अर्थ है अनिर्णय की स्थिति। सदेह तो बडे निर्णय की स्थिति है। सदेह अनिर्णय नही है। सदेह भी निर्णय है। श्रद्धा भी निर्णय है, सदेह नकारात्मक निर्णय है, श्रद्धा विधायक निर्णय है। एक आदमी कहता ह, ईश्वर है, ऐसी मेरी श्रद्धा है। यह एक निर्णय है। एक 'डिसीजन' है। एक आदमी कहता है, ईश्वर नही है, ऐसा मेरा सन्देह है। यह भी एक निर्णय है। यह 'निगेटिव डिसीजन' है। एक आदमी कहता है कि पता नही, ईश्वर है, पता नही, ईश्वर नही है। यह 'इनडिसीसिव' निर्णय है, यह सशय है। सशय विनाश कर देता है। क्योकि वह अनिर्णय मे छोड देता है। अर्जुन को जब कृष्ण कहते हैं कि तू सशय मे मत पड, निर्णायक हो, निश्चयात्मक हो, निश्चयात्मक बुद्धि को उपलब्ध हो। तू निश्चय कर कि तू कौन है? तू सशय में मत पड कि मैं क्षत्रिय हूँ, कि मैं ब्राह्मण हूँ, कि मैं लडने को हूँ, कि मैं सन्यास लेने को हूँ। तू निर्णय कर। तू स्पष्ट निर्णय को

उपलब्ध हो, अन्यथा विनष्ट हो जायेगा। तू भटक जायेगा। तू खण्ड खण्ड हो जायेगा। तू अपने ही भीतर विभाजित हो जायेगा, और लड जायेगा और टूट कर नष्ट हो जायेगा। 'डिस इन्टीग्रेटेड' हो जायेगा। सशय को अक्सर ही सदेह समझा गया है और वहाँ भूल हो गयी है। मै सदेह का पक्षपाती हूँ, सशय का पक्षपाती मैं भी नही हू। मैं भी कहता हू, सदेह बहुत उचित है और सदेह के लिए कृष्ण जरा भी इन्कार नही करते। सदेह के लिए तो वह बिल्कुल राजी है, कि तू पूछ। इसका मतलब ही सदेह है। लेकिन वह यह कहते है कि तू भीतर सशय से मत भर जाना। 'कन्फ्यूज्ड' मत हो जाना। सभ्रम से मत भर जाना। ऐसा न हो कि तू तय करने मे असमर्थ हो जाय कि क्या करणीय है, क्या न करणीय है। क्या करूँ, क्या न करूँ? 'ईदर आर' मे मत पड जाना। या यह या वह, ऐसे मे मत पड जाना।

एक विचारक हुआ है सोरेन कीरगार्ड। उसने एक किताब लिखी है, 'ईदर आर'। किताब का नाम है— यह या वह। किताब ही लिखी ऐसा नही था, उसका व्यक्तित्व भी ऐसा ही था – यह या वह। उसके गाँव कोपेनहेगन मे उसका नाम ही लोग भूल गये और 'ईदर आर' उसका नाम हो गया। जब वह गलियो से निकलता था तो लोग चिल्लाते ईदर आर जा रहा है। क्योकि वह चौरस्तो पर भी खडा होकर सोचता कि इस रास्ते से जाऊँ कि उस रास्ते से जाऊँ। ताले मे चाभी डालकर सोचता कि इस तरफ घुमाऊँ कि उस तरफ घुमाऊँ। एक स्त्री को प्रेम करता था, रोजीना को। फिर स्त्री ने विवाह का निवेदन किया तो वह जीवन भर निर्णय न कर पाया — करूँ कि न करूँ। यह डाउट नही, यह 'इनडिसीसिव' है।

कृष्ण जो अर्जुन से कहते हैं, तू सशय मे पडेगा तो नष्ट हो जायेगा। सशय मे जो भी पडे वे नष्ट हो गये, क्योकि सशय खण्डित कर देगा। तू भी विरोधी हिस्सो मे बँट जायेगा। तुझे अखण्ड होना चाहिए। और निर्णय से आदमी अखण्ड हो जाता है। अगर आपने जिन्दगी मे कभी भी कोई डिसीजन लिया है, कभी भी कोई निर्णय किया है तो उस निर्णय मे आप कम-से-कम क्षण भर को तो अखण्ड हो जाते है। जितना बडा निर्णय उतनी बडी अखण्डता आती है। अगर कोई समग्र रूपेण एक निर्णय कर ले जीवन मे तो उसके भीतर सकल्प पैदा हो जाता है। वह एक हो जाता है। एक जूट, योग को उपलब्ध हो जाता है।

तो कृष्ण की पूरी चेष्टा सशय मिटाने की है, सदेह मिटाने की नही, क्योकि सदेह तो तू पूरा कर, सशय को मिटा। सदेह करने का मतलब है, उस समय तक

सदेह की छेनी का उपयोग करे जब तक श्रद्धा की मूर्ति निखर न आये। तोडते जायें, तोडते जायें। आखिर तक लडे और सदेह करे,। तोडते जायें, तोडते जायें, लडते जायें, एक दिन वह घडी आयेगी कि मूर्ति निखर आयेगी। तोडने को कुछ न बचेगा। अब तोडना अपने को ही तोडना होगा, तो समझें मूर्ति पूरी प्रकट हो गयी है, अव्यक्त पत्थर अलग हो गये हैं, अब श्रद्धा उत्पन्न होगी।

सदेह की अतिम उपलब्धि श्रद्धा है और सशय की अतिम उपलब्धि विक्षिप्तता है। पागल हो जायेगा आदमी। कही का न रह जायेगा। सब खो जायेगा। उस अर्थ मे समझेगे तो ख्याल मे बात आ सकेगी।



पर्व : चार

कृष्ण के अवतरण का आधार

जब-जब धर्म की हानि होती है

परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृताम्

जो राम में प्रगटा वही कृष्ण में प्रगटा

कृष्ण चरित्र अनुकरणीय या चिन्तनीय





४

प्रश्न आचार्यजी, श्रीकृष्ण के जन्म के समय राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थितियाँ क्या थीं, जिनके कारण कृष्ण जैसी आत्मा के अवतरण होने का आधार बना ? कृपया इसपर प्रकाश डालें।

उत्तर कृष्ण जैसी चेतना के जन्म के लिए सभी समय, सभी काल, सभी परिस्थितियाँ काम की हो सकती है। कोई काल, कोई परिस्थिति कृष्ण जैसी चेतना के पैदा होने का कारण नही होती। यह दूसरी बात है कि किसी विशेष परिस्थिति मे वैसी चेतना को विशेष व्यवहार करना पडेगा। लेकिन ऐसी चेतनाए कभी काल

पर निर्भर नही होती। सिर्फ सोये हुए लोगो के अतिरिक्त काल पर कोई भी निर्भर नही होता। जागा हुआ कोई भी व्यक्ति अपने समय से पैदा नही होता। बल्कि बात बिल्कुल उल्टी है—जागा हुआ व्यक्ति समय को अपने अनुकूल ढाल लेता है, सोये हुए व्यक्ति समय के अनुकूल पैदा होते है। लेकिन हम सदा ऐसा सोचते रहे हैं कि कृष्ण शायद इसलिए पैदा होते है कि युग बहुत बुरा है, बड़े दुर्दिन है। इस समझ मे बुनियादी भूल है। इसका मतलब यह हुआ कि कृष्ण जैसे व्यक्ति एक 'काजल चेन' मे पैदा होते है, एक कार्य-कारण की श्रृंखला मे पैदा होते है। इसका मतलब है कि हमने कृष्ण के जन्म को भी 'यूटीलिटेरियन' कर लिया, हमने उपयोगिता मे ढाल लिया। इसका यह भी मतलब हुआ कि कृष्ण जैसे व्यक्ति को भी हम अपनी सेवा के अर्थों में ही देख सकते है, और किसी अर्थों मे नही देख सकते।

अगर रास्ते के एक किनारे फूल खिले तो राह से गुजरने वाला सोच सकता है कि यह मेरे लिए खिल रहा है। मेरे लिए सुगन्ध दे रहा है। हो सकता है, अपनी डायरी मे लिखे कि मैं जिस रास्ते से गुजरता हूं, मेरे लिए फूल खिल जाता है। लेकिन फूल कभी भी खिलते है, निर्जन रास्तो पर भी खिलते है। फूल किसी के लिए नही खिलते। फूल अपने लिए खिलते है। किसी दूसरे को सुगन्ध मिल जाती है, यह बात दूसरी है।

कृष्ण जैसे व्यक्ति किसी के लिए पैदा नही होते। अपने आनन्द से ही जन्मते है। दूसरो को सुगन्ध मिल जाती है, यह बात दूसरी है। और ऐसा कौन सा युग है जिसमे कृष्ण जैसा व्यक्ति पैदा हो और हम उससे कोई उपयोग न ले सकेंगे? सभी युगों मे ले लेगे। सभी युगो मे जरूरत है। सभी युग पीडित है सभी युग दुखी है। कृष्ण जैसा व्यक्ति तो किसी भी क्षण मे उपयोगी हो जायेगा। सुगन्ध की चाह किसको नही है। किसके नासापुट सुगन्ध के लिए आतुर नही है। फूल किसी भी रास्ते पर खिले, और कोई भी गुजरे तो सुगन्ध ले लेगा। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि कृष्ण जैसे व्यक्तियो को 'यूटिलिटेरियन' उपयोगिता की भाषा मे सोचना ही गलत है। लेकिन हमारी मजबूरी है। हम हर चीज को उपयोग के ही अर्थ मे सोचते है, किस उपयोग मे आयेगी? निरुपयोगी का हमारे लिए कोई मूल्य ही नही, 'परपजलेस' का हमारे लिए कोई अर्थ ही नही है। आकाश मे बादल चलते है तो सोचते है कि शायद हमारे खेतो मे वर्षा करने के लिए चलते है। अगर घडियाँ आपके हाथो पर बँधी सोच सके तो वे शायद यही सोचेंगी कि हम बँध सके, इसलिए यह आदमी पैदा हुआ है। निश्चित ही, चश्मे अगर सोच सके तो वह

सोचेंगे कि हम देख सकें, इसलिए ये आँखें पैदा हुई हैं। लेकिन वे सोच नहीं सकते, इसलिए मजबूरी है। आदमी सोच सकता है तो वह हर चीज को 'इगोसेंट्रिक' कर देता है। अपने अहकार के केन्द्र पर कर देता है। वह कहता है, सब मेरे लिए है। कृष्ण जन्मते है तो मेरे लिए, बुद्ध जन्मते है तो मेरे लिए, फूल खिलते है तो मेरे लिए, चाँद-तारे चलते है तो मेरे लिए। आदमी के लिए सब चल रहा है। आकाश मे चाँद-तारे चलते है वे भी हमारे लिए, सूरज निकलता है वह भी हमारे लिए है। यह दूसरी बात है कि सूरज के निकलने से हम रोशनी ले लेते है, लेकिन हमे रोशनी देने को सूरज नही निकलता है। जिन्दगी की धारा उपयोगिता की धारा नही है। उपयोगिता की भाषा मे सोचना ही गलत है। जिन्दगी मे सब हो रहा है—किसी के लिए नही, होने के लिए ही। फूल खिल रहे है अपने आनन्द मे, नदियाँ बह रही है अपने आनन्द मे, बादल चल रहे है अपने आनन्द में, चाँद-तारे चल रहे है अपने आनन्द मे। आप किसके लिए पैदा हुए है ? आप किस कारण पैदा हुए है ? आप अपने आनन्द मे जी रहे है। और कृष्ण जैसा व्यक्ति तो पूर्णतया अपने आनन्द मे जी रहा है। ऐसा व्यक्ति कभी भी पैदा हो जाय तो हम जरूर उसका कुछ उपयोग करेगे। सूरज कभी भी निकले तो हम उसकी रोशनी अपने घरो मे ले जायेंगे। बादल कभी भी बरसे हम फसल पैदा करेंगे। फूल कभी भी खिले, हम उनकी मालाएँ बनायेंगे। लेकिन इस सबके लिए यह नही हो रहा है। परन्तु हमारी सोचने की भाषा निरन्तर यही रही है।

महावीर क्यो पैदा हुए ? कौन-सी राजनीतिक स्थिति थी जिसमे महावीर पैदा हुए। बुद्ध क्यो पैदा हुए ? कौन-सी सामाजिक स्थिति थी जिससे बुद्ध पैदा हुए। ध्यान रहे, इसमे एक और खतरनाक बात है और वह यह है कि व्यक्ति की चेतना सामाजिक परिस्थितियो से पैदा होती है, ऐसा मार्क्स का सोचना था। मार्क्स कहता था कि चेतना परिस्थितियाँ नही बनाती, परिस्थितियो से चेतना जन्मती है। लेकिन जो नही है कम्युनिस्ट वह भी इसी तरह सोचते है। वह भी यही कह रहे हैं कि समाज की परिस्थितियाँ कृष्ण और बुद्ध के जन्म का कारण है। नही, समाज की परिस्थितिया उनके जन्म का कारण नही है। समाज की ऐसी कोई भी परिस्थिति नही है जो कृष्ण जैसी चेतना को जन्म दे दे। समाज तो बहुत पीछे होता है, कृष्ण जब पैदा होते हैं। कृष्ण जैसी चेतना को जन्म देने की क्षमता उसकी नही है, बल्कि कृष्ण ही पैदा होकर उस समाज को नयी दिशाएं अनजाने मे दे जाते हैं। नये मार्ग दे जाते है, नयी शक्ल, नयी रूप रेखा दे जाते है।

मैं परिस्थितियो को बहुत मूल्य नही देता, मै मूल्य चेतना को, 'कासस नेस'

को ज्यादा देता हूँ। और आपसे यह कहना चाहूँगा कि जीवन उपयोगितावादी नही है, जीवन खेल जैसा है, लीला जैसा है। एक आदमी जा रहा है रास्ते पर। उसे कही पहुँचना है। उसे किसी मजिल, किसी मुकाम, किसी काम के लिए जाना है। यह आदमी भी चलता है रास्ते पर। एक आदमी सुबह घूमने निकला है। उसे कही पहुचना नही है, कही जाना नही है। कोई लक्ष्य नही है, सिर्फ घूमने निकला है। लेकिन कभी आपने ख्याल किया है कि वही रास्ता, जब आप काम करने के लिए निकलते हैं, तो बोझिल हो जाता है। वही रास्ता, जब आप घूमने के लिए निकलते हैं, तो आनन्दपूर्ण हो जाता है। वही पैर, जब काम करने को जाते है तो भारी हो जाते हैं। वही पैर, जब सिर्फ घूमने को जाते है तो जैसे पर लग जाते है और हल्के हो जाते है। वही आदमी जब काम करने जाता है तो उसके सिर पर मनो बोझ होता है, और उसी रास्ते पर, उन्ही कदमो से उतनी ही दूरी पूरी करता है सिर्फ घूमने के लिए, तब कोई हिसाब नही उसके आनन्द का। कृष्ण जैसे व्यक्ति किसी काम के लिए नही जीते। उनकी जिन्दगी घूमने जैसी है, कही जाने जैसी नही है। उनकी जिन्दगी एक खेल है। निश्चित ही, जिस से वे गुजरते है उस रास्ते पर अगर काटे पडे हो तो उन्हे हटा देते है। यह बिल्कुल दूसरी बात है। यह भी उनके आनन्द का हिस्सा है। लेकिन कृष्ण उस रास्ते से काटो को हटाने के लिए नही निकले थे। निकले थे और काटे पडे थे तो हटा दिये है। उस रास्ते पर अगर कोई आदमी रास्ता भूल गया था और उसने पूछा है कि रास्ता कहा है, उन्होने बता दिया तो वह आदमी यह न सोचे कि वह कोई ट्राफिक के पुलिस के आदमी है जो उसके लिए खडे थे वहा रास्ता बनाने को। वह वहा से निकले थे, आपने पूछा, उन्होने बता दिया। यह सब 'नान काजल' है। इसकी कार्य–कारण की कोई श्रृखला नही है। इसलिए मै कृष्ण को या बुद्ध को या क्राइस्ट को या महावीर को किसी श्रृखला मे सोचने के लिए तैयार नही हूँ। वे घटित होते है। अकारण, या कहे कि उनके कारण आतरिक है, हमारे सामाजिक और बाह्य कारण नही है।

व्यक्ति की आत्मा और व्यक्ति की चेतना का अर्थ ही यही है कि व्यक्ति-चेतना भीतर परम स्वतन्त्र है। उसे कोई बाँधता नही। उसे कोई बाँध नही सकता। एक बहुत बडे ज्योतिषी के सबध मे मैने सुना है कि उसके गाँव के लोग उस ज्योतिषी से बहुत परेशान हो गये थे। वह जो भी कहता था वह ठीक निकल जाता था। उस गाँव के दो युवको ने सोचा कि कभी तो इस ज्योतिषी को गलत करना जरूरी है। सर्दी के दिन थे, वे अपने बडे

ओवर कोट के भीतर एक कबूतर को छिपाकर उस ज्योतिषी के पास पहुँचे। और उस ज्योतिषी से उन्होने कहा कि इस कोट के भीतर हमने एक कबूतर छिपा रखा है। हम आपसे पूछने आये है, वह जिन्दा है या मरा हुआ है ? वे यह तय करके आये थे कि अगर वह कहे, जिन्दा है तो भीतर उसकी गर्दन मरोड देनी है। मरा हुआ कबूतर बाहर निकालना है। अगर वह कहे, मरा हुआ है तो कबूतर को जिन्दा ही बाहर निकाल लेना हैं। एक दफा तो मौका होना ही चाहिए कि ज्योतिषी गलत हो जाय। उस बूढ़े ज्योतिषी ने नीचे से ऊपर तक देखा और उसने जो कहा वह बहुत अद्भुत था। उसने कहा, 'इट इज इन योर हैण्ड्स'। न कबूतर जिन्दा है न मरा है, तुम्हारे हाथ मे है। तुम्हारी जैसी मर्जी। उन युवको ने कहा, बडा धोखा दे दिया आपने हमे।

जिन्दगी हमारे हाथो मे है, और कृष्ण जैसे लोगो के तो बिल्कुल हाथो मे है। वे जैसे जीना चाहते है वैसे ही जीते है। न कोई समाज, न कोई परिस्थिति, न कोई बाहरी दबाव उसमे फर्क लाता है। उनका होना उनका अपना होना है। निश्चित ही कुछ फर्क हमे दिखायी पडते हैं, दिखायी पडेंगे, क्योकि वे हमारे बीच जीते है। बहुत-सी घटनाएँ घटनी है जो हमारे बीच घटती हैं। जो कि नही घटी होती अगर किसी और समय मे वे होते। लेकिन वे गौण हैं, 'इर्रिलेवेंट' है, असगत है। उनसे कृष्ण के आतरिक जीवन का कोई लेना देना नही है। इसलिए कृपा करके ऐसा समझे कि कृष्ण किसी समाज के लिए पैदा नही होते, न किसी राजनीतिक स्थिति के लिए पैदा होते है, न किसी के बचाव के लिए पैदा होते है। हाँ, बहुत लोग बच जाते है, यह बिल्कुल दूसरी बात है। बहुत लोगो को रास्ता मिल जाता है यह बिल्कुल दूसरी बात है। कृष्ण तो अपने आनन्द मे खिलते है और यह खिलना वैसे ही अकारण है जैसा आकाश मे बादलो का चलना है, जमीन पर फूलो का खिलना है, हवाओ का बहना है। लेकिन हम इतने अकारण नही है इसलिए कठिनाई होती है समझने मे। हम तो कारण से जीते है। हम तो किसी को प्रेम भी करते है तो भी कारण से करते है। हमारा प्रेम का फूल भी अकारण नही खिल पाता है। हम बिना कारण के तो कुछ कर ही नही सकते। और ध्यान रहे, जब तक आपकी जिन्दगी मे बिना कारण के किसी 'करने' का जन्म न हो तब तक आपकी जिन्दगी मे धर्म का भी जन्म नही होगा। जिस दिन आपकी जिन्दगी मे कुछ अकारण भी होने लगे, 'अनकण्डीशनल' तो फूल खिलने की सभावना है !

प्रश्न आपने यों कहा कि कृष्ण का जन्म अकारण है, लेकिन गीता में कृष्ण ही स्वय कहते हैं कि जब जब धर्म की हानि होती है तब तब मुझे आना पड़ता है। कृपया इसे स्पष्ट करें।

उत्तर कृष्ण कहते है, कि जब जब धर्म की हानि होती है तब तब मुझे आना पडता है। इसका क्या मतलब होगा फिर ? यह वही व्यक्ति कह सकता है जो परम स्वतन्त्र हो । आप तो नही कह सकते कि जब जब ऐसा होगा मै आऊँगा। आप यह भी नही कह सकते कि अगर ऐसा नही होगा तो नही आऊँगा। हमारा आना बँधा हुआ आना है। लम्बे कर्मों का बन्धन है हमारा, 'काजल चैन' है। हम ऐसा वायदा नही कर सकते, हम ऐसी 'प्रामिस' नही दे सकते । हम हिम्मत भी नही कर सकते ऐसा वायदा करने की। कृष्ण यह भी हिम्मत कर रहे है। इस हिम्मत का भी कारण वही है कि वे किसी कारण से नही जीते है बँधकर, उनकी मात्र मौज है। इस मौज से कुछ भी निकल सकता है । यह वायदा स्वतन्त्र चेतना से ही सम्भव है। अगर कृष्ण कहते है कि मैं आ जाऊँगा ऐसी स्थिति हुई, तो स्थिति के कारण कृष्ण नही आ जायेंगे, अपनी स्वतन्त्रता के कारण आ जायेंगे।

एक बहुत अद्भुत घटना महाभारत मे है। सुबह, एक दिन युधिष्ठिर अपने घर के बाहर बैठे है और एक भिखारी भीख माँगने आ गया। युधिष्ठिर ने उससे कहा, अभी थोडा काम मे हूँ, अच्छा हो कि कल आ जाओ। भिखारी चला गया। भीम यह सुनता था। उसने पास मे पडा हुआ ढोल उठा लिया और बजाता हुआ गाँव की तरफ भागा। युधिष्ठिर ने कहा, यह क्या कर रहे हो ? भीम ने कहा, समय न चूक जाय मै गाँव मे खबर कर दूँ कि मेरे भाई ने कल के लिए वचन दिया है। मेरा भाई समय का मालिक हो गया है। तुम कल बचोगे, पक्का है ? कल यह भिखारी बचेगा, पक्का है ? कल देने योग्य मन बचेगा, यह पक्का है ? कल यह भिखारी माँगने योग्य मन का रहेगा, यह पक्का है ? कल तुम दोनो मिल सकोगे, यह पक्का है ? तुमने समय को जीत लिया मैं जाऊँ गाँव मे खबर कर दू, क्योकि मुझे कुछ भरोसा नही कि अगर घडी दो घडी चूका तो मैं बचूगा कि नही, इसलिए मैं ढोल लेकर दौडता हू। युधिष्ठिर ने कहा, ठहरो, मुझसे भूल हो गयी। ये वचन तो केवल वे ही दे सकते है जो परम स्वतन्त्र है। भिखारी को वापस बुला लो। जो मुझे देना है, आज ही दे दू, कल का कोई भरोसा नही है ।

और कृष्ण कल का वायदा नही कर रहे है। बडा लम्बा वायदा है। वह वायदा यह है कि जब भी ऐसा हुआ तब मैं आ जाऊँगा। इस वायदे मे भी कृष्ण की सिर्फ इतनी ही सूचना है कि समय का या परिस्थितियो का मेरा कोई बन्धन नही है। मैं स्वतन्त्र हूँ। यह स्वतन्त्रता की ही घोषणा है। लेकिन कई बार घोषणाएँ बडी उल्टी होती है। तब हम बडी कठिनाई मे पड जाते है। हम सोचते है, कृष्ण को भी आना पडेगा। जैसे पानी को गरम करते है तो सौ डिग्री पर उसे

भाप बनना पड़ता है। अगर किसी दिन पानी मुझसे कहे, मत घबड़ाओ अगर गर्मी कम होगी तो मैं ६० डिग्री पर भी भाप बन जाऊँगा तो उस दिन समझना कि पानी स्वतंत्र हो गया। अब कोई सौ डिग्री का बन्धन न रहा। ऐसे आश्वासन परिपूर्ण स्वतंत्रता के बोध से निकलते है। जहाँ परतंत्रता बिल्कुल गिर गयी है वहाँ ऐसे फूल खिल जाते हैं—स्वतंत्रता के आश्वासन के, अन्यथा नही खिलते।

प्रश्न आचार्य जी, एक 'कण्डिशन' उन्होंने रखी है — 'परित्राणाय साधूनां, विनाशायच दुष्कृताम्' उसका क्या अर्थ है कि साधुओ की रक्षा के लिए और दुष्टो के अन्त के लिए भी मैं आऊँगा — कृपया इसका अर्थ स्पष्ट करें ?

उत्तर साधुओ की रक्षा के लिए और दुष्टो के अन्त के लिए मैं आ जाऊँगा ठीक है। दोनो का एक ही मतलब है। दुष्टो के अन्त के लिए का भी वही मतलब है। दुष्ट का अन्त कब होता है, यह थोडा समझने जैसा है। दुष्ट का अन्त कब होता है— मार डालने से ? मार डालने से दुष्ट का अन्त नही होता। क्योकि कृष्ण भलीभाति जानते है कि मारने से कुछ मरता नही। दुष्ट का अन्त तभी होता है जब उसे साधु बनाया जा सके और कोई उपाय नही। मारने से दुष्ट का अन्त नही होता। इससे सिर्फ दुष्ट का शरीर बदल जायेगा, और कोई फर्क नही पडने वाला। दुष्ट का अन्त एक ही स्थिति मे होता है जब वह साधु हो जाय। और बडे मजे की बात यह है कि दूसरी बात उन्होने कही कि साधुओ की रक्षा के लिए। साधुओ की रक्षा की जरूरत भी तभी पडती है जब वह दिखावटी साधु रह जायँ, अन्यथा नही पडती। नही तो साधु की रक्षा की क्या जरूरत होगी ? साधु को भी रक्षा की जरूरत पडेगी, तो फिर बहुत मुश्किल हो जायेगी। साधुओ की रक्षा के लिए आऊगा, इसका मतलब है, जब साधु झूठे साधु होगे, असाधु होगे, उस दिन मै आऊँगा। सिर्फ असाधु के लिए ही रक्षा की जरूरत पड सकती है। साधु का मतलब यह होता है, 'सिक्योर्ड इन हिज इनसिक्योरिटी'। अपनी असुरक्षा मे जो सुरक्षित है उसी का नाम साधु है। अपने खतरे मे भी जो 'ऐट ईज' है उसी का नाम साधु है। साधु का मतलब ही यही है कि जिसके लिए अब कोई असुरक्षा न रही। कृष्ण की क्या जरूरत होगी उसको बचाने के लिए ? यह वचन बहुत मजेदार है। इसमे कृष्ण यह कहते हैं कि साधुओ को बचाने आना पडेगा। जिस दिन साधु साधु नही होगा, असाधु ही साधु दिखायी पड़ेंगे उस दिन बचाने आना पडेगा। और उसी दिन दुष्टो को भी बदलने की जरूरत पडेगी। नही तो यह काम साधु भी कर ले सकते है, इसके लिए कृष्ण की क्या जरूरत है ? कृष्ण की जरूरत उसी

दिन पड सकती है। दुष्ट को मारने का काम तो कोई भी कर सकता है। हम सभी करते हैं, अदालते करती हैं, दण्ड करता है, कानून करता है। यह सब दुष्टो को मारने का काम है। दुष्टो को बदलने का, 'ट्रॉसफर्मेशन' का काम नही है कि दुष्ट साधु बनाये जा सके। जिस दुनिया मे साधु भी असाधु होगा उस दुनिया मे दुष्ट की क्या स्थिति होगी ? लेकिन इस वाक्य को भी बडा अजीब समझा गया है। साधु समझते हैं, हमारी रक्षा के लिए आयेंगे। और ध्यान रहे जिसको अभी रक्षा की जरूरत है वह साधु नही है। और दुष्ट समझते है कि हमे मारने के लिए आयेंगे। दुष्टो का समझना ठीक है, क्योंकि दुष्ट सदा दूसरे को मारने को उत्सुक और आतुर रहते है। उनको ख्याल आ सकता है कि हमें मारने को—लेकिन कोई मारा तो जा नही सकता। वह वापस लौटकर वही हो जाता है। वह नासमझी कृष्ण नही कर सकते दुष्टो के विनाश के लिए ! दुष्ट का विनाश होता है साधुता से और साधुओ की रक्षा करनी पडती है जब साधु सिर्फ 'अपियरेस', दिखावा रह जाता है। भीतर उसकी कोई आत्मा साधुता की नही रह जाती। यह वचन बहुत अद्भुत है। साधुजन बैठकर अपने मठो मे इसमे विचार करते रहते है कि बडी अपने ऊपर कृपा है। जब दिक्कत आयेगी तो जरूर आयेगे। और साधु अपने मन मे इससे भी तृप्ति पाता है कि जो जो हमे सता रहे हैं वे दुष्ट है। दुष्ट की यही परिभाषा होती है कि जो जो साधु को सता रहा है वह दुष्ट है। जब कि साधु की आतरिक व्यवस्था यह है कि जो उसे सताये वह भी उसे मित्र मालूम होना चाहिए, दुष्ट नही मालूम होना चाहिए। अगर सताने वाला शत्रु मालूम पडने लगे या दुष्ट मालूम पडने लगे, तो यह जो सताया गया है साधु नही है। साधु का तो मतलब ही यही है कि जिसे अब शत्रु दिखायी नही पडता। उसे सताओ तो भी दिखायी नही पडता। और साधु बैठकर सोचते रहते है,—अर्थात् असाधु बैठकर सोचते रहते हैं कि हमारी रक्षा के लिए, यह जो दुष्ट हमे सता रहे हैं, इनके नाश के लिए कृष्ण आयेंगे। इसलिए गीता के इस वचन का बडा पाठ चलता है। लेकिन उन्हे पता नही कि ये वचन साधुओ के लिए बडी मजाक है। इस वचन मे बडा व्यग है। व्यग गहरा है जो ऊपर से एक दम दिखायी नही पडता है। कृष्ण जैसे लोग जब मजाक करते है तो गहरी ही करते है। सदियाँ लग जाती हैं मजाक को समझने मे।

प्रश्न आचार्यजी, पुराण कथाओ के आधार पर पता चलता है कि कृष्ण ही राम का रूप लेकर आते हैं और राम ही कृष्ण का रूप लेकर आते है। ये दोनों व्यक्ति क्या एक नहीं है ? इनके सम्बन्ध मे आप प्रकाश डाले।

उत्तर इस सम्बन्ध को दो-तीन बाते समझने से समझा जा सकता है । जगत की, सृजन की जो प्रक्रिया है, उस प्रक्रिया मे सदा से ही, जिन्होने खोज की है उन्होने पाया कि वह प्रक्रिया तीन चीजो पर निर्भर है । वह 'थ्रि फोल्ड' है। विज्ञान ने भी जब खोज की अणु की तो उसने पाया की अणु भी बहुत गहरे मे तोडने पर तीन चीजो मे टूट जाता है । इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्युट्रान मे अणु टूट जाता है। जिन लोगो ने धर्म के जगत मे बडी गहरी अन्तरदृष्टि पायी थी, उन्होने भी जगत को तीन हिस्सो मे तोडकर देखा था । विष्णु उन्ही तीन के एक हिस्से हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीन धर्म के द्वारा जगत की सृजन प्रक्रिया के तीन हिस्सो के नाम है। इन तीन के तीन अर्थ हैं । इसमे ब्रह्मा जन्मदाता, स्रष्टा, बनाने वाला, 'क्रियेटिव फोर्स' है । इसमे शकर, शिव, महेश विध्वस, प्रलय, विनाश, अत की शक्ति है । विष्णु इन दोनो के बीच मे हैं — सस्थापक, चलाने वाला। यानी मृत्यु है, जन्म है और बीच मे फैला हुआ जीवन है। जिसकी शुरुआत हुई है, उसका अन्त होगा। शुरुआत और अन्त के बीच मे यात्रा भी होगी । विष्णु, ब्रह्मा और शिव के बीच की यात्रा है । ब्रह्मा की एक दफा जरूरत पडेगी सृजन के क्षण मे । और शिव की एक बार जरूरत पडेगी विध्वस के क्षण मे । और विष्णु की जरूरत होगी दोनो बिन्दुओ के मध्य। जन्म और मृत्यु, दोनो के बीच जीवन है। ये तीन जो नाम है—ब्रह्मा, विष्णु, महेश के, ये व्यक्तियो के नाम नही है। ये कोई व्यक्ति नही है। ये सिर्फ शक्तियो के नाम है । और जैसा मैने कहा, सृजन की एक दिन जरूरत पडती है, फिर विध्वस की एक दिन जरूरत पडती है। बीच मे जीवन की जो जरूरत है, जीवन की जो ऊर्जा है, 'लाइफ इनर्जी' वही विष्णु है। इसलिए इस देश के सभी अवतार विष्णु के अवतार है । असल मे सभी अवतार विष्णु के ही होगे । आप भी अवतार विष्णु के ही है। अवतरण ही विष्णु का होगा, जीवन का नाम विष्णु है । ऐसा मत समझ लेना कि जो व्यक्ति राम था वही व्यक्ति कृष्ण है। नही, जो ऊर्जा, जो 'इनर्जी' राम मे प्रकट हुई थी वही कृष्ण मे प्रकट है, और वही आपमे भी प्रकट हो रही है । और ऐसा भी नही है कि जो राम मे प्रकट हुआ था वही रावण मे प्रकट नही हो रहा, हो तो वही प्रकट रहा है। वह जरा भटके हुए विष्णु है और कोई बात नही है । वह जरा रास्ते से उतर गयी जीवन ऊर्जा है और कोई बात नही है ।

समस्त जीवन का नाम विष्णु है । समस्त अवतरण विष्णु का है। लेकिन भूल होती रही जब हमने विष्णु को ही व्यक्ति बना लिया। राम एक व्यक्ति है,

कृष्ण एक व्यक्ति है, विष्णु व्यक्ति नही है। विष्णु केवल शक्ति का नाम है। क्योंकि पुरानी सारी अतर-दृष्टियाँ काव्य मे प्रकट हुई है इसलिए स्वभावत काव्य प्रत्येक शक्ति को व्यक्तिवादी बना लेता है। बनायेगा ही—अन्यथा बात नही हो सकती। और उससे बडी पहेलियाँ पैदा हो जाती है।

मैने सुना है, एक आदमी मरण शैया पर पडा है। वह ईसाई है और चर्च का पादरी उसे आखिरी प्रायश्चित्त कराने आया है, 'रिपेंटेस' कराने आया है। नियमानुसार उस मरते हुए आदमी से उस पुरोहित ने पूछा—'डू यू बिलीव इन गाड दी फादर?' वह आदमी चुप रहा। फिर दुबारा उससे पूछा कि 'डू यू बिलीव इन गाड दी सन?' वह आदमी फिर भी चुप रहा। फिर उस पुरोहित ने पूछा कि 'डू यू बिलीव इन गाड दी होलीघोस्ट?' ये ईसाइयो के तीन नाम है—फादर, सन, होलीघोस्ट। पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा—ये उनके तीन नाम है। उसने पूछा कि क्या तुम पिता रूपी परमात्मा मे विश्वास करते हो? क्या तुम पुत्र रूपी परमात्मा मे विश्वास करते हो? क्या तुम पवित्र आत्मा रूपी परमात्मा मे विश्वास करते हो? उस मरते हुए आदमी ने अपने आस-पास खडे हुए लोगो से कहा—'लुक हियर आई एम डाइग ऐंड दिस फेलो आस्किग मी पजेल्स्'—इधर तो मै मर रहा हूँ और ये सज्जन पहेलियाँ बुझा रहे है। स्वभावत उस मरते हुए आदमी को यह पहेलियाँ थी। मरते हुए आदमी को ही पहेलियाँ नही है हम जीवित आदमियो को भी बडी-से-बडी पहेली जीवन की पहेली है।

क्या है यह जीवन? कैसे जन्मता, कैसे चलता, कैसे समाप्त होता है? क्या है इसकी ऊर्जा? जो इसे फैलाती, चलाती, सिकोडती, विदा करवा देती है। विज्ञान वैज्ञानिक ढग के नाम देता है। वह कहता है, इलेक्ट्रान है, प्रोटान है, न्युट्रान है। ये तीन भी बडे मजे के शब्द है। इनमे एक विधायक शक्ति का नाम है 'प्रोटान'। पोजेटिव इलेक्ट्रिक, विधायक विद्युत। कहना चाहिए, ब्रह्मा। दूसरा शब्द है 'इलेक्ट्रान'। वह 'निगेटिव इलेक्ट्रिसिटी' है। निषेधात्मक विद्युत है। कहना चाहिए शिव, शकर। और तीसरा अवतार है 'न्युट्रान' जो दोनो के बीच जोडता और डोलता है— कहना चाहिए विष्णु। यह सिर्फ भाषा का अन्तर है। एक विज्ञान की है, एक धर्म की है। उससे ज्यादा फर्क नही है। सारा जीवन विष्णु का अवतरण है। फूल खिलते है तो विष्णु खिलते है, हवाएँ बहती है तो विष्णु बहते है नदियाँ दौडती है तो विष्णु दौडते है। वृक्ष बडे होते है तो विष्णु बडे होते हैं। आदमी जीता है तो विष्णु होते है। सब घडियाँ मृत्यु की, शकर की है। जब आदमी मरता है, तब विष्णु चार्ज सौप देते है। वह शकर के हाथ मे चला जाता है

मामला। इसीलिए तो शकर को कोई अपनी लडकी देने को राजी नही होता था। मृत्यु के हाथो मे कौन लडकी को देगा! विध्वस के हाथो मे कौन स्त्री को देगा!

विष्णु के अवतार का मतलब यह नही है कि विष्णु नाम के व्यक्ति राम मे हुए, फिर कृष्ण मे हुए, फिर किसी और मे हुए। नही, विष्णु नाम की ऊर्जा राम मे उतरी, कृष्ण मे उतरी, सबमे उतरी है और उतरती रहेगी। शकर नाम की ऊर्जा उसे विदा देती रहेगी। इस तरह समझेगे तो बात सीधी और साफ समझ मे आ सकती है। फिर पहेली नही रह जाती। फिर पहेली नही है।

जीवन मे कोई भी चीज निर्माण करनी हो तो जो न्यूनतम सख्या है वह तीन है। इससे न्यून सख्या से काम नही चलेगा, दो से काम नही चलेगा, एक से तो चल ही नही सकता। एक तो बिल्कुल एक रूप हो जायेगा। सब एक रग, एक रस हो जायेगा। सब वैविध्य खो जायेगा। दो भी काफी नही है, क्योकि दो को जोडने के लिए सदा तीसरे की जरूरत पडेगी। अन्यथा वे अनजुडे रह जायेंगे, अलग-अलग रह जायेगे। न्यूनतम जो सभावना है जगत के विकास की, वह तीन से शुरू होती है। तीन से ज्यादा हो सकता है, तीन से कम करना मुश्किल पडेगा। लेकिन वे तीन भी एक की ही शक्ले है इसलिए हमने त्रिमूर्ति बनायी। इसलिए हमने इन तीन देवताओ को अलग-अलग नही रखा। क्योकि अलग-अलग रखने से भूल हो जाती है। क्योकि अगर ये तीन देवता अलग हो तो फिर उनको जोडने की जरूर पड जायेगी। और यह अन्तहीन 'इनफिनिट रिग्रेस' हो जायेगी। इसमे कोई हिसाब लगाना मुश्किल हो जायेगा कि कहाँ रुके। इसलिए ये तीन चेहरे एक ही ऊर्जा है, एक ही जीवन शक्ति के तीन चेहरे है। वही जन्म लेता, वही चलता, वही विदा करता है। लेकिन 'ओफीशियली' तीन हिस्सो मे हम बाँटते है। वह 'ओफीसियल डिवीजन' है। वह सिर्फ काम का बँटवारा है। 'डिवीजन आफ लेबर' है। जीवन ऊर्जा तीन हिस्सो मे बँटकर सारे जगत का विस्तार करती है।

प्रश्न श्रीकृष्ण की लीलाएँ व चरित्र अनुकरणीय है या चिन्तनीय है? जो अनुकरण करने जायगा वह पतित नहीं होगा?

उत्तर डरे हुए आदमियो को कृष्ण से जरा दूर रहना चाहिए। ठीक सवाल पूछते है आप। अनुकरणीय कृष्ण तो क्या कोई भी नही है। और ऐसा नही है कि कृष्ण का अनुकरण करने जायेगा तो पतित होगा। किसी का भी अनु-करण करने जायेगा तो पतित होगा। अनुकरण ही पतन है। कृष्ण के सम्बन्ध

मे लेकिन हम विशेष रूप से पूछते है। महावीर के सम्बन्ध मे नही पूछेंगे ऐसा, बुद्ध के सम्बन्ध मे नही पूछेंगे। राम के सम्बन्ध मे नही पूछेंगे। कोई नही कह सकेगा कि राम का अनुकरण करने जायेंगे तो पतन हो जायेगा। अकेले कृष्ण पर ही सवाल क्यो उठता है? राम का तो, हम अपने बच्चो को समझायेंगे कि अनुकरण करो। कृष्ण के मामले मे कहेंगे, जरा सावधानी से चलना। क्योकि हमारा डरा हुआ मन है। लेकिन मै आपसे कहता हूँ, किसी का भी अनुकरण पतन है। अनुकरण किया कि आप गये। आप खो गये। न तो कृष्ण अनुकरणीय है, न कोई और। वे सब चिन्तनीय हैं। सब विचार करने योग्य है। बुद्ध भी, महावीर भी, क्राइस्ट भी, कृष्ण भी। और मजे की बात यह है कि बुद्ध पर विचार करने मे इतनी कठिनाई न होगी, न क्राइस्ट पर विचार करने मे इतनी कठिनाई होगी। असली कठिनाई कृष्ण पर ही विचार करने मे पैदा होगी। क्योकि महावीर, बुद्ध या क्राइस्ट का जीवन विचार की पद्धतियो मे जमाया जा सकता है। उनके जीवन का ढग मर्यादा है। उनके जीवन का ढग सीमा है। कृष्ण का जीवन विचार मे पूरा समा नही सकता। उनके जीवन का ढग अमर्याद है। असीम है। हमारी सीमा आ जायेगी और वह हममे कहेंगे और आगे और आगे। इसलिए कृष्ण और भी चिन्तनीय बन जाते है। मेरी दृष्टि मे वही चिन्तनीय है जो अन्तत चिन्तन के पार ले जाय। चिन्तन अतिम बात नही है। चिन्तन प्राथमिक चरण है। एक क्षण आना चाहिए जब चिन्तन के ऊपर भी उठा जा सके। लेकिन चिन्तन के ऊपर वही उठ आयेगा जो चिन्तन को डगमगा दे। और चिन्तन के ऊपर वही उठ आयेगा जो चिन्तन को घबरा दे। और चिन्तन के ऊपर वही उठ आयेगा जो चिन्तन मे न समाये और चिन्तन के बाहर चला जाय। सभी चिन्तनीय है। सभी सोचने योग्य है। अनुकरणीय तो सिर्फ आप है अपने लिए, और कोई नही। अपना अनुकरण करे। समझें सबको, अपने पीछे जायें, किसी के पीछे न जायें।

लेकिन, भय क्या है? कृष्ण के साथ सवाल क्यो उठता है? भय है, और भय यही है कि हमने अपनी जिन्दगी को दमन की, 'सप्रेशन' की जिन्दगी बना रखा है। हमारी जिन्दगी जिन्दगी कम, दबाव ज्यादा है। हमारी जिन्दगी खिलापन नही है, 'फ्लावरिंग' नही है, कुण्ठा है। इसलिए डर लगता है कि अगर कृष्ण को हमने सोचा भी तो कही ऐसा न हो कि जो हमने अपने मे दबाया है वह कही फूट-कर बहने लगे। कही ऐसा न हो कि जो हमने अपने मे रोका है, उसके रोकने के लिए जो हमने तर्क दिये है वे टूट जायें और गिर जायें। कही ऐसा न हो कि हमने अपने भीतर ही अपनी बहुत-सी वृत्तियो को कारागृह मे डाला है वह बाहर निकल आयें

और कहे कि हमे बाहर जाने दो। डर भीतर है, घबराहट भीतर है लेकिन इसके लिए कृष्ण जिम्मेवार नही है, हम जिम्मेवार है। हमने अपने साथ ही दुर्व्यवहार किया है। हमने अपने साथ ही यह अनाचार किया है। हमने अपना पूरा व्यक्तित्व कभी न जाना, न स्वीकारा, न जिया। हमने उसमे बहुत दबाया है और थोडा जीने की कोशिश की है। हमने घर के ड्राइग रूम की तरह चेहरे बना बना कर जीवन बिताया है। ड्राइग रूम की दुनिया अलग है। किसी के ड्राइग रूम को देखकर यह मत समझ लेना कि यह उसका घर है। यह उसका घर है ही नही। न वह यहाँ खाना खाता है न वह यहाँ सोता है। यहाँ वह सिर्फ मेहमानो का स्वागत करता है। यह सिर्फ चेहरा है जिसको वह दूसरो को दिखाता है। ड्राइग रूम घर से अलग बात है। उसका घर तो वहाँ है जहाँ वह जीता है, सोता है, लडता है, झगडता है, खाता है, पीता है। ड्राइग रूम मास्क है जो हम दूसरो को दिखाने के लिए बनाये हुए है। इसलिए ड्राइग रूम जिन्दगी की बात नही है। ऐसे ही हमने जिन्दगी के साथ किया है। जिन्दगी मे हमने चेहरे बनाये है जो दूसरो को दिखाने के लिए है। वह हमारी असलियत नही है। हमारा असली घर भीतर है, अन्धेरे मे डूबा हुआ, अचेतन मे दबा हुआ। उसका हमे कोई पता भी नही। हमने खुद भी उसका पता लेना छोड दिया है। हम खुद भी डर गये है। यानी हम ऐसे आदमी है जो खुद अपने घर से डर गये हो, ड्राइग रूम मे रहने लगे हो, और भीतर जाने मे घबराते हो। तब जिन्दगी उथली हो ही जायेगी। इसलिए कृष्ण से डर लगता है क्योकि कृष्ण पूरे घर मे रहते है। उन्होने पूरे घर को बैठकखाना बना दिया है। वह हर कोने से अतिथि का स्वागत करते हैं। जहाँ से भी जाओ, वह कहते हैं चलो यही बैठो। उनके पास बैठकखाना अलग नही है। उनकी पूरी जिन्दगी खुली हुई है। उसमे जो है वह है। उसका कोई इन्कार नही, उसका कोई विरोध नही। हम डरेंगे, हम 'सप्रेसिव' है। हम है दमनकारी। हमने अपनी जिन्दगी के निन्यानवे प्रतिशत हिस्से को तो अन्धेरे मे ढकेल दिया और एक प्रतिशत को जी रहे है। वह निन्यानवे प्रतिशत पूरे वक्त धक्के मार रहा है कि मुझे मौका दो जीने का। वह लड रहा है, वह सघर्ष कर रहा है, सपनो मे टूट रहा है, जागने मे भी टूट पडता है। रोज रोज टूटता है, हम फिर उसे धक्का देकर पीछे कर आते है। पूरी जिन्दगी इसी सघर्ष मे बीत जाती है। अपने से ही लडने मे आदमी हार जाता है और समाप्त हो जाता है। उधर कृष्ण ने सब तरफ से द्वार खोल रखे है। कही से भी आओ स्वागत है, कही कुछ दबाया नही। अन्धेरे को भी स्वीकार करता है, उजाले को भी स्वीकार करता है। कही इसे देखकर हमारी आत्मा बगावत न कर दे, हमारे दमन अपने खिलाफ बगावत न कर दे, इसलिए डर है। लेकिन

यह डर भी विचारणीय है। यह डर कृष्ण के कारण नही है, यह हम जिस ढग से जी रहे हैं उसके कारण है। अगर सीधा साफ आदमी है, जिन्दगी को जिसने सरलता से जिया है, वह कृष्ण से नही डरेगा। डरने का कोई कारण नही। जिन्दगी मे अगर कुछ भी नही दबाया है, वह कृष्ण से नही डरेगा। हम डर रहे है तो यह हमारी रुग्णावस्था है। हम बीमार हैं, हम विक्षिप्त हैं और हमे इस स्थिति को बदलने की कोशिश करनी चाहिए। इसलिए कृष्ण तो बहुत विचारणीय है। लेकिन हम कहेगे कि हम तो बुद्ध का वचन पढते है, जिसमे कहा है कि क्रोध मत करना, हम तो जीसस का वचन पढते है जिसमे कहा है कि शत्रुओ को प्रेम करना। हम कृष्ण से डरते है। इस डर का तीर किस तरफ है? कृष्ण की तरफ कि अपनी तरफ? और अगर कृष्ण से डर लगता है, तब तो बडा अच्छा है। आपके कृष्ण काम आ सकते है। वह आपको खोलने मे, उघाडने मे, आपको नग्न करने मे, आपको स्पष्ट सीधा करने मे काम आसकते है। उनका उपयोग करना। उनको आने देना। उनके आमने-सामने खडे हो जायें। 'एनकाउण्टर' होने दे। यह मुठभेड अच्छी होगी। इसमे अनुकरण नही करना है उनका। इसमे समझना ही है उनको। उनको समझने मे ही आप अपने को समझने मे बडे सफल हो जायेंगे। उनको समझते ही आप अपने को समझ पायेगे। हो सकता है, आप अद्भुत साक्षात्कार को उपलब्ध हो जायें और जान पाये कि यह तो मै भी हूँ। यही तो मै हूँ।

एक मित्र मेरे पास आये और उन्होने मुझे कहा कि कृष्ण के सोलह हजार स्त्रियां थी, क्या आप इसमे विश्वास करते है? मैने कहा कि छोडो। मै तुमसे पूछता हूँ कि तुम्हारे मन को सोलह हजार से कम स्त्रियाँ तृप्ति दे सकती है? उन्होने कहा, क्या कहते है? मैने कहा, कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियाँ थी या नही, यह सवाल बडा नही है। कोई पुरुष सोलह हजार स्त्रियो से कम पर राजी नही है। कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियाँ थी, अगर ऐसा पक्का हो जाय तो हमारे भीतर का जो पुरुष है वह घोषणा करेगा—तो फिर देर क्यो कर रहे हो? उससे हमे डर है। भीतर बैठा हुआ पुरुष हमे डरा रहा है। लेकिन उससे डरकर, भागकर, बचकर कुछ भी हो नही सकता है। उसका सामना करना पडेगा। समझना पडेगा



पर्व : पांच

कृष्ण जन्म की स्थिति और क्राइस्ट से साम्य

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज

गीता के कृष्ण भागवत के कृष्ण

गीता कृष्ण का प्रामाणिक वचन

वस्त्रहरण लीला और निरावरणता के प्रथम पुरस्कर्ता कृष्ण

अनैतिकता की व्याख्या

कृष्ण का सांवला रंग

कृष्ण और कृष्ण

आध्यात्मिक संभोग

कृष्ण के जीवन की समग्रता में राधा का योग





५

प्रश्न श्रीकृष्ण के गर्भाधान व जन्म की विशेषताओ व रहस्यो पर सविस्तार प्रकाश डालने की कृपा करें। और क्राइस्ट की जन्म-स्थितियों से साम्य हो तो इसे भी स्पष्ट करें।

उत्तर कृष्ण का जन्म हो, या किसी और का जन्म हो---जन्म-स्थिति मे बहुत भेद नही है। इसे थोडा समझना जरूरी है। लेकिन सदा से हम भेद देखते आये है, और वह है कुछ प्रतीको को न समझने के कारण। कृष्ण का जन्म होता है अन्धेरी रात मे, अमावस मे। सभी का जन्म अन्धेरी रात मे होता है और अमावस

मे होता है। जन्म तो अन्धेरे मे ही होता है। असल मे जगत की कोई भी चीज उजाले मे नही जन्मती। एक बीज भी फूटता है तो जमीन के अन्धेरे मे जन्मता है। फूल खिलते है प्रकाश मे, जन्म अन्धेरे मे होता है।

असल मे जन्म की प्रक्रिया इतनी रहस्यपूर्ण है कि अन्धेरे मे ही हो सकती है। आपके भीतर भी जिन चीजो का जन्म होता है वह सब गहरे अन्धकार मे, गहन अन्धकार मे होता है। एक कविता जन्मती है तो मन के बहुत अचेतन अन्धकार मे जन्मती है, 'अनकासेस डार्कनेस' मे पैदा होती है। एक चित्र का जन्म होता है तो मन की अतल गहराइयो मे जहाँ कोई रोशनी नही पहुँचती जगत की, वहाँ होता है। समाधि का जन्म होता है, ध्यान का जन्म होता है तो सब गहन अन्धकार मे। गहन अन्धकार का अर्थ है जहाँ बुद्धि का प्रकाश जरा भी नही पहुँचता। जहाँ सोच समझ मे कुछ भी नही आता, हाथ को हाथ नही सूझता है। कृष्ण का जन्म जिस रात मे हुआ, कहानी कहती है कि हाथ को हाथ नही सूझता था, इतना गहन अन्धकार था। लेकिन कब कोई चीज जन्मी है जो अन्धकार मे न जन्मी हो? इसमे विशेषता खोजने की जरूरत नही है। यह जन्म की सामान्य प्रक्रिया है।

दूसरी बात कृष्ण के जन्म के साथ जुडी है—बन्धन मे जन्म होता है, कारागृह मे। किसका जन्म है जो बन्धन और कारागृह मे नही होता? हम सभी कारागृह मे जन्मते है। हो सकता है, मरते वक्त तक हम कारागृह से मुक्त हो जायें, लेकिन जरूरी नही है। हो सकता है, हम मरे भी कारागृह मे। जन्म एक बन्धन मे लाता है, सीमा मे लाता है। शरीर मे आना ही बडे बन्धन मे आ जाना है, बडे कारागृह मे आ जाना है। जब भी कोई आत्मा जन्म लेती है तो कारागृह मे ही जन्म लेती है। लेकिन इस प्रतीक को ठीक से नही समझा गया। इस बहुत काव्यात्मक बात को ऐतिहासिक घटना समझकर बडी भूल हो गयी। सभी जन्म कारागृह मे होते है। जन्म तो बन्धन मे होगा ही। मरते क्षण तक अगर हम बन्धन से छूट जायँ, टूट जायँ सारे कारागृह, तो जाने जीवन की यात्रा सफल हो गयी है।

कृष्ण के जन्म के साथ एक और तीसरी बात जुडी है और वह यह है कि जन्म के साथ ही उनकी मृत्यु का डर है। उन्हे मारे जाने की धमकी है। किसको नही है? जन्म के साथ ही मरने की घटना संभावी हो जाती है। जन्म के बाद —एक पल बाद भी मृत्यु घटित हो सकती है। जन्म के बाद प्रतिपल मृत्यु संभावी है। किसी भी क्षण मे वह घट सकती है। मौत के लिए एक ही चीज जरूरी है—वह है जन्म। जन्म के बाद एक पल जिया हुआ बालक भी मरने के लिए उतना ही

योग्य हो जाता है जितना सत्तर साल जिया हुआ आदमी होता है। मरने के लिए और कोई योग्यता नही चाहिए, जन्म भर चाहिए। कृष्ण के जन्म के साथ मौत की भी धमकी है, मरने का भय है। सबके जन्म के साथ है। जन्म के बाद मरने के अतिरिक्त हम और करते ही क्या है ? जन्म के बाद हम रोज–रोज मरते ही तो है। जिसे हम जीवन कहते हैं, वह मरने की लम्बी यात्रा ही तो है। जन्म से शुरू होती है, मौत पर पूरी हो जाती है।

लेकिन कृष्ण के जन्म के साथ एक चौथी बात भी जुडी है कि मरने की बहुत तरह की घटनाएँ घटित होती है, लेकिन वे सबसे बचकर निकल जाते है। जो भी उन्हे मारने आता है वही मर जाता है। कहे कि मौत ही उनके लिए मर जाती है। मौत सब उपाय करती है और बेकार हो जाती है। इसका भी बडा मतलब है। हमारे साथ ऐसा नही होता। मौत पहले हमले मे हमे ले जायेगी। हम पहले हमले से ही न बच पायेगे, क्योकि सच तो यह है कि हम करीब-करीब मरे हुए लोग है, जरा-सा धक्का और मर जायेंगे ! जिन्दगी का हमे कोई पता भी तो है किंतु उस जीवन का कोई पता नही जिसके दरवाजे से मौत सदा हार जाती है। नही, कृष्ण ऐसी जिन्दगी है जिस दरवाजे पर मौत बहुत रूपो मे आती है और हार कर लौट जाती है। वे सब रूपो की कथाएँ है कि कितने रूपो मे मौत घेरती है और हार जाती है। लेकिन, कभी हमे ख्याल नही आया कि इन कथाओ को हम गहरे मे समझने की कोशिश करे। सत्य सिर्फ उन कथाओ मे एक है। और वह यह है कि कृष्ण जीवन की तरफ रोज जीतते चले जाते है और मौत रोज हारती चली जाती है। मौत की धमकी एक दिन समाप्त हो जाती है। जिन जिन ने चाहा जिस जिस ढग से चाहा कि कृष्ण मर जायँ, वह वह ढग असफल हो जाते है और कृष्ण जिये ही चले जाते है। इसका मतलब है जीवन की जीत। लेकिन, ये बाते इतनी सीधी, जैसा मैं कह रहा हूँ कही नही गयी है। इतने सीधे कहने का पुराने आदमी के पास कोई उपाय नही था। इसे भी थोडा समझ लेना जरूरी है।

पुरानी दुनिया मे जितना हम वापस लौटेंगे उतना ही पायेंगे कि चिन्तन का ढग पिक्टोरियल होता है, चित्रात्मक होता है, शब्दात्मक नही होता। अभी भी रात आप सपना देखते है। कभी आपने ख्याल किया है कि सपनो मे शब्दो का उपयोग करते हैं, कि चित्रो का ? सपने मे शब्दो का उपयोग नही होता। चित्रो का उपयोग होता है। क्योकि, सपना हमारी आदिम भाषा है, 'प्रिमिटिव लेंग्वेज' है। सपने के मामले मे हममे और आज से दस हजार साल पहले के आदमी मे कोई फर्क नही पडा है। सपने अभी भी पुराने हैं। प्रीमिटिव है। गुहा मानव ने

एक गुफा मे सोकर रात मे जो सपने देखे होगे, वही एयरकण्डीशन मकान मे भी देखे जाते है। कोई और फर्क नही पडा है। सपने की खूबी है कि उसकी सारी अभिव्यक्ति चित्रो मे है। अगर एक आदमी बहुत महत्वाकाक्षी है तो सपने में महत्वाकाक्षा को वह क्या करेगा ? चित्र बनायेगा। हो सकता है उसके पख लग जाय और वह आकाश मे उड जाय। सभी महत्वाकाक्षी लोग उडने का सपना देखेंगे, 'एम्बीशस माइण्ड' उडने का सपना देखेगा। उडने का मतलब है सबके ऊपर हो जाना। उडने का मतलब है कि अब कोई सीमा न रही, जितना चाहो उठ सकते हो। पहाड नीचे छूट जाते है, आदमी नीचे छूट जाते है, चाद-तारे नीचे छूट जाते है और आदमी ऊपर उठता चला जाता है। महत्वाकाक्षा शब्द का उपयोग सपने मे नही होगा। उडने के चित्र का उपयोग होगा। इसलिए तो हम अपने सपने समझने मे असमर्थ हो गये हैं, क्योकि दिन में हम जो भाषा बोलते है वह शब्दो की है, रात जो सपना देखते है वह चित्रो का है। दिन मे जो भाषा बोलते है वह बीसवी सदी की हैं, रात जो सपना देखते है वह आदिम है। इन दोनो के बीच लाखो साल का फासला है। इसलिए, सपना क्या कहता है, यह हम नही समझ सकते।

कृष्ण बहुत पुराने है। इन अर्थों मे पुराने कि आदमी अभी चिन्तन शुरू कर रहा है, आदमी अभी सोच रहा है जगत और जीवन की बाबत, अभी जब शब्द नही बने, केवल प्रतीको और चित्रो मे सारा का सारा कहा जाता है और समझा जाता है, तब कृष्ण के जीवन की घटनाएँ लिखी गयी है। उन घटनाओ को 'डी कोड' करना पडता है, उन घटनाओ को चित्रो से तोडकर शब्दो मे लाना पडता है। क्राइस्ट का जीवन भी करीब-करीब कृष्ण जैसा ही शुरू होता है। उसमे बहुत फर्क नही है। इसलिए, बहुत लोगो को यहा तक भ्रम पैदा हो गया था, अभी भी कुछ लोगो को है, कि क्राइस्ट हुए ही नही, यह कृष्ण की ही कथा है, जो यात्रा करके जेरूसलम तक पहुच गयी है, क्योकि जन्म की कथा मे बडा साम्य है। अन्धेरी रात मे मृत्यु के भय से घिरे हुए जीसस का जन्म होता है। यहा कस धमकी दे रहा है कृष्ण के मृत्यु की, वहाँ सम्राट् जीसस की हत्या की धमकी दे रहा है। यहा कस ने बच्चे कटवा डाले है कि उसका मारने वाला पैदा न हो जाय, वहाँ सम्राट ने बच्चे कटवा डाले है कि उसका मारने वाला पैदा न हो जाय।

लेकिन, कृष्ण की कहानी क्राइस्ट की कहानी नही है। जीसस अलग ही व्यक्ति है। अलग ही उनकी यात्रा है। हाँ, प्रतीक दोनो के समान है और प्रतीक इसलिए दोनो के समान है कि 'प्रीमीटिव माइन्ड' एकदम समान होता है। यह

ध्यान देने जैसी बात है कि चाहे अंग्रेज सपना देखे, चाहे चीनी सपना देखे और चाहे जापानी सपना देखे, सपने की भाषा एक है। इसलिए, 'मिथ' पुराण की भाषा एक है। तो, जो प्रतीक पुराने मन मे उठे और कृष्ण के जन्म के साथ जुड गये वे ही प्रतीक जीसस के जन्म के साथ भी जुड गये। दोनो का एक ही व्यक्ति होने का भ्रम और भी एक कारण से पैदा हुआ कि जीसस का नाम तो जीसस है, लेकिन बाद मे उसके साथ जुड गया क्राइस्ट। 'क्राइस्ट' शब्द को कृष्ण शब्द का रूपातरण माना जा सकता है। मैं एक आदमी को जानता हूँ जिनका नाम है क्रिस्टो बाबू। मैने उनसे पूछा, यह कैसा नाम है। उन्होने कहा कि नाम तो मेरा कृष्ण है, लेकिन अंग्रेजी मे लिखते-लिखते धीरे-धीरे 'क्रिस्ट' हो गया। इसकी सभावना है। जीसस तो अलग व्यक्ति है। हाँ, इस बात की सम्भावना है जरूर कि कृष्ण शब्द यात्रा करते करते क्राइस्ट हो गया हो, क्योकि जीसस की 'क्राइस्ट' एक पदवी है जैसे कि वर्द्धमान की पदवी महावीर है। वर्द्धमान घर का नाम है। बाद मे जब वे ज्ञान को उपलब्ध हुए तो महावीर नाम हो गया। इसी प्रकार बुद्ध घर का नाम नही है, गौतम या सिद्धार्थ घर का नाम है। जब वे ज्ञान को उपलब्ध हुए तो बुद्ध हो गये। जीसस घर का नाम है। जब वे ज्ञान को उपलब्ध हुए तब क्राइस्ट हो गये। 'क्राइस्ट' शब्द हो सकता है कि कृष्ण ही हो गया हो, इसमे बहुत कठिनाई नही है। यह हो सकता है। लेकिन जीसस का व्यक्तित्व अलग व्यक्तित्व है। जन्म की घटना मे जरूर ताल मेल है, पर ये दो व्यक्ति है, एक नही है। जन्म की घटनाओ के ताल मेल का कारण एक व्यक्ति का होना नही है, जन्म की घटनाओ का ताल मेल एक ही तरह के अचेतन मन मे पैदा हुए प्रतीको का है।

कार्ल गुस्ताफ जुग ने मनुष्य के मन के सम्बन्ध मे एक बहुत अद्भुत खोज की है जिस खोज को वह आज 'टाइप' कहते है। वह कहते है मनुष्य के गहरे मन मे कुछ 'आर्च टाइप' है – कुछ बुनियादी प्रतीक है, जो सारी दुनिया मे समान हैं। वह दोहराते रहते है। क्राइस्ट और कृष्ण की जन्म की कथा मे वे प्रतीक दोहरे है। और, मैने जैसा कहा, यह जन्म की घटना सभी के जन्म की घटना है। यहा कृष्ण शब्द को भी थोडा समझना जरूरी है।

'कृष्ण' शब्द का अर्थ होता है, केन्द्र। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है जो आकृष्ट करे, जो आकर्षित करे,—'सेन्टर आफ ग्रेविटेशन', कशिश का केन्द्र। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है जिस पर सारी चीजे खिचती हो। जो केन्द्रीय चुम्बक का काम करे। प्रत्येक व्यक्ति का जन्म इस अर्थ मे कृष्ण का जन्म है। क्योकि, हमारे भीतर जो आत्मा है वह कशिश का केद्र है। वह

'सेंटर आफ ग्रेविटेशन' है, जिसपर सब चीजें खिचती है और आकृष्ट होती हैं। शरीर खिचकर उसके आसपास निर्मित होता है, परिवार खिचकर उसके आस-पास निर्मित होता है, समाज खिचकर उसके आसपास निर्मित होता है, जगत खिचकर उसके आसपास निर्मित होता है। वह जो हमारे भीतर कृष्ण का केन्द्र है, आकर्षण का गहरा बिन्दु है उसके आसपास सब घटित होता है। तो, जब भी कोई व्यक्ति जन्मता है, वह एक अर्थ मे कृष्ण ही जन्मता है। वह जो बिन्दु है आत्मा का, आकर्षण का, सब चीजे उसके आसपास निर्मित होनी शुरू होती हैं और उसे हम जन्म के नाम से सबोधन करते है। उस कृष्ण बिन्दु के आसपास क्रिस्ट-लाइजेशन शुरू होता है और व्यक्तित्व निर्मित होते हैं। इसलिए, कृष्ण का जन्म एक व्यक्ति-विशेष का जन्म मात्र नही है, बल्कि व्यक्ति मात्र का जन्म है। अन्धेरे का, कारागृह का, मृत्यु के भय का भी ऐसा ही अर्थ है। लेकिन, हमने कृष्ण के साथ इसे क्यो जोडा होगा? मै यह नही कह रहा हूँ कि कृष्ण की जिन्दगी मे जो घटना घटी होगी कारागृह मे, वह नही घटी। मै यह भी नही कह रहा हूँ कि वह बन्धन मे पैदा नही हुए होगे। मै इतना ही कह रहा हूँ कि वे बन्धन मे पैदा हुए हो या न हुए हो, वे कारागृह मे जन्मे हो या न जन्मे हो, लेकिन कृष्ण जैसा व्यक्ति जब हमे उपलब्ध हो गया तो हमने कृष्ण के व्यक्तित्व के साथ वह सब समाहित कर दिया है जो कि प्रत्येक आत्मा के जन्म के साथ समाहित है।

ध्यान रहे, महापुरुषो की जन्म की कथाएँ हममे उल्टी चलती है। साधारण आदमी के जीवन की कथा जन्म से शुरू होती है और मृत्यु पर पूरी होती है। उसकी कथा मे एक 'सीक्वेंस' होता है—जन्म से लेकर मृत्यु तक। महापुरुषो की कथाएँ फिर से 'रिट्रोस्पेक्टिवली' लिखी जाती है। महापुरुष पहचान मे तो आते है बाद मे, इसलिए, उनके जन्म की कथाएँ बाद मे लिखी जाती है। कृष्ण जैसा आदमी जब हमे दिखायी पडता है तब तो पैदा होने के बहुत बाद दिखायी पडता है। वर्षों बीत गये होते है उसे पैदा हुए। जब वह हमे दिखायी पडता है तो वह कोई चालीस पचास साल की यात्रा कर चुका होता है। फिर, इस महिमावान, इस अद्‌भुत व्यक्ति के आसपास कथा निर्मित होती है। फिर हम चुनाव करते है इसकी जिन्दगी का, फिर हम 'रीइन्टरप्रेट' करते हैं। फिर से व्याख्याए शुरू होती है, फिर से हम इसके पिछले जीवन मे से घटनाएँ चुनते है, घटनाओ को अर्थ देते हैं। इसलिए, मै आपसे कहूँ कि महापुरुषो की जिन्दगी कभी भी ऐतिहासिक नही हो पाती, सदा काव्यात्मक हो जाती है। क्योकि, पीछे लौटकर निर्मित होती है। पीछे लौटकर जब हम देखते है तो हर चीज प्रतीक हो जाती है और दूसरे अर्थ ले लेती है, जो

अर्थ घटते हुए क्षण मे कभी भी न रहे होगे। और, फिर कृष्ण जैसे व्यक्तियो की जिन्दगी एक बार नही लिखी जाती, हर सदी बार-बार लिखती है। हजारो लोग लिखते है। जब हजारो लोग लिखते है तो हजार व्याख्याएँ होती चली जाती है। फिर धीरे-धीरे कृष्ण की जिन्दगी किसी व्यक्ति की जिन्दगी नही रह जाती। कृष्ण एक सस्था हो जाते है, एक 'इन्स्टीट्यूशन' हो जाते है। फिर वे समस्त जन्मो का सारभूत हो जाते है। फिर मनुष्य मात्र के जन्म की कथा उनके जन्म की कथा हो जाती है। इसलिए, व्यक्तिवाची अर्थों मे मै कोई मूल्य नही मानता हूँ। कृष्ण जैसे व्यक्ति, व्यक्ति रह ही नही जाते। वे हमारे मानस के, हमारे चित्त के, हमारे 'कलेक्टिव माइण्ड' के प्रतीक हो जाते है। और, हमारे चित्त ने जितने भी जन्म देखे है वे सब उनमे समाहित हो जाते है। इसे ऐसा समझे

एक बहुत बडे चित्रकार ने एक स्त्री का चित्र बनाया – एक बहुत सुन्दर स्त्री का चित्र। लोगो ने उससे पूछा कि यह कौन स्त्री है जिसके आधार पर चित्र को बनाया है। उस चित्रकार ने कहा, यह किसी स्त्री का चित्र नही है। यह लाखो स्त्रिया जो मैने देखी है उनका सारभूत है। इसमे आख किसी की है, इसमे नाक किसी की है, इसमे ओठ किसी के, इसमे रग किसी का है, इसमे बाल किसी के है। ऐसी स्त्री कही खोजने से नही मिलेगी। ऐसी स्त्री सिर्फ चित्रकार देख पाता है। और, इसलिए चित्रकार की स्त्री पर बहुत भरोसा मत करना, उसको खोजने मत निकल जाना, क्योकि जो मिलेगी वह वह नही मिलेगी, साधारण स्त्री ही मिलेगी। इसलिए दुनिया बहुत कठिनाई मे पड जाती है, क्योकि हम जिन स्त्रियो को खोजने जाते है वह कही है नही—वह चित्रकारो की स्त्रियाँ है, वह कवियो की स्त्रियाँ है। वह हजारो स्त्रियो का सारभूत है। वह इत्र है हजारो स्त्रियो का। वह कही मिलने वाला नही है। वह हजारो स्त्रिया मिल-जुल कर एक हो गयी है। वह हजारो स्त्रियो के बीच मे से खोजी गयी धुन है।

इसलिए, कृष्ण मनुष्य मात्र के जन्म के प्रतीक बन जाते है—एक विशेष मनुष्यता के, जो इस देश मे पैदा हुई, और जो इस देश ने अनुभव किया वह सब उनमे समा जाता है। फिर, इस प्रतीक मे जुडता ही चला जाता है, अनन्त काल तक जुडता चला जाता है। हर युग उसमे जोडेगा, हर युग उसमे समृद्धि करेगा। इसी दृष्टि से मुझे जो दिखायी पडा वह मैंने आपसे कहा। ये घटनाएँ घट भी सकती है, ये घटनाएँ न भी घटी हो, मेरे लिए घटनाओ का कोई मूल्य नही है। मेरे लिए मूल्य कृष्ण को समझने का है कि इस आदमी मे ये घटनाएँ कैसी हमने देखी।

प्रश्न : 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' और यह कि मैं युग-युग मे जन्म लेता हूं धर्म की संस्थापना के लिए, यह कृष्ण ने एक मजाक किया है, साधुओ का परित्राण और दुष्टो का विनाश — मुझे ऐसा लगता है कि गीता का कृष्ण तो मजाक नहीं करता। भागवत का कृष्ण शायद मजाक कर सकता है। और हमने एक अजीब तरह का 'अनक्रिटिकल एटीट्यूड' अपना लिया कि गीता के कृष्ण को भागवत के कृष्ण से मिला लिया और उस तक को एक व्यक्ति ही मान लिया कि गीता वाले ने भी मजाक कर दिया। इसमे सोचना पडेगा कि कृष्ण के सम्बन्ध मे हम जो भी कुछ कहे तो गीता का कृष्ण अलग है। वह हजार दो हजार साल पहले एक व्यक्ति की कल्पना का कृष्ण है। भागवत का कृष्ण कुछ और है। और, उन दोनो को एक करके अगर हम उनमे तालमेल बिठाना चाहे तो कहीं-कहीं बात उल्टी पडेगी। गीता स्वय भी इस तरह से है कि शकर उसमे कुछ और अर्थ देख रहे है, लोकमान्य तिलक कुछ और देख रहे है, आप कुछ और अर्थ देख रहे हैं—तो सोचना होगा, क्या गीता कृष्ण के जीवन-दर्शन का प्रामाणिक सकलन है ?

उत्तर पहली बात यह, कल मैंने कहा कि साधुओ के परित्राण के लिए और दुष्टो के विनाश के लिए कृष्ण ने कहा—'मै आता रहूंगा', तो इसमे कृष्ण ने गहरी मजाक की है। लेकिन, मैंने यह नही कहा कि 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज' — इसमे कृष्ण ने मजाक किया है, यह मैंने नही कहा। थोडा-सा इस सम्बन्ध मे समझ ले, फिर प्रश्न के लिए आगे बढेंगे।

कृष्ण जब कहते है, सब धर्मों को छोडकर तू मुझ एक की शरण मे आ जा — सब धर्मों को छोडकर। जगत मे धर्म तो एक ही हो सकता है। लेकिन, जो बहुत धर्मों को देख रहा है वह बडी भ्राति मे पडेगा। सब धर्मों को छोडकर इसका अर्थ ही यही है कि विशेषणवाची जो भी धर्म हो, उन्हे छोडकर। अनेक को छोडकर तू मुझ एक की शरण आ जा। कृष्ण यह भी कह सकते थे कि तू मेरी शरण मे आ। लेकिन, जो शब्द है वह बहुत अदभुत है— वह है 'मामेक शरण व्रज'। मुझ एक की शरण मे, 'मामेक'। यहा कृष्ण व्यक्ति की हैसियत से बोल नही रहे है, यहा तो धर्म की हैसियत से ही बोल रहे है। सब धर्मों को छोडकर धर्म की शरण मे आ। अनेक को छोडकर एक की शरण मे आ। दूसरी बात, यहां

यह बोल रहे हैं – मुझ एक की शरण मे आ। अगर इसे बहुत गहरे मे हम समझे तो यह बहुत मजेदार बात है। मै की शरण मे आ। लेकिन, जब मै बोलता हूँ 'मैं', तो जो मेरा 'मैं' होता है वह आपके लिए 'तू' हो जायेगा, 'मै' नही रह जायेगा आपके लिए मैं तो आपका ही मै होगा, मेरा 'मैं' नही हो सकता। अगर कृष्ण का यह अर्थ हो कि तू कृष्ण की शरण मे आ, तो यह तो 'तू' की शरण हो जायेगी। अर्जुन का मै, अर्जुन का मैं है। वह उसकी शरण मे जायेगा, वह पूरा स्वधर्म की शरण मे चला जायेगा। यह वक्तव्य बहुत अद्‌भुत और गहरा है। और, इसकी गहराइयो का कोई हिसाब नही है। मनुष्यो ने जितने भी वक्तव्य दिये हैं इस पृथ्वी पर, शायद ही कोई वक्तव्य इसकी गहराई को छूता हो। अनेक को छोडकर एक की, तू को छोडकर मैं की, विशेषणवाची धर्मों को छोडकर धर्म की शरण मे आ। लेकिन, इसमे और भी गहराइयाँ हैं। अगर अर्जुन कहे कि मै अपने ही 'मै' की शरण मे जाऊगा तब भी वह कृष्ण को नही समझा। क्योकि, शरण मे जाने वाले को 'मैं' छोड देना पडता है। शरण का अर्थ ही है कि 'मैं' छूट जाय, समर्पण का अर्थ ही है कि 'मै' न बचे। यह बडी जटिल बात होगी। अपनी ही शरण मे आ अपने को छोडकर। धर्म की शरण मे आ धर्मों को छोडकर। एक की शरण मे आ अनेक को छोडकर। लेकिन, जिसके पास एक भी बच रहेगा उसके पास अनेक भी बच सकता है। एक की हम कल्पना ही नही कर सकते अनेक के बिना। इसलिए, जिसे एक की शरण मे आना है उसे एक को भी छोड देना पडेगा। सख्या ही छोड देनी पडेगी। इसलिए, बाद मे जब यह ख्याल मे आया कि 'एक' शब्द भ्राति पैदा कर सकता है, तो हम अद्वैत की बात करने लगे। हमने कहा, दो की शरण मे मत आना। दो से बच। फिर, एक कहने मे भी सकोच हुआ, क्योकि डर हुआ कि एक पकडा जा सकता है। इसलिए, एक नया शब्द गढना पडा जो 'निगेटिव' है, नकारात्मक है। एक नही, अद्वैत – दो नही, इतना ही ध्यान रखना कि दो न हो। और स्मरण रहे, अगर एक भी बचा तो दूसरा रहेगा, क्योकि एक को जानना दूसरे के परिप्रेक्ष्य मे ही, दूसरे के 'पर्सपेक्टिव' मे ही सम्भव है। अगर मै जान रहा हूँ कि मै हूँ, तो तू के बिना नही जान सकता हूँ। नही तो मै कहा शुरू होऊँगा और कहा खत्म होऊँगा? तो, जो भी जान रहा हूँ 'मै' हूँ, 'तू' के विरोध मे ही जान सकता है। 'तू' रहेगा ही, तब ही 'मैं' हो सकता हूँ। अगर कोई कह रहा है, एक ही है सत्य, तो भी अभी उसका जोर बता रहा है कि उसे दूसरा दिखायी पड रहा है, जिसको वह इन्कार कर रहा है। इसलिए भी इस वक्तव्य की बडी गहराइयाँ है। पहला तो यह स्मरण रखे कि यह कृष्ण की शरण के लिए नही कहा गया है। यह अर्जुन को आत्म-शरण होने के लिए कहा गया है। दूसरी बात ख्याल रखे, यह अर्जुन के अहकार

की शरण के लिए नही कहा गया है। यह निर-अहकार स्वभाव की शरण के लिए कहा गया है। तीसरी बात ख्याल रखे कि यह धर्मों के त्याग के लिए कहा गया है। और धर्मों के त्याग मे कोई विशेष धर्म नही बचता, सभी धर्मों के त्याग के लिए कहा गया है—'सर्वधर्मान्'। ऐसा नही कि हिन्दू को बचा लेना है और बाकी को छोड देना है। सबको ही छोड देना है, क्योकि जब तक कोई किसी धर्म को पकडे है तब तक धर्म को उपलब्ध न हो सकेगा। उस निर्विशेष धर्म को कैसे उपलब्ध होगा जो किसी विशेषण मे नही बनता है? धर्म को छोड देना, धर्मों को छोड देना, विशेषण को छोड देना, कृष्ण को छोड देना, सख्या को छोड देना, 'मै' को छोड देना, अहकार को छोड देना, फिर जो शेष रह जाय वही धर्म है। और यह मजाक मे नही कहा गया है।

दूसरी बात जो पूछी कि हम फर्क करे गीता के कृष्ण का और भागवत के कृष्ण का। जिन मित्र ने बात पूछी वे थोडे बाद मे आये। जो मै पहले कह चुका हूँ वह उनके ख्याल मे नही है। थोडी-सी बात कहूँ। हमारा मन चाहेगा कि हम भेद करे, क्योकि गीता के कृष्ण और भागवत के कृष्ण मे ताल-मेल बिठाना हमारी बुद्धि मे नही पड सकेगा। दोनो बडे अलग ही आदमी मालूम पडते है। अलग ही नही, विरोधी आदमी मालूम पडते है। गीता के कृष्ण बडे गम्भीर, भागवत के कृष्ण एकदम गैर-गम्भीर! उनके बीच हम ताल-मेल न बिठा सकेगे। हम तो तोडना चाहेगे कि यह दो आदमी है। या तो हम चाहेगे, यह दो आदमी है, या कृष्ण 'सीजोफेनिक' है। हम कहेगे दो आदमी है इस आदमी के भीतर कि कभी यह एक तरह की बात करने लगता है, कभी दूसरी तरह की। यह आदमी दो खण्डो मे बटा है जैसा कि कुछ पागल बट जाते है। फिर, उनके 'पीरियड्स' होते है — छह महीने वे शान्त होते है, छह महीने अशात होते है। छह महीने वह आनदित होते है, छह महीने वे बडे उदास हो जाते है। सुबह ठीक होते है साझ और कुछ हो जाते है। या तो हम समझे कि कृष्ण 'मल्टीमाईकिक' है, बहुत चित्त है कृष्ण के, बहुचित्तवान है। बहुत आदमी है कृष्ण के भीतर। एक रास्ता तो यह है समझने का।

दूसरा रास्ता यह है कि अगर हम इतिहासज्ञ से कहे तो वह कहेगा, यह दो कालो मे बटे दो आदमी होने चाहिए। यह एक आदमी नही हो सकता। यह इतिहासज्ञ की व्याख्या होगी। क्योकि, उसकी कल्पना के बाहर है कि एक आदमी, और इतने आदमियो जैसा हो सके! वह कहेगा, भागवत के कृष्ण कोई और है, गीता के कृष्ण कोई और है। यह एक नही हो सकते।

लेकिन, मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि मनोवैज्ञानिक की सलाह मैं मानने को राजी नही हूँ । नही हूँ इसलिए कि खण्डित व्यक्तित्व 'कृष्ण' जैसे आनद को उपलब्ध नही होता है, 'कृष्ण' जैसी परम शान्ति को उपलब्ध नही होता है। मै इतिहासज्ञ की बात मानने को तैयार नही हूँ, क्योकि उसकी तकलीफ भी उसी बात से उठ रही है कि हम कैसे माने कि एक आदमी और इतना सब कर सकेगा ! जो मनोवैज्ञानिक एक ही आदमी के भीतर करता है वह इतिहासज्ञ समय के भीतर अलग-अलग व्यक्तियो को बाटकर करेगा । मेरी अपनी दृष्टि यह है कि एक ही कृष्ण है, और यही कृष्ण की महत्ता है। इसको अगर हम छाँट देते है तो कृष्ण बेमानी हो जाते है । उनका मूल्य ही खत्म हो जाता है। कृष्ण का महत्त्व ही यही है कि वे एक साथ सब कुछ है। उनका महत्त्व ही यह है कि वे एक साथ विरोधी है और उन विरोधो मे एक 'हार्मनी' है। उन विरोधो मे एक सगीत है। जो कृष्ण बासुरी बजाकर नाच सकता है, वह कृष्ण चक्र लेकर लड सकता है। इन दोनो कृष्णा मे कोई विरोध नही है। जो कृष्ण मटकी फोड सकता है वह कृष्ण 'गीता' जैसा गभीर उद्घोष कर सकता है। जो कृष्ण चोर हो सकता है वह गीता का परम योगी हो सकता है। ये सब एक साथ एक ही व्यक्ति है, यही कृष्ण की महत्ता है, यही कृष्ण के व्यक्तित्व की निजता है, जो क्राइस्ट मे उपलब्ध नही होगी, बुद्ध मे उपलब्ध नही होगी, महावीर मे उपलब्ध नही होगी और राम मे उपलब्ध नही होगी। कृष्ण विरोधो के बीच समागम है—समस्त विरोधो का समागम। और, मै इसे इसलिए भी कह पाता हूँ कि मै देखता हूँ कि इन विरोधो को विरोधी होने की कोई वजह नही है । समस्त जीवन का सत्य ही विरोधो का समागम है। सारा जीवन ही विरोधो पर खडा है और उन विरोधो मे कोई विसगतिता नही है। जो आदमी बच्चा होता है वही आदमी बूढा होता है। इसमे कोई विरोध नही है। अगर मै आपसे पूछूँ कि किस दिन आप बच्चे थे और किस दिन जवान हुए तो बताना बहुत मुश्किल हो जायेगा। अगर मै आपसे पूछूँ, आप जवान थे, अब बूढे हो गये, किस दिन आप बूढे हुए ? तो बहुत मुश्किल हो जायेगी। इनको बाटना मुश्किल होगा। शब्दो मे जवानी और बुढापा विरोधी मालूम पडते है। लेकिन, किस दिन जवानी समाप्त होती है और बुढापा शुरू होता है ? नही, किसी भी दिन ऐसा नही होता, जवानी रोज बुढापा बनती चली जाती है। हम जवान को कह सकते है कि होने वाला बूढा है। हम बूढे को कह सकते है कि यह बीत गया जवान है।

हम शान्ति और अशान्ति को दो चीजें मानते है, लेकिन कभी आपने ख्याल

किया है कि वह कौन-सी जगह है जहा शांति अलग होती है और अशान्ति शुरू होती है। शब्दो मे विरोध है। डिक्शनरी मे खोजने जायेंगे तो शान्ति और अशान्ति विपरीत अर्थ है। शब्दकोश मे खोजेगे तो सुख और दुख विरोधी है, लेकिन जिन्दगी मे देखने जायेंगे तो पायेंगे कि सुख दुख बन जाता है, दुख सुख बन जाता है। शाति अशाति हो जाती है, अशाति शाति बन जाती है। जन्म मृत्यु हो जाती है, मृत्यु जन्म हो जाती है। सुबह साझ हो जाती है, दिन अधेरा हो जाता है। प्रकाश अधकार बन जाता है, अधकार प्रकाश बन जाता है। जीवन समस्त विरोधो का समागम है। यहा ऋण और धन विपरीत नही है, एक ही शक्ति के खेल है। जीवन की अगर अर्थवत्ता को हम देखे, इस शाश्वत 'हार्मनी' को, सगीत को हम देखें तो फिर कृष्ण हमे समझ मे आ सकते है। इसीलिए तो कृष्ण का हम पूर्ण अवतार कह सके। वे जीवन के पूरे प्रतीक है। बुद्ध नही जीवन के पूर प्रतीक है। बुद्ध, जीवन मे जो सुबह है, जो प्रभात है, जो प्रकाश, है, उसके ही प्रतीक है। फिर साझ का क्या होगा, रात के अन्धेरे का क्या होगा ? पूर्णिमा तो आप सम्हाल लेंगे, अमावस का क्या होगा ? अमृत तो आप ले लेंगे, जहर का क्या होगा? इसलिए बुद्ध साफ-सुथरे है। कोई नही कहेगा कि फ्ला किताब के बुद्ध अलग है और फ्ला किताब के बुद्ध अलग है। कोई कारण नही कहने का। सब किताबो के बुद्ध एक है। एक रस है। लेकिन, कृष्ण मे यह सवाल उठेगा। इसलिए, हम बजाय अपने मन को समझाने के लिए और अपनी 'केटेगरी' को बचाने के लिए कृष्ण को कई व्यक्तियो मे बाटे अच्छा होगा हम अपनी 'केटेगरीज' छोडे। अपने इस चित्त को एक तरफ फेके और कृष्ण को पूरा देखें। मै नही कहता, अलग हुए भी हो तो मुझे फिक्र नही है। मुझे इसकी चिन्ता नही है। हो सकता है कि इतिहासज्ञ सिद्ध करे कि फासला है दो हजार साल का भागवत के कृष्ण मे और गीता के कृष्ण मे। मै फिक्र न करुगा। मै कहूँगा, मुझे फासला नही है। मेरे लिए तो कृष्ण का अथ ही तभी है जब ये एक व्यक्ति है। अगर ये एक व्यक्ति नही है तो व्यर्थ हो गया, इसका कोई अर्थ न रहा। हुए हो, न हुए हो, इससे मुझे प्रयोजन नही। मै मानता हूँ कि जीवन की पूर्णता जब भी किसी व्यक्ति मे फलित होगी तो उसमे अनेक व्यक्ति एक साथ फलित होगे, उसकी असगतियो मे एक सगति होगी, उसके विरोधो मे एक अविरोध होगा। उसके व्यक्तित्व मे विरोधी छोर होगे, लेकिन जुडे होगे, हो सकता है हमें दिखायी न पडें। हमारी आँखे कमजोर है बहुत। ऐसा समझें कि अगर मै एक मकान की सीढियो पर चढ रहा हूँ, नीचे की सीढी मुझे दिखायी पडती हो और बीच की सीढ़ियाँ दिखायी न पडे और आखिरी सीढी दिखायी पडती हो तो

क्या मैं कभी भी सोच सकूंगा कि पहली सीढी और आखिरी सीढी मे कोई जोड है ? कभी भी न सोच सकूंगा। बीच की सीढियाँ दिखायी पड जाय तो मैं कह सकगा कि पहली और आखिरी सीढी दो सीढियाँ नही हैं। एक ही सीढी के दो हिस्से हैं। पहली सीढी पर शुरू होती है यात्रा, आखिरी सीढी पर पूरी होती है। यह एक ही चीज का विस्तार है। कृष्ण के व्यक्तित्व की जो बीच की सीढियाँ हैं वह हमे दिखायी नही पडती, क्योंकि हमारे ही व्यक्तित्व की बीच की सीढियाँ हमे नही दिखायी पडी। वह जो 'लिक्स' है, वह हमे दिखायी नही पडते। आपने अपनी अशांति भी देखी, शांति भी देखी। दोनो के बीच का क्षण देखा ? वह नही देखा। आपने प्रेम भी देखा और घृणा भी देखी, लेकिन दोनो के बीच की यात्रा देखी है कि प्रेम किस भांति घृणा बनता है ? घृणा किस भांति प्रेम बनती है ? आपने मित्रता भी साधी, शत्रुता भी साधी, लेकिन कभी यह देखा कि मित्रता किस कीमिया से' किस 'केमिकल' प्रक्रिया से शत्रुता बन जाती है ? शत्रुता किस कीमिया से मित्रता बन जाती है ? अलकेमिस्ट हुए जो इस कोशिश मे लगे थे कि लोहा सोने मे कैसे बदल जाय, लेकिन लोग उनको समझ न पाये। लोग समझे कि सच मे ही वे लोहे को सोना बनाने मे लगे हैं। वह सिर्फ यह कह रहे थे कि अगर लोहा है तो कही-न-कही सोने से जुडा होगा। क्योंकि, यह हो नही सकता कि लोहा और सोना जुडा न हो। कही-न-कही कोई लिंक, कही-न-कही कोई बीच की कडी होगी जो हमे दिखायी नही पड रही है। यह हो नही सकता कि जगत 'अनबिल्ट' हो। अगर वहा फूल खिला है और वहा मैं बैठा हूँ तो कही-न-कही कोई लिंक होगा ही। और अगर मैं प्रसन्न हूँ तो उस प्रसन्नता मे फूल की प्रसन्नता कही भागीदार होगी। हो सकता है कडी हमे दिखायी न पडती हो। वहाँ फूल कुम्हला जाय और मैं उदास हो जाऊ और कडी कही दिखायी न पडे। जीवन जोड है। इसलिए सब जुडा है। अलकेमिस्ट कहते थे कि लोहा है और सोना है तो कही जोड होगा। लेकिन, इतनी ही खोज न थी। वह यह कह रहे थे कि जिसको हम नीचा कहते हैं वह ऊंचे से जुडा होगा। 'द बेसर मस्ट बी लिक्ड विद द हायर।' नही तो हो नही सकता। कही-न-कही सेक्स परमात्मा से जुडा होगा। जुडा होना चाहिए। कही-न-कही जमीन आकाश से जुडी होगी। होनी चाहिए। कही-न-कही जन्म मृत्यु से जुडा होगा। जुडा होना चाहिए। बिना जुडे हो कैसे सकता है ? जड कही-न-कही चेतन से जुडी होगी। पत्थर कही-न-कही आत्मा से जुडा होगा। जुडा होना चाहिए ; अन्यथा हो कैसे सकता है ? इस बडे जोड के प्रतीक की तरह कृष्ण हैं। मैं तो कहता हूँ कि वह व्यक्ति हुआ। ऐसा ही हुआ। इतिहास दलीले जुटाए, मैं

उठा कर कचरे मे फेक दूगा। मनोवैज्ञानिक बताए, मै कहूँगा तुम्हारा दिमाग खराब है, तुम समझ न पाओगे। क्योकि, तुमने खण्डो का साफ-सुथरापन समझा है, तुमने खण्डो का जोड नही समझा है। फ्रायड बहुत खोज करता है। जितना वह आदमी जानता है क्रोध के सम्बन्ध मे, शायद कम आदमी जानते होगे। लेकिन, कोई जरा धक्का मार दे तो क्रोध उसे भी आता है। फिर तो यह जानकारी बडी बाहरी हो गयी। यह जानकारी बहुत भीतरी न रही। इसको भी पता नही कि अक्रोध, क्रोध कब हो जाता है। क्रोध पर बहुत खोज करता है। फ्रायड जितना पागलपन के सम्बन्ध मे जानता है शायद कोई जानता हो! लेकिन, फ्रायड खुद पागल हो सकता है, किसी भी क्षण पागल हो सकता है और मौके आ जाते है जब वह पागलपन करता है।

मनोवैज्ञानिक क्या कहता है इसका बहुत मूल्य मेरे लिए नही है। क्योकि कृष्ण मन के बाहर गये व्यक्ति है, मन के पार गये व्यक्ति है। एक और तरह की अखण्डता है जो आत्मा की अखण्डता है, जो एक ही साथ सब मे हो सकती है। सब तरह के मनो मे हो सकती है। इसलिए, मै एक ही व्यक्ति मानकर बात करूँगा।

पूछते है गीता को प्रामाणिक वचन मानेगे कृष्ण के? कृष्ण जैसा व्यक्ति हुआ हो तो गीता जैसा वचन प्रामाणिक ही होगा। यह सवाल नही है कि कृष्ण ने ऐसा बोला कि नही बोला। बात इतनी ही है कि कृष्ण बोलेगा तो ऐसा ही बोल सकता है। अगर कृष्ण ने नही बोला हो और व्यास ने ही गीता लिखी हो तो भी कोई बहुत फर्क नही पडता। क्योकि, व्यास लिख नही सकता अगर कृष्ण जैसा व्यक्ति न हो। व्यास भी तो गीता बोलेगा न! अगर कृष्ण बोले, व्यास बोले या अ ब स कोई और बोले, लेकिन गीता बोलने के लिए भीतर कोई चाहिए न! यह गीता आसमान से पैदा नही होती। नाम से क्या फर्क पडता है? उस आदमी का नाम व्यास है कि कृष्ण है, कि क्या है, इससे कोई फर्क नही पडता। इसलिए, मै उल्टी तरह से सोचता हूँ। मै यह नही कहता कि गीता प्रामाणिक वचन है कृष्ण का। मै यह कहता हूँ, गीता है। यह बोली गयी, यह कही गयी, यह लिखी गयी, यह अस्तित्व मे है। यह बिना कृष्ण के अस्तित्व मे नही हो सकती, एक आदमी तो चाहिए न जो यह बोले, जो यह लिखे। वह कौन है, उसका नाम क्या था, इससे क्या फर्क पडता है! लेकिन, एक चेतना तो चाहिए न, जिससे इसका जन्म हो। गगोत्री प्रमाण नही है गगा के लिए, गगा प्रमाण है गगोत्री के लिए। गगा है तो हम कह सकते है कि गगोत्री होगी। चाहे हो या

न हो, चाहे मिले या न मिले, चाहे खोज पाये या न खोज पायें, लेकिन गगा है तो गगोत्री होगी। गीता है तो कृष्ण होगे। गीता से कृष्ण की तरफ चलना मुझे उचित मालूम पडता है, क्योकि गीता अभी है। कृष्ण की तरफ से गीता की तरफ चलेगे तो झझट मे पडेंगे। क्योकि, उसमे डर हो सकता है कि कृष्ण न हो और तब फिर गीता सदिग्ध हो जाय। फिर गीता के लिए हमे कोई और आदमी खोजना पडे। लेकिन, हम बडे पागलपन का काम करते है।

प्रश्न श्रीमद्भागवत में वस्त्रहरण लीला के प्रसग में कृष्ण का नैसर्गिक 'इरोटिक जेश्चर' सुस्पष्ट है कि गोपिकाओ की अक्षत योनिया देखकर कृष्ण प्रसन्न हुए और वस्त्र लेने के लिए लज्जावश गोपिकाए गुह्याग हाथ से ढांक कर बाहर आई। तब कृष्ण कहते है कि तुमने जल देवता का नग्न नहाकर अपराध किया है इसलिए पाप शमन के हेतु मस्तक पर दोनो हाथ जोडे उन्हें नमस्कार कर वस्त्र ले जाओ। बाद में भागवतकार लिखते है, कृष्ण ने कुमारिकाओ को ठग कर लज्जा त्याग करवायी। कृष्ण की इस क्रिया के प्रति आपकी क्या प्रतिक्रिया है? निरावरणता के सर्व प्रथम पुरस्कर्ता कृष्ण के आप समर्थ अनुगामी है मगर आपके ख्याल और जर्मनी देश के 'न्यूडिस्ट' क्लब के ख्याल में क्या बुनियादी फर्क है। वस्त्र सभ्यता का प्रतीक है, सस्कृति चमडी का—इस त्वचा या चमडी को अलग करने से जो अस्थिपजर दिखाई पडेगा इससे हम प्राकृतिक रूप में दिखाई पडेंगे मगर बर्बर भी दिखाई पडेंगे। यह ख्याल 'बैक टु जगल' नहीं होगा? घडी के काटे को पीछे घुमाने की विधि को आप 'प्रोग्रेस' कहेंगे?

उत्तर पहली बात सिगमन फ्रायड का 'लिबिडो' का ख्याल बहुत कीमती है। लिबिडो को अगर हम ठीक शब्द दे तो उसका अर्थ होगा काम ऊर्जा, 'सेक्स इनर्जी'। मनुष्य के जीवन मे ही नही, सारी सृष्टि के जीवन मे, सृजन मे, काम ऊर्जा की गुह्यतम स्थिति है। पुराण कहते है, ब्रह्मा ने जगत् को बनाया तो काम से पीडित होकर। सृजन होगा ही नही कामना के बिना। समस्त सृजन कामना से ही आविर्भूत होता है। जो भी है वह काम का ही विस्तार है। जीवन की समस्त लीला, जीवन की सारी अभिव्यक्ति, चाहे फूल खिलते हो, चाहे पक्षी गीत गाते हो, काम ऊर्जा का ही खेल है।

ऐसा समझे, जैसे काम ऊर्जा का एक सागर है और उसमे अनत-अनत लहरे उठ गयी अनत-अनत रूपो मे। स्वय परमात्मा ही बहुत गहरे मे काम ऊर्जा का केन्द्र है। कृष्ण के जीवन मे काम ऊर्जा की सहज, निश्छल स्वीकृति है। सहज स्वभाव का अगीकार है। न कही कोई निषेध है, न कही कोई दमन है। जैसा है जीवन, वैसा अनुग्रहपूर्वक, अनुग्रह भाव से उसे जीने की सहजता है। इसलिए, कृष्ण की घटनाओ को जो लोग दबाने, बदलने, शकल देने की कोशिश करते है, वे केवल अपनी अपराध-वृत्तियो, अपने दमित काम, अपने चित्त के रोगो की खबर देते हैं। निश्चित ही यह कोशिश की जाती रही है कि जिस कृष्ण ने गोपियो के वस्त्र लिये और वृक्ष पर चढ गये, वह बहुत छोटे थे। हमे बडी राहत मिलेगी अगर वे बहुत छोटे होगे। उससे हम उनको स्वीकार करने मे सुलभता पायेगे। लेकिन, छोटे बच्चे भी एक-दूसरे को नग्न देखना चाहते है। बहुत छोटा बच्चा भी उत्सुक है जानने को—लडकी भी, लडका भी। और यह जिज्ञासा अत्यन्त स्वाभाविक है। जैसे ही एक बच्चे को, वह चाहे लडकी हो, चाहे लडका, जैसे ही अपने शरीर का बोध शुरू होता है, वैसे ही उसे यह भी बोध शुरू होता है कि पास ही कोई और है, जिसके शरीर मे कुछ भेद है। लडके को तत्काल बोध शुरू होता है कि लडकी भी है घर मे, बहन भी है उसकी, जिसके शरीर मे कुछ फर्क है। लडकी को भी बोध होता है कि लडका है, उसके शरीर मे कुछ फर्क है। यह बोध इतना कठिन न हो, अगर लडके और लडकियाँ सहज ही घर मे नग्न रहते हो। लेकिन, बडे-बूढे इतने काम-ग्रसित है, कि छोटे-छोटे बच्चो को भी जल्दी वस्त्र पहनाने को आतुर होते है। यह उनकी आतुरता इतनी ज्यादा है कि छोटे बच्चे एक-दूसरे को नग्न सहजता से नहीं देख पाते है। अगर यह भी मान ले कि कृष्ण की उम्र छोटी रही हो और वे नहाती हुई लडकियो के वस्त्र लेकर वृक्ष पर चले गये हो तो इसमे कुछ बहुत नया नही है। सभी छोटे बच्चे लडकियो को नग्न देखना चाहते है। न नदी उपलब्ध है, न वृक्ष उपलब्ध है, न नदी पर नहाती हुई लडकियाँ उपलब्ध हैं तो बच्चों को नये-नये रास्ते खोजने पडते है। फ्रायड ने एक खेल का उल्लेख किया है, डाक्टर का खेल। छोटे बच्चे लडकियो को बीमार करके, लिटा करके डाक्टर का खेल शुरू करेगे और उनको नग्न देखना चाहेगे। यह बडी सहज जिज्ञासा है, इसमे कुछ भी बुरा नही है। यह बहुत स्वभाविक है कि हम एक-दूसरे से परिचित होना चाहे। यह हमारे शरीर-परिचय की बिल्कुल प्राथमिक कडी है। अगर कृष्ण छोटे भी रहे हो तब भी सभव है; लेकिन उम्र ज्यादा भी रही हो तब भी असम्भव नही है। हमारे लिए असम्भव हो जायगा,

कृष्ण के लिए असम्भव नही है। क्योकि, कृष्ण जीवन को सहज जीते है, जैसा है वैसा स्वीकार करते है। और जिस सस्कृति मे वह पैदा हुए होगे वह सस्कृति भी बहुत सहजता से स्वीकार करती होगी। अगर कृष्ण हमारे समाज मे पैदा हुए होते तो हमने इस उल्लेख को ही काट दिया होता। हम इस उल्लेख को कभी लिखते ही नही। जिन लोगो ने इस उल्लेख को सहजता से लिखा है, उनके मन मे कोई भी ऐसा भाव न रहा होगा कि कुछ गलत हुआ है। वरना गलत को हम छाँट देते। हजारो साल तक यह सवाल किसी ने नही उठाया कि कृष्ण कैसा आदमी है। यह अभी हमने उठाना शुरू किया है। जिस सस्कृति मे कृष्ण की यह घटना घटी होगी वह सस्कृति इसको सहज स्वीकार कर चुकी होगी। कृष्ण कपडे चुराकर अगर चले गये होते, और यह कोई अनूठी घटना होती तो इसकी निन्दा भी होती। लेकिन, यह कोई और ही कृष्ण करते रहे होगे या कोई और बालगोपाल यह करते रहे होगे, लडकियाँ भी बहुत कम उम्र की रही होगी, यह नही माना जा सकता। कृष्ण जिस उम्र के रहे होगे, बहुत भिन्न उम्र की लडकियाँ नही रही होगी। कृष्ण देखने को उत्सुक है उन्हे नग्न। ये लडकियाँ, कृष्ण न देख पाये इसके लिए आतुर है। इस मामले मे एक बात समझ लेनी बहुत जरूरी है।

पुरुष चित्त और स्त्री चित्त मे जो बहुत-से फर्क है उनमे से एक फर्क यह भी है कि पुरुष, स्त्री को नग्न देखना चाहता है। वह 'वोयूर' है। स्त्री, पुरुष को नग्न नही देखना चाहती, इतनी उसकी उत्सुकता नही है। वह 'वोयूर' नही है। इसीलिए, दुनिया मे जितनी नग्न स्त्रियो की प्रतिमाएँ है, पुरुषो की नही। और अगर कही पुरुषो की नग्न प्रतिमाएँ है तो वे उन सस्कृतियो मे पैदा हुई जो 'होमोसेक्सुअल' थी – जैसे, यूनान मे पैदा हुई, सुकरात और प्लेटो के वक्त मे पैदा हुई जो कि होमोसेक्सुअल वक्त है। जिसमे कि पुरुषो को भी काम का विषय बनाते थे, 'सेक्स ऑब्जेक्ट' बनाते थे।

कभी आपने शायद ख्याल न किया हो कि प्रेम के गहरे-से-गहरे क्षण मे पुरुष जरूर स्त्री को नग्न करना चाहेगा। अगर पुरुष नग्न भी हो तो प्रेम के गहरे क्षण मे पुरुष की आँखे खुली रहेगी। स्त्री की आँखे बन्द हो जायेगी। अगर स्त्री का चुम्बन भी लिया जा रहा हो तो वह आँख बन्द कर लेती है। देखने मे उसका बहुत रस नही है। 'एब्जार्व' कर लेने मे, पी लेने मे, हो जाने मे उसका रस है, देखने में उसका रस नही है। पुरुष देखने मे बहुत रसपूर्ण है। पुरुष की यह देखने की उत्सुकता स्त्री की छिपाने की उत्सुकता का जन्म बन जाती है और

वह अपने को छिपाना शुरू कर देती है। लेकिन, स्त्री की बडी मुश्किल है। अगर वह बहुत ज्यादा छिपा ले तो पुरुष के लिए अनाकर्षक हो जाती है। इसलिए, स्त्री को दोहरा काम करना पडता है। छिपाना भी पडता है और उघाडना भी पडता है। उन्ही कपडों से छिपाना पडता है खुद को, उन्ही कपडो से उघाडना पडता है उसे। छिपाना पुरुष की जिज्ञासा है। लेकिन, इसी पुरुष के लिए उसे आकर्षक भी होना है, क्योंकि पुरुष के लिए वह आकर्षक नही है तो बेमानी है। इसलिए उसे उघाडना भी है। तो, स्त्रियाँ एक बडी जिच मे पडी रहती है सदा—उघाडो भी, ढाँको भी। उनको पूरे वक्त इन दोनो के बीच एक ताल-मेल, एक सतुलन बनाये रखना पडता है। तो, वे स्त्रियाँ अगर पानी से बाहर अपने गुप्त अग ढाँक कर निकली हो तो बिल्कुल स्वाभाविक है। यह घटना बडी सहज है।

और कृष्ण ने उनसे कहा हो कि हाथ जोडकर देवता को नमस्कार करो तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमे कुछ कठिनाई नही है। यह पुरुष चित्त है, और कृष्ण सीधे, महज पुरुष चित्त है। कहना चाहिए पूरे पुरुष चित्त है। और इसकी बाबत न कोई दमन है, न कोई विरोध है। जिन्होने ये कथाएँ लिखी वे भी बडे सहज लोग है। उन्होने सीधी-सीधी बाते लिख दी, जो थी। उनके मन मे कोई ऐसा मामला नही आया था, न कोई ऐसे सिद्धान्त आ गये थे जो कहते कि यह क्या लिख रहे हो ? और कृष्ण, जिसे तुम भगवान बना रहे हो उसकी बाबत ऐसी बात लिख कर तुम दिक्कत डाल रहे हो। यह तो बाद के लोगो को बडी कठिनाई होगी कि यह भगवान कैसा ! भगवान भी ऐसा हो सकता है ? लेकिन, इतना सरल और सहज, इतना 'स्पॉन्टेनियस' भगवान ही हो सकता है, आदमी नही हो सकता। आदमी 'प्री प्लान' करता है। मै इतना जरूर कहूगा कि कृष्ण ने यह 'प्लानिग' नही की होगी। इसका कोई 'ब्लू प्रिन्ट' नही रहा होगा कि लडकियाँ अगर अपने अग छिपा लेगी तो मै उनसे कहूगा कि हाथ जोडो। बस, वह इतना सहज हुआ होगा कि लडकियो ने अग छिपाए होगे, कृष्ण ने कहा होगा, हाथ जोडो नदी के देवता को ! नाराज करती हो नदी के देवता को ? और, इस सहजता को इसी तरह वर्णित किया जिन लोगो ने वे भी अद्भुत रहे होगे। सरल रहे होगे, सीधे रहे होगे। घटनाओ मे काट-छाट नही की है। 'इम्प्रूवमेंट' नही किया है कोई घटनाओ पर। चीजो को छोड दिया है जैसी वह थी। पीछे हम मुश्किल मे पडते चले गये। ऐसी बहुत घटनाएँ है जो हमे पीछे दिक्कत मे डालती है। क्योकि, पीछे हमारे नये सिद्धान्त, नयी

धारणाएँ और नयी नैतिकताएँ नये ख्याल दे देती है। पीछे की तरफ लौटकर उनको हमे लागू करना पडता है, तब कठिनाई खडी हो जाती है। मै तो मानता हूँ कि काम ऊर्जा की जो सहजतम अभिव्यक्ति हो सकती है वह कृष्ण मे हुई है। उसमे उन्होने कोई बाधा नही मानी है। वह सहज जिये है और उनके समाज मे, जिसमे वह थे उसने वह सहज स्वीकार कर लिया था। वह समाज भी सहज होगा।

दूसरी बात पूछी है कि मै निरावरणता का समर्थक हूँ। एक अर्थ मे हू। ऐसा नही कि वस्त्रो का विरोधी हूँ। अगर वस्त्रो का विरोधी हूँ तब तो मैं घडी के काटो को पीछे की तरफ घुमाता हूँ। वस्त्रो का अर्थ है। वस्त्रो का प्रयोजन है। लेकिन, वस्त्रो की कोई नैतिकता नही है, वस्त्रो की कोई 'मोरालिटी' नही है, प्रयोजन है। सर्दी है और वस्त्र जरूरी है। गर्मी है, और दूसरी तरह के वस्त्र जरूरी है। आप रास्ते पर निकले है तो भी वस्त्र जरूरी है, क्योकि कोई आपको नग्न न देखना चाहे तो आपको दिखाने का हक नही, वह 'ट्रेसपास' है। लेकिन, इसका मतलब यह नही है कि कोई हमे नग्न देखने को राजी नही है तो हम अपने घर पर भी नग्न होने को स्वतन्त्र न रह जाएँ या किन्ही घडियो मे हम नग्न न हो सके। नही, नग्नता और वस्त्र ऐसे ही होने चाहिए जैसे जूते है। घर पर हम जूता नही पहनकर घूम रहे है, बाहर पहनकर चले जाते है। लेकिन, घर मे जूता उतारने पर कोई नही कहता कि तुम नगे हो गये। पैर तो नगे हो ही गये है। कपडे सहजता से लिये जाय, उनका दश न रह जाय। सहजता से वे तभी लिये जा सकते है जब नग्नता भी सहजता से ली जाय, नही तो नही लिये जा सकते। तब कपडे एक नैतिक अर्थ ले लेते है जो उनमे बिल्कुल नही है। मनुष्य ने बहुत कपडे ओढ डाले। इतने कपडे ओढ डाले कि उन कपडो की वजह से उसे कपडे उघाडने के हजार तरह के प्रयत्न करने पडे। उससे अनैतिकता पैदा हुई है।

हम नग्न पैदा होते है। कपडो के भीतर भी नग्न ही रहते है, नग्न ही मरते है! परमात्मा ने हमे नग्न ही पैदा किया है। वह सहजता है। इसका यह मतलब नही कि हम नगे ही रहे। परमात्मा ने हमे जैसा पैदा किया उसमे हम फर्क करते है। जैसे, परमात्मा धूप डाल रहा है, हम छाता लगाये हुए है। इसमे हम कोई परमात्मा का विरोध नही कर रहे है, क्योकि छाता लगाने से जो छाया आती है वह भी परमात्मा के ही नियम का हिस्सा है। उसमे कोई विरोध नही है।

सिर्फ हमारे लिए जो मौज है वह हम कर रहे हैं और इतनी स्वतन्त्रता हमे हो कि हम धूप मे बैठे कि छाया मे। लेकिन, किसी दिन कोई आदमी छाया मे बैठने को नैतिकता बना ले और धूप मे जाने को पाप बना ले तो फिर छाया मे बैठना बडा बोझिल हो जायेगा। फिर धूप मे जाना अपराध हो जायेगा और लोग चोरी मे धूप मे जाने लगेगे जो बडी सहज बात है। इसमे चोरी से जाने का कोई कारण न था, अकारण हम चोरी पैदा कर रहे है, अकारण हम अनैतिकता पैदा करवा रहे है। अकारण 'कण्डमनेशन' पैदा कर रहे है, अकारण लोगो को अपराधी सिद्ध करवा रहे है, और उनको 'गिल्ट' दे रहे है, जिसको देने की कोई जरूरत न थी। तो मै मानता हूँ कि नग्नता एक सत्य है जीवन का। उसे सरलता से स्वीकार करने की बात है। उसमे भागने की कोई जरूरत नही है। भागने के कारण पचीस झमेले कर रहे है। सडक-सडक पर नगे पोस्टर लगे है, वह बिल्कुल न लगेगे। अगर हम सहज नग्नता को स्वीकार कर ले, अगर घर मे लोग कभी नग्न भी बैठते हो, कभी नदी के किनारे नग्न नहाते भी हो, कभी मित्रो के बीच नग्न गपशप भी करते हो, कभी नग्न बैठकर धूप भी लेते हो तो बात बडी सरल हो जाय। कपडे छोडकर भागेगे तो घडी का काटा पीछे लौटेगा। अगर कपडे छोडकर भागने नही, नग्नता को भी स्वीकार करने है, तो जो लोग नग्न थे, उनको कपडो का जो फायदा नही था वह हमे होगा, और जो लोग सिर्फ कपडा पहने हुए है और कपडा से परेशानी मे पड गये है उस परेशानी मे हम न होगे। इसलिए इसे मै विकास कहूगा। यह आगे जाना होगा। यह अकेले नगे लोगो से भी आगे जाना होगा, अकेले कपडे ढके लोगो से भी आगे जाना होगा।

'न्यूडिस्ट क्लब' बगावत है। 'न्यूडिस्ट क्लब' एक प्रतिक्रिया है उस समाज की जिन्होने कपडे बहुत थोप दिये। मै 'न्यूडिस्ट क्लब' के पक्ष मे नही हूँ। इसका मतलब यह हुआ कि एक तरफ पूरा समाज होता है और एक तरफ अस्पताल बनाते है। मै कहता हूँ, बीमार ही क्यो हो। न्यूडिस्ट क्लब की जरूरत जो है वह यह जो 'आब्सेस्ड' लोग है कपडे से, इनकी वजह से पैदा होती है। अगर हम 'आब्सेशन' अलग कर ले तो न्यूडिस्ट क्लब की कोई जरूरत नही रह जाती। काश हम सहजता से घर मे बाप-बेटे एक साथ नग्न नहा सके। हैरान होगे आप इस बात को जानकर कि, अगर घर मे मा अपने बेटे के साथ नग्न नहा सके तो यह बेटा रास्ते पर किसी लडकी को धक्का देने मे असमर्थ हो जायेगा। इसका कोई अर्थ नही रह जायेगा। धक्का देना बिल्कुल बेमानी बात हो जाएगी। स्त्री और पुरुष के बीच का फासला इतना कम हो जाएगा कि धक्का मार कर फासला कम करने

की कोई जरूरत नही। धक्का मार कर फासला ही कम किया जा रहा है, और कुछ किया नही जा रहा है। चूकि आहिस्ता से हाथ रखने का कोई उपाय नही इसलिए धक्का मारा जा रहा है। अगर कोई स्त्री मुझे अच्छी लगे, उसका हाथ मे हाथ लेकर कहू कि मुझे हाथ बहुत प्यारा लगता है, एक क्षण हाथ मे ले सकता हूँ ? और, समाज इतना सहज हो कि कहे ठीक है हाथ आपको प्यारा लगा, धन्यवाद। हाथ इतना प्यारा लगने का भी तो धन्यवाद होना चाहिए, तो फिर धक्का मारना मुश्किल हो जायेगा। लेकिन, वह नही सभव हुआ है। हम फूलो को धक्के नही मारते। हम खडे होकर देख लेते है, रास्ते से गुजर जाते हैं। अगर कल फूल कोई कानून बना ले और फूल भी पुलिस के आदमी खडे कर ले और कहे कि कोई देखेगा तो ठीक नही होगा तो फिर फूलो के साथ ज्यादती शुरू हो जायेगी। फिर; अनैतिकता शुरू हो जायेगी। असल मे अति-नैतिकता का आग्रह अनैतिकता का जन्म बन जाता है। 'टू मच मारोलिटी क्रिएट्स इममोरालिटी'। मै कहता हू, सहजता से जिन्दगी जैसी है, उसे स्वीकार कर लेना है। कृष्ण बडे अद्भुत प्रतीक है। वह सहज जीवन मे जो है, उसकी सहज स्वीकृति हैं।

प्रश्न **आचार्यश्री, आपने इसकी ओर इगित किया कि आप किसी पक्ष में नहीं। पर जैसा कि आपने अभी कहा कि किसी का हाथ प्यारा लगे तो उस हाथ को उस सहज समाज में आप ले सके, वह एक 'नार्मल'सी चीज हो जाती है। मगर तब तो आपको यही प्रश्न पूछना मुनासिब होगा कि आप 'इममारल' की व्याख्या क्या करते है ? क्योकि आप हाथ कहेंगे तो दूसरा कोई और अग की माग करेगा तो उससे व्यक्ति के जीवन में 'कानफ्लिक्ट' पैदा हो जायेगी। वह दिक्कत में पड जायेगा।**

साथ दूसरा भी एक प्रश्न कि जो कृष्ण वस्त्र हरण कर सके, वही कौरव सभा में द्रौपदी का चीर पूरा भी कर सके। द्रौपदी का वस्त्र पूर्ण करते कृष्ण अलौकिक है, लोकोत्तर है, चमत्कारिक हैं। क्या यह केवल अद्भुत दृष्टात नहीं हो सकता ?

द्रौपदी के वस्त्र को पूर्ण करनेवाले कृष्ण काले थे। श्रीमद्भागवत में उनके रग के वर्णन के लिए तीन विशेषण दिये गये है – शुक्ल, पीत और कृष्ण। कवियो ने बहुत बहुत कल्पनाए कीं कि कृष्ण क्यों काले हैं, काले है फिर भी मतवाले है इत्यादि।

उत्तर जहा तक सहजता का सम्बन्ध है, शरीर के किसी अग मे और हाथ मे कोई फर्क नही है। फर्क हमे दिखायी पडता है, क्योकि फर्क हमने पैदा कर लिया है। फर्क निर्मित है, फर्क है नही। शरीर के सभी अग एक जैसे है। क्योकि हमने शरीर मे भी खण्ड कर लिये है। शरीर का कोई हिस्सा है जो बैठकखाने जैसा है। जिसको सब देख सकते है। शरीर का कोई हिस्सा है जो 'गोडाऊन' जैसा है, जिसके लिए 'लाइसेस' चाहिए। लेकिन, शरीर अखण्ड तथा इकट्ठा है। इसमे कोई हिस्से का कोई फर्क नही है। जिस दिन मनुष्य सच मे पूरा स्वस्थ और सहज होगा उस दिन कोई फर्क नही होगा। लेकिन, आपका यह कहना ठीक है कि यह किस सीमा तक ? अगर कोई व्यक्ति किसी का हाथ अपने हाथ मे ले लेता है तो सोचा जा सकता है कि ठीक है। लेकिन, दो बाते विचारणीय है। जिस सहज समाज की मै बात करता हूँ उसमे दूसरे व्यक्ति का हाथ लेते वक्त, जैसे दूसरे व्यक्ति को व्यर्थ ही, अकारण ही बाधा डालना ठीक नही है, वैसे ही दूसरे व्यक्ति का हाथ लेते वक्त व्यर्थ ही अकारण ही, दूसरे व्यक्ति को कष्ट न हो वह भी सहजता का हिस्सा है। क्योकि, जब मै किसी व्यक्ति का हाथ लेता हूँ तो किसी व्यक्ति का हाथ ले रहा हू। मेरे लिए आनन्दपूर्ण हो सकता है उसका हाथ लेना, लेकिन अगर उसको दुखपूर्ण है तो उसको भी स्वतत्रता तो है ही। मै अपना आनन्द लेने के लिए हकदार हूँ तो दूसरा भी तो अपने आनन्द का ध्यान रखने के लिए हकदार है। अगर मुझे अच्छा लग रहा है किसी का हाथ अपने हाथ मे लेना, तो यह जानना जरूरी है कि उसे भी अच्छा लग रहा है या नही लग रहा है। मै अपने सुख के लिए स्वतत्र हूँ तो वह भी अपने सुख के लिए स्वतत्र है। जहा से यह दूसरा व्यक्ति शुरू होता है वहा से हमारी स्वतत्रता पर दूसरे की स्वतत्रता की जिम्मेदारी भी शुरू हो जाती है। वह बिल्कुल सहज है, स्वाभाविक है। क्योकि, आप आयें और मुझे गले से लगा ले। लेकिन, मुझे इसमे सिर्फ घबराहट होती है, तो आप आनन्द लेने के हकदार है, लेकिन मै भी तो अपनी घबराहट से बचने का हकदार हूँ। इसलिए, सहज समाज निवेदन करेगा। ये निवेदन ही हो सकते है और इनकी स्वीकृति अनिवार्य है। क्योकि दूसरा व्यक्ति शुरू हो गया तत्काल।

मै किस बात को नैतिकता कहता हूँ आपने पूछा, मै किस बात को 'मोरालिटी' कहता हूँ ? मै इस बात को नैतिकता कहता हूँ कि दूसरे व्यक्तित्व का सम्मान ! दूसरे व्यक्ति का उतना ही सम्मान जितना मेरी दृष्टि मे है। इसको मै नैतिकता कहता हूँ। इसके अतिरिक्त मेरे लिए कोई नैतिकता नही है। और मै मानता हूँ कि जितनी नैतिकताएँ है वे सब इसके नीचे

अपने आप फलित होती है। जिस दिन मैं अपने को दूसरे व्यक्ति के ऊपर रखता हूँ उसी दिन मैं अनैतिक हो जाता हूँ। जिस दिन मैं दूसरे व्यक्ति को साधन की तरह उपयोग करता हूँ और मैं साध्य हो जाता हूँ उस दिन मैं अनैतिक हो जाता हूँ। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप मे साध्य है, जब तक मैं इसका स्मरण रखता हूँ तब तक मैं नैतिक होता हूँ ।

आपने पूछा है कि एक पति को बुरा लगेगा। लग सकता है। असल मे पति एक प्रकार की अनैतिकता है। असल मे पति इस बात की घोषणा है कि उसने एक पत्नी को सदा के लिए अपना साधन बना लिया है। पति इस बात की घोषणा है कि उसने एक व्यक्ति को खरीद लिया है। पति इस बात की घोषणा है कि वह एक व्यक्ति का मालिक हो गया। 'ओनरशिप' हो गयी। व्यक्तियो की मालकियत नही हो सकती। मालकियत सिर्फ वस्तुओ की हो सकती है,और व्यक्तियो की मालकियत अनैतिकता है। मेरे हिसाब मे तो विवाह एक अनैतिकता है। प्रेम नैतिकता है। जिस दिन दुनिया अच्छी होगी उस दिन दो व्यक्ति दिन भर साथ रह सकते है, लेकिन यह साथ रहना कोई 'कण्ट्राक्ट' नही होगा। यह साथ रहना कोई सौदा नही होगा। यह साथ रहना कोई सस्था नही होगी, यह साथ रहना उनके प्रेम का प्रतिफल होगा। उनका प्रेम है कि वे साथ रह रहे है। जिस दिन प्रेम कानून बनता है, जिस दिन मैं किसी स्त्री से कह सकता हूँ कि मै हकदार हूँ तुमसे प्रेम मागने का, क्योकि तुम मेरी पत्नी हो उसी दिन प्रेम अनैतिक बन गया। क्योकि, प्रेम के मूड होते है, प्रेम के क्षण होते है। इस योग्य बहुत कम लोग है जो चौबीस घण्टे प्रेम मे है। चौबीस घण्टे प्रेम मे वही हो सकता है जो प्रेम हो गया है। साधारण जन तो किसी क्षण मे प्रेम मे होता है। लेकिन, कानून तो क्षण नही देखता। प्रेम मागा जा सकता है, क्योकि तुम मेरी पत्नी हो और उसे प्रेम देना पडेगा। और जब प्रेम देना पडता है तब वह प्रेम नही रह जाता। अब पत्नी अगर कहे कि आज तो प्रेम का क्षण ही नही। इस क्षण तो आप मेरे कोई भी नही है, क्योकि नाता तो सिर्फ प्रेम का ही है और प्रेम ही नही है, तो कठिनाई खडी होगी कानून मे। लेकिन, हम यह भी समझे कि क्या यह सभव है जो हमने बनाया है नीति के नाम पर ? हमने नीति के नाम पर बहुत-सी असभावनाए थोप दी हैं, और उन असभावनाओ की वजह से बहुत अनैतिकता पैदा हो गयी है। मैं आज एक व्यक्ति को प्रेम करता हूँ, क्या मै पक्का वायदा कर सकता हूँ कि कल मै किसी दूसरे व्यक्ति को प्रेम नही करूगा ? कैसे कर सकता हूँ ? यह बिल्कुल असंभव है। अभी कल आया नही, अभी वह व्यक्ति भी मुझसे नही मिला जिससे कि मेरा प्रेम हो सकता है। मैं वायदा

कैसे कर सकता हूँ ? अगर मैने वायदा किया तो कल उपद्रव होगा। कल एक घटना घट सकती है जब मै किसी के प्रति प्रेमपूर्ण हो जाऊ, लेकिन तब मेरा वायदा बीच मे खडा हो जायेगा। तब दोहरी कठिनाई होगी। या तो मै चोरी से किसी के प्रेम मे हो जाऊ, जो कि अनैतिकता होगी। क्योकि,जिस दुनिया मे प्रेम भी चोरी से करना पडे उस दुनिया मे और क्या है जिसको हम ईमानदारी से कर सकते है ? एक तरफ यह होगा कि मै चोरी से प्रेम करू और दूसरी तरफ यह होगा कि जिससे मैने प्रेम का वायदा किया उसके साथ मै प्रेम का अभिनय करू। क्योकि, अब उसके साथ प्रेम कैसे हो सकेगा ? और, जिस दुनिया मे प्रेम का भी अभिनय करना पडता हो वहा किस चीज का आचरण किया जा सकेगा ?

मै तो पति को, विवाह को अनैतिकता मानता हूँ, जो एक अनैतिक समाज ने ईजाद की है। उनके साथ और हजार तरह की अनैतिकताए पैदा होती है। जब हम पति को, पत्नी को बहुत जोर से कस देते है, वेश्या पैदा हो जाती है। फौरन पैदा हो जाती है। वेश्या, सती-सावित्रियो की रक्षा है। सती-सावित्री बचानी है तो वेश्या पैदा करनी पडेगी। लेकिन, स्त्रिया भी पसन्द करेगी कि उनका पति एक वेश्या के पास चला जाय बजाय पडोसी की पत्नी से प्रेम मे पड जाने के। क्योकि, प्रेम मे 'इन्वाल्वमेट' है, खतरा है। वेश्या के पास चला जाय तो कोई खतरा नही है। वह वापस सुवह लौट आयेगा। यह पैसे का सौदा है। इसलिए, पत्निया 'वेश्याओ' के लिए राजी हो गयी, प्रेम के लिए राजी नही हुई। और जब इस सब को मै ऐसा कहता हू तब आप जो कहते है ठीक कहते है कि 'टेबूज' से भरा हुआ आदमी हजार तरह के सस्थान, हजार तरह के सस्कार, हजार तरह की नैतिकताओ मे पला हुआ आदमी बडी मुश्किल मे पड जायेगा। मै आपसे कहता हूँ, वह बडी मुश्किल में पडा ही हुआ है। मै जो कह रहा हूँ उससे तो वह मुश्किल के बाहर जा सकता है। कहा है वह आदमी जो मुश्किल मे नही है ? सब आदमी मुश्किल मे पडे है। लेकिन, मुश्किल पुरानी है तो हमे दिखायी नही पडती। अगर मुश्किल आदतन हो गयी तो वह दिखायी नही पडती। अगर बीमारी स्थायी है तो हम उसे भूल जाते है। मै जो कह रहा हूँ वह और नयी मुश्किल होगी। नयी मुश्किल इसलिए नही कि मै जो कह रहा हूँ उससे आदमी की जिन्दगी मे मुश्किले आयेगी, मै जो कह रहा हूँ उससे एक ही मुश्किल होगी कि पुरानी मुश्किल की आदते छोडनी पडेगी। पुरानी मुश्किल के सस्कार छोडने पडेगे। और, अगर किसी दिन पृथ्वी इस बात के लिए राजी हो सकी कि हम जीवन को सहज कर ले, जीवन पर असभावनाए

न थोपे तो कृष्ण जैसे लाखो व्यक्तित्व पैदा हो सकते हैं। कोई एक ही कृष्ण पैदा हो, यह जरूरी नही है। सारी पृथ्वी कृष्णो से भर सकती है ।

आखिरी प्रश्न उन्होने पूछा है कृष्ण के बहु-रगी होने की बात ! वे रगीन आदमी थे, एक रग मे उनको नही बताया जा सकता। कई रग एक साथ थे उस आदमी मे। शरीर तो एक ही रग का रहा होगा, लेकिन आदमी कई रग का रहा था। फिर, देखनेवाली आखो पर बहुत कुछ निर्भर करता है कि कौन सा रग दिखायी पडता है। जिसने जिस आख से देखा होगा उसे वे रग दिखायी पडे होगे। एक आदमी भी भिन्न हालतो मे भिन्न रग देख सकता है। जब मैं प्रेम मे होता हूँ तब दूसरा रग दिखायी पडता है और जब मैं क्रोध मे होता हूँ तब दूसरा रग दिखायी पडता है। कभी आप मेरे प्रति प्रेम मे होते है तो तीसरा रग दिखायी पडता है। कभी जब आप मेरे प्रति क्रोध मे होते है तब दूसरा रग दिखायी पडता है। रग प्रतिपल बदलते है। सब बदलता रहता है। यहा थिर कुछ भी नही है। इस जगत मे थिरता जैसी बात ही झूठ है। लेकिन, अधिक लोगो ने उन्हे सावले रग का ही देखा। उसके कुछ कारण है।

ऐसा लगता है कि सावला रग उनकी थिरता का स्थायित्व गुण रहा होगा। यानी वे सावले रग मे ही सुन्दर रहे होगे। इस मुल्क के मन मे सावले रग के लिए कुछ आग्रह है। असल मे गोरा रग उतना सुन्दर कभी भी नही होता जितना सावला रग सुन्दर होता है। उसके कई कारण है। लेकिन, आमतौर से हमे गोरा रग सुन्दर दिखायी पडता है, क्योकि गोरे रग की चमक मे बहुत-सी असुदरताए छिप जाती है और काले रग मे कुछ भी नही छिपता। इसलिए, काला आदमी मुश्किल से कभी सुन्दर होता है। लेकिन, जब काले रग का कोई सुन्दर होता है तो गोरे रग का सुन्दर आदमी एकदम फीका पड जाता है। इसलिए हमने राम को भी सावला, कृष्ण को भी सावला—जिनको भी सुन्दर देखा उनको हमने सावले रग मे देखा। सावले रग का सौदर्य 'रेयरिटी' है, सफेद रग के सुन्दर बहुत लोग होते है। क्योकि, बहुत विशेषता नही होती है। सफेद रग का सुन्दर होना बडी साधारण बात है। सावले रग का सुन्दर होना बडी असाधारण बात है।

कुछ और भी कारण है। सफेद रग मे गहराई नही होती, 'डेप्थ' नही होती, फैलाव होता है। इसलिए, सफेद शकल 'फ्लैट' होती है, भीतरी नही होती। नदी देखी है ? जब गहरी हो जाती है तो सावली हो जाती है।

सावले रग मे डेप्थ है, फैलाव नही है, एक 'इनटेंसिटी' है। सावला चेहरा चेहरे पर ही समाप्त नही होता, उसमे भीतर कुछ 'ट्रासपरेंट' भी होता है। उसमे पर्ते दिखती है। सावले आदमी के चेहरे के भीतर चेहरे, चेहरे के भीतर चेहरे की पर्ते होती है। गोरे आदमी का चेहरा साफ होता है, सामने होता है इसलिए गोरे रग से बहुत जल्दी ऊब पैदा हो जाती है। सावले रग मे ऊब पैदा नही होती। उसमे नये रग दिखायी पडते चले जाते है। और कृष्ण जैसा आदमी तो ऐसा आदमी है कि जिससे ऊब पैदा हो ही नही सकती। आप जानकर हैरान होगे कि पश्चिम की सारी सुन्दरिया सावला होने के लिए बडी दीवानी है। सागर के तट पर लेटी है, किसी तरह धूप थोडा सावला कर दे! क्या पागलपन है! अमल मे जब भी कोई सस्कृति अपने शिखर पर पहुचती है तब फैलाव कम मूल्य का रह जाता है, गहराई ज्यादा मूल्य की हो जाती है। हमको पश्चिम का आदमी सुन्दर दिखायी पडता है, पश्चिम का आदमी जानता है कि अब सौंदर्य गहराई मे खोजना है। हो चुकी वह बात। अब पश्चिम की सुदर स्त्री सावला होने की कोशिश मे लगी है।

सफेद रग की खूबिया है कि बहुत लोग सुन्दर हो सकते है। सफेद रग की खराबी है, कि उसमे बहुत गहरा सौंदर्य नही हो सकता। मै नही मानता कि कृष्ण सावले रहे ही होगे। यह कोई जरूरी नही है। हमने उन्हे सावला देखा! इतना प्यारा आदमी था कि हम उसको गोरा नही सोच सके। हमने उनको सावला सोचा। वह सावले हो भी सकते है लेकिन वह मेरे लिए गौण है। मेरे लिए काव्य बहुत महत्वपूर्ण है। यह इतने रग का आदमी था, इतना गहरा आदमी था कि इसके चेहरे मे झाकते जाने, झाकते जाने का मन होता था, डूबने जाने का मन होता था। और उसकी गहराइया थी जो उघडती चली जाती थी। श्याम नाम उनको इसलिए दे दिया। श्याम का मतलब है काला। कृष्ण का मतलब भी है काला। न केवल हमने सोचा, बल्कि हमने नाम भी जो उन्हे दिये उसमे सावलापन था। श्याम कहा, कृष्ण कहा। वह सब काले रग के ही प्रतीक है।

और एक बात उन्होने पूछी है कि एक तरफ उघाडते है वस्त्रो को कृष्ण, दूसरी तरफ उघडती हुई द्रौपदी पर वस्त्र फेकते है। अमल मे जिसने कभी उघाडा नही, वह जिदगी भर उघाडता ही रहता है। लेकिन, जिसने उघाडकर देख लिया, अब वह वस्त्र ढाक सकता है। ढाकने और उघाडने मे एक और बडा फर्क है। प्रेम तो उघाडने की आज्ञा दे सकता है, प्रेम उघडना चाहता है। लेकिन, द्रौपदी प्रेम से नही उघाडी जा रही थी। द्रौपदी बडी घृणा से उघाडी जा रही थी।

द्रौपदी को देखने वाली आँखें प्रेम की जिज्ञासा से भरी हुई आखे न थी। जो घटना है, उस घटना का मेरे लिए मूल्य नही, जैसा मैं निरन्तर कहता हूँ, मेरे लिए तथ्यो का कोई मूल्य नही है। कोई चमत्कार ऐसा घटा हो कि दूर से कृष्ण ढाकते रहे हो। पर, मै मानता हू कि ये सब प्रतीक हैं। कृष्ण ने किसी-न-किसी तरह उस दिन द्रौपदी को उघडने से रोका होगा, इतना ही मैं मानता हू। किसी-न-किसी तरह कृष्ण उस दिन द्रौपदी के उघडने मे बाधा बन गये होंगे, इतना मै मानता हू। लेकिन, कवि जब इसको लिखेगा तब कविता बन जायेगी। बाद मे जब हम कविता को तथ्य बनाते है तब 'मिरेकल' मालूम होने लगती है। बाकी कविता ही एकमात्र 'मिरेकल' है और कोई मामला नही है। कृष्ण किसी-न-किसी तरह उस दरबार मे नग्न की जाती द्रौपदी के लिए बाधक बन गये होगे। वह बाधा अनिवार्य हो गयी होगी। और भी बडे मजे की बात है कि कृष्ण का नाम कृष्ण है। द्रौपदी का भी एक नाम कृष्णा है। सच तो यह है कि कृष्ण जैसा शानदार आदमी नही हुआ और कृष्णा जैसी शानदार स्त्री नही हुई। द्रौपदी का कोई मुकाबला नही। हमने सीता और दूसरो की चर्चा बहुत की, द्रौपदी की जरा कम की है। क्योकि, हमे बडी तकलीफ है द्रौपदी के साथ। वह पाच पतियो की पत्नी है। हमे भारी तकलीफ होगी। लेकिन, ध्यान रखे, एक पति की पत्नी होना भी बडी मुश्किल बात है। पाच पतियो की पत्नी होना असाधारण स्त्री का काम हो सकता है। कृष्ण का बडा प्रेम है कृष्णा से। गहरी से गहरी उनकी प्रेयसियो मे से वह है। इसलिए, प्रेम इस क्षण मे काम न आये तो कब काम आये? पर, वह बात अलग है। वह तो कभी द्रौपदी पर चर्चा करेगे तब देखेगे।

प्रश्न भागवत मे ऐसा उल्लेख है (जो अहमदाबाद मे हमने बात की थी) कि शुक्र का विनियोग होते हुए भी वसुदेव और देवकी का वह सभोग हुआ था। वह आध्यात्मिक सभोग था जिसकी वजह से कृष्ण मिले। मगर कृष्ण के सोलह हजार रानियों या आठ पटरानियों के साथ सबध होने पर भी कृष्ण या राम—दोनो के पुत्र उतने प्रतिभावान नहीं हुए, इससे क्या यह नतीजा निकल सकता है कि राम या कृष्ण ने आध्यात्मिक सभोग अपनी पत्नियो के साथ किया ही नहीं?

उत्तर इसमे दो बाते समझ लेनी उचित होगी। एक तो आध्यात्मिक सभोग का यह अर्थ नही है कि मैं शारीरिक सभोग की कोई निंदा कर रहा हूँ। आध्यात्मिक सभोग से मेरा सिर्फ इतना ही अर्थ है कि दो व्यक्तियो के शरीर

ही नही मिले है, आत्मा भी मिली है। शरीर के मिलन से जो पैदा होता है वह उन ऊंचाइयो को उपलब्ध नही हो सकता जो आत्मा के मिलन से पैदा होता है और ऊंचाइयो को उपलब्ध होता है। कृष्ण का जन्म, मै आध्यात्मिक सभोग का फल मानता हूँ। क्राइस्ट का जन्म भी आध्यात्मिक सभोग का फल मानता हूँ। इसलिए, क्राइस्ट को जानने वाले लोग यह कह सके कि क्राइस्ट का जन्म भी हो गया, लेकिन मेरी 'वर्जिन' बनी रही, क्वारी बनी रही। क्योकि, शरीर के तल पर कोई वासना और कोई गहरी कामना न थी। आत्मा के तल पर मिलन हुआ था, शरीर छाया की तरह उसके पीछे गया था। इसलिए, छाया पर उसकी कोई जिम्मेदारी नही है। लेकिन, यह सवाल निश्चित ही महत्त्वपूण है कि फिर कृष्ण के बच्चे, राम के बच्चे इनका क्या हुआ ? इसके और कारण है। पहला कारण तो यह है कि कृष्ण से बडा बेटा पैदा होना तो असभव है। वसुदेव से बडा बेटा पैदा हो सकता है। वसुदेव साधारण जन है। कृष्ण तो ऊंचाई है, आखिरी से आखिरी जो हो सकती है। कृष्ण जैसे पिता से जो भी बेटा होगा वह इतिहास मे सदा भुला दिया जायेगा। वह सदा कृष्ण जैसे व्यक्ति की छाया मे पड जाता है। जैसे विन्ध्याचल पहाड की जो बडी ऊचाई हो सकती है वही ऊँचाई एवरेस्ट के पास आकर बडी मुश्किल मे पड जाती है। चीजे तो दिखायी पडती है न। कृष्ण के पीछे कोई भी दिखायी नही पड सकता। इसलिए, जो लोग 'पीक' को छूते है जीवन की, आखिरी ऊचाई को छूते है उनसे बहुत अच्छे बेटे उपलब्ध कभी नही हो सके। न बुद्ध से हो सका, न कृष्ण से हो सका, न राम से हो सका, न महावीर से हो सका, किसी से नही हो सका। इसका कारण सिफ इतना ही है कि इतनी बडी ऊचाई पर ये खडे है कि लव-कुश कितने ही ऊचे हो राम की छाया मे खो जायेगे। ये लव-कुश किसी और के घर पैदा हुए होते तो इतिहास मे नाम छोड जाते। ये साधारण जन न थे। लेकिन, नाम छोड जाना तो सदा 'रिलेटिव' और 'कपेरेटिव' है। राम के साथ नाम नही छोड सकते। साधारण बेटे न थे ये दोनो। राम को साधारण बेटा हो भी नही सकता। लेकिन, सवाल तो राम से तुलना का पडेगा इतिहास मे। दशरथ बहुत साधारण पिता है। दशरथ को कोई जानता भी नही, अगर राम पैदा न होते। दशरथ का कोई अथ भी न होता। राम हुए है इसलिए दशरथ का कोई नाम है। छोटे बाप के घर बडा बेटा पैदा हो जाता है तो बाप भी बडा हो जाता है। और बडे बाप के घर बडा बेटा भी पैदा हो जाता है तो छोटा हो जाता है।

सभोग तो आध्यात्मिक ही था। जो पैदा हुए है वह आध्यात्मिक सभोग से ही पैदा हुए है। लेकिन, हमारी तुलना तो 'रिलेटिव' होगी, सदा 'कपरेटिव'

होगी। वह कहानी हम सबको पता है कि अकबर ने एक लकीर खीची और दरबार के लोगो से कहा कि बिना छुए इसे छोटा कर दो। कोई उसे छोटा कर न पाया और बीरबल ने एक बडी लकीर उसके पास खीच दी। उस लकीर को छुआ नही और वह लकीर छोटी हो गयी। वैसे, लकीर उतनी ही रही। लव-कुश के साथ राम की लकीर बहुत बडी है। उसके नीचे वे एकदम खो जाते है। राम की लकीर न होती तो लव-कुश भी दिखायी पडते। इतिहास उनके भी चरण-चिन्हो का स्मरण रखता। लेकिन, कोई जरूरत न रही। राम के पीछे आकर उनका कोई अर्थ नही।

प्रश्न काम ऊर्जा का उल्लेख आया और आध्यात्मिक सभोग की बात भी अर्थपूर्ण है। इसी कडी मे—

बासुरी कृष्ण की है, सगीत के मधुर सुर राधा के है। गीत कृष्ण के अधरो के है, उस गीत की काव्य माधुरी राधा की है। नृत्य कृष्ण का है, किन्तु उनके चरणो मे गति और झकार राधा की है। ऐसा अभिन्न व्यक्तित्व है कृष्ण और राधा का। तभी तो हम राधा-कृष्ण कहते हैं। विवाहित होते हुए भी रुक्मिणी-कृष्ण कोई नहीं कहता। राधा को कृष्ण के जीवन से अलग कर दिया जाय तो कृष्ण का जीवन भी औरो की तरह उदास-उदास, अधूरा-अधूरा सा लगने लगेगा। और मजे की बात यह है की कृष्ण की लीला के आधार-ग्रन्थ भागवत मे राधा का कहीं नाम नहीं लिया गया है! कोई बात नहीं। लेकिन कृष्ण के जीवन की समग्रता मे शक्ति और प्रेम रूप राधा का क्या भावात्मक या सेक्सुअल सम्बन्ध है, इसपर प्रकाश डालने का एकमात्र अधिकारी है, आचार्यजी, आप जैसा कृष्ण!

उत्तर जो लोग शास्त्रो को खोजते है उनके लिए बडी कठिनाई रही है इस बात से कि राधा का कोई उल्लेख ही नही। और, तब कुछ लोगो ने तो यह भी कहना शुरू कर दिया कि राधा जैसा कोई व्यक्तित्व कभी हुआ नही। राधा बाद के लोगो की, कवियो की कल्पना है। स्वभावत जो इतिहास मे जीते है, तथ्यो मे जीते है उनके लिए कठिनाई है। राधा का उल्लेख बहुत बाद के ग्रन्थो मे शुरू होता है। किसी प्राचीन ग्रन्थ में राधा का कोई उल्लेख नही होता। मेरी हालत बिलकुल उल्टी है। मै मानता हू कि राधा का उल्लेख न होने का कुल कारण इतना है कि राधा कृष्ण से इतनी लीन और एक हो

गयी कि अलग उल्लेख की कोई जरूरत नही। जो अलग थे, उनका उल्लेख है। जो अलग न थी, छाया की तरह थी उसके उल्लेख की कोई जरूरत नही। उल्लेख करने के लिए भी तो किसी का अलग होना जरूरी है। रुक्मिणी अलग है, कृष्ण को प्रेम करती हो सकती है। कृष्ण से उसके सम्बन्ध हो सकते है, कृष्ण मे आत्मसात नही है। सम्बन्ध तो उनके ही होते है जो अलग है। राधा का कोई सम्बन्ध नही है कृष्ण से। राधा, कृष्ण ही है। इसलिए, उसका उल्लेख न किया गया हो तो मै मानता हूँ कि न्याययुक्त है, उल्लेख नही किया जाना चाहिए। एक तो यह बात ख्याल मे लेगे कि उसके उल्लेख न होने का कारण है। वह छाया की तरह अदृश्य है। इतनी भी अलग नही, इतनी भी भिन्न नही कि उसे कोई जाने और पहचाने, कि उसे कोई नाम भी दे, कोई जगह भी दे।

दूसरी बात यह भी सच है कि राधा के बिना कृष्ण का व्यक्तित्व एकदम अधूरा रह जायेगा। अधूरा इसलिए रह जायेगा कि मैने कहा, कृष्ण पूरे पुरुष है। इसको थोडा समझना पडेगा। ऐसे पुरुष बहुत कम है जगत मे जो पूरे पुरुष हो। प्रत्येक स्त्री के भीतर भी उसका पुरुष अग होता है। मनस को जानने वाले लोग कहते है कि प्रत्येक स्त्री के भीतर पुरुष है और प्रत्येक पुरुष के भीतर स्त्री है। जो फर्क है वह सिर्फ डिग्रीज का,– क्रमो का है। जिसे हम पुरुष कहते है वह साठ फीसदी पुरुष है चालीस प्रतिशत स्त्री है। इसलिए, ऐसे भी पुरुष है जो स्त्रैण मालूम पडते है। और ऐसी भी स्त्रिया है जो पुरुष मालूम पडती है। अगर मात्रा बहुत ज्यादा है भीतर की स्त्री की, तो पुरुष पर हावी हो जायगी। अगर पुरुष की मात्रा बहुत ज्यादा है तो स्त्री पर हावी हो जायगी। लेकिन इस अर्थ मे भी कृष्ण पूण है जो मै कह रहा हू। वे पूर्ण पुरुष है। उनके भीतर स्त्री का कोई तत्व ही नही है। या जैसे मीरा को मै कहूगा, वह पूरी स्त्री है। उसके भीतर पुरुष का कोई तत्व ही नही है। और, जब भी कोई पूर्ण पुरुष होगा तब एक अथ मे अधूरा पड जायगा। उसको पूरी स्त्री जरूरी है। हा, अधूरा पुरुष जी सकता है बिना स्त्री के। उसके भीतर अपनी स्त्री भी है जिसस काम चलता है। लेकिन, कृष्ण जैसा पुरुष हो तो अनिवार्य रूप से उसकी राधा उसके साथ खडी हो जाती है, और उसे पूर्ण स्त्री चाहिए। पूर्ण स्त्री और पूण पुरुष का थोडा अर्थ भी हम समझे।

पुरुष की जो गहरी से गहरी गहराई है वह आक्रामक है, 'अग्रेसिव' है। स्त्री की जो गहरी से गहरी गहराई है वह समर्पण की है, 'सरेण्डर' की है। कोई भी स्त्री पूरी स्त्री न होने से कभी पूरा समर्पण नही कर पाती। कोई भी

पुरुष पूरा पुरुष न होने से कभी पूरा आक्रामक नही हो पाता। इसलिए दो अधूरे स्त्री और पुरुष जब मिलते हैं तो निरन्तर कलह और संघर्ष चलता है, चलेगा। क्योकि स्त्री के भीतर कुछ है जो आक्रामक भी है। वह आक्रमण भी करती है। किसी क्षण मे वह पुरुष के हाथ भी दाबती है, पैर भी दाबती है, उसके पैर पर सिर भी रखती है और किसी क्षण मे वह बिल्कुल ही विकराल हो जाती है और पुरुष की गर्दन दबाने को उत्सुक हो जाती है। ये दोनो रूप उससे निकलते है। पुरुष किसी क्षण बड़ा आक्रामक होता है, बिल्कुल दबा डालना चाहता है। किसी क्षण वह बिल्कुल ही दब्बू हो जाता है और स्त्री के पीछे घूमने लगता है। वे दोनो उसके भीतर हैं। रुक्मिणी का कृष्ण के साथ बहुत गहरा मेल नही हो सका है। उसके भीतर पुरुष है। राधा पूरी डूब सकी, वह अकेली निपट स्त्री है। वहा समर्पण पूरा हो सका। कृष्ण का किसी ऐसी स्त्री से बहुत गहरा मेल नही बन सकता जिसके भीतर थोड़ा भी पुरुष है।

कृष्ण के भीतर स्त्री है ही नही। वह पूरे ही पुरुष है। पूरा समर्पण ही उनसे मिलन बन सकता है। इससे कम मे काम न चलेगा। वह पूरा ही माग लेगे। हालाकि पूरा मागने का मतलब यह नही है कि वह कुछ न देंगे, पूरा मागकर वह पूरा ही दे देगे। इसलिए, हुआ ऐसा कि रुक्मणी छूट गयी जिसका उल्लेख था शास्त्रो मे, जो दावेदार थी वह छूटती चली गयी। और जो बिल्कुल गैर-दावेदार था, जिसका कोई दावा ही नही था, जिसे कृष्ण अपनी भी नही कह सकते वह व्यक्तित्व अतिम गहराई को छू गया। राधा तो परायी थी, रुक्मिणी अपनी थी। रुक्मिणी से सम्बन्ध सस्थागत था, विवाह का था। राधा से सम्बन्ध प्रेम का था, सस्थागत नही था। जिसके ऊपर कोई दावा नही किया जा सकता था, जिसके पक्ष मे कोई कोर्ट निर्णय न देगा कि तुम्हारी है। आखिर मे ऐसा हुआ कि अदालत से जिसके लिए दावा मिल सकता था, जो कृष्ण से 'मेंटीनेंस' माग सकती थी, वह खो गयी और वह गैर-दावेदार स्त्री धीरे-धीरे प्रगाढ होती चली गयी। वक्त आया कि रुक्मिणी भूल गयी और कृष्ण के साथ राधा का नाम ही रह गया। और, मजे की बात है, राधा ने सब छोड़ा कृष्ण के लिए, लेकिन नाम पीछे न जुड़ा, नाम आगे जुड़ गया। 'कृष्ण-राधा' कोई नही कहता। 'राधा-कृष्ण' हम कहते हैं। जो सब समर्पण करता है वह सब पा लेता है, जो बिल्कुल पीछे खड़ा हो जाता है वह बिल्कुल आगे हो जाता है। नही, राधा के बिना कृष्ण को हम न सोच पायेंगे। राधा उनकी सारी कमनीयता है, राधा उनका सारा-का-सारा जो भी नाजुक है, वह सब है। जो डेलीकेट' है वह है। राधा

उनका गीत भी, उनके नृत्य का घुघरू भी। राधा उनके भीतर जो भी स्त्रैण है वह सब है। क्योकि, कृष्ण निपट पुरुष है। इसलिए, अकेले कृष्ण का नाम लेना अर्थ-पूर्ण नही है। वह इकट्ठे होकर 'राधा-कृष्ण' हो गये। 'राधा-कृष्ण' होकर इस जीवन के दोनो विरोध इकट्ठे मिल गये है। इसलिए भी मै कहता हूँ कि यह भी कृष्ण की पूर्णताओ की एक पूर्णता है।

महावीर को स्त्री के साथ खडा करके नही सोचा जा सकता है। वहाँ स्त्री असगत है। महावीर का व्यक्तित्व स्त्री के बिना है। महावीर की शादी हुई, विवाह हुआ, बच्ची हुई, लेकिन महावीर के एक पन्थ दिगम्बरो की मान्यता है कि, नही उनका विवाह ही नही हुआ। न उनकी कोई बच्ची हुई। मै मानता हूँ कि शायद ऐतिहासिक तथ्य यही है कि उनका विवाह हुआ हो, बच्ची हुई हो, लेकिन मनोवैज्ञानिक तथ्य दिगम्बर जो कहते है वही ठीक है कि महावीर जैसे आदमी के साथ स्त्री को जोडना ही बेमानी है। हुआ भी हो तो नही माना जा सकता। महावीर कैसे किसी स्त्री को प्रेम करेगे? असभव है। महावीर के पूरे व्यक्तित्व मे कही कोई वह छाया भी नही है। बुद्ध के साथ स्त्री थी, लेकिन छोडकर चले गये। क्राइस्ट के साथ भी स्त्री को जोडना मुश्किल है। वे निपट क्वारे है। 'बेचलर' होने मे ही उनकी अर्थवत्ता है, इस अर्थ मे कि वे सब अधूरे है। इस जगत की व्यवस्था मे जैसे धन विद्युत अधूरी है ऋण विद्युत के बिना। जैसे विधेय अधूरा है निषेध के बिना। ऐसे स्त्री और पुरुष का एक परम मिलन भी है—स्त्री और पुरुष का न कहे, स्त्रैणता और पौरुषता का,आक्रमकता का और समर्पण का, जीतने का और हारने का। अगर हम कृष्ण और राधा के लिए कोई प्रतीक खोजने निकले तो सारी पृथ्वी पर चीन मे बस एक प्रतीक है जिसे वह 'इन और याग' कहते है। बस एक प्रतीक है। चूँकि चीनी भाषा तो 'पिक्टोरियल' चित्रो की है। उनके पास ही एक प्रतीक है जिसे वे जगत का प्रतीक कहते है। उसमे एक गोल वर्तुल है, वर्तुल मे दो मछलिया है। एक-दूसरे को मिलती हुई है। वर्तुल आधा सफेद, आधा काला है। काली मछली मे सफेद गोल एक घेरा। सफेद मछली मे काला एक घेरा और पूरा एक वर्तुल। दो मछलिया पूरी तरह मिलकर एक गोल घेरा बना रही है। एक मछली की पूँछ दूसरे के मुँह से मिल रही है, दूसरी मछली का मुँह पहली मछली की पूछ से मिल रहा है। और, दोनो मछलिया मिलकर पूरा गोल घेरा बना रही है। एक का नाम इन, एक का नाम याग है। एक ऋण, एक धन। राधा और कृष्ण एक पूरा वर्तुल है। इस अर्थ मे भी वे पूर्ण है। अधूरा नही सोचा जा सकता कृष्ण को। अलग नही सोचा जा सकता। अलग सोचकर वे एकदम खाली

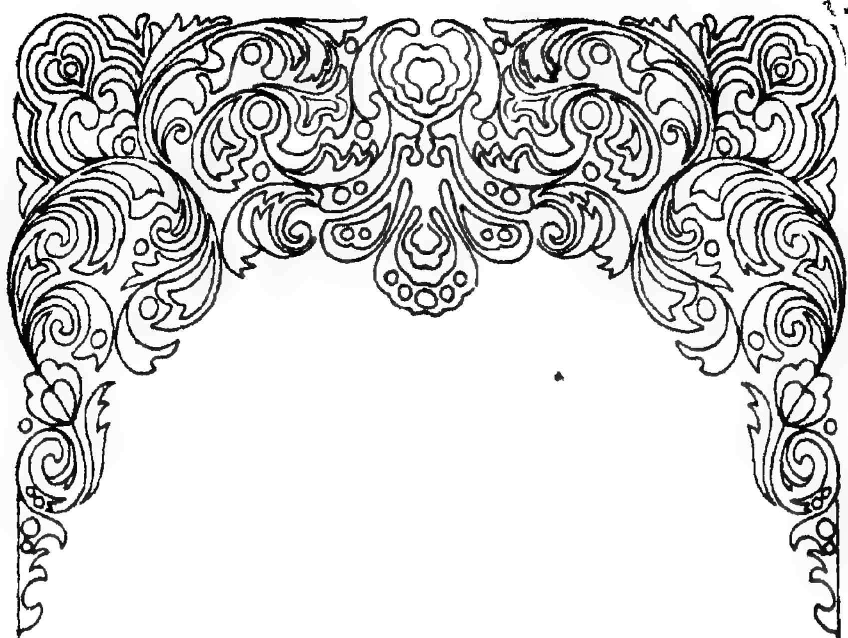
हो जाते हैं। वह पृष्ठभूमि खो जाती है, जिसपर वे उभरते हैं। जैसे हम रात के तारों को नहीं सोच सकते, रात के अंधेरे के बिना। अमावस की रात मे देखे हैं तारे कैसे उज्जवल और शुभ्र होकर दिखायी पडने लगते हैं। अंधेरे की चादर मे और चमकदार होकर निखर उठते हैं।

कृष्ण का सारा व्यक्तित्व चमकता है राधा की चादर पर। चारो तरफ से राधा की चादर उन्हे घेरे है। वह उसमे ही पूरे-के-पूरे खिल उठते हैं। कृष्ण अगर फूल हैं तो राधा जड है। वह पूरा-का-पूरा इकट्ठा है। इसलिए, उनको अलग नहीं कर सकते। युगल पूरा है। इसलिए 'राधा-कृष्ण' पूरा नाम है, कृष्ण अधूरा नाम है



पर्व : छः





६

प्रश्न विवाह को आप अनैतिकता कह सकते है, और सर्वाधिक विवाह कृष्ण करते हैं। क्या वे विवाह रूपी अनैतिकता को प्रोत्साहित करते है ?

उत्तर विवाह को अनैतिक कहा मैने। जो लोग प्रेम करेगे वे भी साथ रहना चाहेगे। इसलिए, प्रेम से जो विवाह निकलेगा वह अनैतिक नही रह जायेगा। लेकिन, हम उल्टा काम कर रहे है। हम विवाह से प्रेम निकालने की कोशिश कर रहे है जो कि नही हो सकता। विवाह तो एक बन्धन है और प्रेम है एक मुक्ति।

लेकिन, जिनके जीवन मे प्रेम आया है वे साथ जीना चाहे, स्वाभाविक है। लेकिन, साथ जीना उनके प्रेम की छाया ही हो। जिस दिन विवाह की सस्था नही होगी उस दिन स्त्री और पुरुष साथ नही रहेंगे, ऐसा मैं नही कह रहा हूँ। मैं ऐसा कह रहा हूँ कि उस दिन ही वे ठीक से साथ रह सकेगे। अभी साथ दिखायी पडते हैं, साथ रहते नही। साथ होना ही सग होना नही है। पास-पास होना ही निकट होना नही। जुडे होना ही एक होना नही है। विवाह की सस्था को मैं अनैतिक कह रहा हूँ और विवाह की सस्था चाहेगी कि प्रेम दुनिया में न बचे। कोई भी सस्था सहज उद्‌भावनाओ के विपरीत होती है। क्योकि, तब सस्थाए नही टिक सकती। दो व्यक्ति जब प्रेम करते है तो वह प्रेम अनूठा ही होता है। वैसा प्रेम किन्ही दो व्यक्तियो ने नही किया होता है। लेकिन, दो व्यक्ति जब विवाह करते है तो वह अनूठा नही होता। वैसा विवाह करोडो लोगो ने किया है। विवाह एक पुनरुक्ति है। प्रेम एक मौलिक घटना है। जितना विवाह प्रभावी होगा उतना प्रेम का गला घुटता चला जायेगा। लेकिन, जिस दिन हम प्रेम को प्राथमिकता दे सकेगे जीवन मे, और दो व्यक्तियो का साथ रहना एक समझौता नही होगा, उनके प्रेम का सहज फल होगा। उस दिन विवाह नही होगा इस अर्थ मे, जिस तरह आज है। न इस तरह तलाक होगा जैसा आज है। दो व्यक्ति साथ रहना चाहे, यह उनका आनन्द है। न रहना चाहें यह उनका आनन्द है। इसमे समाज कोई बाधा नही दे।

विवाह, सस्था की तरह अनैतिक है, ऐसा मैने कहा। विवाह प्रेम की छाया की तरह बिल्कुल स्वाभाविक है। उसमे कोई अनैतिकता नही है।

प्रश्न आचार्यश्री, विवाह के सबध मे आपने अभी अभी जो चर्चा की उसे ध्यान में रख यह भी बताने की कृपा करें कि जिस दिन हम प्रेम को आधार बनायेंगे उस दिन बच्चो का क्या होगा ? वे किस के कहलायेंगे ? और, क्या ये 'सोशियल प्रोब्लम' नहीं बन जायेंगे ?

उत्तर : बहुत-सी कठिनाइया है, और दिखायी पडेगी। लेकिन वे कठिनाइया इसलिए दिखायी पडती है कि हम पुरानी धारणाओ को आधार बनाकर ही सोचते हैं। वैसे, सच तो यह है कि जिस दिन हम प्रेम को परम मूल्य दे सकेगे उस दिन बच्चे व्यक्तियो के हैं, ऐसा मानने की बात ही बेमानी है। बच्चे हैं भी नहीं व्यक्तियो के। सदा थे भी नही। एक युग था जब पिता का तो कोई पता नही चलता था, मा का ही पता होता था। मातृसत्ताक युग था। इसलिए,जानकर आपको हैरानी होगी कि पिता शब्द बहुत पुराना नही है। काका,'अंकल' शब्द ज्यादा पुराना

है। 'माँ' बहुत पुराना है। पिता शब्द तो आया तब जब हमने विवाह की व्यवस्था सुनिश्चित कर दी। अन्यथा पिता का तो कोई पता न चलता था। कबीले के सभी लोग पिता तुल्य थे। माँ का पता चलता था। पूरा कबीला बच्चों के प्रति प्रेम पूर्ण भाव रखता था। और, बच्चे चूँकि किसी के भी नहीं थे, इसलिए सभी के थे। बच्चे किसी के हैं, इससे फायदा पहुँचा है ऐसा नही है, बच्चे सभी के होंगे, फायदा और बडा पहुच सकता है। जिस दिन हम प्रेम को आधार बनायेंगे उस दिन बच्चो का क्या होगा ? सवाल उठता है, क्या वह 'सोशियल प्राब्लम' बन जायेंगे? नहीं, अभी बच्चे सामाजिक समस्या हैं, क्योंकि अभी हमने बच्चो को व्यक्तियों के ऊपर छोड दिया है। भविष्य मे जो कुछ सभव होता जा रहा है, उसे देखते हुए समझ लेना चाहिए कि हमने जो पीछे आधार बनाये थे वे कोई टिकने वाले नही हैं।

जैसे, पुरानी दुनिया मे बच्चो के पैदा होने के लिए कम-से-कम बाप का जिन्दा होना तो जरूरी था। भविष्य मे नही रहेगा। आज भी नही है। अगर मैं मर जाऊ तो भी मेरे वीर्य-कण सरक्षित रखे जा सकते है हजार साल तक, दस हजार साल तक। मै तो नही रहूगा, मेरा बच्चा दस हजार साल बाद पैदा हो सकता है। मा अब तक अनिवार्य रही है। लेकिन, भविष्य में अनिवार्य नही रह जायेगी। हमने व्यवस्था खोज ली है करीब करीब, जिस दिन पूरी तरह खोज लेगे उस दिन हम मा को नौ महीने पेट मे बच्चे ढोने का व्यर्थ बोझ नही देंगे। उस दिन जो मा के पेट मे सुविधा उपलब्ध है बच्चे को वह यत्र मे भी उपलब्ध हो सकेगी। उस दिन तो कौन मा है, कौन पिता है कहना और जानना मुश्किल हो जायेगा। हमे पूरा ढाचा बदलना पडेगा। पूरी समाज की स्त्रियां मा हैं और पूरे समाज के पुरुष पिता हैं। और उन बच्चो को सबका होकर बडा होना पडेगा। निश्चित ही सब बदलेगा। जो मैं कह रहा हूँ, वह वैज्ञानिक ढग से भी जो काम दुनिया मे चल रहा है, उसकी वजह से भी जरूरी हो जायेगा। अभी हमे ख्याल मे नही आता, क्योकि हम पुराने ढग से सोचते चले जाते है। आपके घर बच्चा पैदा होता है तो आप डाक्टर की दवाई लाते हैं, सबसे अच्छे डाक्टर की। आप यह नही सोचते कि मैं इसका पिता हूँ तो खुद ही दवाई बनाकर इसको पिला दूं। आप कपडा बनवाते हैं सबसे अच्छे दर्जी से। यह नहीं सोचते कि मैं इसका पिता हू तो मैं ही इसका कपडा बनाकर पहना दूं। अगर समझ थोडी और गहरी पडेगी तो आप यह भी न चाहेगे कि आपका बच्चा आपके वीर्यकण से ही पैदा हो, अगर इससे अच्छा वीर्यकण समाज मे उपलब्ध

हो सकता हो। अच्छा है, आपका बच्चा लगडा-लूला पैदा न हो, अच्छा है, कम बुद्धि का पैदा न हो। अच्छा है कि श्रेष्ठतम वीर्य उसे उपलब्ध हो सके। मा भी न चाहेगी कि मा होने के लिए वह नौ महीने बच्चे को पेट मे घसीटे, जब कि उससे बेहतर सुविधाए उपलब्ध हो गयी है, और बच्चा ज्यादा स्वस्थ पैदा हो सकता हो, ज्यादा बुद्धिमान पैदा हो सकता हो। मा और पिता का अब तक जो 'फक्शन' रहा है वह भविष्य मे रहने वाला नही है। और, जिस दिन मा और पिता का 'फक्शन' विदा हो जायेगा उस दिन आपके विवाह का क्या वजूद रह जाता है, विवाह का क्या आधार रह जाता है? कोई मतलब नही रह जाता। उस दिन प्रेम ही आधार रह जाता है। 'टेक्नोलाजी' भी मनुष्य को उस जगह ला रही है, मनुष्य के मन की समझ भी उस जगह ला रही है जहा व्यक्तिगत दावेदारी समाप्त हो जाती है। इसका यह मतलब नही कि सारी समस्याए समाप्त हो जाती है। हर नये प्रयोग के साथ नयी समस्याए होती है। बडा सवाल यह नही है कि समस्याए मिट जाय, समस्याए तो आदमी की कभी नही मिटेगी। सवाल यही है कि समस्याए रोज बेहतर होती जाय। कल की समस्याओ से आज की समस्याए बेहतर हो। ऐसा नही है कि हम विवाह को हटा देंगे तो मनुष्य और मनुष्य के बीच के सारे सघर्ष विदा हो जायेंगे। नही, लेकिन वे सघर्ष विदा हो जायेंगे जो विवाह के कारण ही पैदा होते है और वे काफी बडी मात्रा मे है। छोटी मात्रा मे नही है। कुछ नयी बातें पैदा होगी, कुछ नयी समस्याए पैदा होगी। पृथ्वी पर रहने के लिए समस्याए जरूरी है। उनको हम हल करेंगे, उन्ही मे हमारा विकास है। उनसे हम लडेंगे और आगे बढेंगे।

एक बात जरूर ध्यान मे ले लेने जैसी है और कठिनाई उसी से आती है। जिस ढाचे मे हम रहने के आदी हो गये है, उस ढाचे की समस्याओ को भी सहने के हम आदी हो गये है। अगर उससे बेहतर व्यवस्था मिल सकती हो तो उस बेहतर व्यवस्था के साथ नयी समस्याएँ भी मिलेगी, जिनके हम आदी नही है। और उसी से कठिनाई होती है। लेकिन, बुद्धि का काम यही है कि वह उन समस्याओ को समझे, हल करे और सोचे कि पुरानी समस्याओ से अगर बेहतर समस्याए हमे मिलती हो तो हम परिवर्तन करे। ऐसा मेरा मानना है कि मनुष्य के जीवन मे जब तक प्रेम का फूल पूरी तरह न खिले तब तक उसके व्यक्तित्व मे रौनक, तब तक उसके व्यक्तित्व मे जिसको हम कहे नमक, वह नही उत्पन्न होता। उसका जीवन फीका-फीका हो जाता है। और मैं मानता हूँ कि फीके व्यक्तित्व के बजाय समस्याओ से भरे हुए तेज और चमकदार व्यक्तित्व का मूल्य है। एक छोटी-सी कहानी, फिर हम दूसरा सवाल ले।

मैंने सुना है कि एक छोटा-सा घास का फूल दीवाल की ओट मे ईंटो में दबा हुआ जीता था। तूफान आते थे, उसपर चोट नही हो पाती थी। सूरज निकलता था, उस फूल को नही सता पाता था। उसे ईंटो की आड थी। बरसा होती थी, बरसा उसे गिरा नही पाती थी, क्योकि वह जमीन से सट कर लगा हुआ था। पास मे ही उसके गुलाब के फूल थे। एक रात उस घास के फूल ने परमात्मा से प्रार्थना की कि मै कब तक घास का फूल बना रहूगा। अगर तेरी जरा भी मुझ पर कृपा है तो मुझे गुलाब का फूल बना दे। परमात्मा ने उसे बहुत समझाया कि तू इस झझट मे मत पड, गुलाब के फूल की बडी तकलीफें हैं। जब तूफान आते है तब गुलाब की जडे भी उखडी उखडी हो जाती है। जब गुलाब मे फूल खिलता है तो खिल भी नही पाता कि कोई तोड लेता है। जब बरसा आती है तो गुलाब की पखुडिया बिखर कर जमीन पर गिर जाती है। तू झझट मे मत पड, तू बडा सुरक्षित है। घास के फूल ने कहा, बहुत दिन सुरक्षा मे रह लिया, अब मुझे कुछ झझट लेने का मन हो रहा है। आप तो बस मुझे गुलाब का फूल बना दें सिर्फ एक दिन के लिए सही, चौबीस घण्टे के लिए सही। पास-पडोस के घास के फूलो ने समझाया कि इस पागलपन मे मत पड। हमने सुनी है कहानियाँ कि पहले भी हमारे कुछ पूर्वज इस पागलपन मे पड चुके थे और बडी मुसीबत आयी थी। हमारा जातिगत अनुभव यह कहता है कि हम जहा है बडे मजे मे है। लेकिन, वह नही माना तो परमात्मा ने उसे वरदान दे दिया और वह सुबह गुलाब का फूल हो गया। लेकिन, सुबह से ही मुसीबते शुरू हो गयी। जोर की आधिया चली, प्राण का रोया रोया उसका काप गया, जडें उखडने लगी। नीचे दबे उसकी जाति के फूल कहने लगे, देखा पागल को, अब मुसीबत मे पडा। दोपहर होते होते सूरज तेज हुआ। फूल जो खिले थे अब कुम्हलाने लगे। बरसा आयी, पखुडिया नीचे गिरने लगी। फिर, तो इतने जोर की बरसा आयी कि साझ होते-होते जडे उखड गयी और गुलाब के फूल का पौधा जमीन पर गिर पडा। जब वह जमीन पर गिर पडा तब वह अपने फूलो के करीब आ गया। उन फूलो ने उससे कहा—पागल, हमने पहले ही कहा था व्यर्थ अपनी जिन्दगी गवायी, मुश्किले ले ली नयी अपने हाथ से। उस मरते हुए गुलाब के फूल ने कहा—नासमझो, मै तुम्हारे लिए कहूगा कि जिन्दगी भर इंट की आड में छिपे हुए घास का फूल होने से चौबीस घण्टे लिए गुलाब का फूल हो जाना बहुत आनन्दपूर्ण है। मैंने अपनी आत्मा पा ली, मै तूफानो से लड लिया, मैने सूरज से मुलाकात ले ली, मै हवाओ से जूझ लिया। मै ऐसे ही नही मर रहा हू, मै जीकर मर रहा हूँ! और तुम मरे हुए जी रहे हो!

निश्चित ही जिन्दगी को अगर हमें जिन्दा बनाना है तो बहुत-सी जिन्दा समस्याएँ खडी हो जायेगी। होनी भी चाहिए। लेकिन, जिन्दगी को मुर्दा बनाना है तो हो सकता है हम सारी समस्याओ को हल भी कर दें तब भी आदमी मरा-मरा ही जीता है। मै मानता हूं कि नयी समस्याए तो होगी। मनुष्य को इतना भरोसा और आत्म-विश्वास होना चाहिए कि वह नयी समस्याओ से जूझ सके। अभी जो हमारी व्यवस्था है, वह सारी-की-सारी भय पर खडी है। सब तरह के भय, सब तरह के 'फियर्स'—उसका उद्‌गम ही 'फियर ओरिएटेशन' है। वह उसी मे से जन्मती है कि ऐसा हो जायेगा, वैसा हो जायेगा। इसका क्या होगा, उसका क्या होगा ? इस भय के कारण हम घर में रुके रह जाते है और नया कदम नही उठाते। जो हो रहा है उसको भी ध्यान से देखते नही, क्योकि उसे देखेंगे तो नया कदम उठाना पडेगा। इसलिए, जैसा है उसे हम बोझ की तरह ढोये चले जाते है।

मुझे हजारो लोगो से मिलने का मौका आया, बहुत निकट से, उनकी आखो मे, उनके हृदय मे झाकने का मौका आया। मैने ऐसा पुरुष नही देखा जो विवाह से तृप्त हो, मैने ऐसी स्त्री नही देखो जो विवाह मे आनदित हो। लेकिन उनसे भी कहा जाय तो वे कहेगे, ये-ये समस्याए उठ जायेगी। लेकिन बडा मजा यह है कि तुम जिन समस्याओ मे जी रहे हो, चौबीस घण्टे उनमे गुजरते हो, इसलिए पता नही चलता। आदी हो गये हो। हम पिंजडे के पछी को भी जाकर कहे कि खुले आकाश मे उड, तो वह कहेगा, बहुत दिक्कते आयेगी, यहा सुरक्षा तो हैं। दिक्कते आयेगी, और पिंजडे के पछी को और भी ज्यादा आ जायेंगी क्योकि उसे खुले आकाश मे उडने का अनुभव भी नही रहा है। माना कि पिंजडे मे बडी सुरक्षा है, लेकिन कहा खुले आकाश का आनन्द, कहा पिंजडे की सुरक्षा ! फिर तो कब्र मे भी बहुत सुरक्षा है।

प्रश्न स्वामी सहजानन्द का आरोप है कि कृष्ण की रसिक पद्धति से लोग तरे है कम, मरे है ज्यादा। उसके दो कारण है—एक तो कृष्ण की गोपी बनकर ही भक्ति करने की पद्धति गुजरात मे महाराज लायबल केस बना; और दूसरा जीवन को उत्सव मानने में मनुष्य की भोग वृत्ति को प्रोत्साहन मिला।

दूसरा सवाल कि राम-भक्त हनुमान मे जो ब्रह्मचर्य, शौर्य, प्रेरणा और वैराग्य के गुण मिलते है (और उनमे जितनी प्रवृत्तिवादी 'एक्टीविटी' है) उतने कृष्ण भक्त मीरा, नरसी और सूरदास में

नहीं हैं। मतलब यह कि कृष्ण-पूजक अन्तर्मुखी प्रवृत्त ज्यादा हैं और सामाजिक कार्यदशा में उनका योगदान नहीं जैसा है।

तीसरा सवाल कि कृष्ण, राम, महावीर तथा बुद्ध तक के चित्रकारों ने और पुराणकारों ने दाढ़ी मूछ नहीं बतलायी। इसका क्या मतलब ?

उत्तर पहली बात, जीवन एक काम है या उत्सव ? अगर जीवन एक काम है तो बोझ हो जाएगा। अगर जीवन एक काम है तो कर्तव्य हो जाएगा। अगर जीवन एक काम है तो हम उसे ढोयेंगे और किसी तरह निपटा देंगे। कृष्ण जीवन को काम की तरह नही उत्सव की तरह, एक 'फेस्टीविटी' की तरह, महोत्सव की तरह लेते है। जीवन एक आनन्द का उत्सव है, काम नही है। ऐसा भी नही है कि उत्सव की तरह लेते हैं तो काम नही करते। काम तो करते है। लेकिन काम उत्सव के रग मे रग जाता है। काम नृत्य, सगीत मे डूब जाता है। निश्चित ही, बहुत काम न हो पायेगा इस भाति। थोडा ही हो पायेगा। क्वाटिटी ज्यादा नही होगी लेकिन क्वालिटी का कोई हिसाब नही है। परिणाम तो कम होगा, मात्रा कम होगी, लेकिन गुण बहुत गहरा हो जायेगा।

कभी आपने सोचा, कि काम वाले लोगो ने, जो हर चीज को काम मे बदल देते है, जिन्दगी को कैसा तनाव से भर दिया है। जिन्दगी की सारी 'एग्जाइटी' सारी चिंता, यह अति कामवादी लोगो की ही उपज है। वह कहते है करो, एकदम करते रहो, करो या मरो। उनका नारा है 'डू आर डाइ'। उनके पास कोई और दृष्टि नही है। लेकिन, किसलिए करो, आदमी करता किसलिए है ? आदमी करता है इसलिए कि थोडी देर जी सके, और जीने का क्या मतलब होगा ? फिर, जीने का मतलब उत्सव होगा। हम काम भी इसलिए कर सकते है कि इसी क्षण मे हम नाच सके। लेकिन काम इतने जोर से पकड लेता है कि फिर नाचने का तो मौका ही नही आता, गीत गाने का मौका ही नही आता, बासुरी बजाने की फुर्सत ही कहा रह जाती है ? दफ्तर से घर है, घर से दफ्तर है। दिमाग मे बैठकर घर दफ्तर आ जाता है। सब गड्डमड्ड हो जाता है, सब उलट जाता है। फिर, जिन्दगी भर दौडते रहते हैं। इस आशा मे कि किसी दिन वह क्षण आयेगा जिस दिन विश्राम करेगे और आनन्द लेगे। वह क्षण कभी नही आता, वह आयेगा ही नही। काम वाले आदमी मे वह क्षण कभी नही आता। कृष्ण जीवन को देखते है उत्सव की तरह, महोत्सव की तरह, एक खेल की तरह, एक क्रीडा

की तरह। जैसाकि फूल देखते हैं, जैसा कि पक्षी देखते है, जैसाकि आकाश के बादल देखते हैं, जैसाकि मनुष्य को छोडकर सारा जगत देखता है उत्सव की तरह। कोई पूछे इन फूलो से कि खिलते किसलिए हो, काम क्या है ? बेकाम खिले हुए हो ? तारो से कोई पूछे कि चमकते किसलिए हो ? काम क्या है ? पूछे कोई हवाओ से, बहती क्यो हो, काम क्या है ?

मनुष्य को छोडकर जगत मे काम कहीं भी नही है। मनुष्य को छोडकर जगत मे महोत्सव है। उत्सव चल रहा। कृष्ण इस जगत के उत्सव को मनुष्य के जीवन मे भी ले आते है। वे कहते है मनुष्य का जीवन भी उत्सव के साथ एक हो जाता है, ऐसा नही है कि उत्सव मे काम नही होगा। ऐसा नही है कि हवाए नही दौड रही है, दौड रही है। ऐसा नही है कि चाद-तारे नही चल रहे है। चल रहे हैं। ऐसा नही है कि फूलो को खिलने के लिए कुछ नही करना पडता है, बहुत कुछ करना पडता है। लेकिन करना गौण हो जाता है, होना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। 'डूइग' पीछे हो जाता है, 'बीइग' पहले हो जाता है। उत्सव पहले हो जाता है, काम पीछे हो जाता है। काम सिर्फ उत्सव की तैयारी होता है। दुनिया की सारी आदिम जातियो के पास अगर हम जाय तो वह दिन भर काम करते है, ताकि रात नाच सके। रात ढोल बजे और गीत हो। लेकिन, सभ्य आदमी के पास जाय, तो वह दिन भर काम करता है, रात भर काम करता है। उससे कोई कुछ पूछे कि वह काम किसलिए कर रहा है ? वह कहता है, कल विश्राम कर सके। विश्राम को पोस्टपोन करता है, काम को करता चला जाता है। फिर, वह कल कभी नही आता। मै तो कृष्ण के इस महोत्सववादी रुख से राजी हू। फिर, मेरा देखना यह है कि इतना काम करके भी आदमी ने कर क्या लिया ? अगर काम करना अपने मे ही लक्ष्य है तब तो बात दूसरी है। लेकिन, इतना काम करके हमने कर क्या लिया ?

सिसीफस की कहानी है कि देवताओ ने उसे श्राप दिया है कि वह एक पत्थर की चट्टान को पहाड पर चढाकर ले जाय और जब वह 'पीक' पर, चोटी पर पहुचेगा तो पत्थर फिर फिसल कर नीचे चला जायेगा। सिसीफस फिर नीचे जाय फिर पहाड पर पत्थर को खीचे, पत्थर फिर नीचे चला जायेगा, सिसीफस फिर नीचे जायेगा। सिसीफस नीचे से ऊपर तक खीचता है। बडे काम मे लगा है। वह नीचे आता है, फिर पत्थर ऊपर चढाता है। काम वाले आदमी की जिन्दगी सिसीफस की जिन्दगी हो जाती है। पत्थर गिरते रहते है, वह चढ़ाता रहता है। पूरी जिन्दगी मे वह क्षण नही आता जब विराम हो, विश्राम हो, उत्सव हो। वह हो नही सकता।

इन काम करने वाले लोगो ने सारी दुनिया को 'मैड हाउस' बना दिया, बिल्कुल पागलखाना कर दिया हैं। और एक-एक आदमी पागल हो गया है। सब दौड़े जा रहे हैं कि कही पहुचना हैं। जैसा मैंने सुना है एक आदमी की बाबत, कि वह तेजी से टैक्सी मे सवार हुआ और उसने कहा, जल्दी चलो। टैक्सी वाले ने जल्दी टैक्सी चलायी। थोडी देर बाद उसने पूछा, लेकिन चलना कहा है ? उसने कहा, यह सवाल नही है, सवाल जल्दी चलने का है।

हम सब जिन्दगी मे ऐसे ही सवार हैं। बस जल्दी चलो, लेकिन कहा जा रहे है आप ? सब चले जा रहे है, लेकिन कहा ? जोर से करो, जो भी कर रहे हो, लेकिन क्यो ? क्या होगा इसका फल ? क्या पाने की इच्छा है ? उसका कुछ पता नही। लेकिन, इतना समय भी नही कि इसको सोचे, इतने मे देरी हो जायेगी, पडोसी आगे निकल जायेगा। हम सब भागे जा रहे है। काम करने वाले लोगो ने, जिनको दिखायी पडता है कि काम ही सब कुछ है, भारी नुकसान पहुचाये है। एक नुकसान तो यह इन्होने पहुचाया कि जिन्दगी से उत्सव के क्षण छीन लिये। दुनिया मे उत्सव कम होते जा रहे है। रोज कम होते जा रहे है। उत्सव की जगह मनोरजन आता जा रहा है जो कि बहुत भिन्न बात है। उत्सव मे सम्मिलित होना पडता है, मनोरजन मे दूसरे को सिर्फ देखना पडता है। मनोरजन 'पैसिव' है, उत्सव बहुत 'एक्टिव' है। उत्सव का मतलब है, हम नाच रहे है, मनोरजन का मतलब कि कोई नाच रहा है, हमने चार आने दिये, और देख रहे है। लेकिन, कहा नाचने का आनन्द और कहा नाच देखने का आनन्द ! इतना काम हमने कर लिया है कि काम से थक जाते है तो किसी को नाचते हुए देखना चाहते है।

कही, कामू ने एक बात लिखी है कि जल्दी वह वक्त आ जायेगा कि आदमी प्रेम भी अपने नौकरो से करवा लिया करेगे। क्योकि, फुर्सत भी तो चाहिए न ! लेकिन, काम से फुर्सत कहा है ? एक नौकर रख लेगे घर मे कि तू प्रेम का काम कर दिया कर, क्योकि मुझे फुर्सत नही होती। प्रेम से कुछ फल तो निकलता नही है। तो इसको कौन करेगा ? काम वाले लोग नही करेगे। इसके लिए तो एक सेक्रेटरी रखा जा सकता है। वह इसको निपटा लेगा। काम की अति दौड ने, उत्सब के क्षण गवा दिये। और उत्सव से जो पुलक आती थी, जो थिरक आती थी, वह खो गयी। इसलिए कोई आदमी प्रसन्न नही है, प्रमुदित नही है, खिला हुआ नही है। इसलिए, 'सब्स्टीट्यूट' हमे खोजना पडा—मनोरजन। क्योकि कोई तो क्षण चाहिए जब हम कुछ न करे। विराम मे हो। लेकिन मनोरंजन

उधार उत्सव है। ऐसे ही जैसे कोई प्रेम कर रहा हो और हम देख रहे हैं। आप इस ख्याल मे होगे कि काम हो गया, लेकिन आपकी जो प्रेम की आकाक्षा है वह नही तृप्त होगी। वह और भूखी हो जायेगी, और प्यासी हो जायेगी।

कृष्ण उत्सववादी है। वह जीवन को एक महालीला, एक महा उत्सव की तरह देखते है। इन काम करने वालो ने जगत को जटिल बहुत कर दिया। इतना जटिल हो गया वह कि आदमी उसमे जी सके ठीक से, यह भी कठिनाई मालूम होने लगी।

० ० ०

यह भी ठीक है कि अगर हम राम के भक्तो को देखें। हनुमान को देखें तो वे बडे कर्मठ, निष्ठावान, शक्तिशाली व पूर्ण निष्णात है। कृष्ण का भक्त वैसा नही दिखायी पडता। मीरा नाचती है, गाती है लेकिन वह बात नही दिखायी पडती। वह दिखायी नही पडेगी। क्योकि राम जिन्दगी को काम की तरह देखते है। कृष्ण जिन्दगी को उत्सव की तरह देखते है। उत्सव की तरह देखना बात ही और है। अगर आपको चुनाव करना पडे कि हनुमान के साथ चौबीस घण्टे रहना कि मीरा के साथ, तो सोचना पडेगा। तब आपको पता चलेगा कि हनुमान से अगर छुट्टी ही रहे तो ठीक। इनका करियेगा क्या ? इनके साथ चौबीस घण्टे गुजारना एक कमरे मे मुश्किल हो जायेगा। मीरा के साथ चौबीस जिन्दगी भी गुजारी जा सकती है। यह भी सच है कि कृष्ण का भक्त, कृष्ण को प्रेम करने वाला, वह जो 'आउटर एक्टीविटी' है, वह जो बहिर्मुखता है वह सब दिल मे रखता जाता है, और किसी भीतरी गहरे रस मे डूबता जाता है। वह डूबेगा, क्योकि उसे दिखायी पडता है कि तुम बडा कुछ खो रहे हो 'ना कुछ' के लिए। ध्यान रहे जिस दिन दुनिया मे मीराए बढ जाय उस दिन दुनिया मे बडी शाति होगी। हनुमान बढ जाय तो बडा उपद्रव होगा। गाव-गाव अखाडे जम जायेगे और जगह जगह उपद्रव होने शुरू हो जायेगे। वैसे एकाध हनुमान चल सकते है एकाध गाव मे, ज्यादा नही। किन्तु मीरा का तारतम्य, मीरा का सम्बन्ध जीवन के बहुत गहरे तलो से है। हनुमान बिचारे काम करने वाले सेवक है, एक 'वालटियर' है। 'वालटियर' को जैसा होना चाहिए वैसे वे हैं। वह किसी के लिए जी रहे है। काम मे लगे है, धुन के पक्के है, सेवक है, वह सब ठीक है। लेकिन मीरा के आनन्द की धुन, 'बीइग' की धुन है, 'डूइग' की नही। वह कुछ करने का मजा नही है, होने के क्षण का मजा है। होना ही आनन्द है। गीत वह गा रही है तो गीत गाना काम नही है, उसके होने के आनन्द से निकली ई अभिव्यक्ति है। वह इतने आनन्द मे है कि उससे गीत ही निकल सकता है।

मै तो चाहूगा कि जगत धीरे धीरे सगीत से भरे, गीत से भरे, नृत्य से भरे, उत्सव से भरे। जिसको हम बाहर का जगत कहते है, काम की जो दुनिया है, इस काम की दुनिया का इतना ही उपयोग है कि हम इसमे इतनी दूर तक हो, जितनी दूर तक भीतर जाने के लिए जरूरी हो। इससे ज्यादा होने की जरूरत नही है। रोटी कमानी पडेगी, लेकिन रोटी कमानी ही जिन्दगी नही है। रोटी कमानी ही इसलिए पडती है कि कमा लिया और फिर जिये। लेकिन, कुछ लोग रोटी पर रोटी का ढेर लगाते चले जाते है। वह खाना भूल ही जाते है। जब तक रोटिया इकट्ठी हो पाती है, तब तक भूख भी मर चुकी होती है। क्योकि, इतने दिन खाया नही। तब वह अचानक खडे रह जाते है कि क्या करे!

सिकन्दर हिन्दुस्तान आ रहा था तो वह डायोजनीज से मिला। डायोजनीज ने उससे पूछा था कि तुम कहा जा रहे हो? क्या कर रहे हो? सिकन्दर ने कहा कि पहले मुझे एशिया माइनर जीतना है। डायोजनीज ने कहा, समझा। फिर क्या इरादा है? उसने कहा, हिन्दुस्तान जीतेगे। फिर? उसने कहा, सारी दुनिया जीतना है। डायोजनीज ने पूछा, फिर? वह रेत पर मस्त लेटा था। सिकन्दर ने कहा, फिर तो विश्राम का इरादा है। डायोजनीज खूब खिलखिलाकर हसने लगा और पीछे माद मे उसका कुत्ता, जो उसका साथी था, उसने उसे आवाज दी कि सुन, इधर आ। पागल सिकन्दर को देख। हम अभी आराम कर रहे है, यह इतना उपद्रव करने जा रहा है। सिकन्दर से डायोजनीज ने कहा, अगर आखिर मे आराम ही करना है तो आओ, अभी ही लेट जाओ नदी के तट पर। जगह यहा काफी है। हम दोनो समा जायेगे और मै आराम कर ही रहा हू, सिकन्दर, इतना सब करके आराम ही करने का इरादा है न, तो आराम अभी किया जा सकता है। सिकन्दर ने कहा, बात तो तुम्हारी जचती है, लेकिन अभी नही कर सकता हू। पहले सब जीत लूँ। तो डायोजनीज ने कहा कि जीत का और विश्राम का क्या सम्बन्ध है? क्योकि, हम बिना जीते विश्राम कर रहे है। सिकन्दर ने कहा, बात तो जचती है तुम्हारी, लेकिन अब तो मै निकल चुका हू यात्रा पर। आधा नही लौट सकता हू। डायोजनीज ने कहा, आधे ही लौटोगे, किसकी यात्रा कब पूरी होती है? यही हुआ, हिन्दुस्तान से लौटकर सिकन्दर वापस यूनान नही पहुच पाया, बीच मे ही मर गया।

सब सिकन्दर मर जाते है। आधी यात्रा पर मर जाते है। रोटिया इकट्ठी हो जाती है, खाने का वक्त नही आता। साज-सामान इकट्ठा हो जाता है, बजाने का वक्त नही आता। साज ठोक-पीटकर ठीक कर लिया जाता है लेकिन जब तक

ठोक-पीट पूरी होती है तब तक हाथ शून्य हो चुके होते है, फिर कुछ करने को नही बचता। नही, जीवन को तो लेना पडेगा उत्सव से ही, वही जीवन की धुन है। आपसे कोई पूछे गहरे मे, आप ही अपने से पूछे कि आप जो कर रहे है वह जीने के लिए कर रहे है कि करने के लिए जी रहे है, तो आपको उत्तर साफ हो सकेगा और तब आपको कृष्ण बहुत निकट मालूम पडेगे। आप जीने के लिए कर रहे है। बहुत कुछ, करने के लिए नही जी रहे है। और अगर जीने के लिए कर रहे है सब कुछ तो फिर ठीक है, उतना ही करना काफी है जितने से जिया जा सके। ज्यादा क्यो करना, उसका कोई अर्थ नही है। स्वभावत अगर यह वृत्ति फैल जाय तो बहुत से उपद्रव बन्द हो जायेगे, क्योकि बहुत से उपद्रव हमारे अत्यधिक करने से पैदा हो रहे है। अन्यथा दुनिया ज्यादा शान्त, ज्यादा आनन्द मग्न, ज्यादा प्रफुल्लित, ज्यादा प्रमुदित होगी। निश्चित ही कुछ बाते चली जायेगी, चिन्ताए चली जायेगी, तनाव चले जायेगे, पागलखाने चले जायेगे हजारो मानसिक बीमारिया चली जायेगी, यह जरूर नुकसान होगा। मै तो कृष्ण के उत्सववादी चित्त के साथ राजी हू।

० ० ०

इस देश मे न राम को, न कृष्ण को, न बुद्ध को, न महावीर को न जैनो के चौबीस तीर्थंकरो किसी को भी दाढी-मूछ नही है, न उनकी प्रतिमाओ को, न उनके चित्रो मे। क्या कारण होगे इनके पीछे ? ऐसा मै नही मानता हू कि इन सबको दाढी-मूछ नही रही होगी एकाध को हो सकता है, न रही हो, सबको नही रही ऐसा मै नही मान सकता। तथ्यगत वह नही है। लेकिन, फिर भी हमने नही दी। कई कारण है। पहला कारण था कि दाढी-मूछ आने के पहले व्यक्ति की जो वय है वह सबसे ज्यादा फ्रेश और ताजी है। वह ताजगी का, 'फ्रेशनेस' का आखिर क्षण है, उसके बाद चीजे उतरनी शुरू हो जाती है। हमने इन लोगो को ताजगी का अनन्त सागर अनुभव किया है। इन्हे हमने कभी उतरते देखना नही चाहा है। जिन्दगी मे, इन्हे हमने सदा ताजा देखना चाहा है। ऐसा नही कि ये बूढे नही हुए। ऐसा नही कि इनका शरीर नही ढला। ऐसा नही कि इनके जीवन मे वार्धक्य के क्षण नही आये। वह सब आये, लेकिन इनकी चेतना को हमने सदा किशोर देखा है – 'इटर्नलयग'। वे उतने ही ताजे है, उनकी ताजगी मे, उनकी चेतना की ताजगी मे कोई कभी फर्क नही पडा। और ये सारी मूर्तिया, ये सारे चित्र व्यक्तियो के चित्र नही है। न व्यक्तियो की मूर्तिया है। उन व्यक्तियो के भीतर हमने जो झाका है, उसके चित्र है। एक युवापन, जो सदा उनके साथ है। कृष्ण को बूढा हम सोच भी नही सकते। ऐसा नहीं कि वे बूढे नही हुए। बूढे हुए; लेकिन हम

सोच ही नही सकते कि यह बूढा कैसे होगा ? और कभी ऐसे बच्चे देखने को मिल जाते है, जिनको हम सोच ही नही सकते कि ये बच्चे कैसे है, वे हमेशा बूढ़े होते है ।

अभी एक गाव मे मै गया। वहा एक लडकी ने मुझसे कहा, जिसकी उम्र कोई तेरह–चौदह साल की रही होगी, कि मुझे तो मुक्ति चाहिए। अब यह लडकी बूढी हो गयी । मैने पूछा उससे कि तू बूढी हो गयी ? मुक्ति की बात सोचती है, अभी जी भी नही, अभी बन्धन मे पडी भी नही, अभी खुलने की बात ? लेकिन उसने कहा, मेरा घर तो बडा धार्मिक घर है। वह जब अपने घर ले गयी तो धार्मिक घर जैसा होता है–उदास, मरा हुआ वैसा ही था। सब राह देख रहे है मुक्त होने की। वहा जीने की फुर्सत किसको ? बाप भी मरा हुआ, मा भी मरी हुई, सारा घर उपवास की छाया मे दबा हुआ। स्वभावत यह लडकी बूढी हो गयी। अगर इस लडकी का चित्र बनाना पडे तो उसको चौदह साल की उम्र देना अप्रामाणिक होगा। इस लडकी का चित्र बनाना पडे तो कैमरा जो चित्र उसका लेगा, उसमे चौदह साल आयेगे, लेकिन अगर कोई चित्रकार इसका चित्र बनाये तो अस्सी साल की उम्र बनानी चाहिए। इसके चित्त की वह उम्र होगी। बुद्ध,महावीर,कृष्ण,राम सदा 'यग' है। हम पच्चीस साल का बनाते उनका चेहरा तब उनकी दाढी-मूछ होती। लेकिन, तेरह–चौदह साल वाला चेहरा जहा कि दाढी-मूछ नही है, वह हमने क्यो बनाया ? उसके पीछे कारण है।

जो चीज शुरू हो गयी फिर उसका अन्त आता है। अगर दाढी-मूछ शुरू हो गयी तो फिर बुढापा आयेगा ही। इसलिए, पच्चीस साल का बनाना उचित नही था। उस जगह को जहा से वह शुरू ही नही हुई, 'लास्ट प्वाइट' समझ लिया। उसके बाद हमने उनका चित्रण नही किया। यह हुआ एक कारण।

दूसरा कारण पुरुष के मन मे सौदर्य का जो ख्याल है वह स्त्रैण है। पुरुष के मन मे सौदर्य की जो प्रतिमा है वह स्त्री की है। पुरुष के मन मे सौदर्य की प्रतिमा पुरुष की नही है। ये सारे कवि, ये सारे चित्रकार और ये सारे शास्त्रकार पुरुष है। अगर कृष्ण को सुन्दर बनाना है, और सुन्दर बनाना ही है, क्योकि कृष्ण से ज्यादा सुन्दर क्या हो सकता है, तो जो चेहरे की आकृति होगी, वह स्त्रैण होगी। इसलिए बुद्ध की, कृष्ण की, सबके चेहरे की शक्ल स्त्रैण है। चेहरे पर जो बिम्ब है, वह स्त्री का है। पुरुष का नही है। इसलिए सारी दुनिया मे ज्यो-ज्यो हमारी समझ बढ़ती चली गयी, पुरुष ने अपनी दाढ़ी-मूछ काटकर अलग कर दी। कारण यही है। पहले उसने राम-बुद्ध की साफ की, बाद मे अपनी साफ कर दी। उसके

मन मे ख्याल है कि चेहरा स्त्री का सुन्दर है। तो स्त्री के चेहरे जैसा कैसे उसका चेहरा हो जाय, इसकी चेष्टा मे सतत लगा रहा। हालाकि यह बात स्त्री की तरफ से सच नही है। स्त्री के मन मे जो सौंदर्य का अर्थ है वह सदा पुरुष जैसा है। स्त्री के मन मे दूसरी स्त्री बहुत सुन्दर नही मालूम हो सकती। अगर स्त्रिया राम, कृष्ण और बुद्ध की मूर्तिया और चित्र बनाये तो दाढी-मूछ अनिवार्य होती है। क्योकि, स्त्रियो को वह जचता ही नही। वह स्त्रैण मालूम होते है। मै आज भी मानने को नही राजी हू कि दाढी-मूछ अलग करने के बाद स्त्री को कोई चेहरा बहुत प्रीतिकर लगेगा। नही लग सकता। क्योकि जिस चेहरे से दाढी-मूछ विदा हो गयी, उस चेहरे से पुरुष का सौदर्य विदा हो जाता है। आप जरा उल्टा सोचे कि स्त्रियाँ दाढी-मूछ लगा ले, तब आपको कितनी प्रीतिकर लगेगी ! आप भी दाढी - मूछ काटकर वैसे ही लगते होगे उन्हे। स्त्रिया चाहे कहे, चाहे न कहे, क्योकि स्त्रियो को कहने की स्वतत्रता भी नही रह गयी। उनके सोचने के ढग भी पुरुष ने तय कर दिये, इसलिए वह कभी 'अमर्ट' भी नही कर सकती। लेकिन, आप ध्यान रखे कि जब भी किसी देश मे पुरुष सौन्दर्य प्रकट होता है तो दाढी-मूछ लौट आती है।

आजकल स्त्रिया पुरुष जैसी होने की बडी कोशिश मे लगी है। सारी दुनिया मे चल रही है दौड। स्त्रियाँ पुरुष जैसे कपडे पहनना चाहेगी, क्योकि उनके मन मे सौदर्य का अथ पुरुष है। पुरुष जैसी घडिया बाधना चाहेगी, क्योकि उनके मन मे सौदर्य का अर्थ पुरुष है। पुरुष जैसे काम करना चाहेगी, क्योकि उनके मन मे सौदर्य का अर्थ पुरुष है। अगर स्त्रियो का समाज किसी दिन जीत गया, जिसका कि डर रोज पैदा होता जा रहा है (क्योकि, पुरुष काफी दिन मालकियत कर चुका है, अब पलडा बदलेगा) तो आश्चर्य न होगा कि स्त्रियाँ दाढी-मूछ लगाने की कोशिश करे।

जिन चित्रकारो ने, जिन मूर्तिकारो ने कृष्ण, राम और बुद्ध की मूर्तिया अकित की है वे पुरुष है और स्त्रैण सौदर्य उनके मन मे है इसलिए ऐसा किया है। ये चित्र और प्रतिमाए 'आथेटिक' नही है, प्रामाणिक नही है। अगर आप जैनो के चौबीस तीर्थंकरो की प्रतिमाए देखे तो आपको पता चल जायेगा कि वह बिल्कुल एक जैसी है। अगर उनके नीचे बने हुए चिन्ह अलग कर दिये जाय तो उनमे कोई फर्क नही है। अगर बुद्ध और महावीर की प्रतिमा पर से सिर्फ कपडे का भेद अलग कर दिया जाय तो वह बिल्कुल एक जैसी है, उनमे कोई फर्क नहीं है। क्या ये सब शकले एक जैसी रही होगी ? नही, ये शकले एक जैसी नही हो सकती।

लेकिन, बनाने वाले चित्रकर के पास एक जैसे प्रतीक हैं। बुद्ध को बनाने वाला चित्रकार भी बुद्ध की मूर्ति को सुन्दरतम बनाने की कोशिश कर रहा है। महावीर का चित्रकार भी महावीर की मूर्ति को सुन्दरतम बनाने की कोशिश कर रहा है, और तब उस सुन्दरतम बनाने की कोशिश मे वे शकले एक जैसी हो जाने वाली हैं। वह करीब-करीब एक जैसी हो गयी हैं।

प्रश्न 'कर्म उतना ही करना काफी है जितने से जिया जा सके, ज्यादा क्यो करना'—अगर यह वृत्ति रह जाय और कर्म करने वाले न हों तो मीरा के हाथ मे तम्बूरा भी नहीं आय और हम जो टेप कर रहे है आचार्यश्री का प्रवचन, वह टेपरेकार्डर और लाउडस्पीकर भी नही हो। वह भी कर्म की इजाद है, वही प्रश्न रह जाता है। कृपया इसे समझायें ? और जीवन को उत्सव मानने वालो से गरीबी कैसे दूर होगी ?

उत्तर हा, यह भी सोचने जैसा है। मीरा के हाथ मे जो तम्बूरा आया वह कर्म करने वाले लोगो की वजह से आया कि उत्सव मनाने वाले लोगो की वजह से आया। तम्बूरा कर्म करने वाले पैदा नही करते। वे कुदाली बनाते हैं, कुल्हाडी बनाते हैं, तलवार बनाते हैं। तम्बूरा बनाने से कर्म करने वाले का क्या लेना देना है। तम्बूरा तो बनाते ही वे लोग हैं जो जिन्दगी को खेल की तरह ले रहे हैं। जिन्दगी मे जो भी श्रेष्ठ आया है, चाहे तम्बूरा हो, चाहे ताजमहल हो वह उन लोगो के मन से आता है, उन लोगों के सपनो से आता है जो जिन्दगी को एक उत्सव बना रहे हैं। स्वभावत ये उत्सव मनाने वाले लोग भी उन लोगो का उपयोग करेगे जो जिन्दगी को काम समझे हुए है। मै मानता हू कि आप ताजमहल को देखकर जितने आनदित होते है उतने ताजमहल की ईंट रखने वाले मजदूर आनदित नही हुए थे। वे काम कर रहे थे। उनके लिए वह काम था। लेकिन, क्या वजह है ? क्या ईंट उत्सव की तरह नही रखी जा सकती ? मैं एक कहानी निरन्तर कहता हूँ —

एक मन्दिर बन रहा है और एक आदमी वहा से गुजरा है। उसने पत्थर तोडते एक मजदूर से पूछा कि तुम क्या कर रहे हो ? उस आदमी ने उसकी तरफ देखा भी नही और क्रोध से कहा, अंधे तो नही हो ? देखते नही कि पत्थर तोड रहा हूँ। उसने दूसरे से पूछा कि मेरे मित्र, क्या कर रहे हो ? उस आदमी ने उदासी से अपनी छेनी हथौडी नीचे रख दी। उस आदमी की तरफ देखा और कहा कि दिखायी तो यही पड रहा है कि पत्थर तोड रहा हू, ऐसे रोटी कमा रहा हू—बच्चो

के लिए, पत्नी के लिए। उसने फिर पत्थर तोडना शुरू कर दिया। वह आदमी तीसरे आदमी के पास पहुचा जो मदिर की सीढियो के पास पत्थर तोड रहा था और गीत भी गा रहा था। उसने उससे पूछा कि क्या कर रहे हो ? उसने कहा, क्या कर रहा हू ? भगवान का मदिर बना रहा हूँ। उसने फिर पत्थर तोडना शुरू कर दिया और गीत गाना शुरू कर दिया। ये तीनो आदमी एक ही काम कर रहे है। तीनो पत्थर तोड रहे है। लेकिन इन तीनो का सोचने का ढग पत्थर तोडने के बाबत भिन्न है। वह जो तीसरा आदमी है, उसने पत्थर तोडने को उत्सव बना दिया है।

मैं नही कहता हूँ कि लोग गरीबी न मिटाये, मैं नही कहता हूँ कि लोग यत्र न बनाये, मैं नही कहता हूँ कि लोग समृद्धि पैदा न करे, लेकिन इन सबको भी उत्सव की तरह किया जाय, काम के बोझ की तरह नही। गरीबी अगर काम की तरह मिटायी गयी तो हो सकता है कि गरीबी मिट जाय, लेकिन गरीब आदमी दुनिया से नही मिटेगा। लेकिन, अगर गरीबी उत्सव की तरह मिटायी गयी तो हो सकता है कि गरीबी उतनी जल्दी शायद न भी मिटे, लेकिन गरीब आदमी मिटा सकता है। हम जो कर रहे है उसके प्रति हमारा 'एटीटयूड' क्या है, वह सवाल है। और जब इस भाव का परिवर्तन होता है तो हमारी सारी गति-विधि बदल जाती है। एक माली भी सुबह आकर इस बगीचे मे काम करता है, लेकिन इसे उत्सव की तरह नही ले पाता। कौन उसे रोक रहा है ? माना कि वह रोटी कमा रहा है। रोटी बराबर कमा रहा है, लेकिन खिलते हुए फूलो को उत्सव की तरह नही ले पाता। यह कौन रोक रहा है ? और उत्सव की तरह न लेकर वह कौन-सा ज्यादा कमा ले रहा है ? रोटी कमा ही रहा है, वह गौण है, लेकिन उसके चित्त मे प्रमुख अगर यह फूलो का आनन्द और उनके खिलने की खुशी हो जाय तो वह माली सिर्फ नौकर नही रह जायेगा, वह बहुत गहरे अर्थो मे इन फूलो का मालिक भी हो जायेगा, बिना मालिक बने। और, जब यह फूल खिलेगे तब उसे भी एक आनन्द मिलेगा जो कोरे काम मे कभी नही मिल सकता है। गरीबी भी मिटानी है, दुख भी मिटाना है, लेकिन वह काम की भाति नही, जीवन के उत्सव मे सब सम्मिलित हो सके इसलिए।

जब मैं कहता हू कि गरीबी मिटानी है तो मेरा मतलब बहुत ज्यादा यह नही होता कि गरीब बहुत तकलीफ में है इसलिए मिटानी है। मैं जब गरीब की गरीबी मिटाना चाहता हू तो मेरे लिए मतलब इतना ही नही है कि उसका पेट खाली है, वह भर दिया जाय किसी तरह। मेरे मन में ख्याल यह है कि उसकी आत्मा को भरना मुश्किल पडेगा, जब तक पेट नही भर जाता। उसकी आत्मा

उत्सव से भरेगी, पेट काम से भरेगा। और आत्मा की तरफ अगर ध्यान हो तो हम जीवन के सब कामो को उत्सव बना ले सकते है। उस खेत मे हम गड्ढा भी खोद सकते है और गीत भी गा सकते है। सदा से ऐसा था ही। लेकिन, आज फैक्टरी उतनी आनन्दपूर्ण नही रह गयी। कल मैं आपसे कहता हू कि फैक्टरी मे गीत वापस लौटेगा। किसान अपने खेत पर काम कर रहा था। वह काम तो था ही, लेकिन वह गीत भी गा रहा था। उसके गीत की वजह से काम मे बाधा नही पडती थी, काम मे सिर्फ गति आती थी। लेकिन, फैक्टरी मे तो गीत गाने की सुविधा नही है। वहा सिर्फ काम रह गया है सात घण्टे। आदमी थका हुआ लौट आता है। टूटा हुआ लौट आता है। अगर अकेला काम ही रहेगा तो बहुत खतरा है। इसके काम को आनन्द मे रूपातरित करना होगा। दिन दूर नही है, जब कि फैक्टरी मे भी गीत गाया जा सके और उत्सव के क्षण खोजे जा सकें। खोजने ही पडेगे, अन्यथा आदमी उदास और रिक्त होता चला जायेगा। एक स्त्री घर मे खाना बना रही है। वह खाना ऐसे भी बना सकती है जैसा होटल मे रसोइया बनाता है। तब काम हो जाएगा। वह खाना ऐसे भी बना सकती है जब कोई अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करता हो और खाना बनाता हो। तब काम उत्सव हो जायेगा। उत्सव थकायेगा नही, और भरा-पूरा छोड जायेगा। काम तोड जायेगा, खाली तथा रिक्त कर जायेगा। और दोनो हालत मे काम होता है। इसलिए मैंने ऐसा कहा।

प्रश्न आपने कहा कि कृष्ण चित्त की भूमिका से ऊपर उठ गये है और यह भी कहा कि चित्त की सहज प्रेरणाओ से प्रेरित होकर उन्होने गोपियो के वस्त्रो का अपहरण किया। जो व्यक्ति चित्त के ऊपर ही उठ गया, क्या वह भी चित्त की सहज प्रेरणाओ से प्रेरित होगा ? और अगर होगा तो पशु भी इस प्रकार उसके समान हो गया ?

उत्तर मैने कहा, कृष्ण चित्त के पार हो गये थे। इसका मतलब यह नही कि कृष्ण का चित्त नहीं रह गया था। चित्त के पार होने का मतलब इतना ही है कि चित्त के पार जो है, कृष्ण उसे भी जान गये, पहचान गये। चित्त तो था ही। समाहित था। कृष्ण का व्यक्तित्व चित्त से बड़ा व्यक्तित्व हो गया था। उसमे चित्त की भी जगह थी। चित्त के पार के दो अर्थ हो सकते हैं। चित्त की दुश्मनी मे पार हो गये हो तो चित्त कटकर अलग टूट जाता है। लेकिन, अगर चित्त की मैत्री मे पार हुए है तो चित्त सम्मिलित होता है, समाहित होता है। इस बडी घटना मे, जो चित्त के पार घट रही है, चित्त भी अपना हिस्सा रखता है, वह भी अपनी जगह

होता है। जब मै कहता हूँ कि मै शरीर के पार हो गया, तो इसका मतलब यह नही कि शरीर नही रह गया। इसका केवल इतना ही मतलब है कि मै सिर्फ शरीर नही रह गया। शरीर तो हूँ ही। और भी कुछ हूँ, 'समथिंग ऐडेड', 'समथिंग प्लस'। कुछ और भी जुड गया। वह जो और कुछ है, उसने शरीर के होने को मिटा नही डाला, और 'रिच' और समृद्ध कर दिया। आत्मा भी हूँ, और जब कोई व्यक्ति जानता है परमात्मा को भी, तो ऐसा नही है कि आत्मा मिट जाती है। तब वह जानता है कि परमात्मा भी है तथा आत्मा, शरीर और चित्त उस बडे विराट मे समाहित होते चले जाते है। कुछ खोता नही, जुडता जाता है। कृष्ण को जब मै कहता हू, चित्त के पार हो गये थे तो मेरा मतलब यह है कि उन्होने उसे भी जान लिया था जो चित्त के पार फैला है। वह चित्त के शत्रु नही है। उससे लडकर पार नही हो गये, उसको जीकर पार हो गये। इसलिए, जब मै कहता हूँ कि उनके सहज चित्त से जो उठा था वह हुआ था, तो मेरा मतलब यही है कि अब उनके भीतर सब सहज ही हो सकता है।

चित्त मे असहज तभी तक होना है जब तक चित्त के भीतर हमारी लडाई होती है। एक हिस्सा कहता है करो, एक कहता है मत करो, तब लडाई होती है। तब चीजे असहज हो जाती है। जब पूरा चित्त इकठ्ठा होता है तो जो होना होता है वह हो जाता है, जो नही होना होता है वह नही होता है। तब सब सहज होत है। लेकिन, यह बात बहुत अच्छी पूछी कि फिर पशुओ में और उनमे फर्क क्या रह जायेगा ?

एक हिसाब से बिलकुल नही, एक हिसाब से बहुत ज्यादा। इस हिसाब से बिलकुल नही कि पशु भी सहज है। लेकिन बिना जानते हुए, बेहोशी मे है। कृष्ण भी सहज है, लेकिन जानते हुए, होश मे। सहजता समान है, बोध भिन्न है। पशु भी सहज है, जो हो रहा है हो रहा है। लेकिन, इसका पशुओ को कोई बोध नही है। यन्त्रवत् हो रहा है। कृष्ण को जो हो रहा है, इसका साक्षी भी पीछे खडा है जो देखता है कि ऐसा हो रहा है। पशु के पास साक्षी नही है। कृष्ण चित्त के पार चले गये है, पशु अभी चित्त के पहले है। कृष्ण चित्त के 'बियोण्ड' और पशु चित्त के 'बिलो'। अभी पशु के पास चित्त भी नही है। अभी पशु के पास शरीर ही है।

फकीरो मे एक पुरानी कहावत है कि जब कोई परम ज्ञान को उपलब्ध होता है तब परम अज्ञानी जैसा हो जाता है। इसमे थोडी सचाई है। परम अज्ञानी मे, जैसा हम जडभरत को जानते है, जिसे जडभरत नाम दिया है, वह परम ज्ञानी

है, लेकिन वह हो गया है जड़ जैसा । एक अर्थ मे जो पूर्ण ज्ञान है वह पूर्ण अज्ञान जैसा मालूम पडेगा, कम से कम पूर्णता तो समान है। वह दोनो में है। ज्ञान मे भी कोई बेचैनी नही रह गयी, क्योकि सब जान लिया गया। अज्ञान मे कोई बेचैनी नही है, क्योकि अभी कुछ जाना ही नही गया। इसलिए, हम कहते है कि जब सत अपने पूरे व्यक्तित्व को उपलब्ध होता है तो बच्चो जैसा हो जाता है। जीसस से कोई पूछता है कि आपके प्रभु के राज्य मे क्या होगा ? जो आदमी प्रभु को उपलब्ध हो जायेगा, वह कैसा होगा ? जीसस कहते है, वह व्यक्ति जो प्रभु को उपलब्ध हो जायेगा, बच्चो जैसा होगा। वह कहते है बच्चो जैसा, बच्चा नही। 'जस्ट लाइक चिल्ड्रेन'। अगर वह कहे की बच्चा हो जायेगा तो फिर बच्चे तो बच्चे है ही, फिर इतने उपद्रव की क्या जरूरत है। नही, बच्चा अभी नीचे है, 'बिलो' है। वह 'बिओण्ड' होगा। बच्चे को अभी तनाव मे जाना पडेगा, वह तनाव मे जाकर निकल चुका है। बच्चा अभी 'पोटेंशियली' सब बीमारिया लिए हुए है, वह सारी बीमारियो के पार हो गया है। अभी पशु को उन सारी बीमारियो से गुजरना पडेगा जो आदमी की है और कृष्ण उन सारी बीमारियो के पार गुजर गये है। इतना फर्क है और इतनी समानता भी है।

प्रश्न आचार्यजी, आपने स्वधर्म और निधर्म की चर्चा की। पहले श्लोक का जो भाग है वह यह कहता है कि स्वधर्म विगुण भी श्रेष्ठ है। स्वधर्म अगर निजता है तो वह विगुण कैसे रह सकता है, गुणरहित कैसे हो सकता है ? क्या कोई निजता गुणरहित भी होती है ।

उत्तर हा, इसे आखिरी सवाल समझे, पूछते है कि स्वधर्म विगुण होगा, गुणरहित होगा। ऐसा कैसे हो सकता है ? निजता विगुण कैसे होती है ?

इसमे दो बाते ख्याल मे लेने जैसी है, एक तो चीजे अपने मूल मे सदा ही निर्गुण, विगुण होती है। सिर्फ अभिव्यक्ति मे गुण उपलब्ध होता है। जैसे एक बीज है, अभी वह विगुण है। अभी इसमे कोई गुण नही है, सिर्फ बीज होने का गुण है। सिर्फ 'पोटेंशियलिटी' है। इसमे लाल फूल खिलेगे, अभी खिले नही हैं। कल यह फूल बन जायेगा। फूल गुणवान हो जायेगा। उसकी सुगन्ध होगी खास, उसका रग होगा खास, उसका व्यक्तित्व होगा खास। लेकिन बीज मे चीजें गुणशून्य हैं। अभिव्यक्ति मे प्रकट होकर गुण को उपलब्ध होगी। जगत गुण है, परमात्मा निर्गुण है। परमात्मा बीज रूप है। जब प्रकट होता है तो गुण दिखायी पडते हैं, जब अप्रकट हो जाता है तो गुण खो जाते है। एक आदमी अच्छा है, एक आदमी बुरा है। एक आदमी चोर है, एक आदमी साधु है। दोनो सो गये हैं। दोनों

त्रिगुण हो गये। सुषुप्ति मे कोई गुण नही रह जाता—साधु साधु नही रह जाता, चोर चोर नही रह जाता। सुषुप्ति मे वे निजता के बहुत करीब होते हैं, एकदम करीब होते है। हा, जागेगे तो चोर चोर हो जायेगा। साधु साधु हो जायेगा। जागते ही गुण आयेगे। सोते ही गुण सो जायेगे। समाधि मे तो हम निजता मे ही पहुच जाते है। ठीक निजता का जो अनुभव है, स्वभाव का जो अनुभव है वह निर्गुण होगा। लेकिन, स्वभाव की भी जो अभिव्यक्ति है, 'मैनीफेस्टेशन' वह सगुण होगी। सगुण और निर्गुण दो चीजे नही है। सगुण और निर्गुण विरोधी चीजे नही है। सगुण, निर्गुण की अभिव्यक्ति का नाम है। और निर्गुण, सगुण की अप्रकट अवस्था का नाम है। तो, दो स्वभाव की स्थितिया होगी। एक तो वह निजता, जो अप्रकट है, बीज रूप है, गर्भ मे है, अभी सोयी है, अपने मे डूबी है, लीन है। और एक वह निजता जो प्रकट हो गयी है। जब प्रकट होती है निजता तो आकार ले लेती है, गुण ले लेती है। असल मे कोई अभिव्यक्ति निराकार नही हो सकती और कोई अभिव्यक्ति निर्गुण नही हो सकती। जैसे ही कोई चीज प्रकट होगी उसका रूप-रग-आकार होगा। प्रकट होने का मतलब ही यह है कि उसे रूप-रग मे होना पडेगा।

एक छोटी-सी कहानी मुझे याद आती है। एक जैन साधु अपने शिष्यो को चित्र बनाना सिखाता है। वह चित्रो से ध्यान के मार्ग पर ले जाता है। उसके दस शिष्य सुबह इकट्ठे हुए है। उसने कहा कि एक चित्र की मै तुम्हे रूपरेखा देता हूँ। वह रूप रेखा यह है कि एक गाय घास मे भरे मैदान मे घास चर रही है। तुम यह चित्र बना लाओ। लेकिन, ध्यान रहे, चित्र निर्गुण हो। दसो शिष्य बडी मुश्किल मे पड गये। फकीर का काम ही यही है कि किसी को मुश्किल मे डाले। वे विचार मे पड गये कि निर्गुण कैसे होगा यह चित्र? रग का तो उपयोग करना पडेगा। कम-से-कम गाय को आकार तो देना पडेगा, घास भी तो बनानी पडेगी। नौ चित्रकार बना कर लाये। उन्होने ऐसा बनाया कि बहुत साफ साफ न दिखायी पडे, लेकिन फिर भी गाय तो थी ही। घास भी बनायी। 'एब्सट्रैक्ट आर्ट' का उपयोग भी किया होगा कि चीजे साफ-सुथरी न हो। फिर भी रग का उपयोग करना पडा। उस गुरु ने नौ के ही चित्र फेक दिये और कहा कि निर्गुण मे रग कैसा? गाय कैसी? दसवा आदमी खाली, कोरा कागज लेकर आ गया। उसने कहा, यह रहा। उन बाकी नौ चित्रकारो ने पूछा कि गाय कहा है? उसने कहा कि गाय घास चर के जा चुकी। उन्होने कहा, घास कहा है? उसने कहा, गाय ने चर लिया। चीजे लौट गयी। यह निर्गुण चित्र है। गाय घास चर रही है, लेकिन चर चुकी। घास समाप्त हो गयी। कोरा कागज रह गया।

निजता की जो बहुत गहराई है वहा तो सब निराकार है, निर्गुण है। विगुण, गुणरहित है। अभिव्यक्ति जब गाय घास चरती है तब प्रकट होती है। फिर घास भी आती है, फिर गाय भी आती है। फिर सब खेल होता है। फिर सब विदा हो जाता है।

जगत का इतना बडा विस्तार कभी विगुण मे था। कभी यह सब शून्य से जन्मा, कभी यह फिर शून्य मे समाहित हो जायेगा। सब जन्मता है, सब समाहित हो जाता है। जहा से जन्मता है वही लौट जाता है। और वह जो शून्य की अवस्था है उसमे पूर्ण छिपा है अपने पूर्ण गुणो को लेकर, लेकिन विगुण है। निर्गुण है, अभी उसमे गुण नही आया है। अभी आयेगा। इस अर्थ मे निजता के दो रूप हुए। सभी चीजो के दो रूप है—'मैनीफेस्टेड, अनमैनीफेस्टेड' प्रकट, अप्रकट। प्रकट मे गुण दिखायी पडते है, अप्रकट निर्गुण रह जाता है।

इसलिए, कृष्ण को भी दो तरफ से देखना है—एक तो उनका जो दिखायी पडता है व्यक्तित्व, और एक वह जो नही दिखायी पडता। जो अश्रद्धालु है वह सिर्फ उसी को देख पायेगा जो दिखायी पडता है, और जिसके जीवन मे श्रद्धा जन्मी है वह उसको भी देख पायेगा, जो नही दिखायी पडता है। तर्क, चिन्तन, मनन, विचार, 'मैनीफेस्टेड' के आगे नही जायेगा। प्रकट के आगे नही जायेगा। गुण के आगे नही जायेगा। ध्यान, प्रार्थना, श्रद्धा, 'अनमैनीफेस्टेड' मे प्रवेश कर जायेगी। जो नही दिखायी पडता है, जो अदृश्य है उसमे प्रवेश कर जायेगी। लेकिन, जो अभी 'मैनीफेस्टेड' को नही पकड पाते वह 'अनमैनीफेस्टेड' को कैसे पकड पायेगे ? इसलिए, तर्क का, विचार का काम है कि वहा तक पहुचा दे, उस सीमात तक जहा अभिव्यक्त समाप्त होता है और अनभिव्यक्त शुरू होता है। फिर वहा छलाग लगानी पडेगी, फिर वहा अपनी ही बुद्धि से कूद जाना पडेगा, फिर अपने ही चित्त के आगे चला जाना होगा, फिर 'बियोन्ड वनसेल्फ', फिर खुद को ही पार कर जाना होगा। लेकिन, उसका यह मतलब नही है, जो आयेगा फिर ज्ञान मे, जो दिखायी पडेगा, वह कट जायेगा। नही, वह उसमे समाहित हो जायेगा। और जिस दिन 'मैनीफेस्टेड और अनमैनीफेस्टेड', प्रकट और अप्रकट दोनो इकट्ठे हो जाते है उस दिन 'एब्सलूट', जिसको हम पूर्ण सत्य कहे, उसका साक्षात्कार हो जाता है।



पर्व : सात

कृष्ण की बाल्य कथाएं और प्रतीक

मुख में ब्रह्मांड दर्शन और दिव्य दृष्टि

विनाशायच दुष्कृताम्

मार्शल मेकलुहान का सूत्र मुरली जीवात्मा परमात्मा का माध्यम

प्रार्थना और प्रार्थनापूर्णता

कृष्ण का पांचजन्य और सुदर्शनचक्र

वाल्मीकि द्वारा राम के पहिले ही रामकथा लिखना

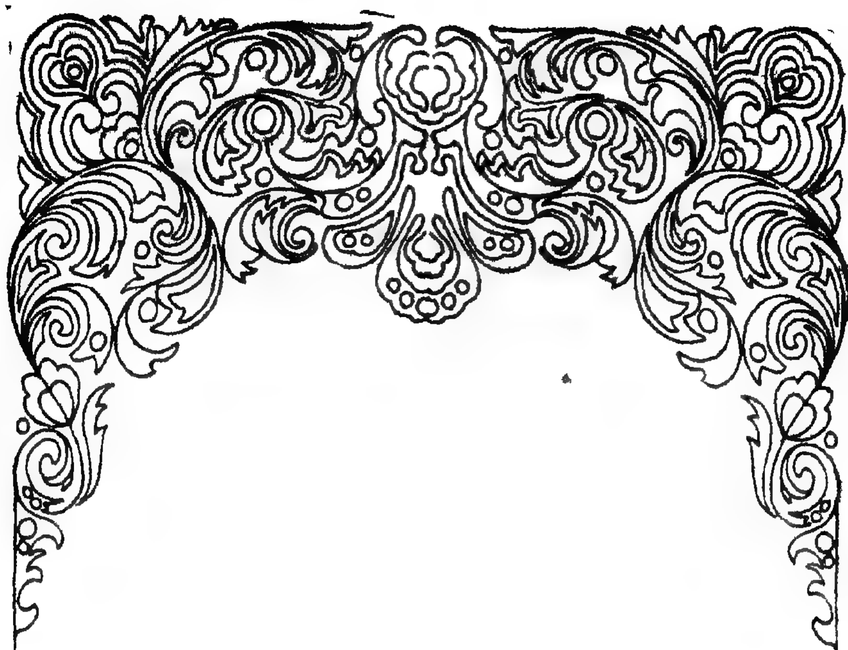
मार्टिन बूबर की परम्परा

स्मृति की स्थिति और उपयोग

प्रगट जगत में जो भी घटित होता है अकारण नहीं

क्या कृष्ण में कुछ भी दोष संभव नहीं





७

प्रश्न आचार्यजी, कृष्ण के बाल्यकाल की तथा अन्य इतनी कथाएँ हैं—जैसे चांडूर तथा मुष्टिक नाम के पहलवानो को पछाडना, कंस वध, कालिया मर्दन, कीर्ति, अघ, बघ, घोटक, पूतना आदि असुरो का नाश, दावानल को पी जाना, इत्यादि इत्यादि। तो, क्या ये सब कथाएँ सत्य हैं या प्रतीक हैं। और इनमे से कौन कौन सी लक्षणाएं प्रतीक हैं। साथ ही गीता में कहा है कि 'विनाशाय च दुष्कृताम्' से आप अर्थ लेते हैं कि दुष्टों का परिवर्तन करते हैं,

उनका सुधार करते है। लेकिन, कृष्ण ने उपरोक्त दुष्टो का वध क्यों किया और कराया ?

उत्तर इस सम्बन्ध मे एक बात तो सबसे पहले समझनी जरूरी है जो सदा से ही लोगो को उलझन मे डालती रही है। एक छोटासा बच्चा है कृष्ण। इतने शक्तिशाली लोगो को हरा कैसे सकेगा ? लोगो के पास एक ही उपाय था, इस पहेली को हल करने का। वह उपाय यह था कि वह कृष्ण को भगवान् मान ले, परम शक्तिवान मान ले। फिर, सारी पहेलियाँ हल हो जाती है। लेकिन इसका भी मतलब गहरे मे यही हुआ कि छोटी शक्ति पर बडी शक्ति विजय पा जाती है। कोई राक्षस है, कोई शक्तिशाली पहलवान है। कृष्ण दिखायी पडते है छोटे, लेकिन वे महाशक्तिवान है। लेकिन, मेरा मानना है कि इस तरह की व्याख्या करनेवालो ने कृष्ण के व्यक्तित्व को समझा ही नही। इस तरह की व्याख्या मूलत गलत है, भ्रान्त है। क्योकि, उसके आधार मे बात वही है कि बडी शक्ति छोटी शक्ति से जीत जाती है। मै कुछ और कहना चाहूँगा, उसे समझना जरूरी होगा।

इस जगत मे जो जीतना नही चाहता वह जीत जाता है और जो जीतना चाहता है वह हार जाता है। इन सारी कथाओ मे मेरे लिए अर्थ ऐसा ही है। असल मे, जीतने की चाह मे ही बहुत गहरे मे हार छिपी है। और जो जीतना नही चाहता वह इस भाव मे जीता ही हुआ है। यह भाव छिपा है। इसे ऐसा समझे कि जो आदमी जीतना चाहता है वह गहरे मे 'इनफिरीआरिटी कम्पलेक्स' से पीडित है, वह हीन भाव से पीडित है। वह जानता तो है कि हीन है, जीत कर सिद्ध करना चाहता है कि हीन नही है। जो आदमी जीतने के लिए आतुर ही नही है वह अपनी श्रेष्ठता मे प्रतिष्ठित है। उसे कही कोई हीनता ही नही है जिसे सिद्ध करने के लिए या जिसे असिद्ध करने के लिए जीत अनिवार्य हो। इसे अगर हम लाओत्से से समझेगे तो बहुत आसानी होगी।

लाओत्से ने एक दिन अपने मित्रो को कहा कि मुझे जिन्दगी मे कोई हरा नही सका। तो, एक व्यक्ति ने उससे खडे होकर पूछा कि वह राज हमे भी बतलाइये, क्योकि जीतना तो हम भी चाहते है, और हम भी चाहते है कि कोई हमे हरा न सके। लाओत्से हसने लगा। उसने कहा, फिर तुम न समझ सकोगे उस राज को। क्योकि, तुमने पूरी बात भी न सुनी और बीच मे ही पूछ बैठे। मैने कहा था, मुझे जिन्दगी मे कोई हरा न सका था, पूरा वाक्य तो कर लेने देते। लाओत्से ने वाक्य पूरा किया। उसने कहा, मुझे जिन्दगी मे कोई हरा न सका, क्योकि मै पहले से ही हारा हुआ था। मुझे जीतना मुश्किल

था; क्योकि मैं जीतना ही नही चाहता था। उसने उन लोगो को कहा कि तुम अगर सोचते हो कि तुम मेरे राज को समझ जाओगे तो गलती मे हो। तुम जीतने की आकांक्षा करते हो, वही तुम्हारी हार बन जायेगी। सफलता की आकाक्षा ही अन्त मे असफलता बनती है और जीवन की अति आकाक्षा ही अन्त मे मृत्यु बन जाती है। स्वस्थ होने का पागलपन ही बीमारी मे ले जाता है। जिन्दगी बहुत अद्भुत है। यहा हम जिस चीज को बहुत जोर से माँगते है उसी को खो देते हैं। जिस चीज को हम माँगते ही नही, वह मिल जाती है। असल मे हम माँगते नही, इसका मतलब ही यही है कि वह मिली ही हुई है। कृष्ण बडे शक्तिशाली है इसलिए जीत जाते हैं ऐसा मैं न कहूँगा। क्योकि, यह तो फिर वही शक्ति का पुराना कानून हुआ कि छोटी मछली को बडी मछली खा जाती है। फिर इसमें कृष्ण की कोई विशेषता न होगी। यह तो फिर वही गणित हुआ शक्ति का। लेकिन, जिन लोगो ने भी आज तक कृष्ण की जीत की व्याख्या की है, वह इसी तरह सोच सके है, इससे भिन्न नही।

जीसस का एक वचन है, "ब्लेसेड आर द मीक, बिकॉज दे शैल इनहेरिट द अर्थ"। धन्य है विनम्र, क्योकि पृथ्वी का राज्य उन्ही का होगा। बडी उल्टी बात है। धन्य है विनम्र, क्योकि पृथ्वी के मालिक वे ही होगे। कृष्ण जीतने को बिलकुल आतुर ही नही है। बच्चे जीतने को आतुर होते ही नही, सिर्फ खेलने को आतुर होते है। जीत बडी बाद मे आती है जब चित्त बडे बीमार हो जाते है, रुग्ण हो जाते है। कृष्ण तो खेल रहे हैं। वह बडे राक्षसो से लड रहे है तब भी खेल मे है। राक्षस जीतने के लिए आतुर है, और एक विनम्र बच्चे से, जिसे जीतने का कोई ख्याल ही नही, जो अभी खेल रहा है, जो एकदम मासूम और नाजुक है, उससे भी राक्षस हार जाते है। हार जायेगे।

जापान मे एक कला है, जिस का नाम जूडो है। उसीका दूसरा नाम है जुजुत्सु। इस कला के सम्बन्ध मे दो तीन बाते ख्याल मे ले ले तो बडा अच्छा होगा। जूडो कुश्ती की कला है। लेकिन, उसका राज बडा उल्टा है। जूडो की कला जो सीखता है लडने के लिए, उसके नियम हमारी लडाई के नियम से बिल्कुल उल्टे है। अगर मैं आपसे लडू तो मैं आप पर चोट करूँगा। आप चोट का बचाव करेगे। आप मुझ पर चोट करेगे, मैं चोट का बचाव करूँगा। यह साधारण लडने का नियम है। जूडो का नियम उल्टा है। जूडो का नियम यह कि मै आप पर हमला कभी न करू, जिसने हमला किया, वह हार जायेगा। क्योकि, हमले मे शक्ति व्यय होती है। मैं हमले को उकसाऊँ, दूसरे को प्रेरित

करूँ कि वह हमला करे। और मैं बिल्कुल 'ऐट ईज' रहूँ, मैं जरा भी हिलूँ डुलूँ नही। मैं कुछ करूँ ही नही। मैं सिर्फ दूसरे को उकसाऊँ कि वह हमला करे। मैं उसे क्रोधित करूँ, मैं उसे भडकाऊ, मैं उसे जलाऊँ और मैं शात रहू। जब वह हमला करे तो 'रेसिस्ट' न करूँ। जब वह मेरे ऊपर चोट करे, घूसा मारे तो मैं उसके विरोध मे अपने शरीर को अकडाऊँ नही। शरीर को ऐसा ढीला और 'रिलेक्स' छोड दूँ कि उसका घूँसा मेरा शरीर पी जाय।

कभी आपको ख्याल है कि एक शराबी के साथ बैठ जाये एक बैलगाडी में और बैलगाडी उलट जाय रास्ते मे, तो आपको चोट लगेगी, शराबी को नहीं लगेगी। कभी सोचा कि राज क्या है? शराबी ज्यादा ताकतवर है इसलिए चोट नही लगी? आप कमजोर है, इसलिए चोट लग गयी? नही, जब गाडी उल्टी तो आप होश मे है। गाडी के उलटते ही आपको लगा कि चोट लगेगी, अब मैं बचू और आप सख्त हो गये, 'स्ट्रेड' हो गये। आपकी सब नसे, आपकी हड्डियाँ, सब मजबूती से जमीन के खिलाफ खडी हो गयी बचाव के लिए। आप कडे हो गये। शराबी को पता ही नही है कि गाडी उलट गयी। वह गिर गये। उन्होंने गिरने के साथ सहयोग किया। वह जमीन के खिलाफ अकडे नही। जमीन के साथ एक हो गये। शराबी जब गिरता है तो बोरे की तरह गिरता है। इसलिए, शराबी रोज रात गिरते है और चोटे नही खाते। आप उतने गिरे तो पता चल जाय। बच्चे रोज गिरते है, हड्डियाँ नही टूटती। आप उतने गिरे तो एक ही दिन मे सब नष्ट हो जाय। क्या बात है? बच्चे की ताकत ज्यादा है? नही, बच्चा गिरने के साथ ही एक हो जाता है। विरोध नही करता गिरने का। गिरने मे भी साथ देता है, गिरते वक्त भी राजी होता है। तो, जूडो की कला कहती है कि जब कोई तुम्हे मारे तब तुम राजी हो जाओ पिटने को और जरा भी कही भीतर से विरोध न करना। बडी कठिन कला है! राजी हो जाना, पी जाना उसके घूसे को। एक तो खुद हमला मत करना, क्योंकि हमले मे शक्ति व्यय होती है, और जब कोई दूसरा घूसा मारे तो उसके घूसे को भी पी जाना तो उसकी शक्ति भी तुम्हे मिल जाती है। इसलिए जूडो मे बडा पहलवान हार सकता है और कमजोर आदमी जीत सकता है। जीत जाता है।

मैं ऐसा नही कह रहा हूँ कि कृष्ण जूडो जानते थे। सभी बच्चे जूडो जानते ही है। वही उनकी जिन्दगी का राज है, बच्चे की जिन्दगी का। सभी कथाएँ ऐतिहासिक हैं, यह मैं नही कह रहा हूँ। मैं तो उसके भीतर जो मनो-

वैज्ञानिक सत्य है उसकी बात कर रहा हूँ। कृष्ण अगर जीत सके, तो खेल था उनके लिए, अभिनय था, मौज थी, मजा था। हमलावर वह न थे, जीतने वह किसी को निकले न थे। कोई दूसरा जीतने आया था। और मैं मानता हू कि कृष्ण जैसे बच्चे पर अगर किसी पहलवान ने हमला किया तो हम कह सकते हैं कि यह पहलवान हार जायेगा, क्योकि जो बच्चे पर हमला करने गया है वह भीतर से बडा हारा हुआ आदमी होना चाहिए। उसके भीतर आत्म-विश्वास बिल्कुल नही है। एक छोटे-से बच्चे पर इतना बडा पहलवान हमला करने गया है, यही इस बात की सूचना है कि यह हारेगा। यह हार ही चुका है। इसको लड़ने की कोई जरूरत नही थी। इसको पहले ही मान लेना था कि हार चुका है। क्योकि, भीतर की हीनता की पीडा हमला करवाती है। कृष्ण का बालक होना, कृष्ण का लडने के लिए आतुर न होना, कृष्ण का किसी पर जीतने के लिए आकाक्षी न होना ही राज है। घटनाएँ ऐतिहासिक है या नही, इससे मुझे मतलब नही, लेकिन जूडो की पूरी फिलॉसोफी, जुजुत्सु की पूरी की पूरी कला, कृष्ण की जिन्दगी मे शुरू होती है। मै तो कहूँगा, कृष्ण जुजुत्सु के पहले मास्टर हैं। न तो किसी को जापान मे पता है, न किसी को चीन मे पता है, न किसी को हिन्दुस्तान मे पता है कि इस आदमी की सारी विजय का राज क्या है। इस आदमी की विजय का राज ही यही है कि यह विजय करना नही चाहता। इसे खेल है सब। उस खेल मे यह तल्लीन हो जाता है। सामनेवाला तनावग्रस्त है। दूसरा चिन्तित है, जीतने को आतुर है, परेशान है। वह अपने भीतर बटा और कटा हुआ है, टूटा हुआ है, अपने आप हार जायेगा। बच्चे को हराना मुश्किल है। यही अर्थ है।

प्रश्न : आचार्यजी यशोदा, को मुख में ब्रह्म दर्शन कराना और ब्रह्मांड का दर्शन कराना और अर्जुन को युद्ध में विश्वरूप का दर्शन कराना, इन दोनो घटना विशेष का आप तात्पर्य बतलाएँ और यह भी बतायें कि क्या दिव्य दृष्टि देकर वापस भी ली जाती है, जैसी कि कृष्ण ने अर्जुन को देकर वापस ले ली थी?

उत्तर आँखें नही हैं हमारे पास, अन्यथा सब जगह हमे विराट का दर्शन हो जाय। आँखें नही है हमारे पास, अन्यथा सभी जगह ब्रह्माड है। कृष्ण तो सिर्फ निमित्त हैं। यशोदा को दिखायी पड सकता है ब्रह्माड उनके मुख मे। किस माँ को अपने बेटे के मुह मे ब्रह्माड नही दिखायी पड़ता? खो जाता है धीरे-धीरे, यह बात दूसरी है। लेकिन, पहले तो दिखायी पडता है। यशोदा पूरे अर्थों मे माँ थी इसलिए दिखायी पड़ सका है और कृष्ण पूरे अर्थों मे बेटा था;

इसलिए निमित्त बन सका है। इसमे कुछ 'मिरेकल' नही है, इसमें कोई चमत्कार नही है। अगर आप प्रेम से मुझे भी देख सके तो ब्रह्माड दिखायी पड सकता है। देखने वाली आँखें चाहिए और योग निमित्त चाहिए। एक छोटे-से फूल मे दिख सकता है सारा जगत। यहा अणु-अणु मे विराट छिपा है। एक छोटी-सी बूद मे पूरा सागर छिपा है। एक बूद को कोई पूरा देख ले तो पूरा सागर दिख जायेगा। अर्जुन को भी दिखायी पड सका। वह भी कुछ कम प्रेम मे न था कृष्ण के। ऐसी मैत्री कम घटित होती है पृथ्वी पर जैसी वह मैत्री थी। उस मैत्री के क्षण मे अगर कृष्ण निमित्त बन गये और अर्जुन को दिखायी पड सका तो कुछ आश्चर्य नही है, न कोई चमत्कार है। और ऐसा नही है कि एक ही बार ऐसा हुआ है, ऐसा हजारो बार हुआ है। उल्लेख नही होता है, यह बात दूसरी है। सग्रहीत नही होता है, यह बात दूसरी है। यह जरूर समझने जैसा है कि क्या दी गयी दिव्य दृष्टि वापस ली जा सकती है?

न तो दिव्य दृष्टि दी जा सकती है और न वापस ली जा सकती है। किसी क्षण मे दिव्य दृष्टि घटित होती है और खो सकती है। दिव्य दृष्टि एक 'हैपनिग' है। किसी क्षण मे आप अपनी चेतना के उस शिखर को छू लेते है, जहा से सब साफ दिखायी पडता है। लेकिन, उस शिखर पर जीना बडा कठिन है। जन्म जन्म लग जाते है उस शिखर पर जीने के लिए। उस शिखर से वापस लौट जाना पडता है। जैसे, जमीन से आप छलाग लगाये तो एक क्षण को जमीन के 'ग्रेवीटेशन' के बाहर हो जाते है। खुले आकाश मे मुक्त पक्षिया की तरह हो जाते है। एक क्षण के लिए, लेकिन बीता नही क्षण कि आप जमीन पर वापस आ जाते है। एक क्षण को पक्षी होना आपने जाना। ठीक ऐसे ही चेतना का 'ग्रेवीटेशन' है, चेतना की अपनी कशिश है, चेतना के अपने चुम्बकीय तत्व है जो नीचे पकडे हुए है। किसी क्षण मे, किसी अवसर मे, किसी 'सिच्युएशन' मे आप इतनी छलाग ले पाते है कि आपको विराट दिखायी पड जाता है। एक क्षण को, जैसे बिजली कौध गयी हो। फिर, आप वापस जमीन पर आ जाते है। निश्चित ही अब आप वही नही होते जो इस दर्शन के पहले थे। हो भी नही सकते, क्योकि एक क्षण को भी अगर इस विराट को देख लिया तो आप दूसरे हो गये, और वह जो दिखा था वह खो गया।

जैसे, रात अँधेरी हो और बिजली कौध जाय। एक क्षण को फूल दिखायी पडे, पहाड दिखायी पडे और खो जाएँ। फिर घना अधकार हो जाय। लेकिन, अब मैं वही नहीं हूँ जो पहले अधकार मे था। पहले तो मुझे पता भी नही था कि

पहाड भी है, वृक्ष भी हैं, फूल भी है। अब मुझे पता है। अधकार बना है। लेकिन, अब उन फूलो को अधकार मुझसे छीन नही सकता। अब उन पहाडो को अधकार मुझसे छीन नही सकता। वे मैंने जान लिये, अब वे मेरे हिस्से हो गये है। अब मै जानता हूँ, चाहे देखूँ और चाहे न देखूँ– चाहे पता चले, चाहे पता न चले। लेकिन, बहुत गहरे मे मै जानता हूँ कि पहाड है, वृक्ष है, फूल है, उनकी अज्ञात सुगन्धे मुझे छुयेगी, उनकी अज्ञात हवाओ मे मुझे सदेश मिलेगा। अधकार उन्हे छिपा सकता है अब, लेकिन मुझसे मिटा नही सकता।

दिव्य दृष्टि कोई देता नही। लेकिन, कृष्ण कहते मालूम पडते है कि मै तुझे दिव्य दृष्टि देता हूँ। इससे कठिनाई पैदा होती है। असल मे आदमी की भाषा बडी उलझन से भरी है। यहा हमे ऐसे शब्दो के प्रयोग करने पडते है जो कि वस्तुत जीवन्त नही है। यहा हमे देने लेने की बात बोलनी पडती है। हम अक्सर कहते है कि मै फला व्यक्ति को प्रेम देता हूँ। लेकिन, प्रेम दिया जा सकता है ? प्रेम कोई वस्तु है, जो दे देगा ? प्रेम घटित होता है, दिया नही जाता। लेकिन, भाषा ऐसा कहती है कि मै प्रेम देता हूँ। माँ कहती है कि मै बेटे का प्रेम देती हूँ। किसी माँ ने बेटे को कभी प्रेम दिया है ? प्रेम हुआ है। 'इट हैज हैपेन्ड' –वह घटित हुआ है, दिया नही गया। ठीक उसी तरह भाषा की ही बात है, और ज्यादा बात नही है। ऊचाइया घटती है और खो जाती है। ऊचाइयो पर रहना मुश्किल है। हिलेरी और तेनसिग एवरेस्ट पर गये। झडा गाडा, वापस लौट आये। एवरेस्ट पर रहना मुश्किल है। लेकिन, एवरेस्ट पर किसी दिन रहा जा सकेगा, हम इन्तजाम कर लेगे। लौटना नही होगा। रुक भी सकेगे। लेकिन, चेतना की ऊचाइयो पर रुकना तो बहुत मुश्किल होता है। लेकिन, रुका जाता है। कृष्ण जैसे व्यक्ति रुकते है। अर्जुन जैसे व्यक्ति छलाग लगाते है, देखते है, वापस लौट आते है। यह घटना घटती है। यह लेना-देना नही है। लेकिन, हमारी भाषा लेने-देने मे सोचती है। इससे बहुत कठिनाई होती है। हम कहते है, हमने फला व्यक्ति को सहानुभूति दी। सहानुभूति कोई देता है ? वह घटती है। जो ठीक शब्द है वह यह है कि कृष्ण और अर्जुन के बीच उस क्षण मे दिव्य-दृष्टि घटी। उसमे कृष्ण निमित्त बने, अर्जुन छलाग लगाने वाला बना। लेकिन, भाषा मे इसे कैसे कहेगे ? भाषा मे इसे ऐसे ही कहेगे कि कृष्ण ने दिव्य दृष्टि दी। जैसा मैंने कहा कि मैं यहा बैठा हूँ और अगर मुझे पूरे प्रेम से कोई खुली आँख से देख सके तो कुछ घट सकता है। लेकिन, जब आपको घटेगा तब आप भी कहेगे कि आपने दिया। लेकिन, मै कहा देने वाला हूँ ? शायद

भाषा मे कहना पडे तो मै भी कहूँ कि मुझसे आपको मिला। लेकिन, मुझसे क्या मिल सकता है ?

केमिस्ट्री मे एक शब्द है, उसे समझना चाहिए। वह है, 'केटेलेटिक एजेंट'- उस चीज को कहते है जिसकी मौजूदगी मे कोई चीज घट जाती है। लेकिन, वह स्वय उसमे कोई भी भाग नही लेता। जैसे—उदाहरण के लिए हाइड्रोजन और आक्सीजन को अगर हमे मिलाना हो और पानी बनाना हो तो बीच मे विद्युत की मौजूदगी चाहिए। अगर बीच मे विद्युत मौजूद न हो तो हाइड्रोजन, आक्सीजन अलग-अलग रहेगे, मिल न सकेंगे। आकाश मे भी जो बिजली चमकती है वह इसीलिए चमकती है, अन्यथा आकाश के हाइड्रोजन और आक्सीजन पानी नही बन सकेगे। बिजली की चमक की वजह से ही पानी बन पाता है बादल। लेकिन, बडी खोज करके भी यह पता नही चलता है कि बिजली का कोई 'कण्ट्रीब्यूशन' है। बिजली कुछ करती नही। आक्सीजन और हाइड्रोजन को मिलाने के लिए बिजली कुछ भी नही करती। बिजली से कुछ भी नही मिलता। लेकिन, सिर्फ मौजूदगी, 'जस्ट प्रेजेन्स भर जरूरी है। उसकी बिना मौजूदगी के कुछ नही होगा। ऐसे केमेस्ट्री मे बहुत केटेलेटिक एजेट है, जिनकी मौजूदगी जरूरी है। लेकिन, सब तरफ की नाप-जोख से पता चलता है कि उनसे कुछ खोता नही, उनसे कुछ होता नही।

कृष्ण भी 'केटेलेटिक एजेट' है, और जिनको हम अब तक गुरु समझते रहे है वह बडी भ्राति है। दुनिया मे कोई गुरु नही, सिर्फ 'केटेलेटिक एजेट' है। चेतना मे भी घटनाएँ घट सकती है किसी की मौजूदगी मे, जो बिना मौजूदगी के शायद नही घटे। कृष्ण की मौजूदगी मे घटना घटती है। अर्जुन बेचारा निश्चित ही कहेगा कि आपने मुझे दिया। रामकृष्ण की मौजूगी मे विवेकानन्द को कुछ घटित होता है। विवेकानन्द जरूर ही कहेगे कि आपने मुझे दिया। और रामकृष्ण अगर भाषा के बहुत झझट मे न पडना चाहते हो तो वह भी कहेगे, ठीक है। भाषा की झझट मे सभी लोग पडना भी नही चाहते, मेरे जैसे लोगो को छोडकर। लेने-देने से काम चल जाता है, लेकिन वह शब्द उचित नही है, 'एप्रोप्रिएट' नही है। ठीक जगह पर नही है। मगर, आदमी के पास दूसरा कोई शब्द नही है। एक चित्रकार से पूछे, वान्गाग से पूछे। पूछें, कि तुमने यह चित्र बनाया ? तो वान्गाग कहेगा, मैंने बनाया नही यह मुझ से बना। मगर हम कहेगे, इससे क्या फर्क पडता है ? फर्क बहुत पडता है और हो सकता है झझट मे वान्गाग भी न पडे, और वह कहे कि हा मैंने बनाया। क्योकि, सारी दुनिया ने देखा उसे बनाते हुए। यह

कोई झूठी बात नहीं है। गवाह मिल जायेंगे कि यह आदमी बना रहा था। लेकिन, वान्गाग की अन्तरात्मा तो कहती है कि मैंने बनाया नहीं, मुझसे बना। यह घटना घटी। यह एक 'हैपेनिंग' है, 'डूइंग' नहीं है। यह मेरे भीतर से हुआ। मैं सिर्फ मौजूद था, मैं सिर्फ गवाह था।

तो दिव्य दृष्टि की जो घटना घटी है कृष्ण-अर्जुन के बीच, वह एक बार नही, बहुत बार घटी है। कभी बुद्ध मौद्गलान के बीच घटी है, कभी बुद्ध सारि-पुत्र के बीच घटी है, कभी महावीर गौतम के बीच घटी है। कभी जीसस और ल्यूक के बीच घटी है, कभी रामकृष्ण विवेकानन्द के बीच घटी है, हजारो लाखों दफा घटी है। वह चमत्कार नही है। इस जगत मे चमत्कार होते ही नही। अज्ञान नही समझ पाता, इसलिए चमत्कार समझ लेता है। सब चमत्कार अज्ञान से पैदा होते हैं। चमत्कार हो ही नही सकते। जो भी हो रहा है, सब सत्य है। सब तथ्य है। लेकिन, जब हम नही समझ पाते तो चमत्कार हो जाता है।

प्रश्न : क्या दिव्य दृष्टि घबराने वाली होती है जैसी अर्जुन को हुई है ?

उत्तर पूछा जाता है कि क्या दिव्य दृष्टि घबराने वाली होती है; जैसे अर्जुन घबरा गया था ? घबराने वाली हो सकती है। अगर पूर्व तैयारी न हो तो अचानक मिला हुआ सुख भी घबरा देता है। लाटरी मिल जाय तो पता चलता है। गरीबी बहुत कम लोगो की जान ले पाती है। अमीरी एकदम से टूट पड़े तो आदमी मरेगा।

मै एक कहानी निरन्तर कहता रहता हूँ कि एक आदमी को लाटरी मिल गयी। उसकी पत्नी बहुत घबरायी; क्योंकि एकदम पाच लाख रुपये मिल गये थे। वह बहुत डरी और उसने सोचा कि पति तो अभी दफ्तर गया है। वह लौटेगा तो पाँच लाख का छप्पर फाडकर गिरना, पता नही झेल पायेगा कि नही झेल पायेगा! पास मे चर्च था, वह वहा गयी और पादरी से कहा कि मैं बडी मुश्किल मे पड़ गयी हूँ। पति लौटते होगे और आते ही एक बडी खतरनाक खबर देनी है कि पाच लाख की लाटरी मिल गयी है। कही ऐसा न हो कि उनके हृदय पर आघात ज्यादा पड जाय। पादरी ने कहा, घबडाओ मत, मै आ जाता हूँ। पादरी आकर बैठ गया। उसकी पत्नी ने कहा कि करेगे क्या ? उसने कहा कि इस सुख को 'इन्सटालमेंट' मे देना पडेगा। टुकडो मे देना पडेगा। आने दो पति को। मैंने योजना बना रखी है। पति आया तो उसने कहा, तुम्हे पता है, पचास हजार रुपये तुम्हे लाटरी मे मिले है। पादरी ने सोचा कि पहले पचास हजार कहे, जब पचास हजार सह लेगा तो कहेगे, नही लाख। जब लाख भी सह जायेगा, देखेंगे नही मरता है तो

डेढ़ लाख, ऐसा बढेगे। लेकिन, उस पति ने कहा, पचास हजार मिल गये हैं ? सच कहते हैं, अगर, पचास हजार मिल गये हैं तो पच्चीस हजार तुम्हे देता हूँ। यह सुनते ही 'हार्ट फेल' हो गया बेचारे पादरी का !

अर्जुन पर जो घटना घटी वह बहुत आकस्मिक थी। सारिपुत्र या मौद्गलान पर जो घटना घटी वह आकस्मिक नही थी। उसकी बडी पूर्व तैयारियाँ थी। जो लोग ध्यान की दिशा मे यात्रा कर रहे हैं उनके लिए दिव्यता का अनुभव कभी भी घबराने वाला नही होगा। लेकिन, जिन लोगो ने ध्यान की दिशा मे कोई भी यात्रा नही की है उनके लिए दिव्यता का प्राथमिक अनुभव, बहुत घबराने वाला हो सकता है। क्योकि, इतना आकस्मिक और इतना आनन्दपूर्ण है वह कि दोनो बातो को ही सहना मुश्किल हो जाता है। इतना आकस्मिक, इतना आनन्दपूर्ण कि हृदय की धडकन रुक सकती है। ठहर सकती है। प्राण अकुला जाते है। दुख कभी इतना नही घबराता, क्योकि दुख की हमारी आदत होती है, सदा तैयारी होती है। दुख तो रोज ही हम भोगते है। सुबह से साझ तक दुख मे ही जीते है। दुख ही दुख मे पलते है और बडे होते है। दुख हमारा ढग है जीने का इसलिए बडे-से-बडा दुख आ जाय तो भी दो-चार दिन मे निपट जाते है, फिर अपनी जगह लौट आते है। लेकिन, सुख हमारे जीवन का ढग नही है। अगर छोटा-सा भी सुख आ जाय तो रात की नीद हराम हो जाती है। चैन खो जाता है। अर्जुन पर जो सुख उतरा वह साधारण सुख नही था, वह आनन्द था और एक क्षण मे उतर आया था, उसकी 'इटेसिटी' बहुत थी। वह घबरा गया और चिल्लाने लगा कि बन्द करो, वापस लो, मेरी सामर्थ्य के बाहर है यह देखना। स्वाभाविक था यह, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। बहुत मजे की बात है, लेकिन ऐसा ही है।

दुनिया मे इतने शक्तिशाली लोग तो बहुत है जो बडे-से-बडे दुख को झेल ले। इतने शक्तिशाली लोग बहुत कम है, जो बडे सुख को झेल ले। प्रार्थनाए हम सुख के लिए करते है, लेकिन अगर एकदम मे सुख मिल जाय तो हम चिल्लायेगे कि बस, बन्द करो, यह नही सहा जा सकेगा। इसे वापस लौटा लो। इसलिए, भगवान भी 'इन्स्टालमेट' मे सुख देता है। क्षण-क्षण, धीरे-धीरे, मुश्किल से, बहुत रोओ, बहुत चिल्लाओ, बहुत मागो तब कही धीरे धीरे। जब कभी आकस्मिक घट जाती है घटना, बडी तीव्रता से किसी क्षण मे, तो घबराने वाली होती है।

प्रश्न आचार्यजी, पहले प्रश्न का दूसरा हिस्सा रह गया था 'विनाशाय च दुष्कृताम्' से आप अर्थ लेते है कि दुष्टों का नाश नहीं, परिवर्तन। लेकिन, कृष्ण ने बहुत से दुष्टों का वध क्यों किया, उन्हें परिवर्तित क्यों नहीं किया ?

उत्तर : यह भी समझना चाहिए। हमे जो वध दिखायी पडता है, कृष्ण के लिए वह वध नही है। जो भी गीता को समझते है, समझ सकेगे। कृष्ण की तरफ से न कोई मारा जाता है, न कोई मारा जा सकता है। फिर, कृष्ण क्या कर रहे हैं ? हमे दिखायी पडता है कि उन्होने किसी राक्षस को, किसी पूतना को, किसी को मार डाला। इसको समझने के लिए थोडे गहरे जाना पडेगा और समझ के बाहर के कुछ सूत्र भी ख्याल मे लेने पडेंगे। अगर इसे ठीक से धर्म के पूरे विज्ञान की भाषा मे समझे, तो इसका मतलब केवल इतना हुआ कि एक विशेष राक्षस या एक विशेष दुष्ट के सस्थान को नष्ट कर दिया। एक विशेष दुष्ट के सस्कारो के जाल को, शरीर को, चित्त को पूरी तरह नष्ट कर दिया। और उसके भीतर की आत्मा को पुरानी आदतो के जाल और सस्कारो से मुक्त कर दिया। धर्म के अर्थ मे इतना ही होगा। अगर कृष्ण को ऐसा दिखायी पडता है कि यह आदमी इस शरीर के साथ रूपातरित नही हो सकता तो इसको नये शरीर की यात्रा पर भेज देना सहयोग होता है। अगर यह शरीर उतनी जडता को उपलब्ध हो गया है कि अब इसमे परिवर्तन असभव है, इसे नया शरीर मिल जाय तो आसान होगा। जैसे, एक बूढे आदमी को अगर स्कूल भेजना हो, एक सत्तर साल के आदमी को अगर एक प्रायमरी स्कूल मे भर्ती कराना हो, तो जिस दिन विज्ञान के पास सुविधा हो जायेगी, हम भी वही करेगे, जो कृष्ण ने किया। विज्ञान के पास धीरे-धीरे सुविधा होती जा रही है। तब हम इस बूढे आदमी को प्रौढ शिक्षा मे भर्ती न करेगे, बल्कि इस बूढे आदमी को नया बच्चे का शरीर देना चाहेगे। क्योकि, प्रौढ को शिक्षित करना बहुत मुश्किल है। उसकी स्लेट पर इतना लिखा जा चुका होता है कि अब उस पर नये अक्षर की रेखाएँ खीचनी बडी कठिन हो जाती है, और खिच भी जाय तो दिखायी नही पडती। उसकी आदतो का जाल इतना घना हो जाता है कि उन आदतो के जाल से छूटना मुश्किल हो जाता है। ख्याल मे भी आ जाय तो भी आदतो का जाल पीछा करता है। इसलिए, यह बडे मजे की बात है कि रावण, राम के हाथो से मरकर धन्यवाद दे पाता है। कृष्ण के हाथो से जो मरे है वे भी धन्यवाद दे पाते है। बहुत गहरी अन्तरात्मा मे उनके धन्यवाद उठता है। एक जाल टूटा। एक जाल नष्ट हुआ। और, एक नयी यात्रा क ख ग से शुरू हो सकती है, लेकिन हमे तो यही दिखायी पडेगा कि मार डाला उस आदमी को। अगर मेरी तरफ से समझे तो मै कहूँगा—नयी जिन्दगी दी उस आदमी को। उसकी यात्रा को फिर क ख ग से शुरू किया। सफेद, क्लीन स्लेटी दी, साफ सुथरी उसे स्लेट दे दी। कृष्ण के हिसाब मे, या मेरे हिसाब मे कोई मरता नही। मरने का कोई उपाय

नही। इसका मतलब यह नही है कि आप हिंसा करने निकल जाय और किसी को भी मारने लगें। हाँ, उस दिन आपको मारने की आज्ञा दी जा सकती है जिस दिन आपको यह पता चल जाय कि कोई मरता नही। लेकिन, ध्यान रहे, उस दिन मरने की भी तैयारी खुद की इतनी ही होनी चाहिए, तभी पता चला समझा जायेगा। कृष्ण वह तैयारी पूरी दिखाते है। मौत के मुँह मे वह जगह-जगह उतर जाते है। वही कसौटी है। छोटा-सा बच्चा भयकर सर्प से जूझ जाता है। छोटा-सा बच्चा है, महाशक्तिशाली राक्षसो से उलझ जाता है। वह खबर क्या दे रहा है ? वह खबर केवल इतनी दे रहा है कि मरता कोई नही। मौत एकमात्र असत्य है। 'द ओनली इलूजन', एकमात्र भ्रम है। एकमात्र माया है। जो है नही, और दिखायी पडती है। मृत्यु यदि असत्य है तो फिर हम शरीर को बदलने की जरूरत अनुभव कर सकते है।

ऐसा समझे, आपकी एक 'किडनी' खराब हो गयी है और डाक्टर उसे अलग करके दूसरी 'किडनी' लगा देता है, हमे कोई तकलीफ नही होती। लेकिन, एक अश मे आपका शरीर बदल दिया गया है। आपका हृदय खराब हो गया है और आपको दूसरा फेफडा प्लास्टिक का लगा दिया जाता है। एक अर्थ मे आपका शरीर बदल दिया गया। अभी हम पार्ट्स मे बदल पा रहे है, लेकिन आज नही कल हम पूरे शरीर को बदल पायेगे, इसमे कठिनाई नही है। अभी तक प्रकृति शरीर को बदलती थी। कृष्ण के जमाने तक मे विज्ञान इतना विकसित न था कि वह वैज्ञानिक को कहते कि इस राक्षस के शरीर को बदल दो। प्रकृति को ही सौपना पडता गर्दन काटकर, कि बदलो। भविष्य मे इस बात की सभावना हो जायेगी कि अगर हम किसी अपराधी को, किसी क्रोनिक क्रिमिनल को, किसी ऐसे आदमी को जिसको किसी तरह नही बदला जा सकता, सजा नही देगे, उसके पूरे शरीर को रूपातरित कर देंगे। ऐसा आदमी की विज्ञानशाला मे भी कत्ल हो सकेगा। तभी हम कृष्ण को समझ पायेगे, उसके पहले समझना मुश्किल है। क्योकि, अभी हमारे पास बहुत साफ तथ्य नही है। इसलिए, मैं नही मानता हूँ कि दुष्टो को नष्ट किया। मै मानता हूँ, दुष्टो को रूपातरित किया। सिर्फ रूपातरण की यात्रा पर वे भेज दिये गये। वे प्रकृति की प्रयोगशाला मे वापस लौटा दिये गये है। प्रकृति की 'वर्कशॉप' मे वापस भेज दिये गये है कि कृपा करके इनको फिर से शरीर दो, फिर से आखे दो, फिर से मन दो, ताकि इनकी फिर से नयी यात्रा शुरू हो सके।

प्रश्न तो क्या उसका इस ढंग से अपने आप शरीर बदल जाता है ?

उत्तर वह अपने आप नही बदल जाता, लेकिन कृष्ण जैसे आदमी के हाथ से मरने का मौका मिले तो उसमे बहुत फर्क पडता है। सभी को नही मिलता। बहुत पुण्य कर्मों के फल से मिलता है । साधारणत नही बदल जाता। अगर एक आदमी मरता है तो शरीर ही बदलता है, उसके भीतर का और कुछ भी नही बदलता। लेकिन, कृष्ण जैसे आदमी के हाथ से मरना बडी भारी घटना है, क्योंकि 'केटेलिटिक एजेंट' मौजूद है। उस आदमी की मौजूदगी मे यह घटना घट रही है मरने की। तुम्हारे शरीर के छूटते ही उस आदमी के व्यक्तित्व से जो सूक्ष्मतम किरणो का जाल फैलता है वह तुममे 'एब्जार्ब' हो जायेगा, उसे तुम पकड पाओगे, वह तुम पी जाओगे। जो तुम्हारा शरीर बाधा दे रहा था कृष्ण से मिलने से, वह बीच से हट जायेगा तो कृष्ण से मिलना आसान हो जायेगा। उस मिलन मे बहुत कुछ होगा। वह मिलन अर्जुन के लिए ऐसे ही हो पाता है , क्योंकि अर्जुन इस शरीर के बाहर छलाग लगा पाता है। हम प्रेम मे शरीर के बाहर छलाग लगा लेते हैं। शत्रुता मे हम शरीर के बाहर नही छलाग लगा पाते। हम शरीर के भीतर शरीर को दुर्ग की तरह बनाकर बैठ जाते हैं। प्रेम और घृणा का वही फर्क है। अगर मेरा आपसे प्रेम है तो प्रेम कि घडी मे हम एक-दूसरे के बाहर छलाग लगा जाते हैं और वहा मिल जाते हैं, जहा शरीर नही मिलते। लेकिन, अगर मेरी आपसे घृणा है तो हम दोनो अपने-अपने शरीरो को दुर्ग बनाकर, किले बनाकर भीतर बैठ जाते हैं। शरीर के बाहर बिल्कुल नही निकलते। आपका शरीर मुझे दिखायी पडता है, मेरा शरीर आपको दिखायी पडता है । हमारा मिलन ज्यादा - से - ज्यादा शरीर के तल पर हो सकता है और कही नही हो सकता। लेकिन, प्रेम मे शरीर के बाहर छलाग लग जाती है। अर्जुन को मारने की जरूरत नही पडती बदलने के लिए, क्योंकि वह प्रेम से भरा है। किसी को मारने की इसलिए जरूरत पडती है बदलने के लिए, क्योंकि वह घृणा से भरा है। उसके दुर्ग को ढहा देना होगा। तब वह शरीर के बाहर आ जायेगा। और, तब वही घडी पैदा हो जायेगी जो अर्जुन के साथ बिना मारे होती है। लेकिन, कृष्ण की अनुकम्पा दोनो पर बराबर है। इसमे कोई फर्क नही है। इसलिए पहले ही मैंने कहा कि यह समझ के थोडा बाहर हो जायेगा। इसलिए, इसे समझने की कोशिश मत करना, सुनना और भूल जाना।

प्रश्न : मार्शल मैकलूहान का सूत्र है, 'मीडियम इज मैसेज', माध्यम सदेश है। आलोचक ने 'मैसेज' की जगह 'मसाज' शब्द रख लिया और अभिनव अर्थ प्रदान किया। वैसे ही कृष्ण की मुरली को हम जीवात्मा

की परमात्मा से प्रेम-पुकार का विशिष्ट माध्यम कहें तो क्या बाधा है ?

महाभारत के समय कृष्ण का पांचजन्य बजाना, तथा बांसुरी के साथ 'सुदर्शन चक्र' क्या कोई प्रतीकात्मक अर्थ रखता है ?

रासक्रीडा के अन्तर्गत भागवत मे श्लोक है, जिसमें व्रज-सुन्दरियो के साथ खेलते कृष्ण का वर्णन 'यथा अर्भक स्व प्रतिबिम्ब विभ्रम', यह 'इमेज', यह भाव कम्पन क्या अर्थ रखता है ?

उत्तर मार्शल मैकलूहान अद्भुत विचारक है। उनका वक्तव्य 'मीडियम इज मैसेज', माध्यम ही सन्देश है, बडा कीमती है। ऐसा सदा से नही समझा जाता था। समझा ऐसा जाता रहा है कि सन्देश अलग बात है, माध्यम अलग बात है। सन्देश माध्यम के द्वारा प्रकट होता है। न तो सन्देश माध्यम है और न माध्यम ही सदेश है। द्वैतवादी दृष्टि सदा ही इस तरह के फासले तोडती है। वह 'डुवालिस्ट माइण्ड' है जो सब चीजा को दो हिस्सो मे तोड लेता है। वह कहता है, शरीर अलग है आत्मा अलग है। शरीर माध्यम है, आत्मा सन्देश है। वह कहता है, गति अलग है, गतिवान अलग है। वह कहता है, प्रकाश अलग है, प्रकाशवान अलग है। वह कहता है, जगत अलग है, परमात्मा अलग है। यह जो द्वैतवादी दृष्टि है यह अभिव्यक्त के माध्यम और अभिव्यक्ति के सन्देश मे चलती रही है। माशल मैकलूहान को मै अद्वैतवादी कहता हूँ। उसे पता है या नही, यह मै नही जानता। उसने माध्यम और सदेश के सम्बन्ध मे पहली दफा अद्वैत की घोषणा की। वह यह कह रहा है कि जो आप कहते है वह, और जिस ढग से आप कहते है जिस मार्ग से, जिस विधि से और जिस माध्यम से आप कहते है ये दो चीजे नही, एक ही चीज है। इसे समझने के लिए थोडी-सी बाते समझना जरूरी होगी।

एक मूर्तिकार एक मूर्ति बनाता है, लेकिन मूर्तिकार अलग होता है, मूर्ति अलग होती है। उसे हम देख सकते है साफ। मूर्ति बनती जाती है और मूर्तिकार बनाता जाता है। फिर, मूर्ति बन जाती है, मूर्तिकार अलग खडा हो जाता है। बडा ही गहरा अद्वैतवादी चाहिए जो कह सके कि मूर्तिकार और मूर्ति एक है। बडी कठिनाई पडेगी। हमारी आखे गवाही न देगी, हमारे हाथ स्वीकार न करेगे। हमारा मन, हमारी बुद्धि कहेगी यह क्या पागलपन की बाते कर रहे हो ? मूर्तिकार और मूर्ति अलग है। कल मूर्तिकार मर जायेगा और मूर्ति रहेगी। बहुत गहरी आँखें चाहिए जो कहे कि अब मूर्तिकार मर कैसे सकेगा जब तक मूर्ति रहेगी ? बहुत गहरी आखे चाहिए जो देख सके कि अब मूर्तिकार कितना

ही दूर चला जाय, लेकिन दूर जा कैसे सकेगा ? अब 'स्पेस' का सम्बन्ध न रहा। अब इन दोनो के बीच एक आत्मिक एकता है, एक तादात्म्य है जो अनन्त तक रहेगा, जो अब नही मिट सकता। लेकिन, मूर्तिकार के साथ यह तादात्म्य देखने मे हमे बडी कठिनाई पडेगी इसलिए इस उदाहरण को छोडे।

नृत्यकार को लें, जो कृष्ण के ज्यादा निकट पडेगा। नाच रहा है एक नर्तक। नर्तक और नृत्य दो है या एक ? यहा बहुत आसानी पडेगी। नर्तक को अलग कर ले तो नृत्य खो जाता है। नृत्य को अलग कर ले तो नर्तक नर्तक नही रह जाता, एक साधारण आदमी हो जाता है। नर्तक और नृत्य एक है। बासुरी और बासुरी-वादक एक है। गीत और गायक एक है। प्रकृति और परमात्मा एक है। कहा जाने वाला और जिस माध्यम से कहा गया हो, वह एक ह। लेकिन अगर बहुत द्वैतवादी दृष्टि हो तो यहा भी हम दो मे तोड सकते है। बिल्कुल तोड सकते है। क्योकि, नृत्य तो बाहर होने वाली प्रकट एक क्रिया है और नर्तक भीतर छिपा एक प्राण है। प्राण नही नाच रहा है, प्राण तो नाच के बीच खडा है। नाच बाहर चल रहा है। द्वैतवादी कह सकता है कि नर्तक चाहे तो अपने नृत्य को देख सकता है, साक्षी हो सकता है। तब वह दो हो जायेंगे। जो हमे दो दिखायी पडते है वह भी एक हो सकत है गहरी दृष्टि मे। जो हमे एक दिखायी पडता है उथली दृष्टि से, वह भी दो हो सकता है। बासुरी बजायी जा रही है। कहा है वह जगह जहा से बासुरी बजाने वाले ओठ और बासुरी अलग होते है ? और, अगर वे सच ही अलग है तो ओठ बासुरी बजा कैसे सकते है ? फिर तो बीच मे 'गैप' पड जायेगा। बीच मे जगह छूट जायेगी। ओठ अलग हो जायेगे, बासुरी अलग हो जायेगी, तब बजायेगे कैसे ? स्वर ओठो से पैदा होगे, बासुरी तक पहुचेगे कैसे ? नही, बासुरी और ओठ अलग-अलग दिखायी भर पडते है। अगर ठीक से समझे तो बासुरी ओठो का बढा हुआ रूप है।

ऐसा और तरह से समझे—जैसा मार्शल मैकलूहान को पसन्द पडे, वैसा समझे। एक दूरबीन है, हम आख पर लगाकर देखते है आकाश की तरफ। जो तारे हमे नही दिखायी पडते थे खुली आख से वे दूरबीन से दिखायी पडने लगेगे। दूरबीन और आख अलग है या कि ऐसा कहे कि दूरबीन आख का बढा हुआ रूप है ? विज्ञान ने आख को बढा दिया। दूरबीन को जोडकर आख बडी हो गयी। अब मै अपने हाथ से आपको छूता हूँ तो मै छूता हूँ या मेरा हाथ छूता है। दिखता तो मेरा हाथ छूता हुआ है। लेकिन, मेरे हाथ और मुझमे कहीं फासला है, कही फर्क है, कही कोई अतराल है ? कही कोई जगह है जहा मै खत्म होता हूँ,

मेरा हाथ शुरू होता है ? नहीं, मेरा हाथ मेरा 'एक्सटैंशन' है, मेरा बढाव है। और, समझ ले कि हाथ मे एक लकडी ले लूँ फिर लकडी से आपको छुऊँ तब आप क्या कहेंगे ? शायद आप नही छू रहे, लेकिन अब भी मै ही छू रहा हूँ। लकडी मेरे हाथ का और भी बढाव है। जब टेलीफोन से मैं आपसे बात कर रहा हूँ, तब भी मेरे ओठ ही बात करते है। टेलीफोन सिर्फ मेरे ओठो का वैज्ञानिक बढाव है। इसे इस भाति देखें अब कि दूरबीन से मै तारो को देख रहा हूँ। दूरबीन मेरे आखो का बढाव है, लेकिन तारे ही क्यो मेरी आखो से अलग हो। मै तारो को देख सकता हूँ, इसका मतलब यही है कि तारे और मेरी आख के बीच कोई आतरिक सबध होना चाहिए, अन्यथा देख कैसे सकूँगा ? कान से तो मैं तारो को नही देख पाता, आख से मै सगीत को नही सुन पाता ! आख और तारो के बीच कोई ताल-मेल, कोई जोड, कोई 'हारमनी' चाहिए, कोई अन्तर्सम्बन्ध चाहिए, कोई 'इन्टीमेसी' चाहिए। तो, दूरबीन ही नही है मेरा बढाव, तारे भी मेरी आख के बढाव है। या उल्टी तरफ से सोचे तो तारो का बढाव मेरी आख है। तब हमे अद्वैत दिखायी पडेगा, तब चीजें हमे एक दिखायी पडेंगी, तब चीजो मे हमे एक अन्तर-फैलाव दिखायी पडेगा। और, तब सब एक हो जायेगा। 'देन मीडियम इज द मैसेज'। तब फिर माध्यम ही सन्देश है और सन्देश ही माध्यम है।

ठीक पूछते है कि कृष्ण की यह बासुरी और ये बासुरी पर बजाये गये स्वर परमात्मा की तरफ की गयी प्रार्थनाए नही ? प्रार्थना मै न कहूगा। क्योकि कृष्ण जैसा आदमी प्रार्थना नही करता। प्रार्थना किससे करेगा ? प्रार्थना मे थोडा फासला हो जाता है, प्रार्थना मे थोडा भेद हो जाता है। प्रार्थना मे प्रार्थी अलग हो जाता है उससे, जिससे प्रार्थना करता है। प्रार्थना द्वैत है। इसे थोडा समझना अच्छा होगा।

कृष्ण बासुरी बजाते वक्त प्रार्थना मे नही, ध्यान मे है। ध्यान अद्वैत है। प्रार्थना और ध्यान शब्द मे यही फर्क है। प्रार्थना द्वैतवादी की खोज है। वह कहता है, मैं इधर हूँ, उधर परमात्मा है। निवेदन करता हूँ। ध्यान अद्वैतवादी का है। वह कहता है, वहा कोई परमात्मा नही, यहा मै नही। बीच मे दोनो के सब है। कृष्ण की बासुरी प्रार्थना का उठा हुआ गीत नही है। ध्यान से उठा हुआ स्वर है। यह किसी परमात्मा से की गयी प्रार्थना नही, यह स्वय को दिया गया धन्यवाद, स्वय के प्रति प्रकट हो गयी अनुगृहीत भावना है। यह अनुग्रह बोध है, यह अहोभाव है। क्योकि, प्रार्थना मे पैर उतने मुक्त नही हो सकते जितने अहोभाव मे होते हैं। प्रार्थना मे संकोच और डर तो बना ही रहता है। प्रार्थना मे भय और आकांक्षा बनी ही रहती

है। प्रार्थना सुनी जायगी, नहीं सुनी जायेगी, इसका संशय तो बना ही रहता है। कोई प्रार्थना सुनने वाला है या नहीं इसका संदेह तो खड़ा ही रहता है। अनुग्रह मे कोई सवाल नहीं रह जाता। कोई सुनता है या नही सुनता, यह सवाल ही नही है। कोई मानेगा या नहीं मानेगा, यह सवाल ही नही है। यह किसी के लिए 'एड्रेस्ड' नही है, ध्यान जो है 'अनएड्रेस्ड' है। सीधा अनुग्रह का भाव है जो समस्त के प्रति निवेदित है। आकाश सुने तो सुने, फूल सुने तो सुने, बादल सुने तो सुने, हवाए ले जाय तो ले जाय इसके पीछे कोई आकाक्षा नही है। 'देयर इज नो एण्ड टु इट'। यह अपने-आप मे पूरी है बात। बासुरी बज गयी है, बात खत्म हो गयी। यह निपट निवेदन है। इसीलिए, कृष्ण आनन्द से बजा सके बासुरी को। मीरा उतने आनन्द से नही नाच सकी। मीरा ध्यान मे नही है, प्रार्थना मे है। मीरा के लिए कृष्ण वहा पराये की तरह खड़े है। कितने ही निकट हो, पर पराये है। कितने ही पास हो, फिर भी दूर है। फिर भी एक नही हो गये है। इसलिए मीरा के नाचने मे वह स्वतत्रता नही है जो कृष्ण के नाचने मे है। मीरा के घुघरुओ मे परतन्त्रता का थोडा-सा स्वर है। मीरा के भजन मे दुख है, पीडा है। कृष्ण की बासुरी मे सिवाय आनन्द के और कुछ भी नही है। मीरा के भजन मे आसू भी है। 'एड्रेस्ड' है न भजन ? पता नही, आयेगा, नही आयेगा। सेज उसने तैयार कर रखी है। निवेदन भेज दिया है, प्रतीक्षा जारी है। मीरा के भजन के पीछे कोई लक्ष्य है, मीरा के पीछे कोई आकाक्षा है, अभीप्सा है। इसलिए, मीरा की आख मे आसू भी है। मीरा के मन मे प्रतीक्षा भी है। पूरी होगी कि नही होगी आकाक्षा, इसका भय भी है। इसका कम्पन भी है। कृष्ण के मन मे कोई कम्पन नहीं है। ये ध्यान से उठे हुए स्वर है। किसी परमात्मा के प्रति प्रेरित नही, बल्कि किसी परमात्मा से ही उठे हुए है। अनन्त के प्रति विस्तीर्ण, 'अनएड्रेस्ड'। कोई पता ठिकाना नही। कृष्ण किसी के लिए बासुरी नही बजा रहे है। अकारण बजा रहे हैं। या इसीलिए बजा रहे है कि अब और करने का कोई कारण नही रहा, अब बासुरी ही बजायी जा सकती है। आमतौर से हम बासुरी के साथ चैन जोडते है। हम कहते हैं फला आदमी चैन की बासुरी बजा रहा है। असल मे बासुरी का मतलब ही यह है कि कोई आदमी चैन में है। कोई आदमी 'ऐट ईज' हो गया। अब बासुरी बजाने के सिवाय बचा नही कुछ करने को। नाहक का काम है। बेकार काम है। कुछ फल तो होता नही। कुछ आता तो नही, कुछ मिलता तो नही। लेकिन कुछ मिल गया है, कुछ पा लिया है। वह फूट—फूटकर बह आता है।

प्रश्न : आचार्यजी, आप बहुधा कहा करते हैं कि "प्रेयर इज स्टेट आफ

कॉंसेसनेस" और कभी-कभी यह भी कहा करते हैं कि "प्रेयर इज स्टेट आफ ऐटीट्यूट"। तब फिर प्रेयर अद्वैत क्यों न होगा ?

उत्तर नही,ऐसा मैं कभी नही कहता। मैं ऐसा कभी नही कहता कि "प्रेयर इज ए स्टेट आफ माइंड"। मैं कहता हूँ 'प्रेयरफुलनेस इज ए स्टेट आफ माइण्ड'। 'प्रेयरफुलनेस'! प्रार्थना नही, प्रार्थनापूर्ण होना। एक आदमी सुबह प्रार्थना कर रहा है। यह और बात है। एक आदमी उठता है, बैठता है, चलता है और प्रार्थनापूर्ण है। वह जूता भी पहनता है तो प्रार्थनापूर्ण है। वह जूते को भी उठाकर रखता है तो ऐसे ही रखता है जैसे भगवान की मूर्ति को रखता हो! वह आदमी प्रार्थनापूर्ण है। वह रास्ते के किनारे एक फूल के पास खडा होता है तो भी वैसे ही खडा होता है जैसे स्वय परमात्मा उसके सामने खडा हो तो खडा होगा। यह आदमी प्रार्थनापूर्ण है, यह कभी प्रार्थना कर नही रहा है। इसने प्रार्थना कभी की नही है। प्रेयर को नही कहता हूँ मैं कभी कि वह चेतना है। प्रार्थनापूर्ण हृदय! यह बडी और बात है। प्रार्थनापूर्ण हृदय का मतलब फिर ध्यान हो जाता है, फिर कोई फर्क नही रहता। प्रार्थना तो करते ही वे है जो प्रार्थनापूर्ण नही है। प्रार्थनापूर्ण, प्रार्थना करेगा कैसे ? वह तो प्राथना मे ही जीता है। वह तो स्वय प्रार्थना होता है। प्रार्थना वह करता है जो कुछ और भी करता रहता है। दुकान भी करता है, घृणा भी करता है, क्रोध भी करता है, बाजार भी करता है, कुछ और भी करता है। प्रार्थना भी उसकी बडी कामो की लिस्ट मे एक चीज है, एक 'आइटम' है। उसको भी करता है। और, प्रार्थनापूर्ण वह है जो दुकान भी करता है तो प्रार्थना करता है! अब कबीर है, कबीर कपडा भी बुन रहा है और कोई उससे कहता है कि तुम अब क्यो कपडा बुनने में लगे हो ? तो वह कहता है, यह मेरी प्रार्थना है। वह कहता है कि मैं चलता हूँ तो वह मेरा ध्यान है, मैं उठता हूँ तो वह मेरा ध्यान है, मैं खाता हूँ तो वह मेरा ध्यान है, मैं कपडा बुनता हूँ तो वह मेरा ध्यान है। वह कहता है—साधो सहज समाधि भली। जो करते हो वही समाधि है। बाजार बेचने जा रहा है कबीर अपना कपडा, तो नाचता हुआ चला जा रहा है। बाजार मे ग्राहक उससे कपडे खरीदने आये है तो वह उनसे कहता है कि राम, ऐसी बढिया चीज मैंने पहले कभी बनायी नही। उसने प्रार्थना को इसके धागे-धागे मे बुन दिया है। कबीर उसे राम कहता है जो खरीदने आया है। अब इसके लिए न कोई खरीदार है, न कोई बेचने वाला है। इधर राम ही बनाने वाला है, राम ही पहनने वाला है। इधर राम ही बुनने वाला है, राम ही बुना जा रहा है। यह स्थिति प्रार्थनापूर्ण है। इसलिए, कबीर को कभी किसी ने

प्रार्थना करते नही देखा कि वह मसजिद मे चला गया और चिल्ला रहा हो, अजान दे रहा हो। कभी मदिर मे चला गया हो और पुकार रहा हो, हे भगवान! बल्कि, वह निरन्तर कह रहा है ए मुल्ला, तू इतने जोर से क्यो चिल्लाता है, क्या तेरा भगवान बहरा है? क्योकि, हम तो बिना चिल्लाये ही पाते हैं कि वह सुन लेता है। हम तो बिना कहे पाते हैं कि वह समझ लेता है। कबीर मजाक करते हैं बहुत, उन सबकी, जो प्रार्थना कर रहे है। यह आदमी प्रार्थनापूर्ण है इसलिए मजाक कर सकता है, अन्यथा मजाक नही कर सकता। तो प्रार्थनापूर्ण होने को तो मैं कहता हूँ, प्रार्थना के लिए नही कहता।

प्रश्न चक्र सुदर्शन और पाचजन्य के बारे मे प्रश्न था, तथा अर्भक स्व प्रतिबिम्ब विभ्रम?

उत्तर कृष्ण के व्यक्तित्व से जुडी हुई सारी बातो के बडे प्रतीक अर्थ है। होने ही चाहिए। कृष्ण जैसे व्यक्ति के साथ जो भी जुडा है वह निर्मूल्य नही हो सकता। अमूल्य हो सकता है। लेकिन, हम उसका मूल्य भी न समझ पायें तो अमूल्य को समझना तो थोडी कठिनाई की बात है। कृष्ण का पाचजन्य, उनका शख बडे प्रतीक अर्थ रखता है। आदमी की पाच इद्रियाँ है। आदमी के पाच द्वार है। आदमी अपने पाच द्वार के माध्यम से उद्घोष करता है। उसके जीवन का सारा उद्घोष पाच द्वारो से किया गया उद्घोष है—उसकी आख से, उसकी नाक से, उसके मुँह से। पाँच इद्रियाँ पाँच द्वार है जगत से हमारे सबध के। और, जब कथाकार कहते हैं कि कृष्ण ने पाचजन्य बजाया, उसका कुल मतलब इतना है कि युद्ध मे वे अपनी पाचो इद्रियो सहित समग्र रूप से मौजूद हुए हैं। इससे ज्यादा कोई मतलब नही है। युद्ध उनके लिए कोई काम न था। उनके लिए कोई बात काम न थी। कबीर जैसा कपडा बेचने बाजार चला गया था पूरा का पूरा, ऐसे ही कृष्ण पाचजन्य बजाकार उद्घोष करते है कि मै पूरा का पूरा युद्ध मे आ गया हूँ। कुछ पीछे छोड आया नही। वह पीछे छोडकर चलते ही नही। वह जहा होते है, पूरे होते है। इसलिए, पाच इद्रियो के प्रतीक पाचजन्य को वह बजाते है और वह कहते है कि मेरी समस्त इद्रियो सहित मैं यहा मौजूद हूँ। समग्र रूप से वह अकेले ही उपस्थित है वहा। और मजे की बात है कि वही वहा युद्ध करने को उपस्थित नही हैं। वह आदमी वहा लडने आया ही नही, 'नानकमीटेड' वहा खडा है। वहा युद्ध करने को आया नही; लेकिन पूरे युद्ध मे है। युद्ध करने का कोई भी निर्णय इसके मन मे नही है। युद्ध से इसे प्रयोजन भी नही है, इसे कुछ मिलने वाला भी नही है, इसका युद्ध से कोई सम्बन्ध भी नहीं है।

लेकिन, फिर भी यह आदमी, क्षण आता है युद्ध का और युद्ध मे उतर जाता है। सुदर्शन चक्र को हाथ मे ले लेता है। वह उनके चक्र का नाम है। वह नाम भी बडा प्रतीकात्मक है। असल मे जिन लोगो ने काव्य लिखे उन्होने शब्दो के साथ बडी मेहनत की है। काव्य का तो प्राण ही शब्द है।

कृष्ण का जो चक्र है उसको नाम दिया है सुदर्शन। मृत्यु का वह वाहक है और नाम सुदर्शन है। मृत्यु देखने मे सुन्दर नही होती, न सुदर्शन होती, लेकिन कृष्ण के हाथ मे मृत्यु भी सुदर्शन बन जाती है। उतना ही अर्थ है। हम एटम बम को सुदर्शन नाम नही दे सकते। लेकिन, सुदर्शन एटम जैसा ही सघातक है। अचूक है उसकी चोट, मौत निश्चित है उससे। वह छूटता है तो बस मारकर ही लौटता है। मृत्यु जहा बिल्कुल निश्चित हो वहा भी हम उस मृत्यु के शस्त्र को सुदर्शन कहेगे? लेकिन, कहा तो है। हिटलर जैसे आदमी के हाथ मे फूल भी सुदर्शन नही रह जाते। सवाल यह नही है कि क्या है आपके हाथ मे, सवाल सदा यही है कि हाथ किसका है! कृष्ण के हाथ मे मरना भी आनन्दपूर्ण हो सकता है। उस युद्ध के स्थल पर खडे हुए मित्र और विपक्षी भी इस बात को स्वीकार करते है कि उनके हाथ से मरना आनन्दपूर्ण हो सकता है, सौभाग्य का क्षण हो सकता है। इसलिए, उनके शस्त्र को सुदर्शन का नाम दिया है।

क्षण आता है युद्ध का, वह सुदर्शन हाथ मे लेकर युद्ध मे कूद पडते है। यह उनके 'स्पोंटेनियस', सहज होने का प्रतीक है। ऐसा आदमी क्षण म जीता है, 'मोमेंट टु मोमेंट'। वह पिछले क्षण से बधा हुआ नही होता है। अगर ठीक से समझे तो ऐसे आदमी की कोई 'प्रोमिस' नही होती। जैसे पस ने परिभाषा की है, आदमी की—'मैन इज ए प्रोमिसिग एनिमल'। आदमी वचन देनेवाला प्राणी है। कृष्ण ऐसा आदमी नही है। यह वचन देता नही। हा, गाधी वचन देनेवाले प्राणी मे आयेगे। कृष्ण वचन देने वाला प्राणी नही है। क्षण मे जीने वाला आदमी है। जो क्षण ले आयेगा, वैसा जियेगा। क्षण ने जैसी भी स्थिति पैदा कर दी वह अपने को रोकेगा नही। क्षण अगर युद्ध ले आया तो युद्ध मे उतर जायेगा। इसलिए, क्षण-क्षण जीने वाला आदमी ही मुक्त जी सकता है। क्योकि, जिसने वचन दिये है वह अतीत से बध जाता है। जो पीछे से बधकर जीने लगता है उसके भविष्य की स्वतत्रता रोज सकीर्ण होती चली जाती है और अतीत, भविष्य पर बोझिल होने लगता है। कृष्ण लडने मे उतर जाते है, वैसे आये नही थे लडने को। युद्ध करने का कोई ख्याल न था, कोई बात न थी। जो लोग कृष्ण पर सोचते रहे है उन्हे बडी मुश्किल की बात रही है कि वह युद्ध मे क्यो उतर

गये ? कारण सिर्फ इतना ही है कि वैसा आदमी भरोसे का आदमी नहीं है। ऐसा आदमी जैसी स्थिति होगी वैसा जियेगा। आप उससे यह नही कह सकते कि कल तो आप ऐसे थे, आज आप ऐसे है। वह कहेगा, कल अब नही है। गगा का पानी बहुत बह चुका। जब गगा जहा है वहा है। आज मै ऐसा हूँ। कल मै कैसा होऊँगा कुछ भी नही कहा जा सकता। कल आयेगा, तभी हम जानेगे। इस तरह के आदमी की भविष्यवाणी नही की जा सकती। ज्योतिषी ऐसे आदमी के साथ हार जाते है। कृष्ण की बाबत ज्योतिष अर्थहीन हो जायेगा, एकदम टूट जायेगा। क्योंकि, कृष्ण कल क्या करेगे, यह बिल्कुल नही कहा जा सकता। आज के कृष्ण से कुछ निकलता ही नही कल के कृष्ण के लिए। कल का कृष्ण कल ही पैदा होता है। आज के कृष्ण का कल के कृष्ण से कोई शृखला का सम्बन्ध नही है। इसे थोडा ठीक से देख ले।

दो तरह की जिन्दगिया होती है। एक जिन्दगी होती है, शृखलाबद्ध और एक जिन्दगी होती है एटामिक। एक जिन्दगी होती है 'सीरीज' की तरह और एक जिन्दगी होती है अणुओ की तरह। जो आदमी शृखला मे जीता है उसके कल और आज के बीच सेतु होता है। उसका आज उसके कल से निकलता है। उसकी जिन्दगी उसके मरे हुए हिस्सो से निकलती है। उसका ज्ञान उसकी स्मृति से निकलता है। उसका आज का होना उसके कल की राख से निकलता है। उसकी जिन्दगी का फूल उसकी कब्र पर खिलता है। लेकिन, एक दूसरा जीवन है। वह जीवन शृखला का जीवन नही है, आणविक जीवन है। उसमे आज का होना कल से नही निकलता, आज से ही निकलता है। आज का जो सारा अस्तित्व है इससे ही निसृत होता है। आनेवाले क्षण मे, फिर उस क्षण से निकलता है, फिर आनेवाले क्षण मे उस क्षण से निकलता है। शृखला ऐसे जीवन मे भी होती है लेकिन सेतुबद्ध नही होती। ऐसा आदमी हर क्षण को जीता है और हर क्षण को मर जाता है। आज जीता है, आज मर जाता है। आज रात सोता है, आज के लिए मर जाता है, कल सुबह फिर जगता है, फिर जीता है। 'डाइग टु एवरी मोमेट'। तभी वह प्रतिपल नया होकर जन्म लेता है और कभी पुराना नही पडता है। वैसा आदमी सदा जवान है, सदा युवा है, सदा ताजा है। और, उसका जो होना निकलता है वह समग्र अस्तित्व से निकलता है। इसलिए, उसका होना भागवत है। मै जो कहूँ भगवान का अर्थ, वह यही है। भगवान का जीवन 'एटामिक' है, आणविक है। अस्तित्व से निकलता है, सत से निकलता है। रोज-रोज पल-पल निकलता है। उसका न कोई अतीत है, न कोई भविष्य है, सिर्फ वर्तमान है।

कृष्ण को अगर भगवान कहा जा सका, भागवत चेतना कहा जा सका, 'डिवाइन कांसिसनेस' कहा जा सका— इसका और कोई अर्थ नही है। उसका यह मतलब नही कि कही कोई भगवान बैठा है और इस आदमी मे उतर आया है। उसका इतना ही मतलब है कि इस आदमी का होना समग्र से ही निकलता चला जाता है। इसलिए, इस आदमी मे हम अगर 'कन्सिस्टेसी' खोजने जाएँ तो थोडी दिक्कत मे पडेगे। ऐसे आदमी मे अगर हम सगति खोजने जाएँ, श्रृखला खोजने जाएँ, तो हमे बहुत-सी चीजो को 'इगनोर' करना पडेगा, या बहुत-सी चीजो को जबरदस्ती समझाना पडेगा, या बहुत-सी चीजो का किसी तरह ताल-मेल बिठाना पडेगा। या कहना पडेगा— लीला है। जब हमारी समझ मे नही पडता तो कहते है, लीला है। लेकिन, कठिनाई और अडचन जो आ रही है वह 'सीरियल एक्जिस्टेन्स और स्पोटेनीयस एक्जिस्टेन्स'– श्रृखलाबद्ध अस्तित्व और सहज अस्तित्व, इनको न समझने से आती है।

प्रश्न राम का जीवन तो वाल्मीकि ने राम के होने के पहले लिख दिया था ?

उत्तर लिखा जा सकता है। राम का जीवन लिखा जा सकता है। वह मर्यादा के आदमी थे। उसका मतलब कुल इतना है कि राम आदमी ऐसे है कि उनका जीवन पहले से लिखा जा सकता है। इस घटना मे बडा मजाक छिपा हुआ है, और इस मुल्क ने बडे गहरे मजाक किये है जो हम पकड नही पाते। इस घटना मे यह छिपा है कि राम का इतना बधा हुआ जीवन है कि राम के जीने के पहले ही वाल्मीकि कवि लिख सकता है। इतना 'सीरियल एक्जिस्टेन्स'। राम पैदा न हो, उसके पहले कहा जा सकता है कि यह आदमी पैदा होकर क्या करेगा ? ऐसा नही है कि वाल्मीकि ने पहले लिख दिया। लिखा तो पीछे ही गया, लेकिन राम का जीवन 'सीरियल' होने की वजह से यह मजाक प्रचलित हो गया कि राम की भी कोई जिन्दगी है, यह तो एक चरित्र है, जैसे कि एक फिल्म लिखी जाती है। पहले लिख दी जाती है, फिर खेली जाती है। राम का मामला सब सुनिश्चित है, 'सर्टेन' है। उसकी बाबत कहा जा सकता है कि सीता चोरी जायेगी तो राम क्या करेगे ? यह भी कहा जा सकता है कि सीता को लका से लायेगे तो अग्नि-परीक्षा जरूर लेगे। यह सब कहा जा सकता है। और, इसके बावजूद भी कि अग्नि-परीक्षा हो जाय, एक धोबी कह देगा कि हमे सदेह है, तो निकाल बाहर करेगे। यह सब मामला बिल्कुल पक्का है। कृष्ण के मामले मे पक्का कुछ भी नही कहा जा सकता।

प्रश्न : आचार्यजी, आप मार्टिन बूबर की भाषा में कृष्ण को इन्टरप्रेट करते हैं ?

उत्तर नहीं, मार्टिन बूवर घूम-फिर कर द्वैतवादी है। मार्टिन बूवर अद्वैतवादी नहीं है। असल मे मार्टिन बूवर की जो जड़ें है वह हिब्रू और ज्यू विचार मे है। मार्टिन बूवर जो भी कहता है वह ज्यादा-से-ज्यादा मैं और तू के बीच गहरी-से-गहरी आन्तरिकता पैदा हो, सम्बन्ध पैदा हो, इसके लिए आतुर है। इतना बहाव हो कि मै, तू तक बह जाय, तू मै तक आ जाय। लेकिन, मैं और तू को मिटाने की तैयारी मार्टिन बूवर की नहीं है। नहीं, बिल्कुल नहीं है। असल मे मार्टिन बूवर जिस परम्परा से आता है, उस परम्परा मे ही द्वैत को मिटाने की तैयारी नहीं है। जीसस को यहूदियो ने सूली इस वजह से दी कि जीसस ने ऐसे वक्तव्य दे दिये जो अद्वैतवादी थे। जीसस ने कह दिया— 'आई एण्ड माई फादर आर वन'। यह खतरनाक हो गया। यहूदी विचार इसको नहीं समझ सका। यहूदियो ने कहा, यह बरदाश्त के बाहर है। तुम कितना ही कुछ कहो, परमात्मा ऊपर है। तुम चरणो मे हो। तुम यह घोषणा नहीं कर सकते कि तुम परमात्मा हो। मुसलमानो ने सूफियो को सताया और सूलिया दी। इसका कारण वही यहूदी विचार की परम्परा है। जब मसूर ने कहा, 'अनल्हक'— मै ही ईश्वर हूँ, तो बरदाश्त के बाहर हो गया। कहा कि तुम् कितने ही ऊपर उठो, लेकिन तुम ईश्वर नहीं हो सकते। मुहम्मद को भी ईश्वर होने का दर्जा नहीं दे सका मुसलमान। मुहम्मद को भी कहा कि सदेशवाहक है, पैगम्बर है। अवतार नहीं है। क्योकि, ईश्वर अलग है और हम अलग है। हम उसके चरणो मे हो सकते है। ऊँची से ऊँची जो ऊँचाई है, उसके चरणो मे है।

प्रश्न सुपरमैन हो गया न वह ? फिर मै ही ब्रह्म हो जाता हूँ का क्या तात्पर्य ?

उत्तर सुपरमैन कहना मुश्किल है। जब हम कहते है कि मै ही ब्रह्म हो जाता हूँ तो मै बचता ही नहीं। आदमी बचता ही नहीं। जब 'मै' ब्रह्म हो जाता है तो ब्रह्म ही बचता है। आदमी नहीं बचता। उसके बाद कुछ बचता नहीं। बस, अतिक्रमण है। तो, राम की बाबत सभव है। मजाक गहरा है। लेकिन, हम बहुत गभीर लोग है। जो लोग राम वगैरह पर विचार करते है, वह भारी गभीर लोग है। वह मजाक को नहीं समझ पाते। वह बेचारे गभीरता से व्याख्याएँ किये चले जाते है। मजाक यह है कि राम तुम आदमी ऐसे हो कि वाल्मीकि कवि तुम्हारी कथा पहले ही लिख दे सकता है। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं, इससे ज्यादा कुछ दिक्कत तुममे नहीं है।

प्रश्न : शृंखलाबद्ध जीवन मे और सहज जीवन मे स्मृति की क्या स्थिति होगी ?

उत्तर शृखलाबद्ध जीवन मे आपका होना आपकी स्मृति से निकलेगा। सहज जीवन मे आपका होना आपकी स्मृति का उपयोग नही करेगा। इतना फर्क होगा। आप प्रतिपल नये होगे सहज जीवन मे। अगर आप चाहेगे तो अपनी स्मृति का उपयोग करेगे। स्मृति आपके चित्त के सग्रह मे पडी रहेगी, मौजूद रहेगी, मिट नही जायेगी, बनी रहेगी, लेकिन वह ऐसे ही होगी जैसे आपके घर मे, नीचे के तल-घर मे बहुत-सा सामान भरा है, जब जरूरत होती है, आप निकाल लेते है। इसलिए बुद्ध ने उसको नाम दिया है—आगार, कहा है—आवास। स्मृति आगार। वह एक सग्रह है, 'स्टोर हाउस आफ कॉसेमनेस'। चेतना का एक सग्रह है जो पडा है एक तरफ। 'स्पाटेनियस एक्जिस्टेन्स' को भी जरूरत पडेगी स्मृति की। आपको अपने घर वापस लौटना होगा तो आपको अपने घर की स्मृति की जरूरत पडेगी। आप उसका उपयोग करेगे। वह दूसरी बात है। अभी जो मै कह रहा हूँ वह यह कह रहा हूँ कि सहज जीवन वाले व्यक्ति की स्मृति नष्ट नही हो जायगी। स्मृति पूरी ताजा, पूरे जीवन मौजूद रहेगी। लेकिन, सहज जीवन वाली चेतना प्रतिपल नयी होकर उसका उपयोग करेगी, उसकी मालिक होगी। शृखलाबद्ध जीवन की चेतना मे नया व्यक्ति होगा ही नही, पिछली स्मृतियाँ ही नये व्यक्ति को जन्म देती रहेगी। मालिक हो जायेगी स्मृतियाँ और व्यक्ति गुलाम हो जायेगा।

प्रश्न कृष्ण-अर्जुन के आपस के जो 'रिलेशस' है वहा कृष्ण क्या हर वक्त स्मृति का उपयोग नहीं करते है ?

उत्तर जीवन तो हर वक्त स्पाटेनियस है। स्मृति का उपयोग वह करते है। वही तो मै कह रहा हूँ। स्मृति का उपयोग करने को वह मालिक है और आप अपनी स्मृति के उपयोग करने मे मालिक नही है, गुलाम है। स्मृति ही आपका उपयोग कर रही है। आप नही कर रहे है उपयोग। एक आदमी आपके पास बैठा है। आप उससे पूछते है, आप किस जाति के है। वह कहता है मै मुसलमान हूँ। मुसलमान की बाबत आपकी एक स्मृति है। आप इस आदमी पर लागू कर देगे। इस मुसलमान से उसका कोई लेना-देना नही है। आपके गाँव मे कोई मुसलमान गुण्डा होगा, उसने मदिर मे आग लगा दी होगी। इस विचार से उसका कोई सम्बन्ध नही, पर अब आप दूर सरक के बैठ गये कि मुसलमान है। अब आप स्मृति के गुलाम हुए। हिन्दुस्तान के हिन्दू किसी

मुसलमान को मार डालेगे, पाकिस्तान मे किसी हिन्दू से बदला ले लिया जायेगा। क्या पागलपन है? ये स्मृति काम कर रही है। बस, स्मृति से आप जी रहे है। किसी और को मार रहे है किसी और के लिए। दो मुसलमानो के बीच क्या सम्बन्ध है, दो हिन्दुओ के बीच क्या सम्बन्ध है? लेकिन नही, मुसलमान की बाबत अपनी स्मृति हर मुसलमान पर आप लागू कर लेगे। बडी गलत बात कर रहे हैं। स्मृति आपका उपयोग कर रही है, आप स्मृति का उपयोग नही कर पा रहे है। अगर आप कर रहे होते तो आप कहते—ठीक है, यह आदमी एक्स मुसलमान है, वह वाई मुसलमान था, इससे उसका कोई मतलब नही। ठीक है, इतना हम समझे कि तुम उसी धर्म को मानते हो जिसको वह आदमी मानता था। लेकिन, इससे क्या फर्क पडता है। इससे आप सरकेगे नही दूर, इससे आप कोई निर्णय नही लेगे। इससे इस आदमी की बाबत आप कोई धारणा तय नही करेंगे। इस आदमी को देखेंगे, समझेंगे। उस समझ से ही आप जियेंगे। सहज जीवन स्मृति का उपयोग है। शृंखलाबद्ध जीवन स्मृति की दासता है।

प्रश्न **आपने कहा कि कृष्ण के हाथो जो मरता है वह पुण्य कर्म का फल है। और, यह बात आप जब कहते है तो मन मे एक आनन्द-दायक विधा होती है। एक दूसरा प्रश्न करूँ, जवाब दें न दें। जो यह नाटक आप कर रहे है, यह अकारण ही है?**

उत्तर बिल्कुल अकारण। यह नाटक हो रहा है। और पुण्य कर्म का फल है ऐसा जब कहता हूँ तो मेरा मतलब सिर्फ इतना है कि इस जीवन मे जो भी घटित होता है, इस प्रकट जगत मे जो भी घटित होता है, वह अकारण नही है। कृष्ण से अगर मिलना हो जाता है तो इस घटना के जगत मे मिलना भी आकस्मिक और 'एक्सीडेण्टल' नही। इस जगत मे कुछ भी आकस्मिक और 'एक्सीडेण्टल' नही तो कृष्ण के हाथ से मरना तो हो ही नही सकता आकस्मिक। इस जगत मे आकस्मिक कुछ भी नही है। किसी से हम मिले हैं, मिल रहे है। किसी से हम लडे है, लड रहे है, किसी से हम प्रेम मे है, प्रेम कर रहे है। किसी के हम मित्र है, किसी के हम शत्रु है। यह सब हमारे पूरे अनन्त होने से निकला है। इस होने मे आकस्मिक नही है। प्रकट जगत मे कुछ भी आकस्मिक नही है और जब प्रकट जगत मे कुछ अकारण प्रकट होता है तब हमे चमत्कार मालूम होने लगता है। क्योकि वह अप्रकट जगत की खबर लाता है। कृष्ण का होना बिल्कुल अकारण है। अर्जुन से कृष्ण का सम्बन्ध अकारण नही है। अर्जुन से कृष्ण की तरफ तो बिल्कुल ही अकारण नही। इसे थोडा समझने मे कठिनाई पडेगी।

कृष्ण जैसे व्यक्ति के साथ हमारे सम्बन्ध 'वन वे ट्राफिक' के हो जाते है। हम उसे प्रेम करते हैं, वह हमे प्रेम करता है, ऐसा नही कहा जा सकता। वह प्रेमपूर्ण है, बस इतना कहा जा सकता है। हम उसके पास जाते है, उसका प्रेम हमे मिलता है, इसलिए यह हो सकता है कि हम समझते हो कि वह हमे प्रेम करता है। लेकिन, वह सिर्फ प्रेमपूर्ण है। हम उसके पास जाते है, प्रेम हम पर झरता है। दूसरी तरफ प्रेम है। हमारी तरफ से आता है। हमको आता हुआ मालूम पडता है, वह हमारी समझ है। कृष्ण की तरफ से किसी का मारा जाना बिल्कुल अकारण है। लेकिन, जो मारा गया है वह अकारण नही है। उसकी तरफ से कारण है। वह अपनी जिन्दगी की लबी शृंखलाबद्ध व्यवस्था मे जी रहा है। कोई सहज जीवन नही है उसका। असल मे राक्षस का जीवन सहज कैसे हो सकता है। या जिनका जीवन सहज नही उनका जीवन राक्षस से अन्यथा कैसे हो सकता है? उसका जीवन सहज नही है, शृंखलाबद्ध है। वह तो अतीत से जी रहा है। इसलिए, वह अगर कृष्ण के हाथ से मरता है तो यह कडी उसके अतीत से ही निकलती है। कृष्ण के लिए अकारण है। वह नही मरता तो कृष्ण उसको ढूँढते हुए नही फिरते। वह आ गया है सामने, बात और है। कृष्ण अगर किसी को प्रेम कर रहे है और वह नही मिलता तो वह ढूढते नही फिरते। सामने आ गया है, बात और है। अगर कृष्ण को कोई भी न मिले, वह अकेले जगल मे बैठे हो तो भी प्रेम करते रहेगे उस जगल के शून्य को, उस निपट एकात को। उस निर्जन को उनका प्रेम मिलता रहेगा। इससे कोई फर्क नही पडेगा।

प्रश्न : आप जो कुछ कृष्ण के बारे मे कह रहे है, उनके गुणो का वर्णन कर रहे है तो ऐसा लगता है कि उनकी भक्ति के प्रवाह मे हम बह जायेंगे। ऐसा क्या सभव नहीं है कि उनमे कुछ दोष भी हो। क्या यह जरूरी है कि उनके हर कर्म को 'जस्टीफाई' ही करते चले— चाहे वह रास लीला हो, चाहे वह वस्त्रहरण हो, चाहे अश्वत्थामा मारा गया हो, या झूठ बुलवाना हो युधिष्ठिर जैसे आदमी से? हम इस धारा ही मे यदि सोचते चले तो मुझे लगता है कि बहुत वैज्ञानिक हमारी यह 'अप्रोच' न हो पायेगी।

उत्तर यह बात बहुत ठीक है, यह बात बिल्कुल ठीक है कि हम कृष्ण मे थोडे दोष क्यो न देखे? लेकिन, देखने की कोशिश वैज्ञानिक होगी, देखने की चेष्टा वैज्ञानिक होगी। नही, हम दोष न देखे ऐसा अगर तय करके चले तो वह

वैज्ञानिक न होगा। और, हम दोष देखें ही ऐसा सोच कर चले, वह भी वैज्ञानिक न होगा। वैज्ञानिक तो इतना ही होगा कि हम कृष्ण को देखें और कृष्ण जैसे दिखायी पडें वैसा देखें। मुझे जैसे दिखायी पड रहे है वैसा मैं कह रहा हूँ। आप भी वैसा ही देखें, ऐसा आग्रह करूँ तो अवैज्ञानिक हो जायेगा। आपको वैसे दिखायी पड जाएँ ठीक है, न दिखायी पड जाएँ, ठीक है। आपको दोष दिखायी पडे, बराबर देखें, मेरी बिल्कुल न माने। मुझे जैसे दिखायी पड रहे हैं मैं वैसे देख सकता हूँ। अन्यथा देखने की कोशिश करूँ तो अवैज्ञानिक हो जायेगा। वह भी फिर कोशिश हो जायेगी।

दूसरी बात भी सोचने जैसी है— वैज्ञानिक 'अप्रोच'। थोडा सोचने जैसा है कि क्या जगत मे सभी चीजे ऐसी है जिन पर वैज्ञानिक 'अप्रोच' लागू हो सके ? क्या कुछ चीजे ऐसी है जिन पर वैज्ञानिक अप्रोच लागू करना अवैज्ञानिक हो ? कुछ चीजे ऐसी है। जैसे प्रेम पर हम वैज्ञानिक ढग से सोच ही नही सकते। उपाय ही नही है। यानी प्रेम का होना ही अवैज्ञानिक है। अगर हम वैज्ञानिक ढग से सोचे तो हमे इन्कार ही करना पडेगा कि प्रेम है ही नही, और कोई अन्तर नही होगा। अब इसमे कठिनाई होगी। इसे हम ऐसा समझें

जैसा मैने अभी कहा था, आँख देखती है, कान सुनते है। अगर हम आँख के ढग से कान की सुनी हुई चीजो को सोचे तो मुश्किल हो जायेगा। आँख तो कह देगी कि कान देखते ही नही। स्वभावत, और आँख सुन सकती नही, तो आँख यह तो मानेगी कैसे कि कान सुनते है ? आँख दो बाते तय करेगी—पहली बात तो यह तय करेगी कि कान देखते नही जो ठीक है उसका तय करना। दूसरी बात वह यह तय करेगी कि कान सुनते नही, क्योकि आँख स्वय सुन सकती नही, परन्तु गलत होगा उसका यह तय करना। वैज्ञानिक प्रक्रिया ऐसी है कि उसकी पकड मे 'मैटर' के अतिरिक्त और कुछ कभी आता नही, पदार्थ के अतिरिक्त और कभी कुछ आता नही। आँख की पकड मे प्रकाश के अतिरिक्त और कुछ आता नही। कान की पकड मे ध्वनि के अतिरिक्त और कुछ आता नही। फिर, एक ही उपाय रह जाता है कि वैज्ञानिक कह दे कि पदार्थ के अतिरिक्त कुछ भी नही है। अब तो वैज्ञानिक और मुसीबत मे पड गया है, क्योकि पदार्थ को खोजते-खोजते वह उस जगह पहुच गया जहा अब पदार्थ भी पकड मे नही आता। इस पिछले पन्द्रह बीस वर्षों मे वैज्ञानिको को स्वीकृति देनी पडी है कि कुछ ऐसा भी है जो हमारी पकड मे नही आता। मगर है, क्योकि अगर उसको इन्कार करे तो जो पकड मे आता है, उसकी बुनियाद खिसक जाती है। अगर वह इन्कार

कर दे कि इलेक्ट्रान नही है, क्योकि वे हमारी पकड मे नही आते तो फिर एटम छूट जाता है पकड से। क्योकि वह पकड मे आता है, लेकिन वह उन्ही पर खडा है जो पकड मे नही आते। इसलिए, अब विज्ञान को थोडा सिर झुका कर स्वीकृति देनी पडी है कि कुछ है जो हमारी पकड मे नही आता है, लेकिन है। फिर भी, विज्ञान एकदम स्वीकृति नही देगा। वह यह कहता है कि आज नही कल, वह एक दिन हमारी पकड मे आ जायेगा। हम कोशिश करते रहेगे पकडने की। हो सकता है कि किसी दिन इलेक्ट्रान पकड मे आ जाय, लेकिन लगता नही है कि किसी दिन प्रेम भी किसी प्रयोगशाला की पकड मे आ जाय। अगर हम प्रेम को पकडने गये तो शायद हो सकता है, फेफडा पकड मे आ जाय, हृदय पकड मे नही आयेगा। इसलिए, वैज्ञानिक मानने को तैयार नही कि हृदय जैसी कोई चीज आपके भीतर है। वह कहता है, फुप्फुस है, फेफडा है, हृदय की बात मत करो। यह कविता है। लेकिन, हम कैसे मान ले कि हृदय नही है। क्योकि, हमारे अपने निजी अनुभवो मे तो हृदय आता है। एक आदमी मर जाता है प्रेम के लिए। फेफडा जिलाये रखता है और आदमी मर जाता है उस हृदय के लिए जो है ही नही। या तो हम कह दे कि यह मरना झूठ है। मगर, यह आदमी मरा। हमने मजनू को देखा, जो हृदय के पीछे दीवाना है। इसको इन्कार कैसे करियेगा, मजनू है तो। यह लैला को सोचता है, काव्य करता है, गीत गाता है, भीतर जीता है, लेकिन कही जीता तो है। और, फेफडे की जाँच करने से कही लैला पकड मे आती नही, लेकिन इसके हृदय मे कही चलती चली आती है।

वैज्ञानिक ढग की पकड से हम चलेंगे तो कृष्ण एक महापुरुष रह जायेगे जिनमे दोष भी होगे, अच्छाइया भी होगी, बुराइयां भी होगी। लेकिन, ध्यान रहे, वह कृष्ण न रह जायेगे। मै जिस कृष्ण की तलाश की बात करता हूँ वह किसी एक महापुरुष की बात नही कर रहा हूँ। मै एक 'फेनामिना', एक घटना की बात कर रहा हूँ। यह घटना वैज्ञानिक पकड से समझ मे नही आयेगी और इतना तो आप समझ ही सकते है कि मै आदमी विज्ञानविरोधी नही हूँ। यानी मै विज्ञान को वहा तक खीचता हूँ जहा तक वह कई बार खिचता भी नही। जहा वह बिल्कुल सास तोडकर दम तोडकर गिर जाता है तभी छोडता हूँ। मुझ पर अगर कोई इल्जाम हो सकता है तो वह अति वैज्ञानिकता का हो सकता है, कम वैज्ञानिकता का नही हो सकता। मै खीचता तो बहुत हूँ, लेकिन मैं क्या करूँ, एक जगह आ जाती है जहा विज्ञान दम तोड देता है। दो उपाय हैं, या तो मैं भी वही खडा रह जाऊँ, लेकिन मुझे आगे भी स्पेस दिखायी पडती है।

प्रश्न : तो क्या कभी मन और हृदय, विचार और भाव एक नहीं हो जाते ?

उत्तर हो जाते है। बहुत गहरे मे तो एक होते ही है। बहुत ऊपर ही अलग-अलग होते हैं। जैसे, वृक्ष की शाखाएँ ऊपर अलग-अलग होती है और जड मे एक हो जाती हैं। ऐसे ही विचार भी हमारी एक शाखा है हमारे होने की, भाव भी हमारी एक शाखा है, हमारे होने की। दोनो ऊपर-ही-ऊपर अलग होते हैं, बहुत गहरे मे तो एक होते हैं। जिस दिन हम यह जान लेते है कि विचार और भाव एक है उस दिन विज्ञान और धर्म दो नही रह जाते। उस दिन विज्ञान की एक सीमा हो जाती है और एक अतिक्रमण का जगत भी हो जाता है, जहा धर्म शुरू होता है। कृष्ण धर्मपुरुष है और मैं उनकी धर्मपुरुष की तरह ही बात कर रहा हूँ। और, जैसे वे मुझे दिखायी पडते है, वैसे मैं बात करता हूँ। उसमे आप उन्हे वैसा मानकर चलेगे ऐसा मेरा आग्रह जरा भी नही है। मुझे जैसे दिखायी पडते है उसमे से अगर थोडा-सा भी आपको दिखायी पडा तो वह आपको बदलने वाला सिद्ध हो सकता है।





पर्व : आठ

रासबिहारी और कहलाये ब्रह्मचारी

कुब्जा और कृष्ण का समागम

राम-हनुमान कृष्ण-मीरा की निजता

गो भक्ति गो माता गो वध





८

प्रश्न : रहस्य क्या है कि रासबिहारी होते हुए भी कृष्ण ब्रह्मचारी कहलाये—इसका मर्म क्या है? आज के आधुनिक समाज में रासलीला का क्या महत्व होगा? कृपया इस पर प्रकाश डालें।

उत्तर : रास को समझने के लिए पहले यह समझना है कि सारा जीवन ही रास है। जैसा मैंने कहा सारा जीवन, विरोधी शक्तियों का सम्मिलन है और जीवन का सारा आनन्द और रहस्य विरोधी के मिलन में छिपा है। पहले तो रास का जो 'मैटाफिजिकल', जो जागतिक अर्थ है वह समझ लेना उचित है।

फिर कृष्ण के जीवन मे उसकी जो अनुछाया है, उसे समझना चाहिए।

चारो तरफ आँखें उठाये तो रास के अतिरिक्त और क्या हो रहा है? आकाश मे दौडते हुए बादल हो या सागर की तरफ दौडती हुई सरिताएँ हो। बीज फूलो की यात्रा कर रहे हो, या भँवरे गीत गाते हो, पक्षी चहचहाते हो, या मनुष्य प्रेम करता हो, या ऋण और धन विद्युत आपस मे आकर्षित होती हो, या स्त्री और पुरुष की निरन्तर लीला और प्रेम की कथा चलती हो—इस पूरे फैले हुए विराट को अगर हम देखे तो रास के अतिरिक्त और कुछ भी नही हो रहा है। रास बहुत 'काजमिक' अर्थ रखता है। पहला तो यही कि इस जगत के विनियोग मे, इसके निर्माण मे, इसके सृजन मे जो मूल आधार है वह विरोधी सत्यो के मिलन का आधार है।

एक मकान हम बनाते हैं। एक द्वार हम बनाते है, तो द्वार मे उल्टी ईंटें लगा कर आर्च बन जाता है। एक दूसरे के खिलाफ लगी ईंटे पूरे भवन को सम्हाल लेती है। यदि एक सी ईंटे लगा दे तो द्वार नही बनेगा और भवन उठेगा ही नही। शक्ति जब दो हिस्सो मे विभाजित हो जाती है तो खेल शुरू हो जाता है। शक्ति का दो हिस्सो मे विभाजित हो जाना ही जीवन की समस्त पर्तों पर, समस्त पहलुओ पर खेल की शुरुआत है। शक्ति एक हो जाती है, खेल बन्द हो जाता है। शक्ति एक हो जाती है तो प्रलय हो जाता है। शक्ति दो मे बट जाती है तो सृजन हो जाता है।

रास का अर्थ—सृष्टि की जो धारा है, उस धारा का ही गहरे-से-गहरा सूचक है। जीवन दो विरोधियो के बीच खेल है। ये विरोधी लड भी सकते है, तब युद्ध हो जाता है। ये दो विरोधी मिल भी सकते है, तब प्रेम हो जाता है। लेकिन, लडना हो कि मिलना हो, दो की अनिवार्यता है। सृजन दो के बिना मुश्किल है। कृष्ण के रास का क्या अर्थ होगा इस सन्दर्भ मे? हमारी स्थूल आँखे जो देख सकती है, उतना ही दिखायी पडेगा। कृष्ण का गोपियो के साथ नाचना साधारण नृत्य नही है। कृष्ण का गोपियो के साथ नाचना उस विराट रास का छोटा-सा नाटक है। उस विराट का एक आणविक प्रतिबिम्ब है। वह जो समस्त मे चल रहा है नृत्य, उसकी एक बहुत छोटी-सी झलक है। इस झलक के कारण ही यह सम्भव हो पाया कि उस रास का कोई कामुक अर्थ नही रह गया। ऐसा नही है कि कामुक अर्थ के लिए कोई निषेध है, लेकिन बहुत पीछे छूट गयी वह बात। कृष्ण, कृष्ण की तरह वहा नही नाचते, कृष्ण वहा पुरुष तत्व की तरह ही नाचते है। गोपिकाएँ स्त्रियो की तरह वहा नही नाचती,

गहरे मे वह प्रकृति ही हो जाती है। प्रकृति और पुरुष का नृत्य है। जिन लोगो ने उसे कामुक अर्थ मे ही समझा है उन्होने नही समझा। वह नही समझ पायेगे। वहा व्यक्तियो से कोई लेना-देना नही, 'इण्डीवीजुअल्स' का कोई मतलब नही। इसीलिए यह भी सम्भव हो पाया कि एक कृष्ण बहुत गोपियो के साथ नाच सके। अन्यथा एक व्यक्ति बहुत स्त्रियो के साथ नही नाच सकता है। एक व्यक्ति बहुत स्त्रियो के साथ, एक साथ प्रेम का खेल नही खेल सकता है। वहा प्रत्येक गोपी को ऐसा दिखायी पड सका कि कृष्ण उसके साथ नाच रहा है। प्रत्येक गोपी को अपना कृष्ण मिल सका, और कृष्ण जैसे हजार मे बट गये!

निश्चित ही, इसे हम व्यक्तिवाची मानेगे तो कठिनाई मे पडेगे। विराट प्रकृति और विराट पुरुष के सम्मिलन का वह नृत्य है। नृत्य को ही क्यो चुना होगा इस अभिव्यक्ति के लिए? जैसा मैने सुबह कहा, नृत्य निकटतम है अद्वैत के। नृत्य निकटतम है उत्सव के। नृत्य निकटतम है रहस्य के।

इसे यो भी समझने का प्रयत्न करे कि मनुष्य की पहली भाषा नृत्य है। क्योकि, मनुष्य की पहली भाषा 'जेस्चर' है। आदमी जब नही बोला था तब भी हाथ-पैर से बोला था। आज भी गूगा नही बोल सकता तो हाथ-पैर से बोलता है। मुद्रा से बोलता है। भाषा तो बहुत बाद मे विकसित होती है। तितलियाँ भाषा नही जानती, लेकिन नृत्य जानती है। पक्षी भाषा नही जानते, लेकिन नृत्य जानते है। इशारा पहचानते है। सारी प्रकृति पहचानती है। इसलिए, रास के लिए नृत्य ही क्यो केन्द्र मे आ गया, उसका भी कारण है। 'जेस्चर' की भाषा, इशारे की भाषा गहनतम है, जो मनुष्य के चित्त के बहुत गहरे हिस्सो को स्पर्श करती है। जहा शब्द नही पहुँचते वहा नृत्य पहुच जाता है। जहा व्याकरण नही पहुचती वहा घुँघरू की आवाज पहुँच जाती है। जहा कुछ समझ मे नही आता वहा नृत्य कुछ समझा पाता है। इसलिए, दुनिया के किसी कोने मे नर्तक चला जाय, समझा जा सकेगा। आवश्यक नही है कि कोई भाषा उसे समझनी जरूरी हो। यह भी आवश्यक नही है कि किसी सभ्यता और सस्कृति की विशेष आवश्यकता हो उसे समझने के लिए। मनुष्य के 'कलेक्टिव अनकासस' मे, सामूहिक अचेतन मे नृत्य की भाषा का ख्याल है। यह जो नृत्य चल रहा है चाद के नीचे, आकाश के नीचे इस नृत्य को मै साधारण नृत्य नही कहता हूँ इसलिए कि यह किसी के मनोरजन के लिए नही हो रहा है, किसी को दिखाने के लिए नही हो रहा। कहना चाहिए कि यह एक अर्थ मे 'ओव्हर फ्लोइग' है। इतना आनन्द भीतर भरा है कि वह सब तरफ बह रहा है। इस आनन्द को

बहने के लिए अगर दोनो विरोधी शक्तियाँ एक साथ मौजूद हो तो सुविधा हो जाती है। पुरुष बह नही पाता अगर स्त्री मौजूद न हो। वह कुठित और बन्द हो जाता है। वह सरिता नही बन पाता, सरोवर बन जाता है। स्त्री नही बह पाती अगर पुरुष उपलब्ध न हो। दोनो की मौजूदगी तत्काल उनके भीतर जो छिपी हुई शक्तियाँ है उनका बहाव बन जाती है। हमने निरन्तर स्त्री-पुरुष का जो प्रेम देखा है, उस प्रेम मे वही बहाव है। काश, उमे हम व्यक्तिवाची न बनायें तो वह बहाव बडा पारमार्थिक अर्थ ले लेता है। स्त्री के पास पुरुष अपने को हल्का अनुभव करता है। स्त्री पुरुष के पास अपने को हल्का अनुभव करती है। अलग-अलग होकर वे 'टेस' और तनाव से भर जाते है। वह हल्कापन क्या है? उनके भीतर कुछ भरा है, जो बह गया और वे हल्के हो गये। पीछे 'वेटलेसनेस' छूट जाती है। लेकिन, हम स्त्री और पुरुष को बाधने की कोशिश मे लगे रहते है। जैसे ही हम स्त्री और पुरुष को बाधते है, नियम और व्यवस्था देते है, वैसे ही बहाष क्षीण हो जाते है, वैसे ही बहाव रुक जाते है। व्यवस्था से जीवन की गहरी लीला का कोई सम्बन्ध नही है। कृष्ण का यह रास बिल्कुल ही अव्यवस्थित है। कहना चाहिए 'क्योआटिक' है। नीत्से का एक अद्भुत वचन है जिसमे उसने कहा है– 'ओनली आउट आफ केआस स्टार्स आर बॉर्न'— सिर्फ गहन अराजकता मे सितारा का जन्म होता है। जहा कोई व्यवस्था नही है वहा सिर्फ शक्तियो का खेल रह जाता है। बहुत जल्दी कृष्ण मिट जाते है व्यक्ति की तरह, शक्ति रह जाते है। बहुत शीघ्र गोपियाँ मिट जाती है व्यक्ति की तरह, सिर्फ शक्तियाँ रह जाती है। स्त्री और पुरुष की शक्ति का वह नृत्य है गहन, जो तृप्ति लाता है, गहन आनन्द लाता है। उस नृत्य के द्वारा वह सारा आनन्द जग के कण-कण तक व्याप्त हो जाता है।

कृष्ण जिस चाद के नीचे नाचे है, वह चाद आज भी है। जिन वृक्षो के नीचे नाचे है, उन वृक्षो का होना आज भी है। जिन पहाडो के पास नाचे है वे पहाड भी आज है। जिस धरती पर नाचे है वह धरती भी आज है। कृष्ण से जो बहा होगा उस क्षण मे वह सब इनमे छिपा है और यह सब उसे पी गये है। वैज्ञानिक आजकल बहुत नयी बात करते है। वे कहते है कि व्यक्ति तो विदा हो जाते है, लेकिन उनमे छोडी गयी तरगे सदा के लिए रह जाती है। व्यक्ति विदा हो जाते है, लेकिन वे जैसे जिये उसके सघात, उसकी 'वेव्स', वह सबकी सब पूरे अस्तित्व मे समा जाती है और लीन हो जाती है। उस पृथ्वी पर, जहाँ कृष्ण नाचे, आज भी कोई नाचे तो कृष्ण की प्रतिध्वनियाँ सुनायी पडती है।

जहा उन्होने बासुरी बजायी, जिन पहाडो से उन बासुरियो के स्वर उठे उन पहाडो के पास आज भी कोई बासुरी बजाये तो प्रतिध्वनि सुनायी पडती है। जिस यमुना के तट ने उन्हे देखा, जाना और जिसने उनके स्पर्श का अनुभव किया उस यमुना के तट पर आज भी नृत्य हो तो व्यक्ति मिट जाता है और अव्यक्ति घेर लेता है।

मैं रास को स्त्री और पुरुष के बीच विभक्त जो विराट की शक्ति है उसका मिलन, उसकी 'ओव्हर फ्लोइंग' का प्रतीक मानता हूँ। इस भाषा मे अगर हम ले सके तो आज भी रास का उपयोग है और सदा रहेगा। इधर मैंने निरन्तर अनुभव किया है, जो मै आपसे कहूँ,— जब ध्यान के लिए हम बैठते है तो कई बार मित्रो ने मुझे कहा कि स्त्रियो को अलग कर दे, पुरुषो को अलग कर दे। ये दोनो अलग रहेगे तो सुविधा होगी। उनकी सुविधा की दृष्टि नासमझी से भरी हुई है। वे नही जानते है कि स्त्रियाँ अगर इकट्ठी कर दी जाय एक ओर और पुरुष इकट्ठे कर दिये जाय एक ओर तो यह बिल्कुल सजातीय, एक-सी शक्तिया इकट्ठी हो जाती है और इनके बीच जो बहाव की सभावना है वह कम हो जाती है। लेकिन, उनके ख्याल मे नही है। मेरी तो समझ ही यही है कि अगर ध्यान हम कर रहे है तो स्त्रियाँ और पुरुष एकदम सम्मिलित और मिले-जुले हो। उन दोनो की समझ के बाहर की घटनाए घटेगी। उन दोनो की मौजूदगी और अकारण मौजूदगी आपके भीतर से कुछ बहने मे, प्रकट होने मे, निकल जाने मे 'कैथार्सिस' मे सहयोगी होगी। मनुष्य जाति के चित्त का इतना बडा तनाव, इतना बडा 'टेशन' स्त्री और पुरुष को दो जातियो मे तोड देने से पैदा हुआ है। स्कूल मे, कालेज मे हम लडके लडकियो को पढा रहे है, दो हिस्सो मे बाटकर बिठाया हुआ है। जहा भी स्त्री और पुरुष है, हम उनको बाट रहे है। जब कि जगत की पूरी व्यवस्था विरोधी शक्तियो के होने पर निर्भर है। यह निकटता जितनी सहज और सरल हो उतनी ही परिणामकारक है।

रास का मूल्य सदा ही रहेगा। रास का मूल्य उसके भीतर छिपे हुए गहन तत्वो मे है। वह तत्व इतना ही है कि स्त्री और पुरुष दोनो अपने-अपने मे अधूरे है। निकट होकर वे पूरे हो जाते है। और, अगर 'अनकण्डीशनली' निकट हो तो बहुत अद्भुत अर्थों मे पूरे हो जाते है। अगर 'कण्डिशस' के साथ, शर्तों के साथ निकट हो तो शर्तें बाधाए बन जाती है और उनकी पूर्णता पूरी नही हो पाती। जब तक पुरुष है पृथ्वी पर, जब तक स्त्री है पृथ्वी पर, तब तक रास बहुत-बहुत रूपो मे जारी रहेगा। यह हो सकता है कि वह उतनी महत्ता, उतनी गहनता

और उतनी ऊँचाई को न पा सके जो कृष्ण के साथ पायी जा सकी। लेकिन, हम समझ सके, तो वह पायी जा सकती है। सभी आदिम जातियो को उसका अनुभव है। दिन भर काम करने के बाद आदिम जातिया रात इकट्ठी हो जायेगी। पति-पत्नी का सवाल न रहेगा। वहाँ स्त्री और पुरुष ही रह जायेगे। फिर वे नाचेगे। नाचते नाचते थकेगे और सो जायेगे। इसलिए, आदिवासी के मन मे जैसी शाति है, जैसी प्रफुल्लता है, उसकी दीनता मे, हीनता मे भी जैसी गरिमा है, वह सभ्य-से-सभ्य आदमी सारी सुविधा के साथ भी उपलब्ध नही कर पा रहा है। कही कोई चूक हो रही है। कही कोई बहुत गहरे सत्य को नही समझा जा रहा है।

प्रश्न आचार्यश्री, रामावतार मे जैसे अहिल्या का व्यक्तित्व राम का इतजार करता था और सल्या मे से अहिल्या हुई। इसी तरह कृष्णावतार में भगवान कृष्णचन्द्र का जो समागम हुआ त्रिवक्रा (कुब्जा) के साथ उसका कोई 'स्प्रिचुअल' अर्थ घटाते है ? वह क्या है ? उसे जरा स्पष्ट करें।

उत्तर जीवन मे सभी कुछ सभी समय घटित नही होता है। क्षण है, जिनके लिए प्रतीक्षा करनी होती है। समय है, जिसकी राह देखनी होती है। अवसर है, जिनके लिए रुकना पडता है। बहुत बहुत आयामो मे इस बात को देखना जरूरी है। पत्थर की तरह पडी हुई कोई स्त्री – मैं नही कहता हूँ कि पत्थर ही हो गयी होगी। पत्थर हो जाना कवि की कल्पना है। लेकिन, कोई स्त्री जो राम से खिल पायेगी, राम के स्पर्श से ही खिल पायेगी, जब तक राम न मिले तब तक पत्थर ही रहती है। ऐसा नही कि कोई शिला पडी थी। वह तो कवि के 'मेटाफर' है। लेकिन, जो स्त्री राम के स्पर्श से ही जीवन्त हो सकती है और चेतना पा सकती है, किसी और का स्पर्श उसे जड ही छोड जायेगा। कहानी का मर्म इतना ही है कि हरेक की अपनी प्रतीक्षा है, हरेक की अपनी 'अवेटिंग' है। क्षण आये बिना वह घटित नही होती। जो पत्थर की तरह पडी थी, पत्थर ही हो गयी। यह सोचने जैसा है कि जब तक किसी स्त्री को उसका प्रेमी न मिल जाय तब तक वह पत्थर ही होती है, उसके भीतर का सब शिलाखण्ड जैसा ही हो गया होता है। वह अनन्त काल तक पत्थर ही रहेगी।

इसे एक तरह से और समझ लेना चाहिए। स्त्री जो है, वह ग्राहक अस्तित्व है। 'रिसेप्टिव एक्जीसटेस' है। आक्रमक नही है, ग्राहक है। स्त्री के व्यक्तित्व मे ही गर्भ नही है, उसका चित्त भी गर्भ की भाति है। इसलिए, अग्रेजी का शब्द 'वूमन' बहुत मजेदार है। उसका मतलब है, 'मैन विथ ए वूम'। स्त्री, गर्भ सहित

एक पुरुष है। स्त्री और पुरुष का सब कुछ 'कॉम्प्लिमेंटरी' है। जो पुरुष मे नही है वह स्त्री मे है, जो स्त्री मे नही है वह पुरुष मे है। इसीलिए, वे दोनो मिलकर पूरे हो पाते हैं। स्त्री की ग्राहकता प्रतीक्षा बन जायेगी और पुरुष का आक्रमण खोज बन जायेगा। अहिल्या तो शिलाखण्ड की तरह प्रतीक्षा करेगी, राम नही प्रतीक्षा करेंगे। राम अनेक पथो पर खोजेंगे। यह बडे मजे की बात है कि शायद ही किसी स्त्री ने कभी प्रेम निवेदन किया हो—प्रेम निवेदन लिया है, किया नही है। शायद ही किसी स्त्री ने अपनी तरफ से कभी पहल की हो। ऐसा नही है कि स्त्री पहल नही करना चाहती। लेकिन, उसकी पहल प्रतीक्षा बनती है, मार्ग देखती है, राह देखती है और अनन्त जन्मो तक देख सकती है। असल मे जब भी स्त्री आक्रमण करती है तभी उसके भीतर से कुछ स्त्रैण खो जाता है, और तभी वह कम आकर्षक हो जाती है। उसकी अनत प्रतीक्षा मे ही उसका अर्थ, उसका व्यक्तित्व और उसकी आत्मा है। अनत काल तक उसकी प्रतीक्षा चल सकती है।

कृष्ण के लिए भी कोई प्रतीक्षारत हो सकता है। और कृष्ण के बिना शायद वह उस हर्ष को, उस प्रफुल्लता को, उस खिल जाने को उपलब्ध ही न हो सके। इस देश के नियमो मे एक बहुत अद्भुत नियम था, वह समझ लेने जैसा है। वह नियम यह था कि स्त्री साधारणत न आक्रमण करती है, न निवेदन करती है, न प्रार्थना करती है। लेकिन, यदि कभी स्त्री प्रार्थना करे तो पुरुष का इन्कार अनैतिक है। क्योकि, यह बहुत 'रेयर' मामला है। अगर पुरुष इन्कार करे तो समझा जाता था कि उसने अपने पुरुषत्व से इन्कार कर लिया। यह नियम इसीलिए बनाया जा सका, क्योकि यह सामान्य घटने वाला नियम नही है। अर्जुन के जीवन मे भी एक उल्लेख है तथा एक और उल्लेख मैं आपको याद दिलाना चाहूँगा।

अर्जुन एक वर्ष के ब्रह्मचर्य की साधना कर रहा है। एक सुन्दर युवती ने उस साधनारत अर्जुन को देखकर उससे निवेदन किया है कि मै चाहूँगी कि मुझे तुम्हारे जैसे पुत्र उपलब्ध हो। यह भी बडे मजे की बात है कि स्त्री अगर निवेदन भी करेगी तो प्रेयसी और पत्नी बनने का न कर पायेगी, मा बनने का कर पायेगी। अर्जुन बहुत मुश्किल मे पड गया है। ब्रह्मचर्य तोडा नही जा सकता। और नियम बडा अर्थपूर्ण है और बडा पुरुषगत है कि स्त्री निवेदन करे तो अस्वीकार करना अनैतिक है। अर्जुन अनैतिक भी न होना चाहेगा। अर्जुन ने कहा, मैं तैयार हूँ, पर पक्का कहाँ है कि मेरे पुत्र मेरे जैसे ही होगे? इसलिए, अच्छा हो कि तू मुझे ही पुत्र मान ले। मैं तेरा पुत्र हुआ जाता हू। तेरी आकांक्षा पूरी हो जायेगी। मेरे जैसे पुत्र ही चाहिए न तुझे?

ठीक ऐसी ही एक घटना बर्नार्ड शा के जीवन मे है। एक फ्रेंच अभिनेत्री ने बर्नार्ड शा को निवेदन किया। सुन्दरतम् अभिनेत्री है। उसने लिखा कि मै आपसे विवाह करना चाहती हूँ। पश्चिम की स्त्री यद्यपि स्त्री होने से काफी दूर चली गयी है फिर भी वह निवेदन माँ का ही कर सकी। उसने भी निवेदन मे यह कहा कि मै चाहती हू कि ऐसे बेटे हो हमारे जिनको मेरा सौदर्य मिल जाय और तुम्हारी बुद्धि मिल जाय। बर्नार्ड शा को भी वही मुसीबत हुई होगी जो अर्जुन को हुई। लेकिन, अर्जुन पूरब की हवा मे पला हुआ था, इसलिए उसने जो उत्तर दिया वह पूरब का था। बर्नार्ड शा ने जो उत्तर दिया वह पश्चिम का है, इसलिए बर्नार्ड शा के उत्तर की बेहूदगी बडी माफ है। बर्नार्ड शा ने उसे पत्र लिखा कि देवी, इससे उल्टा भी हो सकता है, जैसा आप कहती है। ऐसा भी हो सकता है कि आपकी बुद्धि मिल जाय हमारे बेटे को, और मेरी शक्ल मिल जाय। पूरब मे कोई पुरुष ऐसा उत्तर नही दे सकता था। यह तो स्त्री-शक्ति का सीधा अपमान हो गया। स्त्री के द्वारा किये गये निवेदन का सीधा इन्कार हो गया। और इन्कार भी शिष्ट न रहा, अशिष्ट हो गया।

कृष्ण के लिए कुब्जा की प्रतीक्षा है। वह प्रतीक्षा जन्मा की है। कृष्ण इन्कार नही कर सकते। इन्कार ही कृष्ण के जीवन मे नही है। अगर कुब्जा चाहे कि शरीर के तल पर सभोग हो तो कृष्ण उसका भी इन्कार नही कर सकते, क्योकि कृष्ण के मन मे शरीर का कोई विरोध नही है। शरीर भी है। शरीर की अपनी जगह है। शरीर सब कुछ नही है, यह बात दूसरी है। लेकिन, शरीर भी है। उसका अपना रस है, अपना आनन्द है, शरीर का अपना होना है। कृष्ण के मन मे उसकी कोई निषेध बात नही है। कृष्ण एक साथ शरीर और आत्मा को पी गये है, एक साथ पदार्थ और परमात्मा को ले गये है। इसलिए, कृष्ण अगर इसके लिए इन्कार करे कि शरीर के तल पर सभोग नही, तो भी पुरुष-शक्ति के द्वारा स्त्री-शक्ति का अपमान ही होगा। वे शरीर के तल पर भी सभोग करने को राजी है। कुब्जा की जो आकाक्षा है वह पूरी करने को राजी है। इस राजी होने मे उन्हे राजी होने की चेष्टा नही करनी पड रही है। इस राजी होने मे कोई प्रयास नही है। इस राजी होने मे जो घटित हो रहा है उसकी सहज स्वीकृति है।

कृष्ण का शरीर के तल पर सभोग हमे कठिन पडता है, क्योकि हम द्वैतवादी है। हम शरीर और आत्मा को अलग-अलग मानकर चलने वाले लोग है। मेरे देखे, और ऐसा ही देखना कृष्ण का भी है कि शरीर और आत्मा दो नही हैं, संभोग और योग दो नही है, पदार्थ और परमात्मा दो नही है। शरीर, आत्मा का वह

छोर है जो हमारी आंखो और हाथो की पकड मे आ जाता है । और आत्मा, शरीर का वह छोर है जो हमारे हाथ, आँख और बुद्धि की पकड के बाहर छूट जाता है। शरीर दृश्य आत्मा है और आत्मा अदृश्य शरीर है। और, ये दोनो एक है और कही टूटते नही, कही खण्डित नही होते। शरीर के तल पर जिसे हम सभोग कहते है, आत्मा के तल पर वही योग है, वही समाधि है। कृष्ण के मन मे सभोग और समाधि मे विरोध नही है। सभोग ही समाधि तक द्वार बन जाता है। समाधि ही सभोग तक उतर कर अपनी किरणे पहुचाती है।

कुब्जा की बात कुब्जा जाने। कुब्जा के लिए क्या है इससे कृष्ण का कोई लेना-देना नही है—कृष्ण के लिए क्या है वह कह रहा हूँ। कुब्जा की ऐसी भूमिका कि उसके लिए सभोग समाधि बन सकता है, ऐसा मुझे नही लगता है। लेकिन, यह प्रयोजन के बाहर है। कुब्जा ने जो मागा है, जितना उसका पात्र है, कृष्ण उतने पात्र को भी भरने को राजी है। वह नही कहते उसे भी कि मुझे सागर जैसा पात्र चाहिए। क्योकि, मेरे पास सागर जैसा देने को है। कुब्जा कहती है, मेरे पास तो छोटा-सा भिक्षा-पात्र है। इसमे सिर्फ शरीर ही समाता है। इसमे आत्मा वगैरह की मुझे कुछ खबर नही है। तो कुब्जा के पात्र को वह इसलिए खाली न लौटा देगे कि सागर जैसा पात्र लेकर वह नही आयी। नही, कृष्ण कहेगे जितना पात्र है उतना ले जाओ। इसलिए, शरीर के तल पर भी कृष्ण का मिलन सभव हो सका है।

प्रश्न आपने आज प्रात. राम और कृष्ण की तुलना की, मीरा और हनुमान की तुलना की। हमारी परम्परा, राम और कृष्ण, मीरा और हनुमान दोनो को ही समकक्ष रखती है। कोई उनमे 'इनफीरियर' है या 'सुपीरियर' है, ऐसा भाव नहीं रखती। यह हो सकता है कि हनुमान की निजता वही हो जो वह है, राम की निजता वही हो जो वह है। और, हममे कुछ लोग ऐसे हो जिन्हें हनुमान और राम की निजता ही अनुकूल पड़े। क्या यह पर-धर्म न होगा कि वे हनुमान और राम को कुछ 'इनफीरियर' मानकर कृष्ण और मीरा का ही मार्ग अपनाना चाहे ?

उत्तर मैने जो कहा, उसमे किसी को 'इनफीरियर' नही कहा। सिर्फ भिन्न-भिन्न कहा। हीन नही कहा, अलग-अलग कहा। और जिसकी निजता हनुमान के करीब पडती है वह मेरे कहने से हनुमान को हीन न मान सकेगा। मेरी निजता मे हनुमान करीब नही पडते है। मै किसी और की निजता का ध्यान

रखकर झूठा वक्तव्य नही दे सकता हूँ। मुझसे आपने पूछा है। मैंने ही उत्तर दिया है। मुझे अगर चुनना हो तो मीरा चुनने जैसी लगेगी। मुझे अगर चुनना हो तो राम छोड देने जैसे लगेगे, कृष्ण चुनने जैसे लगेगे। और, मुझे क्यो लगेंगे उसके कारण भी मैंने कहे। यह मेरी बात है। ऐसा नही है कि आप कृष्ण को चुने और राम को छोडें। ध्यान से समझ ले मेरी बात को। आपनी निजता जहा ले जाय वही जाना है। मेरी दृष्टि मे राम का व्यक्तित्व मर्यादित है और मैं मानता हूँ कि राम को मानने वाले लोग भी नही कहेगे कि अमर्यादित है। असल मे राम को मानने वाले लोग भी राम को इसीलिए मानते है कि वह मर्यादा मे है। और, जिन जिन के चित्त मर्यादा मे जीते है उन उन के लिए राम अनुकूल पडेगे। लेकिन, मै कह यह रहा हूँ कि मर्यादा का मतलब सीमा होता है। सीमा के बाहर भी चीजो का होना है। सीमा के बाहर भी सत्य है। इसलिए, पूर्ण सत्य को तो अमर्याद ही घेर सकेगा। पूर्ण सत्य को मर्यादित नही घेर सकता। पूर्ण सत्य को तो कृष्ण ही घेर सकेंगे, राम नही घेर सकते। ऐसा नही है कि आपकी परम्परा ने भेद नही किया। आपकी परम्परा भी राम को कभी पूर्ण अवतार नही कहती है। कृष्ण को ही पूर्ण अवतार कहती है। आपकी परम्परा भी फर्क निश्चित करती है।

हनुमान और मीरा की बाबत कभी आपकी परम्परा ने तुलना की है, यह मुझे पता नही। राम और कृष्ण की बाबत तुलना आपकी परम्परा मे है और उसमे कृष्ण पूर्ण अवतार है। यह भी साफ है कि राम को मानने वाला कृष्ण को नही मान सका है, कान भी बन्द कर लिये है उसने कि कृष्ण का नाम कान मे न पड जाय। और, कृष्ण को मानने वाला भी राम को नही समझ पाया है। स्वाभाविक है। लेकिन, तथ्य की बात कहूँ, क्योकि मै तो किसी को माननेवाला नही। मुझे जैसा दिखायी पडता है, वह मैं कहता हूँ। मै किसी का मानने वाला नही हूँ। मै न कृष्ण का माननेवाला हूँ, न राम का माननेवाला हूँ। मुझे तो जो दिखायी पडता है वह यह है कि राम का एक व्यक्तित्व है साफ-सुथरा, निखरा। उतना निखरा और साफ-सुथरा व्यक्तित्व कृष्ण का नही है। हो नही सकता। वही उसकी गहराई है। राम ने एक बडे जगल का एक छोटा-सा हिस्सा काट-कूटकर साफ-सुथरा कर लिया है। वहा से वृक्ष हटा दिये है, लताए हटा दी है, घास काट दी है, पत्थर हटा दिये हैं। वह जगह बडी साफ-सुथरी, बैठने योग्य हो गयी है। लेकिन विराट जगल भी है जो उस जगह को चारो तरफ से घेरे हुए है। अस्तित्व उसका भी है।

डी एच लारेस निरन्तर कहा करता था कि कब हम आदमी को जगल की तरह देखेंगे? अभी तक हमने आदमी को बगिया की तरह देखा है। राम एक

बगिया है। कृष्ण एक विराट जगल है, जिसमे कोई व्यवस्था नही है। जिसमे क्यारियां कटी हुई और साफ-सुथरी नही है, जिसमे रास्ते बने हुए नही है, पग-डडिया तय नही है। जिसमे भयकर जतु भी है, हमलावर शेर भी है, सिह भी है, अन्धेरा भी है। चोर डाकू भी हो सकते है, जीवन को खतरा भी हो सकता है। कृष्ण का व्यक्तित्व तो एक विराट जगल की भाति है, अनियोजित, 'अनप्लाण्ड' जैसा है वैसा है। राम का व्यक्तित्व एक छोटी-सी बगिया की तरह है। 'किचन गार्डन' की तरह है, जो आपने अपने घर के बगल मे लगा रखा है। सब साफ-सुथरा है। कोई खतरा नही है, कोई जगली जानवर नही है। मैं नही कहता, आप 'किचन गार्डन' न लगाये। इतना ही कहता हूं कि 'किचन गार्डन' 'किचन गार्डन' है, जगल जगल है। कभी जब 'किचन गार्डन' से ऊब जायेंगे तो पायेंगे कि जगल मे ही असली राज है। वह हमारा लगाया हुआ नही है। आपकी पर-म्परा ने तो राम और कृष्ण मे तुलना कर ली है, लेकिन मीरा और हनुमान मे नही की। मीरा और हनुमान मे करने का बहुत कारण भी नही है। लेकिन, कल बात उठी, इसलिए मैंने कहा। मैंने कहा जब राम ही किचन गार्डन है तो हनुमान को कहा रखियेगा ? जब मैं राम को कहूँगा कि एक छोटी-सी बगिया है बगले के बाहर, बगले के बाहर बगिया ही होनी चाहिए, जगल नही लगाया जा सकता, वह भी मुझे भली-भाति ज्ञात है। लेकिन, फिर भी बगिया बगिया है, जगल जगल है, और कभी-कभी जब बगिया से ऊब जाते है तो जगल की तरफ जाना पडता है। और, एक दिन ऊब जाना चाहिए बगिया से, वह भी जरूरी है। तब हनुमान को कहा रखियेगा ? हनुमान तो फिर एक गमला रह जाते है। बहुत साफ-सुथरे है। कई बार राम से भी ज्यादा साफ-सुथरे है। क्योकि, छोटी जगह घेरते है। बगले के बगीचे पर जब हवा बहती है तो उसके पौधे भी नाचते हैं, और गमले मे लगे पौधे पर जब हवा बहती है तो वह भी डोलता है। लेकिन जगल मे ताण्डव चलता है। उसकी बात ही और है। वह नर्तन विराट है। हमारे 'कण्ट्रोल' के बाहर है। हनुमान नर्तन करते है, लेकिन राम की आज्ञा मान लेगे। मीरा नर्तन करती है तो कृष्ण भी अगर रोके तो नही रुकेगी। फर्क बडे बुनियादी हैं। मीरा कृष्ण को भी कह देगी, बैठो एक तरफ, हटो रास्ते से, नाच चलने दो। बीच मे मत आओ। वह हनुमान न कर सकेगे। हनुमान एक आज्ञाकारी व्यक्तित्व है, एक 'डिसिप्लिन्ड' आदमी है। दुनिया मे अनुशासन की जरूरत है, लेकिन जीवन मे जो भी विराट है, जो भी गहन गम्भीर है वह सब अनुशासन मुक्त है। जीवन मे जो भी सुन्दर है, सत्य है, शिव है, वह बिना किसी अनुशासन के अचानक फूट पडता है। मुझे तो जैसा दिखायी पडा है वह मैंने कहा है। ऐसे हनुमान हैं,

ऐसी मीरा है। मेरे देखे मे चुनाव मेरा, मीरा का है। आपसे नही कहता। हीनता और श्रेष्ठता क्या है, वह हरेक व्यक्ति अपनी तय करेगा। अपने से ही तय होगी वह। किसी को हनुमान श्रेष्ठ दिखायी पड सकते है। उससे वह सिर्फ इतनी ही खबर देगा कि उसकी श्रेष्ठता का मापदण्ड क्या है ? और, जब मै कहता हूँ कि मीरा कहीं श्रेष्ठ दिखायी पडती है तो उसका कुल मतलब इतना ही है कि मेरी श्रेष्ठता का अर्थ क्या है ? इसमे हनुमान और मीरा गौण है, खूटियो की तरह है। मै अपने को उन पर टागता हूँ।

प्रश्न गो भक्ति को आप किस दृष्टि से देखते हैं। उत्क्रांति की प्रक्रिया मे डार्विन के कथनानुसार वानर को मनुष्य का पूर्वगामी और आत्मा के विकास मे गो माता की योनि को पूर्वगामी मानने को राजी हो तो स्पष्ट नही होता। क्या कृषि प्रधान देश होने के कारण हम गाय को माता कहते है ? गो-वध के सबध मे आपका क्या खयाल है ?

उत्तर डार्विन ने जब सबसे पहले यह बात कही कि आदमी के शरीर को देखकर ऐसा मालूम पडता है कि वह बन्दरो की ही किसी जाति की श्रृखला की आगे की कडी है तो स्वीकार करना बहुत मुश्किल हुआ था। क्योकि, जो आदमी परमात्मा को अपना पिता मानता रहा हो, वह आदमी अचानक बन्दर को अपना पिता मानने को राजी हो जाय, यह कठिन था। एकदम परमात्मा की जगह बन्दर बैठ जाय तो अहकार को बडी गहरी चोट थी। लेकिन कोई रास्ता न था। डार्विन जो कह रहा था उसके प्रबल प्रमाण थे। समस्त वैज्ञानिक साधन सहारा दे रहे थे। इसलिए, विरोध तो बहुत हुआ, लेकिन धीरे-धीरे स्वीकार कर लेना पडा। इसके सिवाय कोई रास्ता नही था। बन्दर के शरीर और आदमी के शरीर मे इतनी ही निकटता है, बन्दर की बुद्धि और आदमी की बुद्धि मे भी इतनी ही निकटता है। बन्दर के जीने और होने के ढग और आदमी के जीने और होने के ढग मे भी इतनी ही निकटता है कि यह इन्कार करना मुश्किल है कि आदमी किसी-न-किसी रूप मे बदर की कडियो से न जुड़ा हुआ हो। आज भी जब हम रास्ते पर चलते है तो हमारे बाये पैर के साथ बाया हाथ हिलता है। आप दोनो हाथ बिल्कुल रोक कर चले तो भी चल सकते हैं। दोनो हाथ कट जाते है तो भी आदमी इतनी ही गति से चलता है। लेकिन, बाये पैर के साथ दाये हाथ का हिलना, डार्विन कहेगा, बन्दर जब चारो हाथ पैर से चलता था तब की आदत है। छूटती नही। चार हाथ पैर से कभी-न-कभी मनुष्य

जाति का कोई पूर्वज चलता रहा है अन्यथा इसका कोई कारण नही है। जहा बन्दर की पूछ है वहा वह खाली जगह अभी हमारे पास है, सबके पास है, जहा पूछ होनी चाहिए थी, लेकिन अब है नही। लेकिन, वह 'लिकेज' है। वह खबर देती है कि कभी पूछ रही होगी। इस लिहाज से हनुमान बडे कीमती आदमी हैं। डार्विन को कुछ पता नही था हनुमान का, नही तो बडा प्रसन्न होता अगर उसको हनुमान का पता चलता तो। क्योकि, हनुमान का बन्दर होना, ऐसा मालूम पडता है कि हनुमान उस बीच की कडी के आदमी होगे जब वह पूरे बन्दर भी नही रह गये थे और पूरे आदमी भी नही हो गये थे। कही 'लिंकेज' बीच की होनी चाहिए। हाँ, 'ट्राजिटरी पीरियड' के आदमी होने चाहिए, क्योकि बन्दर एकदम से आदमी नही हो गये होगे। लाखो साल तक बन्दर आदमी होते रहे होगे। कुछ चीजे गिरती गयी होगी, कुछ बढती गयी होगी। लाखो साल मे ऐसा हुआ होगा कि कडी टूट गयी। कुछ बन्दर रह गये और कुछ आदमी हो गये और बीच का हिस्सा गिर गया। वह जो बीच का हिस्सा गिर गया, हनुमान उसी का कही न कही प्रतीक है। वह जो बीच का हिस्सा अब उपलब्ध नही है, उसको खोजा जा रहा है बहुत। सारी जमीन पर हजार तरह की, लाख तरह की खोजे चलती है कि हम उस बीच की कडी की हड्डियो को खोज ले जो आदमी और बन्दर के बीच मे रही होगी। मैं एक दूसरी बात भी कहता हूँ। मै यह कहता हूँ कि आदमी के शरीर का जहा तक विकास है, आदमी का शरीर बन्दर के विकास की अगली कडी है, लेकिन जहा तक आदमी की आत्मा का सम्बन्ध है वहा तक आदमी की आत्मा गाय की आत्मा की अगली कडी है। आदमी के पास आत्मा की जो यात्रा है वह गाय से होकर आयी है और शरीर की जो यात्रा है वह बन्दर से होकर आयी है। निश्चित ही, जैसे प्रमाण डार्विन बन्दर से होने के लिए जुटा सकता है ठीक वैसे प्रमाण इस बात के लिए नही जुटाए जा सकते, लेकिन दूसरी तरह के प्रमाण जुटाये जा सकते है।

गाय को माँ कहने का कारण सिर्फ कृषि करने वाला देश नही है। क्योकि बैल को हमने पिता नही कहा। गाय को माँ कहने का कारण सिर्फ गाय की, कृषि प्रधान देश की उपादेयता और उपयोगिता मात्र नही है। सिर्फ उपादेयता होती तो हर उपादेय चीजो को हम माँ नही बना लेते है। कोई कारण नही है। रेलगाडी को कोई माँ नही कहता है। बहुत उपादेय है। हवाई जहाज को कोई माँ नही बना लेता। बहुत उपादेय है। दुनिया मे उपादेय चीजो को किस कौम ने कब माँ कहा है? विचारणीय जो है, वह यह है कि उपादेय चीज तो सभी के

लिए कुछ-न-कुछ रही है । लेकिन, जिस चीज की 'यूटिलीटी' हो उसको माँ कहने का क्या सबध है ? कोई और कारण है ।

वह कारण मेरे अपने अनुभव मे, जैसे बन्दर पिता है डार्विन के हिसाब से वैसे गाय माँ है । यह किन आधारो पर मै कहता हूँ ? इसके सारे आधार साइकिक रिसर्च के ही आधार हो सकते है । मनस के और जाति स्मरण के आधार ही सकते हैं । हजारो योगियो ने निरतर इसपर प्रयोग करके यह अनुभव किया कि वह जितने पीछे लौटते है, जब तक याद आती है तब तक मनुष्य के जन्म होते हैं, लेकिन मनुष्यो के जन्मो के पीछे जो स्मरण आना शुरू होता है वह गाय का जन्म शुरू होता है । अगर आप अपने पिछले जन्मो की स्मृति मे उतरेंगे तो बहुत-से जन्म तो मनुष्य के होगे—सबके, कुछ के कम, कुछ के ज्यादा । लेकिन, जिस जगह से मनुष्य का जन्म समाप्त होगा उसके पहले गाय का जन्म शुरू हो जायेगा । यह जाति स्मरण के परिणामो का फल है । जिन लोगो ने जाति स्मरण पर प्रयोग किये, अपने पिछले जन्म की स्मृतियो की खोज-बीन की, उन्होने पाया कि आदमी की स्मृतियों के बाद जो पहली पर्त मिलती है, वह पर्त गाय की स्मृति की हैं । इस गाय की स्मृति के आधार पर गाय को माँ कहा गया । ऐसे भी, अगर हम सारे पशु जगत मे खोजने जाय तो गाय के पास जैसी आत्मा दिखायी पडती है वैसी किसी दूसरे पशु के पास दिखायी नही पडती । अगर हम गाय की आँख मे झाके तो जैसी मानवीयता गाय की आँख मे झलकती है वैसी मानवीयता किसी दूसरे पशु की आँख मे नही झलकती । जैसी सरलता, जैसी विनम्रता गाय मे दिखायी पडती है वैसी किसी पशु मे नही दिखायी पडती । आत्मिक दृष्टि से गाय विकसिततम मालूम पडती है समस्त पशु जगत मे । उसका यह जो विकसित होना है यह भी प्रमाण बन सकता है कि अगला चरण गाय का जो होगा वह आत्मिक छलाग का होगा । बन्दर की अगर हम शारीरिक बेचैनी समझे तो हमे ख्याल मे आ सकता है कि यह जल्दी अपने शरीर के बाहर छलांग लगायेगा । यह रुक नही सकता । यह इस शरीर से राजी नही हो सकता । बन्दर राजी ही नही है किसी चीज से । वह पूरे वक्त बेचैन, चचल और परेशान है । आपने ध्यान किया, जब बच्चे पैदा होते है तो उनकी आँखो में गाय का भाव होता है और शरीर मे बन्दर की व्यवस्था होती है । छोटे बच्चे को देखें तो शरीर तो उसके पास बिल्कुल निपट बन्दर का होता है लेकिन, आँख में झाके तो गाय की आँख होती है । इसलिए मैं कहता हूँ कि गाय को माँ कहने का कारण है । यह सिर्फ कृषि प्रधान होने की वजह से ऐसा नही हुआ । इसके 'साइकिक', बहुत मानसिक खोजो का कारण है । अब दुनिया में जब 'साइकिक

रिसर्च' बढ़ती चली जाती है तो मैं समझता हूँ कि बहुत देर नही लगेगी कि इस देश की इस खोज को समर्थन विज्ञान से मिल जाय।

अगर हम हिन्दुओ के अवतार देखें तो हमे ख्याल मे आ सकता है। हिन्दुओ का अवतार मछली से शुरू होता है और बुद्ध तक चला जाता है। पहले यह बात बडी मुश्किल लगी थी कि मछली का अवतार ! मत्स्य का अवतार, पागल तो नही है आप ! लेकिन, अब जब विज्ञान और जीव शास्त्र कहता है कि जीवन का पहला अस्तित्व मछली से शरू हुआ तब बात कुछ स्पष्ट होती है। और, विज्ञान की कुछ ऐसी छाप है हमारे मन पर कि फिर हम मजाक नही उडा सकते। विज्ञान कहता है कि मछली ही शायद पहला जीवन का विकसित रूप है। फिर मछली से ही सारा विकास हुआ। मछली को इस देश ने पहला अवतार माना है। अवतार का कुल मतलब होता है, चेतना का अवतरण। यह भाषा धर्म की है, और जब विज्ञान कहता है कि मछली पहला जीवन मालूम पडती है, तब भाषा उसके पास विज्ञान की हो जाती है। हमारे पास एक अवतार और भी अद्भुत है—नृसिंह अवतार। जो आधा पशु और आधा मनुष्य का अवतार है। जब डार्विन कहता है, बीच मे कडिया रही होगी जो आधी पशुता की, आधी मनुष्यता की रही होगी तब हमे कठिनाई नही होती, लेकिन नृसिंह अवतार को पकडने मे कठिनाई होती है। वह भाषा धर्म की है। लेकिन, उसके भी पीछे गहन अतर-दृष्टिया समाविष्ट है। गाय माँ है उसी अर्थों मे जिस अर्थों मे बन्दर पिता है। डार्विन ने फिक्र की शरीर की, क्योकि पश्चिम शरीर की चिन्ता मे सलग्न है। इस देश ने फिक्र की आत्मा की, क्योकि यह देश आत्मा की चिन्ता मे सलग्न है। इस देश मे इसकी बहुत फिक्र नही रही कि शरीर कहा से आता है। कही से भी आता हो, लेकिन आत्मा कहा से आती है यह हम जरूर जानना चाहते रहे। इसलिए, हमारी 'एमफेसिस' शरीर के विकास पर न होकर आत्मा के विकास पर गयी।

दूसरी बात पूछी है कि गो-वध के सम्बन्ध मे मेरा क्या ख्याल है ?

मै किसी वध के पक्ष मे नही हूँ। वध के पक्ष मे होने की तो बात ही नही उठती। लेकिन, मै पक्ष मे हूँ या नही, इससे वध रुकेगा नही। परिस्थितियाँ गो-वध कराती ही रहेगी। मै मासाहार के पक्ष मे नही हूँ, लेकिन मासाहार के पक्ष मे हू या नही इससे फर्क नही पडता। परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि मांसाहार जारी रहेगा। जारी इसलिए रहेगा कि आज भी हम इस स्थिति मे नही हो पाये कि शाकाहारी भोजन सारे जगत को दे सके। सारा जगत तो बहुत दूर है, अगर एक मुल्क भी

पूरा शाकाहारी होने का निर्णय कर ले तो मर जायेगा। शाकाहारी होने के लिए जो सारी व्यवस्था हमे जुटानी चाहिए वह हम जुटा नही पाये। इसलिए, मासाहार मजबूरी की तरह जारी रहेगा। 'नेसेसरी ईविल' की तरह। गो-वध भी जारी रहेगा 'नेसेसरी ईविल' की तरह। और, बडे मजे की यह बात है कि जो लोग गो-वध बन्द हो, इसके लिए आतुर है, वह गो-वध से जो मिलता है लोगो को, उसको देने के लिए उनकी कोई चेष्टा नही है। गो-वध किसी दिन बन्द हो सकेगा, हो सकता है। और मैं मानता हूँ गो-वध भी बन्द उनकी वजह से होगा, जो गो-वध बन्द करने के बिल्कुल पक्ष मे नही है। यह गो-वध बन्द करने वाले लोगो की वजह से बन्द नही होनेवाला है, क्योकि बन्द करने की वह कोई व्यवस्था नही जुटा पाते। सिर्फ नारेबाजी या कानून या नियम, इनसे कुछ होने वाला नही है। आज भी जमीन पर सर्वाधिक गाये हमारे पास है और सबसे कमजोर और सबसे मरीज। जिनके पास बहुत कम गाये है और जो बहुत गो-वध करते है उनके पास बडी स्वस्थ, बडी जीवत गायें है। एक-एक गाय चालीस किलो दूध दे सके। हमारी गाय आधा किलो भी दे तो भी बडी कृपा है। इन अस्थि-पजरो को हम जिन्दा रखने की कोशिश मे लगे है। इसके लिए भोजन के अतिरिक्त साधन इकट्ठे करने जरूरी है, लेकिन अभी तक भी शाकाहारी, ठीक से मासाहारी के योग्य भोजन का उत्तर नही दे पाये। उनकी बात सही है। उनका तर्क उचित है।

यह बडे मजे की बात है कि गाय भी गैर-मासाहारी है और बन्दर भी गैर-मासाहारी है। शरीर भी आदमी का जहा से आया है वह गैर-मासाहारी प्राणी से आया है। और, आत्मा भी जहा से आयी है वह भी गैर--मासाहारी प्राणी से आयी है। छोटी-मोटी चीटिया वगैरह को बन्दर कभी खा जाय, बात अलग है, ऐसे मासाहारी नही है। गाय तो मासाहारी है ही नही, मजबूरी मे मास खा जाय, बात अलग, खिला दे कोई, बात अलग। ये दोनो यात्रा-पथ गैर-मासाहारी है और आदमी मासाहारी क्यो हो गया? आदमी के शरीर की पूरी व्यवस्था गैर-मासाहारी है। उसके पेट की अस्थियो का ढाचा गैर--मासाहारी है। उसके चित्त के सोचने का ढग गैर-मासाहारी है। फिर, आदमी मासाहारी क्यो है? मासाहारी होना आदमी की मजबूरी है। अभी तक शाकाहार का हम पूरा भोजन नही जुटा पाये इसलिए मेरी अपनी समझ मे गो-वध जारी रहेगा। जारी नही रहना चाहिए, लेकिन जारी रखना पडेगा। और, सिर्फ उसी दिन रुक सकेगा कि जिस दिन हम 'सिथटिक फूड' पर आदमी को ले जाने के लिए राजी हो जाय, उसके पहले नही रुक सकता है। जिस दिन हम भोजन के मामले मे वैज्ञानिक भोजन पर आदमी को ले जाय, उस दिन रुक सकेगा। इसलिए, मेरी चेष्टा गो-वध बन्द न हो,

इसमे जरा भी नही है। यह सब बिल्कुल फिजूल बाते है, जिनको चलाकर हम समय खराब करते है और कुछ होता नही। मेरी चिन्ता इसमे है कि आदमी को हम ऐसा भोजन दे सके जो उसे मासाहार से मुक्त कर सके। अब जमीन से पैदा हुआ भोजन काम नही कर सकेगा, अब तो हमे फैक्टरी मे बनायी गयी गोली भोजन के लिए उपयोग मे लानी पडेगी। साढे तीन अरब और चार अरब के बीच सख्या डोलने लगी मनुष्य की। इस सख्या के लिए भोजन का कोई उपाय नही। और, यह सख्या रोज बढती जायेगी, हमारे सब उपाय के बावजूद बढती जायेगी। गो-वध तो बहुत दूर की बात है। हो सकता है, तीस-चालीस साल के भीतर हमे आन्दोलन शुरू करना पडे कि नर-वध किया जाय। जैसे, आज एक आदमी मरता है तो हम उससे कहते है अपनी आंख 'डोनेट' कर दो, कल हम मरते हुए आदमी से कहेगे, अपना मास 'डोनेट' कर जाओ। सख्या इतनी तीव्र होगी कि इसके सिवाय कोई उपाय नही रह जायेगा। बहुत जल्दी वह वक्त आ जायेगा कि जो कौमे जलाती है लाशो को, वह अनुचित और अन्यायपूर्ण मालूम होने लगेगी। यहा मनुष्य को खाने की स्थिति करीब आयी जाती है, वहा हम आन्दोलन चलाये जाते है गो-वध को रोकने का। इसमे कोई वैज्ञानिकता नही है। लेकिन, गो-वध रुक सकता है, सभी वध रुक सकते है। हमे भोजन के सम्बन्ध मे बडे क्रातिकारी कदम उठाने की जरूरत है। गो वध के मैं पक्ष मे नही हूँ, लेकिन गो-वध विरोधियो के भी पक्ष मे नही हूँ। गो-वध विरोधी निपट नासमझी की बाते करते है। उनके पास कोई बहुत बडी योजना नही है जिससे कि गो-वध रुक सके। रुक तो जाना चाहिए। गाय आखिरी जानवर होना चाहिए जो मारा जाय। वह पशुओ मे विकास की मनुष्य के पहले की कडी है। उस पर दया होनी जरूरी है। उससे हमारे बहुत आतरिक सबध है। उनका ध्यान रखना जरूरी है। लेकिन, यह ध्यान तब तक ही रखा जा सकता है जब सुविधा हो, अन्यथा नही रखा जा सकता है। एक छोटी-सी कहानी मैं कहूँ।

एक पादरी एक चर्च मे व्याख्यान करने को गया है। कोई तीन-चार मील का फासला है और पहाडी रास्ता है, बूढा पादरी है। उसने गाव के अपने एक तागेवाले को कहा कि मुझे वहा तक पहुचा दो, जो तुम पैसे चाहो ले लेना। उस तागेवाले ने कहा कि पैसे तो ठीक है, लेकिन मेरा बूढा घोडा है गफ्फार, उसका जरा ध्यान रखना पडेगा। उसने कहा, तुम जितनी दया घोडे पर करते हो उससे कम मैं नही करता। घोडे का ध्यान रखा जायेगा। यात्रा शुरू हुई। कोई आधा मील बीतने के बाद ही चढाई शुरु हुई तो उस तागे

वाले ने कहा, अब कृपा करके आप नीचे उतर जायें। घोड़ा बूढ़ा है और ध्यान रखना जरूरी है। पादरी नीचे उतर गया। फिर ऐसा ही चलता रहा। घाट आता, पादरी को नीचे उतरना पड़ता। कभी कभी घाट और ज्यादा आ जाता तो तागे वाले को भी नीचे उतरना पड़ता। चार मील के रास्ते पर मुश्किल से एक मील पादरी तागे मे बैठा, तीन मील पैदल चला। जहा तागे की जरूरत थी वहाँ पैदल चला और जहाँ तागे की जरूरत नही थी, वहाँ तागे मे बैठा। जब वे चर्च के पास पहुच गये और तागे वाले को पादरी ने पैसे चुकाये, तो उसने कहा कि पैसे तो तुम लो, लेकिन एक सवाल का जबाब देते जाओ। मैं तो यहा भाषण देने आया, समझ मे आता है। तुम पैसा कमाने आये, वह भी समझ मे आता है। इस बिचारे गफ्फार को किसलिए लाये ? हम दोनो आते तो भी आसान पड़ता।

जीवन आवश्यकताओ मे जिया जाता है, सिद्धातो मे नही। आदमी मरने के करीब है, गाय नही बचायी जा सकती। गाय बचायी जा सकती है भोजन इतने 'अफ्लुएस' मे हो जाय कि गाय को बचाना 'अफोर्ड' कर सके। फिर, और जानवर भी बचाये जा सकते है, क्योकि गाय अगर एक कड़ी पीछे है तो दूसरे जानवर थोड़ी और कड़ी पीछे है। मछली भी माँ तो है, जरा रिश्ता दूर का है। बस इतना ही फर्क है। लेकिन, जैसे-जैसे आदमी समृद्ध होता चला जाय, सुविधा जुटाता जाय, वह गाय को ही क्यो बचायेगा। वह मछली को भी बचायेगा। बचाने की दृष्टि तो साफ होनी चाहिए। लेकिन बचाने का आग्रह, सुविधाए न हो, तो मूढतापूर्ण हो जाता है।



पर्व : नौ

धर्म और राजनीति

साम्य घटनाए

अंशावतार पूर्णावतार

कृष्ण की असहिष्णुता और शिशुपाल

अपहरणभूषण कृष्ण

कष्ट की याचना कुन्ती की

भक्त का दुख

कृष्ण किसी के भक्त नहीं फिर भक्ति की महिमा कैसी

कृष्ण प्रेम की कसौटी

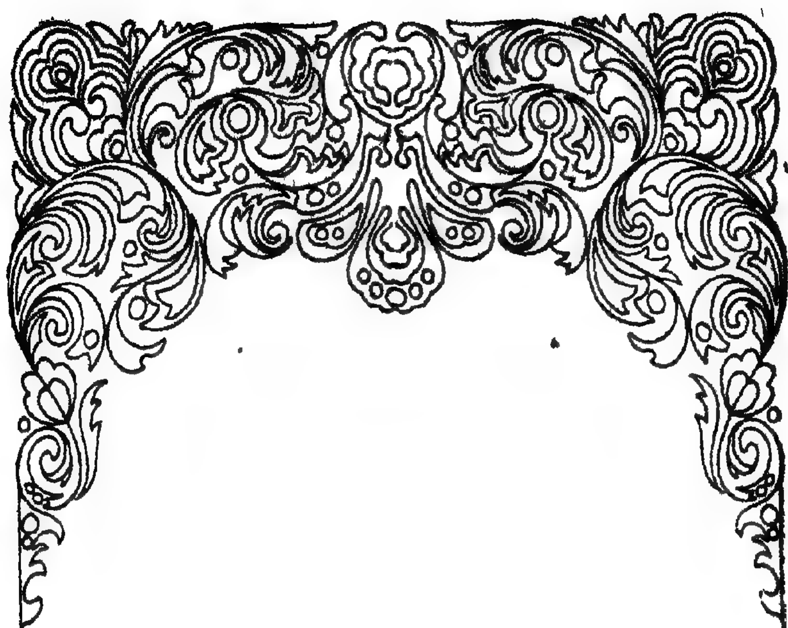
कृष्णार्जुन युद्ध

तटस्थता

क्राइस्ट का वक्तव्य

अति विनम्र ही अति कठोर





१

प्रश्न आचार्यश्री, कृष्ण आध्यात्मिक पुरुष थे। साथ ही उन्होंने राजनीति में भाग लिया। राजनीतिज्ञ के रूप में उन्होंने महाभारत के युद्ध में भीष्म के आगे शिखण्डी को खड़ा करके उन्हें धोखे से मरवाया। द्रोण को, 'अश्वत्थामा मरा', ऐसा झूठ बुलवाकर मरवाया। कर्ण को, जब रथ का पहिया फंस गया, तब निहत्थे को मरवाया। दुर्योधन को गदा प्रहार कर मरवाया उसकी जंघा पर। तो क्या धर्म ऐसी राजनीति में आयेगा? और, अगर

आयेगा तो राजनीति में यह चाल और यह छल-कपट खेलेगा ? क्या इससे जीवन में हम भी यह सीखें कि अपनी विजय के लिए इस प्रकार के कार्य जो धोखे से भरे हुए हो, कर सके ? तब, महात्मा गांधी ने साध्य की शुद्धता के साथ-साथ साधन की शुद्धता पर भी जो बल दिया, वह निरर्थक था ? क्या राजनीति में इसकी कोई आवश्यकता नहीं ?

उत्तर धर्म और अध्यात्म का थोडा-सा भेद सबसे पहले समझना चाहिए। धर्म और अध्यात्म एक ही बात नही है। धर्म जीवन की एक दिशा है। जैसे, राजनीति एक दिशा है। कला एक दिशा है, विज्ञान एक दिशा है। ऐसे ही धर्म जीवन की एक दिशा है। अध्यात्म पूरा जीवन है। अध्यात्म जीवन की दिशा नही है। समग्र जीवन अध्यात्म है। तो हो सकता है, धार्मिक व्यक्ति राजनीति मे जाने से डरे। आध्यात्मिक व्यक्ति डरेगा। धार्मिक व्यक्ति के लिए राजनीति कठिन पडे, क्योकि धार्मिक व्यक्ति ने कुछ धारणाएँ ग्रहण की है जो कि राजनीति के विपरीत है। आध्यात्मिक व्यक्ति किसी तरह की धारणाएँ ग्रहण नही करता। समग्र जीवन को स्वीकार करता है, जैसा है।

कृष्ण धार्मिक व्यक्ति नही, आध्यात्मिक व्यक्ति है। महावीर धार्मिक व्यक्ति है, बुद्ध धार्मिक व्यक्ति है इस अर्थ मे कि उन्होने जीवन की एक दिशा को चुना। उस दिशा के लिए उन्होंने जीवन की अन्य सारी दिशाओ को कुर्बान कर दिया। उन सबको उन्होने काट कर अलग कर दिया। कृष्ण आध्यात्मिक व्यक्ति हैं, इस अर्थ मे कि उन्होने पूरे जीवन को चुना है। इसलिए, कृष्ण को राजनीति डरा नही सकती। कृष्ण को राजनीति मे खडे होने मे जरा भी सकोच नही है। राजनीति भी जीवन का हिस्सा है। साथ-ही-साथ यह समझना जरूरी है कि जो लोग धर्म के नाम पर राजनीति को छोडकर हट गये है उन्होने राजनीति को ज्यादा अधार्मिक बनाने मे सहायता दी है। इसलिए, पहली बात तो यह समझ ले कि कृष्ण को जीवन के सब फूल और सब काटे एक साथ स्वीकृत है। जीवन मे उनका कोई चुनाव नहीं है। 'च्वाइसलेस' जीवन को उन्होंने बिना चुनाव के स्वीकार कर लिया है, जीवन जैसा है। फूल को ही नही चुनते हैं, काटे को भी मान लेते है। वह भी वहा है। आमतौर से हम समझते है कि गुलाब का जो फूल है, काटा इसका दुश्मन है। दुश्मन नही है। गुलाब के फूल की रक्षा के लिए ही काटा है। दोनो गहरे मे जुडे है। दोनो एक ही से सयुक्त है। दोनो की एक ही जड है। दोनो का एक ही प्रयोजन है। काटे को काट कर गुलाब बचा लेने की बहुत

लोगो की इच्छा होगी, लेकिन काटा गुलाब का हिस्सा है, यह उन्हे समझना होगा। फिर काटा और गुलाब दोनो को साथ ही बचाना होगा।

कृष्ण राजनीति को सहज ही स्वीकार करते है, वे उसमे खडे हो जाते है, उसकी उन्हे कोई कठिनाई नही है। दूसरा जो सवाल उठाया है, वह और भी सोचने जैसा है। वह इसलिए सोचने जैसा है कि कृष्ण ऐसे साधनो का उपयोग करते है जिनका औचित्य कोई भी सिद्ध नही कर सकेगा। झूठ का, छल का, कपट का उपयोग करते है। लेकिन, एक बात इसमे समझेंगे तो बहुत आसानी हो जायेगी।

जिन्दगी मे शुभ और अशुभ के बीच कभी भी चुनाव नही है, सिवाय सिद्धान्तो को छोडकर। जिन्दगी मे 'गुड और बैड' के बीच कोई चुनाव नही है सिवाय सिद्धान्तो को छोडकर। जिन्दगी मे सब चुनाव, कम बुराई, ज्यादा बुराई के बीच है। जिन्दगी के सब चुनाव 'रिलेटिव' है। सवाल यह नही है कि कृष्ण ने जो किया वह बुरा था, सवाल यह है कि अगर वह न करते तो क्या उससे भला घटित होता, कि और भी बुरा घटित होता ? चुनाव अच्छे और बुरे के बीच होते तब तो मामला बहुत आसान था, चुनाव अच्छे और बुरे के बीच नही है। चुनाव सदा 'लेसर ईविल और ग्रेटर ईविल' के बीच है। पूरी जिन्दगी ऐसी है।

मैने सुनी है एक घटना। एक चर्च का पादरी एक रास्ते से गुजर रहा है। जोर से आवाज आती है कि बचाओ, बचाओ, मर जाऊँगा। अँधेरा है, गलियारा है। वह पादरी भागा हुआ भीतर पहुँचता है। देखता है कि एक बहुत मजबूत आदमी एक बहुत कमजोर आदमी को छाती पर चढा बैठा है। पादरी चिल्लाकर कहता है कि हट, इस गरीब आदमी को क्यो दबा रहा है ? लेकिन वह हटता नही है। पादरी उस मजबूत आदमी को नीचे गिरा देता है। नीचे का आदमी है ऊपर निकल आता है और भाग खडा होता है। तब वह ताकतवर आदमी उससे कहता है कि तुम आदमी कैसे हो ? उस आदमी ने मेरी जेब काट ली थी, और जेब काटकर भाग रहा था। पादरी कहता है कि तूने यह पहले क्यो न कहा ? मै तो यह समझा कि तू ताकतवर है और कमजोर को दबाये हुए है, इसलिए मै समझा कि तू उसको मार रहा है। यह तो भूल हो गयी। यह तो शुभ करते अशुभ हो गया।

जिन्दगी मे जब हम शुभ करने जाते है तब भी देखना जरूरी है कि अशुभ तो न हो जायेगा ? इससे उल्टा भी देखना जरूरी है कि कुछ अशुभ करने से शुभ तो नही हो जायेगा। ऐसे ही कृष्ण के सामने जो चुनाव है वह कम बुरे और ज्यादा बुरे के बीच है। कृष्ण ने जिस-जिस छल-कपट का उपयोग किया उससे बहुत ज्यादा छल-कपट का उपयोग सामने का पक्ष कर रहा था, और कर सकता था। उस

सामने के पक्ष से लडने के लिए गाधी जी काम न आते । सामने का पक्ष गाधी जी को मिट्टी मे मिला देता। सामने का पक्ष साधारण बुरा नही था । असाधारण रूप से बुरा था । उस असाधारण रूप से बुरे के सामने भले की कोई जीत की सभावना न थी। गाधी जी को भी अगर हिन्दुस्तान मे हुकूमत हिटलर की मिलती तो पता चलता । हिन्दुस्तान मे हुकूमत हिटलर की नही थी। एक बहुत उदार कौम की थी । उस कौम मे भी अगर चर्चिल हुकूमत मे रहता तो आजादी मिलना बहुत मुश्किल बात थी । उसमे भी एटली के हुकूमत मे आने से बुनियादी फर्क पड गया ।

गाधी जी जिस साधन-शुद्धि की बात करते है वह समझने जैसी है । उचित ही है बात कि शुद्ध साधन के बिना शुद्ध साध्य कैसे पाया जा सकता है। लेकिन, इस जगत मे न तो कोई शुद्ध साध्य होता है और न कोई शुद्ध साधन होते है । यहा कम अशुद्ध, ज्यादा अशुद्ध ऐसी ही स्थितियाँ हैं। यहा पूर्ण स्वस्थ और पूण बीमार आदमी नही होते । कम बीमार और ज्यादा बीमार आदमी होते है। जिन्दगी मे सफेद और काला ऐसा नही है, 'ग्रे' कलर है जिन्दगी का । उसमे मफेद और काला सब मिश्रित है । इमलिए, गाधी जैसे लोग कई अर्थों मे 'यूटोपियन' है। कृष्ण जीवन के सीधे साफ निकट है । 'यूटोपिया' कृष्ण के मन मे नही है। जिदगी जैसी है उसको वैसा स्वीकार करके काम करने की बात है । फिर जिन्हे गाधी जी शुद्ध साधन कहते है वे भी शुद्ध कहा है । हो नही सकते । हा, मोक्ष मे कही हो सकते होगे। शुद्ध साधन और शुद्ध साध्य तो बात और है, इस जगत मे सभी कुछ मिट्टी से मिला-जुला है । इस जगत मे सोना भी है तो मिट्टी मिली हुई है। इस जगत मे हीरा भी है तो पत्थर का ही हिस्सा है । गाधी जी जिसे शुद्ध साधन समझते है वह भी शुद्ध साधन है नही ।

जैसे गाधी जी अनशन को शुद्ध साधन कहते है, मै नही कह सकता । कृष्ण भी नही कहेगे । क्योकि दूसरे आदमी को मारने की धमकी देना अगर अशुद्ध है तो स्वय के मर जाने की धमकी देना शुद्ध कैसे हो सकता है ? मै आपकी छाती पर छुरा रख दूं और कहू कि मेरी बात नही मानोगे तो मार डालूँगा, यह अशुद्ध है। और मैं अपनी छाती पर छुरा रख लूँ और कहूँ कि मेरी बात नही मानेगे तो मैं मर जाऊँगा, यह शुद्ध हो जायेगा ? छुरे की सिर्फ दिशा बदलने से शुद्धि हो जाती है ? यह भी उतना ही अशुद्ध है । और एक अर्थ मे, पहले वाले मामले से यह ज्यादा नाजुक रूप से अशुद्ध है। क्योकि पहली बात मे आदमी कह सकता है, ठीक है मार डालो, नही मानेगे । उसको एक मौका है, एक 'मारल अपर्चुनिटी'

है। वह मर तो सकता है न ! लेकिन, दूसरे मौके मे आप उसको बहुत कमजोर कर जाते है। आपको मारने की जिम्मेदारी शायद वह न भी लेना चाहे। अम्बेडकर के खिलाफ गाधी जी ने अनशन किया। अम्बेडकर झुके बाद मे--इसलिए नही कि गाधी जी की बात सही थी, बल्कि इसलिए कि गाधी जी को मारना उतनी-सी बात के लिए उचित न था। उतनी हिसा अम्बेडकर लेने को राजी न हुए। बाद मे अम्बेडकर ने कहा कि गाधी जी अगर समझते हो कि मेरा हृदय परिवर्तन हो गया तो गलत समझते है। मेरी बात ठीक है और गाधी जी की बात गलत है। अब भी मै अपनी बात पर टिका हूँ। लेकिन, इतनी-सी जिद्द के पीछे गाधी जी को मारने की हिसा मै अपने ऊपर न लेना चाहूँगा। अब सोचना जरूरी है कि शुद्ध साधन अम्बेडकर का हुआ कि गाधी का हुआ ? इसमे अहिसक कौन है ? मै मानता हूँ कि अम्बेडकर ने ज्यादा अहिसा दिखलायी। गाधी जी ने पूरी हिसा की। वह आखिरी दम तक लगे रहे जब तक अम्बेडकर राजी नही हुआ।

गाधी जी के साधन शुद्ध नही है। दिखायी शुद्ध पडते है। और मै कहता हूँ कि कृष्ण ने जो भी किया वह शुद्ध है, तुलनात्मक अर्थों मे, 'रिलेटिव' अर्थों मे सापेक्ष अर्थों मे। जिनसे वे लड रहे थे, उनके सामने जो कृष्ण ने किया उसके अतिरिक्त और कोई करने का उपाय न था। वे शस्त्रो से नही मार सकते थे उन्हे स्वय। वैसे शस्त्रों से ही मार रहे है, क्योकि युद्ध मे छल और कपट शस्त्र है। और जब सामने वाला दुश्मन उनका पूरा उपयोग करने की तैयारी रखता हो तो अपने को कटवा देना सिवाय नासमझी के और कुछ भी नही है। कृष्ण किसी भले आदमी को धोखा नही दे रहे है। कृष्ण किसी महात्मा को धोखा नही दे रहे हैं। जिनका गैरमहात्मापन हजार तरह से जाचा जा चुका है उनके साथ ही वह यह व्यवहार कर रहे है। कृष्ण ने सारे उपाय कर दिये थे युद्ध के पहले कि लोग राजी हो जाय। यह युद्ध न हो। सब उपाय के बावजूद, कोई मार्ग न छूटने पर यह युद्ध हुआ है। और जिन्होने सब तरह की बेइमानिया की हो पीछे, जिनकी पूरी-की-पूरी कथा बेइमानियो, धोखे और चालबाजी की हो उनके साथ कृष्ण अगर भलेपन का उपयोग करे तो मै मानता हूँ कि महाभारत के परिणाम दूसरे हुए होते। उसमे कौरव जीते होते और पाडव हारे होते। और, बात यह है सबसे बडी कि हम कहते तो यही है कि 'सत्यमेव जयते'--सत्य जीतता है। लेकिन, इतिहास कुछ और कहता है। इतिहास जो जीत जाता है, उसी को सत्य कहने लगता है। अगर कौरव जीत गये होते तो पण्डित कौरवो की कथा लिखने के लिए राजी हो गये होते और हमें पता भी नही चलता कि कभी पाण्डव भी थे और कृष्ण भी

थे। कथा बिल्कुल और होती। कृष्ण ने जो किया, वह मैं मानता हूँ, सामने जो था उसको देखते हुए जो किया जा सकता था, 'एक्चुअलिटी' के भीतर, वास्तविकता के भीतर जो किया जा सकता था, वही किया।

साधन शुद्धि की सारी बाते आकाश मे सम्भव है। पृथ्वी पर, कैसे भी साधन का उपयोग किया जाय वह थोडा-बहुत अशुद्ध होगा। अगर साधन पूरा शुद्ध हो जाय तो साध्य बन जायेगा। साध्य तक जाने की जरूरत न रह जायेगी। अगर साधन पूरा शुद्ध है तो साध्य और साधन मे फर्क ही न रह जायेगा, वह एक ही हो जायेंगे। साधन और साध्य का फर्क ही इसलिए है कि साधन अशुद्ध है और साध्य शुद्ध है। इसलिए, अशुद्ध साधन से कभी शुद्ध साधन पूरी तरह मिलता नही, यह भी सच है। साध्य मिलते ही कब है पृथ्वी पर ? सिर्फ आकाक्षा होती है पाने की, मिलते तो कभी नही है। गाधी जी भी यह कहकर नही मर सकते है कि मै पूरा अहिंसक होकर मर रहा हूँ। गाधी जी यह भी कहकर नही मर सकते है कि मै पूरे ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होकर मर रहा हूँ। न यह कह सकते हैं कि मैने सत्य को पा लिया और मर रहा हूँ। सत्य के प्रयोग करते ही मरते है। शुद्ध अगर साधन है, तो साध्य मिल क्यो नही गया ? बाधा क्या रह गयी ? अगर साधन शुद्ध है तो साध्य मिल ही जाना चाहिए था। नही, साधन शुद्ध हो नही सकते।

स्थितियाँ करीब-करीब ऐसी है, जैसे हम पानी मे एक लकडी को डाले तो वह तिरछी हो जाय। पानी मे लकडी को सीधा बनाये रखने का कोई उपाय नही है। लकडी तिरछी होती नही, दिखायी तिरछी पडने लगती है। पानी का जो 'मीडियम' है, वह लकडी को तिरछा कर जाता है। पानी के बाहर लकडी सीधी ही होती है। पानी के भीतर डाली कि तिरछी हो जाती है। इस विराट सापेक्ष के जगत मे 'इन दिस रिलेटिव वर्ल्ड', जहा सब चीजे तुलना मे है, वहा सब चीजें तिरछी हो जाती है। इसलिए, सवाल यह नही है कि हम सीधे हो। सवाल यह है कि हम कम-से-कम तिरछे हो। बस इससे ज्यादा कोई सवाल नही है। और, कृष्ण मुझे मालूम पडता है कि कम-से-कम तिरछे आदमी है। यह बडे मजे की बात है कि ऊपर से देखने से हमे कुछ और दिखायी पडेगा, हमे गाधी जी बहुत सीधे आदमी दिखायी पडेंगे, गाधी जी मेरे हिसाब से बहुत तिरछे आदमी है। वह कई बार कान को बिल्कुल सिर घुमाकर पकडते हैं। दूसरी तरफ से पकडते है। गाधी जी काम करेगे दूसरो को दबाने का तो अपने को दबाकर करेगे। बडी लम्बी यात्रा लेगे। दबायेंगे दूसरे को ही, लेकिन प्रयोग जो वे करेंगे, अपने

को दबाकर उसको दबायेंगे। कृष्ण उसको सीधा दबा देंगे। लेकिन, हमे आमतौर से ख्याल में नही आता। क्योकि, चीजे हम जैसी पकड लेते हैं वैसे हम माने ही चले जाते है।

प्रश्न . आचार्यश्री, कृष्ण के जमाने मे एक पौण्ड्रक नामक राजा था, जो साक्षात कृष्ण को नकली कृष्ण जाहिर कर अपने को असली कृष्ण मानता था। बुद्ध, महावीर आदि अवतारो के जीवन मे या क्राइस्ट के समय मे ऐसी साम्य रखने वाली कुछ घटना घटी है ?

उत्तर हा, घटी है। महावीर के समय गोसालक नाम के व्यक्ति ने घोषणा की कि असली तीर्थंकर मै हूँ। महावीर असली तीर्थंकर नही है। क्राइस्ट के समय मे भी घटी है। क्योकि, यहूदियो ने सूली ही इसलिए दी कि एक बढई का लडका नाहक अपने को क्राइस्ट कह रहा है, यह असली क्राइस्ट नही है। असली क्राइस्ट अभी पैदा होने वाला है। यहूदी परपरा मे ऐसा ख्याल था कि क्राइस्ट नाम का एक पैगम्बर पैदा होने वाला है। बहुत से प्रोफेट ने उसकी घोषणा की थी। इज-कील ने घोषणा की थी, ईसिया ने घोषणा की थी, उन सब पुराने पैगम्बरो ने घोषणा की थी कि क्राइस्ट नाम का एक पैगम्बर आने वाला है। फिर, क्राइस्ट के ठीक जन्मने के पहले 'जोन द बेपटिस्ट' नें गाव-गाव घूमकर घोषणा की कि क्राइस्ट आने वाला है। क्राइस्ट का मतलब मसीहा। मसीहा आने वाला है जो सबका उद्धार करेगा। और एक दिन जीसस नाम के इस जवान ने घोषणा कर दी कि मै वह मसीहा हूँ। यहूदियो ने मानने से इन्कार कर दिया कि यह आदमी वह मसीहा नही है। सूली दी गयी कि तुम झूठी घोषणा कर रहे हो। तुम मसीहा नही हो। दूसरे व्यक्ति ने ठीक जीसस के सामने दावा नही किया। लेकिन, बहुत लोगो ने यह दावा किया कि तुम मसीहा नही हो, तुम क्राइस्ट नही हो, हम तुम्हे क्राइस्ट मानने से इन्कार करते है। क्यो इन्कार किया ? क्योकि, वह कहते थे कि कुछ लक्षण है जो तुम पूरे करो। कुछ चमत्कार हो, जो तुम दिखाओ। उनमे एक चमत्कार यह भी था कि जब हम तुम्हे सूली लगाये तो तुम जिन्दा सूली से उतर आओ। जीसस के जो भक्त थे, वह मानते थे कि सूली लग जाने के बाद जीसस उतर आयेंगे और चमत्कार घटित हो जायेगा, फिर लोग मान लेगे। बडी मुश्किल है तय करना यह बात, क्योकि जीसस के भक्त अब भी कहते है कि तीन दिन बाद वे देखे गये। लेकिन, जिन्होने देखा, वह दो औरते थी, दो स्त्रिया थी जो जीसस को बहुत प्रेम करती थी। उन्होंने उन्हे देखा। विरोधी उनके वक्तव्य को मानने को तैयार नही हैं। विरोधियो का ख्याल है कि वे इतनी प्रेम से भरी

थी कि जीसस उन्हे दिखायी पड सकते हैं, भले जीसस न हो। लेकिन, कोई यहूदी का वक्तव्य ऐसा नही है कि जीसस उतर आये सूली से और प्रमाण उन्होंने दे दिया। वह प्रमाण नही दिया जा सका। इसलिए, उस क्राइस्ट की प्रतीक्षा यहूदी अभी भी करते हैं जिसकी घोषणा पैगम्बरो ने की है। लेकिन, महावीर के वक्त में तो बहुत ही स्पष्ट गोसालक ने घोषणा की कि मै असली तीर्थंकर हूँ। महावीर असली तीर्थंकर नही है। गोसालक को भी मानने वाले लोग थे। थोडी सख्या न थी, काफी सख्या थी। और यह विवाद लम्बा चला कि कौन असली तीर्थंकर है, क्योकि जैन परम्परा मे घोषणा थी कि चौबीसवा तीर्थकर आने वाला है। वह अतिम तीर्थंकर होने को था। तेईस हो चुके थे। अब एक ही आदमी तीर्थंकर हो सकता था। न केवल गोसालक ने घोषणा की कि वह चौबीसवा तीर्थंकर है, एक बडा वर्ग था जो उसे चौबीसवा तीर्थंकर मानता था। यह तो था ही और भी पाच छह लोग थे जिनको कुछ लोग मानते थे कि वह असली तीर्थंकर हैं। हालाकि उन्होने कभी घोषणा नही की। मखलीगोमाल तो स्वय घोषणा करता था कि वह तीर्थंकर है। लेकिन सजय, विलेठीपुत्र, अजित केश कबल, इनके भी भक्त थे जो मानते थे कि ये असली तीर्थंकर हैं। ऐसे बुद्ध को जो मानते थे उनका भी ख्याल था कि असली तीर्थंकर बुद्ध है। बुद्ध के मानने वालो ने महावीर का बहुत मजाक उडाया था।

इसकी बहुत सम्भावना है, सदा सम्भावना है कि कृष्ण-जैसा व्यक्ति जब पैदा हो, या जब समाज ऐसे व्यक्ति की किन्ही घोषणाओ के आधार पर प्रतीक्षा करता हो तो और लोग भी दावेदार हो जाय। इसमे बहुत कठिनाई नही है। लेकिन, समय तय कर देता है कि दावेदार सही थे कि नही थे। सच तो यह है कि जब कोई दावा करता है तभी वह कह देता है कि वह सही आदमी नही है। दावेदारी गलत आदमी करता है। कृष्ण को दावा करने की जरूरत नही कि मै कृष्ण हूँ, वह है। किसी को दावे की जरूरत पडती है, इसका मतलब यह है कि उसके होने से सिद्ध नही होता कि वह कृष्ण है, उसे दावा भी करना पडता है। महावीर दावा नही करते कि मै तीर्थंकर हूँ। वे है। लोग उन्हे पहचान लेते है। गोसालक दावा करता है। उसे खुद ही शक है। असल मे हमारी आत्महीनता ही दावा बनती है। अगर कोई आदमी दावा करता है कि मै महात्मा हूँ, तो उसका दावा ही कहता है कि वह महात्मा नही होगा। दावेदारी हमेशा उल्टी खबर देती है। लेकिन, यह बिल्कुल स्वाभाविक है, मानवीय है कि कोई दावा कर सके।

प्रश्न : जीसस ने क्यों दावा किया ?

उत्तर जीसस ने दावा नही किया कि मैं क्राइस्ट हूँ। जीसस ने तो दावे बहुत दूसरे किये। क्राइस्ट होने का दावा नही किया। जीसस के दावे वक्तव्यो मे नही है, व्यक्तित्व में है। लोगो ने पहचाना कि यह आदमी क्राइस्ट है। दूसरे लोगों ने घोषणा की कि यह आदमी क्राइस्ट है। जिस आदमी का मैंने नाम लिया 'जोन दि बैपटिस्ट', जीसस के पहले बहुत अद्भुत सत हुआ। उसने घोषणा कर रखी थी कि क्राइस्ट आने वाला है और मै सिर्फ अगुवा हूँ जो पहले खबर देने आया हूँ। जिस दिन क्राइस्ट आ जायेगा उस दिन मै विदा हो जाऊँगा। वह जोर्डन नदी के किनारे लोगो को दीक्षा देता था। हजारो लोग उससे दीक्षा लेते थे। जीसस भी उससे दीक्षा लेने गये। जीसस ने भी सत जोन से दीक्षा ली। जोर्डन नदी मे वे खडे हुए, गले डूबे पानी मे, जोन ने दीक्षा दी और कहा कि अब तुम अपना काम सम्हालो, मै जाता हूँ। इस बात से सारे मुल्क मे खबर फैल गयी कि क्राइस्ट आ गया है। और जोन उस दिन से फिर नही देखा गया। उसका कोई पता नही चला। खबर पूरे मुल्क मे फैला गयी कि वह जोन जो चिल्ला चिल्लाकर गाव-गाव मे कहता था कि क्राइस्ट आने वाला है और जिस दिन आ जायेगा, उस दिन मेरा काम खत्म हो जायेगा। मै उसके आने तक रुका हूँ। मै सिर्फ आगे की सडक साफ कर रहा हूँ, पाइलट का काम कर रहा हूँ। वह उसी दिन से नदारद हो गया। अब लोग जीसस से पूछने लगे कि आप कौन हैं? दावा उन्होने नही किया। लेकिन, झूठ भी कैसे बोला जा सके? तो, उन्होने जो वक्तव्य दिये उन वक्तव्यो मे उन्होने कहा कि मैं वही हूँ जो सदा से है। मै वही हूँ, जो पैगम्बर नही हुए, उसके पहले भी था। अब्राहम के पहले जो मौजूद था, मैं वही हूँ। जब लोगो ने पूछा कि तुम कौन हो? तो उन्होने कहा, कि तुम जिसे खोजते हो, मै वही हूँ। मगर, इसमे दावा नही था कोई। इसमे लोगो ने पूछा था और उत्तर देना जरूरी था।

प्रश्न हिन्दू अवतार के क्रम मे मत्स्यावतार से शुरू होकर रामादि अशावतार आते है। फिर, पूर्णावतार कृष्ण के बाद बुद्धावतार होता है। कल्कि की आगाही भी समाविष्ट है। तो, बुद्ध कालानुक्रम की दृष्टि से पूर्णावतार क्यो नहीं माने गये? उत्क्रांति की दृष्टि से कृष्ण का बुद्ध के पूर्व आ जाने का कोई राज हो तो बतायें। काल की गति को यहां वर्तुलाकार कहने मे किस हद तक औचित्य है?

उत्तर अवतार आशिक भी उतना ही अवतार है जितना पूर्ण। अवतार होने मे कोई फर्क नही। अवतार से तो मतलब इतना ही है कि परमात्म चेतना

प्रकट हुई। वह कितने आयामो में प्रकट हुई, यह बात दूसरी है। कृष्ण का अवतार पूर्ण अवतार इस अर्थों मे है कि जीवन के समस्त आयामो मे, जीवन के सब 'डायमेंशस' मे उनका स्पर्श है। बुद्ध का अवतार फिर पूर्ण अवतार नही है। कल्कि अवतार भी पूर्ण अवतार होने वाला नही है। अवतरण की जो प्रक्रिया है, चेतना का जो उतरना है वह तो पूरा होगा। लेकिन, वह आयामो का स्पर्श नही करेगा। इसके कारण है— बहुत कारण है

समय की जो धारा है, विकास का जो क्रम है, साधारणत ऐसा ही होना चाहिए कि पूर्ण अवतार अन्त मे आये। विकास के क्रम मे पूर्णता अन्त मे आनी चाहिए। लेकिन, विकास का जो क्रम है, अवतार उस क्रम के बाहर से आता है। अवतार का अर्थ है 'पैनीट्रेशन फ्रौम द बियोन्ड'। वह पार से उतरता है। वह हमारी विकास प्रक्रिया का अग नही है। वह हमारे विकास मे विकसित हुआ नही है। ऐसा उदाहरण से समझे हम सारे लोग यहा बैठे है। सूरज निकला है। हम सब आखे बन्द किये बैठे है। किसी ने थोडी-सी आख खोली और थोडी-सी रोशनी दिखायी पडी। फिर, किसी ने पूरी आख खोली और पूरी रोशनी दिखायी पडी। इसमे कोई विकास क्रम नही है। आख पूरी कभी भी खोली जा सकती है। और, पूरी आख खोलने के बाद पीछे वाला भी पूरी आख खोले, इसकी कोई अनिवार्यता नही है। कृष्ण का जो व्यक्तित्व है वह पूरा खुला है। इसलिए पूरे परमात्मा को समा सका है। बुद्ध का व्यक्तित्व आशिक खुला है। इसलिए अश परमात्मा को समा सका है। अगर आज भी कोई पूरे व्यक्तित्व को खोलेगा तो पूरा परमात्मा समा जायेगा। और, अगर कल कोई व्यक्तित्व को बिल्कुल बन्द रखेगा तो परमात्मा बिल्कुल नही समायेगा। इसमे कोई 'इवोल्यूशनरी' क्रम नही है। हो भी नही सकता। विकास का जो क्रम है, उस क्रम को अगर हम ठीक से समझे तो सिर्फ जनरल, सामान्य अर्थों मे पकड सकते है, व्यक्तिवादी अर्थों मे नही पकड सकते।

बुद्ध को हुए बहुत दिन हो गये। हम तो बुद्ध के ढाई हजार साल बाद हुए है, लेकिन इससे हम यह नही कह सकते कि बुद्ध से हम ज्यादा 'इवाल्व्ड' है। हा, इतना हम कह सकते है कि बुद्ध के समाज से हमारा समाज ज्यादा 'इवाल्व्ड' है। असल मे विकास दोहरा चल रहा है समूह का, व्यक्ति का। समूह के पहले भी व्यक्ति विकसित हो सकता है। हा, जो अपने को विकसित करने की कोई कोशिश नही करेंगे वह समूह के साथ घसिटते हुए विकसित होते है। और समूह के सभी व्यक्ति एक जैसे विकसित नही हो रहे है, प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग धारा मे विकसित हो रहा है। हम यहा इतने लोग बैठे है, लेकिन सभी विकास की एक

ही पायरी पर नहीं हैं। कोई विकास की पहली सीढी पर खडा है, कोई विकास की दसवी सीढी पर खडा है, कोई विकास का अतिम छोर भी छू सकता है। समूह की बाबत सामान्य नियम सत्य होते है। विकास का नियम समूह की बाबत है, इसे उदाहरण से समझें।

यह हम कह सकते है कि दिल्ली मे पिछले दस वर्षों मे प्रतिवर्ष कितने लोग सडक पर 'एक्सीडेंट' से मरे। हर वर्ष अगर पचास आदमी मरते है, उसके पहले वर्ष पैंतालीस मरे थे, फिर उसके पहले चालीस मरे तो हम कह सकते है कि अगले वर्ष मे पचपन आदमी सडक पर कार से मरेगे और बहुत दूर तक यह सही हो जायेगा। लेकिन, हम यह नही कह सकते कि वह पचपन आदमी कौन-से होगे। हम खोजकर नही बता सकते कि ये पचपन आदमी मरेगे। अगर दिल्ली की आबादी बीस लाख है तो पचपन मे हो सकता है चौवन मरें या हो सकता है छप्पन मर जाय, लेकिन अगर आबादी बीस करोड है तो पचपन का आकडा और करीब आ जायेगा। और, अगर आबादी अनन्त है, तो पचपन का आकडा बिल्कुल 'फिक्स्ड' हो जायेगा। यानी हम बिल्कुल कह सकते है कि पचपन मरेगे, न साढे चौवन मरेगे, न साढे पचपन मरेगे। जितनी बडी सख्या होती जायेगी, सामान्य 'स्टेटिक्स' उतने ही सत्य हो जाते है। जितना व्यक्ति को हम पकडते है उतने 'स्टेटिक्स' गलत हो जाते है।

विकास की जो धारा है वह समूह की धारा है। इसमे व्यक्ति पहले हो भी जाते है। जैसे जब वसन्त आता है तो किसी एक पक्षी की चहचहाहट से घोषणा हो जाती है वसन्त के आने की, लेकिन सभी पक्षियो की चहचहाहट मे वक्त लग जाता है। वसन्त आता है तो एक फूल भी खिलकर खबर कर देता है कि वसन्त आ रहा है। लेकिन, सभी फूल के खिलने मे वक्त लग जाता है। आता तो वसन्त पूरा तभी है जब सब फूल खिलते है। लेकिन, कुछ फूल पहले भी खिल जाते है। एक फूल के खिलने से हम यह नही कह सकते कि वसन्त आ गया। लेकिन, इतना कह सकते है कि वसन्त की पहली पगध्वनि आ गयी। व्यक्तिगत फूल तो पहले भी खिल सकते हैं, बीच मे भी खिल सकते है, लेकिन सब फूल वसन्त मे खिल जाते है। कृष्ण का बीच मे पूर्ण हो जाना सिर्फ इस बात की सूचना है कि कृष्ण अपने व्यक्तित्व को पूरा खोल सके। बुद्ध अपने व्यक्तित्व को पूरा नही खोलते है। यह भी बुद्ध का अपना निर्णय है। अगर उन्हे कोई पूर्ण कहने को कहे भी, अगर कोई उनसे कहे भी कि तुम्हारे कृष्ण होने की सभावना है तो बुद्ध इन्कार कर देंगे। इसमे बुद्ध कुछ पीछे पड जाते है कृष्ण से, ऐसा नही है, यह बुद्ध का अपना चुनाव

है। कृष्ण का अपना चुनाव है। चुनाव के मामले मे दोनो मालिक हैं। और उनका अपना निर्णय है। बुद्ध चाहते है जैसा, वैसे वे खिलते हैं। कृष्ण जैसा चाहते हैं वैसे वे खिलते है। कृष्ण को पूरा खिलने का स्वभाव है, बुद्ध को जैसा खिलना है उसमे ही पूरा खिलने का स्वभाव है। इसमे कोई विकास की धारा नही है। व्यक्तियो पर विकास लागू नही होता, विकास सिर्फ समूह पर लागू होता है।

प्रश्न आचार्यजी, नौ सौ निन्यानबे गाली सहने वाले कृष्ण आगे की गाली भी न सुन सके और चक्र से शिशुपाल का वध कर बैठे। इससे क्या यह तय नहीं होता कि पीछे दी गयी गालियो को सिर्फ प्रकट रूप से ही सह रहे थे, किन्तु अन्तर से असहिष्णु थे?

उत्तर ऐसा सोचा जा सकता है। क्योकि, ऐसे हम सब हैं। अगर हम चौथी गाली पर बिगड उठते हैं तो हम भली भांति जानते है कि बिगड तो हम पहली गाली पर गये थे। लेकिन, तीन तक साहस रखा, तीन तक सहिष्णुता थी, फिर हम चुक गये, फिर हमारी सहिष्णुता और न सह सकी और, चौथी गाली पर हम प्रकट हो गये। लेकिन, इससे उल्टा भी हो सकता है। और कृष्ण बडे उल्टे आदमी है। ठीक हमारे जैसे आदमी नही हैं। इसलिए उल्टे होने की सभावना ही उनकी ज्यादा है। ऐसा नही कि नौ सौ निन्यानवे गाली सहने तक ही उनकी सहिष्णुता थी– नौ सौ निन्यानवे गालिया काफी गालिया है। और, जो नौ सौ निन्यानवे सह सकना होगा वह हजारवी नही सह सकता होगा, सोचना जरा मुश्किल है। बडा सवाल कृष्ण के लिए यह नही है कि उनकी सहिष्णुता चुक गयी, बडा सवाल यह है कि सामने का जो आदमी है, अब उसकी सीमा आ गयी। अब इससे ज्यादा सहे जाना सहिष्णुता का सवाल नही है, इससे ज्यादा सहे जाना बुराई को बनाये रखने का सवाल है। इससे ज्यादा सहे जाना अब अधर्म को बचाना होगा। क्योकि, इतना तो बहुत ही साफ है कि नौ सौ निन्यानवे गालिया काफी है। जीसस से कोई पूछता है एक शिष्य कि कोई हमे एक बार चाटा मारे तो हम क्या करें? जीसस कहते है, सहो। वह पूछता है, कोई हमे सात बार चाटा मारे, तो हम क्या करे? जीसस कहते है, सात बार नही सतहत्तर बार सहो। उस आदमी ने आगे पूछा नही इसलिए हमे पता नही कि जीसस क्या कहते है। उसने आगे पूछा नही कि अठहत्तरवी बार? लेकिन, मैं मानता हूँ कि जीसस कहते कि अठहत्तरवी बार बिल्कुल मत सहो। क्योकि, तुम्हारी सहिष्णुता ही काफी नही है, दूसरे आदमी का अधर्म भी विचारने योग्य है। मैंने एक मजाक सुना है

मैंने सुना है कि जीसस को मानने वाला एक भक्त एक गाव से गुजरा है और किसी ने एक चांटा उसके चेहरे पर मार दिया। जीसस का वचन है कि जब कोई तुम्हारे बायें गाल पर चाटा मारे तो दाया उसके सामने कर दो। उसने दाया गाल उसके सामने कर दिया। उस आदमी ने, जैसा कि उस बिचारे ने सोचा भी नही था, दाये पर भी चाटा और करारा मारा। तब वह बडी मुश्किल मे पडा। क्योकि, इसके आगे जीसस का कोई वक्तव्य नही है कि अब वह क्या करे, तो उसने उठाकर एक हाथ उस दुश्मन को मारा। उस *आदमी ने कहा कि अरे तुम तो जीसस को मानते हो और जीसस ने कहा है कि कोई तुम्हारे एक गाल पर चाटा मारे तो दूसरा सामने कर दो। उसने कहा, लेकिन तीसरा कोई गाल नही है। अब मै छुट्टी लेता हूँ जीसस से, क्योकि दो गाल तक जीसस के साथ चला, तीसरा कोई गाल नही है मेरा। तीसरा गाल तुम्हारे पास है। मेरे दोनो गाल चुक गये। अब तुम्हारे गाल पर ही चाटा पड सकता है। एक वक्त है, जब तीसरा गाल आ जाता है। हमे ऐसा ही लगेगा, क्योकि हम चुक जाते है जल्दी। उसमे कृष्ण नही चुक जाते।

लेकिन, सब चीजो की सीमाए है और सीमाओ के आगे चीजो को सहे जाना खतरनाक है, अधर्म है। सीमाओ के आगे चीजो को सहे जाना बुराई को प्रोत्साहन है। अगर मै सहिष्णु हूँ तो इसीलिए हूँ कि असहिष्णुता बुरी है। और तो कोई कारण नही है। लेकिन, मैं तो बुरा होने से बच जाऊ और दूसरे को बुरा होते ही जाने दूँ, यह दूसरे पर दया नही हुई। यह दूसरे पर अति कठोरता हो गयी। एक जगह दूसरे को बुरा होने से रोकना पडेगा। ऐसा मै देखता हूँ।

कृष्ण के पूरे व्यक्तित्व को देखकर ऐसा लगता है कि उनकी सहिष्णुता को चुकाना बहुत मुश्किल है। लेकिन, ऐसा भी लगता है कि बुराई को प्रोत्साहन देना उनके लिए असभव है। इन दोनो के बीच कही उन्हे 'गोल्डन मीन' खोजनी पडती है। कही उन्हे स्वर्ण नियम खोजना पडता है जहा से आगे चीजे बदल जाती है।

प्रश्न : कृष्ण को आप क्या अपहरणभूषण नहीं कहेंगे? खुद ने तो रुक्मिणी भद्रा का अपहरण किया था, लेकिन अर्जुन को भी बहन सुभद्रा का अपहरण करने को लालायित किया।

उत्तर असल मे समाज की व्यवस्थाएँ जब बदल जाती है तो बहुत-सी बाते बेतुकी हो जाती है। एक युग था, जब किसी स्त्री का अपहरण न किया जाय तो उसका एक ही मतलब था कि उस स्त्री को किसी ने भी नही चाहा, या कि उसकी कुरूपता सुनिश्चित है। एक युग था, जब सौंदर्य का सम्मान अपहरण था। अब

वह युग नही है। लेकिन, आज भी, अगर युनिवर्सिटी केम्पस मे किसी लडकी को कोई भी धक्का नही मारता तो उसके दुख का कोई अन्त नही। और जब कोई लडकी आकर दुख प्रकट करती है कि उसे बहुत धक्के मारे जा रहे रहे है, तब उसके चेहरे को गौर से देखे, उसके रस का कोई अन्त नही। स्त्री चाहती रही है कि कोई अपहरण करने वाला मिले। कोई उसे इतना चाहे कि चुराना मजबूरी हो जाय। कोई उसे इतना चाहे कि मागे ही नही, चुराने को तैयार हो जाय।

कृष्ण जिस युग मे थे उस युग को समझेंगे तो यह बात ख्याल मे आ सकेगी। मै मानता हूँ कि वह हिम्मतवर युग था। यह भी कोई बात है कि पचाग और पत्रा दिखाकर कोई विवाह कर ले। लेकिन, कृष्ण जब किसी को उत्प्रेरित भी कर रहे है अपहरण के लिए, तो इसीलिए कि वह कहते है कि प्रेम इतनी बडी चीज है कि अगर वह है तो अपरहरण भी किया जा सकता है, दाव लगाया जा सकता है। प्रेम कोई नियम नही मानता। और युग था वह, जो प्रेम का युग था। जिस दिन नियम शुरू हो जाते है उस दिन मानना चाहिए कि प्रेम की शक्ति शिथिल हो गयी है। अब प्रेम बहुत चुनौतिया नही लेता। दाव नही लगाता। उस युग के पूरे-के-पूरे ढाचे को समझेंगे तो ख्याल मे आयेगा। कृष्ण किसी विशेष युग मे पैदा हुए है। उस युग की व्यवस्था का हमे ख्याल नही है। हमारे युग की व्यवस्था को हम उनपर थोपने जायेंगे तो वह कई बार अनैतिक मालूम पडने लगेंगे। मुझे भी लगता है कि शौर्य के युग तब जिन्दगी मे होते है, जब जिन्दगी मे शान होती है। तेज होता है तो चुनौती के और दाव के युग होते है। शिथिल और मरे हुए समाज की जिन्दगी मे सब चुनौती खो जाती है और सब ढीला-ढाला हो जाता है। हजार तरह की नीतिया बनती है, जो मुर्दा नीतिया होती है। मै तो कहूँगा कि कृष्ण अगर अपहरण करके न लाये किसी स्त्री को, और उस स्त्री को बगैर खबर भेजे उसके पिता के हाथ पैर पडे, सब उपाय करे, तो उस स्त्री का अपमान होगा, उस युग मे अपमान होगा। वह स्त्री इसे पसन्द न करती। वह कहती कि इतनी भी हिम्मत नही है कि मुझे चुरा सको, तो छोडो यह बात।

हमे ख्याल नही है, आज भी, युग बदल जाते है, लेकिन कुछ ढाचे चलते चले जाते है। आज भी जिसे हम बारात कहते है, किसी दिन प्रेमी के साथ गये हुए सैनिक थे। और, जैसे हम आज घोडे पर बिठाते है दूल्हे को—दूल्हे को घोडे पर बिठाना बिल्कुल बेमानी है, आज कोई मतलब नही है—एक छुरी भी लटका देते है उसकी बगल मे, वह कभी तलवार थी, और कभी वह घोडा किसी को चुराने गया था। और कुछ साथी थे, जो उसके साथ गये थे, वह बारात थी।

और, आज भी आपको पता होगा कि जब बारात आती है तो लडकी की घर वाली स्त्रिया गालियां देना शुरू करती हैं। कभी सोचा कि वह गालिया क्यों देती हैं। जिसके घर की लडकी चुराई जा रही होगी उसकी ओर से गालिया दी गयी होगी। लेकिन, अब काहे के लिए गालिया दे रही है? अब तो वह खुद ही इन्तजाम किये हुए हैं सब। आज भी लडकी का पिता झुकता है। अब कोई कारण नही है लडकी के पिता के झुकने का। कभी उसे झुकना पडा था। कभी जो छीन कर ले जाता था, जो विजेता होता था उसके सामने झुक जाना पडता था। वह कभी के नियम थे जो अब भी सरकते हुए मुर्दा हालत मे चलते चले जाते हैं।

प्रश्न आचार्यश्री, एक बार कृष्ण इन्द्रप्रस्थ से द्वारका जा रहे हैं तब कुन्ती मिलती है। 'विपद सन्तु . ' कुती कृष्ण के पास कष्ट की याचना करती है। ताकि कष्ट, कृष्ण-दर्शन करा सके। मगर आनन्दवादी कृष्ण हसते हैं, समझाते भी नहीं कि कष्ट-याचना ठीक नहीं। इसका क्या तात्पर्य है? और यह भी कहते है कि मै जिस पर कृपा करना चाहता हूँ उसे दुख दे ही देता हूँ।

उत्तर भक्त का भगवान से कष्ट के लिए प्रार्थना करना बडा अर्थपूर्ण है, दो तीन कारणो से। एक तो, भगवान से सुख की प्रार्थना करना कुछ स्वार्थ-पूर्ण मालूम पडता है। और जो भगवान से सुख की प्रार्थना करता है वह भगवान से प्रार्थना नही करता, सुख के लिए ही प्रार्थना करता है। अगर भगवान के बिना उसे सुख मिल जाय तो वह भगवान को छोडकर सुख की तरफ जायेगा। क्योकि, भगवान से मिल सकता है इसलिए भगवान के पास भी जाता है। लेकिन, भगवान का उपयोग वह साधन की तरह करता है। साध्य तो सुख है। इसलिए, भक्त का मन सुख की प्रार्थना नही करेगा। क्योकि, इससे वह भगवान से ऊपर किसी चीज को रखवाना चाहेगा। और, जब वह दुख कि प्रार्थना करता है तो वह दो-तीन बातो की घोषणाए करता है। वह कहता है कि तुम्हारे द्वारा दिया गया दुख भी और कही से मिले सुख से बडा है। तुम्हारा दुख भी चुन लेगे और कोई सुख न चुनेगे। अब इस आदमी का भगवान से हट जाने का कोई उपयोग न रहा। क्योकि, आदमी वही से हटता है जहा से दुख होता है। और, वहा के लिए हटता है जहा सुख होता है। जिस भक्त ने सुख मागा है वह भगवान से हट सकता है। लेकिन, जिस भक्त ने दुख मागा है अब उसके हटने का उपाय क्या रहा? इसलिए, बडी गहरी माग है यह कि हमें दुख ही दे दो। हमे वही दे दो जिससे लोग हट जाते है। हम वही मागने तुम्हारे पास आये हैं।

दूसरी भी मजे की बात है कि भगवान से दुख मांगा जा सकता है, क्योकि भगवान से दुख मिलता नही । उससे तो जो भी मिलता है वह सुख ही है । जब उससे सुख ही मिलता है तो हम नाहक सुख के भिखारी क्यो बने । जिससे सुख मिलने की सभावना न हो उससे सुख मागा जाना चाहिए। जिससे सुख ही मिलता हो, जिससे जो मिलता हो वह सुख ही होता है, उससे हम दुख ही क्यो न माग ले । इसमे भक्त बडी चालाकी कर रहा है । इसमे भगवान को भी वह धोका दे रहा है । वह भगवान को भी थोडी दिक्कत मे डाल रहा है । क्योकि, जहा प्रेम है वहा थोडी दिक्कत मे डालने का मन स्वाभाविक है । वह यह कह रहा है कि दो तो दुख दो, देखे कैसे समर्थ हो ! देखे कैसे सर्वशक्तिमान हो ! उसने एक जगह पकड ली है जहा वह सिद्ध कर देगा कि सर्वशक्तिमान तुम नही हो। क्योकि, दुख तुम नही दे सकते हो।

और भी कुछ कारण है जो बहुत मनोवैज्ञानिक है । सुख क्षण भर का होता है । आता है, चला जाता है । सुख मे लबाई नही होती । दुख मे लबाई होती है । आता है तो जाने का नाम लेता नही मालूम पडता । सुख आता है तो आ भी नही पाता और चला जाता है । सुख बहुत उथला होता है । इसलिए, जो लोग, जिन्हे हम साधारणत सुखी कहते है, हमेशा 'शैलो' हो जाते है । उनकी जिन्दगी मे कुछ गहरा नही रह जाता, ऊपर–ऊपर हो जाते है। दुख बहुत गहराई रखता है। उसकी बडी 'डेप्थ' है । इसलिए जो लोग दुख से गुजरते है उनकी आखो मे, उनके चेहरो मे, उनकी जिन्दगी मे एक गहराई होती है जो साधारणत एक सुखी आदमी की जिन्दगी मे नही होती। दुख, दुख ही नही देता, माजता भी है, निखारता भी है, गहरा भी कर जाता है। इसलिए, भगवान से कुछ मागना ही है तो सुख नही मागा जा सकता, ऐसी चीज जिसमे न कोई गहराई है और न कोई लम्बाई है।

आखिरी बात जिन्हे हम प्रेम करते है उनके दुख का भी आनन्द है । जिन्हे हम प्रेम नही करते उनसे मिले सुख मे भी कोई आनन्द नही है । दुख का अपना आनन्द है, यह कभी ख्याल मे आया आपको ? पीडा का अपना सुख है, पीडा का अपना रस है । 'मैसोचिस्ट' नही । वह दुख नही, जो 'सेल्फ टार्चर' है । जो अपने को सताना है, उस दुख की बात नही । वह उस दुख की माग कर रहा है जिसे प्रेम की पीडा कहते है । प्रेम की बडी गहरी पीडा है । इतना दुख भी नही सताता जितनी प्रेम की पीडा, जो रोम–रोम मे भर जाती है । दुख तोड नही पाता । प्रेम तोड देता है । दुख मिटा नहीं पाता, प्रेम मिटा देता है ।

दुख मे तो आप पीछे बच जाते हैं, प्रेम में आप बचते ही नहीं। खो जाते हैं और विदा हो जाते हैं। ऐसा दुख दे जिसमे भक्त मिट ही जाय, जिसमे वह बचे ही नही। ऐसी मृत्यु दे दो जिसमे वह खो ही जाय, बचे ही नही—इस अर्थ मे—और इसीलिए कृष्ण समझाते नही, हस के रह जाते हैं। कुछ चीजे है जो हसने से ही समझायी जा सकती है और कुछ चीजे हैं जिनको समझाने से नासमझी पैदा हो जाती है। इसलिए, वे हसकर चुप रह जाते हैं, समझाने नहीं जाते है। वे समझ जाते हैं राज को कि मागने वाला बहुत तरकीब की बात कर रहा है। मागने वाला उनको बहुत झंझट मे डाल रहा है।

प्रश्न **आचार्यजी, एक विरोध पैदा हो जाता है। जैसा आपने कृष्ण के सबध मे बम्बई मे भी कहा और यहां भी विषय प्रवेश के मौके पर कहा है। कृष्ण का जीवन अलौकिक, चमत्कारिक, हंसता हुआ, खेलता हुआ, फूलो की तरह खिलता हुआ जीवन रहा है। बाकी जितने भी दूसरे लोग हुए उनका जीवन दुखवादी जीवन रहा। जैसे, ईसा को कभी किसी ने जीवन में हसते हुए नहीं देखा। अगर भक्त दुख मांगता है, उदास रहता है, कभी हसता नहीं है, तो कृष्ण के फिर उस अलौकिक दर्शन की पूर्ति कैसे होती है, यह बात मैं आपसे जानना चाहूंगा ?**

उत्तर जो भक्त दुख मागता है वह दुखवादी नही है, क्योकि दुखवादी, तो इतने दुख पैदा कर लेता है कि किसी से मागने की कोई जरूरत नही। दुख-वादी किसी से दुख मागने जाता है ? दुखवादी इतने दुख मे रहता है कि आप उसको और ज्यादा दे नही सकते। भक्त इसीलिए दुख माग लेता है कि सुख तो वह खूब पा रहा है दुख को भी चखना चाहता है। भक्त कभी भी दुखी नही है। भक्त अगर रोता भी है तो उसके आसू आनन्द के ही आसू है। भक्त रोया है बहुत लेकिन उसके आसू दुख के आसू नही है। लेकिन, हमसे भूल हो जाती है। हम सिर्फ दुख मे ही रोये है, आनन्द मे नही रोये। इसलिए, आसुओ के साथ हमने दुख की अनिवार्यता बाध ली। लेकिन, आसुओ का कोई संबन्ध दुख से नही है। आसुओ का सम्बन्ध 'ओव्हर फ्लोइग' से है। मन का कोई भी भाव मन की सीमा के पार हो जाय तो आसुओ मे बहना शुरू हो जाता है। दुख ज्यादा हो जाय तो आसुओ मे बहता है, सुख ज्यादा हो जाय तो आसुओ मे बहता है, प्रेम ज्यादा हो जाय तो आसुओ मे बहता है, क्रोध ज्यादा हो जाय तो आसुओ मे बहता है। भक्त भी रोता है, प्रेमी भी रोता है। पर, वह आनन्द मे ही रोता है। यह जो आनन्द की पीड़ा है, यह जो आनन्द का बश है, दुखवाद से इसका कोई भी सम्बन्ध नही है।

प्रश्न आपने भक्त की बात कही, और कृष्ण को भगवान कहा, तो मुझे प्रश्न याद आ गया कि क्या कृष्ण भक्त थे ? थे तो किसके भक्त थे ? अगर नहीं थे तो फिर भक्ति की इतनी महिमा क्यो गायी ?

उत्तर इस सम्बन्ध मे थोडी-सी बात पीछे हुई है, लेकिन हमे समझ मे नही आती है इसलिए फिर दूसरी तरफ से लौट आती है। मैंने प्रार्थना के सम्बन्ध मे जो कहा वह थोडा ख्याल मे लेगे तो समझ मे आ जायेगा। जैसा मैने कहा, 'प्रेयर' नही, 'प्रेयरफुलनेस'। ऐसी भक्ति का मतलब किसी की भक्ति नही होती। भक्ति का मतलब है 'डिव्होशनल एटीटयूड'। भक्ति का मतलब है भक्ति का भाव। उसके लिए भगवान होना जरूरी नही है। भक्ति, भगवान के बिना हो सकती है। सच तो यह है कि भगवान कही भी नही है, भक्ति के कारण पैदा हुआ है। भगवान के करण भक्ति है, ऐसा नही, भक्ति के कारण भगवान दिखायी पडना शुरू हुआ। जिन लोगो का हृदय भक्ति से भरा है उन्हे यह जगत भगवान हो जाता है। जिनका हृदय भक्ति से नही भरा है वह पूछते हैं, भगवान कहा है ? वह पूछेंगे, और उन्हे बताया नही जा सकता, क्योकि जगत उनके लिए भगवान नही है। । भक्तिपूर्ण हृदय, जगत को भगवान की तरह देख पाता है। जगत पत्थर भी नही है। पत्थर की तरह हृदय, जगत को पत्थर की तरह देख पाता है। जगत मे जो हम देख रहे है वह 'प्रोजेक्शन' है। हमारे भीतर जो है उसका प्रतिफलन है। जगत मे हमे वही दिखायी पडता है जो हम है। अगर भीतर भक्ति का भाव गहरा हुआ तो जगत भगवान हो जाता है। फिर, ऐसा नही है कि भगवान कही बैठा होता है किसी मदिर मे। नही, फिर जो होता है, भगवान ही होता है। कृष्ण भक्त है और भगवान भी है। और, जो भी भक्ति मे प्रवेश करेगा वह भक्त से शुरू होगा और भगवान पर पूरा हो जायेगा। जब वह बाहर भगवान को देख लेगा तो उसने ऐसा क्या कसूर किया है कि उसके भीतर भगवान नही दिखायी पडेगे ? रामकृष्ण की बहुत मजे की एक घटना है।

रामकृष्ण को दक्षिणेश्वर के मदिर मे पुरोहित की तरह रखा गया। बहुत सस्ती नौकरी थी। लेकिन, दस-पाच दिन मे ही तकलीफ शुरू हो गयी, क्योकि ट्रस्टियो को खबर मिली कि यह आदमी तो ठीक नही मालूम होता। भगवान को जो भोग लगाता है पहले खुद चख लेता है। भगवान पर जो फूल चढाता है सूघ लेता है। छिपकर ट्रस्टियो ने देखा कि बडे भाव से रामकृष्ण नाचते हुए भीतर आये। भोग पहले खुद को लगाया, फिर भगवान को लगाया। फूल पहले सूघे, फिर भगवान को सुघाये। ट्रस्टियो ने उन्हे पकड लिया और कहा,

यह क्या कर रहे हो ? यह कोई ढग है भक्ति का ? रामकृष्ण ने कहा, भक्ति का भी ढग होता है, यह कभी सुना नही । भक्त देखे है, भक्त सुने है, लेकिन भक्ति का कोई ढग होता है ? कोई ढाचा, कोई 'डिसीप्लीन' होती है ? उन्होने कहा, कही सूघा हुआ फूल भगवान को चढाया जा सकता है ? रामकृष्ण ने कहा, बिना सूघे चढा कैसे सकता हूँ ? पता नही, फूल मे सुगन्ध हो भी या न हो ! ट्रस्टियो ने कहा, बिना भगवान को भोग लगाये खुद कैसे खा लेते हो ? रामकृष्ण ने कहा, मेरी मा मुझे खिलाती थी तो पहले खुद चख लेती थी। मै बिना चखे नही चढा सकता । नौकरी तुम सम्हालो । अन्यथा मुझे यहा रखना है तो मै चखूँगा तब चढाऊगा, पता नही खाने योग्य हो भी या न हो।

यह आदमी सिर्फ बाहर ही भगवान को कैसे देख पायेगा ? बहुत जल्दी वह वक्त आ जायेगा कि कहेगा भीतर भी भगवान है । तो, भक्त से जो शुरू होती है यात्रा, भगवान पर पूरी होती है। कृष्ण दोनो है, तुम भी दोनो हो। सभी दोनो है । लेकिन, भगवान से शुरू नही कर सकते हो तुम, भक्त मे ही शुरू करना पड़ेगा। क्योकि, अगर तुमने यह कहा कि मै भगवान हूँ तो खतरा है। ऐसा कई लोग खतरा पैदा करते है । वे कहते है मै भगवान हूँ। उनके भीतर भक्ति का तो भाव होता नही, भगवान की घोषणा कर देते है । तब ऐसे लोग अह-केन्द्रित होकर दूसरो को भक्त बनाने की कोशिश मे लग जाते है क्योकि, उनके भगवान के लिए भक्तो की जरूरत है । वे अपने मे भगवान देखते है, दूसरे मे भक्त देखते है। ऐसे गुरुडम के बहुत घेरे है सारी दुनिया मे।

यात्रा शुरू करनी पडेगी भक्ति मे । लेकिन, कृष्ण को भगवान माना जा सकता है, क्योकि वह आदमी घोडे तक की भक्ति कर सकता है । साझ को जब घोडे थक जाते है तो उन्हे ले जाता है नदी पर स्नान कराने। उनको नहलाता है, उनको खुरे से साफ करता है । यह आदमी भगवान होने की हैसियत रखता है। क्योकि, घोडे को भी भगवान की तरह स्नान करवा सकता है । इस आदमी से डर नही है, इससे खतरा नही है । यह अगर भगवान की अकड वाला आदमी होता तो सारथी की जगह बैठ नही सकता, अर्जुन से कहता, बैठो नीचे । हमें बैठने दो ऊपर । हम है भगवान, तुम हो भक्त । भगवान बैठेंगे रथ मे, भक्त चलायेगा ! जो अपने को भगवान घोषित करते है जरा उन्हे तख्त के नीचे बिठालकर, आप तख्त पर बैठकर देखें तो पता चलेगा।

प्रश्न हमारी कृष्ण-प्रेम की चरम सीमा की कसौटी क्या होगी ?

उत्तर जैसा मैंने कहा, भक्ति का कोई ढग नही होता, प्रेम की कोई कसौटी नही होती । प्रेम हो तो काफी है, कसौटी की क्यो फिक्र करते है। आप

प्रेम की फिक्र करें। प्रेम नही है, इसलिए सोचते है कि कसौटी मिल जाय तो जाच कर ले। लेकिन नही है, तो जाच करने की जरूरत क्या है ?

और, जब प्रेम होता है तो सच्चा ही होता है, झूठा कोई प्रेम होता नही। झूठा प्रेम गलत सत्य है। या तो होता है, या नही होना। सोने को जाचने के लिए कसौटी की जरूर पडती है क्योकि गलत सोना होता है। जैसे, पैर मे काटा गडता है, आप जानते है, कोई कसौटी होती है क्या उसकी ? आपको पता है कि दर्द हो रहा है। हा, अगर दूसरा कोई कहता हो कि क्या कसौटी है, तो उसके पैर मे भी काटा गडाने के सिवा और क्या उपाय है ? प्रेम जब घटित होता है तो हम जानते है उसी तरह, जैसे हम और सब जानते है। अपने भीतर देखे, पहचानने मे कठिनाई न आयेगी। जान सकेंगे कि मेरी जिन्दगी मे प्रेम है या नही। प्रेम की फिक्र करे, है या नही। लेकिन, हम डरते है फिक्र करने मे। भीतर झाकने से डरते है, क्योकि हमे भलीभाति पता है कि प्रेम नही है। इसलिए, हम अक्सर दूसरे की फिक्र करते है कि दूसरे का प्रेम मेरी तरफ है या नही। शायद ही कोई पूछता हो कि मेरा प्रेम दूसरे की तरफ है या नही। इसलिए, लडते हैं दिन-रात कि दूसरा कम प्रेम करता है। पति कम प्रेम करता है, पत्नी कम प्रेम करती है, बेटा कम प्रेम करता है। बाप कम प्रेम करता है। सब लड रहे है दूसरे से कि दूसरा कम प्रेम कर रहा है। और कोई भी यह नही पूछता है कि मैने प्रेम किया है ? और जब हम जीवित चारो तरफ फैले व्यक्तियो को भी प्रेम नही कर पाते, जब हम दिखायी पडने वाले फूलो को प्रेम नही कर पाते, जब चारो ओर खडे हुए पर्वतो को प्रेम नही कर पाते, आकाश के चाद-तारो को प्रेम नही कर पाते, तो हम अदृश्य को कैसे प्रेम कर पायेंगे ? दृश्य से शुरू करे ? और, बडे मजे की बात है कि जो आदमी दृश्य को प्रेम करता है वह दृश्य के भीतर तत्काल अदृश्य को अनुभव करने लगता है। पत्थर को प्रेम करे और पत्थर परमात्मा हो जाता है। फूल को प्रेम करे, और फूल की अदृश्य प्राण-ऊर्जा दिखायी पडनी शुरू हो जाती है। व्यक्ति को प्रेम करे और तत्काल शरीर मिट जाता है और आत्मा शुरू हो जाती है। प्रेम कीमिया है अदृश्य को खोजने का। प्रेम रासायनिक विधि है, रासायनिक दृष्टि है, रासायनिक झरोखा है अदृश्य को खोजने का।

यह कभी न पूछें कि प्रेम की चरम अवस्था क्या है। प्रेम जब भी होता है, चरम ही होता है। प्रेम की दूसरी कोई अवस्था होती ही नही। प्रेम की 'डिग्रीज' नही होती। यह थोडा समझ लेना उचित होगा। ऐसा नही होता है कि मै कहूँ कि मुझे आपसे थोडा-थोडा प्रेम है। होता ही नही ऐसा। जैसे कोई आदमी दो पैसे

चोरी करे और कोई आदमी दो लाख की चोरी करे तो दो लाख की चोरी बडी चोरी है, और दो पैसे की चोरी छोटी चोरी है, ऐसा कहियेगा ? हा, जो लोग पैसे का हिसाब रखते हैं वह कहेगे कि दो लाख की चोरी बडी चोरी होगी और दो पैसे की चोरी छोटी हुई। लेकिन, चोरी छोटी और बडी हो सकती है ? चोरी तो सिर्फ चोरी है। चोरी मे कोई 'डिग्रीज' नही होती। दो पैसे चुराते वक्त आदमी उतना ही चोर होता है जितना दो लाख चुराते वक्त चोर होता है। प्रेम न दो पैसे का होता है, न दो लाख का होता है, बस होता है। चरम कोई अवस्था नही होती। प्रेम चरम ही होता है। अगर कोई पूछे कि भाप बनने का चरम बिन्दु क्या है तो हम कहेगे, जो प्रथम बिन्दु है वही चरम भी है। जो पहला बिन्दु है वही आखिरी भी। सौ डिग्री प्रथम है और सौ डिग्री आखिरी है। प्रेम भी प्रथम और अतिम एक ही है। उसका पहला कदम ही आखिरी कदम है। मगर हमे पता ही नही है। इसलिए, हम अजीब सवाल पूछते है। अभी तक मैंने प्रेम के सम्बन्ध मे ठीक सवाल किसी आदमी को पूछते नही देखा। मुझे ख्याल आती है एक घटना।

एक बहुत बडा करोडपति मार्गन अपने एक विरोधी करोडपति के साथ बातचीत कर रहा था। उसने अपने विरोधी करोडपति से, जो उसका प्रतियोगी था, कहा कि दुनिया मे हजार ढग है कमाने के, लेकिन ईमानदारी का ढग एक ही है। उसके विरोधी ने कहा, वह कौन-सा ढग है ? मार्गन ने कहा, मै जानता था कि तुम पूछोगे, क्योकि तुमको उसका पता नही है। ऐसे ही मामला प्रेम का है। प्रेम की बाबत हम ऐसे सवाल पूछते हैं जो कि बनते ही नहीं। जोकि होते ही नही—इर्रेलेवेट। क्योकि, जिसे उसका पता है वह पूछ ही नही सकता। वह जानता है।

प्रश्न आचार्यश्री, महाभारत सग्राम मे कृष्ण अर्जुन को युद्ध मे प्रवृत्त करते हैं। मगर, एक दफा ऐसा सुना गया कि कृष्ण अर्जुन के सामने सग्राम करने गये थे। वह क्या बात थी ?

उत्तर असल मे, कृष्ण जैसे व्यक्ति न किसी के मित्र हैं, न किसी के शत्रु। कृष्ण की कोई निश्चित धारणा किसी की बाबत नही है। इसलिए, शत्रु मित्र हो सकता है, मित्र शत्रु हो सकता है। यह स्थितिया तय करेगी। हम और तरह से जीते है। हम किसी के मित्र होते है, किसी के शत्रु होते है। फिर परिस्थितिया बदल जाती हैं, हमे बडी मुश्किल होती है। फिर भी मित्र और शत्रु को खीचने की कोशिश करते है। कृष्ण कुछ भी खीचते नही। जैसी स्थिति हो। अगर अर्जुन लडने को सामने पड जाय तो कृष्ण-अर्जुन युद्ध हो जायेगा। इसमे कोई अड़चन

न आयेगी। उसी मौज से अर्जुन से भी लड लेगे जिस मौज से अर्जुन के लिए लडते है। असल मे कृष्ण मित्रता और शत्रुता को 'फिक्स्ड प्वाइट' नही बनाते। वह कोई सुनिश्चित चीजें नही है। वह तरलताए हैं। और जिन्दगी की तरलता मे कहा तय किया जा सकता है कि कौन मित्र है? कौन शत्रु है? जो आज मित्र है वह कल शत्रु हो सकता है। जो आज शत्रु है वह कल मित्र हो सकता है। कल का कोई भरोसा नही। क्षण का कोई भरोसा नही। क्षण बदला और सब बदल जायेगा।

जिन्दगी पूरे वक्त बदलता हुआ 'पैटर्न' है। कही छाया है, कही धूप है। घडी भर बाद धूप कही और होगी, छाया कही और होगी। साझ तक बैठे देखते रहे इस बगिया को—सब बदलता रहेगा, धूप बदलेगी, छाया बदलेगी, बदली आयेंगी जायेंगी, दिन निकलेगा, साझ होगी, रात होगी। प्रकाश होगा, अँधेरा हो जायेगा, यह सब होता रहेगा। पूरी जिन्दगी इसी तरह बदलता हुआ 'पैटर्न' है। वहा कोई चीज शतरज के खानो की तरह तय नही है। इसलिए, कृष्ण मित्र का सामना भी कर सकते हैं।

ऐसे तो पूरा महाभारत ही बडे मजे का है। उसमे सब मित्र आमने-सामने खडे है। उसमे जिन द्रोण से सीखा है अर्जुन ने, वह उन्ही पर तीर खीचे खडा है। जिन भीष्म से पाया है बहुत कुछ, उन्ही को मारने के लिए तत्पर है। महाभारत बडा अद्भुत है। वह बता रहा है कि जिन्दगी मे कुछ तय नही है। सब बदलता हुआ है। जो कल भाई थे, आज शत्रु है। जो कल मित्र थे आज आमने-सामने लडने को खडे है। जो कल गुरु थे, आज उनसे लडना पड रहा है। और भी आश्चर्य की बात कि दिन भर लडते है और साझ उनकी कुशल-क्षेम पूछते है, जिनको दिन भर चोट मारी है, जिनमे दिन भर दिल खोलकर लडे है। यह लडाई बिल्कुल ईमानदारी से भरी हुई है। उस लडाई मे जरा धोखा नही है। अगर भीष्म सामने पडेगे तो गर्दन उतारने मे देर न की जायेगी। लेकिन, साझ को दुख मनाने मे भी बाधा नही आयेगी कि भीष्म जैसा आदमी खो गया। यह बहुत अजीब है।

इससे यह सूचना मिलती है। कि एक युग था, जब हम मित्रतापूर्ण ढग से लड भी सकते थे। आज युग बिल्कुल उल्टा है। आज हम शत्रुतापूर्ण ढग से ही मित्र हो पाते हैं। तब मित्रतापूर्ण ढग से युद्ध भी हो सकता था, आज मित्रता भी शत्रुतापूर्ण ढग से ही चलती है। आज तो मित्र भी प्रतियोगी है। तब शत्रु भी साथी था। यह जिन्दगी के बडे अर्थों मे सोचने जैसा है। यह सोचने जैसा है कि अगर मेरा कोई शत्रु है तो शत्रु के मरने के साथ मेरे भीतर भी कुछ मर जाता है। शत्रु ही नही मरता, मैं भी कुछ मरता हू। शत्रु के होने के साथ ही मेरा होना है।

शत्रु भी मेरे व्यक्तित्व का हिस्सा है। इसलिए शत्रु के प्रति भी बहुत शत्रुतापूर्ण होने का अर्थ नहीं है। शत्रु भी किसी गहरे अर्थों में मित्र है और मित्र भी किसी गहरे अर्थों मे शत्रु है।

क्यो? जैसा कि निरन्तर पिछले दिनो मै आपसे कहता आया हू, जिन्दगी मे जिनको हम 'पोलेरिटीज' मे बाटते है, ध्रुव बना देते है, वे हमारे शब्दों और सिद्धान्तो मे ही सत्य है। जिन्दगी की सीधी गहराई में कोई 'पोलेरिटी' सत्य नही है। सब 'पोलेरिटीज' जुडी हुई हैं। उत्तर और दक्षिण जुडे हुए है। ऊपर और नीचे जुडा हुआ है। ऐसा अगर हम देख पाये तो फिर कृष्ण का अर्जुन से युद्ध समझ मे आ सकता है। लेकिन कृष्ण को समझने वालो की समझ मे नही आया है, और मुश्किल पडी है। क्योकि जब भी हम समझाने जाते है तब हमारी धारणाए बीच मे खडी हो जाती है। और वह कहती है यह कैसी बात है? यह नही होनी चाहिए। हम मानते है कि मित्र को मित्र ही होना चाहिए, शत्रु को शत्रु ही होना चाहिए। हम जिन्दगी को फाको मे बाटते है और उनको थिर कर देते है। जिंदगी नदी की भाति तरल है। जो लहर यहा थी, वह लहर अब बहुत दूर है। जो लहर कल साथ थी, आज बहुत दूर हट गयी है। इस पूरी जिन्दगी के रास्ते पर कौन हमारे साथ है, यह क्षण भर की बात है क्षण भर बाद साथ होगा कि नही, नही कहा जा सकता। कौन आज विरोध में खडा है। क्षण भर बाद विरोध में खडा होगा कि नही, नही कहा जा सकता। इस जिन्दगी को जो नदी की धार की तरह जीते है वे न शत्रु बनाते, न मित्र। शत्रु बन जाता है उसे शत्रु मान लेते है, जो मित्र बन जाता है उसे मित्र मान लेते है। वे कुछ बनाते नही। वे जिन्दगी मे से गुजरते है।

कृष्ण के लिए न कोई शत्रु है, न कोई मित्र है। समय, परिस्थिति, अवसर जिसको मित्रता के खेमे मे ढकेल देता है उसके मित्र हो जाते है, जिसको शत्रुता के खेमे मे ढकेल देता है उसके शत्रु हो जाते है। फौजे कृष्ण की लड रही हैं कौरवो की तरफ से, कृष्ण लड रहे है पाण्डवो की तरफ से। विभाजन कर लिया दोनो का, क्योकि दोनो ही कृष्ण को मित्र मानते थे। यह बडे मजे की बात है कि कृष्ण ने दोनो को छूट दे दी थी कि जो तुम्हें मागना हो माग लो क्योकि दोनो ही साथ आ गये हो। और कह दिया कि एक तरफ से मै लड लूगा, एक तरफ से मेरी फौजे लड लेगी।

प्रश्न **वह यह भी तो कह सकते थे कि दोनों मेरे मित्र हो, मैं किसी की भी तरफ से नहीं लडूंगा?**

उत्तर ऐसा वह इसलिए नही कह सकते थे कि जो महाभारत की घटना घटने वाली थी वह इतनी विराट थी कि उसमे कृष्ण का होना एकदम जरूरी था। उनके बिना शायद वह घट भी नही सकती थी। मित्र से वह कहते कि मैं दोनो के बाहर रहा जाता हू। अगर वह भारतीय विदेश नीति अख्तियार करते तटस्थता की, और कहते कि मै दोनो तरफ नही हू तो वह बेईमानी होती। क्योकि जिन्दगी मे तटस्थता होती ही नही। उसमे किसी तरफ हम होते ही हैं। तटस्थता सिर्फ आतरिक भावमे हो सकती है, जिन्दगी मे नही। दिखावा हो सकता है तटस्थता का। दिखावा वह भी कर सकते थे। लेकिन दिखावे का कोई मतलब न था। और दोनो ही मित्र सहायता मागने आये थे, तटस्थता मागने नही आये थे— वे यह कहने आये थे कि हमें साथ दो। उत्तर, साथ के लिए देना था। दोनो का साथ न देने का मतलब होता कि दोनो से कोई मतलब नही है। दोनो के मित्र नही हैं। तटस्थता का मतलब है, हम उदास है। उदासी मे हमे मतलब नही है कि कौन जीतता है, कौन हारता है। कोई प्रयोजन नही तुमसे। कृष्ण निष्प्रयो-जन नही हैं। कृष्ण मित्र दोनो के हैं, लेकिन चाहते यह है पाण्डव जीते। इस-लिए कि उन्हे लगता है कि पाण्डव धर्म के पक्ष में हैं और कौरव अधर्म के पक्ष में हैं। अधर्मी भी उनके प्रति मित्रतापूर्ण हैं। कृष्ण से उनकी कोई शत्रुता नही है। कृष्ण के प्रति उनका सद्भाव है। कृष्ण को वे भी चाहते है। उस जमाने मे बहुत सीधे साफ-सुथरे हिसाब होते थे। सभी बट जाते थे। साफ निर्णय हो जाता था। ज्यादा देर खीचने तानने की जरूरत नही होती थी। 'पोलेरिटीज' साफ हो जाती थी।

कृष्ण उपेक्षा से नही भरे है। उदासीन वे नही है। इसलिए तटस्थ नही हो सकते। दोनो बराबर नही हैं उन्हे, लेकिन फिर भी दोनो की तरफ से मित्रता है इसलिए बटने को वह तैयार हैं। इतना भी वे जानते हैं कि बटवारा बहुत कुछ निर्णय करेगा इसलिए बटवारे का जो नियम उन्होने चुना वह बहुत अद्भुत है। बहुत गणित का है। उन्होने कहा यह कि एक तो मुझे चुन लो—मुझ अकेले को। और एक मेरी सारी फौज को चुन लो। इससे बहुत साफ हो गया मामला। क्योकि कृष्ण को अकेले को कौन चुनेगा? जो हारने की तैयारी रखते हो, वही न? जिनका शक्ति पर भरोसा नही है, वही न? कौरव तो बडे प्रसन्न हुए। डर गये थे बहुत, क्योकि पहला चुनाव पाण्डवो को दिया गया था।

कृष्ण सोये है। कौरव और पाडवो के प्रतिनिधि दोनो साथ आ गये हैं। वे जागे, तब तक प्रतीक्षा करनी है। पाण्डवो का प्रतिनिधि बैठा है पैरो के पास।

कौरवो का प्रतिनिधि बैठा है सिर के पास। पैर के पास कौरव कैसे बैठ सकते हैं? पैर के पास तो वही बैठ सकता है जो विनम्र हो। ये सब छोटी छोटी बातें बडी सूचक बन जाती है। हम जिन्दगी में वही करते हैं जो हम है। यह आकस्मिक नही है, इतनी सी घटना भी कि कौरवो का बैठना सिर के पास, पाण्डवो का बैठना पैर के पास 'एक्सिडेंटल' नही है। इसलिए आख स्वभावत जो पैर के पास बैठे है उन्ही पर पहले पडी। इसलिए चुनाव का पहला मौका उन्हे दिया गया। निश्चित ही जो विनम्र हैं वह जीतेगे। 'ब्लसेड-आर द मीक दे शैल इनहेरिट अर्थ'। जीसस कहते हैं, धन्य हैं वे जो विनम्र है, क्योकि पृथ्वी का राज्य उन्ही का होगा। वे जो विनम्र थे उनके लिए पहला मौका था कि तुम चुनाव कर लो। कौरव बहुत घबडाये कि यह धोखा हो गया, यह गलती हो गयी, यह भूल हो गयी, हम पैर के पास ही क्यो न बैठ गये? पहला मौका पाण्डवो को दिया गया चुनाव का, इसमे पक्षपात हुआ जा रहा है। निश्चित ही पाण्डव फौजो को चुन लेगें और कृष्ण को अकेले को कौन चुनेगा? हम अकेले कृष्ण का क्या करेंगे? लेकिन वे बडे प्रसन्न हुए जब उन्होने देखा कि नासमझ पाण्डवो ने कृष्ण को चुन लिया और सारी फौजे कौरवो को छोड दी। अब जीत निश्चित है। लेकिन वही उनकी हार सुनिश्चित हो गयी। पाण्डवो के चुनाव ने कह दिया था कि चुनाव आत्मिक हो गया है। चुनाव गहरा हो गया, धर्म का हो गया है। और कृष्ण उनके साथ खडे होकर निर्णायक हो गये। यह जो मैंने कहा, पैर के पास बैठ जाना बडा महत्वपूर्ण हो गया, एक छोटी घटना मुझे याद आती है, उससे बात समझ मे आ जायेगी।

विवेकानन्द हिन्दुस्तान से अमरीका जाते थे। उन्होंने शारदा मा से जाकर आशीर्वाद मागा और कहा कि मै अमरीका जाता हूँ। रामकृष्ण की पत्नी शारदा मा ने कहा, क्या करोगे अमरीका जाकर? उन्होने कहा कि मै धर्म का सन्देश ले आऊँगा। शारदा मा चौके मे अपना काम करती थी। उन्होने कहा, वह छुरी पडी है सब्जी काटने की, वह उठाकर मुझे दे दो। विवेकानन्द ने वह छुरी उठायी और शारदा को दी। शारदा ने कहा, जाओ मेरा आशीर्वाद है। लेकिन, विवेकानन्द ने कहा, छुरी उठाने से इसका क्या सबध? शारदा ने कहा, मैं देखती थी कि छुरी उठाकर तुम कैसे मुझे देते हो? हममे से किसी ने भी उठाकर दी होती तो डण्डी खुद पकडी होती और फलक शारदा की तरफ किया होता। विवेकानन्द ने फलक खुद पकडा और डण्डी शारदा की तरफ की। शारदा ने कहा, मैं सोचती हूँ कि तुमसे धर्म का सदेश भेजा जा सकता है।

अब यह बिल्कुल 'एक्सिडेण्टल' नही है। यह किसी किताब मे लिखा हुआ नही है कि जब तुम अमरीका जाओगे और शारदा तुमसे पूछेंगी तो छुरी ऐसी पकड लेगे। ये शारदा जैसे व्यक्तित्व भरोसे के नही है। यह भी कोई बात थी। यह कोई पता लगाने का ढग था? ऐसे कोई धर्म की परीक्षा हो सकती थी? लेकिन, शारदा ने कहा, मेरा आशीर्वाद है, तुम जाओ। तुम्हारे मन मे धर्म है। ऐसे ही उस दिन कृष्ण के पैरो मे बैठे पाण्डवो ने सूचना दे दी कि धर्म उनकी तरफ है, पैरो के पास बैठने की उनकी हिम्मत है। फिर, कृष्ण को चुनकर उन्होने घोषणा कर दी कि हम हारने को तैयार है, लेकिन धर्म छोडने को तैयार नही। हम धर्म के साथ रह कर हार जायेंगे, लेकिन अधर्म के साथ रहकर नही जीतेंगे। और, धर्म के साथ सिर्फ वही हो सकता है जो हारने को तैयार है। जैसा मैंने कहा, परमात्मा के साथ सिर्फ वही हो सकता है जो दु ख की माग करता है। जो दु ख को चुन लेता है। धर्म के साथ वही हो सकता है जो हारने को तैयार है। अधर्म 'शॉर्टकट' से खोजता है हमेशा। उसका रस और आकर्षण उसके आश्वासन मे है। उसका आश्वासन सदा जीत का है। वह कहता है ये रही जीत, हाथ बढाओ मिल जायेगी। इस जीत के आकर्षण मे आदमी अधर्म को पकडता है। धर्म का रास्ता लबा है, श्रम साध्य है 'आरडूअस' है। धर्म के साथ हार हो सकती है, धर्म के साथ विनाश भी हो सकता है। लेकिन जो धर्म के साथ विनष्ट होने को तैयार है और हारने को तैयार है, उसकी हार कभी होती नही। लेकिन, तैयारी वह रखनी होती है। ये बडी उल्टी बाते है, लेकिन ऐसा ही है।

प्रश्न . क्राइस्ट ने कहा है कि धन्य है वे जो विनम्र है (meek), वे पृथ्वी पर राज्य करेंगे–इसका आप कैसा अर्थ करते है ?

उत्तर जीसस के दो वचनो मे थोडा-सा फर्क है। धन्य है वे जो विनम्र है पृथ्वी का राज्य उनका होगा। 'किंगडम आफ द अर्थ'। धन्य है वे जो पवित्र है, स्वर्ग का राज्य उनका होगा 'किंगडम आफ द हैवन'। असल मे विनम्रता शुरुआत है, पवित्रता अन्त है। 'ह्यूमिलिटी' प्रारम्भ है, 'प्योरिटी' उपलब्धि है। जो विनम्र है, वे पहली सीढी पर गये। उन्होने पवित्र होने के लिए द्वार खोला, वे अभी पवित्र हो नही गये। जो विनम्र नही है, वे कभी पवित्र नही हो सकते। क्योकि, अहकार से बडी और कोई अपवित्रता नही है। जो विनम्र हुए, जिन्होने अहकार छोडा, जो झुके, समर्पित हुए, उन्होने वह द्वार खोला। लेकिन, झुक जाना ही पा लेना नही है। आप झुक जाने से सिर्फ द्वार बने।

एक आदमी नदी के किनारे खड़ा है। पानी नीचे बह रहा है, वह आदमी प्यासा है। वह झुक जाय तो पानी अंजली मे भर सकता है, लेकिन झुकने को वह राजी नही है। वह अकड़ कर खड़ा है। खड़ा रहे प्यासा, नदी नीचे बहती रहेगी। नदी का कोई कसूर नही है उसकी प्यास मे। झुकने से शुरुआत होगी, अंजली मे पानी आने का द्वार खुलेगा।

ऐसे ही, जो विनम्र है वे द्वार खोलते हैं अपनी पवित्रता के लिए। क्योंकि, विनम्रता उन सब चीजो को काट देगी जिनसे आदमी अपवित्र होता है। विनम्र आदमी अहकारी न रह जायेगा। विनम्र आदमी आक्रमक न रह जायेगा। विनम्र आदमी क्रोधी न रह जायेगा। विनम्र आदमी लोभी न रह जायेगा, विनम्र आदमी कामी न रह जायेगा। वह क्रोध की जगह क्षमा को उपलब्ध होने लगेगा। लोभ की जगह दान को उपलब्ध होने लगेगा, आक्रमण की जगह हारने की तैयारी दिखाने लगेगा, परिग्रह की जगह अपरिग्रही होने लगेगा। वह अपनी घोषणा करने की जगह अन्धेरे और छाया मे हटने लगेगा, अदृश्य होने लगेगा। जिस दिन यह विनम्रता पूरी हो जायेगी, उस दिन पवित्रता पूरी हो जायेगी। इसलिए, दूसरे वचन मे जीसस कहते है, 'ब्लेसेड आर दी प्योर, दे शैल इनहेरिट द किंगडम आफ गाड'। वे परमात्मा के राज्य के मालिक हो जायेंगे जो पवित्र है।

एक और वचन है जीसस का—इसी तरह का—'ब्लेसेड आर द पुअर इन स्प्रिट', वे जो आत्मा से दरिद्र है। बड़ा अजीब वाक्य है। उसमे दोनो बाते सम्मिलित हो गयी। विनम्रता और पवित्रता दोनो ही उस वचन मे आ गयी। इतने गरीब है भीतर, अपवित्र होने के लिए कुछ तो चाहिए ? कुछ बचा ही नही। कोई मालकियत होनी चाहिए—धन होना चाहिए, पद होना चाहिए, नाम होना चाहिए, यश होना चाहिए। कुछ तो होना चाहिए, अपवित्र होने के लिए ? यह बड़े मजे की बात है कि क्रोध कुछ है, अक्रोध सिर्फ अभाव है। लोभ कुछ है, अलोभ सिर्फ अभाव है। हिंसा कुछ है, अहिंसा सिर्फ अभाव है। इतना गरीब है भीतर आदमी, कि न हिंसा है उसके पास, न क्रोध है उसके पास, न लोभ, न पद, न प्रतिष्ठा, न नाम, न धन—कुछ भी नही है। 'पुअर इन स्प्रिट'। दीन दरिद्र आत्मा, लेकिन उसकी समृद्धि का कोई मुकाबला नही। जो सबसे ज्यादा दीन हो गया है भीतर, वह सबका मालिक हो जायेगा। वह सब पा लेगा जो पाने योग्य है।

जीसस का एक वचन है इसके सदर्भ मे, जिसमे वह कहते है-'सीक यी फर्स्ट द किंग्डम आफ गाड एण्ड आल एल्स बी एडेड अनटू यू'। पहले तुम परमात्मा के राज्य को खोज लो और फिर सब तुम्हे मिल जायेगा। लेकिन, जब उनसे कोई पूछता

हैं कि परमात्मा के राज्य को कैसे खोजे, तो वह कहते है विनम्र हो जाओ, पवित्र हो जाओ, दरिद्र हो जाओ तो परमात्मा का राज्य मिल जायेगा। और, जब परमात्मा का राज्य मिल जायेगा तो फिर सब, जो भी है, सब तुम्हे मिल जायेगा। अजीब शर्त है। सब खो दो तो सब पा लोगे। कुछ भी बचाया तो सब खो दोगे। जो अपने को खोने को राजी है वह सब पाने के मालिक हो जायेंगे। सन्यासी का यही अर्थ है मेरे मन मे। जो सब खोने को राजी है, वह सब पाने का अधिकारी हो जाता है।

प्रश्न लेकिन, वह खोने के बाद पाने को क्यो सोचे ?

उत्तर तुम्हारे सोचने की बात नही है। ऐसा होता है। तुम सोचोगी तब तो खो ही न सकोगी। अगर प्रभु का राज्य पाने के लिए विनम्र हुए तब तो विनम्र हुए ही नही। वह 'कासीक्वेस' है। वह जो दूसरी बात है वह परिणाम है, वह आपके लिए आश्वासन नही है। क्योकि, अगर कोई आदमी कहता है कि मैं सब पाने के लिए सब छोडने को राजी हूँ तो छोडेगा कैसे ? वह तो सब पाने के लिए – कुछ नही छोड सकता। नही, वह जो दूसरा हिस्सा है, वह परिणाम है। ऐसा देखा गया कि जिन्होने सब छोडा उन्होने सब पाया है, लेकिन जिन्होंने सब पाना चाहा है वह कुछ भी नही छोड सके।

प्रश्न स्थितप्रज्ञ तो दुविधा मे डालने वाली बात हो गयी। और, बिलकुल उल्टी लगती है। आप स्वय अति विनम्र भी है और कभी-कभी अति कठोर आलोचक भी हो जाते है–ऐसा क्यो ?

उत्तर हा, मै दुविधा को मिटाऊँगा भी नही। क्योकि, जो विनम्रता ओढी गयी होती है, जो विनम्रता लादी गयी होती है वह सदा विनम्र होती है, लेकिन जो विनम्रता सहज होगी वह इतनी विनम्र होती है कि अविनम्र होने की भी हिम्मत कर सकती है। सिर्फ विनम्र आदमी ही निर्मम रूप से अविनम्र होने का साहस कर सकता है। सिर्फ प्रेमी ही कठोर हो सकता है। तो ऐसा निरन्तर लगेगा, वही जो मै कृष्ण के लिए कह रहा हूँ। मुझमे निरन्तर उल्टी बाते, बहुत तरह की उल्टी बाते है, लेकिन मै पूरी जिन्दगी को ही स्वीकार करता हूँ, वही मेरी विनम्रता है। अगर मेरे भीतर कभी मुझे कठोर होने जैसा होता है तो मै रोकता नही। क्योकि रोके कौन, मै कठोर हो जाता हूँ। कभी मुझे विनम्र होने जैसा होता है तो मै क्या करू, विनम्र हो जाता हूँ। जो होता है, वह मै होने देता हूँ। अपनी तरफ से मेरे होने की कोई भी चेष्टा नही है। मेरा कोई प्रयास नही है। इसलिए मेरे साथ दुविधा जारी रहेगी। मेरे साथ दुविधा कभी मिटने वाली नही है। और, जिनको

हम स्थितप्रज्ञ कहते रहे है--कृष्ण को स्थितप्रज्ञ कहियेगा कि नही कहियेगा, बड़ा दुविधापूर्ण है मामला। कृष्ण बहुत बार प्रज्ञा को बिल्कुल खोते हुए मालूम पडते है। सुदर्शन हाथ मे उठाया होगा तब हमे लगेगा कि प्रज्ञा खो दी। स्थिरता न रही।

स्थितप्रज्ञ की यह हमारी धारणा है कि जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो गयी है। इसका मतलब क्या होता है? कि, जो हम ठीक समझते है, वही वह करता है? यानी हमारे पक्ष मे स्थिर हो गयी है? स्थिर हो जाने का मतलब जड हो जाना नही है। स्थिर हो जाने का मतलब कुल इतना है कि प्रज्ञा उपलब्ध हो गयी है। और, अब जो प्रज्ञा करवाती है, वह करता है, अब अपनी तरफ से कुछ भी नही करता। अब न दोष उसके है, न गुण उसके है। अब न आदर उसका है, न अनादर उसका है। अब न तो वह यह कहता है कि मै जो कर रहा हूँ वह ठीक कर रहा हूँ, न वह यह कहता है कि जो मै कर रहा हूँ वह गैर ठीक कर रहा हूँ। अब न तो वह पछताता, न वह प्रायश्चित्त करता है। न वह अब पीछे लौटकर देखता है। अब जो होता है होता है। और, वह उसको होने देता है। अब उसके पास कोई भी, इस होने देने के ऊपर खडा हुआ नही है जो रोके और निर्णय करे कि यह करो और यह मत करो। वह निर्विकल्प हुआ। वह 'च्वाइसलेस' हुआ। इसलिए, अगर कभी आप पाये कि मै बहुत गर्म मालूम पडता हूँ तो पा सकते है। कोई उपाय नही है। गर्मी आती है तो मै गर्म होता हूँ, ठण्डी आती है तो मै ठण्डा हो जाता हूँ। और, मैने अपनी तरफ से होना छोड दिया है। मैने जिद्द छोड दी कि मै यह होऊँ और यह न होऊँ। इसको ही मै कहता हूँ कि प्रज्ञा की थिरता है।



पर्व : दस

द्रौपदी का चरित्र

तीन मुट्ठी चावल पर त्रिलोक का वैभव

दारिद्रय और अर्थ व्यवस्था

चुने हुओं का वर्ग

कृष्ण सुदामा की लेन-देन

द्रौपदी का वृहद् अनुराग

मानवी अंश का छोर

कलियावन और मुचकुन्द





१०

प्रश्न आचार्यजी, कृष्णा अर्थात द्रौपदी के चरित्र को लोग बडी गर्हित दृष्टि से देखते हैं। उसपर प्रकाश डाले तथा कृष्ण का उससे वृहद् अनुराग है, उसकी चर्चा करे। और आज के सदर्भ मे द्रौपदी का चरित्र स्पष्ट करे ?

उत्तर पुरुषो के व्यक्तित्व मे जैसा कृष्ण को समझना उलझन की बात है वैसे ही स्त्रियो के व्यक्तित्व मे द्रौपदी को समझना भी उलझन की बात है। और, जिन लोगो को जो गर्हित दिखायी पडता है, इस दिखायी पडने मे, वह अपने

सम्बन्ध मे ज्यादा खबर देते है, द्रौपदी के सम्बन्ध मे कम। हम वही देख पाते हैं, जो हम है। हम अपने अतिरिक्त और कुछ भी नही देख पाते। द्रौपदी का व्यक्तित्व हमे कठिन मालूम पडेगा। एक साथ पाच व्यक्तियो को प्रेम, एक साथ पाच की पत्नी होना! बहुत मुश्किल है समझना।

प्रेम का व्यक्तियो से बहुत सम्बन्ध नही है। अगर कोई प्रेम एक से ही किया जाता हो तो वह प्रेम बहुत दीन, हीन हो जाता है। इसे थोडा समझना पडेगा। हम सबका आग्रह यही होता है कि प्रेम एक से हो। हम सब यही चाहेगे कि कोई फूल रास्ते पर खिले तो एक के लिए खिले। कोई सूरज निकले तो एक आगन मे चमके। हम सबका मन यह होता है कि जो भी हो उसपर हमारी पूरी मालकियत और पूरा 'पजेशन' हो जाय। हम ही उसको पूरा घेर कर बैठ जाय। अगर मुझे कोई प्रेम करता है तो वह सिर्फ मुझे ही प्रेम करे, उसका प्रेम किन्ही और द्वारा और धाराओ से न बह जाय, कही बट न जाय। चूकि हम प्रेम को नही समझते, इसलिए ऐसा समझते है कि अगर वह बट जायेगा तो मेरे लिए कम हो जायेगा।

प्रेम जितना फैलता है, उतना बढता है। प्रेम जितना बटता है उतना बढता है। जब हम प्रेम को एक ही धारा मे बहाने की बहुत चेष्टा करते है जो कि अनैसर्गिक है, अप्राकृतिक है, और जबरदस्ती है, तो अतिम परिणाम सिर्फ इतना ही होता है कि और कही तो प्रेम बहता नही, जहा हम बहाना चाहते है वहा भी नही बहता। एक छोटी-सी कहानी मुझे याद आती है।

एक भिक्षुणी थी--बौद्ध-भिक्षुणी। उसके पास एक छोटी सी बुद्ध की चन्दन की प्रतिमा थी। वह अपने बुद्ध को सदा अपने साथ रखती थी। भिक्षुणी थी, मदिरो मे, विहारो मे बैठती थी, लेकिन पूजा अपने ही बुद्ध की करती थी। एक बार वह उस मदिर मे ठहरी, जो हजार बुद्धो का मन्दिर है, जहा हजार बुद्ध-प्रतिमाए है। वह सुबह अपने बुद्ध को रखकर पूजा करने बैठी। उसने धूप जलायी। धूप तो आदमी के नियम मानती नही। उल्टा हो गया। हवा के झोके ऐसे थे कि उसके छोटे-से बुद्ध की नाक तक तो धूप की सुगन्ध न पहुची, पास जो बडी-बडी बुद्ध की प्रतिमाएँ थी, उन पर सुगन्ध पहुचने लगी। वह तो बहुत चिन्तित हुई। उसने एक छोटी-सी टीन की पोगरी बनायी, अपनी धूप पर ढाकी, और अपने छोटे-से बुद्ध की नाक के पास चिमनी का द्वार खोल दिया, ताकि धूप की सुगन्ध अपने ही बुद्ध को मिले। सुगन्ध तो मिल गयी अपने बुद्ध को लेकिन बुद्ध का मुँह काला हो गया। वह बडी मुश्किल मे पडी। चन्दन की प्रतिमा थी, सब खराब हो गयी। उसने जाकर मदिर के पुजारी को कहा कि मै बड़ी मुश्किल मे पड़ गयी

हूँ। मेरे बुद्ध की प्रतिमा कुरूप हो गयी है, अब मैं क्या करूँ ? उस पुजारी ने कहा कि जब भी कोई उन शक्तियो को, जो सब तरफ फैलती है, एक दिशा मे बाधता है तब ऐसी ही दुर्घटना घटती है।

प्रेम को मनुष्य जाति ने अब तक सम्बन्ध की तरह सोचा है, 'रिलेशन-शिप' की तरह। उसको अब तक हमने 'स्टेट आफ माइड' की तरह नही समझा कि एक व्यक्ति की भाव दशा प्रेम की है। द्रौपदी को समझने मे बडी कठिनाई है। यदि मै प्रेमपूर्ण हूँ तो एक के प्रति ही प्रेमपूर्ण नही हो सकता हूँ। प्रेमपूर्ण होना मेरा स्वभाव है। मै अनेक के प्रति प्रेमपूर्ण हो पाऊँगा। यानी एक अनेक का सवाल भी नही रह जाता। तब मै प्रेमपूर्ण हो पाऊँगा। अगर मै एक के प्रति ही प्रेमपूर्ण होऊँ और शेष के प्रति प्रेमपूर्ण नही हूँ तो मै एक के प्रति भी प्रेमपूर्ण नही रह पाऊँगा। मै एक घण्टा जिससे प्रेम करता हूँ, उसके साथ होता हूँ। तेईस घटे अप्रेम का अभ्यास चलता है दूसरो के साथ। फिर एक घण्टा जिसे हम प्रेम कहते है वह भी प्रेम कैसे हो पायेगा ? अप्रेम ही हो जाता है। लेकिन, समस्त जगत के प्रेमी, नासमझ ही कहना चाहिए, जिन्हे प्रेम का कोई पता नही, प्रेम को बाध लेना चाहेगे। जैसे ही हम प्रेम को बाधते है-- प्रेम हवा की तरह है बिखर जाता है। मुट्ठी जोर से बाधी तो हवा बाहर हो जाती है। खुली मुट्ठी मे हवा रह जाती है, यह बडा विरो-धाभास है जिन्दगी का। प्रेम को बाधने की चेष्टा मे ही प्रेम मरता है और सड जाता है। और, हम सबने अपने प्रेम को मार डाला है, उसे बाधने की चेष्टा मे है।

द्रौपदी को हमे समझना इसीलिए मुश्किल पडता है कि पाच व्यक्तियो को कैसे प्रेम कर सकी होगी ? हमे ही नही पडता मुश्किल, उन पाच भाइयो को भी मुश्किल पडता था। वह भी मन ही मन मे सोचे जाते थे कि जरूर इसका किसी एक से ज्यादा प्रेम होगा। सबसे एक-सा कैसे हो सकता है ? अर्जुन पर सबकी ईर्ष्या थी। सबको डर था कि अर्जुन से इसका लगाव ज्यादा है। वे पाच भाई भी नही समझ पाये है द्रौपदी को। उन्होने भी शर्तबन्दी कर रखी थी, दिन बाट रखे थे। द्रौपदी जब एक को प्रेम करती तो दूसरे से मिलती नही थी और यह भी तय कर रखा था कि जब एक भाई द्रौपदी के पास हो तो दूसरा भूलकर भी भीतर न झाके। उनकी भी कठिनाई वही है जो हमारी कठिनाई है। हम सोच ही नही सकते कि प्रेम एक धारा हो सकती है जो व्यक्तियो की तरफ नही बहती, व्यक्ति से बहती है। हमने कभी व्यक्ति को छोडकर प्रेम को सोचा ही नही। इसलिए, द्रौपदी हमे उलझन बन जायेगी। और हमारे मन मे हम कितना ही समझाने की कोशिश करे, ऐसा लगेगा कि द्रौपदी मे कही--न--कही कुछ वेश्या छिपी है।

क्योंकि, हमारी सती की जो परिभाषा है वही द्रौपदी को वेश्या बना देगी। लेकिन कभी आपने ख्याल किया है कि इस देश की परम्परा ने द्रौपदी को पाच कन्याओ मे गिना है। पाच पवित्रतम स्त्रियो मे गिना है। बडे अजीब लोग रहे होंगे, जिन्होंने द्रौपदी को पाच श्रेष्ठतम महासतियो मे गिना है। यह बात बडी अर्थपूर्ण है। जो इस बात की सूचक है कि प्रेम एक से या अनेक से यह सवाल नही है, प्रेम है या नही है यह सवाल है। और यदि प्रेम है तो वह अनन्त धाराओ मे बह सकता है। पाच तो सिर्फ प्रतीक है। पाच की तरफ बह सकता है, पचास की तरफ बह सकता है। और, जिस दिन इस पृथ्वी पर हम प्रेमपूर्ण व्यक्ति पैदा कर सकेंगे उस दिन यह प्रेम की जो व्यक्तिगत मालकियत है बिल्कुल ही बेमानी हो जायेगी। इसका ये मतलब नही है कि किसी के साथ हम जबरदस्ती करें कि वह एक को प्रेम न करे और ऐसा भी नही है कि हम उसस उल्टा नियम बना लें कि जो एक को प्रेम करता है वह पाप करता है। फिर वही नासमझी दूसरे छोर से हो जायेगी। नही, हम यह जानकर चलें कि जो जिसकी सामर्थ्य है वैसा करता है। हम अपने व्यक्तित्व को और अपनी सामर्थ्य को दूसरे के ऊपर थोपने न चले जाय।

द्रौपदी मे प्रेम का बहाव है और वह बहाव द्रौपदी ने एक क्षण को भी इन्कार नही किया। यह बडी अजीब घटना थी, जो सहज खेल में घट गयी थी। द्रौपदी को लेकर आये थे और पाचो भाइयों ने मा से कहा कि हम एक बहुत अद्भुत चीज लाये है। मा ने कहा, अद्भुत ले आये हो तो पाचो बाट लो। उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। उन्होंने तो सिर्फ मजाक किया था मा से। उन्हे पता भी नही था कि मा कह देगी, बाट लो पाचो। फिर जब मा ने कह दिया था तो कोई उपाय न रहा था। फिर, वे पाचों ही एक साथ द्रौपदी के पति हो गये। लेकिन, द्रौपदी ने एक क्षण को भी इसमें इन्कार नही किया। उसके प्रेम की अनन्तता के कारण ही यह सम्भव हो सका। वह इन पाचो को प्रेम दे सकी और उसका प्रेम चुका नही। कही कोई दुविधा और द्वैत उसके मन मे नही आया। यह बहुत ही अद्भुत स्त्री होनी चाहिए। अन्यथा स्त्री साधारणत ईर्ष्या मे जीती है। अगर हम पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्वों का एक खास चिन्ह खोजना चाहे तो पुरुष अहंकार मे जीते हैं, स्त्रिया ईर्ष्या मे जीती है। असल मे ईर्ष्या अहकार का 'पैसिव' रूप है और अहकार ईर्ष्या का 'एक्टिव' रूप है। द्रौपदी निर्द्वन्द्व है और शान्त है।

हम प्रेम को एक और एक के बीच का सम्बन्ध मानते है। है नही प्रेम ऐसा। इसलिए, हम प्रेम के लिए फिर बहुत झझटो मे पडते है और बहुत कठिनाइया खडी कर लेते है। प्रेम ऐसा फूल है जो कभी भी, और किसी के लिए भी, आक-

स्मिक रूप से खिल सकता है। न उसका कोई बन्धन है, न उसकी कोई मर्यादा है। बन्धन और मर्यादा जितनी ज्यादा होगी उतना हम निर्णय कर सकते हैं कि हम उस फूल को खिलने ही न देंगे। फिर, वह एक के लिए भी नही खिल सकता। फिर, हम बिना प्रेम के जी लेते हैं। लेकिन, हम बडे अजीब लोग हैं। हम बिना प्रेम के जी लेना पसन्द करेंगे, लेकिन प्रेम की मालकियत छोडना पसन्द न करेंगे। हम बिना प्रेम के रह जाय यह चलेगा, हमारे भवन पर प्रेम की वर्षा न हो यह चलेगा, लेकिन पडोसी के भवन पर हो जाय हमारे भवन के साथ तो नही चलेगा। अहंकार और ईर्ष्या अदभुत कष्ट मे डालती है। फिर, यह भी ख्याल रहे कि यह जो घटना है द्रौपदी की, यह अकेली घटना नही है। द्रौपदी के पहले जो समाज था जगत मे, वह मातृसत्ताक था। हजारो वर्षों तक 'मेथियार्क सोसाइटी' थी—उसमे कोई स्त्री किसी पुरुष की नही होती थी। इसलिए, मा का तो पता चलता था, पिता का कोई पता नही चलता था। ऐसा मालूम पडता है कि द्रौपदी की घटना उस लम्बी शृंखला की आखिरी कडी है। इसलिए, उस वक्त मे किसी ने इसपर एतराज नही उठाया। एक स्त्री के बहु पति की व्यवस्था आज भी कुछ आदिम समाज, जो जिन्दा हैं जमीन पर, उनमे चलती है। नही तो वैसे मा को क्या तकलीफ थी, वह अपना वक्तव्य बदल देती। लेकिन, मा ने आज्ञा न बदली। अगर आज्ञा अनैतिक होती तो लडके भी प्रार्थना तो कर ही सकते थे कि यह आज्ञा बदल ले, हमसे भूल हो गयी। इसमे कोई अडचन न थी। लेकिन, न मा ने आज्ञा बदली, न लडको ने आज्ञा बदलने की कोई प्रार्थना की। न उस समाज मे किसी ने इससे कोई एतराज उठाया कि यह गलत हो गया है। उसका कुल कारण इतना ही है कि वह समाज जिस व्यवस्था मे जी रहा था उस व्यवस्था मे यह घटना अनैतिक नही मालूम पडी होगी।

हमेशा ऐसा होता है कि एक-एक समाज की अपनी-अपनी धारणाए दूसरे समाज को बडा अनैतिक बना देती हैं। मुहम्मद ने नौ शादिया की और कुरान मे प्रत्येक व्यक्ति को चार शादी करने की आज्ञा दी। आज हम सोचने बैठते हैं तो बडा अनैतिक मालूम पडता है कि यह क्या पागलपन है! एक व्यक्ति चार शादी करे? और, खुद मोहम्मद नौ शादी करे। मुहम्मद भी बडे अनूठे आदमी हैं। पहली शादी जो उन्होने की तो उनकी उम्र कोई चौबीस साल थी, उनकी पत्नी की उम्र चालीस साल थी। लेकिन, जिस समाज मे मुहम्मद थे उस समाज मे यह बिलकुल स्वाभाविक था और अनैतिक नही समझा गया। जिस कबीले मे वे थे वह लडाका कबीला था। पुरुष तो कट जाते थे और मर जाते थे। स्त्रिया

इकट्ठी हो जाती थी बहुत बडी सख्या मे। इसलिए, यही नैतिक था उस बडी मे कि एक-एक पुरुष चार-चार शादियाँ कर ले। अन्यथा जो तीन स्त्रिया बच जाती थी उनका क्या हो ? वे तीन स्त्रिया अगर जीवन मे प्रेम न पा सके, अतृप्त रहे तो समाज बहुत अनैतिक और व्यभिचारी हो जायेगा। इसलिए, मुहम्मद ने कहा, चार शादी प्रत्येक पुरुष कर ले, यह धार्मिक व्यवस्था है। खुद ने तो हिम्मत करके नौ शादियाँ की। वह सिर्फ यह कहने को कि अगर मै चार की कहता हूँ तो नौ करके बताये देता हूँ। अरब मे किसी को अडचन न हुई इस बात से; क्योंकि बात सीधी और साफ थी। इसमे कोई अनैतिकता नही दिखायी दी। द्रौपदी के मामले को लेकर मेरी समझ यह है कि कोई अडचन नही थी। और, उस युग मे भी धीरे-धीरे मर रही थी वह व्यवस्था। किन्ही कारणो से पुरुष-स्त्रियो का सतुलन बिगड जाता है तो ऐसी व्यवस्थाए चलती है। उस दिन तो यह अनैतिक न था और आज भी मैं मानता हूँ कि जिस स्त्री ने पाच को एक साथ प्रेम दिया, पाच के प्रेम मे जी सकी वह साधारण स्त्री न थी। असाधारण स्त्री थी। उसके पास प्रेम का अजस्र स्रोत था, इसलिए ही यह सभव हो सका था। लेकिन, हमे सोचने मे कठिनाई होती है, वह हमारे ही कारण होती है।

प्रश्न आपने कहा है कि कृष्ण न मित्र बनाते, न शत्रु बनाते, लेकिन अपने बाल सखा सुदामा से उनका इतना प्रेम है कि सिंहासन छोडकर उसके लिए भागे आते है और तीन मुट्ठी चावल पाकर उसे त्रिलोक का वैभव दे डालते है। कृपया कृष्ण-सुदामा के इस विशेष मैत्री सम्बन्ध पर प्रकाश डालें।

उत्तर विशिष्ट मैत्री सम्बन्ध नही है, बस मैत्री सम्बन्ध है। यहा भी हमारी ही तकलीफ है। हमे लगता है कि तीन मुट्ठी चावल के लिए तीनो लोक का साम्राज्य दे डालना जरा ज्यादा है। लेकिन सुदामा के लिए तीन मुट्ठी चावल देना जितना कठिन था कृष्ण के लिए तीन लोको का साम्राज्य देना उतना कठिन नही था। उसका हमे ख्याल नही है। सुदामा के पास तीन मुट्ठी चावल भी बहुत बडी बात थी। इसमे अगर दान दिया है तो सुदामा ने ही दिया है। हमे पता नही कि सुदामा कितनी दीनता मे जी रहा था उसके लिए एक दाना भी जुटाना और लाना बडा कठिन था। और, कृष्ण के लिए तीन लोक का साम्राज्य भी देना कठिन नही था। इसलिए, कृष्ण ने सुदामा पर उपकार कर दिया इस भूल मे कोई न रहे। कृष्ण ने सिर्फ 'रिस्पोस', उत्तर दिया है। और, उत्तर भी बहुत बडा नही है। बडे-से-बडा जो हो सकता है उतना है। बड़ी-से-बडी जो कल्पना है

कवि की वह यह है कि तीनो लोक का साम्राज्य है। लेकिन, एक गरीब हृदय के पास, जिसके पास कुछ भी नही है, तीन चावल के दाने भी नही है, वह तीन मुट्ठी चावल ले आया है। उसे हम कब समझ पायेंगे ? नही, कृष्ण देकर भी तृप्त नही हुए है। क्योकि, जो सुदामा ने दिया है वह बहुत असाधारण है और जो कृष्ण ने दिया है, उनकी हैसियत के आदमी के लिए बहुत साधारण है। इसलिए, ऐसा मै नही मानता हूँ कि सुदामा के साथ विशेष मैत्री दिखायी गयी है। सुदामा ने ही विशेष मैत्री दिखायी। कृष्ण ने सिर्फ उत्तर दिया है।

जैसा मैने कहा, वे मित्र और शत्रु किसी के भी नही है। लेकिन, सुदामा जैसे मित्र की तरफ से मैत्री का इतना भाव आये तो कृष्ण तो वैसे ही 'रिस्पोस' करते है जैसे घाटियो मे हम आवाज लगा दे तो घाटिया सात बार आवाज को दोहरा कर लौटाती है। घाटिया हमारी आवाज की प्रतीक्षा नही कर रही है। न घाटिया हमारी आवाज का उत्तर देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। न उनका कोई 'कमिटमेट' है। लेकिन, जब हम घाटियो मे आवाज देते है तो घाटिया उसको सातगुना वापस करके लौटा देती है। वह घाटियो का स्वभाव है। वह प्रतिध्वनि, वह 'इकोइग' घाटी का स्वभाव है। कृष्ण ने जो उत्तर दिया है वह कृष्ण का स्वभाव है। और, सुदामा जैसा व्यक्ति जब सामने आ गया हो और इतनी प्रेम की आवाज दी हो तो कृष्ण अगर उसे हजार गुना करके लौटा दें तो भी कुछ नही है।

बड़े मजे की बात है कि गरीब हमेशा मागने जाता है। सुदामा देने गया था। और, जब गरीब देने जाता है तो उसकी अमीरी का कोई मुकाबला नही। इससे उल्टी बात अमीर के साथ घटती है। अमीर हमेशा देने जाता है। लेकिन, जब अमीर मागने जाता है, जैसे बुद्ध की तरह भिक्षा का पात्र लेकर सडक पर खडा हो, तो मामला बिल्कुल बदल जाता है। अगर बुद्ध और सुदामा को साथ सोचेगे तो ख्याल मे आ सकेगा। इधर सुदामा गरीब है और देने गया है। और, बुद्ध के पास सब कुछ है और भीख मागने चले गये। जब अमीर भीख मागने जाता है तब अलौकिक घटना घटती है और जब गरीब दान देने जाता है तब अलौकिक घटना घटती है। वैसे अमीर तो दान देते रहते है और गरीब भीख मागते रहते है। यह बहुत सामान्य घटना है। इसमे कोई विशेष बात नही है। सुदामा उसी विशेष हालत मे है जिस हालत मे बुद्ध का सडक पर भीख मागना है। बुद्ध को क्या कमी है कि भीख मागने जाय। सुदामा के पास क्या है जो देने को उत्सुक हो गया—पागल ही है। बुद्ध भी पागल, वह भी पागल ! और, देने भी किसको गया ? कृष्ण को देने गया, जिनके पास सब कुछ है ! लेकिन, प्रेम यह नही देखता है कि आपके पास कितना

है। आपके पास कितना ही हो तो भी प्रेम देता है। प्रेम यह मान ही नही सकता कि आपके पास पर्याप्त है। इसे थोडा समझना चाहिए।

प्रेम कभी यह मान नही सकता कि आपके पास पर्याप्त है। ऐसी कोई घडी नही आती जब वह कहे कि काफी दे चुके, बहुत है तुम्हारे पास, अब देने की कोई जरूरत न रही। 'इट इज नेवर इनफ' कभी पर्याप्त होना नही। प्रेम देता ही चला जाता है, उलीचता ही चला जाता है और सदा कम ही रहता है। अगर हम एक मा से पूछे कि तूने अपने बेटे के लिए कितना कितना किया ? अगर वह नर्स होगी तो बतायेगी कि इतना इतना किया। अगर वह मा होगी, कहेगी कि कहा किया, मुझे बहुत कुछ करना था वह मैं कर नही पायी। मा हमेशा लेखा-जोखा रखेगी उसका, जो वह नही कर पायी। अगर कोई मा लेखा-जोखा रखती हो कि कितना उसने किया तो वह मा होने के भ्रम मे है, उसने सिर्फ नर्स का काम किया है। इससे ज्यादा कोई उसका काम नही है।

प्रेम सदा लेखा-जोखा रखता है कि क्या मैं कर नही पाया। सुदामा देने को आतुर है। घर से चलते वक्त उसकी पत्नी ने तो कहा है कि कुछ माग लेना। लेकिन, वह देने को चला आया। दूसरी भी बात है कि बडे सकोच मे भरा है। अपनी पोटली को छिपा लिया है। प्रेम देता भी है और सकोच भी अनुभव करता है, क्योकि प्रेम को सदा लगता है कि देने योग्य है क्या ? अज्ञात देना चाहता है, पता न चले। हीरे भी लेकर सुदामा गया होता तो भी ऐसा ही छिपाता। सवाल चावल का नही है। उसके लिए तो हीरे से भी ज्यादा कीमती चावल है। बडा सवाल यह है कि प्रेम कभी घोषणा करके नही देता। जब घोषणा हो गयी तो प्रेम कहा रहा ? वहा तो अहकार शुरू हो गया। प्रेम चुपचाप दे देता है और भाग जाता है। और, बडे मजे की बात है कि कृष्ण उससे आते ही से पूछने लगते है कि लाये क्या हो ? क्योकि, कृष्ण यह मान ही नही सकते कि प्रेम बिना देने के ख्याल के आ गया हो। कृष्ण है कि खोजे जा रहे है और सुदामा है कि छिपाये जा रहा है। वे जानते है कि प्रेम सदा छिपाता है। फिर, उन्होने उसकी पोटली खोजबीन करके छीन ही ली और उस भरे दरबार मे जहा कि खाली चावल कभी भी न आये होगे, वे उन चावलो को खाने लग गये। इसमे कोई विशेष घटना नही है। यह प्रेम के लिए बडी सामान्य घटना है, लेकिन हममे सामान्य प्रेम भी नही रह गया है, इसलिए विशेष मालूम पडती है।

प्रश्न मेरा प्रश्न ऐसा है आचार्यजी, कि सुदामा की दरिद्रता को कृष्ण ने दूर किया, पर उसे देखकर क्या कृष्ण को समाज में जिस कारण

दरिद्रता है, उसका ख्याल न आया और उन्होंने समाज की अर्थ-व्यवस्था को बदलने के बारे में न सोचा ? महावीर और बुद्ध न सोचते तो एक बात थी, पर कृष्ण जैसा व्यापक व्यक्ति जो लौकिक विषयों को भी पूरा महत्त्व देता है, क्यों नहीं सोचता है ?

धार्मिक पुरुषों ने शायद सोचा ही नहीं और जिसने सोचा कार्लमार्क्स ने, वह धार्मिक न रहा। आप अपने बारे में भी बतलायें कि आप चूंकि धर्म और आत्मा से सम्बद्ध हैं– आप अर्थ-व्यवस्था के बारे में कुछ सोचेंगे ? और किस रूप में उसे क्रियान्वित किया जायेगा ?

उत्तर यह सवाल बहुत बार उठता रहा है और यह इल्जाम बुद्ध पर, कृष्ण पर, महावीर पर, जीसस पर, मुहम्मद पर, सब पर लगाया जा सकता है कि उन्होंने अर्थ व्यवस्था के सम्बन्ध में क्यों न सोचा ? बहुत से कारण हैं। वे सोच ही नहीं सकते थे। सोचने का उपाय ही नहीं था। सोचने की परिस्थिति ही नहीं थी।

हम सोच पाते हैं, क्योंकि परिस्थिति पैदा हो गयी है। मार्क्स सोच पाया, क्योंकि मार्क्स के पहले एक 'इण्डस्ट्रियल रिव्योल्यूशन' हो गया, एक औद्योगिक क्रांति हो गयी। औद्योगिक क्रांति के पूर्व जगत में कोई भी अर्थ व्यवस्था को रूपांतरण करने की नहीं सोच सकता। इसके कारण समझ लेने जरूरी हैं।

औद्योगिक क्रांति के पूर्व जो जगत था उस जगत के पास आदमी का श्रम ही एकमात्र उत्पादक स्रोत था। और, आदमी के श्रम से जितना पैदा हो सकता था उसको किसी भी तरह बांटा जाय उससे दरिद्रता नहीं मिट सकती। उससे दरिद्रता मिटने का उपाय ही नहीं है। विषमता भी नहीं मिट सकती थी। उसके भी कारण हैं। उसकी मैं बात करता हूँ।

पहली बात, दरिद्रता नहीं मिट सकती थी। दरिद्रता मिटने के लिए जितनी सम्पत्ति चाहिए उतनी समाज के पास सम्पत्ति न थी। हां, इतना ही हो सकता था कि कुछ लोग जो समृद्ध दिखायी पड़ते थे, वे मिटाये जा सकते थे। उनको भी दरिद्र बनाया जा सकता था। अगर हजार आदमी में एक आदमी के पास थोड़ी संपत्ति दिखायी पड़ती थी तो उसको मिटाया जा सकता था, और नौ सौ निन्यानवे की जगह एक हजार आदमी दरिद्र हो सकते थे। मनुष्य अपने श्रम से जो संपत्ति पैदा करता है उससे कभी दरिद्रता के 'लेवल' के ऊपर नहीं जा सकता। दरिद्रता

मिटाने का विचार उस दिन उठ सकता है जिस दिन आदमी के श्रम की जगह यंत्र का श्रम संपत्ति पैदा करने लगे। उस दिन हम एक-एक आदमी की जगह लाख-लाख गुना श्रम करनेवाली मशीन लगा पाते हैं। तब, संपत्ति वृहत् पैमाने पर पैदा होनी शुरू होती है। पहली दफा यह ख्याल आना शुरू हुआ कि अब दरिद्र को दरिद्र रखने की कोई जरूरत न रही। इसलिए, औद्योगिक क्रांति के बाद ही मार्क्स यह सोच पाया। अगर औद्योगिक क्रांति के बाद कृष्ण पैदा होते तो बहुत ज्यादा साफ सोच पाते, जितना साफ मार्क्स नहीं सोच पाया। लेकिन, कृष्ण औद्योगिक क्रांति के पहले के हैं।

ऐसा नहीं है कि मनुष्य के पास चिन्तन नहीं था और ऐसा भी नहीं है कि मनुष्य को दरिद्रता के मिटाने का ख्याल पैदा नहीं हुआ। बुद्ध को भी हुआ, महावीर को भी हुआ। लेकिन बुद्ध और महावीर ने दरिद्रता को मिटाने का क्या उपाय किया? मालूम? खुद दरिद्र हो गये। और कोई उपाय नहीं था। अगर दरिद्रता पीड़ा देती है तो इसके सिवाय उपाय नहीं कि तुम भी दरिद्र होकर खड़े हो जाओ दरिद्रों के साथ। और क्या करोगे? तो बुद्ध और महावीर ने अपनी संपत्ति छोड़ दी। महावीर ने तो अपनी संपत्ति बांट भी दी थी। लेकिन उससे दरिद्रता नहीं मिटी। दरिद्रता मिटने का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह एक नैतिक उपाय हुआ। महावीर ने अपने मन की पीड़ा मिटा ली, लेकिन दरिद्रता न मिटी। इसलिए, पुराने जगत के समस्त विचारकों ने अपरिग्रह पर जोर दिया है। परिग्रह मत करो। सारे पुराने धर्म चीजों के त्याग पर जोर दे रहे हैं और धन-संग्रह के विरोध में खड़े हैं। वे कहते हैं बांट दो सब। लेकिन, यह उपाय ऐसा है जैसे चम्मच में रंग लेकर समुद्र को रंगने चला जाय। एक बुद्ध बंट जाते हैं, खत्म। एक महावीर बंट जाते हैं, खत्म। वह जो विराट दरिद्रता का सागर है, वह उनके चम्मच को घोलकर पी जाता है। उसमें कुछ पता नहीं चलता। उससे कहीं कोई परिणाम नहीं होता।

लेकिन, दूसरा सवाल है कि यदि दरिद्रता नहीं मिटायी जा सकती थी तो विषमता तो मिटायी जा सकती थी। विषमता मिटाने का ख्याल क्यों पैदा न हुआ? उसका भी कारण है।

इसे थोड़ा ऐसे समझना पड़ेगा—विषमता मिटाने का ख्याल तभी पैदा होता है जब बहुत दूर तक हमारे बीच समानता आनी शुरू हो जाती है। उसके पहले पैदा नहीं होता। असल में विषमता है, यह हमें तभी पता चलता है, जब समाज वर्ग में बंटा हुआ नहीं रह जाता, बल्कि सीढ़ियों में बंट जाता है। जैसे, एक

मेहतरानी है एक गाँव की। अगर वहा की महारानी हीरो के हार पहनकर निकले तो मेहतरानी को कोई भी तकलीफ नही होती। कोई ईर्ष्या नही पकडती उसे। क्योकि, फासला इतना बडा है कि ईर्ष्या पकडने का उपाय नही है। कहा मेहतरानी और कहा महारानी! कितना बडा अन्तराल, कि मेहतरानी सोच भी नही सकती कि वह महारानी से ईर्ष्या करे। लेकिन, पडोस की मेहतरानी अगर एक कंकड-पत्थर का हार भी डालकर निकल जाय तो उसे ईर्ष्या शुरू हो जाती है। क्यो? पडोस की मेहतरानी जहा है, वहा वह भी हो सकती है। इसमे कोई असभावना नही है। इसलिए ईर्ष्या पकडती है।

तब समाज की ऐसी स्थिति थी कि नीचे फैला हुआ दारिद्रो का विशाल जगत था और ठेठ आसमान छूता एकाध आदमी समृद्ध था, और फासले इतने ज्यादा थे कि समानता की धारणा पैदा ही नही हो सकती थी। इसलिए, एक ही उपाय सूझता था कि जो जैसा है, वैसा है। लेकिन, औद्योगिक क्राति के बाद फासले टूटने शुरू हुए। बीच मे सीढिया बन गयी। आज शिखर पर कोई राकफेलर होता है, नीचे कोई मजदूर होता है, लेकिन यह विभाजन दो वर्गों का विभाजन नही है। इसमे सीढियो का विभाजन है, पायरी है। हरेक के ऊपर कोई है, उससे ऊपर कोई है। पूरा समाज लम्बी सीढी बन गया है। बीच की सीढिया सब जुड गयी है। इन बीच की सीढियो की वजह से प्रत्येक को यह ख्याल आता है कि मुझसे जो आगे है, मै उसके समान क्यो नही हो सकता? समानता का ख्याल वर्ग विभक्त समाज मे नही पैदा होता है, सीढी-विभक्त समाज में पैदा होता है। लेकिन, इसका यह मतलब नही है कि बुद्ध, महावीर या कृष्ण ने समानता की बात नही की। जिस समानता की बात उस समय सभव थी, उन्होने की है। वह आत्मिक समानता की बात है। उस दिन वही सम्भव था। यानी सबके भीतर जो प्राण है, जो आत्मा है, वह समान है 'आध्यात्मिक-इक्वालिटी'! लेकिन, बाहर जो सुविधा-असुविधा है, धन है, मकान है, उनके समान होने का कोई ख्याल पैदा नही हो सकता था। उसका कोई रास्ता नही था। आज हम ऐसा सोच सकते है। एक उदाहरण से मै आपको ख्याल दिलाऊँ कि बहुत-सी बाते है जो आज हम नही सोच सकते, लेकिन आने वाली पीढिया हम पर इल्जाम लगायेगी।

आज आप हर आदमी को मजदूरी देते है, जब वह काम करता है। आनेवाली पीढिया आपसे कहेगी, क्या उस वक्त कोई भी एक विचारक पैदा न हुआ जो कहता कि खाने-पीने के लिए काम की शर्त लगानी अनैतिक है। जल्दी वक्त आयेगा जब

सारी ओटोमेटिक मशीने उत्पादन करने लगेगी और प्रश्न खडा हो जायेगा कि अब काम जरूरी नही रहा। प्रत्येक आदमी को बिना काम के मिल जाना चाहिए। बल्कि, जो लोग काम की माग करेगे उनको थोडा कम मिलेगा बजाय उनके, जो काम की माग नही करेगे। क्योकि, वह दो-दो चीजे इकट्ठी मागते है, काम भी मागते हैं, तन्खाह भी मागते है। आज अमरीका का अर्थशास्त्री निरन्तर चिन्तित है कि वह भविष्य के लिए क्या करे ? हमारी पुरानी आदत यह है कि जो काम करे उसे मिलना चाहिए, भविष्य की सभावना यह है जब सारा 'ओटोमाइजेशन' हो जायेगा कि काम तो दे नही सकेगे हम सबको तो जो न काम करे उसे ज्यादा दिया जाय। देना तो पडेगा ही। क्योकि, अगर फैक्टरी मे आप कारे भी बना लेगे और खरीदने के लिए लोगो के पास पैसा नही होगा तो आप कारो को बनाकर क्या करेगे ? फैक्टरी पूरी-की-पूरी 'ओटोमेटिक हो जायेगी। जहा लाख आदमी काम करते थे, एक आदमी बटन दबाकर काम कर देगा। वह जो लाख आदमी बाहर चले गये, अगर उनको कुछ भी न दे आप तो फैक्टरी की कारो का क्या होगा ? इन कारो को खरीदेगा कौन ? चीजो को खरीदने के लिए उनको कुछ देना ही पडेगा। अभी हमको पता नही है कि बिना काम मे राजी रखना इतना कठिन पडेगा, जितना सख्त मजदूरी कठिन नही पडी थी। भविष्य मे कोई जरूर कहेगा कि कैसे लोग थे, न कृष्ण, न महावीर, न मार्क्स कोई भी यह नही सोच सका कि आदमी से काम लेना बडा अनैतिक है, अमानवीय है। यदि उसको भूख लगी है तो उसको खाना मिलना चाहिए, काम का क्या सवाल है! लेकिन, यह अभी हम नही सोच सकते। अभी सोचना बहुत कठिन पडेगा कि यह कैसी बात है ? अभी तो काम मिल जाय तो भी रोटी नही मिलती तो बिना काम के तो रोटी बहुत मुश्किल है।

हर युग की अपनी व्यवस्था है। उसी सम्भावना के बीच चिन्तन के फूल खिलते है। कृष्ण के वक्त मे विषमता का कोई दश नही है। 'इनइक्वालिटी' की कोई पीडा नही है। इसलिए, 'इक्वालिटी' का, समानता का कोई नारा नही है। गरीब पीडित नही है इस बात से कि वह गरीब है। देखिये, मजे की बात है कि प्लेटो जैसा विचारक जो समानता का बडा पुरस्कर्ता है उसे भी, गुलामो को मिटाया जाय, इसका ख्याल ही नही आता। बल्कि वह कहता है, गुलाम तो रहेगे ही, क्योकि यूनान मे गुलाम सहज बात थी, बल्कि प्लेटो यह कहता है कि अगर गुलाम न रहेगे तो समानता कैसे रहेगी ?

प्रश्न फिर कुछ लोग सदा हुकूमत करेगे या कुछ चुने हुओं का वर्ग अवश्य हावी रहेगा ?

उत्तर वह रहे है और वह वर्ग हमेशा हावी रहेगा। उसमे और कोई फर्क पड़नेवाला नही है। कभी वह मालिक की तरह हावी होता है, कभी नेता की तरह हावी होता है, कभी राजा की तरह हावी होता है, कभी गुरु की तरह हावी होता है, कभी महात्मा की तरह हावी होता है। लेकिन, एलाइड हमेशा हावी होता है। ऐसा मै कोई युग नही देख सकता जिस दिन कि चुने हुए लोग हावी नही होंगे। यह दूसरी बात है कि उनकी शकलें बदल जाय। कभी हम उनको कहे कि यह राजा है, कभी हम कहे यह राष्ट्रपति है। कभी हम कहे कि यह सम्राट है और कभी हम कहे कि वह मंत्री है। कभी हम कहे कि यह महात्मा है और कभी हम कहे कि यह भगवान है। हम नाम कुछ भी देते रहें, लेकिन जब तक मनुष्यो का विकास समान तल पर नही पहुच जाता ऐसा होता ही रहेगा। हर मनुष्य समान तल पर पहुच जाय समस्त विकासो की दृष्टि से, ऐसा भी मै नही मानता कि हो पायेगा। तब वह समाज बड़ा बेरौनक और बहुत बेहूदा होगा, बहुत 'बोर्डम' का होगा। अभी हम कुछ भी सोच सकते है, लेकिन चुने हुए लोग हमेशा रहेगे। कोई अच्छा सितार बजायेगा तो कम अच्छा सितार बजानेवाले पर हावी हो ही जाने वाला है। इसमे करियेगा क्या ? कोई अच्छा नाचेगा तो कम अच्छा नाचनेवाले पर हावी हो ही जायेगा। इसमे करियेगा क्या ? जब कोई आइन्स्टीन पैदा होगा तो जो दो और दो नही जोड सकते, उनपर अगर हावी हो जाय तो इसमे कसूर किसका ? इसमे करियेगा क्या ? यह स्थिति ऐसी है कि इस स्थिति मे कोई हावी होता रहेगा। यह बात पक्की है कि पुराने ढग के हावी होने वाले लोगो से जब हम ऊब जाते है—ऊब ही जाते है, क्योंकि भविष्य के लिए वह मौज भी नही रह जाने इसलिए बदलाहट करनी पडती है। आज रूस है, जहा बदल दिया है सब। लेकिन, फिर दूसरे लोग हावी हो गये। वह पिछले लोगो से कम हावी नही है, बल्कि ज्यादा ही हावी है। आज चीन है, हमने एक को बदल दिया तो दूसरे लोग हावी हो गये।

जब तक मनुष्य और मनुष्य के बीच फासले है बुद्धि के, विचार के, क्षमताओ के, प्रतिभाओ के, शक्तियो के, तब तक असभव है कि कोई हावी नही हो जायेगा। और, तब तक यह भी असभव है कि कोई न चाहेगा कि कोई मुझ पर हावी हो जाय। वह चाहेगा ही कि हावी हो जाय, क्योकि वह भी बिना उसके नही जी सकेगा। बदलाहट चलती रहेगी। एक युग की बाते हमें बेहूदी लगने लगती हैं, क्योकि हम दूसरी तरह के हावीपन को स्वीकार कर लेते है। कृष्ण के वक्त मे यह सहज स्वीकृत है। गरीब, गरीब होने को राजी है। अमीर के मन मे कोई दश नही है अमीर होने का, क्योकि जब तक गरीब गरीब होने को राजी है तब तक

अमीर के मन मे दश हो नही सकता। अमीर 'ऐट ईज' है। इसलिए समाज को चिन्तन का मौका नही पैदा होता।

जैसे उदाहरण के लिए, अभी हम कहने लगे कि गरीब और अमीर समान होने चाहिए। इसका कारण यह नही है कि हमारी बौद्धिक प्रतिभा कृष्ण से आगे चली गयी है उसका कुल कारण इतना है कि सामाजिक व्यवस्था कृष्ण के काल से भिन्न हो गयी। लेकिन, अभी भी कोई आदमी यह नही कह सकता कि मै कम बुद्धि का हूँ तो जो मुझसे ज्यादा बुद्धि का है, हममे समानता होनी चाहिए। लेकिन, आज से पचास साल बाद कम बुद्धि का आदमी यह अपील करना शुरू कर देगा। क्योकि, पचास साल मे हम वह व्यवस्था खोज लेगे जिससे बुद्धि मे भी कमी-बढती की जा सकेगी। वह व्यवस्था विकसित हो रही है। पचास साल बाद हर बच्चा यह कहेगा कि मै जड बुद्धि होने को राजी नही हूँ। और, किसी आदमी को यह हक नही है कि वह प्रतिभाशाली हो जाय। होंगे तो हम सब समान होगे। यह उस दिन आवाज उठ सकती है। इसकी सभावना बढ गयी है। क्योकि, मनुष्य के 'जीन' विज्ञान का जो प्रवेश है, अब वह यह बात तय कर सकेगा कि इस बच्चे की कितनी प्रतिभा हो, जो इस बीज से पैदा होगा। जैसे, आप अभी बाजार मे फूलो का पैकेट खरीदने चले जाते है, जिस पर फूल की तस्वीर बनी होती है ऊपरकि अगर इस बीज को इतनी खाद और इतनी व्यवस्था दी गयी तो यह बीज इतना बडा फूल बन सकेगा। उस दिन एक बाप और एक मा बाजार मे सिर्फ पचास साल के भीतर उस पैकेट को भी खरीद सकेगे जिसमे बच्चे की तस्वीर बनी होगी ऊपर कि इसकी आखे इस रग की होगी, इसके बाल इस ढग के होगे, इसकी लबाई इतनी होगी, इसका स्वास्थ्य इतना होगा, इसकी उम्र इतनी होगी, यह 'गैरेटीड' है कि सत्तर साल तक नही मरेगा। इसको यह यह बीमारिया नही होगी और इसकी प्रतिभा का, इसकी बुद्धि का माप इतना होगा। तब आप चुनाव कर सकते है। यह सभव हो जायेगा। बीज के बाबत भी पहले सम्भव नही था। आज सभव है। आदमी भी एक बीज से जन्मता है। आदमी के बीज के बाबत भी सभव हो जायेगा। जिस दिन यह सभव हो जायेगा उस दिन हम पूछेंगे कि कृष्ण को कभी ख्याल न आया कि प्रतिभा और गैर-प्रतिभा मे समानता होनी चाहिए ? आ कैसे सकता है ? इसके आने का कोई उपाय नही है।

प्रश्न सुदामा के सम्बन्ध मे एक छोटा-सा प्रश्न आया है। जब सुदामा कृष्ण के पास कुछ लेने आये तभी तीन लोक का साम्राज्य दिया गया। लेकिन, उसके पहले कृष्ण ने सुदामा को क्यो कुछ नहीं दिया ? वह गरीब तो बहुत था बेचारा।

उत्तर इस जगत मे मिलता कुछ भी नही है, खोजना पडता है। भगवान तो यही मौजूद है और ऐसा नही कि आपकी पीडा का उसको पता नही है, लेकिन आप पीठ करके खडे है और इतनी स्वतन्त्रता आपको है कि आप चाहे तो भगवान को ले और चाहें तो न ले। जिस दिन आपको मिलेगा उस दिन आप भगवान से शिकायत कर सकते है कि जब तक मैंने तुझे नही खोजा, तूने ही मुझे खोज क्यो न लिया? लेकिन, भगवान उस दिन कहेगा कि जबर्दस्ती तेरे ऊपर हावी हो जाऊँ, वह भी परतन्त्रता हो सकती है! स्वतन्त्रता का अर्थ ही इतना है कि जो हम खोजते हैं वह हमे मिल सके। जो हम नही खोजते वह न मिल सके। और ध्यान रहे, कुछ भी इस जगत मे नही मिलता है बिना खोजे। खोजना ही पडता है। सुदामा कैसा है, यह सवाल बडा नही है। सुदामा इन्कार भी कर सकता है। और मै मानता हूँ कि अगर कृष्ण देने गये होते सुदामा के घर तो शायद इन्कार भी कर देता। जरूरी नही था कि स्वीकार करता। सुदामा की तैयारी होनी चाहिए। ये सारी की सारी घटनाए बहुत मनोवैज्ञानिक अर्थ रखती है। इनकी अपनी 'साईकोलॉजिकल' अर्थवत्ता है। हम जो खोजने जायेंगे, जिस दिन हमारी खोज की तैयारी पूरी होगी उसी दिन वह हमे मिल सकता है। उसके पहले हमे नही मिलेगा। पडा हो बगल मे तो भी नही मिलेगा।

अकेला सुदामा गरीब नही है, बहुत लोग गरीब है। कृष्ण के लिए इससे कोई फर्क नही पडता कि सुदामा गरीब है कि कोई और गरीब है। बडा फर्क जो पडता है वह यह कि सुदामा इतना गरीब होकर भी देने चला आया है। आदमी अमीर होने के योग्य है। यह जो सुदामा की स्थिति है उसी से परिवर्तन शुरू होता है। और हम, प्रत्यक व्यक्ति, व्यक्ति की हैसियत से ही अपने परिवतन को शुरू करता है। बाकी फिर सारी शक्तिया मिलती चली जाती है। जिस आदमी ने इस पृथ्वीपर गरीब होने का तय किया है उसे सब गरीबी की परिस्थितिया मिल जायेगी। जिस आदमी ने इस पृथ्वी पर अज्ञानी होने का तय कर लिया उसे अज्ञानी होने की सब परिस्थितिया मिल जायेगी। जिस आदमी ने इस जगत मे ज्ञान के लिए तय कर रखा है उसके लिये ज्ञान के सब द्वार खुल जायेंगे। इस जगत मे हम जो मागते है वह लौट आता है। वह आ जाता है। बहुत गहरे मे हमारी ही आकाक्षाएँ, हमारी ही प्रार्थनाएँ, हमारी ही अभीप्साएँ हम पर लौट आती है। अगर कोई आदमी समझता हो कि मै गरीब क्यो हूँ, आप उसके पूरे व्यक्तित्व को खोजेंगे तो बहुत हैरान हो जायेंगे। उसने गरीब होने की सारी व्यवस्था कर रखी है। वह गरीब होने के लिए पूरा-का-पूरा तत्पर है। और, अगर गरीब न हो तो खुद भी चौंकेगा कि यह क्या हो गया? अज्ञानी ने पूरी व्यवस्था कर रखी है अपने अज्ञान

की और खुद भी चौकेगा कि यह क्या हो गया ? वह अपने अज्ञान की सुरक्षा के सब उपाय कर रहा है । अगर कोई उसका अज्ञान तोडने आये तो क्रुद्ध हो जाता है । जो हम खोजने जाते है, वही होता है । सुदामा जाता है कृष्ण के पास तो सुदामा को कृष्ण मिल जाते है । कृष्ण का आना उचित भी नही है । प्रतीक्षा कृष्ण को करनी चाहिए सुदामा के आने तक । वह प्रतीक्षा जरूरी है । ऐसा नही है कि परमात्मा आप पे नाराज है और आपके पास नही आ रहा है । लेकिन, आपको उसके पास जाना पडेगा । जिस दिन आप जायेगे उस दिन आप पायेगे वह सदा तत्पर था आपसे मिलने को । लेकिन, आप ही राजी नही थे ।

प्रश्न द्रौपदी वाले पहले प्रश्न मे कृष्ण का द्रौपदी के प्रति बृहत् अनुराग है, इसकी चर्चा नहीं हुई, इस पर कुछ सुनना चाहेगे ।

उत्तर द्रौपदी ऐसी है कि कृष्ण का अनुराग उस पर हो । ऐसे तो कृष्ण का अनुराग सब पर है । लेकिन, द्रौपदी के पास पात्र बहुत बडा है । सागर के तट पर हम जाय तो अपने अपने पात्र के बराबर भर ले आते है । सागर तो बहुत बडा है, पर कभी सागर कहता नही कि कितना बडा पात्र लेकर तुम मेरे पास आओ । जितना बडा पात्र हो उतना लेकर हम जाते है । द्रौपदी के पास बडे से बडा पात्र है । कृष्ण का बहुत अनुराग उसे उपलब्ध हुआ है । वह अनुराग और वह प्रेम बडा गहरा है । इतना गहरा है कि कृष्ण और द्रौपदी के बीच किसी तरह की शारीरिक निकटता का कोई आग्रह नही है । लेकिन, जितने कृष्ण द्रौपदी के काम पडते है उतने किसी के काम नही पडते । जब भी वक्त आ जाता है तो वह तत्काल मौजूद हो जाते है । जैसे कि पीछे हम बात कर रहे थे कि उसे नग्न किया जा रहा है, उघाडा जा रहा है तो वे मौजूद हो गये है । एक वो प्रेम है जो मुखर होता है,जो बोलता है और एक प्रेम है जो मौन होता है, बोलता नही है । ध्यान रहे,बोलनेवाला प्रेम बहुत गहरा नही हो पाता । छिछला हो जाता है । वाणी मे बहुत गहराई नही है । मौन रह जाने वाला प्रेम बहुत गहरा होता है, मौन की बडी गहराई है । द्रौपदी का प्रेम बडा मौन है । और, मौन प्रेम जितने दूर तक प्रभावित करता है प्रेमी को, उतना कोई और प्रेम प्रभावित नही करता । कृष्ण काम तो पड जाते है द्रौपदी के जगह-जगह, लेकिन कृष्ण का यह प्रेम और द्रौपदी का यह कृष्ण के प्रति लगाव कही बहुत स्थूल घटनाओ मे रूपातरित नही होता । दरअसल स्थूल मे रूपातरित होने का आग्रह ही तब होता है जब हम सूक्ष्म मे नही मिल पाते । अन्यथा प्रेम दूर भी रह सकता है ।

ऐसा भी हो सकता है कि प्रेम कभी निवेदन भी न करे कि प्रेम है। इतना चुप हो सकता है। लेकिन, कृष्ण जैसे को चुप्पी भी समझ में आ सकती है। सभी को समझ मे नही आयेगी। हमारे भीतर प्रेम न हो तो भी वाणी से प्रकट करने से काम चलता है। क्योकि हमे वाणी समझ मे आती है, प्रेम तो समझ मे आता नही। प्रेम पर आजकल किताबे लिखी जाती हैं। मनोवैज्ञानिक प्रेम पर किताबे लिख रहे है। वह इस बात पर बहुत जोर देते है कि चाहे प्रेम हो या न हो, लेकिन प्रकट जरूर करते रहो। पति जब साझ को घर लौटे तो चाहे वह थका मादा हो, चाहे वह कितना भी परेशान हो, मनोवैज्ञानिक कहते है पत्नी को देखते ही खिल जाना चाहिए। चाहे उसे अभिनय करना पडे। कुछ ऐसी बाते कहनी चाहिए जो प्रेमपूर्ण हो। जब वह सुबह जाने लगे तो उसे बडी पीडा दर्शानी चाहिए कि वह पत्नी से कुछ घटो के लिए छूट रहा है। चाहे उसे बडा सुख मिल रहा हो। ये मनोवैज्ञानिक ठीक कहते है। इसलिए ठीक कहते है कि हम शब्दो पर जी रहे है। यहा असली प्रेम से मतलब किसे है, प्रयोजन किसे है ? एक आदमी ने आपका कुछ थोडा-सा काम किया और आप उसे सिर झुका कर धन्यवाद दे देते है। आपने धन्यवाद अनुभव किया या नही किया, यह सवाल नही है बडा, लेकिन आप सिर झुकाकर धन्यवाद दे देते है, उस आदमी को तो धन्यवाद मिल जाता है। क्योकि शब्दो मे हम जीते है। अगर आपने धन्यवाद न दिया, चाहे भीतर अनुभव भी किया हो, तो वह आदमी दुखी होकर चला जाता है कि कैसे पागल आदमी है, मैने इतना काम किया, धन्यवाद तक न दिया।

हम मौन को नही समझ पाते इसलिए वाणी मे ही हमारा सब चलता है। लेकिन ध्यान रहे, यह कभी ख्याल मे आया हो, न आया हो, जब हम किसी के प्रति बहुत प्रेम मे भरे होते है, तो वाणी एकदम निरस्त्र हो जाती है। अचानक पाते है कि बोलने को कुछ भी नही बचा, कहने को भी कुछ नही बचा। प्रेमी बहुत तय करते है कि जब अपने प्रेम पात्रो को मिलेगे तो यह कहेगे, वह कहेगे; और जब मिलते है तब अचानक पाते है कि कुछ याद नही पडता, क्या कहना था। सब चुप हो गया है, सब मौन हो गया है। बीच मे मौन खडा हो जाता है। द्रौपदी और कृष्ण का प्रेम बडा मौन है। वह और मुखर प्रेमो की तरह नही है। लेकिन, कृष्ण पर उसकी गहरी सवेदना हुई है। इसलिए, जितने काम वे द्रौपदी के आये उतने वे किसी के काम पडे नही है। पूरी महाभारत की कथा में कृष्ण छाया की तरह द्रौपदी की रक्षा करते रहे हैं। वह बडा दूर का नाता है। उसमे बहुत साफ-साफ घटनाएँ नही दिखायी पडती, लेकिन बहुत छाया-सम्बन्ध है। वह बहुत चुपचाप 'इन्टीमेटली' चलता रहता है।

प्रश्न पश्चिम के सागर तट की सुरक्षा, तथा आक्रमण से बचने के लिए कृष्ण ने मथुरा का त्याग और द्वारका का वास किया था। सुना है कि मथुरा के लोग भगवान कृष्ण को आपत्ति समझते थे जिसके कारण ही जरासध आदि राजा मथुरा पर आक्रमण करने पर तुले थे। कृष्ण को भी जरासध हरा सका यह उनके चरित्र के मानवी अश का छोर नहीं है क्या ?

उत्तर जीवन मे हार और जीत कपडे के आडे और तिरछे तानो बानो की तरह होती है। अकेली जीत से कोई जीवन नही बनता। खडे ताने रह जाते हैं, आडे ताने नही होते। अकेली हार से कोई जीवन नही बनता, आडे ताने रह जाते है, खडे ताने नही होते। जीवन के कपडे की जो बुनावट है वह हार और जीत का इकट्ठा साथ है, सफलता और असफलता का इकट्ठा मेल है तथा गलत और सही का इकट्ठा जोड है। जीवन है तो वह दोनो हैं। इसलिए, सवाल यह नही है कि कब कृष्ण हार जाते हैं किससे, और कब जीत जाते है। असली सवाल यह है कि 'टोटल' जिन्दगी का परिणाम जीत है कि हार। कृष्ण की ही नही, सभी की जिन्दगी के लिए यह सवाल नही है कि आप कब हार गये थे या कब जीत गये थे ? क्योकि, हो सकता है कि आपकी हार जीत के लिए सीढी बनी हो, और यह भी हो सकता है कि आपकी जीत सिर्फ एक बडी हार मे कूदने के लिए खाई बन गयी हो। जिन्दगी के ताने बाने विराट हैं और जटिल है। यहा सब हारे हार नही है, सब जीते जीत नही है। इसलिए, आखिरी जो निर्णय है वह यह नही होता कि आदमी कब असफल हुआ और कब सफल हुआ, कब हारा, कब जीता ! असली सवाल यह है कि उसकी पूरी जिन्दगी की कथा का सार, निचोड, जीत है कि हार ?

इसलिए, बहुत स्वाभाविक है कि कृष्ण की जिन्दगी मे कुछ हार के क्षण हो। जिन्दगी है तो होगे। अगर भगवान को भी जीना हो तो उसे आदमी की तरह ही जीना होगा। जिन्दगी मे तो उसे आदमी की तरह ही खडा होना होगा। और, जिन्दगी के सुख-दुख उसे एक साथ स्वीकार करने पडेगे। जो आदमी हारने को तैयार नही है उसे पक्का कर लेना चाहिए कि उसे जीतने का ख्याल छोड देना चाहिए। कृष्ण की जिन्दगी मे दोनो है, इसलिए वह जिन्दगी मेरे लिए किसी मानवीय हीनता के अर्थ मे नही होती, बल्कि गरिमा के अर्थ मे हो जाती है। यानी कृष्ण हार भी सकते है, इतने अद्भुत आदमी है। जीत की जिद्द नही है, जीतकर ही रहेगे, जीतते ही रहेगे, ऐसा अभिमान भी नही है। हार भी आ

सकती है। भागना भी हो सकता है, कही पलायन घट सकता है, कही से जगह भी छोडनी पड सकती है। यह सब स्वीकार है। जिन्दगी के सब ताने बाने जैसे है स्वीकृत हैं। इसमे चुनाव नही है कि हम यही करेगे।

कृष्ण की बहुत जगह जो 'ह्यूमीनिटी' है वह कई जगह बुद्ध और महावीर की 'डिविनिटी' के सामने छोटी मालूम पडेगी। बुद्ध और महावीर एकदम 'डिव्हाइन' मालूम पडते है, एकदम दिव्य मालूम पडते है, उनमे मानवीयता बिल्कुल नही मालूम पडती। लेकिन ध्यान रहे, बहुत दिव्यता अमानवीयता भी हो जाती है और चीजे सख्त हो जाती है। कृष्ण सख्त होने को राजी नही है। इसलिए जिसको हम मानवीय कमजोरिया कहते है, वह कृष्ण में सब-की-सब स्वीकृत है। कहावत है अग्रेजी मे 'टु अर इज ह्यूमन' भूल करना मानवीय है, लेकिन इससे उल्टी कहावत नही है कि कभी न भूल करना बडा अमानवीय हो जाना है। भूल को भूल की तरह लेने की जरूरत कृष्ण को नही मालूम पडती। वह जिन्दगी मे आया हुआ हिस्सा है, वह उसे लिए चले जाते है। और, यह भी सच है कि उन्हे मथुरा छोड देनी पडी। कृष्ण जैसे व्यक्ति को बहुत जगहे छोडनी पड सकती है। वे कई जगह उपद्रव के सिद्ध हो सकते है। कई जगह उन्हे सहने के लिए असमर्थ हो सकती है। क्योकि, कृष्ण के साथ चलना, कृष्ण के साथ जीना, कृष्ण को समझना आसान नही है। वह हट जाते है। इस हटने मे भी कोई उन्हे कठिनाई नही होती। वे ऐसे ही हट जाते है, क्योकि वह पैर जमा कर कही भी खडे नही हो गये है। वे बडी सरलता से चुपचाप हट जाते है। फिर पीछे लौटकर भी नही देखते। इधर पीछे जो उन्हे 'क्लेम' करते है, परेशान है खबरो पर खबरे भेजते है, चिट्ठियो पर चिट्ठिया लिखते है। पता लगाते हैं कि वह याद भी करते है कि नही करते है। लेकिन, वे दूसरी एक जगह पहुँच गये है। अब वे इस जगह को याद करेगे। वह जहा है वहा पूरे है। इसलिए, कठोर भी मालूम पडते है। कृष्ण की जिन्दगी एक बहाव है। हवाएँ पूरब जाती है तो वे पूरब चले जाते है, हवाएँ पश्चिम जाती है वे पश्चिम चले जाते हैं। कृष्ण का अपना आग्रह नही है कि मै यही रहूँगा, ऐसा ही रहूँगा, ऐसा ही होने की मैंने कसम खा रक्खी है, ऐसा कुछ भी नही है। जिन्दगी जहा ले जाती है वे राजी है। लाओत्से का एक वचन है, वह मैं कहूँ आपको — लाओत्से कहता है, हवाओ की तरह हो जाओ, जब हवाएँ पूरब जाएँ तो पूरब, जब हवाएँ पश्चिम जायें तो पश्चिम। तुम आग्रह मत करो कि मैं यहा ही जाऊँगा।

एक छोटी-सी झेन कहानी है। एक नदी पर जोर का बहाव है। बाढ़ आयी हुई है। नदी मे दो घास के छोटे-से तिनके बह रहे हैं। एक तिनके ने नदी की

बाढ़ मे अपने को आडा डाल रखा है। वह नदी से लड रहा है। नदी को पता भी नही कि तिनका उससे लड रहा है। लेकिन, तिनका है कि मरा जा रहा है, लडे जा रहा है, फिर भी वह बह तो रहा ही है। क्योकि, नदी बही जा रही है। तिनके के लडने से नदी रुकती थोडे ही है। दूसरे तिनके ने नदी मे अपने को सीधा छोड दिया है लबाई मे, वह बडा आनन्दित है और नाच रहा है। वह यह सोच रहा है कि नदी को बहने का मै रास्ता दे रहा हूँ। नदी मेरे सहारे बही जा रही है। नदी को कोई फर्क नही पडता है। नदी को उन दोनो तिनको का भी कोई पता नही, लेकिन उन तिनको को बहुत फर्क पडता है।

जिन्दगी मे दो ही तरह के लोग हैं— आग्रहशील ऐसे ही होगे, यही करेगे। ऐसे लोग उस तिनके की तरह है जो नदी मे अपने को आडा डाले हुए है। इससे नदी को कोई फर्क नही पडता है। जिन्दगी की धारा बही चली जाती है। वे आडे ही बहते रहते है लेकिन कष्ट भोगते है। ऐसे भी लोग है जो जिन्दगी की धार मे अपने को सीधा लम्बा छोड देते है। वे कहते है कि हम साथ है। नदी बहो। हमारे साथ ही बहो। वे बडे आनदित होते है और नाच पाते है। कृष्ण के ओठो पर बासुरी सम्भव हो सकी, क्योकि वह लबी धारा मे अपने को छोडे हुए आदमी है। जिन्दगी की धार के साथ एक है। आडे नही है, नही तो बासुरी मुश्किल है। महावीर के ओठ पर बासुरी नही रख सकते आप। एकदम फेक देगे कि क्या पागलपन कर रहे हो! कृष्ण के ओठ पर बासुरी रखी जा सकती है। यह आदमी बासुरी बजा सकता है। उसका कुल कारण इतना है कि नदी की जीवन की धारा से कोई सघर्ष नही है। नदी जहा ले जाती है जाने को राजी है। अगर मथुरा से नदी हट गयी तो द्वारका मे बहेगी, हर्ज क्या है! अगर मथुरा के घाट से छूट गया तो द्वारका मे घाट बन जायेगा हर्ज क्या है! अनाग्रहशील व्यक्तित्व का वह लक्षण है।

प्रश्न . कालियावन मानता है कि कृष्ण भागते हैं, मगर कृष्ण भगाते हैं और ले जाते हैं उस गुफा मे, जहां मुचकुन्द सोया हुआ है। मुचकुन्द जागता है और उसकी दृष्टि से पुराणकार कहते है, कालियावन जल जाता है। वह क्या तात्पर्य रखता है?

उत्तर इन सारे शब्दो के प्रतीक अर्थ है। कृष्ण की कथा मे बहुत कुछ जुडा है। बहुत कुछ सिर्फ प्रतीक है, 'मेटाफर' है। कुछ किन्ही घटनाओ से सबधित है, कुछ किसी फिलासफी, किसी 'मेटाफिजिक्स' से सबधित है, यह सब जुडा है। कृष्ण किसी को भगाते है ऐसा हमे दिखायी पड सकता है। जो

भाग रहा है उसको भी दिखायी पड सकता है कि मुझे भगा रहे हैं। लेकिन, जहां तक मेरी समझ है, कृष्ण जैसा व्यक्ति किसी को भगाता नही, भगाने की घटना घट सकती है। स्थिति ऐसी हो सकती है कि भागना किसी के लिए अनिवार्य हो जाय, कृष्ण को पीछा करना अनिवार्य हो जाय। इसमे तय करना बड़ा मुश्किल है।

मैंने सुना है एक आदमी एक गाय के गले मे रस्सी बांध कर ले आ रहा है। एक सूफी फकीर ने उससे पूछा है कि तुम गाय से बंधे हो कि गाय तुमसे बधी है। उस आदमी ने कहा, पागल हो गये हो, मैं गाय को बांधे हुए हूँ, मै क्यो गाय से बधा होने लगा। उस फकीर ने पूछा कि फिर मैं तुमसे एक काम कहता हूँ– अगर गाय छोड दी जाय और भागे तो तुम गाय के पीछे भागोगे कि गाय तुम्हारे पीछे भागेगी? उस आदमी ने कहा, मुझे गाय के पीछे भागना पडेगा। उस फकीर ने पूछा, फिर बधा कौन किससे है? असल मे बधना हमेशा दुतर्फा है। इसको एक हिस्से मे तोड कर तय करना मुश्किल हो जायेगा। इतना ही हम कह सकते है कि भागना घटित हो रहा है, उसमे एक आगे है और एक पीछे। लेकिन, कृष्ण के व्यक्तित्व को देख कर हम सोच सकते है कि वह चूँकि इतने सहज जीते है इसलिए किसी चीज से उनका अगर सघर्ष भी है तो वह सघर्ष किसी सहयोग से ही फलित हुआ है। और, जब कथा कहती है कि कालयवन जल जाता है तो मेरा अपना मानना है कि यह काल के जल जाने का प्रतीक है। यह समय के जल जाने का प्रतीक है। यह 'टाइम' के जल जाने का प्रतीक है।

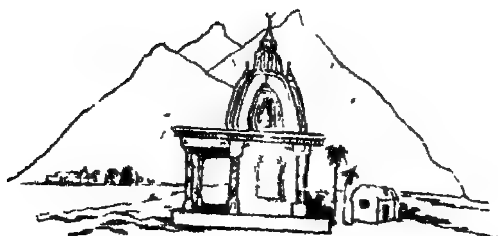
समय ही शायद हमारी जिन्दगी की सबसे बडी दुविधा, तनाव और तकलीफ है। समय ही शायद हमारा सताप और 'एग्विश' है। समय ही शायद, हमारा सारा खिचा हुआ होना है। समय जल जाय इसे हम ऐसा कह सकते है कि काल ही शायद सिर्फ एकमात्र राक्षस है जिससे हमारा सघर्ष चल रहा है पृथ्वी पर, और काल ही है जो हमे लील जायेगा और समाप्त कर देगा। लेकिन, कभी-कभी कोई काल को लील जाता है और समाप्त कर देता है। कभी-कभी कोई समय को मिटा देता है और समय के अतीत हो जाता है। कभी-कभी समय जल जाता है। किनसे जल जाता है, कौन समय को जला देता है? आप कह रहे है न, कृष्ण आगे भाग रहे है– जो समय के पीछे भागेगा, वह समय को नही जला सकेगा। जो समय के आगे भागेगा वह समय को जलाता है और वह समय के आगे हो जाता है। और सोये हुए मुजकुन्द की आँख खुलने से जल जाता है। मैंने कहा कि यह मेरे लिए प्रतीक कथा है। असल

में सोयी हुई आँख के लिए ही समय है। खुली हुई आँख के लिए समय नहीं है हम जितने 'अनअवेयर' है, उतना ही हमारे लिए समय है। जिस दिन हम पूरे 'कॉसिस' है, पूरे जागे हुए है, आँख खुली है, उसी दिन समय जल जाता है। किसी की भी आँख खुल जाय! हम सभी गुफाओ मे सोये हुए है। कृष्ण की मौजूदगी किसी गुफा मे सोये हुए आदमी का आँख खोलने का कारण बन सकती है। कृष्ण के पीछे आता हुआ समय उसकी खुली आँख मे जल सकता है। कृष्ण के लिए तो मैं मानता हूँ, समय नही है, मुचकुन्द के लिए रहा होगा। वह जल सकता है।

इन प्रतीको को अगर हम कभी भी जीवन-सत्यो की तरफ शोध मे लगायें तो बडी आश्चर्यजनक अनुभूतिया उपलब्ध होती है। बडी आश्चर्यजनक अन्तर्दृष्टिया उपलब्ध होती है। लेकिन, हम इन सबको कथाएँ मानकर बैठ गये है। और, ऐतिहासिक घटनाएँ मानकर दोहराये चले जाते है। लेकिन, इतिहास की घटनाओ से ज्यादा कही मनुष्य के चित्त पर घटी हुई सभावनाओ, मनुष्य के चित्त मे छिपी हुई 'पोटेंशियलिटी', मनुष्य चित्त मे होने वाली विराट लीला के ये हिस्से है। इस भाँति कभी हमने उन्हे गौर से देखने की कोशिश नही की है, इससे बहुत अडचन हुई है। इसलिए, कृष्ण जैसे व्यक्तित्व हमे धीरे-धीरे झूठे मालूम पडने लगते है। क्योकि, इतना सब कुछ उनमे मिल जाता है कि उसे तय करना मुश्किल हो जाता है कि यह कैसे सभव हो सकता है! कृष्ण जैसे व्यक्तियो की बडी 'साइकोलॉजिकल कामेट्री' की जरूरत है कि उनका पूरा-का-पूरा व्यक्तित्व मनस शास्त्र के हिसाब से खोला जा सके।

आखिरी बात आपसे कहूँ और वह यह कहना चाहूँगा कि पुराने आदमी के पास दूसरा उपाय न था। उसने जो मनस सत्य भी जाने थे उनको भी वह कथा के प्रतीको मे रख सकता था। उनमे ही उनको ढाक सकता था, उनमे ही उनको छिपा सकता था। उसके सिवा कोई मार्ग ही नही था उसके पास। लेकिन, आज हमारे पास मार्ग है कि हम उनको खोल ले। जीसस ने एक जगह कहा है कि मैं तुम्हे ऐसी भाषा में कहता हूँ कि जो समझ सकते है वे समझ लेगे, और जो नही समझ सकते उन्हे कोई हानि नही होगी। वे एक कहानी सुनने का मजा ले लेगे। हम सब कहानी सुनने का मजा लेते रहे हजारो साल तक और धीरे-धीरे कुजिया भी खो गयी जिनसे उन कहानियो को खोला जा सकता था, और 'डीकोड' किया जा सकता था। इधर जो बाते मैं कर रहा हूँ शायद

उससे कुछ कुंजिया आपके ख्याल मे आयें कुछ कथा-प्रतीक खुल जाएँ और जीवन के सत्य बन जाये। सच मे ही उनका ऐसा अर्थ है, इससे मुझे प्रयोजन नही। आपके चित्त के लिए अगर वैसा अर्थ खुल जाय तो वह आपके लिए हितकर हो सकता है, कल्याणकारी हो सकता है, मगलदायी हो सकता है।



पर्व : ग्यारह


SATHE



११

प्रश्न १. आचार्यश्री, कृष्ण का व्यक्तित्व, कृष्ण की बासुरी, कृष्ण की राधा, कृष्ण के राग से लेकर सुदर्शन चक्र तक हमे बहुत कुछ जानने का मौका मिला। आज एक नया स्वरूप कृष्ण का आपकी वाणी से, आपके मुख से सुनने के लिए हम सब उत्सुक हैं। हम चाहेंगे कि आप कृष्ण से संबंधित उनकी साधना, उनका दर्शन, उनसे संबंधित उपासना पर अपने विचार प्रस्तुत करें' ताकि हम कृष्ण के दूसरे स्वरूप को भी जान सके। कृष्ण ने तो

केवल एक अर्जुन का मोह भग किया था, यहां पर हम सब अर्जुन बैठे हुए हैं, और सब मोह से ग्रसित है। उन सबका मोह भग करने के एकमात्र अधिकारी आप हैं।

प्रश्न २ : आचार्यजी, गत पांच दिनों मे आपने मक्खनचोर रासलीला करते हुए कृष्ण का, विराट जीवन की पूर्णता का या योग की पूर्णता का भेद बताया। यदि सूक्ष्मता से आपकी दृष्टि को समझें तो यह कहे कि रासलीला आदि जीवन के सत्य है और गीता के कृष्ण अथवा कृष्ण की गीता उनका निचोड है, जीवन का सार है। क्योंकि, आपने भी कहा कि गीता प्रमाण है कृष्ण का। ऐसा नहीं कहा कि रासलीला प्रमाण है कृष्ण का। आपने कहा, महावीर या बुद्ध एक आयामी, 'वन डायमेशनल' है और इसीलिए शायद पूर्ण नहीं है। और, यह भी आपने ही कहा है कि महावीर सातवे शरीर को पाकर योग की पूर्णता को पाये है। तो क्या जीवन मे रासलीला हुई, या कुछ उलट-फेर करना पडा, इसीलिए कृष्ण पूर्ण ठहरे, कि गीता जैसे ग्रन्थ को देने के कारण पूर्ण हुए ?

एक बात और कि महावीर के जीवन मे जीवन की पूर्णता न निखरी तो क्या उनके पहले के तेईस तीर्थंकरो को भी उन बहु आयामो का ख्याल नहीं आया था ?

यदि हम दमन को न ले तो फिर सयम का क्या अर्थ है ? दमन को छोड दें तो दमन की साधना मे क्या स्थिति है ?

उत्तर सबसे पहले पूर्णता का अर्थ समझ लेना चाहिए। पूर्णता भी एक आयामी और बहु आयामी हो सकती है। एक चित्रकार पूर्ण हो सकता है, चित्रकला मे, लेकिन इसमे वह वैज्ञानिक की तरह पूर्ण नही हो जाता। एक वैज्ञानिक पूर्ण हो सकता है विज्ञान मे, लेकिन इससे वह सगीतज्ञ की तरह पूर्ण नही हो जाता। इस पूर्णता का अर्थ 'वन डायमेशनल' है। इसलिए मै महावीर, बुद्ध या जीसस को पूर्ण कहता हूँ एक आयामी अर्था मे। कृष्ण को बहुत दूसरे अर्थों मे पूर्ण कहता हू— बहु आयामी, 'मल्टी डायमेशनल'। जीवन के जितने आयाम है, जीवन की जितनी दिशाएँ है उनमे से हम सारी दिशाओ का त्याग करके एक दिशा मे पूर्ण हो, यह सम्भव है। इस तरह की पूर्णता भी परम सत्य तक ले जाती है। वह नदी भी सागर मे पहुच जाती है जो एक ही धारा बना

कर बहती है, तथा वह नदी भी सागर मे पहुच जाती है जो हजार धाराओ मे टूटकर सागर की तरफ बहती है। सागर तक पहुचने के लिए सबध मे कोई भेद नही है। महावीर भी सागर मे पहुच जाते हैं—बुद्ध भी और कृष्ण भी। लेकिन महावीर एक धारा की भांति पहुचते हैं, कृष्ण अनत धाराओ की भांति पहुँचते है। इसलिए, कृष्ण की पूर्णता बहु आयामी है। वह एक आयामी नही है। इससे कोई यह नही समझ ले कि महावीर वहा नही पहुच पाते सातवे शरीर के पार। बिल्कुल पहुच जाते है। लेकिन कृष्ण बहुत बहुत मार्गो से वहां पहुचते है। और बिना किसी जीवन के तत्त्व का निषेध किये पहुचते है। महावीर या बुद्ध निषेध किये बिना नही पहुचते। इसलिए महावीर और बुद्ध के जीवन मे निषेध का, 'निगेशन' का अनिवार्य तत्त्व है। कृष्ण के जीवन मे निषेध का कोई तत्त्व नही है। कृष्ण का जीवन पूरी तरह 'पोजीटिव' है, विधायक है। महावीर कुछ छोडकर पहुचते है, कृष्ण सबको आत्मसात करके पहुचते है। इसलिए, मैने कृष्ण की पूर्णता को भिन्न कहा है। इससे कोई ऐसा नही समझे कि महावीर अपूर्ण है। इससे इतना ही समझे कि उनकी पूर्णता एक आयामी है, कृष्ण की पूर्णता बहु आयामी है। भविष्य के मनुष्य के लिए एक आयामी पूर्णता का बहुत अर्थ नही होगा। भविष्य के मनुष्य के लिए बहु-आयामी पूर्णता का ही अर्थ होगा।

इसका एक और ख्याल ले लेना जरूरी है कि जो व्यक्तित्व एक दिशा से पूर्ण होता है वह अपने जीवन मे दूसरी दिशाओ का निषेध कर जाता है। उसके एक दिशा मे पूर्ण होने के कारण दूसरी दिशाएँ दूसरे लोगो के जीवन मे भी निषिद्ध होती है। किन्तु, जो व्यक्ति अपने जीवन मे सब दिशाओ से यात्रा करता है उसके कारण विभिन्न दिशाओ से यात्रा करने वाले एक आयामी तथा सब तरह के लोगो को सहारा मिलता है। जैसे, हम यह सोच ही नही सकते कि कोई चित्रकार या मूर्तिकार, या कोई कवि महावीर की चिन्तना के आधार पर कभी ब्रह्म को उपलब्ध हो सकता है। महावीर की साधना एक आयामी उनके ही जीवन मे नही बनेगी, जो साधना को समझेंगे उनके जीवन मे भी शेष सारी दिशाओ का निषेध हो जायेगा। यह हम सोच ही नही सकते कि कोई नर्तक भी ब्रह्म को उपलब्ध हो सकता है? महावीर के साथ नही सोच सकते। कृष्ण के साथ सोच सकते है। एक नर्तक भी, और सारी दिशाओ को छोड दे और सिर्फ नाचता चला जाय, नृत्य मे डूबता चला जाय तो उस क्षण को उपलब्ध हो सकता है, जिस क्षण को महावीर ध्यान द्वारा उपलब्ध होते है। यह कृष्ण के साथ सम्भव है। कृष्ण अपने जीवन से समस्त दिशाओ को भागवत स्वरूप

प्रदान कर देते हैं। समस्त दिशाएँ कृष्ण के साथ पवित्र हो जाती हैं। महावीर के साथ सभी दिशाएँ पवित्र नही होती। जिस दिशा से वे यात्रा करते है वही दिशा पवित्र होती है। और, उसके पवित्र होने के कारण अनिवार्य रूप से शेष अपवित्र हो जाती है। शेष का गहरा 'कन्डमनेशन' और निन्दा अपने-आप हो जाती है। ऐसा महावीर के साथ ही नही होता, बुद्ध के साथ भी होता है, क्राइस्ट के साथ भी होता है, मुहम्मद के साथ भी होता है, राम के साथ भी होता है, शकर के साथ भी होता है।

कृष्ण मात्र एक ऐसे व्यक्ति है जिसको हम कह सके कि समस्त जीवन को, समस्त दिशाओ को पवित्रता प्रदान कर दी। किसी भी दिशा से गया हुआ व्यक्ति ब्रह्म तक पहुच सकता है। इन अर्थों मे वह 'मल्टी डायमेशनल' है। खुद के जीवन मे ही नही, दूसरो के जीवन के लिए भी 'मल्टी डायमेशनल' है— जहा बासुरी बजा कर भी कोई ब्रह्म को उपलब्ध हो सकता है। बासुरी की भी अतिम क्षण की अवस्था समाधि की हो जायेगी। लेकिन, मीरा उपलब्धि के मार्ग पर नही हो सकती महावीर के हिसाब से। वह राग के ही मार्ग पर है। और, राग कभी भी परमात्मा तक नही पहुचा सकता महावीर की दृष्टि मे। वैराग्य ही पहुचायेगा। कृष्ण के साथ विरागी भी पहुँच जाता है, रागी भी पहुँच जाता है। इन अर्थों मे मैने कहा कि कृष्ण की पूर्णता का कोई मुकाबला नही है, कोई उपमा नही है।

फिर बात पूछी गयी है कि महावीर को छोड भी दें, तो उनके पहले के तेईस तीर्थकर कोई भी पूर्णता को उपलब्ध नही हुए? वे सब पूर्णता को उपलब्ध हुए, लेकिन एक आयामी पूर्णता को ही उपलब्ध हुए। और, एक आयामी पूर्णता के कारण ही जैन विचार बहुत व्यापक नही हो सका। हो नही सकता। महावीर को मरे ढाई हजार वर्ष हो गये है। आज भी जैनियो की सख्या तीस-पैतीस लाख से ज्यादा नही है। थोडा सोचने जैसा है कि महावीर जैसी प्रतिभा का आदमी जिस विचार को मिला हो, वह भी अकेला नही, और तेईस तीर्थकरो का विराट दर्शन मिला हो, वह विचार तीस-पैतीस लाख लोगो तक पहुचा? अगर महावीर के जमाने मे तीस-पैतीस आदमी भी उनसे प्रभावित हो जाएँ तो इतने बच्चे पैदा हो जायेंगे। कारण क्या है? कारण, 'वन डायमेशनल' है जो बहुत दिशाओ को स्पर्श नही करता। एक ही दिशा को स्पर्श करता है। इसलिए, विभिन्न तरह के लोगो को प्रभावित नही कर सकता। फिर, बडे मजे की बात यह है कि यह जो पचीस-तीस लाख जैन है, इनकी तरफ भी हम ध्यान दें तो

बहुत हैरानी मे पड़ जायेंगे। महावीर के साथ इनमे से अनेक लोग वैसा व्यवहार कर रहे हैं, जैसा व्यवहार कृष्ण के साथ तो उचित है, महावीर के साथ अनुचित है। महावीर के सामने आरती लेकर घुमा रहे है। कृष्ण के साथ चल सकता है, ऐसा महावीर के साथ नही चल सकता। महावीर की भी भक्ति चल रही है। उसका मतलब यह है कि जैन घरो मे जो पैदा हुए है, उनका चित्त भी उस आयाम मे नही बैठता। वह बहुत थोडे-से लोगो का आयाम है। तो जैन घर मे पैदा होने की वजह से आदमी जैन तो रहा चला जायेगा, लेकिन वह उस सबको सम्मिलित कर लेगा जो कि महावीर के आयाम का नही है। भक्ति आ गयी है जैन मे, उपासना आ गयी है, प्रार्थना आ गयी है, पूजा आ गयी है। इनका कोई सबध महावीर से नही है। यह सब महावीर के साथ अनाचार है। महावीर के व्यक्तित्व मे इनके लिए कोई गुजाइश नही है। लेकिन, वह जो जैन है, उसके व्यक्तित्व मे इसके बिना तृप्ति नही है। वह महावीर के साथ ही सब जोडे चला जा रहा है।

एक और बात आपसे कहूँ कि 'वन डायमेशनल' जितने भी व्यक्तित्व है इनके साथ निरन्तर अनाचार होगा। सिर्फ 'मल्टी डायमेशनल' व्यक्ति के साथ अनाचार आप नही कर सकते। क्योकि, आप कुछ भी करे, उसके लिए वह राजी हो सकता है। कृष्ण के साथ हजार तरह के लोग राजी हो सकते है, महावीर के साथ सिर्फ एक 'पर्टीकुलर टाइप' राजी हो सकता है। इस वजह से मैने कहा कि – वह जो चौबीस तीर्थंकर है वह सब एक रूप है, एक ही यात्रा पर है। उन सबकी एक ही दिशा है, एक ही उनकी साधना है। ऐसा नही है कि वह नही पहुच जाते है, यह मैं नही कह रहा हूँ, वह बिल्कुल पहुच जाते है। ऐसा नही है कि जो कृष्ण को मिलता है वह उन्हे नही मिलता। वह उन्हे मिल सकता है। हजार धाराओ मे नदी बहकर सागर पहुचे कि एक धारा मे पहुचे, इससे फर्क नही पडता है। सागर मे पहुच कर तो सब बात समाप्त हो जाती है। लेकिन, एक धारा और एक मार्ग पर बहने वाली नदी सारी पृथ्वी को नही घेर सकती, यह समझना चाहिए। हजार धाराओ मे बहने वाली नदी सारी पृथ्वी को भी घेर सकती है। एक धारा मे बहने वाली नदी के तट पर जो वृक्ष है उनको पानी मिल सकता है। हजार धाराओ मे बहने वाली, हजार मार्गों पर जो वृक्ष है उनकी जडो को पानी दे पाती है, वही फर्क है। इसी फर्क को ध्यान मे रखना जरूरी है। बहु आयामी से मैंने इतना ही कहना चाहा है।

यह बात भी पूछी गयी है कि दमन को छोड दें, तो सयम का क्या अर्थ है ? साधारणत वैरागी की भाषा मे – सयम का अर्थ दमन ही है। इसलिए, जैन शरीर-दमन शब्द का भी उपयोग करते है। शरीर को दबाना है, दमन करना है। लेकिन, कृष्ण की भाषा मे सयम का अर्थ दमन नही हो सकता। कृष्ण की भाषा मे सयम का अर्थ बिल्कुल और है। शब्द भी बडी दिक्कत देते है। क्योकि, शब्द तो एक ही होते है – चाहे कृष्ण के मुह पर हो और चाहे महावीर के मुह पर हो। सयम, शब्द एक ही है, लेकिन अर्थ बिल्कुल भिन्न है। क्योकि, ओठ भिन्न है और उनका प्रयोग करने वाला आदमी भिन्न है। और, उसमे जो अर्थ है उस व्यक्तित्व से आता है। शब्द मे जो अर्थ है वह 'डिक्शनरी' से नही आता। 'डिक्शनरी' से सिर्फ उनके लिए आता है जिनके पास कोई व्यक्तित्व नही है। जिनके पास व्यक्तित्व है, उनके लिए शब्द का अर्थ भीतर से आता है। कृष्ण के ओठ पर सयम का क्या अर्थ है, यह कृष्ण को समझे बिना नही कहा जा सकता है। महावीर के ओठ पर सयम का क्या अर्थ है, यह महावीर को समझे बिना नही कहा जा सकता। कृष्ण को देखते हुए कहा जा सकता है कि सयम का अर्थ दमन नही हो सकता। क्योकि, अगर दुनिया मे कोई भी अदमित, 'अनसप्रेस्ड' आदमी हुआ है तो वह कृष्ण है। तो, सयम का क्या अर्थ होगा ?

ऐसे मेरी भी समझ मे सयम का बहुत गहरा अर्थ दमन नही है। सयम शब्द बहुत अद्‌भुत है। सयम का मेरे लिए अर्थ है सतुलन, 'बैलेंस'।—न इस तरफ, न उस तरफ। बीच मे, मध्य मे। त्यागी असयमी है, त्याग की तरफ। भोगी असयमी है भोग की तरफ। भोगी एक छोर छू रहा है, त्यागी दूसरा छोर छू रहा है। यह दोनो 'एक्सट्रीम' है। सयम का अर्थ है न अति। कृष्ण के ओठो पर सयम का अर्थ है न त्याग, न भोग, या त्यागपूर्ण भोग या भोगपूर्ण त्याग। यही अर्थ हो सकता है सयम का कृष्ण के ओठो पर। जो कही भी झुकता नही अति पर वह व्यक्तित्व सयमित है।

एक आदमी है, धन के पीछे पागल है। बस इकट्ठा किये जाता है, तिजोरी भरे चला जाता है। यह असयमी है। धन इसका साध्य हो गया, अति हो गयी इसके जीवन मे। दूसरा आदमी है, धन से पीठ करके भागता है। लौटकर नही देखता है, भागता ही चला जाता है। वह सदा डरा हुआ है कि कही धन न मिल जाय। यह भी असयमी है। इसके लिए धन का त्याग वैसे ही साध्य बन गया, जैसे किसी के लिए धन का इकट्ठा करना साध्य था। सयमी कौन है ? कृष्ण के अर्थों मे 'जनक' जैसा आदमी सयमी है। मध्य मे होना सयम है।

भूखा मरना सयम नही है, ज्यादा खा लेना सयम नही है—सम्यक आहार सयम है। सम्यक आहार यानी जितना जरूरी है, बस उतना ही। न ज्यादा, न कम। यह सयम है। कृष्ण के ओठो पर सयम का अर्थ 'बैलेंस' है—सतुलन, सगति।

इस अर्थ को अगर हम वास्तविक जीवन मे समझने जायेंगे तो इसके दो अर्थ होगे। ऐसा व्यक्ति न तो त्यागी कहा जा सकता है, न भोगी कहा जा सकता है। या दोनो कहा जा सकता है। पर, ऐसा व्यक्ति दोनों एक साथ होगा। उसके भोग मे त्याग होगा, उसके त्याग मे भोग होगा। परन्तु सयम के इस अर्थ से त्यागवादी परम्परा राजी न होगी। त्यागवादी परम्परा के लिए सयम का अर्थ विराग होगा। असयम का अर्थ राग होगा। जो राग को छोडता है और विराग की तरफ जाता है वह सयमी है। कृष्ण त्यागवादी नही है, कृष्ण भोगवादी भी नही है। अगर हम उन्हे कही भी रखे तो वह ठीक चार्वाक और महावीर के बीच मे खडे हो जायेंगे। वे भोग मे चार्वाक से पीछे न होगे और त्याग मे महावीर से पीछे न होगे। इसलिए, अगर चार्वाक और महावीर का कोई मिक्सचर बन सकता हो, दोनो का कोई सम्मिलिन बन सकता हो तो वह कृष्ण है। इसलिए, कृष्ण के ओठो पर सारे शब्दो के अर्थ भिन्न होगे।

प्रारभ मे सवाल पूछा है, कृष्ण की उपासना, साधना क्या है?

कृष्ण के व्यक्तित्व मे साधना जैसा कुछ भी नहीं है। हो नहीं सकता। साधना मे जो मौलिक तत्त्व है वह प्रयास है, 'एफर्ट' है। बिना प्रयास के साधना नही हो सकती। दूसरा जो अनिवार्य तत्त्व है वह अस्मिता है, अहकार है। बिना 'मै' के साधना नही हो सकती। करेगा कौन? कर्त्ता के बिना साधना कैसे होगी? कोई करेगा तभी होगी। साधना शब्द, अगर बहुत गहरे में समझें तो अनीश्वरवादियो का है। जिनके लिए कोई परमात्मा नही है, आत्मा ही है, साधना शब्द उनका है। आत्मा साधेगी और पायेगी। उपासना शब्द बिल्कुल उल्टे लोगो का है। आमतौर से हम दोनो को एक साथ चलाये जाते है। उपासना शब्द उनका है जो कहते है, आत्मा नही, परमात्मा है। सिर्फ उसके पास जाना है, साधना कुछ भी नही। उपासना का मतलब है पास जाना, पास बैठना, उप-आसन, निकट होते जाना है। और निकट होने का अर्थ है खुद मिटते जाना, और कोई अर्थ नहीं। हम उससे उतने ही दूर हैं जितने हम है। जीवन के परम सत्य से हमारी दूरी, हमारा 'डिस्टेंस' उतना ही है जितने हम हैं। जितना हमारा होना है, जितना हमारा 'मैं' है, जितना हमारा

'इगो' है, जितनी हमारी आत्मा है, उतने ही हम दूर है। जितने हम खोते है और विगलित होते है, पिघलते है और बहते है, उतने ही हम पास होते है। जिस दिन हम बिल्कुल नही रह जाते उस दिन उपासना पूरी हो जाती है और हम परमात्मा हो जाते है। जैसे, बर्फ पानी बन रहा हो, बस उपासना ऐसी ही है। साधना क्या कर रहा है बर्फ ? साधना करेगा तो और सख्त होता चला जायेगा। क्योकि, साधना का मतलब हुआ कि बर्फ अपने को बचाये। साधना का मतलब होगा कि बर्फ अपने को सख्त करे। साधना का मतलब होगा बर्फ और 'क्रिस्टलाइज्ड' हो जाये। साधना का मतलब हुआ कि बर्फ और आत्मवान बने। साधना का अर्थ अन्तत आत्मा है। उपासना का अर्थ अन्तत परमात्मा है। इसलिए, जो लोग साधना से जायेगे उनकी आखिरी मजिल आत्मा पर रुक जायेगी। उसके आगे की बात वे न कर सकेगे। वे कहेगे, अन्तत हमने अपने को पा लिया। उपासक कहेगा, अन्तत हमने अपने को खो दिया। ये दोनो बाते बडी उल्टी है। बर्फ की तरह पिघलेगा उपासक और पानी की तरह खो जायेगा। साधक तो मजबूत होता चला जायेगा। इसलिए, कृष्ण के जीवन मे साधना का कोई तत्त्व नही है, साधना का कोई अर्थ नही है। अर्थ है तो उपासना का है।

उपासना की यात्रा ही उल्टी है। उपासना का मतलब कि हमने अपने को पा लिया, यही भूल है। हम है, यही गलती है—'टु बी इज द ओनली बाण्डेज,' होना ही एकमात्र बन्धन है, न होना ही एकमात्र मुक्ति है। साधक जब कहेगा तब वह कहेगा कि मै मुक्त होना चाहता हूँ। उपासक जब कहेगा तब वह कहेगा, मै 'मै' से मुक्त होना चाहता हूँ। उपासक के मोक्ष का अर्थ है, 'न मै' की स्थिति। साधक के मोक्ष का मतलब है 'मै' की परम स्थिति। इसलिए, कृष्ण की भाषा मे साधना के लिए कोई जगह नही है। उपासना के लिए जगह है। यह उपासना क्या है, इसे हम थोडा समझेगे।

पहली तो बात यह समझ ले कि उपासना साधना नही है। इससे समझने मे आसानी बनेगी, अन्यथा भ्राति निरन्तर होती रहेगी। उपासक हममे से बहुत कम लोग होना चाहेगे, यह भी ख्याल मे ले ले। साधक हम मे से सब होना चाहेगे, क्योकि साधक मे कुछ खोना नही है, पाना है। और उपासक मे सिवाय खोने के कुछ भी नही है, पाना कुछ भी नही है। खोना ही पाना है, बस। उपासक कौन होना चाहेगा ? इसलिए, कृष्ण को मानने वाले भी साधक हो जाते है। कृष्ण के मानने वाले भी साधना की भाषा बोलने लगते है। क्योकि, भीतर जो अहकार है वह साधना की भाषा बुलवाता है। वह कहता है—

साधो, पाओ, पहुचो। उपासना कहती है–पिघलो, मिटो, खो जाओ। निश्चित् ही हम पूछना चाहेगें कि क्यो मिटें ? मिट कर क्या फायदा है ? साधक कितनी ही ऊँची बात बोले, फायदे की बात मे ही सोचेगा। उसका मोक्ष भी उसका ही सुख है। उसकी मुक्ति भी उसकी ही मुक्ति है। इसलिए, साधक बहुत गहरे अर्थों मे स्वार्थी हो तो आश्चर्य नही। स्व के अर्थ से ऊपर वह कभी उठ भी नही पायेगा। उपासक 'स्व' अर्थ के ऊपर उठेगा। इसलिए, उपासक परमार्थ की बात बोलेगा। वह परम अर्थ की बात बोलेगा, जहा स्व खो जाता है। इस उपासना का क्या अर्थ होगा, क्या गति होगी और क्या यात्रा होगी ? बडी कठिन होगी समझनी यह बात। इसलिए, पहले ही आपको कह देता हूँ कि साधना शब्द को बिल्कुल ही हटा दें। उसकी जगह ही नही है। फिर, हम उपासना को समझने चले।

जैसा मैंने कहा, उपासना का अर्थ है निकट आना। 'टु बी नियरर'। तो दूरी क्या है, 'डिस्टेंस' क्या है ? एक तो दूरी है जो हमे दिखायी पडती है, 'फिजिकल स्पेस' है। आप वहा बैठे हैं, मै यहा हूँ। हम दोनो के बीच एक फासला है। मै आपके पास आ जाऊँ, आप मेरे पास आ जाएँ तो भौतिक दूरी समाप्त हो जायेगी। हम बिल्कुल पास-पास, हाथ मे हाथ ले कर, गले मे गले डाल कर बैठ जाय तो दूरी खत्म हुई। लेकिन, दो आदमी गले मे हाथ डाले भी कोसो दूरी पर हो सकते है। एक इनर स्पेस है, एक भीतरी दूरी है। जिसका 'फिजिकल' दूरी मे कुछ भी सम्बन्ध नही है। एक दूरी हमसे बाहर है, और एक दूरी है जो मन की है और हमारे भीतर है। उपासना भीतर की दूरी को मिटाने की विधि है। लेकिन, भक्त भी बाहर की दूरी मिटाने को आतुर रहता है। वह भी कहता है, सेज बिछा दी है, आ जाओ। वह भी कहता है, कब तक तडपाओगे, आओ। लेकिन, बडे मजे की बात है कि बाहर की दूरी कितनी ही मिट जाय, दूरी बनी ही रहती है। हम कितने ही पास आ जाएँ, बाहर से, हम पास आते ही नही। पास आना बिल्कुल ही आतरिक घटना है। इसलिए, उपासक उस परमात्मा के पास हो सकता है जो दिखायी ही नही पडता। जिससे 'फिजिकल' दूरी मिटाने का कोई उपाय ही नही है, उसके भी पास हो सकता है।

यह जो 'इनर स्पेस' है हमारी, भीतर की दूरी, यह कैसे पैदा होती है ? बाहर की दूरी हम समझते है कि कैसे पैदा होती है। अगर मै आप से दूर चलने लगू, आपसे हटने लगू, आपकी तरफ पीठ कर लू, और भागने लगू, तो बाहर की दूरी पैदा हो जाती है। आपकी तरफ मुह कर लू और आपकी तरफ चलने

लगू आपकी दिशा मे, तो बाहर की दूरी कम हो जाती है। भीतर की दूरी चलने से पैदा नही होती, क्योकि भीतर तो चलने की कोई जगह नही है। भीतर की दूरी, 'होने से' पैदा होती है। कितना सख्त मैं हूँ उतनी ही भीतर की दूरी होती है। और कितना तरल मै हूँ उतनी ही भीतर की दूरी टूट जाती है। अगर मैं बिल्कुल तरल हो जाऊ कि मै भीतर कह सकू कि मै हूँ ही नही, शून्य हो गया तो भीतर की दूरी समाप्त हो जाती है। उपासना का अर्थ शून्य होना है। उपासना का अर्थ न कुछ होना है। 'नथिंगनेस', 'नॉनबीइंग'। मै नही हूँ इस सत्य को जान लेना उपासक हो जाना है। मै हूँ, इस तथ्य को जोर से पकडे रहना परमात्मा से दूर होते जाना है। मै हूँ, यह घोषणा ही हमारी दूरी है।

शायद पृथ्वी पर, उपासना को जानने वाले थोडे ही लोग है, वे सूफी है। कृष्ण को अगर कोई ठीक से समझ सकता है तो सूफी ही समझ सकते है। ऐसे वे मुसलमान फकीर है। लेकिन, इससे क्या बनता बिगडता है। एक सूफी गीत है जलालुद्दीन रूमी का कि प्रेमी ने द्वार खटखटाया है प्रेयसी का। भीतर से आवाज आयी है, कौन है? प्रेमी ने कहा, मै हूँ, पहचाना नही? फिर, भीतर से कोई आवाज नही आती। प्रेमी द्वार खटखटाये चला जाता है और कहता है, मेरी आवाज नही पहचानी– मैं हूँ। तब भीतर से बडी मुश्किल से इतनी भर आवाज आती है कि जब तक तुम हो तब तक प्रेम के द्वार नही खुल सकते। कब खुले है 'मै' के लिए प्रेम के द्वार? जाओ, उस दिन आना जिस दिन 'मै न रह जाओ। प्रेमी वापस लौट जाता है। वर्षों के बाद वह वापस लौटता है। वह द्वार पर दस्तक देता है। भीतर से फिर वही सवाल कि कौन? प्रेमी कहता है, अब तो तू ही है। तो, रूमी की कविता यहा पूरी हो जाती है। वह कहता है, द्वार खुल जाते है।

लेकिन, मै मानता हूँ कि रूमी उपासना को पूरा नही समझ पाया। कृष्ण तक नही पहुच पायी रूमी की समझ। गया थोडी दूर और रुक गया। अगर मै इस कविता को लिखूँ तो मै कहूँगा कि फिर वह प्रेयसी भीतर से कहती है कि जब तक 'तू' है, तब तक 'मै' होगा ही, क्योकि 'तू' का बोध 'मै' के बिना नही होता। कौन कहेगा तू? तू को कहने के लिए मै होना ही चाहिए। यह सिर्फ तराजू बदल लिया, पहलू बदल लिया। बात कुछ बनी नही। मै इस कविता को लिखूँगा कि फिर वह कह देती है कि जब तक तू है तब तक मै कैसे मिट सकता है। अब तू को भी खो कर आ। लेकिन, जब मै भी खो जायेगा और तू भी खो जायेगा तो क्या प्रेमी आयेगा? तब मेरी कविता बडी मुश्किल मे

पड जायेगी। क्योकि, फिर वह आयेगा कैसे, आयेगा किसके पास? आयेगा कहा? नही, फिर वह आयेगा ही नही। फिर आने की कोई बात नहीं रही, फिर जाने की कोई बात न रही। क्योकि, वह 'इनर डिस्टेंस' ही टूट गया जिसमें आया जाया जा सकता है। वही तो मै और तू का फासला था।

उपासना के लिए कही पहुचना नही होता है। जहा हम है, वही घटित हो जाती है। बस अपने से मिटना होता है। और, पास पहुचना हो जाता है।

पूछा है कि मार्टिन बूवर के सम्बन्ध मे कुछ कहूँ। मार्टिन बूवर की सारी की-सारी चिन्तना मै और तू की 'इटीमेसी', मै और तू के 'रिलेशनशिप', मै और तू के सबधो पर है। मार्टिन बूवर गहरे लोगो मे से एक है। लेकिन, गहराई कितनी ही हो, वह उथलेपन का दूसरा छोर है। सच्ची गहराई तो उस दिन शुरू होती है जिस दिन आदमी न उथला रह जाता है, न गहरा रह जाता है। उथला और गहरापन दोनो मिट जाते है। गहरी-से-गहरी जो बात मार्टिन बूवर ने कही है, वह यह है कि सारे जीवन का सत्य मै और तू के अन्तर्सम्बधो मे समाया हुआ है। एक नास्तिक है, एक अनीश्वरवादी है। एक है जो मानता है, सिर्फ पदार्थ है। उसका जगत मै और तू का जगत नही है। उसका जगत मै और वह का जगत है। 'आई एण्ड इट', तू है ही नही। क्योकि, तू होने के लिए दूसरे मे आत्मा को स्वीकार करना जरूरी है। इसलिए, नास्तिक का जगत बडा जटिल है। क्योकि, खुद को तो वह मै कहता है और आत्मवान होने की घोषणा करता है और शेष सबको 'मै' से हीन कर देता है और 'वह' बना देता है। पदार्थ बना देता है, वस्तुएँ बना देता है। अगर मै जानता हूँ, आत्मा नही है तो आप मेरे लिए पदार्थ से ज्यादा नही है। 'मै तू' किसको कहूँ। 'तू' तो जीवत व्यक्ति को कहा जा सकता है। इसलिए, मार्टिन बूवर कहता है कि आस्तिक का जगत 'मै' और 'वह' का जगत नही है, 'आई एण्ड दाऊ', मै और तू का जगत है। जब मेरा मै, तू कह पाता है जगत को, तो आस्तिक का जगत है। लेकिन मै कहूँगा, यह आस्तिक भी बहुत गहरे मे अभी नास्तिक है। क्योकि, अभी भी मै और तू मे जगत को बाट पाता है। या ऐसा कहे कि यह द्वैतवादी आस्तिक का जगत है। लेकिन, द्वैतवाद चूँकि झूठा है इसलिए द्वैतवादी आस्तिकता का भी कोई अर्थ नही होता। एक अर्थ मे नास्तिक अद्वैतवादी होता है। क्योकि, वह कहता है, एक ही है पदार्थ। और, एक अर्थ मे आत्मवादी भी अद्वैतवादी होता है, क्योकि वह भी कहता है, एक ही है, आत्मा है। मेरा मानना है एक ही से एक पर जाना बहुत आसान है, दो से एक पर जाना बहुत कठिन है।

इसलिए, द्वैतवादी, नास्तिक से भी ज्यादा उलझन मे होता है। क्योंकि, किसी दिन अगर नास्तिक अद्वैतवादी को यह दिखायी पड जाय कि पदार्थ नही है, आत्मा है, तो यात्रा तत्काल बदल जाती है। एक तो वह मानता ही था। वह एक क्या है, इसकी व्याख्या पर झगडा था कि वह पदार्थ है कि परमात्मा ? लेकिन, द्वैतवादी की झझट और गहरी है। द्वैतवादी मानता है, दो है। पदार्थ भी है, परमात्मा भी है। इसे एक पर पहुँचना बहुत मुश्किल है। बूबर द्वैतवादी है। वह कहता है, मै और तू। लेकिन, उसका द्वैतवाद बहुत मानवीय है। क्योकि, 'वह' को मिटा देता है। तू का दर्जा देता है दूसरे को भी, आत्मा का दर्जा देता है। लेकिन, मै और तू के बीच सबध ही हो सकते है, ऐक्य नही हो सकता। सम्बन्ध कितने ही गहरे हो, तब भी फासला बना रहता है। अगर मै आपसे सबधित हूँ, कितना ही गहरा सबधित हूँ तब भी मेरा और आपका सबध मुझे और आपको दो मे तोडता है। सबध जोडता भी है, तोडता भी है। वह दोहरे काम करता है। जिससे हम जुडते है, उमसे हम टूटे हुए भी होते है। जो हमारा सेतु है वही हमे दो हिस्सो मे भी तोड देता है। जो सेतु जोडता है वह तोडता भी है। असल मे जोडनेवाली कोई चीज तोडनेवाली भी होती है। होगी ही। अनिवार्य है। इसलिए, दो कभी एक नही हो पाते। कितने ही गहरे सम्बन्ध हो, सबध कभी एक नही हो पाते। इसलिए, गहरे सम्बन्ध भी दो बनाये रखता है। प्रेम का कितना ही गहरा सम्बन्ध हो, उसमे दो नही मिटते। और, जब तक दो नही मिटें, तब तक प्रेम तृप्त नही हो सकता। इसलिए, सब प्रेम अतृप्त होते है।

दो तरह की अतृप्तिया है प्रेम की——प्रेमी न मिले तो, और मिल जाय तो। प्रेमी न मिले तो यह अतृप्ति होती है कि जिससे मिलना चाहा था वह नही मिला, और प्रेमी मिल जाय तो यह अतृप्ति होती है कि जिससे मिलना चाहा था वह मिल तो गया, लेकिन मिलना कहा हो पा रहा है ? फासला खडा ही है। पास आ गये है बहुत, लेकिन दूरी कहा मिटती है? इसलिए, कई बार जिसको अपना प्रेमी नही मिलता वह उतना दुखी नही होता जितना दुखी वह हो जाता है जिसे उसका प्रेमी मिल जाता है। क्योकि, जिसको नही मिलता उसे एक आशा तो रहती है कि कभी मिल सकता है। इसकी वह आशा भी टूट जाती है कि अब क्या होगा। मिल तो गया है, लेकिन मिलना नही हो पा रहा है। असल मे कोई मिलन नही बन सकता, क्योकि मिलन मे सबध ही है, और सम्बन्ध दो बनाये रखता है। इसलिए, मार्टिन बूबर, मै और तू के गहरे सबधो की बात करता है, जो बडी मानवीय है। और इस जगत मे, जो कि निरन्तर पदार्थवादी होता चला गया है, मार्टिन बूबर की बात भी

बडी धार्मिक मालूम होती है, लेकिन मुझे मालूम नही होती है। मैं तो कहूँगा, यह बात धार्मिक नही है, सिर्फ समझौता है। मैं और तू के बीच अगर एकता न हो सके तो कम-से-कम सबध ही हो। प्रेम और उपासना मे यही फर्क है। प्रेम सम्बन्ध है, उपासना असम्बन्ध है। असबध का मतलब यह नही कि दो असबधित हो गये, असबंध का मतलब यह कि दो के बीच से सम्बन्ध गिर गया। अब दो दो ही न रहे— वह एक हो गये।

यह जो एक हो जाना है, यह उपासना है। इसलिए, प्रेम का अगला कदम उपासना है। और, जिस दिन हम प्रेम करते है उस दिन हम तब तक पूरी तरह नही मिल सकते जब तक वह दिव्य न हो जाय, भागवत न हो जाय। भगवान न हो जाय। दो मनुष्यो का मिलन असभव है। उनका मनुष्य होना ही बाधा देता रहेगा। दो मनुष्य होना ही बाधा देता रहेगा। दो मनुष्य ज्यादा-से-ज्यादा सबधित हो सकते हैं। दो परमात्म तत्त्व ही मिल सकते है। क्योकि, फिर तोडने वाला कोई भी नही रह जाता। जोडने वाला भी कोई नही रह जाता। इसलिए, मार्टिन बूबर ज्यादा-से-ज्यादा प्रेम पर पहुच सकता है। कृष्ण उपासना पर पहुचते है। उपासना बहुत ही और बात है। वहा दूसरा भी मिट गया है, मै भी मिट गया हूँ। और, हम दोनो के मिटने पर जो शेष रह जाता है 'दैट व्हिच रिमेन्स'— वह विस्तार जो बाकी रह गया, उसे हम क्या नाम दे? उसे हम पदार्थ कहे? उसे हम आत्मा कहे? उसे 'मै' मै कहूँ, उसे मै 'तू' कहूँ? उसे हम कोई भी नाम दे वह गलत होगे। इसलिए, जो परम उपासक है वे चुप रह गये है, उन्होने उसके लिए कोई नाम न दिया। उन्होने कहा, वह अनाम है, 'नेमलेस' है। उन्होने कहा, उसका कोई छोर नही, उसका कोई प्रारभ नही, उसका कोई अत नही। उन्होने कहा, उसका कोई नाम नही, उसका कोई रूप नही। उन्होने कहा, उसका कोई आकार नही। उन्होने कहा, उसे कोई शब्द नही दिया जा सकता। उस सत्य के सबध मे उन्होंने कोई घोषणा नही की, क्योकि सभी घोषणाए द्वैत मे गिर जाती है। मनुष्य के पास ऐसा कोई शब्द नही है जो द्वैत मे न ले जाता हो। हमने शब्द का उपयोग किया नही कि हमने जगत को दो मे तोडा नहीं। इधर हमने शब्द का उपयोग किया, वहा चीजे दो मे टूटी। ऐसा ही है जैसे हम किसी 'प्रिज्म' मे से सूर्य की किरण को निकाले तो वह सात हिस्सो मे टूट जाती है। ऐसे ही हमने भाषा से किसी सत्य को निकाला वह तत्काल दो मे टूट जाता है। और दो मे टूटते ही सत्य असत्य हो जाता है। इसलिए परम उपासक चुप रह गया — मौन रह गया। नाचा है, बासुरी बजायी है, गीत गाया है, इशारे किये है लेकिन घोषणा नहीं की। घोषणा शब्दो मे होती

है। 'जेस्चर' से जाहिर किया है। नाच कर कहा है कि क्या है वह, हस कर कहा है कि क्या है वह, चुप रहकर कहा है कि क्या है वह ? हाथ के इशारो से कहा है कि क्या है वह। लेकिन चुप रह गया है। पूरे व्यक्तित्व मे कहा है कि क्या है वह।

इशारे, या फिर असगत भाषा। कबीर की भाषा को लोगो ने 'सध्या भाषा' कहा है। सध्या भाषा का मतलब यह है कि न पक्का पता चले कि दिन है कि रात। बात ऐसी हो कि पक्का पता न चले कि हाँ है कि ना। पक्का पता न चले कि तुम स्वीकार करते हो कि अस्वीकार। तुम आस्तिक हो कि नास्तिक ? तुम मानते हो कि नही मानते हो ? जिस भाषा मे कुछ पक्का पता न चले उस भाषा को सध्या भाषा कहा है। इसलिए, कबीर की भाषा का अभी भी अर्थ तय नही हो पाता। कृष्ण की भाषा का भी नही हो सकता। जिन्होने भी सत्य को कहा है उनकी भाषा 'सध्या भाषा' हो गयी। क्योकि, वे दोनो को साथ-साथ कहेगे, हां और ना को, या दोनो को साथ-साथ इन्कार कर देगे। और, हमारी भाषा की कोई तर्क व्यवस्था मे वे नही बैठ पायेगे। इसलिए, मौन रह गये वे लोग, जिन्होने जाना कि मै और तू दोनो खो जाते है।

प्रश्न आचार्यजी, सार्त्र जो कहता है 'एक्जिस्टेंस प्रिसीड्स इसेंस' आप— इसेंस (सत्व) को एक्जिस्टेंस के पहले मानते है या कि दोनो का एक सबध आप करते है ? इधर साधना शिविर मे आने वाले लोग भी चक्कर मे पड गये है कि वे अपने को साधक माने या उपासक ?

उत्तर गडबड मे डालना मेरा काम है। साधना और उपासना के बीच का फासला गिर जाय तो समझे शिविर का मतलब समझ मे आ गया। सार्त्र या और अस्तित्ववादी ऐसा मानते है, 'एक्जिस्टेंस प्रीसीड्स इसेंस'। बडी अजीब बात है। क्योकि, दुनिया मे ऐसा मुश्किल से कभी माना गया है। इससे उल्टी बात सदा मानी जाती रही है। दुनिया के जितने तत्त्व चिन्तन है, उन सबका मानना है 'इसेंस प्रीसीड्स एक्जिस्टेंस'। इसे समझ ले। सार्त्र के पहले या अस्तित्ववादियो के पहले जितने भी तत्त्व चिन्तन है वे यह मानते है कि बीज वृक्ष के पहले है। स्वभावत, सार्त्र कहता है, वृक्ष बीज के पहले है। सारा चिन्तन साधारणत कहेगा कि अस्तित्व के पहले आत्मा है। तभी तो अस्तित्व हो सकेगा ? सार्त्र कहता है, अस्तित्व पहले है, फिर आत्मा है। क्योकि, अस्तित्व ही न होगा तो आत्मा कैसे गठित होगी ? कृष्ण के सदर्भ मे क्या मतलब होगा ? असल मे, आदमी के तत्त्व चिन्तन की सारी लडाइया बडी बचकानी है। वे बच्चो के छोटे से सवाल मे समाहित हो जाती है कि मुर्गी पहले होती है कि अण्डा। बडे-से-बडा तत्त्व चिन्तन,

बड़ी-से-बड़ी फिलोसिफी इस छोटे-से मुद्दे पर लड़ती रही है। जो जानते हैं, वे कहेंगे कि मुर्गी और अण्डा दो नहीं हैं इसलिए कौन पहले है, इसे नासमझ पूछ सकता है। और, बड़ा नासमझ उत्तर दे सकता है। अगर हम ठीक से समझें तो अण्डे का मतलब क्या होता है? अण्डे का मतलब कुल छिपी हुई मुर्गी होता है। मुर्गी का क्या मतलब होता है? प्रकट हुआ अण्डा होता है। अण्डा और मुर्गी दो चीजें अगर होतीं तो कौन पहले है, यह सार्थक था सवाल। अण्डा और मुर्गी एक ही चीज है या एक ही चीज को हमारे देखने के दो ढंग हैं, या एक ही चीज के दो क्षणों में दिखायी पड़ने की स्थितियां हैं। लेकिन, दो चीजें नहीं हैं। अण्डा और मुर्गी एक चीज के दो 'फेज', एक ही चीज के प्रकट होने के दो ढंग हैं। बीज और वृक्ष दो चीजें नहीं हैं। जन्म और मृत्यु दो चीजें नहीं हैं। एक ही चीज के होने के दो ढंग हैं—या; हो सकता है कि हम पूरी तरह देख नहीं पाते इसलिए हम दो में तोड़कर देखते हैं। दृष्टि हमारे पास छोटी है।

जैसे समझ लें, एक बड़ा कमरा हो, एक बड़ा भवन हो, उसकी दीवार में एक छोटा सा छेद हो और उस छेद में मैं आंख गड़ाये देखता हूँ। पूरा कमरा दिखायी नहीं पड़ता है। छेद से पहले मुझे एक कुर्सी दिखायी पड़ती है, फिर मैं आंख को घुमाता हूँ। मुझे दूसरी कुर्सी दिखायी पड़ती है, फिर मैं आंख को और घुमाता हूँ मुझे तीसरी कुर्सी दिखायी पड़ती है। मैं पूछ सकता हूँ कि इन तीनों कुर्सियों में पहले कौन है? लेकिन, कमरे के भीतर जाकर मैं क्या कहूंगा, कौन पहले है सब 'साइमल्टेनियस' है। तीनों कुर्सियां एक साथ हैं। लेकिन, जिस छेद से मैंने देखा वह पहले एक कुर्सी दिखायी पड़ी, फिर दूसरी कुर्सी दिखायी पड़ी, फिर तीसरी कुर्सी दिखायी पड़ी। पहले कौन था? कमरे के भीतर मैं जाकर पूछूंगा कि पहले कौन है? मैं कहूँगा कि तीनों कुर्सियां साथ हैं।

एक लेबोरेटरी है आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में जिसने अभी इस सदी की श्रेष्ठतम खोजें की हैं। मैं मानता हूँ कि भविष्य के लिए सबसे बड़ा काम उस प्रयोगशाला में हो रहा है। एक बड़ी चमत्कारपूर्ण घटना जो घटी है, वह यह है कि एक कली का फोटोग्राफ लेते वक्त कली का फोटो नहीं आया, फूल का फोटो आ गया बहुत 'सेंसिटिव फिल्म' में। अब तक जो सबसे ज्यादा 'सेंसिटिव फिल्म' बन सकी हैं उस फिल्म के सामने कली रखने से गुलाब की, थी तो कली, फोटो आ गया गुलाब के फूल का। बड़ी कठिनाई हो गयी। जो कली अभी फूल हुई नहीं है उस फूल का फोटो कैसे आ गया? या तो किसी बहुत रहस्यपूर्ण जगत में वह फूल अभी भी हो चुकी है, जो हमें दिखायी नहीं पड़ रहा है। और कैमरा उसे देख पाया,

जो हम नहीं देख पाये। शायद कैमरा कमरे के भीतर जाकर देख पाया, जहां कली और फूल 'साइमलटेनियम' हैं। हमारी आंख कमरे के बाहर से देखती थी जहां पहले कली है, फिर फूल है। लेकिन, हो सकता है शायद कोई भूल हो गयी हो। शायद इस कैमरे की फिल्म पहले ही 'एक्सपोज' हो गयी हो। तो प्रतीक्षा करनी पड़ी जब तक वह कली फूल न बन जाय। फिर, वह कली फूल बन गयी और तब बहुत मुश्किल हो गया। क्योंकि, जैसा वह फूल बनी उसका वैसा ही फोटो पहले आ गया कैमरे में। डीलाबार लेबोरेटरी के छोटे-से कमरे में घटी यह घटना बड़ी मुश्किल में डाल गयी। इसका मतलब यह हुआ कि हमारे देखने के ढंग की वजह से एक दफा हमें अण्डा दिखायी पड़ता है, फिर एक दफा मुर्गी दिखायी पड़ती है, लेकिन अगर कृष्ण जैसी आंख हो देखने की हमारे पास तो क्या मुर्गी और अण्डा एक साथ नहीं दिखायी पड़ सकते? हमें बड़ी मुश्किल पड़ेगी, क्योंकि यह तर्क के बाहर का मामला हो गया। लेकिन, विज्ञान बहुत से तर्क के बाहर के मामलों को पिछले पचीस सालों में स्वीकार कर रहा है। एक और आपको उदाहरण दूं इससे ख्याल आ सके ताकि ऐसा न लगे कि मैं कोई अवैज्ञानिक बात कह रहा हूं।

आज से पचास साल पहले तक कभी कोई सोच भी नहीं सकता था लेकिन इधर पचास वर्षों में बड़ी मुश्किल पड़ी। जैसे ही हमने अणु का विस्फोट किया और इलेक्ट्रान्स की खोज की वैसे एक बड़ी कठिनाई आयी जो मनुष्य जाति के सामने पहली दफा आयी। और, वह यह थी कि इलेक्ट्रान को हम क्या कहें? क्योंकि, कभी इलेक्ट्रान का फोटो ऐसा आता है जैसे 'इलेक्ट्रान वेव', लहर जैसा, और कभी ऐसे आता है जैसे 'पार्टिकल' है, कण है। और, कभी एक ही साथ दो कैमरे फोटो लेते हैं तो एक कैमरे में आता है वेव का और दूसरे में फोटो आता है कण का। कण और लहर में बड़ा फर्क है। इसको क्या कहें? इसको लहर कहें? अगर लहर कहते हैं तो यह कण नहीं हो सकता। अगर कण कहें तो यह लहर नहीं हो सकता। इसलिए, अंग्रेजी में एक नया शब्द ईजाद हुआ है जो अभी दुनिया की दूसरी भाषा में नहीं हुआ। क्योंकि, दुनिया की दूसरी भाषाएं उस गहराई पर नहीं पहुंची हैं, वह है, 'क्वांटा'। क्वांटा का मतलब है 'बोथ साइमलटेनियम, दी वेव एण्ड पार्टिकल'। मगर क्वांटा बड़ा 'मिस्टिरियस' मामला है। क्वांटा का मतलब होता है, दोनों एक साथ, लहर भी और कण भी। मुर्गी भी और अण्डा भी। तो सार्त्र से मैं राजी नहीं हूं न सार्त्र के विरोधियों से राजी हूं। जो कहते हैं कि अस्तित्व पहले, फिर आत्मा। जो कहते हैं आत्मा पहले, फिर अस्तित्व। उनसे से किसी से मैं राजी नहीं हूं। मेरा मानना है, अस्तित्व और आत्मा एक ही सत्य को देखने के दो ढंग

है। हमारी कमजोर नजर की वजह से हम दो मे तोडकर देखते हैं। अस्तित्व ही आत्मा है। 'इसेस इज एक्जिस्टेंस', 'एक्जिस्टेंस इज इसेस'। अस्तित्व आत्मा है, आत्मा अस्तित्व है ही। ये दो चीजें नही है। इसलिए, जब हम कहते है कि आत्मा का अस्तित्व है तो हम गलत भाषा का उपयोग करते है। जब हम कहते है, परमात्मा का अस्तित्व है, तब भी हम गलत भाषा का उपयोग करते है। क्योकि, परमात्मा का अस्तित्व है, इसका मतलब यह हुआ कि परमात्मा कुछ है और उसका अस्तित्व कुछ है। नही, अगर हम ठीक से समझे तो हम कहेगे, परमात्मा अस्तित्व है। परमात्मा का अस्तित्व है, गलत है। फूल का अस्तित्व है, क्योकि कल फूल का अस्तित्व नही भी हो जायेगा। लेकिन, परमात्मा का अस्तित्व कब नही होगा? जो कभी अनस्तित्व मे नही जा सकता उसका अस्तित्व नही कहा जा सकता। हम कह सकते है कि मेरा अस्तित्व है। क्योकि, कल मेरा अस्तित्व नही होगा। लेकिन, परमात्मा का अस्तित्व है, यह भाषा की भूल है। 'गाड एक्जिस्ट्स' यह गलत बात है। परमात्मा अस्तित्व है, 'गाड इज एक्जिस्टेंस' यही ठीक है। परमात्मा का अर्थ है होना। परमात्मा का अर्थ है अस्तित्व। 'है' शब्द भी पुनरुक्ति है। इतना भी हम कहे कि ईश्वर है तो पुनरुक्ति है। क्योकि, जो है, उसका नाम ईश्वर है। इसलिए, कठिनाई है बडी, भाषा की। और जैसे उसमे भीतर प्रवेश करते है तो जो जानता है वह कहता है छोडो झझट, चुप रह जाओ। कौन कहे कि ईश्वर है? किसको कहा कि ईश्वर है? जिसको कहो वह 'अब्जेक्ट' बन जाय। चुप ही रह जाओ।

एक जेन फकीर के पास कोई गया। वह उससे पूछता है, ईश्वर के सम्बन्ध मे कुछ कहो। तो वह हसता है, डोलता है। फिर वह पूछता है, कुछ कहो भी, हसने-डोलने से क्या होगा। वह और जोर से नाचता है। वह कहता है, पागल तो नही हो? हम कहते है, कुछ कहो। वह फकीर कहता है, मै कहता हूँ, लेकिन तुम सुनते नही। उस आदमी ने कहा, गजब की बाते कर रहे हो! खुद पागल हो, मुझको भी पागल बनाते हो। एक शब्द तुम बोले नही। उस फकीर ने कहा, अगर मै बोलूगा तो गल्ती हो जायेगी। अगर नही बोलने से नही समझ सकते हो तो जाओ, वहा समझो जहा बोलकर समझाया जा रहा है। लेकिन, बोलकर समझाने से परम तत्व मे गलती हो ही जायेगी। इसलिए, हम बोल सकते है आखिरी क्षण तक। लेकिन, बिल्कुल आखिरी क्षण पर बोलना रुक जायेगा, उसके बाद चुप रह जाना पडेगा।

विडिगस्टीन ने अपने सारे जीवन के बाद एक छोटा-सा वाक्य लिखा है

और वह वाक्य बहुत अद्भुत है। उसने लिखा है-'दैट व्हिच कैनाट बी सेड, मस्ट नाट बी सेड'। जो नही कहा जा सकता उसे कहना ही नही चाहिए। लेकिन, इतना तो कहना ही पडता है। विडिगस्टीन मर गया नही तो उससे मैं कहता, इतना तो कहना ही पडता है कि जो नही कहा जा सकता उसे नही कहना चाहिए। इससे क्या फर्क पडता है इतना कहकर, कुछ तो कहना ही पडता है। हा, उसने पहली किताब मे कहा है कि जो भी कहा जायेगा वह भाषा मे ही कहा जायगा। यह थोडी दूर तक ठीक है। क्योकि, अगर 'जेस्चर' को भी हम कहना समझें तो वह भी एक भाषा है। एक गूगा हाथ उठाकर कह देता है पानी पीना है, तो वह भी भाषा है। गूगे की भाषा है। इसलिए, हम तो कहते ही रहे हैं कि परमात्मा गूगे का गुड है, लेकिन उसका मतलब यही है कि गूगे की भाषा मे कहना पडेगा। लेकिन, कहेगे हम जो भी किसी ढग से, नाचकर कहे, मौन मे कहे, तो भी हम कह रहे है। और, इसलिए जो है, वह हमारे सब कहने के बाद छूट जायेगा। इसलिए, लाओत्से ने विडिगस्टीन से बहुत गहरी बात कही है। लाओत्से ने कहा कि सत्य कहा कि असत्य हो जाता है। बस इतना ही कहा जा सकता है। इसलिए, जो जानते है वे चुप रह जाते है।

प्रश्न आचार्यश्री, आप बहुधा कहते है कि 'मै' जब पूर्ण होता है तब वह सर्व, अर्थात 'न मै' हो जाता है। उपर्युक्त कथन का अभी आप खण्डन कर रहे है। इसमे लगता है कि केवल शब्दो की 'इम्फेसिस' बदल रहे है आप। पूर्ण मै और 'न मै' क्या एक नहीं है?

उत्तर कोई अन्तर नही है। क्योकि, पूर्ण मै का मतलब ही इतना होता है कि तू नही बचा अब बाहर। सब तू, मै मे समा गये। और, जब सब तू, मै मे समा जायेगे तो इसको मै कहने का कोई अर्थ नही रह जाता। इससे उल्टा भी कह सकते है कि हमारा मै, तू मे समा गया। लेकिन, जब मेरा मै तू मे समा गया तब तू को तू कहने का कोई अर्थ नही रह जाता। इसलिए, 'मै' चाहे पूर्ण कहे हम, चाहे 'मै' शून्य कहे हम, ये दोनो एक ही बात के कहने के दो ढग है। मै पूर्ण हो जाय तो शून्य हो जाता है, मै शून्य हो जाय तो पूर्ण हो जाता है। कहा से हम कहते है इससे बहुत फर्क नही पडता। परम सत्य को अगर हम हा कहे तो ठीक है, ना कहे तो भी ठीक है। क्योकि, परम सत्य के सम्बन्ध मे हाँ के भीतर ना सम्मिलित होगा और ना के भीतर हा सम्मिलित होगा। इसलिए, परम सत्य के सम्बन्ध मे हम कुछ न भी कहे तो भी ठीक है और बहुत कुछ कहे, कहते रहे अनन्तकाल तक, तो पूरा नही होता। और, चुप रह जाय कुछ भी न कहे तो भी पूरा हो जाता है। सत्य को, जो

है, उसे जब भी हम किसी दृष्टि से देखते हैं तो कठिनाई मे पडते हैं। कोई जगह से देखते है, कोई धारणा से देखते है, कोई भाव से देखते हैं, कोई विचार से देखते हैं, जब तक हमारी कोई धारणा है, कोई दृष्टि है, तब तक जिस सत्य को हम देखेंगे वह अपूर्ण होगा, अधूरा होगा, खण्ड होगा, अश होगा। इतना भी हम जाने कि वह अश है, खण्ड है, तो भी ठीक है। लेकिन, हर दृष्टि घोषणा करती है कि मै पूर्ण हूँ। और, जब दृष्टि घोषणा करती है कि मै पूर्ण हूँ, और जब दृष्टि कहती है कि मै दर्शन हूँ तब बडी भ्राति खडी हो जाती है। दृष्टि इतना ही कहे कि मै दृष्टि हूँ, तब कोई खतरा नही। दर्शन तो उसी दिन उपलब्ध होगा जिस दिन कोई दृष्टि न होगी। आप किसी दृष्टि से न देख रहे होगे, आप किसी जगह से न देख रहे होंगे, आप सब जगह से देख रहे होंगे, एक साथ सब जगह हो गये होंगे। उस दिन दर्शन उपलब्ध होगा। उस दर्शन को कहने के दो ढग हो सकते है। निषेध के या विधेय के। या तो हम निषेध का उपयोग करे, जैसा बुद्ध ने उपयोग किया और कहा कि निर्वाण है, शून्य है। या जैसा शकर ने उपयोग किया, कहा कि ब्रह्म है, पूर्ण है। और, मजा यह है कि शकर और बुद्ध दोनो विपरीत मालूम पडते है और दोनो बिल्कुल एक बात कहे चले जाते हैं। सिर्फ उनकी भाषा का मोड भिन्न है। शकर विधायक शब्द को पसन्द करते है। वे कहते हैं, ब्रह्म है। बुद्ध नकारात्मक शब्द को पसन्द करते है, वह कहते है शून्य है। अगर मुझसे पूछे कि मै क्या कहूँ, तो मै कहूगा कि शून्य का एक नाम ब्रह्म है और ब्रह्म का एक नाम शून्य है। और, जहा बुद्ध और शकर दोनो मिल जाते है वहा भाषा खत्म हो जाती है। वहा से असली बात शुरू होती है।

प्रश्न आचार्यजी, आपने यह तो स्वीकारा है कि पूर्ण 'मैं' और 'न मै' मे कोई फर्क नहीं है, लेकिन इसके पहले आप अपनी चर्चा मे यह कह चुके है कि साधना पूर्ण मै की दिशा मे ले जाती है और उपासना 'न मै' की दिशा मे ले जाती है। आपने साधना और उपासना मे बहुत फर्क किया, लेकिन बाद मे आप दोनो को एक मान रहे है?

उत्तर नही मैंने यह नही कहा कि साधना पूर्ण 'मै' की दिशा मे ले जाती है। मैंने कहा साधना मैं की दिशा मे ले जाती है। अगर साधना पूर्ण मै की दिशा मे ले जाय तो फिर उपासना मे कोई फर्क नही है। लेकिन, साधना नही ले जा पाती। और, इसलिए साधक को एक दिन मै को भी खोना पडता है। वह मै की ही दिशा मे ले जाती है, क्योकि पूर्ण मै तभी हो सकता है जब मै खो जाय। इसलिए, साधक को एक छलांग और लगानी पडेगी अत मे। एक साधना करके वह मै को पायेगा, आत्मा को पायेगा। उसे अन्त मे आत्मा को भी खोने की छलाग लगानी

पडेगी। और, अगर वह नही लगाता तो एक कदम पहले रुका रह जायेगा। उपासक जो छलांग पहले ही दिन लगा लेता है वह साधक को अंतिम दिन लगानी पडेगी। वह मैंने पीछे बात की है। साधक, साधना, प्रयास एक जगह ले जायेंगे जहा मैं बच जाऊगा। सब खो जायेगा। फिर, इस मैं को भी खोना पडेगा। उपासक पहले ही क्षण से मैं को खोने की बात करता है इसलिए अत मे उसके पास खोने के लिए कुछ नही बचता। जो काम साधक को अन्त मे करना पडता है वह उपासक को प्रथम करना पडता है। जिस बोझ को फेंक ही देना हो और पहाड के अतिम शिखर पर जहा जाकर सब बोझ छोड देना हो, उसको इतनी पहाडी तक कन्धे पर ढोने का भी प्रयोजन नहीं है। उपासक यह कहता है कि तुम पहाड के नीचे ही कन्धे का बोझ रख दो। क्योकि, आखिरी शिखर पर पहुचने के पहले यह बोझ छोडना पडेगा। उस ऊचाई पर यह बोझ नही ले जाया जा सकता, लेकिन, हम कहते है, नही जब तक ले जाया जा सकता है तब तक हम ले चले। जब आयेगा मौका तब देख लेगे तो, हम पूरा पहाड बोझ ढोते है। आखिरी शिखर के पहले तो छोडना पडता है। उपासक नीचे ही छोड आता है। वह इतने ढोने से बच जाता है, इतना फर्क है। आखिरी शि खर पर फर्क नही रह जायेगा। लेकिन जब आखिरी शिखर पर इतनी दूर तक खीचा गया बोझ छोडने का क्षण आयेगा तब उपासक मजे से बढता रहेगा और साधक अडचन मे पडेगा। क्योकि जिसे इतनी दूर तक खीचा उसके साथ राग और मोह तो बन ही जाता है। मन करेगा कि इतना पहाड चढकर आये, इतनी दूर तक खीचा, अब अन्त मे छोडे ?।

वह रोयेगा कि इसको अगर ले जा सके तो अच्छा। या सोचेगा कि यही टिक जाय तो क्या हर्ज है, अपने बोझ के साथ ही रुक जाय। यह समस्या उसके सामने खडी होगी। यह उपासक के सामने पहले दिन ही खडी होगी नीचे ही पहाड के। उसकी भी कठिनाई तो है। कठिनाई यह है कि साधक बोझ को ले जाता दिखायी पडेगा। और उसको लगेगा कि कुछ लोग तो लिये चले जा रहे है और मुझको यही छोडना पड रहा है। कही ऐसा न हो कि ये शिखर पर साथ लिए पहुच जाय और मैं गरीब यही छोड जाऊ। और आखिर मे पता चले कि यह तो पहुच गये बोझ के साथ और मैं खाली हाथ पहुच गया। इसलिए, साधक की कठिनाई अन्त मे है, उपासक की कठिनाई प्रथम है। टाइप है दुनिया मे। किसी को अच्छा लग सकता है एक, किसी को अच्छा लग सकता है दूसरा। लेकिन, कृष्ण को समझते वक्त मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि कृष्ण का जगत उपासक का है।

प्रश्न आचार्यजी, आप सात आठ साल से धर्मचक्र प्रवर्तन कर रहे हैं। उसका केन्द्रीय तत्त्व ध्यान और साधना ही है, तो कृपया बतायें कि ध्यान और उपासना मे क्या फर्क है और आपके धर्मचक्र प्रवर्तन का केन्द्रीय सूत्र ध्यान और साधना है, कि उपासना है ?

उत्तर मेरे लिए कोई भी फर्क नही है। मेरे लिए शब्दो से कोई भी फर्क नही पडता। सत्य का सवाल है। मैं ध्यान मे भी उसी सत्य को कहता हूँ। उसी सत्य को प्रार्थना मे भी कह देता हूँ। उसी सत्य को साधना मे भी कहता हूँ, उसी सत्य को उपासना मे भी कह देता हूँ। मेरे लिए फर्क नही पडता। लेकिन, कृष्ण के सदर्भ मे आप पूछते है तब फर्क है। महावीर के सदर्भ मे पूछेगे तो फर्क है। महावीर के लिए योग शब्द उपासना नही है। महावीर उपासना शब्द के लिए राजी नही होगे। महावीर साधना के लिए राजी होगे, बुद्ध साधना के लिए राजी होगे। उनका जोर साधना पर होगा। क्राइस्ट उपासना के लिए राजी होगे, कृष्ण उपासना के लिए राजी होगे, मुहम्मद उपासना के लिए राजी होगे। मेरे लिए कोई कठिनाई नही है। इसलिए, बहुत बार ऐसा लगेगा कि कल जो मैने कहा, आज उससे उल्टा कह रहा हूँ। मै बिल्कुल मजे से कह सकता हूँ। मुझे कोई अन्तर नही पडता। अभी कृष्ण पर बोल रहा हूँ इसलिए उपासना की बात कर रहा हूँ। पिछले वष महावीर पर बोल रहा था तो साधना की बात कर रहा था। अगले वर्ष क्राइस्ट पर बोलूँगा तो कुछ और बात करूँगा। मेरे लिए जो जैसा सत्य दिखायी पडता है उस सत्य के दिखायी पडने मे अब मेरे लिए कोई फर्क नही रह गया है। लेकिन, जब आप कृष्ण को समझने जाते है तब मैं कृष्ण पर साधना शब्द रखू तो कृष्ण के साथ अन्याय होगा। वह कृष्ण का शब्द नही है। जैसे, महावीर के ऊपर मै नाचने को थोप दूँ, मेरे लिए कोई फर्क नही है। महावीर शान्त खडे है इस पहाड की कन्दरा मे। वे जिस आनन्द मे है उस आनन्द मे, और कृष्ण एक वृक्ष के नीचे बासुरी बजा रहे है उस आनन्द मे, मेरे लिए कोई फर्क नही है। लेकिन, अगर कोई कहे कि महावीर और कृष्ण के लिए कोई फर्क नही है तो मै राजी नही होऊगा। महावीर नाचने को राजी न होगे। कृष्ण महावीर की तरह आख बन्द करके वृक्ष के नीचे नग्न खडे होने को राजी न होगे। मेरे लिए दिक्कत नही है। वृक्ष के नीचे कृष्ण ने सदा नाच किया है, ध्यान कभी नही किया। महावीर कभी नाचे है साधना के पहले, वह नही सभव है। जब मैं कृष्ण की बात कर रहा हूँ, उपासना शब्द पर जोर दे रहा हूँ। मेरे लिए तो साधना भी एक टाइप के लोगो के लिए जरूरी ह। उपासना भी एक टाइप के लोगो के लिए जरूरी है। और, मै दोनो मे सत्य को

देख रहा हूँ और दोनो का सत्य मैंने आपसे कहा कि दोनो की अड़चन है, दोनो की सुविधा है। लेकिन, फिर भी दोनो को ठीक से साफ-साफ समझ लेना आपके लिए उपयोगी है। मेरे लिए जरा भी उपयोगी नही है दोनो मे फासला करना। आपके लिए तो निर्णय करना पड़ेगा कि आप साधक की यात्रा पर जाते है कि उपासक की यात्रा पर जाते है। मेरे लिए कोई यात्रा नही है। मुझे किसी यात्रा पर जाना नही है। मुझे कोई उपासक समझे कि साधक समझे, कि दोनो न समझे, इससे कोई अन्तर नही पडता। आपको तो तय करना होगा कि आप किस ढग के आदमी है। आपके लिए क्या निकट होगा। आप उपासना के निकट से पहुच पायेंगे कि साधना के निकट से पहुँच पायेंगे ? जिन्हे पहुचना है उन्हे तय करना पडेगा, जिन्हे जाना है उन्हे तय करना पडेगा। जो जहा खडे है, वही पहुचे हुए समझ रहे है, उनके लिए कोई सवाल नही है। अगर किसी दिन आपको यह समझ मे आ जाय कि न कही जाना है, न कही पहुचना है, तब न उपासना शब्द सार्थक है, न साधना शब्द सार्थक है। तब आप दोनो पर हस सकते है।

एक झेन फकीर एक गुफा के बाहर सोया रहता है और जिस गुफा के बाहर वह सोता है वह तीर्थयात्रियो का मार्ग है। जो भी वहा से गुजरता है, उस फकीर को वहा सोया देखकर कहता है, कि अरे, तुम यहा क्यो पडे हो ? तीर्थयात्रा पर नही चलना है ? तो, वह फकीर कहता है कि तुम जहा जा रहे हो, हम वहा पहुच गये है। फिर लौटता हुआ कोई उससे पूछता है, अरे तुम यही पडे हुए हो, ऊपर तक नही गये ? वह कहता है, तुम जहा से आ रहे हो, हम वहीं रहते है। और वह वही पडा रहता है। वह न कभी तीर्थ करने गया, न कभी जायेगा और यात्री अपना सिर ठोककर आगे बढ जाते है कि पागल है। वह कहता है, तुम जहा रहे हो वह वहा है ही। तुम जहा से आ रहे हो हम वहा से आते है। ऐसे आदमी को न साधना का अर्थ है, न उपासना का अर्थ है। मै कभी साधना की बात करता हूँ, कभी उपासना की, कभी दोनो के पागलपन की भी बात करूगा। लेकिन, अगर आप समझेंगे तो विरोधाभास दिखायी नही पडेगा, विरोधाभास है नही।

प्रश्न **एक जगह और विरोधाभास लग गया। आपने कहा कि कृष्ण जन्म से ही सिद्ध है और महावीर साधक है। जब कि कश्मीर शिविर मे महावीर के बारे मे आपने कहा कि उन्होने पिछले जन्म मे ही अपनी सारी साधना पूरी कर ली थी। इस जन्म में उन्हें कुछ भी साधना नहीं करनी थी, केवल अभिव्यक्ति करनी थी। तब महावीर भी जन्म से सिद्ध हुए, कृष्ण ही जैसे।**

उत्तर नही, ऐसा मैंने नही कहा। मैंने इतना ही कहा है कि महावीर जो भी हुए हैं वे साधक होकर हुए है। चाहे उन्होने पिछले जन्म मे साधना की हो या उसके पिछले जन्म मे साधना की हो। इससे कुछ लेना-देना नही है। वह जो भी हुए हैं, साधना से हुए है। उनकी सिद्धावस्था के पहले साधना की यात्रा है। कृष्ण ने किसी जन्म मे कभी भी साधना नही की।

प्रश्न . फिर कैसे पूर्ण हो गये ?

उत्तर हमे कठिनाई लगती है कि सीधे पूर्ण हो गये ! हमे लगता है कि आडे तिरछे चलकर ही पूर्ण हो सकते हैं। वही फकीर का सवाल। फकीर यही तो कह रहा है कि आने-जाने वाले लोग कहेगे कि अच्छा तुम यही पडे-पडे पहुच गये ! हम तीर्थ तक चढकर पहुचे। ऐसा हो नही सकता। वह फकीर कहता है कि अगर तुम यही पडे-पडे नही पहुच सकते तो ऊपर चढकर भी कैसे पहुच जाओगे ? जहा पहुचना है वह कोई ऐसी चीज नही है जिसके लिए यात्रा जरूरी हो। लेकिन, टाइप हैं कुछ जो बिना यात्रा किये नही पहुच सकते। जिन्हे अपने घर भी आना हो तो दस-पाच दूसरो के घर के दरवाजे खटखटाये बिना नही आते। अपने घर का भी जिन्हे पता लगाना हो तो दूसरे से पूछकर ही आ सकते है। यह टाइप का फर्क है। महावीर और कृष्ण के टाइप का फर्क है। महावीर बिना साधना किये पहुचेगे ही नही। असल मे महावीर राजी भी न होगे। इसे समझ लेना चाहिए।

अगर महावीर को कोई कहे कि बिना साधना के यह रखा-रखाया मिलता है, तो महावीर कहेगे क्षमा करे, ऐसा हम न लेगे। क्योकि, जिसको अर्जित नही किया उसको ले लेना चोरी है। हम न लेगे। अगर महावीर को मोक्ष कोई दान मे मिलता हो, ऐसा रास्ते के किनारे पडा हुआ मिलता हो, तो महावीर को जैसा मैं समझता हूँ, वह उसे ठुकराकर आगे चले जायेगे। वह कहेगे, ऐसा हम न लेगे। हम तो पायेगे, अर्जित करेगे। खोजेंगे। जिस दिन मिलेगा उस दिन लेगे। अधिकारी बनेगे तो लेगे। कृष्ण कहेगे कि जो पाने-खोजने से मिलता हो उसको पाकर भी क्या करेगे, क्योकि जो पाने से मिल सकता है वह खो भी सकता है। हम तो उसी को पायेगे जो पाने वाले से नही मिलता, जो है ही। यह टाइप का फर्क है। यह व्यक्तित्व भेद है। इसमे मैं ऊँचे-नीचे की बात नही कर रहा हूँ। यह व्यक्तियो के भेद है।

कृष्ण और महावीर का दो तरह के बडे गहरे व्यक्तियो का भेद है। महावीर के लिए वही सार्थक है जो खोज से उघाडा जाता है, श्रम से पाया जाता है इसलिए, महावीर का नाम ही श्रमण हो गया। महावीर की पूरी परम्परा

का नाम श्रमण परम्परा हो गया। महावीर कहते है, जो भी मिलेगा वह श्रम से मिलेगा। श्रम के बिना हुआ सब चोरी है, चाहे परमात्मा भी मिल जाय बिना श्रम के तो वह कुछ न कुछ जालसाजी है। कही न कही कोई छल कपट है। महावीर कहते है, हमारा स्वाभिमान नही कहता कि बिना श्रम के हम कुछ पा ले। हम तो मेहनत करेगे और जितना मिल जायेगा उतने के लिए राजी होगे। इसलिए महावीर की भाषा मे, महावीर के भाषा शास्त्र मे प्रसाद और 'ग्रेस' जैसा कोई शब्द नही है। प्रयास, श्रम, पुरुषार्थ, साधना, सघर्ष जैसे शब्द है।

हिन्दुस्तान मे दो परम्पराएँ है। श्रमण और ब्राह्मण। ब्राह्मण परम्परा का अर्थ है जो मानते है ब्रह्म हम है ही। होना नही है। श्रमण परम्परा का अर्थ है कि ब्रह्म हमे होना है, हम है नही। दो तरह के ही लोग है। और मै मानता हूँ कि ब्राह्मण तरह के लोग बडे न्यून है। ब्राह्मण भी नही है। जिनको हम ब्राह्मण समझते है वे भी ब्राह्मण नही है। क्योकि, इस बात के लिए हिम्मत जुटाना कि हम बिना पाये पा लेगे, हम बिना अधिकारी बने अधिकारी है, हम बिना गये पहुचे है, बडा मुश्किल है। साधारण मन कहता है पाना ही होगा। श्रम करना ही होगा। कुछ किये बिना कैसे मिलेगा ? हमारा सब गणित कहता है, साधन के बिना साध्य नही, श्रम के बिना उपलब्धि नही, प्रयास के बिना पहुचना कैसा ? इसलिए, ब्राह्मण तो कभी-कभी दो, चार, दस सदियो मे बस एकाध आदमी होता है। बाकी सब श्रमण है। चाहे वह अपने को जैन और श्रमण मानते हो कि न मानते हो। इसलिए, बुद्ध और महावीर के बडे भेद होते हुए भी दोनो की परम्परा को श्रमण नाम मिल गया है। बुद्ध का भी आग्रह है कि बिना पाये नही मिलेगा। खोजना पडेगा। कृष्ण ब्राह्मण है। वे कहते है, ब्रह्म हम है ही। और, मै किसी एक को गलत और दूसरे को सही नही कह रहा हूँ यह ध्यान मे रखना। क्योकि, मुझे दोनो ही ठीक दिखायी पडते है। इसमे बहुत कठिनाई नही है। ये दो तरह के सोचने के ढग, दो तरह के व्यक्तित्व, दो तरह के चित्त है, उनकी यात्रा है।

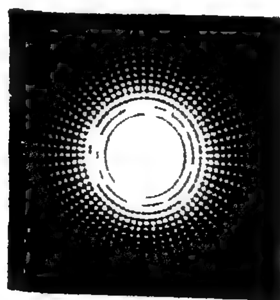
प्रश्न एक अतिम बात पूछू, कृष्ण अपने पिछले जन्मो मे कभी-न-कभी अपूर्ण और अज्ञानी रहे ही होगे।

उत्तर अपूर्ण और अज्ञानी तो महावीर भी किसी जन्म मे नही रहे है। सिर्फ पता उनको इस जन्म मे चला और कृष्ण को सदा से पता है। अपूर्ण और अज्ञानी तो आप भी नही है, अपूर्ण और अज्ञानी तो कोई भी नही है, बस पता चलने की देर है। जो फर्क है वह अपूर्ण होने का नही है, वह बोध का है। यहा सब आदमी सोये है, सूरज निकला हुआ है और एक आदमी जागा हुआ है। जो आदमी सोये हुए है

और जो जागा हुआ है इन दोनो के लिए सूरज निकला हुआ है । सूरज के निकलने मे कोई फर्क नही । एक आदमी जागा हुआ है, उसे पता है कि सूरज निकला है बाकी सोये हैं, उन्हे पता नही कि सूरज निकला हुआ है। जब वे जागेगे, वे कहेगे, अरे अब सूरज निकला। नही, उचित यही होगा कि वे कहे कि सूरज तो निकला था, हम अब जागे । अपूर्ण अज्ञानी न महावीर है, न कृष्ण है, न आप हैं । लेकिन, कृष्ण अपने को किसी भी तल पर कभी भी ऐसा नही जानते। इसलिए कोई चेष्टा नही करते । किसी तल पर महावीर चेष्टा करके जानते हैं कि अपूर्ण अज्ञानी नही है, पूर्ण है और ज्ञानी है। जिस दिन वे जानते है उस दिन यह भी जान लिया जाता है कि यह होना उनका सदा से था । सिर्फ पता अब चला– और क्या फर्क पडता है कि किसी को दो जन्म पहले चला और दो जन्म बाद चला। हमको बहुत दिक्कत मालूम होती है । किसी को दस जन्म पहले चला, किसी को दस जन्म बाद चला, क्योकि हम टाइम मे जीते है । हमारा सारा सवाल है कि कौन पहले, कौन पीछे है । लेकिन, जगत मे समय का न कोई प्रारम्भ है, न कोई अन्त है । इसमे आगे और पीछे का क्या मतलब है ? आगे और पीछे का तभी तक मतलब है जब तक अन्त और आदि को हम मानते है। अगर समय का कोई प्रारम्भ ही नही है तो मुझसे दो दिन पहले जिसे ज्ञान मिला, उसे मुझसे पहले मिला ? और अगर समय का कोई अन्त ही नही है तो मुझे दो दिन बाद मिला, मुझे उससे बाद मे मिला ? नही, ये बाद और पहले तभी सार्थक हो सकते है, जब आगे पीछे खम्भे लगे हो कि वहा समय खत्म हो जाता है, यहा समय शुरू होता है । अगर कभी समय शुरू होता हो तो उसको मुझसे दो दिन पहले मिल गया, उस खम्भे से नाप की जा सकती है। लेकिन, पीछे कोई प्रारम्भ न हो और आगे कोई अन्त न हो तो कौन पहले पहुचा और कौन पीछे पहुचा ? जो भी पहुचते है, वे समयातीत, कालातीत, 'बियोन्ड टाइम' पहुचते है ।

मैं एक अजीब सी बात आपसे कहू कि जिस क्षण महावीर पहुचते है, उसी क्षण कृष्ण पहुचते है । मगर, यह बडा मुश्किल होगा । इसे थोडा समय को समझ कर फिर समझना पडेगा । जिस क्षण कोई भी पहुचा है इस जगत मे उसी क्षण सब पहुचते है । इसे ऐसा समझें एक बडा वर्तुल हम बनायें, एक सर्किल हम बनाये । सर्किल के बीच मे एक सेंटर हो और सर्किल की परिधि से हम कई रेखाए सेंटर की तरफ खीचें । परिधि पर रेखाओ मे फासला होगा । दो रेखाओ मे दूरी होगी । फिर दोनो रेखाए केन्द्र की तरफ चलती हैं तो दूरी कम हो जाती है । फिर जब वे केन्द्र पर पहुचती है तो दूरी खत्म हो जाती है । परिधि पर दूरी होती है केन्द्र

पर दूरी समाप्त हो जाती है। टाइम की जो सरकमफ्रेंस है, समय की जो परिधि है उस पर से महावीर एक दिन छलाग लगाकर केन्द्र पर पहुचते है। समय की परिधि पर कृष्ण और महावीर के बीच फासला है। मेरे और कृष्ण के बीच फासला है, आपके और मेरे बीच फासला है। लेकिन, जिस दिन केन्द्र पर पहुचते हैं उस दिन कोई फासला नही रह जाता। समय के केन्द्र पर सब फासले समाप्त हो जाते है। लेकिन, यह जरा कठिन है। यह ख्याल मे लेना कठिन है, क्योकि हम परिधि पर जीते है और हमे सेन्टर का कोई पता नही है। इसे ऐसा भी समझ ले कि एक बैलगाडी का चाक चलता है, तो चाक चलता है लेकिन कील खडी रहती है। और बडे मजे की बात तो यह है कि खडी हुई कील पर ही चाक चलता है। चलता उसके आधार पर है जो नही चलती है। चाक कई मील चल जायेगा और चाक कहेगा कि दस मील की यात्रा की, और कील से पूछेंगे कि कील तूने कितनी यात्रा की? कील कहेगी मै वही हूँ। लेकिन, बडे मजे की बात है, जिस पर चाक दस मील चल गया वह कील जरा भी नही चली। तो चाक कैसे चला होगा जब कील नही चली जरा भी? कील तो यही कहेगी कि मै वही हूँ। मै बिल्कुल चली ही नही। और चाक कहेगा, मै दस मील चला। और कील और चाक एक ही साथ जुडे है। यह दोनो बाते एक साथ कैसे हो सकती है? लेकिन, एक साथ हो जाती है, हम रोज गाडी मे देखते है। यह इसलिए हो जाती है कि कील सेटर पर है और चाक परिधि पर है। परिधि पर इतिहास है, समय है और कील पर सत्य है, ब्रह्म है। महावीर और कृष्ण एक ही क्षण वहा पहुचते हैं और जब वे वहा पहुचते है तब ऐसा पता नही चलता कि कौन पहले पहुचा और कौन पीछे पहुचा। लेकिन, जहा परिधि पर जीने वाले लोग है, चाक पर जीने वाले लोग है वहा कोई कभी पहुचता है, कोई कभी पहुचता है। ये सब समय के फासले है। समय के फासले वहा नही है, क्योकि समय के बाहर समय का कोई फासला नही है।



पर्व : बारह

कृष्ण से आत्म साक्षात्कार

संकीर्तन का उपयोग

अचिन्त्य भेदाभेद

कृष्ण चेतना आन्दोलन

गरीब समाज और गरीब व्यक्ति

निसर्ग का चिन्तक धर्म पर प्रभाव नहीं

बीज शब्द और ओम् का अनुभव


SATHE



१२

प्रश्न अभी एक चर्चा मे आपने कहा है कि श्रीकृष्ण की आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है, क्योंकि कुछ मरता नहीं। कृष्ण दर्शन की सभावित्ता की हद में लाने के लिए बहुत से 'प्रॉसेस' से गुजरना पडेगा। और साथ ही यह बतायें कि कृष्ण-मूर्ति पर ध्यान, कृष्ण-नाम का जप और कृष्ण-नाम के संकीर्तन से क्या उपासना की पूर्णता की ओर जाया जा सकता है ?

उत्तर विश्व-अस्तित्व मे कुछ भी एकदम मिट नही जाता और विश्व-

अस्तित्व मे कुछ भी एकदम नया पैदा भी नही होता। रूप बदलते हैं, आकृतिया बदलती है, आकार बदलते है, लेकिन अस्तित्व के गहनतम रहस्यो मे जो है वह सदा वैसा ही है। व्यक्ति आते है, खो जाते है, लहरे उठती है सागर पर, विलीन हो जाती है। लेकिन, जो लहर मे छिपा था वह कभी विलीन नही होता। कृष्ण को हम दो तरह से देखेंगे तो समझ मे आ जायेगा। अपने को भी फिर हम दो तरह से देख पायेंगे। एक हमारा लहर रूप है एक हमारा सागर रूप है। लहर की तरह हम व्यक्ति है, सागर की तरह हम ब्रह्म है। कृष्ण का जो चेहरा देखा गया, कृष्ण का जो शरीर देखा गया, कृष्ण की जो वाणी सुनी गयी, कृष्ण के जो स्वर सुने गये वे लहर रूप हैं। लेकिन, जो इन वाणियो, इन नृत्यो तथा इस व्यक्तित्व के पीछे खडा है, वह सागर रूप है। वह सागर रूप कभी भी नही खोता है। वह सदा अस्तित्व के प्राणो मे निवास करता है, वह सदा है ही। वह कृष्ण नही हुए थे तब भी था, जब कृष्ण नही है, तब भी है। जब आप नही थे तब भी था, आप जब नही होगे, तब भी होगा। ऐसा समझे कि जैसे कृष्ण एक लहर की तरह जागे है, नाचे है सागर की छाती पर, सूरज की किरणो मे, हवाओ मे, और फिर सागर मे खो गये है। हम सब भी ऐसे ही है। थोडा-सा फर्क है। कृष्ण जब लहर की भाति नाच रहे है तब भी वे जानते है कि वे सागर है। हम जब लहर की भाति नाच रहे है तब हम भूल जाते है कि सागर है। तब हम समझते है कि हम लहर ही है। चूकि हम अपने को लहर समझते है, इसलिए कृष्ण को भी कैसे सागर समझ सकते है? लहर जिस रूप मे प्रकट हुई थी, जिस आकृति और आकार में प्रकट हुई थी, उस आकृति और आकार का उपयोग किया जा सकता है उस लहर के पुनर्साक्षात्कार के लिए। लेकिन, खेल सब छाया जगत का है। दो तीन बाते ख्याल मे लेगे तो पूरी बाते स्पष्ट हो सकेगी।

कृष्ण के सागर रूप से आज भी, कभी भी साक्षात्कार किया जा सकता है। महावीर के भी सागर रूप से साक्षात्कार किया जा सकता है, बुद्ध के सागर रूप से भी साक्षात्कार किया जा सकता है। जिस रूप मे वे प्रकट हुए थे कभी, जो आकृति उन्होने ली थी, उसका उपयोग इस सागर रूप साक्षात्कार के लिए किया जा सकता है। वह माध्यम बन सकता है। मूर्तिया सबसे पहले पूजा के लिए नही बनी थी। मूर्तिया सबसे पहले एक 'इजोटेरिक साइंस' की तरह बनी थी, एक गुप्त विज्ञान की तरह बनी थी। उन मूर्तियो मे जो व्यक्ति उस रूप मे जिया था उसने वायदा किया था कि इस मूर्ति पर पूरी तरह ध्यान किया गया तो मेरे सागर रूप अस्तित्व से सम्बन्ध हो सकेगा कभी रास्ते पर आपने किसी मदारी को हिप्नोसिस का एक छोटा-सा खेल करते देखा होगा।

छोटा खेल है कि किसी लडके को मदारी लिटा देता है। उसकी छाती पर एक ताबीज रखता है। ताबीज रखने से वह बेहोश हो जाता है। बेहोश होने के बाद वह मदारी उस लडके से बहुत-सी बाते पूछता है और वह बताना शुरू कर देता है। आपके पास वह मदारी आता है और कहता है, कान मे अपना नाम बोल दें। आप नाम बोलते है, वह लडका वहा से चिल्ला देता है कि यह नाम है इस आदमी का। आप इतने धीमे-धीमे बोलते है कि उस लडके के सुनने का कोई उपाय नही, क्योकि आपके बगल का पडोसी भी नही सुन पाया। वह मदारी कहता है कि आपके खीसे मे नोट रखा हुआ है, इसका नम्बर कितना है और वह लडका नोट का नम्बर बोल देता है। वह मदारी आपसे कहेगा कि यह ताबीज बडा अद्भुत है। इस ताबीज की बदौलत इस लडके की इतनी सामर्थ्य हो गयी। बस वही वह धोखा देता है। फिर वह चार आठ आने मे बेच ही देता है। आप घर आकर आठ आने का ताबीज छाती पर रखकर लेट जाते है, लेकिन कुछ नही होता है। नही होगा। ताबीज से कोई लेना देना नही था। लेकिन, उस लडके के सम्बन्ध मे लेना देना था।

पोस्ट हिप्नोटिज्म की एक छोटी-सी प्रक्रिया है। वह प्रक्रिया यह है कि यदि किसी व्यक्ति को गहरी बेहोशी मे डाल दिया जाय, जो कि बिल्कुल बहुत सरल है। उस गहरी बेहोशी की हालत मे यदि उसे कहा जाय कि यह ताबीज ठीक से देख लो और जब भी इस ताबीज को हम तुम्हारी छाती पर रखेंगे तो तुम पुन बेहोश हो जाओगे। उसके अचेतन की गहराइयो मे यह सुझाव बैठ जाता है। फिर कभी भी उस व्यक्ति के ऊपर वह ताबीज रखा जाय वह तत्काल बेहोश हो जायेगा। और बेहोशी मे हमारे मस्तिष्क की अचेतन शक्तिया काम करना शुरू कर देती है। जो हम होश मे नही कर पाते, वह हम बेहोशी मे कर लेते है। जितना हम होश मे सुनते है उससे बहुत तीव्रता मे बेहोशी मे सुनने लगते है। जितना हम होश मे देखते है उससे बहुत गहरा बेहोशी मे देखने लगते है। लेकिन, वह ताबीज आपके ऊपर काम नही करेगा। क्योकि, वैसा आपके अचेतन मे कोई गहरा सुझाव नही दिया गया।

कृष्ण, महावीर, बुद्ध और क्राइस्ट जैसे लोग जब पृथ्वी से विदा होते है तो जो उन्हे प्रेम करते है, जिन्होने उन्हे चाहा है, जिन्होने उनके निकट बहुत कुछ पाया है, वह उनसे अगर निवेदन करे कि आपके देह रूप के छूट जाने के बाद अगर हम आपको स्मरण करना चाहें और सबधित होना चाहे तो हम क्या करे? तो अत्यत गहरी ध्यान की अवस्था मे कृष्ण अगर उनसे कह दे कि मेरी यह रही प्रतिमा,

मेरा यह रहा रूप, जब भी तुम इसपर ध्यान करोगे तो तुम तत्काल मुझसे सयुक्त हो जाओगे– मेरे सागर रूप से। यह ध्यान की अवस्था मे दी गयी प्रतिमाए है। यह ध्यान की अवस्थाओ मे दिये गये प्रतीक है। ये सबके काम के नही हैं। आप कृष्ण की मूर्ति के सामने जिन्दगी भर चिल्लाते रहे, कुछ होगा नही। आप महावीर की मूर्ति के सामने कितने नाचे कूदे कुछ होगा नही। ध्यान की अवस्था मे पहले आपके पास यह अन्तर्सुझाव चाहिए कि इस मूर्ति के द्वारा आपका सम्बन्ध उस व्यक्ति से हो सकेगा जिसकी यह मूर्ति है।

तो पहली बात, बुद्ध, महावीर और कृष्ण जैसे लोग पृथ्वी से बिदा होते है तो उनके निकटतम जो वर्ग है उसे वे सूचनाए दे जाते है। पहली पीढी जो इस वर्ग की होती है वह तो उसका पूरा लाभ उठाती है। दूसरी पीढी मे वे लोग लाभ उठा सकते है जिनको पहली पीढी के द्वारा पुन वह सुझाव ध्यान की गहराइयो मे चित मे डाला दिया गया हो। धीरे-धीरे सुझाव खो जाता है। मूर्ति हाथ मे रह जाती है। वैसे ही जैसे बाजार मे आप आते है तावीज हाथ मे ले आते है और सुझाव का कोई पता नही होता। फिर उस मूर्ति को रखे आप बैठे रहे जिन्दगी भर, उससे कुछ होने का नही। मैने मूर्ति के लिए कहा–मूर्ति एक 'इजोटैरिक ब्रिज' है जिसके माध्यम से लहर रूप व्यक्ति ने वायदा किया है कि उसके सागर रूप मे पुन सबध स्थापित किया जा सकेगा। ठीक उसी तरह नाम भी है। नाम का भी उपयोग किया जाता है। लेकिन, वह भी ध्यान की गहराइयो मे दिया गया हो तो। अब गुरु, कान फूकते रहते है, लोगो के उससे कुछ होता नही। क्योकि सवाल कान फकने का नही है। सवाल तो बहुत गहरे ध्यान की अवस्था मे कोई शब्द प्रतीक रूप देने से है कि उस शब्द के स्मरण करते ही, उसका उच्चारण करते ही सारी चेतना रूपातरित हो जायेगी। ऐसे शब्दो को बीज शब्द कहा जाता है, वह 'सीड वर्ड्स' है, उनमे बडा कुछ भर दिया गया है।

तो कृष्ण का नाम अगर बीज शब्द है–उसका अर्थ यह हुआ कि अगर ध्यान की बहुत गहरी अवस्था मे आपके चित्त के अतल मे उसको छिपाया गया है, (और बीज सदा ही गहरे और नीचे जमीन के छिपाये जाते है। वृक्ष ही ऊपर आते है।) अगर आपके चित्त के गहरे गर्भ मे कोई शब्द डाला गया है और उस शब्द के साथ सुझाव डाला गया है तो उसके परिणाम होने शुरू हो जायेगे।

रामकृष्ण बडी दिक्कत मे थे। वे सडक से निकल नही पाते थे। वह सडक से जा रहे हो और किसी ने कह दिया, जय रामजी, रामकृष्ण वही गिर जायेगे और ध्यानस्थ हो जायेंगे। रामकृष्ण को सडक से ले जाना बहुत मुश्किल था।

रामकृष्ण सडक से जा रहे हो तांगे मे बैठकर, किसी मंदिर मे कोई राम धुन चल रही है, वह वही गये ! वह डूब गये वही। किसी के घर पर बैठकर बात कर रहे है और किसी ने राम का नाम ले दिया, वह गये। वह शब्द उनके लिए बीज है। वह शब्द पर्याप्त है उनके लिए, लेकिन हमे कठिन होगा यह मानना। हमारे लिए भी कुछ बीज बाते है वह हम समझ ले तो ख्याल मे आ जाय। कोई आदमी चिन्तित होता है तो फौरन माथे पर हाथ रख लेता है। आप उसका हाथ नीचे रोक ले, वह बहुत बेचैनी मे पड जायेगा। कोई आदमी परेशान होता है तो एक विशेष आसन मे बैठ जाता है। आप उसको उसमे न बैठने दे, वह बहुत मुश्किल मे पड जायेगा।

डा हरीसिंह गौड प्रिवी कौंसिल मे एक मुकदमा लडते थे। उनकी सदा की आदत थी कि जब कभी कोई उलझन का मामला होता और दलील करनी कठिन होती तो कोट के ऊपर का बटन घुमाने लगते थे। जिन लोगो ने भी उनके साथ वकालत की थी उन सबको पता था कि उनका कोट के बटन पर हाथ गया कि उनकी वाणी एकदम प्रखर हो जाती और वे इस तरह बोलने लगते थे जैसे कि इसके पहले बोल ही नही रहे थे। एक बडा मुकदमा था। विरोधी वकील बडी परेशानी म पडा हुआ था। उसने डाक्टर हरीसिह गौड के एक 'शोफर' को कहा कि जितना पैसा तुझे चाहिए ले, लेकिन कल जब तू कोट कार से उतार कर लाये तो उसके ऊपर का बटन तोडकर फेंक देना। बस बटन उसने तोडवा कर फिकवा दिया। उस दिन आखिरी पैरवी थी। हरीसिह गौड ने अपना कोट अपने गले पर डाल लिया, लटका लिया और वह विवाद करने को खडे हो गये। ठीक उस क्षण पर जब उनका हाथ खोजने लगा बटन को और पाया कि बटन वहा नही है वह एकदम बेहोश होकर गिर गये कुर्सी पर। उन्होने अपने सस्मरणो में लिखा है कि मेरे मस्तिष्क ने काम करना एकदम बन्द कर दिया। मुझे ऐसा लगा कि जैसे सब खो गया। अब मै कुछ बोल सकूगा ही नही। मजिस्ट्रेट से उन्हे प्रार्थना करनी पडी कि यह मुकदमा आगे के लिए टाल दिया जाय, आज मेरी कोई सामर्थ्य नही है। बडी अजीब-सी बात मालूम पडती है, एक बटन इतना अर्थ रख सकता है ? 'एसोसिएशन' का अर्थ है। अगर सदा ही उस बटन पर हाथ रखकर मन सक्रिय हो गया है तो आज उस बटन को न पाकर मन एकदम निष्क्रिय हो जायेगा। यह 'कण्डिशन रिफलेक्स' की बात है। नाम का प्रयोग भी इसी भाति किया गया है। वह जो बटन था, हरीसिह गौड के लिए बीज हो गया, साधारण बटन नही रहा, जो सिर्फ कोट के लगाया और अटकाया जाता है। इस बटन से उनका मन भी अटकने और लगने लगा।

नाम का उपयोग इस भाति किया जा सकता है। किया गया है। लेकिन, खाली शब्द का उपयोग करने से कुछ भी नही होता। खाली शब्द और बीज शब्द मे वही फर्क है। बीज शब्द का अर्थ यह है कि आपकी अचेतन गहराइयो मे उसे डाला जाय और इतने गहरे मे बिठा दिया जाय कि उसके स्मरण मात्र से आप तत्काल रूपातरित हो जाय। तो वह बीज बन जाता है। कृष्ण, राम या बुद्ध या महावीर या और तरह के शब्द और नाम बीज की तरह उपयोग किये गये है, लेकिन अब लोग उनको ऐसे ही दोहरा रहे हैं। बैठे हुए हजार दफा 'राम राम' कह रहे है, कुछ भी नही होता। बीज होता तो एक बार मे ही हो जाता। हजार बार कहने की बात न थी। और राम से ही होगा ऐसा नही, कोई भी अ-ब-स शब्द को बीज बनाया जा सकता है और आपके व्यक्तित्व मे गहरे मे डाला जा सकता है। शब्द और मत्र बीज बन जाय तो साधक की गहराइयो को रूपातरित करने मे उपयोगी होते है। लेकिन, हमारी कठिनाई यह है कि मूल सूत्र खो जाते है, ऊपरी बाते रह जाती है। कोई भी राम राम जपता रहता है, कोई भी कृष्ण कृष्ण चिल्लाता रहता है। उससे कुछ हो सकता नही, कभी नही होगा। जीवन भर चिल्लाने से भी नही होगा।

कीर्तन के लिए पूछते है। ध्यान के जो प्रयोग हम कर रहे है, उसमे जो दूसरा चरण है, ठीक वही उपयोग कीर्तन का किया जा सकता है, किया जाता रहा है। जो जानते है उन्होने वैसा ही उपयोग किया है। जो नही जानते है वे सिर्फ चिल्लाते है, नाचते है। ध्यान का जो दूसरा चरण है अगर ठीक वैसा ही उपयोग कीर्तन का, भजन का, नृत्य का किया जा सके तो उसके बडे व्यापक परिणाम है। पहला परिणाम तो यह है कि जब आप बहुत भाव से नाचने लगें तो शरीर आपको अलग दिखायी पडने लगेगा। शरीर पृथक मालूम होने लगेगा, आप अलग मालूम होने लगेंगे। आप थोडी ही देर मे देखने वाले हो जायेंगे, नाचने वाले नही। जब शरीर पूरी त्वरा मे आयेगा, पूरी गति मे आयेगा नृत्य की, तब अचानक एक क्षण ऐसा आयेगा कि आप पायेंगे आप अलग हो गये। उस क्षण को अलग करने के उपाय किये गये थे कि वह क्षण अलग हो जाय और आप तत्काल टूट जाय। नृत्य बाहर रह जाय और आप खडे हो जाय। कील अलग हो जाय, चाक घूमता रहे। और कील पहचान ले कि मै कील हूँ और घूमता हुआ जो है वह चाक है। नृत्य का उपयोग चाक की तरह किया गया है। जोर से घूमे तो एक घडी आ जाती है जहा कील दिखायी पडने लगती है। यह बडे मजे की बात है, जब चाक और कील खडे हो तो कील और चाक का पता लगाना मुश्किल है कि कौन कील है, कौन चाक है? क्योंकि दोनो खडे है। चाक चले, तो कील का फर्क फौरन पता चल जाता है। जो

नही चलेगी वह पहचान मे आ जायेगी। नाचे आप। आपके पीछे, भीतर कुछ छूट जायेगा जो नही नाचता है। बस वह आपकी कील है, वह आपका सेन्टर है। जो नाच रहा है, वह आपकी परिधि है, वह आपका चाक है। इस क्षण मे अगर साक्षी हो जाय तो समझे कीर्तन का अद्‌भुत उपयोग हो गया। लेकिन, अगर साक्षी न हुए और कीर्तन ही करते रहे तो बेकार चली गयी मेहनत, उसका कोई अर्थ न रहा।

प्रक्रियाए पैदा होती हैं और खो जाती हैं। खो जाती है इसलिए कि सब प्रक्रियाए अनिवार्य रूपेण मनुष्य के स्वभाव जैसी है। वह उसमे जो सार्थक है भूल जाता है, जो निरर्थक है उसको पकड लेता है। क्योकि, जो सार्थक है वह गहरे मे होता है, जो निरर्थक है वह ऊपर होता है। जो निरर्थक है वह वस्त्र की तरह ऊपर होता है, जो सार्थक है वह आत्मा की तरह भीतर होता है। जो भीतर है वह दिखायी नही पडता, धीरे-धीरे ऊपर का ही रह जाता है, भीतर का भूल जाता है। और, इसलिए ऐसे वक्त आ जाते है — जैसे मै ही हूँ मुझसे कोई पूछने आये कि कीर्तन से कुछ होगा तो मै सख्ती से मना करता हूँ कि कुछ भी नही होगा। क्योकि, मैं जानता हूँ अब कीर्तन मृत परम्परा हो गयी है। अब मरा हुआ ढाचा रह गया है। वह चाक ही है, कील का पता लगाना बहुत मुश्किल है।

नही, चैतन्य ने जरूर कीर्तन और भजन से वही पा लिया जिसके पाने की मै बात कर रहा हूँ। चैतन्य ने नाचकर उसे पा लिया जिसे बुद्ध और महावीर खडे होकर पाते है। ये दोनो बाते हो सकती है। कील को पकडने के दो रास्ते हो सकते है – एक रास्ता तो यह हो सकता है कि आप इतने खडे हो जाय कि आपमे कपन ही न रह जाय कोई। इतने ठहर जाय, इतने थिर हो जाय कि 'जस्ट स्टैंडिग' की हालत रह जाय। तो उस हालत मे आप कील पर पहुच जायेंगे। या दूसरा रास्ता यह है कि आप इतने 'मूवमेट' मे हो जाय, इतनी गति मे हो जाय कि चाक पूरा चल पडे और कील पहचान मे आ जाय। आसान दूसरा ही होगा। चाक जोर से चले तो कील को पहचानना आसान होगा। बहुत कम लोग है जो खडे हुए चाक मे कील को पहचान पाये। महावीर खडे होकर पहचानते है, कृष्ण नाचकर। और, चैतन्य तो कृष्ण भी जितना नही नाचे उतना नाचे है। चैतन्य का तो कोई मुकाबला नही। चैतन्य के नृत्य का तो कोई हिसाब ही नही, शायद पृथ्वी पर ऐसा कोई नाचा ही नही। पर, ध्यान मे लेने की बात इतनी ही है कि हमारी परिधि जो है, गतिमान है, परिवर्तन है वहा, और हमारी जो गहराई है आत्मा है, वहा शाश्वतता है, 'इटरनिटी' है, वहा कोई परिवर्तन नही, वहा सब चुप और शात और सदा

खडा हुआ है। वह कील की भांति है— वह थिर है। उस थिर को, उस परिवर्तन अतीत को किस भांति पहचान ले?

ध्यान का जो दूसरा चरण है उस बात का ही गहरा प्रयोग किया जा रहा है। लेकिन, कीर्तन मै उसे नही कह रहा, क्योकि कीर्तन शब्द अब अपदस्थ हो गया। कीर्तन शब्द ने अब अर्थ खो दिया है। सभी शब्द, जैसे रुपये चल चलकर घिस जाते है और घिस घिस कर नकली हो जाते है, वैसे ही शब्द भी चल चलकर घिस जाते हैं और खराब हो जाते है। और, वक्त आ जाता है कि टकसाल मे नये रुपये ढालने पडते है। मुझे भी समझने में बहुत बार दिक्कत पडेगी क्योकि मैं नयी टकसाल मैं जो रुपये ढाल रहा हूँ कि पुराने सिक्के बहुत चल चुके और इतने हाथो मे चल चुके है कि बिल्कुल घिस गये है। उनमे न चेहरा पहचान मे आता है, न क्या लिखा है वह पहचान मे आता है, न यही पता चलता है कि वह सिक्के है कि ठीकरे है। इसलिए, सब फिर से शुरू से करना पडता है हर बार, और यह जानते हुए शुरू करना पडता है कि नये सिक्के जो आज टकसाल से निकल रहे है कल यह भी हाथ मे चलकर घिस जायेगे और खराब हो जायेगे। और, फिर किसी को नये सिक्के ढालने पडेगे। नये सिक्के ढालने वाले के सामने बडी कठिनाई आ जाती है कि उसे उन्ही सिक्को से लडना पडता है जिनके लिए वह जी रहा है। लडना मजबूरी हो जाती है। जब नये सिक्के बाजार मे लाने पडते है तब पुराने सिक्के वापस टकसाल मे भेजने पडते है। तो मुझे वापस सिक्के आपसे छीनने पडते है कि इनको वापस टकसाल मे भेजो। ये बेकार हो गये है, अब तुम नये ले लो। लेकिन, पुराने सिक्के का मोह होता है। बहुत दिन साथ रहा है। घिसा भी है तो अपने ही हाथो मे घिसा है। नये सिक्के का एकदम भरोसा नही होता।

धर्म के साथ ऐसा रोज होता है। कीर्तन का बडा उपयोग किया जा सकता है। समझ लिया जाय तो कीर्तन का बडा अद्भुत उपयोग है, लेकिन अब समझना बहुत मुश्किल होगा। क्योकि, जब मैं कीर्तन कहूगा तब आप वही कीर्तन समझेगे जो आप समझ रहे है। तब आप कहेगे कि बिल्कुल ठीक कहते है आप। हम तो कर ही रहे है यह कीर्तन। हम तो राम राम कर ही रहे हैं, बिलकुल ठीक कह रहे है आप। जब आप का मन कहता है, बिलकुल ठीक कर रहे है तब मुझे ऐसा लगता है कि कही मैंने कह कर कुछ भूल तो नही की? क्योकि, आपको मै ठीक नही कहना चाहूगा। आप अगर ठीक होते तब तो कोई बात ही न थी। वह राम राम तो आप कह ही रहे है। मै आपके राम राम का समर्थन नही कर रहा हूँ। आप तो कीर्तन करते ही रहे है, आपके कीर्तन का समर्थन नही कर रहा हूँ। क्योकि,

अगर आप कीर्तन से पहुच सकते हो तो पहुच ही गये होते। पर, आप नही पहुंचे। मै तो कीर्तन का जो मूल है उसकी बात कह रहा हूँ, आपके कीर्तन की बात नही कर रहा हूँ। नाम का जो मूल है, उसकी बात कर रहा हूँ, आपके नाम की बात नही कह रहा हूँ। मूर्ति का जो मूल है उसकी बात कर रहा हू, आपके घरो मे रखी हुई मूर्तियो की चर्चा नही कर रहा हूँ। उनको तो मै निकालूगा और फिंकवा दूगा। उनको तो नही रखा जा सकता है। लेकिन, इसका मतलब यह नही है कि उन सब सूत्रो के पीछे कुछ भी नही था। उन सब सूत्रो के पीछे बहुत कुछ था। सच तो यह है कि हम सिर्फ उसी सूत्र के नाम पर हजारो साल तक गलत सूत्रो को खीच सकते है, जिसमे कुछ रहा हो। नहीं तो खीच भी नही सकते। अगर हम किसी चीज को हजारों साल तक खीचते है बिना कुछ पाये तो उसका मतलब इतना ही है कि मनुष्य की चेतना मे कही वह अनुभव छिपा है कि उसे पाया गया था। नही तो उसे हम खीच नही सकते। कचरे को भी अगर कोई आदमी बहुत दिन तक खीचता है कि उस कचरे मे भी कभी हीरे के दर्शन हुए है किसी अतीत के क्षण मे। नही तो उस कचरे को कोई खीचेगा कैसे? अगर गलत चीजे भी चलती है तो इसीलिए चल पाती है कि उन गलत के पीछे कभी कोई सत्य था जो खो गया है। अन्यथा गलत को खीचा नही जा सकता।

प्रश्न आचार्यजी, चैतन्य महाप्रभु का जीव-जगत, जो जगदीश से भिन्न भी है और अभिन्न भी है, वह अचिन्त्य भेदाभेद है, वह आपके कील और पहिये के नजदीक आता है ?

उत्तर बिल्कुल आ जायेगा। चैतन्य, कृष्ण को प्रेम करने वाले यात्रियो मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अचिन्त्य भेदाभेद--इसमे कीमती शब्द अचिन्त्य है। जो सोचते है वे या तो कहेंगे कि जगत मे जीव और जगत का भेद है तो भेदवाद होगा। या वे कहेगे कि जीव और जगत एक है, तो अभेदवाद होगा। चैतन्य कहते है दोनो है। भेद-अभेद दोनो है। एक भी है, भिन्न भी है। जैसे लहर भिन्न भी है सागर से और एक भी है। निश्चित ही, लहर भिन्न है तब तो हमने उसे नाम दिया है लहर और एक तो है ही। अगर सागर से एक न हो तो होगी कहा? लहर एक भी है और भिन्न भी है। भेद भी है और अभेद भी है। लेकिन, इतना भी चिन्तन मे आ आता है। यह भी चिन्तन की ही बात हुई कि एक भी हो सकती है, भिन्न भी हो सकती है। उस पर एक शब्द और जड देते है। वह कहते है, अचिन्त्य है, वही शब्द बडा अद्भुत है। वह यह कहते है कि अगर यह भी तुमने चिन्तन से पाया तो तुमने कुछ पाया नहीं। अगर यह भी तुमने सोच-सोच कर पाया है तो वह सिर्फ

सिद्धांत है, कुछ पाया नही । अगर सोचने के बाहर पाया है तो फिर अनुभव मे पाया है । इसे समझना अच्छा होगा ।

जब तक हम सोचकर पाते है तब तक हम शब्दो मे ही पाते है । और, जब हम जीकर पाते है तब हम शब्दो के बाहर पाते है । वह अचिन्त्य हो जाता है । जीवन पूरा ही अचिंत्य है। उसका कोई चिन्तन नही होता । एक आदमी प्रेम को समझे, तो शास्त्रो से समझ ले, बहुत लिखा है शास्त्रो मे । शायद प्रेम के सम्बन्ध मे जितना लिखा है किसी और चीज के सम्बन्ध मे नही लिखा । विराट साहित्य है प्रेम का । काव्य है, महाकाव्य है, व्याख्याए है, चर्चाए है । कोई आदमी प्रेम को समझ ले तो समझ लेगा, प्रेम की व्याख्या कर देगा । लेकिन, फिर भी प्रेम को उसने जाना नही । और एक आदमी है, जिसने प्रेम के सम्बन्ध मे कुछ भी नही सुना, कुछ भी नही समझा, कुछ भी नही जाना । लेकिन, प्रेम को जिया है । इन दोनो मे क्या फर्क होगा ? इतनी जानकारी का क्या भेद होगा ? एक की जानकारी चिन्त्य है, चिन्तन से उपलब्ध हुई है । एक की जानकारी चिन्त्य नही है, अनुभव है । अनुभव सदा अचिन्त्य है । वह चिन्तन से नही आता, चिन्तन के पहले आ जाता है । और, अनुभव के पीछे चिन्तन चलता है । अनुभव पहले आ जाता है, चिन्तन सिर्फ अभिव्यक्त करता है । इसलिए, चैतन्य कहते है,—अचिन्त्य !

चैतन्य के कहने का अर्थ भी जरा ज्यादा है । ऐसे तो मीरा भी कहेगी कि सोच समझ के परे है, लेकिन मीरा कभी बहुत सोच समझ की स्त्री थी ही नही । लेकिन, चैतन्य तो महा तार्किक है । चैतन्य की जो खूबी है, वह यह है कि यह आदमी तो महातार्किक था । इसके तर्क का तो कोई अन्त न था । इसने तो चिन्तन के ऊचे से ऊचे शिखर को छुआ था । इसके साथ विवाद करने की सामर्थ्य न थी किसी की । विवाद मे जहा खडा होता है विजेता ही होता है । जब यह चैतन्य सब विवाद करके, इतना सब पाण्डित्य रखकर, इतना सब तर्क और ऊहापोह करके एक दिन कहने लगे कि अब मै नाचूगा और अचिन्त्य को खोजूगा तब इसका अर्थ और हो जाता है । मीरा तो कभी कोई तार्किक थी नही । प्रेम उसका जीवन था । उसमे प्रेम के फूल लगे तो सहज थे । लेकिन, उल्टे थे चैतन्य ! यह आदमी प्रेम की तरफ आये तो चिन्तन की पराजय से आये, किसी और से पराजित होकर नही । अपने भीतर चिन्तन को पराजित पाकर—कि वह जगह आ गयी जहा चिन्तन हार जाता है और बाहर जीवन शेष रह जाता है ।

इसलिए मैने कहा, कृष्ण के मार्ग पर चले हुए लोगो मे चैतन्य का मुकाबला नही है । ध्यान मे है मेरे कि मीरा भी उस मार्ग पर है; लेकिन चैतन्य से मुकाबला

नही है। क्योकि, चैतन्य जैसा आदमी नाच नहीं सकता। चैतन्य जैसा आदमी मजीरा ठोककर सडको पर भाग नही सकता। और जब चैतन्य जैसा आदमी मजीरा ठोकने लगे और हरे कृष्ण हरे राम कह कर सडको पर नाचने लगे तो सोचने जैसा है! ऐसे कि जैसे बर्ट्रेन्ड रसेल नाचने लगे। वैसा ही आदमी है वह। इसके वक्तव्य का मूल्य बहुत ज्यादा हो जाता है। इसके वक्तव्य का मूल्य ही यही है कि इस आदमी का नृत्य मे उतर जाना, झांझ मजीरा पीटने लगना और यह कह देना, अचिन्त्य है वह, और हम चिन्तन छोडते हैं! अचिन्त्य से उसे पायेंगे—इस बात की खबर देता है कि चिन्तन के पार भी केवल वे ही जा सकते है जो गहन चिन्तन मे उतरते है। जो गहन चिन्तन मे उतरते हैं, वे एक दिन जरूर उस सीमा रेखा पर पहुच जाते है जहा वह 'लिमिट' आ जाती है, सीमात आ जाता है, जहा पत्थर लगा है और लिखा है कि बुद्धि अब यही तक चलती है, आगे नही चलती। जहा बुद्धि का सीमान्त आ जाता है। इसलिए, चैतन्य के वक्तव्य का बडा मूल्य है। वह उस पत्थर के आगे गया मूल्य है। मीरा उस पत्थर तक कभी पहुची नही। उसने उस पत्थर पर कभी कोई यात्रा नही की।

प्रश्न आचार्यजी, अमेरिका, इग्लैड तथा अन्य देशो मे आजकल कृष्ण-चेतना आंदोलन बहुत तेजी से चल रहा है और वे संकीर्तन वगैरह का बहुत उपयोग करते है। इससे ऐसा मालूम होता है कि कोई नया 'वेराइटी आइटम' या कोई मनो-विनोदक चीज है या कोई नया 'फेड' है। क्या आप ऐसा कह सकते है कि वहां कृष्ण जन्म की कोई पूर्व भूमिका बन रही है?

उत्तर बडे गहरे 'इम्प्लीकेशस' है। कृष्ण चेतना का आदोलन, कृष्ण 'कासेसनेस' का आन्दोलन योरोप-अमरीका मे रोज जोर पकडता जाता है। जैसे, किसी दिन चैतन्य बगाल के गावो मे नाचते हुए कुछ जगह निकले थे वैसा आज न्यूयार्क और लदन की सडको पर भी हरिकीर्तन सुनायी पडता है। यह आकस्मिक नही है। असल मे जहा चैतन्य व्यक्तिगत रूप से थक गये थे वहा पश्चिम सामूहिक रूप से थक रहा है। चैतन्य सोच-सोचकर व्यक्तिगत रूप से थक गये थे और पाया था कि सोचने से पार नही, और पश्चिम सामूहिक रूप से सोचने से थक गया है। सुकरात से लेकर बर्टेन्ड रसेल तक, पश्चिम ने सिर्फ सोचा ही और सोच-सोच कर ही खोजने की कोशिश की है सत्य को। बडी विराट साधना थी यह भी। बडा अनूठा प्रयोग था यह भी कि पश्चिम ने अपने पूरे प्राण इस बात पर लगा दिये हैं, सुकरात से लेकर रसेल तक कि हम सोचकर ही सत्य को पा लेगे। सत्य को

किसी-न-किसी तरह 'लाजिक' और तर्क की सीमा मे उपलब्ध करना है। उस सत्य को पश्चिम निरन्तर इन्कार करता रहा है जो तर्क की सीमा मे नही आता, जो अतर्क्य है। उसने कहा, नही हम नही मानेगे जब तक हमारी बुद्धि और मस्तिष्क स्वीकार नही कर लेता। २५०० साल की यात्रा मे पश्चिम ने गहन तर्क किया है। पश्चिम सामूहिक रूप से थक गया है और सत्य की कोई झलक नही मिली। बार-बार लगा कि यह रहा, यह रहा, पास है, पास है। और, पास पहुचकर पाया नही। फिर 'कसेप्ट' ही हाथ मे रह गये, सिद्धान्त ही हाथ मे रह गये, सत्य नही। पश्चिम की सामूहिक चेतना 'कलेक्टिव कासेसनेस' उस जगह आ गयी जहा चैतन्य व्यक्तिगत रूप से आ गये है। इसलिए, पश्चिम मे एक 'एक्सप्लोजन' संभावी है, जो हो रहा है। वसन्त के पहले फूल आने शुरू हो गये है। जगह-जगह विस्फोट हो रहा है। पश्चिम की युवा पीढी जगह-जगह टूट रही है। और, जगह-जगह उसने अचित्य की दिशा मे कदम उठाने शुरू कर दिये है। और, अगर अचित्य की दिशा मे कदम रखने है तो कृष्ण से ज्यादा ठीक प्रतीक दूसरा नही है।

महावीर के वक्तव्य बहुत तक युक्त है। अगर महावीर रहस्य की बात भी करते है तो भाषा सदा तर्क की है। अगर महावीर कभी भी कोई बात करते है तो विचार की सगति कभी भी टूटती नही। बुद्ध अगर पाते है कि कोई बात रहस्य की है तो चर्चा करने से इन्कार कर देते है। उसकी चर्चा ही नही करते। वह कह देते है, अव्याख्य, इसकी बात नही होगी। बात वही तक करेगे जहा तक तर्क है।

पश्चिम के चित्त म आज जो तनाव है, वह चिन्तन से पैदा हुआ तनाव है। जो 'एग्जाइटी' है, जो 'मैंटल एग्विश' जो सताप है वह चिन्तन को परम तक खीचने का परिणाम है। वहा नयी पीढियाँ बगावत करेगी। यह बगावत बहुत रूपो मे प्रकट होगी। क्योकि, चैतन्य एक आदमी थे, एक रूप मे हो गयी। पीढी जब बगावत करती है तो बहुत रूपो मे प्रकट होगी। उस अचिन्त्य मे यात्रा करने के लिए कोई भजन कीर्तन कहकर कृष्ण नाम जपने लगेगा। कोई उस अचिन्त्य मे प्रवेश करने के लिए 'एल एस डी' और 'मैस्कलीन' का प्रयोग करने लगेगा। कोई उस अचित्य मे प्रवेश करने के लिए भारत चला आयेगा और हिमालय की यात्रा करने लगेगा। कोई उस अचिन्त्य की खोज मे जेन फकीरो के पास जापान चला जायेगा। सब अचिन्त्य की खोज चल रही है। लेकिन, मुझे लगता है कि कृष्ण इस अचिन्त्य की खोज मे धीरे-धीरे पश्चिम के रोज निकट आते चले जायेंगे। 'एल एस डी' दूरगामी साथी नही हो सकता। और, कब तक लोग भारत की यात्रा करते रहेगे और कितने लोग यात्रा करते रहेंगे ? कब तक लोग

जापान मे जाकर झेन फकीरो के चरणो मे बैठते रहेगे ? पश्चिम को अपनी ही चेतना खोजनी पड़ेगी। ये उधार बातें ज्यादा देर नही चल सकती। तो पश्चिम के चित मे वह घटना टूट रही है। और, बड़े मजे की बात है कि अगर हिंदुस्तान मे आप किसी व्यक्ति को भजन कीर्तन करते देखे तो उसके चेहरे पर वह आनद का भाव नही होता जो लदन के लडके और लडकिया जब भजन कीर्तन करते है, उनके चेहरे पर होता है। हमारे लिए वही पिटा-पिटाया क्रम है, घिसा हुआ सिक्का है। हम सब भली भाति जानते है कि क्या कर रहे है ? उनके लिए बडा नया सिक्का है। उनके लिए छलाग है। हमारे लिए परम्परा है। हमारे लिए 'ट्रेडीशन' है, उनके लिए बिल्कुल 'एण्टीट्रेडीशनल' है। जब लदन की सडक से कोई गुजरता है मजीरे बजाते हुए और नाचते हुए तो ट्रैफिक का पुलिस वाला भी खड़ा होकर सोचता है कि इनका दिमाग खराब हो गया ? हमारे मुल्क मे कोई नही सोचेगा। लेकिन, दुनिया के धर्म पागलो से चलते है बुद्धिमानो से नही। दुनिया मे सारे-के-सारे, जिनको 'ब्रेक थ्रो' कहे हम, जहा चीजे टूटती है और बदलती है, पागलो से होती है, दीवानो से होती है। हमारे मुल्क मे भजन कीर्तन करना दीवानापन नही है। कभी रहा होगा, चैतन्य जब बगाल मे नाचा तब दीवाना था। लोगो ने समझा कि पागल हो गया। अब नही है वह बात। 'ट्रेडिशन' सबको पचा जाती है, बडे-से-बडे पागलो को पचा जाती है। उनके लिए भी जगह बना देती है कि यह रहा तुम्हारा घर, तुम भी विश्राम करो। पश्चिम मे एक विस्फोट की हालत है। इसलिए, पश्चिम का युवा चित्त जब नाचता है तो उस नाच मे एक बडी मोहकता होती है, बडी सरलता होती है।

कृष्ण-जन्म की कोई तैयारी नही हो रही, लेकिन कृष्ण-चेतना के जन्म की तैयारी जरूर हो रही है। कृष्ण-चेतना का कोई सम्बन्ध कृष्ण से नही है। कृष्ण-चेतना प्रतीक शब्द है, जिसका मतलब है ऐसी चेतना की सम्भावना पश्चिम मे हो रही है कि लोग काम को छोडेंगे और उत्सव को पकडेंगे। हा, 'सिम्बोलिक', प्रतीकात्मक रूप से काम बेमानी हो गया, पश्चिम बहुत काम कर चुका। पश्चिम बहुत चिन्तन कर चुका। पश्चिम का मनुष्य जो भी कर सकता था मनुष्य की सीमाओ मे, वह सब कर चुका और थक गया, बुरी तरह थक गया। या तो पश्चिम मरेगा या कृष्ण-चेतना मे प्रवेश करेगा। मरता तो कुछ है नही इसलिए चेतना मे प्रवेश करना होगा। क्राइस्ट उतने प्रतीकात्मक आज पश्चिम को नही मालूम होते। उसका भी वही कारण है 'ट्रेडिशन'। 'क्राइस्ट ट्रेडिशन' और कृष्ण अब 'एण्टीट्रेडीशन' है। कृष्ण चुनाव है और क्राइस्ट कोई चुनाव नही है, आरोपण

हैं। फिर, क्राइस्ट गंभीर हैं और पश्चिम गम्भीरता से ऊब गया –'टू मच सीरिएसनेस', अन्तत' 'डिसीज्ड' हो जाती है। बहुत ज्यादा गम्भीरता गहरे मे रुग्णता बन जाती है। पश्चिम गम्भीरता से उठना चाहता है। क्रास बडा गम्भीर प्रतीक है। क्रास पर लटका हुआ जीसस बडा गम्भीर व्यक्तित्व है। पश्चिम घबडा गया है, हटाओ क्रास को लाओ बासुरी को। क्रास के खिलाफ अगर कोई भी प्रतीक दुनिया मे खोजने जायेंगे तो बासुरी के सिवाय मिलेगा भी क्या? इसलिए, कृष्ण की अपील और कृष्ण के निकट आने की सम्भावना पश्चिम के चित की रोज बढती चली जायेगी। और भी कारण है।

कृष्ण के करीब सिर्फ 'एफुलिएट' सोसाइटी हो सकती है। कृष्ण के करीब सिर्फ वैभव सम्पन्न समाज हो सकता है। क्योंकि, बासुरी बजाने का चैन गरीब दीन दरिद्र समाज मे नही हो सकता। कृष्ण जिस दिन पैदा हुए उन दिनो के माप दण्ड से कृष्ण का समाज काफी सपन्न समाज था। खाने पीने को बहुत था। दूध और दही तोडा फोडा जा सकता था। दूध और दही की मटकिया सडको पर गिरायी जा सकती थी। उन दिनो के हिसाब से, उन दिनो के 'स्टैंडर्ड ऑफ लिविंग' से सपन्न समाज था। सुखी थे लोग, खाने पीने को बहुत था। एक आदमी काम कर लेता और पूरा परिवार बासुरी बजा सकता था। उस सपन्न क्षण मे कृष्ण की अपील पैदा हुई थी। पश्चिम अब फिर, आज के मापदण्डो के हिसाब से सपन्न हो रहा है। शायद भारत मे कृष्ण के लिए अभी बहुत दिन तक प्रतीक्षा करनी पडेगी। अभी भारत के मन मे कृष्ण बहुत ज्यादा गहरे नही उतर सकते। क्योंकि, दीन दरिद्र समाज बासुरी बजाने की बात नही सोच सकता। उसको क्राइस्ट ही ठीक हैं, क्योंकि जो खुद ही शूली पर लटका है रोज, उसके लिए क्राइस्ट ही ठीक मालूम पड सकते है। इसलिए, यह बडी अनहोनी घटना घट रही है कि हिन्दुस्तान मे रोज क्राइस्ट का प्रभाव बढ रहा है और पश्चिम मे रोज क्राइस्ट का प्रभाव कम हो रहा है। कोई यह सोचता हो कि यह मिशनरी लोगो को बरगला कर ईसाई बना रहे है, इतना ही काफी नही है। ईसा का प्रतीक हिन्दुस्तान के दीन दुखी मन के बहुत करीब पड रहा है। सिर्फ मिशनरी बरगला नही सकता। अगर वह बरगला भी सकता है तो सिर्फ इसीलिए कि वह प्रतीक निकट आ रहा है। कृष्ण की स्वर्ण-मूर्ति और राम की वैभव मे खडी हुई मूर्तियाँ हिंदुस्तान के गरीब मन के बहुत विपरीत पडती है। बहुत दूर न होगा वह दिन जिस दिन हिन्दुस्तान का गरीब, अमीर पर ही न टूटे, कृष्ण और राम पर भी टूट पडे! इसमे बहुत कठिनाई नही होगी। क्योंकि, यह स्वर्ण मूर्तिया नही चल सकती। लेकिन, क्राइस्ट का शूली पर लटका

हुआ व्यक्तित्व गरीब के मन के बहुत करीब आ जाता है। हिन्दुस्तान के ईसाई होने की बहुत संभावनाए है उसी तरह, जैसे पश्चिम के कृष्ण के निकट आने की सभावनाए हैं। पश्चिम के मन मे क्रास का कोई अर्थ नही रहा। न पीडा है, न दुख है। वे दुख और पीडा के दिन गये। सचाई यह है कि अब एक ही दुख है कि सम्पन्नता बहुत है, इस सम्पन्नता के साथ क्या करे ? सब कुछ है, अब इसके साथ क्या करें ? निश्चित ही कोई नाचता हुआ प्रतीक, कोई गीत गाता प्रतीक, कोई नृत्य करता प्रतीक पश्चिम के करीब पड जायेगा और इसलिए पश्चिम का मन अगर कृष्ण की धुन से भर जाय तो आश्चर्य नही।

प्रश्न आचार्यश्री, कृष्ण कांसेसनेस के आंदोलन का नेतृत्व कवि एलन गिन्सबर्ग ने किया है। जिसक अर्थ पर अभी तक कोई प्रभाव पड़ा नहीं। दूसरा आप एफ्लुएट सोसाइटी के लिए अभी कल ही बात करते थे। वे चतुर्वर्ण थे। गीता मे भी, भागवत मे भी सुदामा का जो वर्णन आता है उसमे वह दारिद्रय का प्रतीक है। कृष्ण के जमाने मे भी सुदामा 'पुवरटी' का प्रतीक था ? गीता में "कलौ केशव कीर्तनात और यज्ञानाम यज्ञोपि" का क्या अर्थ है ?

उत्तर नही, मै यह नही कह रहा हूँ कि उस दिन कोई गरीब न था और न मै यह कह रहा हूँ कि आज पश्चिम मे कोई गरीब नही है। खोजने से पश्चिम मे गरीब मिलेगे ही। गरीब तो हैं। समाज गरीब नही है। गरीब उस दिन भी थे, सुदामा उस दिन भी था। लेकिन, समाज गरीब नही था। समाज की गरीबी और बात है, गरीब व्यक्ति खोज लेना और बात है। आज हम भारत के समाज को गरीब कह सकते है, हालाकि बिडला भी मिलेगे। लेकिन, बिडला के कारण भारत का समाज अमीर नहीं हो सकता। सुदामा के कारण उस दिन का समाज गरीब नही हो सकता। हिन्दुस्तान के इतने गरीब समाज मे अमीर तो मिलेगा ही। पश्चिम के, अमरीका के सम्पन्न समाज मे भी गरीब तो मिलेगा ही। यह सवाल नही है। सवाल यह है कि बहुजन, समाज का पूरा-का-पूरा ढाचा सम्पन्न था। जो उस दिन जीवन की सुविधा थी वह अधिकतम लोगो को उपलब्ध थी। आज अमरीका मे जो जीवन की सुविधा है वह अधिकतम लोगो को उपलब्ध है। सम्पन्न समाज मे उत्सव प्रवेश कर सकता है। गरीब समाज में उत्सव प्रवेश नही कर सकता। गरीब समाज मे उत्सव धीरे-धीरे विदा होता जाता है। या उत्सव भी फिर एक काम बन जाता है। गरीब समाज उत्सव भी मनाता है, दिवाली भी मनाता है तो कर्ज लेकर मनाता है। होली भी खेलता है तो पिछले वर्ष के पुराने कपडे बचाकर

रखता है। होली के दिन फटे पुराने कपडो को सिलाकर निकल आता है। जब होली हो खेलनी है तो फटे पुराने कपडो से खेली जा सकती है ! तो मत खेलो। होली का मतलब ही यह है कि कपडे इतने ज्यादा है कि रग मे भिगाये जा सकते है। गरीब आदमी भी होली तो खेलेगा, लेकिन वह पुराने ढाचे को ढो रहा है सिर्फ। वर्ना होली के दिन तो जो सबसे अच्छे कपडे थे वही पहनकर निकलते थे लोग। उसका मतलब ही यह था कि इतने अच्छे कपडे है, तुम रग डालो। लेकिन, हम कपडा पुराना सी कर आ गये है और रग डालने वाले को भी धोखा दे रहे है। हमारा होली खेलना सिर्फ ढोना है एक रुढि को। इसलिए, होली के दिन कोई कपडे पर रग डाल जाता है तो दिल दुखता है। दिल खुश होना चाहिए कि किसी ने रग डालने योग्य माना। लेकिन, दिल दुखता है। क्योकि, कपडे भारी महगे पड गये है। हा, पश्चिम मे होली खेली जा सकती है। अभी कृष्ण का नृत्य चल रहा है, आज नही कल होली पश्चिम मे प्रवेश करेगी, इसकी घोषणा की जा सकती है। पश्चिम होली खेलेगा। उनके पास कपडे है, रग भी है, समय भी है, फुर्सत भी है, अब वे खेल सकेगे और उनकी होली मे एक आनन्द होगा, उत्सव होगा जो हमारी होली मे नही हो सकता है। सपन्नता मे मेरा मतलब है, 'आन द होल'। पश्चिम का समाज सम्पन्न हुआ है। और, जब समाज पूरा सपन्न होता है तो उस समाज का दरिद्र भी उस समाज के सपन्न से बेहतर होता है, जो समाज दरिद्र होता है। यानी आज अमरीका का दरिद्रतम आदमी पैसे पर उतनी पकड वाला नही है जितना हिन्दुस्तान का सम्पन्नतम आदमी। हिन्दुस्तान के अमीर-से-अमीर आदमी की पैसे पर पकड इतनी ज्यादा होगी, क्योकि चारो तरफ दीन दरिद्र समाज है। अगर वह जोर से न पकडे तो कल वह भी दीन दरिद्र हो जायेगा।

मैने सुनी है एक घटना कि एक बहुत मस्त, स्वस्थ, तगडा भिखारी एक घर के सामने भीख माग रहा है। गृहिणी ने उसे दिया है, दिल खोलकर दिया है। फिर, उसकी तरफ गौर से देखा कि वह स्वस्थ है, सुन्दर है। उसने उससे पूछा कि तुम्हे देखकर तो ऐसा नही लगता कि गरीब घर मे पैदा हुए हो। लेकिन, गरीब कैसे हो गये ? उसने कहा, इसी भाति, जिस भाति एक दिन तुम हो जाओगी। जितने मजे से तुमने दिया है इतने मजे से मै भी देता रहा था। ज्यादा देर न लगेगी कि तुम सडक पर आ जाओगी।

जब चारो तरफ गरीब समाज हो तो धन की पकड पैदा होती है। अमीर से अमीर आदमी धन को पकड लेता है। जब समाज सम्पन्न हो तो गरीब आदमी धन को छोड पाता है, क्योकि कल फिर मिल सकता है। कोई असुरक्षा नही है, कोई भय नही है। इस अर्थ मे मैने कहा।

दूसरी बात जो पूछी है वह भी सोच लेनी चाहिए -- वह यह पूछी है कि पश्चिम मे एलेन गिन्सबर्ग और इस तरह के लोगो से वह जो "बैकथ्रो" है, वह जो छलाग है, आ रही है। ये सारे के सारे लोग -- चाहे 'एक्जिस्टेंशियलिस्ट' हो, चाहे बीटल हो, चाहे बीटनिक हो और चाहे हिप्पी हो चाहे किसी भी तरह के लोग हो, ये सारे के सारे लोग 'इर्रेशनलिस्ट' है। ये सारे के सारे लोग अबुद्धिवादी है। पश्चिम का कोई बुद्धिवादी अभी इन बातो से प्रभावित नही है। इसके कारण है

यह जो अबुद्धिवादी पीढी पश्चिम मे पैदा हुई है 'इर्रेशनिलिस्ट जेनरेशन' यह पिछली पीढी के अति बुद्धिवाद से पैदा हुई है। यह उसकी प्रतिक्रिया है। असल मे किसी समाज मे अबुद्धिवादी तभी पैदा होते है जब बुद्धिवाद चरम पर पहुच जाता है। रहस्य की बात तभी शुरू होती है जब तर्क बिल्कुल प्राण लेने लगता है। परमात्मा की बात तभी शुरू होती है जब पदार्थ छाती पर पत्थर होकर बैठ जाता है। और ध्यान रहे, गिन्सबर्ग, सार्त्र या कामू या कोई और ये सारे लोग जहा घूम फिरकर एब्सर्ड मे खो जाते है, अतर्क मे खो जाते है उनसे आप यह मत समझ लेना कि ये हमारे ग्रामीण अबुद्धिवादी जैसे लोग है। ये अपने अबुद्धिवादी मे बडे बुद्धिवादी है। इनका अतर्क्य होना, अचिन्त्य होना ऐसा नही है जो किसी श्रद्धालु का है। वह चैतन्य जैसा ही है। वह उसका ही अचिन्त्य होना है जिसने चिन्तन कर करके, थक थक करके पाया है कि सब बेकार है। तो गिन्सबर्ग के वक्तव्य या उसकी कविता अगर एब्सर्ड है, अगर अतर्क्य है या बुद्धि के परे है या अबुद्धिवादी है या बुद्धिविरोधी है तो ध्यान रखना, उसके इस अबुद्धिवादी होने मे एक सिस्टम है, एक व्यवस्था है। नीत्से ने कहा है-- कि मै पागल हूँ, बट माई मैडनेस हैज इट्स ओन लाजिक', लेकिन मेरे पागल होने का अपना तर्क है। मै कोई ऐसा पागल नही हूँ जैसा पागल होते है। मेरे पागल होने का भी कारण है। मेरे पागल होने की भी सिस्टम है। यह अबुद्धिवाद जो है, जानकर है, होशपूर्वक है, चेष्टापूर्वक है। इस अबुद्धिवाद का अपना आग्रह है। इस अबुद्धिवाद में बुद्धिवाद का स्पष्ट विरोध है। खण्डन है। निश्चित ही जब अबुद्धिवाद खण्डन करता है, तो तर्कों से नही करता। क्योकि अगर वह तर्कों से करे तो वह खुद ही बुद्धिवादी हो जाता है। नही, वह अतर्क जीवन व्यवस्था से करता है।

गिन्सबर्ग एक छोटी-सी 'पोएट्स गैदरिंग' मे कविता पढ रहा था। कविता उसकी बेमानी है, मीनिंगलेस है। एक कडी की दूसरी कडी से कोई संगति नहीं है। अगर है भी तो इतनी ही संगति है कि एक ही आदमी से निकलती है। बाकी पहली कडी और दूसरी कड़ी मे कोई ताल मेल नही है। प्रतीक शब्द बेहूदे है।

प्रतीको का परम्परा से कोई सम्बन्ध नही है। बडा दुस्साहस है। असगत दीखने से बडा दुस्साहस जगत मे दूसरा नही है। इसलिए, असगत होने का दुस्साहस केवल वही कर सकता है जिसे प्राणो के बहुत गहरे मे सगति का भाव हो। जो जानता है कि मै सगत हूँ ही, कितना ही असगत वक्तव्य दू इससे कोई बहुत फर्क नही पडता है। मेरी सगति सुरक्षित है। जिनकी सगति बहुत आत्मिक नहीं है, वह एक-एक वक्तव्य को तौलकर चलेगे, क्योकि डर है कि अगर दो वक्तव्य असगत हो गये तो भीतर की असगति प्रकट न हो जाय। जो भीतर बिल्कुल ही कसिस्टेंट है, 'ही कैन एफोर्ड टु बी अनकसिस्टेंट'। तो गिन्सबर्ग बडी असगत कविता कर रहा है। एक आदमी खडे होकर कहता है कि बडे दुस्साहसी आदमी मालूम पडते हो, लेकिन कविता करने से क्या होगा? कोई 'एक्ट', कोई 'डीड', कोई कृत्य करके दिखाओ साहस का? तो गिन्सबर्ग सारे कपडे छोड कर नगा खडा हो जाता है। वह कहता है, यह मेरी कविता की आखिरी कडी है। और, उस आदमी से कहता है, कृपा करो और तुम भी नगे खडे हो जाओ। वह आदमी कहता है यह मैं कैसे हो सकता हूँ? और वह सकते मे आ जाता है, क्योकि किसी को ख्याल न था कि कविता का अत ऐसा हो सकता है। उससे लोग पूछते है, गिन्सबर्ग तुमने ऐसा क्यो किया? गिन्सबर्ग कहता है, हम सोचकर नही करते है, ऐसा हो गया। मुझे ऐसा लगा कि अब क्या करू? यह आदमी पूछता है कि कुछ करके दिखाओ? यह 'स्पोटेनियस' है, यह कोई सोचा विचारा नही है, लेकिन अतर्क्य है। कविता से इसका कोई सम्बन्ध नही है। कोई कालिदास, कोई भवभूति, कोई रवीन्द्रनाथ यह नही कर सकते। वे कवि है, परम्परा से बधे हुए कवि है। यह आदमी कर पा रहा है, क्यो? यह यही कह रहा है कि तर्क से सोच सोचकर कब तक जियोगे? कब तक तुम दो और दो जोडकर जिन्दा रहोगे? छोडो खाते-बही छोडो हिसाब और जिन्दा रहो। अब यह जिन्दा रहना कैसा होगा? इसलिए गिन्सबर्ग जैसे व्यक्ति मेरे लिए गाव के गवार, ग्रामीण, श्रद्धालु नही है। एक बहुत पक्के और गहरी बुद्धिवादी परम्परा की आखिरी कडी है। और, जब बुद्धिवादी परम्परा मरती है, जब वह सीमा पर पहुच जाती है, तब उसे इन्कार करने वाले लोग पैदा होते है।

मै मानता हूँ कृष्ण भी एक बहुत बडी बुद्धिवादी परम्परा की आखिरी कडी है। हिन्दुस्तान ने बुद्धि के चरम शिखर छुए है। हमने शब्दो की खाल उधेड डाली है। हमारे पास बहुत ऐसा साहित्य है जो दुनिया की किसी भाषा मे अनुवादित नही हो सकता, क्योकि इतने बारीक शब्द दुनिया की किसी भाषा के पास

नही है । हमारे पास ऐसे शब्द हैं जो पूरे पृष्ठ पर एक ही शब्द होता है । क्योंकि, हम इतने विशेषण लगाते हैं उसमे, इतनी शर्तें लगाते हैं, इतनी बारीकिया करते हैं कि पूरे पृष्ठ पर एक ही शब्द फैल जाता है । कृष्ण भी एक अत्यत बुद्धिवादी परम्परा के आखिरी छोर है । जहा हम सब सोच चुके । जहा हम वेद-उपनिषद् सोच चुके । जहा हम पतजलि सोच चुके और जहा हम कपिल और कणाद सोच चुके । जहा हमने बृहस्पति से लेकर सब सोच डाला है और सोच सोच कर हम बुरी तरह थक गये हैं । उसकी आखिरी कडी मे यह आदमी कृष्ण आता है । यह कहता है अब बहुत सोचना हो गया, अब हम जीना शुरू करे । 'लेट अस नाऊ लिव' बहुत हो चुका सोचना । अब जियेंगे कब ?

दूसरी बात भी इस सन्दर्भ मे आपसे कहूँ कि चैतन्य भी बगाल मे ऐसे ही समय मे आते हैं । जिस गाव मे चैतन्य पैदा हुए वह हिन्दुस्तान के तार्किको का अन्यतम गाव है । नवद्वीप, जहा वे जन्मे, हिन्दुस्तान के श्रेष्ठतम तार्किक वहा इकट्ठे थे । वह काशी थी तार्किको की । हिन्दुस्तान भर का तर्क नवद्वीप मे जन्मा और श्रेष्ठ तार्किक नव्य न्याय वहा पैदा हुआ । वहा हमने तर्क की ऐसी ऊचाइया छुई जो अभी पश्चिम छूने को है । पश्चिम के पास जो भी तर्क है सब 'ओल्ड' है, नव्य नही है । अभी अरस्तू पश्चिम के लिए तर्कशास्त्री है । नवदीप मे हमने अरस्तू के आगे कदम बढाये । इतना ही कह देना काफी था कि कोई पण्डित नवद्वीप से आता है, फिर उससे कोई विवाद नही करता था । उससे विवाद करना बेकार था । वह नवद्वीप से आता है, इतनी गवाही काफी थी । वह जीत का सर्टिफिकेट लेकर आता है । उस नद्वीवप मे चैतन्य पैदा हुए । चैतन्य खुद भी वैसे ही तार्किक हैं । उन्होने बडे तार्किको को उस नवद्वीप मे हराया । वहा कोई एकाध तार्किक न था, वहा घर के घर तार्किक थे । वह पूरा गाव तार्किको का था । पूरे नवद्वीप को जीतकर लौटना असम्भव था । उस नवद्वीप मे चैतन्य सबसे जीत गये । और एक दिन यही चैतन्य झाझ मजीरा लेकर सडक पर नाचने लगे और कहा अचिन्त्य है सत्र ! इस बात का तो बडा अर्थ है । यह उसी तर्क की आखिरी परम्परा का हिस्सा है । यह चैतन्य उस तर्क की गहनतम चिन्तना, खोज, अन्वेषण, बारीक से बारीक समझ के बाद यह कहता है कि हम नासमझ होने को राजी है । अब हम समझदार नही होना चाहते । अब समझदारी हम छोडते हैं । अब हम नाचेगे नासमझी से । अब हम तर्क से सत्य को न खोजेंगे, अब हम जियेंगे । तर्क की आखिरी कडी पर जीना शुरू होता है ।

प्रश्न : अभी चैतन्य महाप्रभु और उनके अचिन्त्य भेदाभेद की बात हुई, गिन्सबर्ग की भी बात हुई। इसके पहले शब्द के मंत्र बन जाने की विशिष्टता आपने बतायी और यही बात नाम-कीर्तन पर लागू होती है। साथ ही सुबह के प्रवचन मे आपने कहा था कि शब्द का उपयोग किया नहीं कि द्वैत भाव खड़ा हो जाता है। लेकिन, कृष्ण ने बड़े विश्वास के साथ कहा है कि जो पुरुष ओम् अक्षय रूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ उसके अर्थ स्वरूप मेरा चिन्तन करता हुआ शरीर त्याग करता है वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है। आचार्यजी, तब कृष्ण के शब्द ओम् से अद्वैत का बोध कैसे होता है ? ओम् 'रेशनल' है या 'इर्रेशनल' है ?

प्रश्न आपके ध्यान प्रयोग मे ओम् को प्रवेश देने मे क्या क्या बाधाएँ थीं ?

उत्तर समझ मे आ जायेगा, उत्तर से समझ मे आ जायगा। शब्द सत्य नही है। सत्य को प्रकट करना हो तो भी शब्द से किया नही जा सकता है। सत्य तो नि शब्द मे ही अभिव्यक्त होता, मौन मे ही प्रकट होता है। मौन ही सत्य की मुखरता है। मौन ही सत्य के लिए वाणी है। ऐसा मैंने सुबह कहा। पूछा जाता है, अगर ऐसा है तो फिर आप कैसे कहते है कि शब्द बीज बन सकते है और शब्द साधना के लिए आधार बन सकता है ? दोनो मे कोई विरोध नही है। दोनो की बात अलग है।

मैंने कहा सुबह कि शब्द सत्य नही है। लेकिन, जो असत्य मे घिरे है, सत्य तक पहुचने के लिए असत्य के सहारे ही चलते है, या तो वे छलांग लगाये और सीधे शब्द से मौन मे कूद जाय। अगर छलांग लगाने की हिम्मत न हो तो शब्द को धीरे धीरे-छोडते चले। बीज शब्द का मतलब है, सब शब्दो को छोडो एक शब्द को पकडो। हिम्मत नही है सब एक साथ छोडने की तो एक पकडो। फिर अन्तत उस एक को भी छोडना पडता है। वह जो बीज शब्द है वह भी सत्य तक नही ले जाता, सिर्फ मदिर के द्वार तक ले जाता है। जैसे, मदिर के बाहर जूते छोड देने पडते है ऐसे ही उस बीज शब्द को भी बाहर ही छोड देना पडता है। मदिर मे प्रवेश करते वक्त वह साथ नही जाता। उतनी दुविधा भी साथ नही ले जायी जा सकती। उतना शोर गुल भी बाधा है। सब शब्द तो बाधा है, बीज शब्द भी अन्तत बाधा है। जब बीज शब्द भी खो जायेगा, तब तुम समझना कि ठीक हुआ। नाम जपना, लेकिन फिर अजपा नाम पर पहुच जाना। जप से शुरू करना और अजपा पर पहुच जाना, एक घडी आयेगी, जप

छूटे और अजप मे कूद जाना। यह सारा मामला वही है। चाहे पहले छोडो, या आखिर मे छोडो। कही छोड देना पडेगा। जो पहले छोडने की हिम्मत रखते हैं वह पहले छोड दे, जो नही छोडने की हिम्मत रखते है, बाकी शब्द छोडें, एक पकड ले और उसको अन्त मे छोड दे। मैं छलाग का आग्रह करता हूँ। इसलिए साधना मे जहा तक बने बीज शब्द से बचने की बात करता हूँ। उसे पीछे भी छुडवाना पडेगा। रामकृष्ण के साथ ऐसा हुआ, उससे समझ मे आ जायेगा।

रामकृष्ण ने, मा का स्मरण करके ही, परमात्मा को मा स्वरूप मानकर ही साधना की। फिर वे उस जगह पहुँच गये जहा मदिर की आखिरी सीढी आ गयी। मा के साथ पहुच गये। लेकिन, उस सीढी के बाद तो अकेले ही प्रवेश हो सकता है। मा को भी साथ नही लिया जा सकता। वह तो प्रतीक था, वह तो शब्द था। वह तो रूप था, वह तो लहर थी। अब सागर मे प्रवेश करने के पहले उसे छोड देना जरूरी है। रामकृष्ण बडी मुश्किल मे पड गये। रामकृष्ण की जिन्दगी मे सबसे बडी मुश्किल उस दिन आती है जिस दिन मा को छोडने का सवाल उठता है। जिसको इतने प्रेम से सवारा हो, इतने आसुओ से सीचा हो, इतना नाच नाच-कर जिसको रमाया हो, पुकार पुकार कर जिसको बचाया हो, श्वास-श्वास और हृदय की धडकन-धडकन मे जिसको लेकर जिया गया हो, आखिरी क्षण सवाल उठता है कि इसे छोड दू ? तोतापुरी नाम के एक अद्वैतवादी साधक के पास वह सीखने है इसका छोडना। तोतापुरी के लिए प्रतीक का कोई मतलब नहीं है। वह कहता है छोडो इस मा को इससे नही चलेगा, अकेले ही जा सकते हो। रामकृष्ण आख बन्द करते हैं, फिर आख खोल देते है और कहते है नही, यह नही हो सकता। मैं कैसे छोड सकता हूँ ? मैं अपने को छोड सकता हूँ मा को नही छोड सकता। तोतापुरी कहते है, कोशिश करो क्योकि तुम अगर अपने को छोड दोगे तो मदिर के बाहर रह जाओगे, मा मदिर के भीतर चली जायेगी, उससे तुम्हे क्या होगा ? इससे कोई मतलब नही है। तुम्हे ही जाना है सत्य के सागर मे, तो छोडो, यह द्वैत नही चलेगा, ये दो नही चलेगे। यह प्रेम की गली बहुत सकरी है। सत्य की गली बहुत सकरी है। यहा आखिर मे एक ही बच जाता है। रामकृष्ण नही छोड पाते। तीन दिन तक तोतापुरी मेहनत करते है। फिर तोतापुरी कहते है, तो मैं जाऊ ? रामकृष्ण कहते है, एक बार और मेरे साथ मेहनत कर लो। क्योकि, तडपता तो हूँ उसके लिए जो अनजाना रह गया है। लेकिन, प्रतीक, जिन्हें बहुत प्रेम किया' बडे जोर से भीतर बध गये है। तोतापुरी एक काच का टुकडा लेकर आता है। रामकृष्ण आख बन्द करके बैठते है, तोतापुरी कहता है कि मैं तुम्हारे माथे पर

आज्ञाचक्र जहा है वहा काच से काट दूगा तुम्हारी चमडी को। जब खून बहने लगे और कटाई तुम्हे काच की मालूम पडने लगे तब तुम भीतर एक तलवार उठाकर माँ के दो टुकडे कर देना। रामकृष्ण कहते हैं, मा को और दो टुकडे और तलवार से! क्या कहते है आप? और, फिर वहा तलवार लाऊगा कहा से? तोतापुरी कहता है, पागल हो तुम, जो मा नही थी, उसको तुम ले आये तो जो तलवार नही है, उसको भी ले आओ। जब इतना बडा झूठ तुमने सत्य कर लिया जो नही है कही भी, तो एक तलवार और साकार कर लो, इसमे क्या देर लगेगी? तुम कुशल हो, तलवार भी आ जायेगी। झूठी तलवार काम करेगी। रामकृष्ण आख बन्द करके बैठते है। क्योकि, तोतापुरी ने कहा है, आज वह चला जायेगा। वह इस तरह बचकाने खेल मे नही पड सकता। वह पहले ही छलाग लगवा लेने वाले लोगो मे से है। रामकृष्ण आखिरी सीढी पर दिक्कत मे पडे है। वह काच उठाकर रामकृष्ण के माथे को काट देता है। इधर वह माथे को काटता है, उधर रामकृष्ण हिम्मत जुटाकर तलवार से दो टुकडे मा के कर देते हैं। मूर्ति गिर जाती है। रामकृष्ण परम समाधि मे खो जाते है। वापस लौटकर वह कहते है आखिरी बाधा गिर गयी, 'दी लास्ट बैरियर'। जो शब्द है, जो मत्र है, जो बीज है, वह सब के सब 'लास्ट बैरियर' बनेगे। एक दिन तलवार उठाकर उनको तोडना पडेगा, फिर बडा कष्ट पडता है। इसलिए, मैं कोशिश करता हूँ कि उनकी जगह न बने अन्यथा पीछे मुझे और एक झझट करनी होगी।

दूसरा सवाल पूछा है कि कृष्ण कहते है कि ओम् रूप मे मुझे देखकर, जानकर, जी कर, पहचान कर, अत क्षण मे तू मुझको उपलब्ध हो जायेगा। तो यह ओम् शब्द है या नही?

यह ओम् बडा अद्‌भुत शब्द है। यह असाधारण इसलिए कि अर्थहीन शब्द है। सब शब्दो मे अर्थ होते है। इस शब्द मे कोई अर्थ नही है। इसलिए, ओम् का हम दुनिया की किसी भाषा मे अनुवाद नही कर सकते। कोई उपाय नही है। अर्थ हो तो अनुवाद हो सकता है। यह शब्द जिन्होंने बनाया उन्होने शब्द और नि शब्द के बीच मे एक कडी खोजी। शब्द है अर्थपूर्ण, नि शब्द न अर्थ है न अनर्थ है। इन दोनो के बीच मे एक ब्रिज बनाया ओम् का। भाषा की समस्त शब्द ध्वनिया अ ऊ म का विस्तार है, 'ए यू एम' का विस्तार है। उन तीनो को जोडकर इस ओम् को बना लिया। फिर, इस ओम् को शब्द की तरह लिखा भी नही, इसको पिक्टोरियल बना लिया। इसका चित्र बना दिया, जिसमे कि यह ही ख्याल मे न रहे कि यह कोई शब्द है। यह एक चित्र है और वहा खडा है, जहाँ शब्द समाप्त होते है और नि:-

शब्द शुरू होता है । यह सीमांत का पत्थर है । इसलिए, कृष्ण कहते हैं कि अगर तू मुझे (ओम् रूप का मतलब है अर्थहीन, शब्दातीत, भाषाकोश मे नही मिलता है जो, ऐसे शब्द मे) सोच सके अत क्षण मे तो तू मुझे उपलब्ध हो जायेगा । क्योकि, यह सीमात का शब्द है । अन्त समय अगर इस सीमात पर कोई पहुच सके तो छलांग हो जायेगी । इस ओम् शब्द ने भारत के मन मे बहुत कुछ भरा है । बडा विस्तीर्ण अर्थ दिया है । इतना विस्तीर्ण अर्थ दिया है कि अब इसमे कोई अर्थ नही है । इतना फैलाया है कि इसमे कोई सीमा नही रही । लेकिन, ओम् के पाठ का सवाल नही है। ओम् के अनुभव का सवाल है। और, अगर ध्यान मे आप उतरेंगे तो जब सब शब्द खो जायेंगे तब आपके भीतर ओम् की ध्वनि होने लगेगी । यह आपको करनी नही पडेगी । अगर करनी पडी तो धोखा हो सकता है कि वह आप ही कर रहे है । इसलिए भी मैने ध्यान मे ओम् की जगह नही बनायी है । अगर हम अपनी तरफ से ओम् की ध्वनि करे तो हो सकता है, वह शब्द-ध्वनि ही होगी । ओम् की ध्वनि वह है जब हमारे सब शब्द खो जाते है तो शेष रह जाती है । उसको कहना चाहिए वह 'काजमिक साइलेस' की ध्वनि है । जब सब मिट जाता है सब बुद्धि, सब विचार, तब एक ध्वनि का स्पदन रह जाता है जिसकी इस देश मे ओम् की तरह व्याख्या की गयी है । उसकी व्याख्या और भी हो सकती है । वह हमारी व्याख्या है । जैसे, आप रेलगाडी मे बैठकर अगर चाहे तो चक्के की आवाज की बहुत तरह की व्याख्या कर सकते है । चक्का जब आवाज करता है तो वह आपके लिए आवाज नही करता, न आपसे कुछ कहता है, लेकिन आप जो चाहे, आप उसमे खोज सकते है । वह आपकी खोज होगी ।

जब विराट शून्य उत्पन्न होता है तो विराट शून्य की अपनी ध्वनि है अपना सगीत है । उस ध्वनि का नाम अनाहत है । वह किसी कारण से पैदा नही होती । हम ताली बजाते है तो यह आहत नाद है । दो चीजो की टक्कर से पैदा होता है । आहत नाद का अर्थ है दो चीजो की टक्कर से पैदा हो । ढोल पीटते है आहत नाद – बोलते है तो ओठ और जीभ का आहत नाद है । जब सब बन्द हो जाता है जहा दो ही नही रह जाते, एक ही रह जाता है तब अनाहत नाद होता है । बिना किसी चोट के, बिना किसी दो के टकराये ध्वनि होती है । वह जो ध्वनि है अनाहत उसे इस देश के मनीषियो ने ओम् की तरह व्याख्या की है । दूसरे देश के मनीषियो ने भी उसकी व्याख्या की है तो वह भी ओम् के करीब करीब है । जैसे, क्रिश्चियन 'आमीन' कहते है । वह 'आमीन' की व्याख्या है । वह ओम् की व्याख्या है । मुसलमान भी आमीन कहते है । उपनिषद् लिखा जायेगा तो सब लिखने के बाद आखिर मे

ऋषि लिखेगा—ओम् शाति शाति शाति । मुसलमान आयत पढेगा, शास्त्र लिखेगा तो आखिर मे सब लिखने के बाद लिखेगा आमीन, आमीन, आमीन । उससे पूछो, आमीन का अर्थ क्या है ? आमीन अर्थहीन है। वह उसी 'काज्मिक' ध्वनि की व्याख्या है ।

अग्रेजी मे कुछ शब्द है 'ओमनीसिएट', 'ओमनी प्रजेट', 'ओमनी पोटेंट'। ये बडे अजीब शब्द हैं। इनका अग्रेजी भाषा शास्त्र के पास व्युत्पत्ति का सूत्र नही है। ये सब ओम् से बने है। 'ओमनीसिएट' का मतलब है, जिसने ओम् को देखा। यह बहुत मुश्किल मामला है । इसलिए, अग्रेजी भाषा शास्त्री बडी कठिनाई मे पडता है कि इस 'ओमनीसिएट' का मतलब क्या है ? 'वन् हू हैज सीन द ओम्'। 'ओमनी प्रजेट' का क्या मतलब है ? जो ओम् मे उपस्थित हो गया। जो ओम् के साथ एक हो गया। 'ओमनी पोटेंट' का क्या मतलब है ? कि, जिसको उतनी ही ऊर्जा मिल गयी, जितनी ओम् की है । जो उतना ही शक्तिशाली हो गया जितना ओम् है । यह ओम् की व्याख्या बहुत-बहुत रूपो मे पकडी गयी है । बडे मजे की बात है कि जैन हिन्दुओ का कुछ भी स्वीकार न करेंगे। लेकिन ओम् को इन्कार न करेंगे। बौद्ध हिन्दुओ का कुछ भी स्वीकार न करेंगे। लेकिन ओम् को इन्कार न करेंगे । अगर जैन, बौद्ध और हिन्दुओ के बीच कोई एक शब्द है जो समान है तो वह ओम् है । अगर हिन्दू, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान, सबके बीच कोई शब्द एक समान है तो वह ओम् है । हा, उनकी व्याख्या आमीन की है । यह उसे ओम् कहते है । वह हमारा गाडी के चाक मे सुना गया फर्क है । पक्का नही कहा जा सकता कि वह आमीन है या ओम् है । लेकिन, एक बात पक्की है कि आमीन मे भी और ओम् मे भी एक ही ध्वनि की व्याख्या की गयी है। वह ध्वनि अतिम है। जब हम सब शब्दो के पार पहुचते है तो एक ध्वनि शेष रह जाती है जो 'काज्मिक साउण्ड' है ।

जेन फकीर कहते है अपने साधक को कि तुम उस जगह जाओ और ऐसी बात खोजकर ले आओ जहा एक हाथ की ताली बजती है। यह एक हाथ की ताली जेन फकीरो का अपना ढग है अनाहत को कहने का। उन्हे अनाहत का कोई पता नही है। वह कहते है कि जहा एक हाथ की ताली बजेगी वहां ओम् रह जायेगा । जहां तक दो हाथ की ताली बजेगी वहा तक शब्द होगे, ध्वनिया होगी ।

मैंने जानकर ध्यान मे ओम् को बिल्कुल जगह नही दी। क्योकि, अगर आपने उच्चारण किया ओम् का तो आपके द्वारा पैदा की हुई ध्वनि होगी, वह आहत नाद होगा । मै प्रतीक्षा करता हूँ उस ओम् की कि जब आप बिल्कुल खो जायेंगे

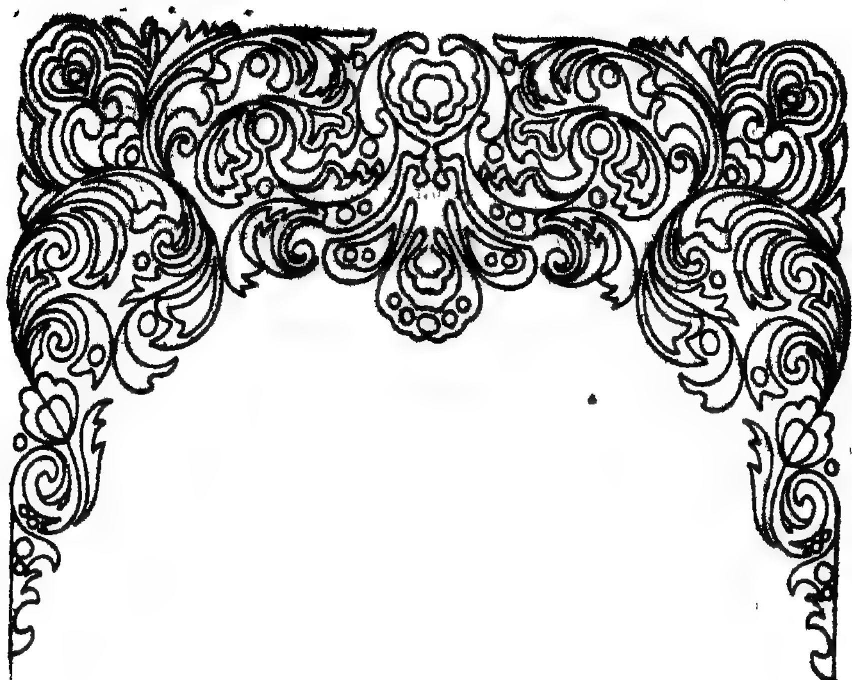
और ओम् प्रगट होगा और आपके भीतर से आयेगा। वह हुंकार होगी, वह अनाहत होगा। वह 'काज्मिक साउण्ड' होगी। उस दिन, जैसा कृष्ण कहते हैं और ठीक कहते हैं कि अगर ओम् को तुमने समझा और जाना और जिया तो आखिरी क्षण में तुम मुझे उपलब्ध हो जाओगे। लेकिन, वह आपके द्वारा कहा गया ओम् नहीं है। मरते वक्त अगर आप अपने ओठ से ओम् ओम् कहते रहें तो बेकार मेहनत करेंगे। शांति से मर सकते थे, और शांति से मरना हो जायेगा। ओम् आना चाहिए, प्रकट होना चाहिए, विस्फोट होना चाहिए।



पर्व : तेरह

आत्म-स्मरण तथा कर्म अकर्म विकर्म
योग और संन्यास
शंकर की परिभाषा
परिवर्तन ही असत्य का पर्याय
शंकर का 'काम्प्रोमाइज'
दुविधा सौभाग्य
गीता पर टीकाएं
शंकर और तिलक का बोध
अरविंद की 'सुप्रामेन्टल' की बात





१३

प्रश्न . आपने कहा है कि श्रीकृष्ण के मार्ग में कोई साधना नहीं है। केवल 'सेल्फ रिमेंबरिंग' पुनर्आत्म-स्मरण है। लेकिन, आप सात शरीरों की साधना की बात करते हैं। सात शरीरों के सबंध में कृष्ण की साधना की रूपरेखा क्या होगी, कृपया इसे स्पष्ट करें।

उत्तर कृष्ण के विचार दर्शन मे साधना की कोई जगह ही नही है। इस-लिए, सात शरीरो का भी कोई उपाय नही है। साधना के मार्ग पर जो मील के पत्थर मिलते है वह उपासना के मार्ग पर नहीं मिलते। साधना मनुष्य को जिस

भांति विभाजित करती है उस तरह उपासना नहीं करती । साधना सीढ़ियाँ बनाती है इसलिए आदमी के व्यक्तित्व को सात हिस्सो मे तोड़ती हैं । फिर, एक-एक सीढी चढ़ने की व्यवस्था करती है । लेकिन, उपासना आदमी के व्यक्तित्व को तोडती नही । कोई खण्ड नही बनाती । मनुष्य का जैसा अखण्ड व्यक्तित्व है उस पूरे को ही उपासना मे लीन कर देती है । इसलिए साधको ने बहुत-सी सीढिया बनायी हैं, बहुत-से मील के पत्थर लगाये हैं, बहुत-बहुत विभाजन किये है । सप्त शरीरो मे विभाजन किया है मनुष्य के व्यक्तित्व का । सात चक्रो मे विभाजन किया है मनुष्य के व्यक्तित्व का । तीन हिस्सो मे विभाजन किया है मनुष्य के व्यक्तित्व का । अलग-अलग साधको ने मनुष्य के व्यक्तित्व को अलग-अलग सीढ़ियों मे बाटकर साधना की है । लेकिन, उपासना के जगत मे मनुष्य जैसा है, उस पूरे मनुष्य को सिर्फ स्मरण करना है । स्मरण खण्ड खण्ड नही होता । साधना खण्ड खण्ड हो सकती है । किसी आदमी को स्मरण ऐसा नही आता कि मैं थोडा परमात्मा हूँ और थोडा नही हूँ । जब आता है तो पूरा आता है, अन्यथा नही आता है ।

स्मरण की प्रक्रिया ही अलग है । स्मरण की प्रक्रिया 'सडन' है । 'ग्रेजुअल' नही है । स्मरण पूरा-का-पूरा एक ही छलाग मे घटित होता है । स्मरण एक विस्फोट है । साधना का एक क्रम है । स्मरण का कोई क्रम नही है । जैसे, उदाहरण के लिए ऐसा समझें— आपको किसी का नाम पक्का मालूम है । वक्त पडा है और याद नही आ रहा है । आप कहते हैं, ओठ पर रखा है और याद नही आ रहा है । असल मे दोनो बाते आपको याद आ रही है कि मुझे याद भी है और याद नही भी आ रहा है । बडी असमजस की स्थिति है । आपको मालूम है कि मालूम है । आपको भली भाति पता है कि पता है । लेकिन याद नही आ रहा है । विस्मरण का मतलब ही यही है कि जो याद है और याद नही आ रहा है । मन के किसी गहरे तल को पता है कि याद है, लेकिन मन के ऊपरी तल तक खबर नही पहुच पाती । बीच मे सेतु नही बन पा रहा । गहरा मन कहता है कि मालूम है, लेकिन उथला मन कहता है कि मुझ तक खबर नही आ रही । इसलिए, हम कहते है कि जीभ पर रखा है, लेकिन याद नही आ रहा है । दोनो बातें एक साथ याद आ रही है । फिर आप क्या करते है ? आप बडी कोशिश करते है, हजार उपाय करते हैं, सिर पर बल देते है, मुट्ठिया कस लेते है । सब तरह से खोजते है, बीनते है और जितना खोजते हैं उतना ही पाते हैं कि याद नही आ रहा है । क्यो ? क्योकि जितना आप खोजते है उतने आप 'टेंस' और तनाव से भर जाते है । और जितने तनाव

से भर जाते हैं उतना ही आपके गहरे मन और आपका संबंध टूट जाता है । तनाव से भरा हुआ मन खण्डित हो जाता है, शान्त मन इकट्ठा हो जाता है । जितनी कोशिश करते हैं कि याद करूं, याद करू, याद करू, उतनी ही आप मुश्किल में पड़ते है । क्योकि, जो आदमी यह कह रहा है कि मैं याद करू, वह साथ यह भी स्मरण रखे हुए है कि मुझे याद नही आ रहा है । ये दोहरे सुझाव उसको एक साथ मिल रहे हैं । और, मन तनता जा रहा है । वह याद नहीं कर पायेगा । फिर वह आदमी कहता है कि नही आता याद, तो जाने दो । वह आदमी बैठकर सिगरेट पीने लगा है या बगिया मे काम करने लगा है । या रेडियो खोलकर सुनने लगा है, या अखबार पढ़ने लगा है और अचानक उसे याद आ गया है । क्यो, इस आकस्मिक अ-तनाव की हालत मे, या 'रिलेक्सेशन' की हालत मे क्यो याद आ गया ? तनाव मिट गया है, आपने याद करने की बात छोड़ दी । दोनो मन जो टूटे थे, याद करने वाला और जिसे याद था वे दोनो लड़ रहे थे । याद करने वाला कहता था, याद आना चाहिए और तनाव हुआ था । वही बाधा थी, वही तनाव था । वह छूट गया । आप बगिया मैं काम कर रहे है और अचानक याद आ गया है । जो कोशिश से याद नही आया था, वह अचानक याद आ गया । जो प्रयास से नही खोजा जा सका था वह अप्रयास मे उपलब्ध हो गया है । लेकिन, जब यह याद आती है तो अधूरी नहीं आती है । वह पूरा ही याद आ जाता है । क्योकि, पूरा ही आपको मालूम है ।

यह मैने उदाहरण के लिए कहा । यह हमारी सामान्य स्मृति की बात है । इस स्मृति मे मन के दो हिस्से काम करते हैं, जिसको हम 'कासेस माइण्ड' कहते हैं, वह—जिसको हम 'अनकासेस माइण्ड' कहते है, वह—हमारा चेतन मन और हमारा अचेतन मन । इसे हम ऐसा समझ ले सकते है कि चेतन मन हमारा वह हिस्सा है मन का, जिससे हम चौबीस घण्टे काम लेते है । अचेतन मन हमारे मन का वह हिस्सा है जिससे हमे कभी-कभी काम लेना पड़ता है । चौबीस घण्टे काम नही लेते । चेतन मन हमारा प्रकाशित मन है, अचेतन मन हमारा अन्धकार मे डूबा मन है । जिस स्मृति का मैंने उदाहरण लिया, वह अचेतन में दबी है और चेतन याद करने की कोशिश कर रहा है । चेतन, अचेतन के खिलाफ लड रहा है । जब तक लडेगा तब तक याद नही आयेगा । जैसे ही लड़ाई छोड़ेगा, दोनो मिल जायेंगे और याद आ जायेगा । जो अचेतन के द्वार पर खड़ा था बिल्कुल चेतन मे प्रवेश करने को, उसी को आप कह रहे थे कि जीभ पर रखा है । परमात्मा की स्मृति, या आत्म स्मृति, या 'सेल्फ रेमेबरिंग' जरा गहरी बात है । वह अचेतन मे नही दबा है । उसके नीचे एक और अचेतन मन है जिसको हम 'कलेक्टिव अन-

कांसेस' कहें—हम सबका सामूहिक अचेतन मन। उसे ऐसा समझें - चेतन मन है हमारा ऊपर का प्रकाशित हिस्सा, उसके नीचे दबा हुआ हमारा अचेतन मन है। हमारा ही व्यक्तित्व अन्धेरे मे दबा है। उसके नीचे हम सबका समूह मन है। वह भी अन्धेरे में दबा है। और, उसके भी नीचे 'काज्मिक अनकांसेस' है जो समस्त जगत, समस्त जीवन, समस्तता का अन्धकार मे दबा हुआ मन है। परमात्मा की स्मृति उस 'काज्मिक अनकासेस' मे, समष्टि अचेतन मे दबी पड़ी है। स्मरण का कुल मतलब इतना ही है कि हम अपने भीतर इतने एक हो जाय कि न केवल अपने अचेतन से जुड़ जाय बल्कि समूह अचेतन से जुड़ जाय, उसके नीचे समष्टि अचेतन से जुड़ जाय। उदाहरण के लिए —

जब आप ध्यान मे बैठते हैं, और जब ध्यान की गहराई आती है तो पहले आप व्यक्ति चेतन मे उतरते हैं। आप रोने लगते हैं, हसने लगते है। कोई नाचता है, कोई डोलता है। यह आपके व्यक्ति अचेतन मे दबी हुई क्रियाएं प्रकट होती है। लेकिन, दस मिनट पूरे होते-होते आप व्यक्ति नही रह जाते, आप एक 'कलेक्टिविटी' हो जाते हैं। आप अलग अलग नही रह जाते। जो गहरे उतर जाते है वे समूह अचेतन मे उतर जाते हैं। फिर, उस क्षण मे उन्हें ऐसा नही लगता कि मै नाच रहा हूँ। उस वक्त ऐसा लगता है कि नाच चल रहा है और मैं एक हिस्सा हो गया हूँ। उस वक्त उन्हें ऐसा नही लगता है कि मैं हस रहा हूँ, ऐसा लगता है कि हसी फूट रही है और मै भी भागीदार हूँ। उस वक्त ऐसा नही लगता है कि मैं हूँ, बल्कि ऐसा लगता है कि सब कुछ नाचता ह, सारा जगत नाच रहा है। चाद-तारे नाच रहे हैं, पौधे-पक्षी नाच रहे है। आस-पास जो भी है, कण-कण वह सभी नाच रहा है—उस नाचने के हम एक हिस्से हो गये हैं। तब आप 'कलेक्टिव अनकासेस' मे उतर गये है। तब आप समूह अचेतन मे उतर गये है। उसके भी नीचे दबा हुआ 'काज्मिक अनकासेस' है। उसमे जिस दिन आप उतर जायेंगे और यह समूह चित्त अब और गहरा होता जायेगा तो आपको यह भी पता नही चलेगा कि सब नाच रहे हैं और मै एक हिस्सा हूँ। आपको यह भी पता नही चलेगा कि मैं हिस्सा हूँ। आपको यही पता चलेगा कि सब और मैं एक हूँ। हिस्सा भी नही। 'टोटल' का मै एक भाग नही हू, मै ही टोटल हूँ। जिस क्षण ऐसी प्रतीति होगी, उस क्षण 'काज्मिक अनकासेस' से तीर की तरह कोई स्मरण आपके अचेतन मन तक उठकर आ जायेगा। उस वक्त आपको स्मरण होता है कि मैने जाना—जो था; पर मुझे पता नही था कि मै कौन हू। मै ब्रह्म हूँ — अहं ब्रह्मास्मि का बोध उस क्षण मे आपके चेतन तक फैल जाता है।

यह स्मरण की प्रक्रिया मैंने चार हिस्सो मे बाटी आपको समझाने के लिए। कृष्ण इसको बांटते ही नही। मैंने सिर्फ समझाने के लिए बांटी है। वर्ना यह आपको कठिन होगा। यह अलग–अलग चार चीजें नही है, यह एक ही चीज का फैलाव है। गहरे, और गहरे, और गहरे! और, जितना गहरा होता है उतना हम उस खण्ड को अलग नाम दे रहे हैं। बहुत गहरे मे हमे पता ही है कि हम परमात्मा है। हमे परमात्मा होना नही, सिर्फ 'डिस्कवर' करना है। सिर्फ आविष्कार करना है, उघाडना है। ऋषि कहते हैं उपनिषद मे कि 'स्वर्ण पात्र से ढका है जो सत्य, तू उसे उघाड दे।' परमात्मा होना हमारी उपलब्धि नही है, सिर्फ उघडना है। 'अनकवर' होना है। कुछ जो ढका है वह उघड जाय। किससे ढका है? हमारी ही विस्मृति से ढका है। हम अपने मन के बिल्कुल अग्रिम भाग मे जी रहे हैं। जैसे, कोई बडे भवन मे रहता है लेकिन दालान मे जीता हो। वह दालान मे ही पैदा हुआ हो, दालान मे ही बडा हुआ हो, दालान में ही जिया हो और भूल ही गया हो, उसे पता ही न हो कि बडा भवन भी है उस दालान से जुडा हुआ। असल में कोई दालान अकेली नही होती है। कभी देखी है कोई दालान अकेली? दालान किसी बडे भवन का हिस्सा ही होती है। उस बडे भवन का हमें कोई पता नही। हम अपने चेतन मन मे ही जी रहे है। वह हमारी दालान है, वह हमारा सिर्फ बाहर का हिस्सा है जहा छपरी पडती है। इससे ज्यादा नही है। लेकिन, हमे कोई पता नही है भीतर का। उस भीतर का हमारे बहुत गहरे मे स्मरण है। पर, उस भीतर की अपनी गहराई मे हम कभी नही उतरे। ध्यान रहे इस भीतर की गहराई मे उतर जाना खण्ड मे नहीं होगा। चर्चा और समझाना खण्ड मे होगा। साधना के मार्ग से जो चलते है वह एक–एक खण्ड को साधने की कोशिश करते हैं। कृष्ण कहते ही इतना है कि तुम परमात्मा हो, इसे स्मरण करना। इसलिए, उपनिषद् बार–बार कहते है—स्मरण करो, स्मरण करो। सिर्फ 'रिमेंबर' करना है, कौन हैं हम। यह हम सिर्फ भूल गये हैं। यह हमने कुछ खो नही दिया है या कुछ ऐसा भी नहीं है कि हमारा कोई भविष्य है, जो हमे होना है। सिर्फ विस्मरण हुआ है। लेकिन, इधर बात बदल जाती है। साधना पथ मे सिर्फ विस्मरण नही है, साधना के ख्याल मे कोई चीज खो गयी है या कोई चीज अभी हुई ही नही है, वह होने वाली है। अथवा इसमे ऐसा है कि साधना के क्रम मे कुछ चीज गलत जुड रही है जिसे काटना होगा, अलग करना होगा। स्मरण की प्रक्रिया मे न कुछ काटना है, न कुछ अलग करना है, न कुछ गलत जुड गया है, न हमे कुछ होना है, न हम अन्यथा हो गये है। हम जो है वह है। सिर्फ विस्मरण है। बस विस्मरण के अतिरिक्त और कोई पर्दा नही है।

कृष्ण का सारा-का-सारा आधार उपासना का है और उपासना का सारा आधार स्मरण का है। लेकिन, भूल गये उपासक 'स्मरण' को। उसकी जगह उन्होंने 'सुमिरन' शुरू कर दिया। अब वह सुमिरन कर रहे हैं। बैठे हैं, और राम राम जप रहे हैं। राम राम जपने से याद न आयेगा कि मैं राम हू। स्मरण शब्द धीरे-धीरे सुमिरन बन गया और स्मृति शब्द धीरे धीरे सुरति बन गया। उस शब्द के दूसरे ही 'कनोटेशन' और दूसरे ही अर्थ हो गये। एक आदमी बैठकर अगर यह भी दोहराता रहे कि मैं परमात्मा हू, मै परमात्मा हू तो भी कोई हल न होगा। इस दोहराने से, 'रिपीटीशन' से कोई वास्ता नही है। इससे भ्रम भी पैदा हो सकता है कि वह आदमी नीचे तो उतर ही न पाये और चेतन मन मे ही समझने लगे कि मै परमात्मा हू, किन्तु भीतर के तलो का उसे कोई बोध न हो।

तो फिर स्मरण की क्या होगी प्रक्रिया? क्या होगा मार्ग? क्या होगा द्वार? मेरे देखे, अगर आप शान्त और शून्य सिर्फ बैठ जाय, कुछ न करें, तो शायद कुछ हो सकता है। क्योंकि आपका कुछ भी करना बाधा बनेगा। असल मे करने से हम वह पा सकते हैं जो हम नही हैं। करने से वह मिल सकता है जो हमारे पास नही है। स्मरण का तो बहुत गहरा अर्थ 'टोटल इनेक्टीविटी' है, अकर्म है। इसलिए कृष्ण बहुत जोर देते हैं अकर्म पर। वह निरन्तर कहे जाते हैं अकर्म। जैसा मैंने आपसे कहा, छोटी सी चीज भी भूल जाते हैं तो जब आप 'एक्टिवली' उसको याद करने की कोशिश करते है, नही कर पाते। लेकिन जब आप उस हिस्से को छोड देते हैं, उस हिस्से मे इनेक्टिव हो जाते है, अकर्म मे हो जाते है, तब वह स्मरण आ जाता है। अगर हम 'टोटल इनेक्टिविटी' मे हो जाय तो वह जो 'काज्मिक अनकासेस' मे है, वह जो ब्रह्माड मे पडा है वह एकदम तीर की तरह उठता है। जैसे बीज फूटता है एक अकुर मे ऐसे ही हमारे चित्त के किसी गहरे मे बीज टूटता है और एक अकुर उठकर हमारे चेतन मन के प्रकाश तक आ जाता है और हम जानते है कि हम कौन है। अकर्म है सूत्र। साधना मे सदा कर्म है सूत्र, साधना मे सदा क्रिया है मार्ग। उपासना मे सदा अक्रिया है द्वार।

कृष्ण के इस अकर्म को थोडा ठीक से समझ लेना अच्छा होगा। मै मानता हू कि इसे ठीक से नही समझा जा सका। इसे समझना बहुत मुश्किल था। क्योंकि जिन लोगो ने कृष्ण पर टीका लिखी और जिन लोगो ने कृष्ण की व्याख्या की, उनकी किसी की भी पकड मे अकर्म नही बैठ सका या तो अकर्म का मतलब उन्होंने समझा कि ससार छोडकर भाग जाओ। लेकिन छोडकर भागना एक कर्म है। छोडना एक कर्म है, कृत्य है। अकर्म का निरन्तर यही मतलब समझा गया

कि तुम कुछ भी मत करो। दुकान मत करो, काम मत करो, गृहस्थी मत करो प्रेम मत करो, भाग जाओ सब छोड़कर। सिर्फ 'भागना' करो। सिर्फ 'त्यागना' करो। लेकिन त्याग उतना ही कर्म है जितना भोग कर्म है। हिन्दुस्तान की लबी परम्परा त्याग रही है, छोड़ रही है, भाग रही है और कोई गौर से नही देखता कि कृष्ण बिल्कुल भागे हुए नही है। कभी कभी हैरानी होती है कि एक लम्बी परम्परा भी अंधी हो सकती है। कोई यह नही देख रहा है कि जो आदमी जो अकर्म की बात कर रहा है वह गहन कर्म मे खडा हुआ है। इसलिए भागना उसका अर्थ हो नही सकता। कृष्ण तीन शब्दो का प्रयोग करते हैं - अकर्म, कर्म और विकर्म।

सिर्फ करने को ही वे कर्म नही कहते। अगर करने को ही कर्म कहे तब तो अकर्म मे कोई जा ही नही सकता। फिर तो अकर्म हो ही नही सकता। ऐसे करने को कृष्ण कर्म कहते हैं जिसमे कर्ता का भाव है। जिसमे करने वाले को यह ख्याल है कि मै कर रहा हू। मै कर्ता। 'इगोसेंट्रिक' कर्म को वे कर्म कहते हैं। ऐसा कर्म जिसमे कर्ता मौजूद है। जब तक मै करने वाला हू तब तक हम जो भी करेंगे वह कर्म है। अगर मै सन्यास ले रहा हू तो सन्यास एक कर्म हो गया। अगर मैं त्याग कर रहा हू तो त्याग एक कर्म हो गया। अकर्म का मतलब ठीक उल्टा है। अकर्म का मतलब है, ऐसा कर्म जिसमे कर्ता मौजूद नही है। जिसमे मैं कर रहा हू, ऐसा कोई बिन्दु नही है। ऐसा कोई केन्द्र नही जहा से यह भाव उठता है कि मैं कर रहा हू। अगर मैं कर रहा हू, यह खो जाय तो सभी कर्म, अकर्म है। कर्ता खो जाय तो सभी कर्म अकर्म है। इसलिए कृष्ण का कोई कर्म, कर्म नही है। सभी कर्म अकर्म है।

कर्म और अकर्म के बीच मे विकर्म की जगह है। विकर्म का अर्थ है विशेष कर्म। अकर्म तो कर्म ही नही है। कर्म कर्म है। विकर्म का अर्थ है विशेष कर्म। इस शब्द को भी ठीक से समझ लेना चाहिए। यह दोनो के बीच मे खडा है। विशेष कर्म किसे कहते हैं ? जहा न कर्ता है और न कर्म। फिर भी चीजे तो होगी। आदमी श्वास तो लेगा ही। न कर्म है, न कर्ता है। फिर भी श्वास एक प्रकार का कर्म तो है ही। खून तो गति करेगा ही शरीर मे। भोजन तो पचेगा ही। यह कहा पडेगा। यह विकर्म है। यह मध्यम है। यहा न कर्ता है, न कर्म है। साधारण मनुष्य कर्म मे है। सन्यासी अकर्म मे है, परमात्मा विकर्म में है। वहा न कोई कर्ता है, न कोई कर्म है। वहा चीजें ऐसी हो रही है जैसे श्वास चलती है। वहा चीजें बस हो रही है। 'जस्ट हेपेनिंग'। आदमी के जीवन मे भी ऐसा कुछ है। वह सब यह परमात्मा के द्वारा ही किया जा रहा है। क्या आप श्वास ले रहे है

विकर्म है। लेकिन आप श्वास लेते होंगे, फिर कभी मर न सकेंगे। मौत खडी हो जायेगी और आप श्वास लिये चले जायेंगे। या जरा श्वास रोककर देखें तो पता चलेगा कि नही रुकती है। जरा श्वास को बाहर ठहरा दे, तो पता चलेगा नही मानती है। भीतर जाकर रहेगी। जीवन की बहुत क्रियाए ऐसी ही हैं। अकर्म मे वही आदमी प्रवेश कर पाता है जो विकर्म के इस रहस्य को समझ लेता है। तब वह कहता है, फिर मै नाहक क्यो कर्ता बनू ? जब जीवन का सभी महत्वपूर्ण हो रहा है तो मै क्यो बोझ लू ? वह बडा होशियार आदमी है, वह 'वाइजमैन' है। वह उस तरह का आदमी है जैसा कि मैने सुना है –

एक आदमी ट्रेन मे सवार हुआ और अपनी पेटी-बिस्तर को अपने सिर पर लेकर बैठ गया। पास-पडोस के यात्रियो ने उससे कहा कि पेटी-बिस्तर सिर पर क्यो लिये हो ? नीचे रख दो। उस आदमी ने कहा, ट्रेन पर बहुत वजन पडेगा। तो यह सोचकर कि मैं अपने सिर पर रखे हूँ कि थोडा वजन मै भी बटा लू। यात्री बहुत हैरान हुए। उन यात्रियो ने कहा, तुम पागल तो नही हो ? तुम अपने सिर पर भी रखोगे तो भी ट्रेन पर तो वजन पडता ही है। ट्रेन पर तो वजन पडेगा ही और तुम पर नाहक पडेगा। वह आदमी हसने लगा। उस आदमी ने कहा कि मैं तो समझता था तुम सब ससारी हो; लेकिन सन्यासी मालूम पडते हो। मैं तो तुम्हे देखकर ही यह बोझा सिर पर रखे था। वह आदमी एक सन्यासी था। उसने उन सबसे पूछा, पूरी जिन्दगी मे तुमने वजन कहा रखा है ? अपने सिर पर रखा है या परमात्मा पर छोड दिया है ? क्योकि, तुम अपने सिर पर भी रखो तो भी परमात्मा पर ही पडता है। यह तुम अपने सिर पर क्यो रखे हो ? उसने न केवल नीचे रखा वजन, बल्कि वजन के ऊपर बैठ गया। उसने कहा अब मैं अपनी स्थिति में बैठूं। यह मेरा ढग है। लेकिन, सोचकर कि तुम सबको अजीब न लगे– मैने ऐसा किया। जो विकर्म को समझ लेगा वह अकर्म मे उतर जायेगा।

कर्म हमारी स्थिति है, जैसे हम जी रहे हैं। विकर्म हमारी समझ होगी, अकर्म हमारा होना होगा। कृष्ण की साधना, उपासना, जो हम नाम देना चाहे, उसमे गहरे मे अकर्म है। आपको कुछ करना नही है, जो हो रहा है उसे होने देना है। आपके कर्ता को मिट जाने देना है। जिस दिन आपका कर्ता मिटा कि बीच की दीवाल टूट जायेगी और स्मरण आ जायेगा। कर्ता ही आपकी बाधा है। 'द डूअर', वह जो करने वाला है वह कह रहा है मै कर रहा हूँ। वही पर्त है स्टील की, लोहे की, जिसके नीचे दबी पडी है स्मृति। और, जब तक आप कर्ता बने रहेंगे तब तक स्मृति नही लौटेगी। इसलिए, बैठकर राम राम दोहराने से नही होगा। बैठकर

यह कहने से कि मैं परमात्मा हूँ, नहीं होगा। क्योंकि, मैं आपसे कहता हूँ कि यह आपका कर्ता ही दोहरा रहा है। यह आप ही दोहरा रहे हैं। कृपा करके इस कर्ता को जाने दें।

कैसे जायेगा कर्ता? विकर्म को समझें। कर्म करते रहें और विकर्म को समझें। कर्म करते रहें, और जीवन को समझें। जिन्दगी की समझ बतायेगी कि मैं क्या कर रहा हूँ। न मैं जन्मता हूँ, न मैं मरता हूँ, न मैं श्वास लेता हूँ। न मुझसे कभी किसी ने पूछा कि आप क्या होना चाहते हैं? न मुझसे कभी कोई पूछेगा कि अब जाने का वक्त आ गया, आप जाना चाहते हैं? न मुझसे कभी कोई पूछता कि कब मैं जवान हो जाता हूँ और कब बूढ़ा हो जाता हूँ? कोई मुझसे पूछ ही नहीं रहा है। मेरा कुछ होना नहीं है। मैं न रहूँ तो क्या फर्क पड़ जायेगा? मैं नहीं था तो क्या फर्क पड़ा था? ये चाँद तारे कुछ फीके थे? फूल कुछ कम खिलते थे? पहाड़ कुछ छोटे थे? बादल कुछ गम्भीर थे? सूरज कुछ परेशान था? मैं नहीं था तब सब ऐसा था, मैं जब नहीं रहूँगा तब भी सब ऐसा ही रहेगा। जैसे पानी पर खींची गयी रेखा मिट जाय ऐसे मैं मिट जाऊँगा। कहीं कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। सब ऐसा ही चलता रहेगा। सब ऐसा ही चलता रहा है। तो मैं नाहक इस 'मैं' को क्यों ढोऊं? जब मेरे बिना सब का सब चलता रहेगा तो मैं भी मेरे बिना क्यों न चलता रहूँ? जब मेरे बिना कहीं भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा तो मैं ही नाहक मुझमें इस मैं से क्यों अन्तर कर लूँ!

विकर्म की समझ का नाम प्रज्ञा है। विकर्म की समझ का नाम 'विजडम' है। जो विकर्म को समझ लेगा वह सब समझ लेता है। तब कर्म एकदम अकर्म हो जाता है। विकर्म कीमिया है, वह बीच का द्वार है जो कर्म से गुजरते वक्त पड़ेगा। विकर्म और अकर्म में स्मरण बन जाता है। आपको लाना नहीं पड़ता। जिस स्मरण को आप लायेंगे वह कर्म होगा। जो स्मरण आयेगा, वही आपके कर्ता के बाहर से आयेगा—'कॉस्मिक' से आयेगा, ब्रह्माण्ड से आयेगा। इसलिए, वेद को हम कह सके कि वह अपौरुषेय है। इसका यह मतलब नहीं है कि जिन्होंने लिखा वे आदमी नहीं थे। हम इसलिए अपौरुषेय कह सके कि जो खबरें उन्होंने वेद में दी हैं वे उनके पुरुष से नहीं आयी थीं। वे उनके पुरुष के पार से आयी। वे उनकी 'पर्सनलिटी' के बाहर से आयी। वे उनके होने के आगे से आयी थीं, वे 'कॉस्मिक' खबरें थीं। इसलिए हम कह सके कि वेद ईश्वर का वचन है। उसका यह मतलब नहीं है कि वेद ही ईश्वर का वचन है। जब भी किसी के भीतर व्यक्ति के पार से कोई खबर आती है वह ईश्वर का वचन होता है। इसलिए, मुहम्मद के कुरान

को कहा जा सका कि वह ईश्वर का इलहाम है। उसकी तरफ से दिया गया ज्ञान है। इसलिए, जीसस कह सके कि मैं तुमसे जो कह रहा हूँ वह मैं नहीं कहता, वह परमात्मा ही कह रहा है। इसलिए कृष्ण तो सीधा कह सके कि मैं हूँ ही नहीं, परमात्मा ही है। इसलिए यह सब मैं ही करवा रहा हूँ– यह खेल, यह युद्ध, यह सब मैं ही करवा रहा हूँ। और तू घबड़ा मत अर्जुन, क्योंकि जिन्हे तू मारेगा, उन्हे मैं पहले ही मार चुका हूँ। यह कृष्ण इतनी सहजता से कह सके। अर्जुन, तेरा काम उन तक खबर पहुचाने का है कि तुम मर गये हो, और कोई बात नहीं है ज्यादा। यह काम मैं कर ही चुका हूँ, यह हो ही चुका है। यह जो व्यक्ति बोल रहा है यह अब व्यक्ति नहीं है, 'कॉज्मिक' खबर है। यह ब्रह्माड से, गहरे से आयी हुई सूचना है कि जो सामने तुझे जिन्दा दिखायी पड़ते है, मैं कहता हूँ, ये मर ही चुके है। घड़ी दो घड़ी की देर है। उसमे तू निमित्त भर है। तू यह मत सोच कि तू मार रहा है। तू मार रहा है यह ध्यान होते ही तू भयभीत हो जायेगा। कर्ता आया कि भय आया। कर्ता आया कि चुनाव आया। कर्ता आया कि चिन्ता आयी, कर्ता आया कि संताप आया। तो तू यह सोच ही मत, तू यह जान ही मत। तू भूल मे पड़ा है, तू यह नहीं कर रहा है। तू 'कॉज्मिक' के हाथो मे, ब्रह्म के हाथो मे एक इशारे से ज्यादा नहीं है, एक 'जेस्चर' से ज्यादा नहीं है। करने दे उसे, वह जो कर रहा है। तू अपने को छोड़। इसलिए वे कहते है– सर्व धर्मान्परित्यज्य– तू सब छोड़-छोड़कर आ। तू अपने को छोड़कर आ, तू अकर्म मे आ जा।

अकर्म प्रक्रिया है स्मरण की।

प्रश्न **आचार्यजी, अभी आपने कर्म, अकर्म और विकर्म पर बड़ी गहरी और बड़ी असाधारण चर्चा की। कश्मीर प्रवास के समय भी जिस समय महेश योगी के विदेशी शिष्यो के सामने आत्म साक्षात्कार की बात आयी थी, उस समय भी आपने उन्हें अकर्म का बोध कराया था। इससे पहले कोई 'कन्फ्यूजन' नहीं रहता है। लेकिन कृष्ण ने जो कुछ गीता मे कहा, उसमें थोड़ा-सा 'कन्फ्यूजन' जरूर दिखायी पड़ता है। गीता के चौथे और पांचवें अध्याय मे अकर्म दशा पर कृष्ण ने भी जोर दिया है, किन्तु गीता की अकर्म दशा दोहरी भासित होने के कारण 'कन्फ्यूजन' पैदा करती है, कि "सब कर्म करके, वे कतई किये न हों, ऐसा होना योग बताया है" और "कर्म कतई न करते हुए सब कर्म किये हों, ऐसा होना सन्यास है" इस दोहरी बात का अर्थ क्या है, इसपर प्रकाश डालें ?**

प्रश्न शंकरभाष्य में ज्ञानी को कर्म की जरूरत नहीं— ऐसा शंकराचार्य महसूस करते हैं। और, कर्मी को कर्म करना उनको मंजूर है। और अभी आपने बताया कि हमें कुछ करना नहीं है, तो अर्जुन केवल यंत्र ही नहीं रह जायेगा? उसकी 'इन्डीवीजुअलिटी' का क्या होगा?

उत्तर कृष्ण कहते हैं, सब कर्म किये हो और फिर भी ऐसा होना कि कर्म किये ही नहीं, योग है। अर्थात् अकर्ता मे प्रतिष्ठित होना योग है। दूसरी बात वे जो कहते है, वे इसी बात का दूसरा पहलू है। कुछ भी न करते है, जानना कि सब कुछ किया है, सन्यास है। सन्यास और योग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। निश्चित ही पहलू उल्टे होते हैं। लेकिन, दोनो पहलू जुडे हुए भी होते है। और तय करना बहुत मुश्किल है कि पहला पहलू कहा खत्म होता है और दूसरा कहा शुरू होता है। दोनो की एक दूसरे की तरफ पीठ होती है। अगर हम इस सिक्के को चीरें फाडें और तय करने जाय कि सामने वाला पहलू कहा खत्म होता है और पीछे वाला पहलू कहा शुरू होता है तो बडी मुश्किल मे पडेंगे। वे दोनो कही खत्म नही होते, दोनो बिल्कुल ही एक साथ जुडे होते है। जिसे हम पृष्ठभूमि कह रहे हैं, जिसे हम पिछला पहलू कह रहे है वह अगले पहलू की ही पीठ होती है। अगर हम ज्ञानी को उसके चेहरे की तरफ से देखेंगे तो वह योगी मालूम पडेगा, उसकी पीठ की तरफ से पकडेंगे तो वह सन्यासी मालूम पडेगा। कृष्ण की दोनो परिभाषाओ मे कोई 'कन्फ्यूजन' नही है। वह ज्ञानी की दोनो तरफ से परिभाषा कर रहे है। वह यह कह रहे है, वह करते हुए न-कर्ता है, न करते हुए कर्ता है। और, ध्यान रहे, ज्ञानी मे ये दोनो बाते एक साथ ही हो सकती है, अलग नही हो सकती। क्योंकि, जो आदमी करते हुए न कर्ता है वही न करते हुए कर्ता हो सकता है। ये दोनो बातें एक ही चीज के पहलू हैं। कोई भी सिक्का एक पहलू का नही होता। अब तक बनाया नही जा सका। दूसरा पहलू होगा ही। कहा से हम पकडते है, यह हम पर निर्भर करेगा। कृष्ण दोनो तरफ से पकड रहे है। और, वह अर्जुन को सब तरफ से समझाने की कोशिश कर रहे हैं। वह उससे यह कह रहे है कि अगर तू योग में उत्सुक हो गया है तो योगी का यह मतलब है कि करते हुए न करने को उपलब्ध हो। अगर तू कहता है कि मुझे योग वगैरह से कोई मतलब नही, मैं तो सन्यास ले लूगा, सब छोडकर चला जाऊगा, मुझे योग वगैरह की गहन चर्चा मे मत उलझाइये। मैं यह दुख, यह भय, यह मोह देखकर पीडित हूँ। मैं इनको नही मारता, मैं संन्यास ले लेना चाहता हूँ। तो वह उससे कहते है कि तू सन्यासी ही हो जा। लेकिन, सन्यासी का मतलब ही यह है कि जो कुछ न करते हुए भी सब करता है।

वह अर्जुन को सब तरफ से घेरा डाल रहे हैं और इसलिए कई जगह उनके वक्तव्य 'कण्ट्राडिक्टरी' मालूम पडते है। आपके साथ मेरी वही हालत है। आप पर मैं सब तरफ से घेरा डालता हूँ, आप एक तरफ से कहते है, यह नही, तो मैं कहता हूँ जाने दें, चलो दूसरी तरफ से शुरू करें। लेकिन, आप कही मे भी राजी हो जाय! आखिर मे आप पायेगे कि दूसरी तरफ से राजी होकर आप उस छोर पर भी पहुँच गये हैं, जहा आप राजी नही हुए थे। अर्जुन कही से भी राजी हो जाय। वह योगी होने को राजी हो जाय तो कृष्ण कहते हैं, चलो, चलेगा। क्योंकि, वह जानते हैं कि एक सिक्के मे दो पहलू होते हैं। दूसरा पहलू बच नही सकता। तुम कहते हो, हम सीधा सिक्का लेगे। लो। उसका उल्टा हिस्सा कहा जायेगा? वह तुम्हारे हाथ मे पहुच जायेगा।

एक ताओइस्ट कहानी है, वह मैं आपसे कहूँ। उससे ख्याल मे आ जाय। लाओत्से के फकीरों ने बडी अद्‌भुत कहानिया कही है। ऐसी कहानिया दुनिया मे किसी ने भी नही कही हैं।

एक फकीर है, जगल मे रहता है, उसने दस बीस बन्दर पाल रखे है। एक दिन सुबह कोई आ गया है जिज्ञासु और उससे ऐसा सवाल पूछा है जैसा सवाल आपने पूछा। उसने कहा—कभी आप ऐसा कहते हो, कभी आप ऐसा कहते हो। हम बडे कन्फ्यूजन मे पड जाते है। साझ आप कुछ कहते हो, सुबह आप कुछ कहते हो, हम बडी उलझन मे पड जाते है। उस फकीर ने कहा, तू बैठ और देख। उसने अपने बन्दरो को बुलाया और उनसे कहा, सुनो बन्दरो, आज से तुम्हारे भोजन मे परिवर्तन किये देता हूँ। बन्दरो को रोज सुबह चार रोटिया मिलती थी, शाम तीन रोटिया मिलती थी। उसने कहा कि आज से तुम्हे सुबह तीन रोटिया मिलेगी, शाम चार रोटियां मिलेगी। बन्दर एकदम नाराज हो गये और उन्होने कहा, हम बगावत कर देगे। यह बरदाश्त के बाहर है। यह परिवर्तन हम नही सह सकते। हम तो अपने पुराने नियम पर कायम रहेगे। चार रोटी सुबह चाहिए। उसने कहा, यह नही होगा। तीन रोटी मिलेगी सुबह, चार रोटी मिलेगी शाम। बन्दर हमला करने को उतारू हो गये। उसने कहा, अच्छा भाई, ठहरो, तुम चार सुबह ले लेना। बन्दर बडे प्रसन्न हुए। उसने उस आदमी की तरफ मुह फेरा और कहा, सुनते हो, रोटिया सात ही मिल रही है। मगर, तीन सुबह मिलेगी, इससे बन्दर बहुत नाराज है। अभी भी सात ही मिलेगी। वे चार सुबह ले कि चार साझ ले, कि तीन सुबह ले कि तीन साझ ले। लेकिन, अब वे प्रसन्न ह।

अर्जुन को कृष्ण ऐसे ही घेर रहे है। वे कभी उसको कहते हैं कि अच्छा

तू तीन ले ले। वह कहता, यह नहीं हो सकता। वे कहते हैं, चार ले ले। रोटिया सात ही हैं। उसको कैसे अर्जुन लेने को राजी होगा यह अर्जुन पर छोड़ते हैं। इसलिए, इतनी लम्बी गीता चलती है। वह बार-बार बदलते हैं कि अच्छा यह कर ले। अच्छा तू भक्त हो जा, अच्छा तू योगी हो जा। तू कर्मयोग साध ले, तू भक्तियोग साध ले। नही तो ज्ञानयोग ही साध ले। तू क्या कहता है, वही साध ले। मगर वही रोटिया सात हैं। अर्जुन को गीता के आखिर आखिर तक समझ मे आता है कि रोटिया सात है और यह आदमी सात रोटियो से ज्यादा देगा नही। कही से भी लिया जाय, इससे कोई बहुत फर्क नही पड़ता।

दूसरे प्रश्न का उत्तर शकर की परिभाषा चुनाव की है। शकर कर्म के सख्त विरोध मे है। वे कहते है, कर्म ही बन्धन है। वे कहते है, कर्म ही अज्ञान है। कर्म को छोड़े बिना उपाय नही। यहा वे कृष्ण के अकर्म को कर्म को छोडना बना लेते हैं। कर्म छोडो। और कर्म के छोडने का मतलब भी वे यही लेते है कि जो जो कर्म का ससार है, जो कर्म करने वाले का जगत है उससे भाग जाओ। कर्म के सम्बन्धो से हट जाओ। ज्ञानी के लिए कोई कर्म नही है। यह बात तो सच है; लेकिन शकर इसे जो व्याख्या देते है वह ठीक नही है, अधूरी है। ज्ञानी के लिए कोई कर्म नही है यह बिल्कुल ही सच है क्योकि ज्ञानी के लिए कोई कर्ता नही है। लेकिन,'एम्फेसिस' कर्ता के न होने पर होनी चाहिए। अर्जुन से जैसा कि कृष्ण कह रहे है। शकर 'एम्फेसिस' को बदलते है। वह कर्म पर 'एम्फेसिस' डालते है कि कर्म नही होना है। असल मे कर्म के दो हिस्से है, कर्ता और कर्म। कृष्ण का पूरा जोर इसपर है कि कर्ता न रह जाय। कर्म तो रहेगा ही। परमात्मा भी कर्म बिना नही है। वह या तो कर्मी है या ससारी है या अज्ञानी है। क्योकि यह ससार उसका कर्म है। अन्यथा यह ससार कैसे चलता? उस चलने के पीछे चलने वाली ऊर्जा का हाथ है। तो कर्म के बाहर यदि परमात्मा भी नही है तो ज्ञानी कैसे होगा? लेकिन, जोर है कृष्ण का कर्ता न होने पर।

ससार को छोडकर भागने वाला सन्यासी 'एस्केपिस्ट' है, पलायनवादी है। वह कहेगा, कर्म छोडो। तब शकर को, ससार को माया कहने पर मजबूर हो जाना पडता है। उनको कहना पड़ता है कि यह परमात्मा का कर्म नहीं है, सिर्फ हमारा भ्रम है। नही तो मुश्किल पड जायेगी। अगर यह परमात्मा का कर्म है—यह फूलो का खिलना, यह पहाडो का बनना और मिटना, यह चाद-तारो का चलना, उगना और डूबना, तब तो परमात्मा भी सन्यस्त नही है। फिर आदमी से आप अपेक्षा क्या करते है? इसलिए शंकर को दूसरी झझट में पड़ना

पडता है। असल मे तर्कों की अपनी झझटें है। एक तर्क आपने पकडा। फिर आपको उसकी आखिरी सीमा तक जाना पडेगा। एक बार शकर ने यह कह दिया कि कर्म बन्धन है, कर्म ही अज्ञान है और ज्ञानी का कोई कर्म नही है (हालत बडी मुश्किल हो गयी)। किन्तु सामने तो कर्म का विराट जाल है, फिर इसको सपना कहे बिना कोई रास्ता नही है। फिर कहना ही पडेगा कि यह झूठ है, यह है ही नही। यह सिर्फ भास रहा है। यह 'एपीयरेस' है। यह सब माया है। यह सिर्फ जादूगरी है

यह ऐसा ही है जैसे जादूगर एक बीज बोता है और आम का वृक्ष हो जाता है, उसमे आम लग जाते है। न कही कोई बीज है, न कही कोई आम है, न कही कोई वृक्ष है, एक 'हिप्नोटिक ट्रिक' है। बस सिर्फ भासता है। लेकिन बडे मजे की बात है कि हिप्नोटिक ट्रिक, देखने वालो के लिए झूठ हो, करने वाले के लिए कर्म है। 'हिप्नोटिज्म' भी तो करना ही पडता है। शकर इसलिए जाल मे पडते है और बडी मुश्किल खडी होती है कि अब वह क्या करे ? अब इस माया को कैसे समझायें ? अगर माया सिर्फ हमारा भ्रम है, हमने पैदा किया है तो भी कम मे कम परमात्माका इतना तो कर्म मानना ही पडेगा कि वह हमको आज्ञा देता है कि तुम भ्रम देखो। क्योकि उसकी इतनी आज्ञा भी न हो तो हम कैसे देख पायेगे ? हम भ्रम देख रहे है। हो सकता है कि भ्रम झूठ हो, लेकिन हमारा देखना तो कर्म होगा ही। इसलिए शकर छूट नही पाते, चक्कर बढता जाता है। और वह बडी मुश्किल मे पड जाते है। लेकिन बडे तार्किक है वे। और गहरी चेष्टा करते है यह समझाने की कि कर्म असत्य है। ज्ञानी के लिए कोई कर्म नही है। बस उनका जोर कर्ता के मिटाने पर उतना नही पडता जितना कर्म के मिटाने पर पडता है। लेकिन क्या मैं यह कह रहा हू कि शकर सत्य को पहुच गये? क्योकि जिस दिन कर्म को आप बिल्कुल मिटा देंगे तो कर्ता बचेगा कैसे? क्योकि कर्ता बच ही तब सकता है जब तक कर्म का भाव है। तो शकर का पूरा 'लाजिक एब्सर्ड' है, गलत है, लेकिन शकर की अनुभूति गलत नही है। बहुत गलत सलत रास्ते से भी वह पहुच तो गये। भटके, इधर उधर बहुत चक्कर लगाये, मदिर के आस पास बहुत दौडे, तब मदिर मे प्रवेश किया। लेकिन कर गये। कर गये इसके दूसरे कारण है।

क्योकि कर्म को अगर बिल्कुल निषिद्ध किया जा सके, कल्पना मे, ज्ञान मे भी अगर यह माना जा सके कि कर्म है ही नही तो कर्ता बचेगा कहा ? क्योकि, कर्ता बच सकता है कर्म करने से, इस भाव से कि कर्म है, बच सकता है। उन्होने बिल्कुल गलत छोर से यात्रा शुरू की, कृष्ण के छोर से यात्रा शुरू नही की। कृष्ण कह रहे है कि कर्ता को जाने दें, क्योकि जब कर्ता चला गया तो कर्म चला जायेगा।

ये दोनों एक ही चीज के दो छोर हैं। लेकिन मै, शकर के मुकाबले कृष्ण को चुनने को राजी हूँ। इसलिए राजी हूँ कि शकर की पूरी व्याख्या 'एस्केपिस्ट' बन जाती है, शकर भगाने वाले बन जाते है। और शकर के भगाने वालो को भी उन लोगो पर निर्भर रहना पडता जो भागने वाले नही है। अगर यह पूरी पृथ्वी शकर से राजी हो जाय तो एक क्षण चल नही सकता। एक क्षण चलने का उपाय नहीं रह जायेगा। इसलिए, पूरी पृथ्वी राजी नही हो सकी। और, शकर भी कितनी ही चेष्टा करे, कर्म को कितना ही माया कहें, वह माया होकर भी शेष रह जाता है। शकर भी भीख तो मागने निकलते है, भिक्षा तो लेते ही है, समझाने तो जाते ही है, समझाने की चेष्टा तो करते ही ह। शकर के विरोधियो ने शकर का खूब मजाक किया है। शकर के विरोधी कहते है, तुम किसको समझाते हो? अगर सब माया है तो काहे भ्रम मे पडते हो? तुम गाव-गाव किसलिए भटकते हो? यह चलना किसलिए है? यह समझाना किसलिए है? किसको समझा रहे हो, जो नही है उसको? कहा जा रहे हो, जो नही है वहा? कहा से जा रहे हो, जो नही था वहा से? यह भिक्षा का पात्र, यह भिक्षा का मांगना, यह भूख, यह त्याग, यह करना यह न करना। शकर कहेगे, सब माया है। एक कहानी मुझे याद आती है

एक बौद्ध भिक्षु, जो जगत को माया ही मानता रहा, ससार को झूठा ही मानता रहा वह एक सम्राट के दरबार मे गया। उसने बडे तर्क दिये और सिद्ध कर दिया कि सब झूठ है। तर्क मे एक सुविधा है। तर्क यह तो सिद्ध कभी नहीं कर पाता कि सत्य क्या है, हा यह सिद्ध कर सकता है कि झूठ क्या है। तर्क यह तो कभी नही बता पाता है कि क्या है, तर्क यह जरूर बता पाता है कि क्या नही है। तलवार की तरह है। तलवार मार तो सकती है, लेकिन जिला नही पाती। तोड तो सकती है, जोड नही सकती। मिटा तो सकती है, बना नही सकती। तर्क मे एक धार है तलवार जैसी जो 'डिस्ट्रक्टिव' है। तर्क ने कभी कुछ 'कन्स्ट्रक्ट' नही किया, कर नही सकता। सम्राट के दरबार मे उसने सिद्ध कर दिया कि सब झूठ है। लेकिन, सम्राट भी अपने ढग का आदमी है। उसने कहा, सब होगा झूठ, लेकिन एक चीज नही हो सकती। वह मेरे पास है। उसे मै बुलाये लेता हूँ। उसके पास एक पागल हाथी है। उसने उस पागल हाथी को बुलवा लिया। पागल हाथी छोड दिया गया और उस गरीब भिक्षु को उसके आगे छोड दिया गया। सम्राट छत पर खडा हो गया है। पागल हाथी दौडता है, वह भिक्षु भागता है। वह चिल्लाता है कि मुझे बचाओ, मै मरा, मै मर जाऊगा, मुझे बचाओ, लेकिन वह हाथी को दौडाये चले जाते है। पूरे गाव मे दौडवाते है। वह चिल्लाता है, हाथ पैर जोडता है, गिड़गिड़ाता है कि मैं मर जाऊगा, तब उसे छुडाया जाता है। सम्राट उसे महल

के भीतर बुलाता है, फिर उससे पूछता है कि यह हाथी. ? वह भिक्षु कहता है, सब असत्य है। तुम्हारा रोना ? वह भिक्षु कहता है, आप भ्रम मे आ गये, सब असत्य है। वह हाथी असत्य, वह मेरा रोना-चिल्लाना असत्य, मेरा भय असत्य, वह मेरी प्रार्थना असत्य, वह तुम जिनसे प्रार्थना की गयी वह भी असत्य है। तुमने जो छुडवाया वह भी असत्य है। कोई सत्य नही है। अब इसके साथ बडी मुश्किल है। अब कोई मतलब न रहा। क्योकि, यह आदमी कहता है कि अब सभी असत्य है तो मेरा होना कैसे सत्य होता है ? वह कहता है, सब असत्य है, बचाने की पुकार असत्य है। वह यह कह रहा है कि जब मै यह कह रहा हूँ, ससार असत्य है, तुमने भ्रम समझा, मेरी बचाने की आवाज झूठी थी, माया थी। जो आदमी सारे जगत को माया कहने को राजी है उसे समझाना बडा कठिन है।

शकर के विरोधी मजाक उडाते है, लेकिन शकर को इससे कोई फर्क नही पडता। शकर कहते है, तुम्हारा यह देखना असत्य है कि मै समझाने जाता हूँ, कि मै समझाता हूँ, कि कोई समझता है, कि कोई समझाने वाला है। न कोई समझाने वाला है, न कोई समझने वाला है। सब माया है। जिसने यह कहा, सब माया है उसको अब तर्क का कोई उपाय न रहा। लेकिन, तर्क मे यह कितना ही सही हो जाय, हम जीवन को चाहे माया ही नाम दे, लेकिन माया भी है। उसके होने का शकर भी इन्कार नही कर सकते। वह है। रात हम सपना देखते है, वह झूठ है; लेकिन वह है। उसकी 'एक्जिस्टेंस' को, उसके अस्तित्व को इकार नही कर सकते। सपना कितना ही झूठा हो, पर है। साप मुझे रस्सी मे दिखायी पडा हो, लेकिन दिखायी पडा है। यह सवाल नही है कि वह है या नही, लेकिन मुझे दिखायी पडना तो कम-से-कम है। न होगा साप, रस्सी तो है। न होगी रस्सी, मुझे दिखायी पडा—यह तो है। दिखायी पडना तो है। अस्तित्व को हम अन्तत निषिद्ध नही कर सकते। वह बच ही जाता है। वह ठीक कहता है कि हम सब निषेध कर दें, लेकिन आखिर उसको कैसे निषेध करेगे जो निषेध कर रहा है। 'ही कैनाट निगेट दी निगेटर'। सब असत्य कर दे, लेकिन स्वय शकर ? शकर तो है ? इसलिए शकर की जो व्याख्या है वह अधूरी है और एक पहलू की है। वह सिक्के के एक पहलू पर जोर दे रहे है, दूसरे पहलू का उनको पता नही है। दूसरे पहलू को इन्कार कर देंगे जब कि सिक्के के दो पहलू है।

तो इस दृष्टि से शकर, कृष्ण से कम 'कफ्यूजिग' है। शकर कृष्ण से कम-से-कम भ्रम मे डालते है। इसलिए शकर के साथ जो खडे है वे निर्भ्रांत खडे हो गये है। इसलिए, शकर हिंदुस्तान मे सन्यासियो का बडा आत्मविश्वासी वर्ग पैदा

कर सके, जो कृष्ण पैदा नहीं कर सके। सच तो यह है कि शकर का ही एक निर्भ्रान्त संन्यासियो का वर्ग खडा हुआ। क्योंकि, शकर एक पहलू की बात करते हैं। बिना इसकी फिक्र किये कि दूसरा पहलू अस्तित्व मे है। लेकिन, दूसरे पहलू के अस्तित्व की भी अगर बात की जाय तो उसको समझने के लिए बडी गहरी समझ चाहिए। इसलिए, शकर सन्यासियो का एक बडा वर्ग तो पैदा कर सके, लेकिन नासमझ सन्यासियो को भी बडी सख्या मे इकट्ठा कर सके। हिन्दुस्तान का सन्यास शकर के साथ पैदा हुआ और हिन्दुस्तान का सन्यास शकर के साथ ही मन्द बुद्धि भी हुआ है। ये दोनो बाते एक साथ हुई हैं। क्योकि, कृष्ण के साथ खडे होने के लिए बडी मेधा चाहिए, जो कट्राडिक्शन से कन्फ्यूज्ड नही होती। जो विरोधो से भ्रम मे नही पडती। हम सब विरोध से भ्रम मे पड जायेंगे। इसीलिए शकर की, कृष्ण की गीता की जो व्याख्या है वह सर्वाधिक लोकप्रिय हुई है। उसका कारण यह है कि शकर ने पहली दफा गीता को निर्भ्रान्त कर दिया। उसमे से सब भ्रातिया अलग कर दी। साफ सुथरा कर दिया। सब विरोध छाट डाले। एक सीधी, एकरस व्याख्या कर दी। लेकिन, मेरा मानना है, कृष्ण के साथ जितना अन्याय शकर ने किया उतना किसी और ने नही किया है। हालाकि यह भी हो सकता है कि अगर शकर ने टीका न की होती तो गीता खो गयी होती। क्योकि शकर की टीका के कारण गीता सारे जगत मे बची है।

प्रश्न शकर की माया का अर्थ झूठ न होकर परिवर्तनशीलता नहीं हो सकता?

उत्तर अर्थ तो कुछ भी किया जा सकता है। लेकिन, शकर परिवर्तनशीलता को ही झूठ कह रहे है। शकर कहते ही यह है कि वही है असत्य जो सदा एक-सा नही है। वही है मिथ्या जो कल था कुछ और, और आज है कुछ और, कल होगा कुछ और। शकर की मिथ्या और असत्य की परिभाषा ही परिवर्तन है। शकर कहते है, जो शाश्वत है, सदा है, वही है वैसा ही है। जिसमे कभी कोई परिवर्तन नही हुआ, जिसमे परिवर्तन हो ही नहीं सकता, वही है सत्य। शंकर की परिभाषा शाश्वत है। 'इटरनिटी' है। और ससार की परिभाषा परिवर्तन है, जो बदल रहा है, जो बदलता जा रहा है। जो एक क्षण भी वही नही है जो एक क्षण पहले था। इसका मतलब क्या होगा? इसका मतलब कि जो एक क्षण पहले कुछ और था, एक क्षण बाद कुछ और हो गया यानी जो एक क्षण पहले था वह भी वह नहीं था, और एक क्षण बाद जो हो गया वह भी वह नही है, क्योंकि एक क्षण बाद वह फिर कुछ और हो जायेगा। जो नहीं है उसी का नाम असत्य है।

जो एक क्षण पहले भी वही था, एक क्षण बाद भी वही है, एक क्षण बाद भी वही होगा, जो नित्य है—जो है ही वही, वही है सत्य। शकर सत्य और असत्य की जो परिभाषा करते है उसमे परिवर्तन ही असत्य का पर्याय बन जाता है। और अपरिवर्तन ही सत्य का पर्याय बन जाता है।

जो मै कह रहा हू, या कृष्ण जो कहेगे वह यह कहेंगे कि परिवर्तन उतना ही सत्य है जितना अपरिवर्तन सत्य है। क्योकि वह जो अपरिवर्तित है, परिवर्तन के बिना नही हो सकता। और वह जो परिवर्तित हो रहा है, अपरिवर्तित की लीक के बिना नही घूम सकता। असल मे अपरिवर्तित के होने के लिए परिवर्तन जरूरी है। और परिवर्तन के होने के लिए अपरिवर्तित होना जरूरी है। वह जो 'अनमूविग' वह है ही इसीलिए कि उसके चारो तरफ 'मूविग' है। कृष्ण सारे द्वन्द्व को आत्मसात करते है सब दिशाओ से। वह यह कहते है, गति का आधार अगति है। अगति का होना गति पर है। अगर हम कृष्ण को समझे तो उसका मतलब यह होगा कि सत्य के होने के लिए भी असत्य अनिवार्यता है। नही तो सत्य भी नही हो सकेगा। जैसे प्रकाश के होने के लिए अधकार अनिवार्यता है। जैसे जीवन को होने के लिए मृत्यु अनिवार्यता है। जैसे स्वास्थ्य के होने के लिए बीमारी अनिवार्यता है। जो विपरीत है वह अनिवार्य है। हमारी दिक्कत यही है कि हम उसको विपरीत मानकर चल पडते है। असल मे वह एक ही चीज के दो पहलू है।

हम सदा पूछते है, असत्य आया कहा से? यह क्यो नही पूछते कि सत्य आया कहा से? जब सत्य बिना कही से आये आ-जा जाता है तो असत्य को कौन-सी कठिनाई है। बडे मजे की बात है कि ब्रह्मज्ञान पर चर्चा करनेवाले लोग निरन्तर पूछते है कि असत्य आया कहा से? और, उनमे से एक भी इतनी बुद्धि नही लडाता कि सत्य आया कहा से? बल्कि सच तो यह है कि असत्य को ज्यादा सुविधा है बिना कही से आने के, बजाय सत्य के। सत्य को कही से आना चाहिए, असत्य को आने की क्या जरूरत है? असत्य का मतलब ही है कि जो नही है। उसके आने के लिए मूलस्रोत की क्या जरूरत है? नही, सत्य और असत्य आये कहा से, ऐसा सोचना गलत है—सत्य और असत्य 'साइमलटेनियस' है। वे एक ही अस्तित्व के दो पहलू है। उनके आने जाने का सवाल नही है। जिस दिन तुम्हारा जन्म आया उस दिन मौत आ गयी, आयेगी ही। वह जन्म का ही दूसरा पहलू है। लेकिन अभी तुमने एक पहलू देखा, सत्तर साल लग जायेंगे दूसरे पहलू को देखने मे, यह दूसरी बात है। यह तुम्हारी असमर्थता है कि तुम एक साथ नही देख सके, तुमको सिक्का उल्टाने मे सत्तर साल लग गये। बाकी जिस दिन जन्म आया

उसी दिन मौत आती है। जिस क्षण सत्य है, उसी क्षण असत्य आ गया। आ गया की भाषा ही गलत है—सत्य है, असत्य है। 'एक्जिस्टेंस' है, 'नान एक्जिस्टेंस' है। अस्तित्व है, अनस्तित्व है।

शकर ने एक पहलू पर जोर दिया, इसके साथ एक दूसरा पहलू भी ध्यान मे लेना जरूरी है। शकर ने जोर दिया कि यह जो दिखायी पड रहा है यह माया है, यह एक पहलू है। बुद्ध ने ठीक इससे उल्टे पहलू पर जोर दिया जो नागार्जुन मे जाकर पूरा हो गया। उसने कहा, जिसको दिखायी पड रहा है वह माया है। तो शकर की भाषा मे ससार झूठ हो गया, नागार्जुन की भाषा मे आत्मा झूठ हो गयी। नागार्जुन यह कहता है कि जो दिखायी पड रहा है और जिसको दिखायी पड रहा है इन दोनो मे मौलिक आधार वह नही है जो दिखायी पड रहा है, मौलिक आधार वह है जिसको दिखायी पड रहा है। वह झूठ है, और सब झूठ उससे पैदा हो रहे है। क्योकि, मैं आख बन्द कर लेता हूँ, ससार दिखायी नही पडता, लेकिन मै आख बन्द करके सपने देखने लगता हूँ। असली बुनियादी झूठ मैं हूँ। अगर ससार भी न हो तो मै सपने पैदा कर लू। मजे की बात है कि मै सपने के भीतर भी सपने पैदा कर लेता हूँ। आपने ऐसे भी सपने देखे होगे जिसमे आपको लगता है आप सपना देख रहे हैं। बहुत 'मिराकुलस' है यह बात कि एक आदमी सपना देख रहा है कि वह सपना देख रहा है। जैसे कि एक जादूगर के डिब्बे के भीतर डिब्बे होते है ऐसे सपने के भीतर सपने, सपने के भीतर सपने होते है। आप सपना देख सकते है कि मैं एक फिल्म देख रहा हूँ। फिल्म मे अपनी ही कहानी देख रहा हूँ। उस कहानी मे मैं सो गया हूँ और सपना देख रहा हूँ। नागार्जुन कहता है कि ससार को किसलिए झूठ कहने की झझट मे पडे हो, असली झूठ भीतर बैठा हुआ है। नागार्जुन कहता है, वह जो भीतर है वही झूठ है।

असल बात यह है कि जगत मे सत्य और असत्य एक साथ है। अगर किसी ने बहुत जोर दिया कि सत्य ही है तो उसको असत्य को कही न कही दिखाना पडेगा कि वह कहा है। अगर किसी ने जोर दिया कि असत्य ही है तो उसको दिखाना पडेगा, सत्य कहा है? कृष्ण की दुविधा बडी गहरी है। और, जो लोग दुविधा मे नही होते वे अक्सर उथले होते हैं। दुविधा मे होना बडी गहरी बात है। सौभाग्य से दुविधा मिलती है। दुविधा का मतलब यह है कि जिन्दगी को हमने उसकी पूर्णता मे देखना शुरू किया। न हम यह कहते है, यह असत्य है और यह सत्य है। न हम यह कहते है कि सिर्फ सत्य है। न हम यह कहते है कि सिर्फ असत्य है। हम देखते है और पाते है, सत्य और असत्य किसी एक ही चीज के तालमेल है। किसी

एक ही चीज के स्वर है, किसी एक ही बांसुरी से पैदा हुआ अस्तित्व भी है, अनस्तित्व भी है। जब कोई आदमी इसको ऐसी पूर्णता मे देखता है तब उसकी कठिनाई हम समझ सकते है, वह जो भी वक्तव्य देगा वह 'कन्फ्यूजिंग' होगा। इसलिए, कृष्ण के सभी वक्तव्य 'कन्फ्यूजिंग' है। बहुत गहरे दर्शन से ही 'कन्फ्यूजिंग' वक्तव्य दिये गये है।

प्रश्न . शकर का माया को अनिर्वचनीय कहना क्या उनका 'कम्प्रोमाइज' करना नहीं है ?

उत्तर शकर को तो 'कम्प्रोमाइज' करनी ही पडेगी। जो भी अधूरे सत्य पर जोर देगा उसको समझौता करना ही पडेगा, किसी-न-किसी तल पर जाकर। क्योकि, दूसरे को इन्कार किया ही नही जा सकता, वह है ही। उसको किसी-न-किसी रूप मे स्वीकार करना पडेगा—कहो कि माया है, कहो कि निवृत्ति सत्य है, कहो कि व्यवहार सत्य है – कुछ नाम दो, लेकिन कही-न-कही उसको स्वीकृति देनी पडेगी, क्योकि वह है। शकर भी ऐसा नही कह सकते कि हम माया की बात नही करते, क्योकि जो है ही नही उसकी क्या बात करू। उनको भी बात तो करनी ही पडेगी। शकर को 'कम्प्रोमाइज' करना पडेगा। सिर्फ कृष्ण जैसा आदमी 'कम्प्रोमाईजिग' नही होता। उसको 'कम्प्रोमाइज' की कोई जरूरत नही है। क्योकि, वह दोनो को एक साथ स्वीकार कर रहा है। वह कह रहा है, दोनो है। जो दोनो को स्वीकार करता है, उसको समझौते का कोई कारण नही है। ऐसा कहे कि समझौता पहले से ही है।

प्रश्न . दुविधा को आपने शुभ कहा; लेकिन वह तो अकल्याणकारी है ?

उत्तर मैने कहा कि दुविधा सौभाग्य है। इसका मतलब यह नही कि दुविधा मे रहना सौभाग्य है। इसका मतलब है कि जिनको दुविधा पैदा होती है वे दुविधा के पार जाने की चेष्टा मे लग जाते है। जिनको होती नही पैदा, वे वही खडे रह जाते है। कही जाते नही। दुविधा सक्रमण है। दुविधा यात्रा का बिन्दु है। दुविधा पैदा हो तो दुविधा के पार होना पडेगा। यह पार होना दो तरह से हो सकता है – या तो किसी पक्ष मे हो जाय नीचे गिर कर, तो दुविधा मिट जायेगी। शंकर से राजी हो जाये, नागार्जुन से राजी हो जायें दुविधा मिट जायेगी। जो उनसे राजी होते है, इसीलिए राजी होते है कि दुविधा मिट जाती है। झझट के वे बाहर हो जाते है। लेकिन, दुविधा वे खोते है, बुद्धि को खोकर। जिसमें बुद्धि नही है उसके पास दुविधा होती ही नही। बुद्धि खो दे , दुविधा मिट जाती है। लेकिन, मैं मानता हूँ,यो दुविधा को मिटाना महगा हुआ,दुर्भाग्य हुआ। दुविधा मिटनी चाहिये

बुद्धि के अतिक्रमण से, और ऐसे बिन्दु पर पहुंचकर मिटनी चाहिए जहां से दोनो एक मालूम पडने लगे कि दुविधा न रह जाय। दो मे से एक चुनना एक रह जायेगा। आप दुविधा के नीचे गिर जायेंगे। यह अगर ठीक से कहे तो यह 'इर्रेशनल' हालत होगी। यह 'एब्सर्ड' हालत होगी—बुद्धि से नीचे गिर गये आप। दुविधा जरूर मिट गयी। पागल इसी तरह अपनी दुविधा मिटाते है। बुद्धि छोड देते है, फिर दुविधा मिट जाती है। 'ट्रासरेशनल' स्थिति भी है, 'इर्रेशनल बिलो रीजन' है 'ट्रासरेशनल अबव रीजन' है। बुद्धि के पार जाकर ही दुविधा मिटती है जहा दोनो एक दिखायी पडते है। वहा विरोध खो जाता है, एक के बचने से नही दो के मिट जाने से। एक ही रह जाने से। इसलिए मै कहता हूँ, दुविधा सौभाग्य है। वह अबुद्धि से बुद्धि मे ले जाती है। और, सौभाग्य इसलिए है कि उससे बुद्धि के पार बुद्धि अतीत का द्वार खुलता है।

प्रश्न : आपने कहा, आचार्य जी, कि शंकर की व्याख्या अधूरी है। गीता पर लगभग चालीस पचास व्याख्याए है। क्या कोई व्याख्या पूरी भी है ? लोकमान्य तिलक की व्याख्या को क्या आप पूरी कहेंगे ? वह 'एस्केपिस्ट' तो नहीं है, 'एक्टीविस्ट' है और 'मोरालिस्ट' भी है। आप उनके 'एक्टीविजन' को और शकर के 'सुपरमोरालिज्म' दोनो को एक साथ मिलाने का प्रयत्न करते है क्या ?

उत्तर कृष्ण पर कोई टीका पूरी नही है। हो नही सकती जब तक कि कृष्ण जैसा व्यक्ति ही टीका न करे। कृष्ण के अनन्त पहलू है। उनमे से टीकाकार जो प्रीतिकर है, चुन लेता है। शकर उसी टीका मे सन्यास सिद्ध कर देते हैं, अकर्म सिद्ध कर देते है। उसी गीता मे तिलक कर्म सिद्ध कर देते है, कर्मयोगी सिद्ध कर देते है। शकर से ठीक उल्टा पहलू तिलक चुन लेते है। शकर के पहलू को चुने हुए हजार साल हो गये। और,हजार साल मे शकर के पलायनवादी पहलू ने हिन्दुस्तान की जडो को बहुत तरह से कमजोर किया। हिदुस्तान मे जो भी सक्रिय होने की क्षमता थी हजार साल के अनुभव ने पेण्डुलम को घुमा दिया। जरूरी हो गया गीता की कोई व्याख्या हो जो कर्म को प्रश्रय दे और कहे जोर से कि गीता कर्म के लिए ही कहती है। ठीक दूसरे 'एक्सट्रीम' पर तिलक ने वक्तव्य दिया। शकर ने पहलू चुना था अकर्म का – कर्म छोडने वाले का, तिलक ने दूसरा पहलू चुना कर्म मे डूबने वाले का। और, कर्म की व्याख्या जो तिलक ने की, वह भी उतनी ही अधूरी है। बहुत सी व्याख्याए हैं गीता पर, पचास नही, हजार और रोज बढती जाती हैं। लेकिन, कोई टीका गीता के साथ न्याय नही कर पाती।

उसका कारण है कि कोई टीकाकार 'ट्रासरेशनल' होने की हिम्मत नही कर पाता। असल मे टीकाकार सदा रेशनल ही होता है। तर्क से पार अगर वह जाय तो गीता निर्मित हो जायेगी। टीका निर्मित नही होगी। तब टीका की कोई जरूरत नही रह जायेगी। टीका का मतलब ही यह होता है कि जो हमे समझ मे नही पडता उसे हम समझाने योग्य टिप्पणी दे रहे है। टीका का मतलब ही यह होता है, 'कमेट्री' का मतलब ही यह होता है कि जो गीता मे आपको समझ मे नही आता वह मै समझाता हूँ। मै उसकी एक व्याख्या करूगा। और, जब समझाने के लिए ही व्याख्या करूगा तब वह तर्क के पार नही जा सकेगी। तर्क के पार अगर कोई भी बात जायेगी तो वह स्वय गीता बन जायेगी यह बात पक्की है, वह फिर कमेट्री नही होगी — वह टीका नही होगी।

प्रश्न मेरे प्रश्न का एक अश बाकी था। शकर अकर्म और तिलक का कर्म इन दोनो को मिलाने से आप मानते है गीता पूरी हो, जायेगी? क्योंकि, जिस अति नैतिकता की बात आप करते है उसकी बात शकर करता है, तिलक नहीं। तिलक घोर नैतिकता" वादी है। और, जिस प्रवृत्ति की बात आप करते है वह तिलक करता है, शकर नहीं।

उत्तर यह बात सच है, शकर अति नैतिकवादी है, 'सुपरमोरालिस्ट'। क्योकि नीतिवादी कर्मवादी होगा। नैतिक धारणा कहेगी, यह करो और यह मत करो। शकर कहते है, सभी कर्म माया है। तुम चोरी करो कि साधुता करो, सब कर्म माया है। रात मे सपना देखू कि डाकू हो गया कि रात मे सपना देखू कि साधु हो गया। सुबह उठकर कहता हू, दोनो सपने थे, दोनो एक से बेकार हो गये। इसलिए, शकर के लिए कोई नीति नही है, कोई अनीति नही है। हो नही सकती। चुनाव का भी उपाय नही है। दो सपने मे कोई चुनाव होता है? न, चुनाव तो तभी हो सकता है जब हम दो यथार्थों मे चुनाव करते हो। चूकि जगत माया है इसलिए शकर के विचार मे नैतिकता की कोई जगह नही है। शकर की दृष्टि अति नैतिक है। वह नैतिकता के पार चली गयी। अकर्म नैतिकता के पार जायेगा ही। इसलिए, शकर की टीका के जब पहली दफा पश्चिम मे अनुवाद हुए तो लोगो ने उसे 'इममारल' ही समझा। उसे समझा गया कि यह तो बडी अनैतिक दृष्टि है। क्योकि, अगर कुछ ठीक नही, कुछ गलत नही, सभी कर्म एक से है और सभी स्वप्न एक से है तो आदमी भटक जायेगा। आदमी पतित हो जायेगा। तब आदमी का क्या होगा? पश्चिम में जो कि हिब्रू विचार पर खडे लोग है— जहा कि सार

धर्म 'डू दिस एण्ड डू नाट डू दिस,' इस पर खडा हुआ है, जहा 'टेन कमान्डमेंट्स' के आधार पर सारी सस्कृति खडी हुई , जहा धर्म का मतलब है साफ-साफ बताना कि क्या करो और क्या न करो, उनके लिए अगर शकर की बात अनैतिक मालूम पडे तो कठिन नही है। लेकिन, शकर की बात अनैतिक नही है। क्योकि अनैतिक का मतलब होता है, नीति के विपरीत चुनाव। शकर की बात अचुनाव की है, 'च्वाइसलेस' की है इसलिए अति नैतिक है। वह यह भी नही कहते कि तुम अनैतिक हो जाओ। वह यह नही कहते कि तुम नैतिक हो। वह यह नही कहते कि तुम चोर हो जाओ। वह यह भी नही कहते कि तुम साधु होने को चुनो। यही गलती है तुम्हारी। तुम कुछ होने को ही मत चुनो। तुम न होने मे हो जाओ। यह अति नैतिक 'ट्रासमोरल' दृष्टि है।

तिलक की दृष्टि नैतिक दृष्टि है। 'मोरल' दृष्टि है। वे कहते है, कर्म मे चुनाव है— शुभ कर्म है, अशुभ कर्म है, करने योग्य कर्म है, न करने योग्य कर्म है। वाछनीय है, अवाछनीय है। तिलक तो कर्मवादी है इसलिए वह जगत को अयथार्थ नही कहते, यथार्थ कहते है। यह जो दिखायी पड रहा है यह माया नही है सत्य है। और, इस सत्य के बीच हम जो है, निर्णायक है और ठीक और गलत का प्रति-पल चुनाव करते है। धर्म का अर्थ ही यही है कि प्रतिपल हम उसको चुने जो शुभ है। तिलक ठीक विपरीत व्याख्या मे है।

प्रश्न यह पूछा गया है कि क्या इन दोनो के मिला देने से पूरी बात हो जायेगी? नही, नही होगी पूरी बात। उसके कई कारण है। पहला जो सबसे बुनियादी कारण है, वह यह है कि अगर हम एक आदमी के हाथ पैर और हड्डिया सब अलग कर ले और फिर मिलाकर रख दे, तो क्या आदमी पूरा हो जायेगा? नही, पूरा नही होगा। आदमी पूरा हो तो हड्डिया इकट्ठी काम करती है। हड्डियो को जोड कर आदमी को पूरा करे तो पूरा आदमी नही होता है। 'पार्ट' को इकट्ठा करने से 'होल' पैदा नही होता, अश को जोडने से पूर्ण नही बनता। जोड कभी पूर्ण पर नही ले जाता। हा, पूर्ण मे अश जुडे होते है, यह बिल्कुल दूसरी बात है। तो जो मै कह रहा हूँ, उसमे तिलक और शकर समाहित हो जायेंगे। लेकिन, तिलक और शकर को जोडने से कृष्ण की पूरी दृष्टि नही समझी जा सकती।

और भी कारण है कि तिलक और शंकर ये सिर्फ दो दृष्टिया है। कृष्ण की बावन और हजार दृष्टिया है। लेकिन, सबको जोडने से कृष्ण नही बनेंगे। जोड हमेशा 'मिकेनिकल' होगा, 'आर्गनिक' नही होगा। एक मशीन को तो जोडकर हम पूरा बना सकते है, लेकिन एक व्यक्तित्व को— जीवन्त व्यक्तित्व को हम जोडकर

कभी पूरा नही बना सकते। 'मिकेनिकल' जोड मे और 'आर्गेनिक' जोड में, मृत जोड मे और जीवन्त जोड मे एक बुनियादी फर्क है जो ख्याल मे ले लेना चाहिए। मृत जोड अपने अशो का पूरा जोड होता है। जीवन्त जोड अपने अशो से थोडा ज्यादा होता है। जीवन्त जोड का मतलब है, जैसे आप है, अगर आपके शरीर के हम सारे अगो का हिसाब किताब कर ले कि कितना लोहा है आपके भीतर, कितना ताबा है आपके भीतर, कितना अल्युमीनियम है आपके भीतर, कितना नमक है, कितना पानी है, कितना फासफोरस है— कितना क्या है वह हम सब जोड-कर निकाल ले तो एक आदमी के भीतर मुश्किल से तीन-चार रुपये का सामान होता है। इससे ज्यादा नही होता। कोई ६० हिस्सा तो पानी ही होता है। जिसका दाम लगाना फिलहाल ठीक नही है। बाकी जो अल्युमीनियम, फासफोरस, लोहा इत्यादि होता है मिला-जुलाकर वह कोई तीन और चार रुपये या पाच रुपये के बीच मे होता है। यह सारा अगर हम एक कागज पर रख ले और इसको जोड ले तो जोड तो हो जाएगा, लेकिन आप उसमे बिल्कुल नही होगे। आप भर नही होगे, और सब होगा। क्योकि, आप एक जीवन्त व्यक्ति है जो इस जोड से ज्यादा—इस जोड के भीतर थे, लेकिन जोड ही नही थे। यह जोड पूरा हो जायगा और आप नही होगे।

कृष्ण का जो जीवन दर्शन है वह एक 'आर्गेनिक यूनिटी' है। उसके हजार पहलुओ पर टीकाए है। रामानुज कुछ और कहते, शकर कुछ और कहते, निम्बार्क कुछ और कहते है, वल्लभ कुछ और कहते है, तिलक कुछ और कहते है, गाधी कुछ और कहते है, विनोबा कुछ और कहते है, अर्जुन कुछ और कहते है। यह हजारो कुछ कुछ कहने वाले लोगो को अगर हम सबको इकट्ठा करके रख ले तो भी वह 'आर्गेनिक यूनिटी' पैदा नही होती जो कृष्ण है। सब इकट्ठा हो जायेगा, कृष्ण उसमे नही होगे। हा, इससे उल्टी बात जरूर सच है। अगर कृष्ण हो तो यह सब उनमे होगा, इससे कुछ ज्यादा भी हो सकता है। इसलिए, शकर और तिलक के जोडने से तो कुछ मामला बनता नही। अगर हम समस्त व्याख्याकारो को, समस्त टीकाकारो को जोड ले तो भी वह पूर्ण से कम होगा और मृत होगा। वह जीवन्त नही हो सकता।

इसलिए, मै जो कह रहा हूँ वह कृष्ण की व्याख्या नही कर रहा हूँ। मुझे उनकी व्याख्या से प्रयोजन ही नही है। इसलिए मै जरा भी चिन्तित और भयभीत नही हूँ कि मेरे वक्तव्यों मे विरोध हो जायेगा। होगा ही। क्योंकि, वह कृष्ण मे है, उसका मैं कुछ कर नहीं सकता। मैं कृष्ण को सिर्फ आपके सामने खोल रहा हूँ।

मैं अपने को उनपर थोपने का कोई उपाय नही कर रहा हूँ। सिर्फ उनको खोल रहा हूँ। वह जैसे है, गलत है, सही है, अनुचित है, उचित है, 'एबसर्ड' है, 'इरेशनल' है, 'सुपररेशनल' है। जैसे है,नैतिक है, अनैतिक है, जैसे है। मुझे उनमे कोई चुनाव नही है। जैसे, कृष्ण के जीवन मे चुनाव नही है ऐसा मैं उनमे कोई चुनाव नही करता। उनको बस खोले चला आ रहा हूँ। इसमे मैं बहुत कठिनाई मे पड़ूँगा ही। लेकिन, मैं तो सीधा पूरा ही खोल दे रहा हूँ। उसमे मैं वह फर्क कर ही नही रहा कि ऐसा कहने से कृष्ण की दूसरी बात कहने मे क्या कठिनाई होगी। न, इसका हिसाब ही नही रखना है। दूसरी बात जब होगी तो दूसरी कह दूगा, तीसरी बात जब होगी तब तीसरी कह दूगा। उनको खोलता चला जाऊगा। वह जैसे है पूरे आपके सामने खुल जाय। इसीलिए मैंने कहा, वह व्याख्या नही है, वह 'कमेंट्री' नही है।

प्रश्न – आचार्यजी, श्री अरविन्द ने जो टीका श्रीमद्भगवद् गीता पर लिखी है सृष्टि दृष्टिवाद, जिसमें सृष्टि पर भार है और दृष्टि सृष्टि-वाद जिसमे दृष्टि पर भार है—आप करीब करीब दोनो के पास आ गये। अरविन्द सुप्रामेंटल की जब बात करते है कि प्रभु की चेतना नीचे उतरेगी तब एक 'डिविनिज्म' आ जाता है। वह आ जाता है कि नहीं ? और रमण महर्षि का अजात वायु और चैतन्य महाप्रभु का अचिन्त्य भेदाभेद आपके पास भी आता है कि नहीं ?

उत्तर अरविन्द 'सुप्रामेटल' की बात करते है। अति चेतन की, अति मनस की बात करते है। लेकिन, बात है 'रेशनल'। अरविन्द बुद्धि से पार कभी नही जाते। वे अगर बुद्धि के अतीत की बात भी करते है तो विगत की धारणाओ मे करते है। अरविन्द निपट बुद्धिवादी है। वे जो बात करते है, जिन शब्दो, जिन धारणाओ की, वे बुद्धिवाद की धारणाए है। अरविन्द के पूरे वक्तव्यो मे बडी सगति है। जो 'सुपररेशनल' के वक्तव्यो में कभी नही होती। बडी 'कसिस्टेंसी' है। बडा गणित है। बडा तर्क है। जो 'मिस्टिक' के शब्दो मे नही होता। हो नही सकता। मिस्टिक के, रहस्यवादी के शब्द मे तो एक शब्द के बाद जो दूसरा शब्द होता है वह पहले का खण्डन करता है। अरविन्द कही अपना खण्डन नही करते। अरविन्द एक सुव्यवस्थित 'सिस्टम मेकर' है। 'सिस्टम मेकर' कभी भी 'सुपररेशनल' नही होता। सिस्टम बनाना हो तो 'रीजन' से बनती है। और, जो सुपररेशनल होते है सदा गैर सिस्टमैटिक होते है। सोचिए, व्यवस्था होगी कैसे अतर्क्य मे ? अचिन्त्य में व्यवस्था होगी कैसे ? इसलिए, इस सदी में जितने लोग 'रीजन' के थोड़े पार

गये है वे सब 'फ्रेगमेटरी' है, सिस्टेमेटिक नही है। चाहे विडिगनस्टी हो, चाहे हुसेरर हो, चाहे ह्राइडिगर हो, मारलुकान्टी हो—कोई भी हो, चाहे कृष्णमूर्ति हो सब फ्रेगमेटरी है। उनकी कोई सिस्टम नही है। ये कोई व्यवस्था नही बनाये हुए हैं। इनके वक्तव्य 'एटामिक' है। आणविक है। और एक वक्तव्य दूसरे वक्तव्य का खण्डन कर सकता है, करता है।

अरविन्द का मामला बहुत भिन्न है। सच तो यह है कि शकर के बाद हिन्दुस्तान मे अरविन्द के मुकाबले बडा 'सिस्टम मेकर' नही हुआ। इतना बडा व्यवस्थापक नही हुआ, लेकिन यही उनकी दीनता है। क्योकि, वह शब्द, तर्क और सिद्धान्त के बडे माहिर और कुशल खिलाडी है। लेकिन, जिन्दगी का असली शब्द इन सबके पार है। असल में अरविन्द की शिक्षा पश्चिम मे हुई। सीखकर लौटे वे तर्क और गणित। सीखकर लौटे वे पश्चिम के सोचने की 'अरिस्टोटेलियन' पद्धति। सीख के लौटे वे डार्विन का विकासवाद। सीखकर लौटे वे विज्ञान की तर्क-चिन्तन व्यवस्था। अरविन्द से ज्यादा पाश्चात्य मानस का व्यक्ति नही था इस सदी मे। फिर पूरब की उन्होने व्याख्या की। जो होना था वह हुआ। पूरब के पास कोई तर्क व्यवस्था नही है। पूरब की गहनतम अनुभूतिया अतर्क्य है, पूरब के अनुभव अचिन्त्य हैं, पूरब के अनुभव अज्ञात है। अनजान के, ज्ञान के अतीत के, जानने वाले के पार के है। पूरब का अनुभव रहस्य का है। 'मिस्ट्री' का है। अरविन्द पश्चिम का मानस लेकर पूरब की अनुभूतियो की व्याख्या करने बैठे, सो एक अच्छी व्यवस्था बनी, जो कि पूरब का कोई आदमी न बना सकता था। उन्होने सारी बाते की अचिन्त्य की, और सारे साधन उपयोग किये चिन्त्य के। लेकिन, वे बाते, बाते ही है जो वे चिन्त्य के माध्यम से कर सके। अगर अनुभव भी अरविन्द का अचिन्त्य का हो तो सब 'कटेग्रीज' टूट जाती है। वे कटेग्रीज मे नही जी सकते है। यानी मजे की बात यह है कि वे उन चीजो के लिए भी धारणाए बनाते है, जिनके लिए कभी धारणाए नही बनायी गयी थी। जैसे 'सुप्रामेटल'—वह बनाते जाते है धारणाए, वह खण्ड करते जाते है, वह ठीक गणित बिठाये चले जाते है, वह सारी बात करते है।

दूसरी बात जो पूछी है वह इस सबध मे ख्याल लेने जैसी है। समस्त धर्मों का चिन्तन एक अर्थ मे गैर विकासवादी है। 'नानइवोल्यूशनरी' है। समस्त धर्म दो हिस्सो मे बटे है। एक हिस्सा है, जो 'क्रिएशन' में मानता है, सृष्टि मे मानता है। जैसे ईसाई हैं, मुसलमान है, हिन्दू है, सब सृष्टि मे मानते हैं। यह मानते है परमात्मा ने सृष्टि की। और जो लोग सृष्टि मे मानते हैं वे गहरे मे विकास

में नही मान सकते । क्योंकि, विकास मे मानने का यह मतलब होगा कि परमात्मा ने जब पहले बनायी सृष्टि तो वह अपूर्ण थी । और, फिर धीरे धीरे उसमें विकास हुआ । पूर्ण परमात्मा अपूर्ण को नही बना सकता । इसलिए सृष्टिवादी विकास-वादी नही हो पाता । विकास का मतलब है, रोज विकास हो रहा है । सृष्टि का मतलब है एक क्षण मे पूरा-का-पूरा सृजन किया गया है । विकास नही हो रहा है ।

जो ऐसा नही मानते थे — जैसे जैन या बौद्ध, उन्होने माना कि सृष्टि हुई ही नही । जो है वह अनादि है । उसका कभी सृजन नही है । सृजन हुआ ही नही । इसलिए बडे मजे की बात है, सृष्टि हिन्दुओ का शब्द है । प्रकृति जैनो, बौद्धो, साख्यो का शब्द है । अब सब घोलमेल हो गया । प्रकृति शब्द हिन्दुओ का नही है । क्योकि, हिन्दू प्रकृति कह ही नहीं सकते । प्रकृति का मतलब है, जो बनाने के पहले से मौजूद है । 'प्रीक्रिएशन' है । जो सदा मौजूद ही है, जिसको कभी बनाया नही गया । सृष्टि का मतलब है, जो मौजूद नही थी और कभी बनायी गयी । इसलिए प्रकृति शब्द बडे और लोगो का है । साख्य , जैन या बौद्ध चूकि सृष्टि को नही मानते है इसलिए उनके पास स्रष्टा की कोई धारणा नही है । जब बनाया ही नही गया तो बनाने वाले का कोई सवाल नही, इसलिए ईश्वर खो गया । उसकी नई जगह वहा नही रही । जिन्होंने सृष्टि मानी उनके पास स्रष्टा है ।

अरविन्द पश्चिम से धारणा लेकर आये 'इवोल्यूशन' की । अरविन्द की शिक्षा हुई तब डार्विन छाया हुआ था योरोप मे । वह धारणा लेकर आये विकास की । यहा आकर पूर्वी मनस का, पूर्वी अनुभूतियो का उन्होने अध्ययन किया । मै कहता हूँ — जाना नही । अध्ययन उनका गहन है, ज्ञान उनका इतना गहन नही है । मनन और चिन्तन उनकी बडी तीव्र मेधा है । लेकिन, अनुभूति उनकी बहुत क्षीण है । जब उन्होने पूरब का अध्ययन किया और पश्चिम का मनस और डार्विन के ख्याल लेकर आये, तो जिसको हम कहते है, 'क्रास ब्रीडिंग'—अरविन्द मे क्रासब्रीडिंग हो गयी । एक वर्णशकर विचार पैदा हुआ । उस वर्णशकर विचार मे विकास का सिद्धात भारत के मनस मे जुड गया । अब बडी तकलीफ हुई । क्योकि भारत का मनस प्रकृति की, पदार्थ की चिन्तना ही नही करता । वह चिन्तना करता है चित्त की, मनस की, आत्मा की । किन्तु दोनो के जोड से एक 'साईकिक इवोल्यू-शन' का ख्याल अरविन्द को पैदा हो गया—कि एक मनस का विकास हो रहा है । इस विकास मे एक नयी बात उन्होने जोडी जो बिल्कुल उनकी थी और बिल्कुल नयी है । और इसी कारण बिल्कुल गलत है । मौलिक बाते अक्सर गलत हो जाती हैं । क्योकि एक ही व्यक्ति उनको खोजता है । परम्परागत बाते

सड़ जाती है, जड़ हो जाती है, लेकिन अक्सर गलत नहीं होती। क्योंकि, करोड़ो लोग उन्हे खोजते है।

अरविन्द का नवीनतम ख्याल जिसकी वजह से उनकी प्रतिष्ठा हुई, वह है परमात्मा की चेतना का अवतरण। सदा ऐसा ही सोचा गया है कि व्यक्ति उठेगा ऊपर और परमात्मा से मिलेगा। एक ऊर्ध्वगमन होगा। अरविन्द कहते है, परमात्मा उतरेगा और गले मे मिलेगा। एक तरह से सोचने पर यह भी एक सिक्के के दो पहलू है। असल मे सत्य बहुत बीच मे है। सत्य यह है कि मिलन वहा होता है, जहा हम भी कुछ चले होते है और परमात्मा भी कुछ चला होता है। लेकिन, पुरानी धारणा हमारे चलने पर जोर देती थी। उसका कारण था। क्योंकि, परमात्मा का चलना तो सुनिश्चित है, हमारा चलना ही सुनिश्चित नही है। वह तो चलेगा ही, इसलिए उसको छोडा जा सकता है, हिसाब के बाहर रखा जा सकता है। हमारे चलने भर की बात है। हम अपने चार कदम उठा ले, उसके चार कदम उठने ही वाले है। इसलिए उसको छोड दिया था, ख्याल के बाहर रखा था। क्योंकि, उसके चलने पर जोर देने का कही परिणाम हमारे चलने की कमजोरी न बन जाय। अरविन्द ने दूसरे पहलू से पकडा और कहना शुरू किया कि परमात्मा उतरेगा। इसका प्रभाव पडा। क्योंकि, जो चलने के लिए बिल्कुल उत्सुक नही थे, उन्होने कहा, यह बडी हृदय की बात है। यह लगती है, जचती है। इसलिए हिन्दुस्तान मे अरविन्द की तरफ जितने लोग दौडे पिछले वर्षों मे उतना किसी के पीछे नही दौडे। उसका कुल कारण इतना था, कि जो भी और गहरे अर्थों मे दौड नही सकते थे वह पाण्डीचेरी की तरफ दौडने लगे। उन्हे लगा कि यह सस्ता मामला है। पाण्डीचेरी तो पहुचा जा सकता है। उसके बाद परमात्मा उतरेगा।

परमात्मा के उतरने की बात सच है, लेकिन हमारे चढे बिना वह कभी नही उतरता। इसमे एक दूसरी बात ध्यान रखने की है, इस चढने के मामले मे कि मै चढूगा तो परमात्मा मुझ पर उतरेगा, आप चढे तो आप पर उतरेगा, लेकिन उतरने के मामले मे कैसे तय होगा कि किस पर उतरे? कोई हिसाब करेगा, चुनाव करेगा कि इसपर उतरू, इसपर न उतरू? तो पाण्डीचेरी मे एक ख्याल पैदा हुआ कि अरविन्द कोशिश करेगे और सब पर उतर जायेगा। ख्याल यह हुआ कि जब एक पर उतर आयेगा– जैसे कि गगा उतरी भगीरथ पर तो भगीरथ पर थोडे ही उतरी, उतर गयी सबके लिए, बह गयी। भगीरथ का काम अरविन्द कर देंगे और एक दफा परमात्मा उतर गया तो फिर सब पानी पियेंगे। फिर गगा के किनारे

सब बस जायेंगे। इस भ्रम ने बड़ा उपद्रव पैदा किया मैं मानता हूँ यह बड़ी गलत धारणा है। घटना उतरने की घटती है, लेकिन व्यक्ति को तैयारी करनी पड़ती है। और सामूहिक रूप से कभी परमात्मा उतरेगा, ऐसा मुझे कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता। क्योंकि, परमात्मा की तरफ से तो वह सदा उतरने को तैयार ही है, लेकिन समूह कब तैयार होगा ? और समूह मे आप आदमी ही है सिर्फ, उड़ते हुए पक्षी नही है, पौधे नही है। जगल के जानवर नही है, मेंढक के किनारे के पत्थर नही है ? परमात्मा जिस दिन उतरेगा उस दिन पत्थर वचित रहेगा ? आपको मिल जायेगा ? उस दिन पौधे वचित रहेगे, आपको मिल जायेगा ? यह सोचना असभव है। इसलिए अरविन्द की जो धारणा उतरने की है उसने हमारे लोभ को तो बड़ा सुख दिया लेकिन वह सार्थक नही है। इसलिए पाण्डीचेरी मे जो प्रयोग चल रहा है उससे ज्यादा व्यर्थ प्रयोग मनुष्य जाति के इतिहास मे कभी नही चला। एकदम व्यर्थ प्रयोग चल रहा है। लेकिन वह हमारे लोभ के अनुकूल पड़ता है इसलिए चल सकता है।

अरविन्द को सोचते वक्त दूसरा नाम स्मरण दिलाया है रमण का। रमण अरविन्द से ठीक उल्टे आदमी है। अरविन्द बड़े पण्डित है तो रमण का पाण्डित्य से कभी कोई नाता नही था। अरविन्द बड़े जानकार है, तो रमण से गैर जानकार आदमी खोजना मुश्किल है। अरविद सब जानते मालूम पड़ते है लेकिन रमण अज्ञानी होने की तैयारी मे है। रमण कुछ जानते हुए नही मालूम पड़ते। इसलिए रमण की जिन्दगी मे जो सम्भव हो वह अरविन्द की जिन्दगी मे सम्भव नही हो सका है। अरविन्द जानकार बने रहे और रमण जान गये। रमण की जिन्दगी मे घटना घटी है। लेकिन वे जानकार बिल्कुल नही है इसलिए उनके वक्तव्य एक ऐसे आदमी के है जो ज्ञान की भाषा जानता ही नही। ज्ञान मिल गया है, पर ज्ञान की भाषा नही जानता। इसलिए वक्तव्य की दृष्टि से वक्तव्य बड़े कमजोर है। तर्क की दृष्टि से बड़े दीन है, लेकिन अनुभव की दृष्टि से उनकी समृद्धि का कोई मुकाबला नही है। रमण कोई सिस्टम नही बना सकते, कोई व्यवस्था नही दे सकते। रमण के सब वक्तव्य 'एटामिक' है। आणविक है। ज्यादा है भी नही, थोड़ा सा कहने को है जितना जाना है। और वह जो जाना है, उसको कहने के लिए भी उनके पास बहुत शब्द नही है। थोड़े शब्दो मे वह उसको कहे चले जाते है। इसलिए रमण को तो एक पन्ने पर इकट्ठा किया जा सकता है। एक पन्ना भी बड़ा पड़ सकता है, पोस्टकार्ड भी काफी है। लेकिन, अगर अरविन्द को इकट्ठा करने चलो तो एक लाईब्रेरी भी छोटी है। और ऐसा नही है कि अरविन्द जो कह सकते थे वह सब कह गये है। उसको कहने के लिए भी दस-पाच जन्म लेने पड़ेंगे। उनके

पास कहने को बहुत था। इसका यह मतलब नही है कि उनके पास कहने को बहुत था इसलिए उन्होने नही जाना। नही, इससे कोई बाधा नही पडती। बुद्ध के पास कहने को बहुत है। बुद्ध ने बहुत कहा। बुद्ध, रमण जैसे आदमी है अनुभव की दृष्टि से, और जानकारी की तरह वे अरविन्द जैसे आदमी है। कहने का उपाय उनके पास बहुत है। महावीर ने बहुत कम कहा है। महावीर का ज्यादा समय मौन मे बीता। बहुत थोडे वक्तव्य है महावीर के। और जो भी है बहुत सक्षिप्त है। रमण जैसा मामला दीखता है। महावीर ने बहुत नही कहा। दिगम्बरो के पास तो कोई ग्रन्थ ही नही है महावीर का। श्वेताबरो के पास ग्रन्थ है, वह भी महावीर के पाच सौ वर्ष बाद इकट्ठे किये गये।

दूर और पास नही है कुछ। कृष्णमूर्ति ठीक रमण जैसे व्यक्ति है। रमण, बुद्ध, अरविन्द--इनको मैने क्यो तौला, उसका कुछ कारण है। कृष्णमूर्ति ठीक रमण जैसे अनुभव के व्यक्ति है। लेकिन, अरविन्द जैसी जानकारी कृष्णमूर्ति की भी नही है। हा, रमण से ज्यादा मुखर है। रमण से ज्यादा तर्कयुक्त है, लेकिन कृष्णमूर्ति के तर्क मे बडा फर्क है। अरविन्द एक तार्किक है, कृष्णमूर्ति तार्किक नही है। और, अगर तर्क का उपयोग कर रहे है तो पूरे वक्त तर्क को मिटाने के लिए ही कर रहे है। अगर तर्क की पूरी-की-पूरी चेष्टा है तो वह अतर्क मे प्रवेश के लिए ही है। लेकिन, जानकार बहुत नही है। इसलिए, मैने दूर का उदाहरण लिया। बुद्ध से मैने इसलिए कहा, ताकि आपको दोनो बाते ख्याल मे आ जाये--बुद्ध का अनुभव रमण जैसा और जानकारी अरविन्द जैसी। कृष्णमूर्ति का अनुभव रमण जैसा, जानकारी अरविन्द जैसी नही।

दूसरा फर्क, रमण बहुत मौन है, कृष्णमूर्ति मुखर है। इसलिए, कृष्णमूर्ति के भी वक्तव्यो को अगर छाटा जाय तो बहुत ज्यादा नही है। इसलिए, जो कृष्ण-मूर्ति को सुनते है वह अनुभव करेगे कि वह एक ही चीज को निरन्तर चालीस वर्षों से दोहराये चले जा रहे है। एक पोस्टकार्ड पर उनके वक्तव्य भी इकट्ठे हो सकते है। लेकिन, वह कहने मे ज्यादा विस्तार लेते है। तर्क का उपयोग करते है। रमण विस्तार भी नही लेते। इसको ऐसा भी समझें कि कृष्णमूर्ति के वक्तव्य तो एटामिक है, लेकिन वक्तव्यो के आस-पास वे तर्क का, विचार का, चिंतन का जाल भी खडा करते है। रमण के वक्तव्य निपट एटामिक है। उनके आस-पास कोई वक्तव्य का, तर्क का, समझाने का जाल भी नही है। रमण के वक्तव्य उपनिषदो जैसे है। सीधे 'स्टेटमेट' है। उपनिषद कह देता है, ब्रह्म है और वह यह भी फिक्र नही करता है कि क्यो है? है कि नही है। कैसे है, क्या तर्क है, क्यो है, यह कुछ नही। रमण उपनिषद के ऋषियो से जोडे जा सकते है।

रमण, या रमण जैसे और लोग भी जो है वे कहते है-वह कभी जन्मा नहीं, अजात है। यह दूसरा पहलू है एक और बात का, जिसे हम निरन्तर कहते है, लेकिन ख्याल मे नही लेते। सैकडो वक्तव्य है इस बात के कि जो है वह मरेगा नही। अमृत है। अमर्त्य है। इसका दूसरा पहलू, अमर्त्य वही हो सकता है जो अजात है। जो जन्मा न हो। रमण कहते है, जो है वह जन्मा नही है। इसीलिए तो जो है वह मरेगा नही। यह बडे मजे की बात है, आप कब जन्मे, आपको पता है ? आप कहेगे—नही, पता तो नही है। हा, जन्म के लेखे जोखे है, जो दूसरो ने हमे बताये। अगर मुझे कोई न बताये कि मै जन्मा, तो क्या मुझे पता चल सकेगा कि मै जन्मा ? ये 'इन्फर्मेशन' है जो दूसरो ने मुझे दी है। दूसरे मुझे कहते है कि फला फला तारीख को फला फला घर मे मै जन्मा। अगर यह खबर मुझे न दी जाय तो क्या कोई भी उपाय मेरे पास भीतरी है, जिससे मै पता लगा सकू कि मै कभी जन्मा ? नही, आपके पास भीतरी कोई 'एवीडेस' नही है कि आप जन्मे है। असल मे भीतर जो है वह कभी जन्मा ही नही, 'एविडेस' हो कैसे सकता है ? आप कहते है कि मै कभी मरूगा, लेकिन आपको मरने का कोई अनुभव है ? नही। आप कहेगे, दूसरो को हमने मरते देखा। लेकिन, समझ ले कि एक आदमी को हम किसी को मरते न देखने दे—इसमे कोई कठिनाई नही है। क्या एक ऐसा आदमी, जिसको हम किसी को मरते न देखने दे, कभी इस नतीजे पर पहुच सकेगा किसी भी कारण से, किसी भीतरी वजह से कि मै मरूगा ? नही पहुच सकता है। यह भी 'आउटर एविडस' है। यह भी हमने किसी और को मरते देखा है। लेकिन, हमारे भीतर कोई प्रमाण नही है, कोई गवाही नही है कि हम मरेगे। इसीलिए, शायद इतने लोग मरते है, फिर भी हमे ख्याल नही पैदा होता कि हम मरेगे। मरते जाते है, सोचते है मर रहा होगा दूसरा कोई। बाकी भीतरी कोई गवाही नही है कि मै मरूगा, न भीतरी कोई गवाही है कि मै कभी जन्मा। भीतर की गवाही किस चीज की है ? भीतर की सिर्फ एक गवाही है कि मै हूँ। और कोई गवाही नही है। तो गैर-गवाही की बाते माने जाने के लिए रमण मना करते है। वह कहते है कि जो जितनी पक्की गवाही है उतना ही मानना काफी है। मै हूँ, इतनी गवाही है। मै भी यही कहता हूँ, मै हूँ इतनी गवाही है। और, अगर थोडे और भीतर प्रवेश करेगे तो पायेंगे, मै भी नही हूँ। हूँ, इतनी ही गवाही है।



पर्व : चौदह

अरविंद का कृष्ण-दर्शन

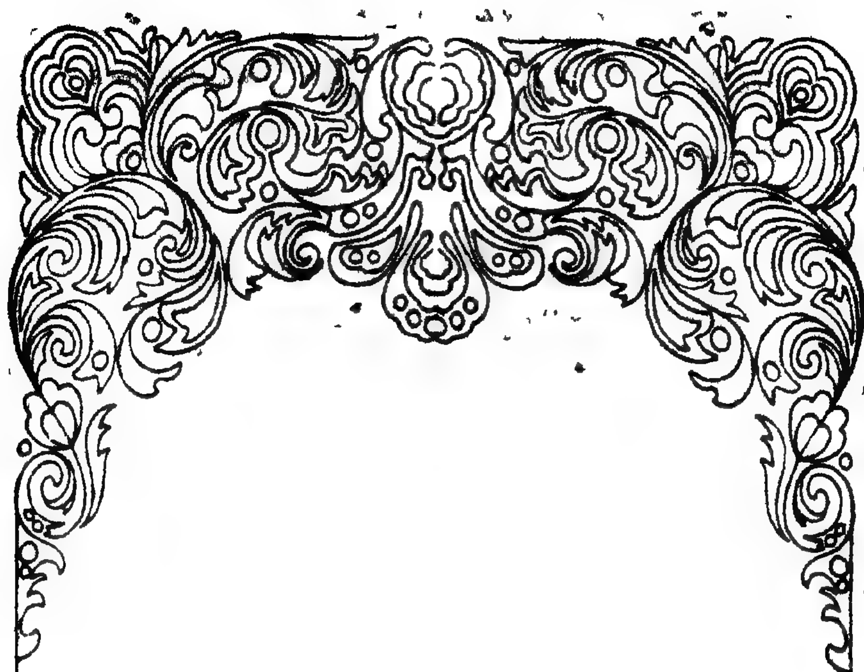
अर्जुन का व्यक्तित्व

गुरु पूर्णिमा : छाया-आत्मा से संबंध स्थापन

आत्मा का पुनर्जन्म

समर्पण और सम्बन्ध





१४

प्रश्न : कृष्ण-दर्शन के बारे में कुछ कहने को बाकी रह गया था। आपने अहमदाबाद में बताया था कि बहुत हद तक मानसिक प्रक्षेपण हो सकता है। अरविन्द का कृष्ण-दर्शन क्या मानसिक प्रक्षेपण है या mystic अनुभूति है ?

प्रश्न : अर्जुन यदि सिर्फ निमित्त मात्र है तो वे यंत्र मात्र रह जाते हैं, उनकी individuality का क्या होगा ?

उत्तर : कृष्ण-दर्शन या क्राइस्ट का दर्शन या बुद्ध या महावीर का दर्शन

दो प्रकार से सम्भव है। एक, जिसको 'मेंटल प्रोजेक्शन' कहे, मानसिक प्रक्षेपण कहें। जब कि वस्तुत कोई साम्य नही होता, लेकिन हमारे मन की वृत्ति ही आकार लेती है। जब कि वस्तुत हमारा विचार ही आकार लेता है। जब कि वस्तुत हम ही बाहर के भी रूप के निर्माता होते हैं। मानसिक प्रक्षेपण से मतलब यह है कि वस्तुत उस प्रक्षेपण, उस रूप, उस आकृति के पीछे कोई भी नही होता। मन की यह भी क्षमता है। मन की यह भी शक्ति है। जैसे, रात हम स्वप्न देखते हैं वैसे ही हम खुली आख से भी सपने देख सकते हैं। एक तो यह सभावना है।

दूसरी सभावना कृष्ण-दर्शन की—कृष्ण-रूप के दर्शन की सभावना नहीं है, कृष्ण-आकृति के दर्शन की सम्भावना नही है। कृष्ण चेतना मे डूबे होने की, कृष्ण चेतना के विस्तार के अनुभव की, कृष्ण चेतना के साक्षात्कार की सम्भावना है। जैसा मैंने कल कहा था कि एक तो सागर रूप कृष्ण और एक लहर रूप कृष्ण हैं। लहर रूप कृष्ण का उपयोग उनके सागर रूप अनुभव के लिए किया जा सकता है। उनके चित्र, उनके प्रतीक, उनकी मूर्ति का उपयोग उनके सागर रूप दर्शन के लिए किया जा सकता है। लेकिन, जब उनका सागर रूप दर्शन होगा तब कृष्ण की प्रतिमा विदा हो जायेगी, विलीन हो जायेगी। कृष्ण की आकृति खो जायेगी, शून्य हो जायेगी। कृष्ण की प्रतिमा का उपयोग हो सकता है उनके विराट दर्शन के प्राथमिक बिन्दु की तरह। लेकिन, अगर किसी को विराट का तो दर्शन नही होता, कृष्ण की प्रतिमा का ही दर्शन होता है, कृष्ण की आकृति का ही दर्शन होता है तो वह सिर्फ मानसिक प्रक्षेपण है। परन्तु, जिसको कृष्ण चेतना का दर्शन होगा उस चेतना का अनुभव, आकृति का अनुभव नही है। उस चेतना का अनुभव रूप का अनुभव नही है। यह सब नाम की बात होगी कि वैसा आदमी चूकि कृष्ण को प्रेम करता है या कृष्ण की आकृति से उसने यात्रा की है इसलिए इस अनुभव को कृष्ण चेतना का अनुभव कहेगा। यही अनुभव बुद्ध की आकृति से भी हो जायेगा, जीसस की आकृति से भी हो जायेगा। जीसस से चलने वाला इसको क्राइस्ट का अनुभव कहेगा, कृष्ण से चलनेवाला कृष्ण का अनुभव कहेगा। लेकिन, यह अनुभव सागर रूप का है।

अरविन्द जिस अनुभव की बात कर रहे है वह कृष्ण की आकृति है। वे कृष्ण के व्यक्ति के अनुभव की बात कर रहे हैं। वे कहते है, कृष्ण ही उनके सामने साकार खडे हैं। ऐसा अनुभव प्रक्षेपण है। 'मेंटल प्रोजेक्शन' है। इसका बडा सुख है, इसका बडा रस है, लेकिन है यह हमारे मन का विस्तार। यह हमारे मन ने ही चाहा है, यह हमारे मन का ही खेल है, यह हमारे मन ने ही फैलाया और

जाना है। मन से हम शुरू करेंगे, लेकिन अंत तो अ-मन पर, 'नोमाइण्ड' पर होगा। यह बड़े मजे की बात है कि जहां तक रूप है वहां तक मन होता है। जहां तक आकृति है वहां तक मन होता है। जहां रूप और आकृति नहीं होती वहां मन खो जाता है, वहां मन के होने का उपाय नहीं। मन का भोजन है, आकृति, रूप, सगुणता। अगर सगुण खो जाय तो मन भी खो जाता है। और, जिस कृष्ण के दर्शन की मैं बात कर रहा हूँ, वह मन के रहते नहीं होगा, वह मन के खोने पर होता है। तो जिसने भी कभी कहा हो कि मैंने कृष्ण को व्यक्ति रूप में जाना, पहचाना देखा और मिले, वे विराट चेतना के पर्दे पर अपने मन की आकृति को 'प्रोजेक्ट' कर रहे हैं। जैसे, फिल्म के पर्दे पर पीछे प्रोजेक्टर होता है और पर्दे पर चीजें दिखायी पड़नी शुरू हो जाती हैं जो दरअसल वहां नहीं हैं। वहां सिर्फ कोरा पर्दा है। ऐसे ही हमारे मन का उपयोग हम 'प्रोजेक्टर' की भांति कर सकते हैं, करते हैं। लेकिन, यह अनुभव आध्यात्मिक अनुभव नहीं है। यह अनुभव 'साइकिक एक्सपीरिएंस' है, मानसिक अनुभव है। सुख इससे मिलेगा, क्योंकि कृष्ण को जानना, कृष्ण को देख लेना बड़ा तृप्तिदायी होगा। लेकिन, यह सुख ही है, आनन्द नहीं है। और, न सत्य की अनुभूति है। अरविन्द पण्डित थे इसलिए मैं कह रहा हूँ कि उनका अनुभव प्रोजेक्शन है, ऐसी बात नहीं है। अनुभव का जो ढंग है वह, 'प्रोजेक्शन' का है। अनुभव का जो वे चित्रण कर रहे हैं, जो वर्णन कर रहे हैं वह 'प्रोजेक्शन' का है। अगर सागर रूप कृष्ण का अनुभव हो या सागर रूप क्राइस्ट का, उसमें बहुत फर्क नहीं पड़ता। वह अनुभव कभी खोयेगा नहीं। वह एक बार कभी हुआ कि हुआ। इसके बाद उसके अतिरिक्त कोई अनुभव ही नहीं बचेगा। इसके बाद वृक्षों में, पौधों में, पत्थर में, लोगों में सब तरफ कृष्ण ही दिखायी पड़ने लगेंगे। लेकिन, प्रोजेक्शन तो आयेगा और चला जायेगा। वह एक क्षण चमकेगा और खो जायेगा।

यह भी ध्यान में लेने जैसी बात है कि 'प्रोजेक्शन' का जो अनुभव है, या मानसिक चित्रों का जो देख लेना है, उसे अरविन्द केवल पण्डित होने के कारण नहीं देख पा रहे हैं (क्योंकि, पण्डित तो चित्रों को देखने में भी असमर्थ होता है) अरविन्द की एक और दिशा भी है, वह काव्य की दिशा है। अरविन्द पण्डित ही नहीं महाकवि भी हैं। और, रवीन्द्रनाथ से कम हैसियत के कवि नहीं हैं। अगर नोबल प्राइज उन्हें नहीं मिल सका तो इसका कारण यह नहीं है कि उन्होंने रवीन्द्र-नाथ से कम हैसियत की कविता लिखी। उसका कुल कारण यह है कि उनकी कविता दुरूह है और समझ में नहीं आ सकी। 'सावित्री' दुनिया के श्रेष्ठतम महाकाव्यों में से एक है, सिर्फ दस-पांच महाकाव्य उसकी कोटि के महाकाव्य हैं। इसलिए,

पण्डित तो नही देख सकता प्रोजेक्शन; लेकिन अरविन्द का कवि देख सकता है। और, अरविन्द के भीतर जो कवि की क्षमता है वही आसान कर देगी उन्हे कि कृष्ण को वह देख ले। उनका कवि हृदय ही प्रोजेक्शन कर पाता है। प्रक्षेपण कवि हृदय के लिए आसान है। शुष्क तर्क ही अगर उनके जीवन मे हो तो प्रक्षेपण भी नही हो सकता है। उन्होने जो अभिव्यक्ति की है, अति बुद्धिवादी शब्दो मे, इस कारण नही कह रहा हूँ कि वे सिर्फ जानकार है। क्योकि, अभिव्यक्ति तो तर्क के और बुद्धि के शब्दो मे करनी ही होती है। लेकिन, यह तर्क किसी पार की कोई खबर नही लाते, किसी 'ट्रासिडेंस' की कोई खबर नही लाते, इसलिए कह रहा हूँ।

हम शब्दो का प्रयोग दो तरह से कर सकते है—एक तो शब्दो का प्रयोग हम ऐसा कर सकते है जब शब्दो का अर्थ शब्द की सीमा के भीतर होता है। जितना बडा शब्द होता है उतना ही बडा अर्थ होता है। एक शब्द का प्रयोग हम ऐसा कर सकते है जबकि अर्थ तो बडा होता है और शब्द छोटा होता है। अरविन्द के साथ उल्टा मामला है। उनके शब्द बहुत बडे है, अर्थ बहुत छोटा है। अरविन्द बडे शब्दो का उपयोग करते है। लम्बे-लम्बे शब्दो का उपयोग करते है। शब्द से अर्थ अगर ज्यादा हो तो 'ट्रासिंट' करता है और 'मिस्ट्री' मे प्रवेश कर जाता है। अगर शब्द, अर्थ से बहुत बडा हो तो ज्यादा 'फिलोसफी' मे – बल्कि 'फिलोसफी' भी न कहकर 'फिलोलोजी' मे, दर्शन मे भी नही, भाषा शास्त्र मे प्रवेश कर जाता है। शब्द से बड़ा अर्थ जब शब्द लेकर चलता है तो गर्भित हो जाता है, 'प्रेगनेन्ट' हो जाता है। अरविन्द का कोई शब्द 'प्रेगनेन्ट' नही है। उसके पार जाने वाला उसमे कोई सूचक 'एरो' नही है। कारण है उसके।

जैसा मैंने सुबह आपसे कहा कि अरविन्द का सारा शिक्षण जहा हुआ, वहा उन दिनो जैसा विज्ञान पर डार्विन हावी था, ठीक वैसे ही 'फिलोसफी' पर हीगल हावी था। हीगल ने बडे-बडे शब्दो का प्रयोग किया है जिनमे अर्थ उतना नही है। लेकिन, हीगल को पढते वक्त ऐसा लगता है कि बडी गहरी बाते कही जा रही है। क्योकि, अक्सर हमे जो बात समझ मे नही आती उसे हम गहरा समझ लेते है। यह जरूरी रूप से सच नही है। हालाकि यह जरूर सच है कि जो गहरी होती है वह आसानी से समझ में नही आती। अरविन्द का भी कहने का ढग हीगेलियन है। वह कहते तो बहुत कम है, लेकिन शब्द बडे उपयोग करते है। वह बहुत लम्बा चक्कर लेते है। अरविन्द को पढ जाने के बाद मुंह मे जो स्वाद छूट जाता है वह सिर्फ शब्दो का है, अनुभव का जरा भी नही है। अरविन्द को पढकर ऐसा लगेगा कि जो भी कहने योग्य था उससे भी ज्यादा अरविन्द कह सके।

इसमें तो रवीन्द्रनाथ का मुझे एक स्मरण आता है, उससे आपकी समझ में आये ·

रवीन्द्रनाथ के मरने के कुछ घड़ियो पहले एक मित्र ने रवीन्द्रनाथ को कहा कि तुमने तो गा लिया, जो तुम्हे गाना था। अब तुम शांति से, सुख से, परमात्मा को धन्यवाद देते हुए विदा हो सकते हो। तुम्हे जो करना था वह तुम कर चुके पृथ्वी पर। रवीन्द्रनाथ ने आख खोली और कहा कि कैसी गलत बात कर रहे हो ? मैं तो यह प्रार्थना कर रहा हूँ परमात्मा से कि अभी तो मैं साज जमा पाया था, बिठा पाया था, ठोक पीटकर, मृदग को, सितार को तैयार कर पाया था और यह विदा होने का वक्त आ गया ! अभी मैंने गाया कहा ? जिसको लोगो ने गीत समझा है वह केवल साज का ठोक पीटना था। अभी मैं वह कहा कह पाया जो मुझे कहना था ! लेकिन, अगर कोई अरविन्द से कहे तो अरविन्द यह न कह सकेगे । अरविन्द बिल्कुल कह चुके हैं जो उन्हे कहना था। बडे ढग से और व्यवस्था से कह चुके है। अरविन्द और रवीन्द्र मे मैं कहूगा कि रवीन्द्र कही ज्यादा 'मिस्टिक' है बजाय अरविन्द के। ज्यादा रहस्य की तरफ उनके इशारे हैं। अरविन्द के इशारे बहुत साफ है। रहस्य की तरफ नही है।

एक बात और पूछी है—यह पूछी है कि अगर अर्जुन सिर्फ निमित्त मात्र है और जो होना था वह होना ही है तो फिर अर्जुन के व्यक्तित्व का क्या होगा ? फिर वह एक 'इन्स्ट्रूमेंट' मात्र, एक साधन रह जायेगा। इसे ऐसा समझने की कोशिश करेंगे तो बडी सरलता से कुछ सत्य दिखायी पडेगे। अगर किसी व्यक्ति को 'इन्स्ट्रूमेंट' बनाया जाय तो उसका व्यक्तित्व नष्ट होता है। लेकिन, अगर कोई व्यक्ति इन्स्ट्रूमेंट बन जाय तो उसका व्यक्तित्व खिलता है, नष्ट नही होता। अगर कोई दबाव डालकर किसी आदमी को साधन बना दे तो उस आदमी की आत्मा मर जाती है। लेकिन, अगर कोई अपने ही हाथ से समर्पण कर दे और अपने आप को पूरा छोड़ दे विश्व की धारा मे और साधन बन जाय तो उसकी आत्मा पूरी तरह खिल जाती है। उसका व्यक्तित्व नष्ट नही होता, 'फुलफिल्ड' होता है। फर्क इतना ही है कि अगर मेरे ऊपर जबरदस्ती आप हथकडिया डाल दे तो मै गुलाम हो जाता हूँ। और, मै हथकडिया उठाकर आपको दे दू और कहू कि मेरे हाथ मे डाल दे, तो मै गुलामी का भी नियन्ता हो जाता हूँ। मै अपनी गुलामी का भी निर्धारक हो जाता हूँ। मै निरन्तर डायोजनीज की कहानी कहता हूँ। उस बात को कहना अच्छा होगा।

डायोजनीज गुजरता है एक जगल से। नगा फकीर और अलमस्त आदमी

है। कुछ लोग जा रहे हैं गुलामो को बेचने बाजार। उन्होने देखा इस डायोजनीज को। सोचा कि यह आदमी पकड़ मे आ जाय तो दाम अच्छे मिल सकते हैं। ऐसा गुलाम कभी बाजार मे बिका नही है। बड़ा शानदार! ठीक महावीर जैसा शरीर अगर किसी आदमी के पास था दूसरे फकीरो मे तो वह डायोजनीज के पास था। मै तो यह निरन्तर कहता रहा हूँ कि महावीर नग्न इसलिए खडे हो सके कि वह इतने सुन्दर थे कि ढाकने योग्य कुछ था नही। बहुत सुन्दर व्यक्तित्व था। वैसा डायोजनीज का भी व्यक्तित्व था। गुलामो ने सोचा, हम हैं तो आठ, लेकिन पकड़ेगे कैसे? यह हम आठ की भी मिट्टी कर दे सकता है। यह अकेला काफी है। मगर, फिर भी उन्होने सोचा कि हिम्मत बाधो। यह ध्यान रखे, जो दूसरे को दबाने जाता है वह हमेशा भीतर अपने को कमजोर समझता है। वह सदा भयभीत होता है। वह आठो डर गये, लेकिन बड़ा पक्का निर्णय करके आठो एकदम से हमला करते हैं। अगर डायोजनीज उनके हमले का जवाब देता तो वह मुश्किल में न पड़ते। क्योकि, उनकी योजना मे इसकी चर्चा हो गयी थी। डायोजनीज उनके बीच मे आख बन्द करके हाथ जोडकर खडा हो जाता है और कहता है, क्या खेल खेलने का इरादा है? वह बडी मुश्किल मे पड गये हैं कि इससे क्या कहे। उन्होने कहा, माफ करें, हम आपको गुलाम बनाना चाहते है। डायोजनीज ने कहा, इतने जोर से कूदने फादने की क्या जरूर है? नासमझो, निवेदन कर देते, हम राजी हो जाते! इतनी उछल कूद, इतना छिपना छिपाना, यह सब क्या कर रहे हो? बन्द करो यह सब। कहा हैं तुम्हारी जजीरे? डायोजनीज ने कहा। वह तो एकदम मुश्किल में पड गये। ऐसा आदमी कभी नही देखा था जो कहे, कहा हैं तुम्हारी जजीरे? और, इतना डाटकर वह पूछता है जैसे मालिक वह है, और गुलाम ये है। जजीरे उन्होने निकाली और डरते हुए दे दी। डायोजनीज ने हाथ बढा कर कहा कि बन्द करो। वह कहने लगे, आप यह क्या कर रहे हैं। हम आपको गुलाम बनाये आये थे, आप खुद बने जा रहे हैं। डायोजनीज ने कहा, हम यह राज समझ गये कि इस जगत मे स्वतत्र होने का एक ही उपाय है और वह कि गुलामी के लिए भी दिल से राजी हो जाओ, तब हमें कोई गुलाम बना नही सकता है। अब उपाय ही न रहा तुम्हारे पास। अब तुम कुछ न कर सकोगे। फिर वह डरे हुए उसको बाधकर चलने लगे। डायोजनीज ने कहा, नाहक तुम्हे इन जजीरो का बोझ ढोना पड रहा है। इन्हें उतार कर फेंक दो। मैं तुम्हारे साथ चल ही रहा हूँ और भागने वाला नही हूँ। उन्होने जजीरें उतार कर रख दी, क्योकि जिसने अपने हाथ में जजीरें पहनवा लीं उसको अब और जजीरो में बाध कर ले जाने का क्या मतलब? डायोजनीज फिर भी शान से चल रहा है और जिन्होने

गुलाम बनाया है वे बड़े डरे हुए चल रहे हैं कि पता नहीं वह उपद्रव न कर दे। जगह-जगह जो भी देखता है वह डायोजनीज को देखता है। डायोजनीज कहता है, क्या देख रहे हो ? ये मेरे गुलाम हैं। वह जगह-जगह यह कहता फिरता है कि ये मुझे छोड़कर नही भाग सकते है, ये मुझसे बंधे हैं। वह बेचारे बड़े हतप्रभ हुए जा रहे हैं। किसी तरह वह बाजार आ गये है। उन्होंने जाकर किसी से गुफ्तगू की, जो बेचनेवाला था उससे बातचीत की। कहा कि जल्दी नीलाम इस आदमी को चढा दो, क्योंकि इसकी वजह से हम बड़ी मुसीबत मे पड़े हुए हैं। भीड़ लग जाती है और वह लोगो से यह कहता है कि ये मेरे गुलाम हैं। कीमती आदमी है और पैसा अच्छा मिल जायेगा इसलिए उसे तख्त पर खड़ा किया जाता है। नीलाम करने वाला जोर से चिल्लाता है कि एक बहुत शानदार गुलाम बिकने आया है। कोई खरीददार है ? उसी वक्त डायोजनीज बड़े जोर से चिल्लाता है और कहता है, चुप नासमझ, अगर तुम्हें आवाज लगाना नही आता है तो आवाज हम लगा देते है। वह घबरा जाता है, क्योंकि किसी गुलाम ने कभी उस नीलाम करने वाले को इस तरह नही डाटा था। डायोजनीज चिल्लाकर कहता है कि आज एक मालिक इस बाजार मे बिकने आया है, किसी को खरीदना हो तो खरीदे !

जिस 'इन्स्ट्रूमेंटलिटी' मे, जिस यान्त्रिकता मे हम यन्त्र बनाये जाते है, जहा हमारी मजबूरी है, जहा हम गुलाम की तरह है वहा तो व्यक्तित्व मरता है। लेकिन, कृष्ण अर्जुन से यह नही कह रहे है कि तू यन्त्रवत बन जा। कृष्ण अर्जुन से यह कह रहे हैं कि तू समझ, इस जगत की धारा से तू व्यर्थ ही लड मत। इस धारा को समझ, इसमें आडा मत पड, इसमे बह। और, तब पूरा खिल जायेगा। अगर कोई आदमी अपने ही हाथ से समर्पित हो गया है इस जगत के प्रति, इस सत्य के प्रति, इस विश्व यात्रा के प्रति तो वह यन्त्रवत नही है, वही आत्मवान है। क्योंकि, समर्पण से बड़ी और कोई घोषणा अपनी मालकियत की इस जगत मे नही है। इस बात को थोडा ठीक से समझ लेना। क्योंकि, अगर मै अपने को समर्पित करता हूँ तो उसका मतलब ही यह है कि मै अपना मालिक हूँ और समर्पित कर सकता हूँ। इसमे अर्जुन यन्त्रवत नही हो जाता। इससे अर्जुन आत्मवान हो जाता है। और, उसका व्यक्तित्व पहली दफा पूरी निश्चेष्टा मे 'इफर्टलेसली' खिलता है।

प्रश्न : फिर लौटकर अरविन्द के कृष्ण-दर्शन पर आ रहे है। आपने बताया कि वह आत्म प्रोजेक्शन लगता है। लेकिन, आपने दोपहर एक बात बतायी कि आज भी लामा पद्धति के अनुसार एक ऐसा दिन

आता है जबकि कुछ अधिकारी लामा, बुद्ध के साथ आज भी संपर्क स्थापित करते हैं। एक बार और भी। जब आप गांधीजी पर बोल रहे थे तब किसी ने आपसे प्रश्न किया था कि आप ऐसी बात गांधीजी के संबंध में कैसे कहते हैं? क्या गांधीजी ने ऐसा कहा? तो आपने कहा, मैं यह बात गांधी से पूछकर कह रहा हूँ। तीसरी बात और। लामा पद्धति के बारे मे ऐसा भी पढ़ने में आया है कि अब भी तिब्बत मे कुछ वर्ष पूर्व तक ऐसे लामा थे जो कि जीवित अवस्था मे भी सूक्ष्म शरीर से दूसरे स्थान पर पहुचकर स्थूल रूप से अपने दर्शन देते थे और वापस अपने स्थल पर आ जाया करते थे। इन बातो के बारे मे मैं आपसे कुछ जानना चाहता हूँ।

उत्तर इस सम्बन्ध मे दो-तीन बाते समझ ले। ऐसा मैंने कहा है कि बुद्ध-पूर्णिमा के दिन, जिस हिमालय की श्रृंखलाओ मे हम बैठे है, इसी हिमालय के किसी शिखर पर एक विशेष घडी मे बुद्ध के व्यक्तित्व का दर्शन होता है। पाच सौ लामाओ से ज्यादा उस पर्वत शिखर पर कभी नही हुए है। उन पाच सौ मे से जब एक कम होता है तभी एक नये लामा को जगह मिलती है। लेकिन इसमे, और कृष्ण के दर्शन मे जो अरविन्द को हुए, बुनियादी फर्क है। कृष्ण के दर्शन मे अरविन्द चेष्टारत है। इस दर्शन मे बुद्ध चेष्टारत है। लामा नही। लामा सिर्फ मौजूद होते हैं। इस फर्क को बहुत ठीक से समझ लेना चाहिए। यह बुद्ध का आश्वासन है कि बुद्ध-पूर्णिमा के दिन फला-फला पर्वत पर रात्रि के इतने क्षणो मे वे प्रकट होगे। बुद्ध का सागर रूप जो है, इस रात की इस घडी मे फिर लहर बनेगा। लेकिन, इसमे लामा कुछ भी नही कर रहे है। उनका कोई 'पार्ट' नही है। दूसरा फर्क—अरविन्द का दर्शन अकेले मे हुआ दर्शन है। 'प्रोजेक्शन' मे और इसमे बुनियादी फर्क है। ये पाच सौ लोग इकट्ठा दर्शन करते हैं। 'प्रोजेक्शन' हमेशा 'पर्सनल' होता है। उसमे दूसरे आदमी को 'पार्टीसिपेट' नही करवाया जा सकता। अगर अरविन्द को जिस कृष्ण के दर्शन हो रहे हैं, आप कहें कि हम भी इस कमरे मे आ जाय, हमको भी करवा दे तो वह कहेगे, यह नही हो सकता। यह मुझको ही होता है। इसको दूसरे आदमी के साथ भागीदारी मे नही देखा जा सकता। लेकिन, पाच सौ व्यक्तियो के सामने जब कोई चीज प्रकट होती है तो इसको व्यक्तिमन का 'प्रोजेक्शन' नही कह सकते। दूसरी बात यह कि पांच सौ लोग 'टैली' करते है कि हा ठीक है—ठीक घडी पर, ठीक समय पर जो दिखायी पडा है, जो सुनायी पड़ा है— इसके पाच सौ गवाह है। अरविन्द तो अकेले

खुद ही गवाह है। उससे भी पहले जो मैंने बात कही, उस कृष्ण-दर्शन मे अरविन्द की सतत चेष्टा है। उसमे पूरा प्रयास है कि कृष्ण का दर्शन कैसे हो। इसमे कोई चेष्टा नही है। इसमे एक घडी पर एक आश्वासन है, जो पूरा होता है। एक लहर, जो पीछे सागर मे उठी थी, वायदा कर गयी है कि फला-फला घडी तुम इस तट पर इकट्ठे हो जाना, मैं फिर उठूगी।

यह जो पाच सौ की सीमित सख्या है, इसमे हर व्यक्ति प्रवेश नही पाता। सिर्फ वे ही लोग प्रवेश पाते है जो अपने अचेतन चित्त को जानने मे समर्थ हो सके है। वह उसकी पात्रता का नियम है। जब तक अचेतन चित्त पर हमारी अपनी सामर्थ्य नही है तब तक 'कलेक्टिवली' हम 'हिप्नोटाइज' हो सकते है। लेकिन, जिस दिन मेरे अपने अचेतन चित्त का मुझे पता हो गया उस दिन मुझे 'हिप्नोटाइज' नही किया जा सकता। उस दिन कोई उपाय नही है। क्योकि, मेरे भीतर वह हिस्सा नही रहा जहा सुझाव डालकर मेरे सामने कोई 'प्रोजेक्शन' करवाया जा सके। इसलिए एक लामा के हटने पर ही दूसरा लामा चुना जाता है और वह चुनाव भी बडी मुश्किल का चुनाव है। उसके बडे अजीब नियम है।

अभी यह दलाई लामा जो आज है, यह पिछले दलाई लामा की ही आत्मा है। पिछला दलाई लामा जब मरता है या एक दलाई लामा जब मरता है तो वह अपना वक्तव्य छोड जाता है कि अगली बार इस-इस शरीर के ढग मे मैं प्रकट होऊगा, तुम खोज लेना। एक अजीब बात और है कि एक छोटा-सा सूत्र भी छोड जाता है। उस सूत्र की पूरे तिब्बत के गाव-गाव मे बैण्ड पीटकर घोषणा की जाती है। दलाई लामा जब मरेगा, तो कितने वर्ष बाद तिब्बत के गाव-गाव वह सूत्र घुमाया जाय, इसकी वह सूचना कर जायेगा। क्या-क्या चिन्ह उस लडके पर होगे, इसकी सूचना कर जायेगा। और, इसका उत्तर सिवाय इस दलाई लामा के किसी को भी पता नही है। वह उत्तर लिखकर रख जायेगा वह सब 'सील्ड' होगा। और, जब कोई बच्चा उसका उत्तर दे देगा, सारे चिन्ह मिल जायेगे, तब वह 'सील्ड' उत्तर खोला जायेगा। अगर वह उत्तर वही है जो इस बच्चे ने दिया है तो गवाही होगी कि यह दलाई लामा के योग्य हो गया, इसको दलाई लामा की जगह पर बिठा दिया जायेगा। यह उसकी ही आत्मा, जो उत्तर लिखकर गयी थी, उत्तर दे रही है। तिब्बती लामाओ की परम्परा के अपने बडे अजीब सूत्र है। यह जो एक आदमी खाली हो जायेगा, इस खाली आदमी को खोजने के नियम है। और इस पर सब तरह के प्रयोग करके यह जाचने की कोशिश की जायेगी कि यह आदमी 'हिप्नोटाइज तो नही हो सकता। अगर यह हो जाता है तो यह पास नही होगा। बुद्ध-

पूर्णिमा के दिन किया कुछ भी नही जाता । पाच सौ लामा एक खास घडी में, एक खास क्षण मे मौन चुपचाप खडे हो जाते हैं । और घटना घटती है । न कोई सुझाव दिया जाता है, न कोई बात की जाती है, न कुछ किया जाता है । यह बहुत भिन्न मामला है । यह अरविन्द के कृष्ण-दर्शन का मामला नहीं है ।

दूसरी बात, जैसा मैंने कहा, उन आत्माओ से, जिनके शरीर तो छूट गये, लेकिन जो अभी सागर रूप नही हो गयी है, सबध स्थापित किये जा सकते है । जो आत्माए, शरीर तो छोड चुकी है, लेकिन अभी सागर रूप मे खो नही गयी है, अशरीरी जिनका व्यक्तित्व है, उनसे सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते है । उसमे जरा भी कठिनाई नही है । कृष्ण अशरीरी आत्मा नही है । सागर रूप हो गये हैं । गाधी अशरीरी आत्मा है । साधारण रूप से जो लोग भी मर जाते है, उन सबसे सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं । उसके अपने नियम, अपनी विधि, अपनी 'टेकनोलॉजी' है । यह बडी सरल-सी बात है । कई बार ऐसी आत्माए अपने स्वजनो से खुद भी सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करती है । पर, हम घबरा जाते है उससे, हम परेशान हो जाते है । जिनको हमने बहुत प्रेम किया है उनको भी हम अशरीर देखकर प्रेम करने को राजी न हो ! जिन्हे हमने बहुत चाहा है वे भी अगर कल शरीर के बिना हमारे द्वार पर उपस्थित हो जाय तो हम दरवाजा बन्द करके पुलिस को चिल्लायेगे कि हमे बचाओ । क्योकि, हमने केवल शरीर को ही पहचाना है । उससे गहरी हमारी कोई पहचान नही है । जो आत्माए शरीर के बाहर है, लेकिन नये जन्मो की तलाश में है उनसे सम्बन्ध स्थापित करना बहुत सरल-सी बात है । न उसमे 'प्रोजेक्शन' का सवाल है, न उसमे उनके प्रकट होने का सवाल है । सिर्फ उनके पास शरीर रूपी यत्र नही रहा । बाकी उनके पास सारे यत्र है । इस-लिए आपको उनसे सम्बन्ध स्थापित करने का थोडा-सा ख्याल हो तो बडी आसानी से कर सकते है ।

यहा हम इतने लोग बैठे है । यहा ऐसा नही है कि हम इतने ही लोग बैठे है । जितने दिखायी पडते है उतने तो बैठे ही है, जो नही दिखायी पडते है वह भी मौजूद है । और उनसे अभी तत्काल, अभी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है । सिर्फ आपको 'रिसेप्टिव' होने की जरूरत है । कमरा बन्द कर ले और तीन आदमी कमरे मे सिर्फ आख बन्द करके हाथ जोडकर बैठ जाय, और इतनी ही प्रार्थना कर ले कि इस कमरे मे कोई आत्मा हो तो वह अपनी सूचनाए दे । आप जो सूचनाए उसको कह दे वह देना शुरू करती है । आप इतना ही कह दे कि टेबल पर जो पेपरवेट रखा है, यह उछलकर जवाब देने लगे, तो आप दो-चार दिन मे पायेंगे कि

आपका पेपरवेट उछलकर जवाब दे रहा है। आप यह कह सकते हैं कि दरवाजे पर खट-खट करके आवाज कर दे वह आत्मा, तो दरवाजे पर आवाज हो जायेगी। फिर इसको आप आगे बढ़ा सकते है। यह बहुत कठिन नही है। क्योकि, आत्माए चौबीस घण्टे चारो तरफ मौजूद हैं। और, ऐसी आत्माएं भी चारो तरफ मौजूद हैं जो हमेशा 'विलिंग' है, अगर आप कुछ कहें तो करने को सदा तत्पर है। जो बडी उत्सुक है कि आप किसी तरह का सम्बन्ध उनसे स्थापित कर ले। जो 'कम्युनिकेशन' के लिए बडी आतुर है। जो कुछ कहना चाहती हैं, लेकिन उनको कहने का उपाय नही मिल रहा क्योकि उनके और आपके बीच शरीर का ही 'कम्युनिकेशन' का माध्यम था, वह टूट गया और दूसरे माध्यम का हमे कोई पता नही है। इसमे अडचन नही है। यह बहुत सीधी-सी, सरल-सी प्रेतात्मा-विद्या का हिस्सा है।

यह जो पूछा गया है कि क्या जैसा कहा जाता है कि इस शरीर से आत्मा दूर जाकर वापस लौट आ सकती है? बिल्कुल ही लौट आ सकती है। जा भी सकती है। क्योकि, शरीर से हमारा होना, शरीर मे हमारा होना है। उससे बाहर की यात्रा सदा सम्भव है। उसके अपने मार्ग, अपनी विधिया है। शरीर के बाहर हुआ जा सकता है, यात्रा की जा सकती है, दूर तक जाया जा सकता है, फिर वापस लौटा जा सकता है। कई बार आकस्मिक रूप से भी वैसा हो जाता है। जिसका आपको कुछ पता नही लगता। ध्यान के किसी गहरे क्षण मे आप अचानक कई बार ऐसा अनुभव कर पायेंगे कि आपको लगेगा कि आप शरीर के बाहर हो गये है और अपने ही शरीर को देख रहे है। फिर उस सबके विस्तार है। पर वह अलग बात है। उस पर कभी अलग ही हम इकट्ठे मिले तो प्रेतात्मा-विद्या पर सारी बात की जा सकती है।

प्रश्न : आचार्यजी, रहस्य विद्या के अतिरिक्त बौद्धिक स्तर पर भी आत्मा को समझने का और पुनर्जन्म का कोई प्रमाण है? यानी दार्शनिक रूप से भी क्या हम सिद्ध कर सकते है, बिना साधना मे गये, कि आत्मा है और पुनर्जन्म होता है?

उत्तर : जो व्यक्ति मरता है, उसका सिर्फ शरीर ही मरता है, उसका चित्त नही मरता। उसका मन नहीं मरता, वह उसके साथ जाता है। जैसे, हम सुबह स्वप्न से जब जागते हैं तो थोडे समय तक स्वप्न याद रहता है। दोपहर होते-होते तिरोहित हो जाता है। सांझ होते-होते कुछ याद नही रहता कि क्या स्वप्न था। लेकिन, जब उस स्वप्न से हम एकदम उठते हैं तब स्वप्न का पिछला हिस्सा हमे थोडा-सा याद होता है। हालाकि स्वप्न हमने बेहोशी मे देखा। स्वप्न होश मे नही देखा।

लेकिन, जब नीद टूटने के करीब होती है और थोड़ा सा होश आने लगता है तो उस होश मे जितना स्वप्न, जितने भी सस्कार छूट जाते है वह हमे जागने पर याद रहते है। प्रेतात्मा को, जैसे ही कोई व्यक्ति शरीर को छोडता है (प्रत्येक व्यक्ति की याददाश्त पर समय भिन्न-भिन्न होगा) उसे थोडे समय तक अपने स्वजन, अपने प्रियजन याद रहते है। इन स्वजन और प्रियजनो को भुलाने के लिए बहुत उपाय किये गये है। आदमी मरा नही कि हम उसकी लाश को तत्काल मरघट ले जाना चाहते है। हम उसकी 'आइडिन्टिटी' को तत्काल नष्ट करना चाहते है। क्योकि, अब कोई अर्थ नही है कि वह हमे याद रखे। यह शरीर जितनी देर रखा जा सके उतनी देर तक वह हमे याद रख सकेगा, क्योकि इसी शरीर के माध्यम से उसकी सारी स्मृतिया हमसे है। यह शरीर बीच का जोड है। इसको हम ले जाते है— एकदम से आदमी मरता है तो थोडी देर तक उसे पता ही नही चलता कि वह मर गया है। क्योकि, भीतर तो कुछ मरता नही। थोडी देर तक उसे ऐसे ही अनुभव होता है कि क्या कुछ गडबड हो गयी। शरीर अलग मालूम पडता है, मै अलग हो गया हूँ। हा, जो लोग ध्यान मे गये है, उन्हे यह तकलीफ नही होती, क्योकि इस अनुभव से वे पहले गुजर गये होते है। मरने पर अधिकतम लोगो को बडी बेचैनी पैदा होती है? पहली बेचैनी यही पैदा होती है कि यह मामला क्या है? यह लोग रो क्यो रहे है? यह चिल्ला क्यो रहे है कि मै मर गया, क्योकि मै तो हूँ। सिर्फ इतना ही मालूम होता है कि शरीर अलग पडा है जो मेरा था और मै जरा अलग मालूम पड रहा हूँ। और तो कुछ मर नही गया। इसी शरीर के माध्यम से हमारा सारा 'एसोसिएशन' है स्मृतियो का। इसलिए, हम तत्काल मरघट ले जाते है शरीर को और उसको जला देते है या गाड देते है। शरीर के टूटते ही उस आदमी की स्मृतियो के जाल हमसे एकदम विच्छिन्न हो जाते है। जैसे सपने से उठा आदमी थोडी देर मे स्वप्न भूल जाता है, ऐसा मृत्यु से उठा आदमी या जिसे हम जीवन कहते थे उससे उठा हुआ आदमी थोडी देर मे सब भूल जाता है। वह कितनी देर मे भूल जाता है उसके हिसाब से हमने दिन तय किये है। जिनकी स्मृति बहुत कमजोर है वह तीन दिन मे भूल जाते है। जिनकी स्मृति थोडी अच्छी है वह तेरह दिन मे भूल जाते है। ये बहुत सामान्य हिसाब से तय किये गये दिन है। तीन दिन मे भूल जायेगे कि तेरह दिन मे भूल जायेंगे, लेकिन यह आमतौर से है। लेकिन, प्रगाढ से प्रगाढ स्मृति का आदमी एक वर्ष मे भूल जाता है। इसलिए, वर्ष तक मृतक के कुछ सस्कार हम जारी रखते है। एक वर्ष तक उसके साथ हम थोडा सम्बन्ध जारी रखते है, सभावना है। लेकिन, सामान्यतया तीन दिन मे सब टूट जाता है। वह व्यक्ति व्यक्ति पर निर्भर होगा। साल भर तक

बहुत कम आत्माए बचती है आत्मा रूप मे, शीघ्र नये जन्म ग्रहण कर लेती है। जो मरते वक्त पूरे होश मे है वह तो कभी मरता नही। क्योकि, वह जानता है कि सिर्फ शरीर छूटा। और जो इतने होश मे है उसका न कोई स्वजन है, न कोई प्रियजन है, न कोई पराया है। जो इतने होश मे है वह स्मृतियो के बोध से लदता नही। जो इतने होश मे है उसकी तो बात है ही नही। और, जो मृत्यु मे होश से मरता है वह अगले जन्म को होश से ले पाता है। जैसा, मैने कहा कि मृत्यु के बाद थोडे दिन तक हमे स्मरण होता है जहा से हम आये। जन्म के बाद भी बच्चे को थोडे दिन स्मरण होता है, जहा से वह आया। एक प्रेतात्म जीवन का जो अनुभव बीच में गुजरा उसकी थोडी स्मृतियां उसके पास होगी। लेकिन, वह धीरे-धीरे खो जाती है। और इसके पहले कि वाणी उसे उपलब्ध होती है, खो जाती है। कभी-कभी बहुत ही तीव्र स्मृति वाले बच्चो को वे स्मृतिया शेष रह जाती है जो उसके बोलने के बाद भी जारी रहती है। वह 'रेयर' घटना है, स्मृति की बहुत ही अनूठी सभावना के कारण ऐसा होता है।

एक सवाल इस सम्बन्ध मे पूछा गया है कि क्या रहस्यात्मक अनुभूति के अतिरिक्त भी पुनर्जन्म का कोई दार्शनिक प्रमाण है? दार्शनिक प्रमाण तो सिर्फ तार्किक होते है। तर्क के आधार पर होते है। और, तर्क की एक खराबी है कि जितने वजन का तर्क पक्ष मे दिया जा सकता है ठीक उतने ही वजन का तर्क विपक्ष मे दिया जा सकता है। जो जानते है वह तर्क को वेश्या कहते है। वह किसी के भी साथ खडा हो सकता है। कोई अपना निजी मन्तव्य तर्क का नही है। जिन लोगो ने तर्क और दर्शन से सिद्ध करने की कोशिश की है कि पुनर्जन्म है उनके विपरीत ठीक उतने वजन के तर्क है, उससे सिद्ध किया जा सका है कि पुनर्जन्म नही है। तर्क वकील की तरह है। उसका अपना कोई हिसाब नही है। किसने उसको किया है अपनी तरफ, उसकी तरफ वह बोलता है। वह अपनी पूरी ताकत लगाता है। इसलिए तर्क से कभी कोई निष्कर्ष निष्पन्न नही होता। बहुत निष्कर्ष निष्पन्न होते हुए मालूम होते है, होते कभी नही। क्योकि, ठीक विपरीत तर्क से उतना ही खण्डन किया जा सकता है, उसमे कोई कठिनाई नही है। इसलिए दर्शन शास्त्र कभी तय नहीं कर पायेगा कि पुनर्जन्म है या नही। बाते कर पायेगा, हजारो साल तक बाते कर पायेगा; लेकिन कुछ सिद्ध नही होता है। तर्क के साथ एक मजा है कि जिसे आप सिद्ध करते है उसे आपने पहले ही माना होगा। तर्क तो आप पीछे उपयोग मे करते हैं। हा, 'एज्यूम' पहले ही किया होता है।

एक मित्र है, बडे प्रोफेसर है और किसी विश्वविद्यालय मे पुनर्जन्म पर खोज

का कार्य करते हैं। कोई मुझे उनको मिलाने लिवा ले आया। उन्होने मुझसे मिलते ही कहा कि मैं वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूँ कि पुनर्जन्म है। मैंने उनसे कहा कि यह तो फिर वैज्ञानिक न हो पायगा, क्योंकि क्या सिद्ध करना चाहते हैं, यह आप पहले ही पक्का किये हुए हैं। वैज्ञानिक का मतलब यह होता है कि आप ऐसा कहिये कि मैं जानना चाहता हूँ कि पुनर्जन्म है या नही। आप कहते हैं, मैं सिद्ध करना चाहता हू कि पुनर्जन्म है—तो जो सिद्ध होना है वह तो पहले ही आपके मन मे है। पुनर्जन्म है यह तो पक्का ही है। अब रह गया यह कि दलीले इकट्ठी करनी हैं। तो दलीले इकट्ठी की जा सकती हैं। एक आदमी सिद्ध करना चाहता है कि पुनर्जन्म नही है, तो दलीले विपक्ष मे भी इकट्ठी की जा सकती है। यह जगत इतना अद्भुत है और इतना जटिल है कि यहा सब तरह के पक्षो के लिए दलीले उपलब्ध हो जाती है। इसमे कोई कठिनाई नही है।

दर्शन कभी सिद्ध नही कर पायेगा कि पुनर्जन्म है या नही। आप सवाल को थोडा और हटाकर पूछे। ऐसा पूछे कि क्या विज्ञान कुछ कह सकता है कि पुनर्जन्म है या नही ? दर्शन तो कभी नही कह पायेगा, वह कह रहा है पाच हजार साल मे, कुछ हल नही होता। जो मानते है, वह माने चले जाते है। जो मानते है नही है, वह नही माने चले जाते है। और 'है वाला' कभी 'नही है वाले' को 'कनविंस' नही कर पाता। 'नही है' वाला 'है वाले' को 'कनविंस' नही कर पाता। यह बडे मजे की बात है, जो 'कनविंस' पहले से ही नही है वह कभी 'कनविंस' होता ही नही। तर्क के साथ तर्क की यह नपुंसकता है कि आप सिर्फ उसी को 'कनविंस' कर सकते है जो 'कनविंस्ड' था ही। अब इसमे कोई मतलब ही नही। एक हिन्दू को आप कनविंस कर सकते है कि पुनर्जन्म है, क्योंकि वह कनविंस्ड है। एक मुसलमान को कनविंस करने जाइये तब पता चलता है। एक ईसाई को आप कनविंस कर सकते है कि पुनर्जन्म नही है, एक हिन्दू को कनविंस करने जाइए तब पता चलता है। जो पहले से ही राजी है किसी सिद्धान्त के लिए, तर्क उसी के लिए खेल कर पाता है, और कुछ नही कर पाता है।

सवाल को कुछ ऐसा पूछिये कि क्या वैज्ञानिक ढंग से कुछ कहा जा सकता है कि पुनर्जन्म है या नही ? हा, विज्ञान कोई पक्ष लेकर नही चलता। दर्शन पक्ष लेकर चलता रहता है, तर्क पक्ष लेकर चलता रहता है। असल मे वैज्ञानिक चित्त का मतलब ही यह है कि जो निष्पक्ष है, और जिसके लिए दोनो 'अल्टरनेटिव', खुले हुए हैं, जिसने अभी 'क्लोज' नही किया। जो कहता है, यह भी हो सकता है, वह भी हो सकता है। हम खोजने चलते है। योरोप और अमरीका मे अभी 'साइकिक

सोसाइटीज' निर्मित हुईं, उन्होंने थोड़ा-सा काम करना शुरू किया है । अभी कोई पचास साल हुए कुछ थोडे-से बुद्धिमान लोगो ने खोज शुरू की है जिनके पास कि वैज्ञानिक की बुद्धि है, रहस्यवादी की नही । क्योकि, रहस्यवादी तो बहुत दिन से कहता है कि है, लेकिन प्रमाण नही दे पाता । वह कहता है कि मै जानता हूँ । तुम भी जान सकते हो । लेकिन, मैं तुम्हें नही जान सकता। रहस्यवादी कहता है कि मेरे सिर के दर्द जैसा है, मुझे पता है कि है । तुम्हारे सिर मे दर्द होगा, तुम्हे पता चल जायेगा, लेकिन मेरे सिर-दर्द का पता तुम्हे नही चल सकता । पिछले पचास वर्षों मे योरोप मे कुछ थोडे-से लोग हुए—ओलीवर लाज, ब्राड, राइन इन सारे लोगो ने कुछ दिशाए खोजनी शुरू कीं । ये सारे वैज्ञानिक चित्त के लोग है । जिनकी कोई मान्यता नही है । इन्होने कुछ काम करना शुरू किया है, वह काम धीरे-धीरे प्रामाणिक होता जा रहा है । इन्होंने जो काम किया है उसकी निष्पत्तिया गहरी है, और उसकी निष्पत्तिया कि पुनर्जन्म होता है इस दिशा मे प्रगाढ होती जाती है। नही होता है इस दिशा मे क्षीण होती जाती है। जैसे, प्रेतात्माओ से सम्बन्ध स्थापित किये जा सके है बडी तरकीबो से, बडी व्यवस्थाओ से । सब तरह के वैज्ञानिक ढगो से कोशिश की जा सकी है कि कोई धोखा नही है । प्रेतात्माओ से सम्बन्ध स्थापित किये गये है वैज्ञानिक ढग से और उन सम्बन्धो के आधार पर सूचना मिलनी शुरू हो गयी कि आत्मा शरीरो को बदलती है । कुछ 'साइकिक सोसायटीज' के सदस्यो ने, जिन्होंने जिन्दगी भर काम किया, मरते वक्त वे वायदा करके गये कि मरने के बाद पूरी कोशिश करेंगे सूचना देने की । उसमे दो-एक लोग सफल हो सके । मरने के बाद उन्होंने कुछ निश्चित सूचनाए दी जिसका वायदा उन्होने मरने के पहले किया था । उनसे कुछ प्रमाण इकट्ठे हुए है ।

मनुष्य के व्यक्तित्व मे कुछ और नयी दिशाओ का अनुभव है—जैसे 'टेलीपैथी' का, 'क्लेरोवाइस' का, दूरश्रवण का, दूर दृष्टि का और दूर सवाद का । इस पर काफी काम हुआ है। हजार मील दूर बैठे आदमी को भी मैं यहा बैठकर सदेश भेज सकता हूँ बिना किसी बाह्य उपकरण का उपयोग किये । तब इसका मतलब यह होता है कि शरीर ही नही, अशरीरी ढग से भी सवाद संभव है । वह मन भी हो तो भी शरीर से भिन्न कुछ होना शुरू हो जाता है । और, शरीर से भिन्न कुछ होना एक बार विज्ञान के ख्याल मे आना शुरू हुआ तो बहुत दूर नही है आत्मा का होना। क्योकि, झगडा जो है वह यही है कि शरीर से भिन्न भीतर कुछ है । एक बार इतना भी तय हो जाय कि शरीर के भीतर शरीर से भिन्न मन भी है तो भी यात्रा शुरू होती है । विज्ञान की यात्रा ऐसे ही शुरू होगी । पहले मन ही होगा, फिर धीरे-

धीरे हम आत्मा तक विज्ञान को ले जा सके, इशारे करवा सके। लेकिन मन है।

अभी एक आदमी है— टेट नाम का एक व्यक्ति है जिसके बडे अनूठे अनुभव साइकिक सोसायटीज मे हुए है। अनूठे अनुभव उसके यह है कि वह आदमी अगर न्यूयार्क मे बैठा है— उसने मुझे कभी देखा नही। मेरा कोई चित्र नही देखा, मेरे सम्बन्ध मे कभी जाना नही, लेकिन आप अगर उससे कहे कि वह मेरे सम्बन्ध मे सोचे, विचार करे तो वह आख बन्द कर लेगा और वह मेरे सबध मे ध्यान करेगा। और, जब आधा घटे बाद वह आख खोलेगा तो उसकी आख मे मेरा चित्र उतारा जा सकता है। केमरा उसकी आख से मेरा चित्र उतार लेता है। इस तरह के हजारो चित्र उतारे गये है और फिर असली चित्र से जब मिलाया जाता है तो बडी हैरानी होती है। बस 'फेंटनेस' का फर्क होता है, इससे ज्यादा फर्क नही होता है। इतना साफ नही होता, लेकिन होता यही है।

इसका मतलब क्या है ? इसका मतलब यह है कि उसकी आख किसी न किसी तरह मुझे देखने मे समर्थ हो गयी है। न केवल देखने मे समर्थ हो गयी है, बल्कि जैसा मेरे सामने आप मुझे देखे तो आपकी आख मे मेरा चित्र बनता है। ऐसा ही हजारो मील के फासले पर अज्ञात अपरिचित आदमी का चित्र भी उसकी आख मे बन गया है। इसके हजारो प्रयोग हुए है और हजारो चित्र हजारो तरह के उस आदमी की आख मे पकडे गये है। 'टेलीपैथी' के तो बहुत प्रयोग हो गये है। अभी चूकि 'स्पेस ट्रावेल' शुरू हुई, और चाद पर हम चले गये है। कल मगल पर जाना है, फिर लम्बी यात्राए शुरू होगी जिनमे यात्री बरसो के लिए जायेगे और वर्षों बाद लौटेगे। मगल पर भी एक वर्ष लगेगा आने जाने मे। इस एक वर्ष की लम्बी यात्रा मे अगर यत्रो ने जरा-सी भी चूक कर दी तो फिर हमारा उन यात्रियो से कभी कोई सबध नही हो सकेगा कि वे कहा गये और क्या हुआ ? बचे कि नही बचे, अनन्त काल तक फिर हमे उनका कोई पता नही चलेगा। वे हमसे किसी तरह का कम्युनिकेशन नही कर पायेगे। इसलिए, रूस और अमरीका दोनो, जहा अत-रिक्ष की यात्रा पर गहन शोध चलती है, 'टेलीपैथी' मे उत्सुक हो गये है। ताकि किसी दिन स्पेस यात्री का यत्र खराब हो जाय और वह रेडियो यत्रो के द्वारा हमे खबर न दे पाये तो टेलीपैथी से खबर दे सके। एक 'अल्टरनेटिव' तो चाहिए। रूस मे एक आदमी है फयादेव। उस आदमी ने हजारो मील दूर तक सदेश पहुचाने का प्रयोग सफलता से किया है। बैठकर वह सदेश भेजेगा किसी व्यक्ति विशेष को। उस व्यक्ति विशेष को उसे भीतर से सदेश आता हुआ मालूम पडेगा।

विज्ञान धीरे-धीरे, आदमी शरीर ही नही है उसके भीतर कुछ अशरीरी

भी है, इस दिशा मे कदम उठा रहा हूँ। और, एक बार यह तय हो जाय कि आदमी के भीतर अशरीरी भी है तो पुनर्जन्म का द्वार खुल जायेगा। दर्शन से जो नहीं सम्भव हो सका, रहस्यवादी जो सम्भव नही कर सके सबको समझाना, वह विज्ञान संभव कर पायेगा। वह सम्भव हो सकता है। वह होता आ रहा है।

प्रश्न ग्लास कास्केट में मरते हुए आदमी को सुलाया गया था?

उत्तर ऐसा प्रयोग बहुत जगह करने की कोशिश की गयी, लेकिन परिणामकारी नही हुआ। ऐसा ख्याल है स्वाभाविक, विज्ञान जब सोचता है तब पदार्थ की भाषा मे सोचता है। अगर एक आदमी मरता है और उसमे शरीर के अतिरिक्त कुछ और है और वह निकल जाता है तो 'वेट' कम हो जाना चाहिए, लेकिन यह हो सकता है कि जो निकल जाता है वह 'वेटलेस' हो! वह इतने कम 'वेट' का हो कि हमारे पास कोई मापदण्ड न हो। सूरज की किरणे है, इसमे कोई 'वेट' है? लेकिन है वेट। अगर एक वर्गमील की सब सूरज की किरणें इकट्ठी की जायं तो एक तोले का 'वेट' देगी। वह बडा मुश्किल मामला है। अब कितनी आत्मा मे कितना वेट होगा, अभी देर है जानने को। प्रयोग कई जगह किया गया, क्योंकि स्वाभाविक हमारा ख्याल है कि आदमी मरता है तो मरते आदमी को काच के 'कास्केट' मे बन्द कर दिया, सब तरफ से, कोई रध्र द्वार नही रहने दिया। वह मर गया। जितना वजन जिंदा मे था उससे कुछ तो कम हो ही जाना चाहिए, अगर कुछ इसमे से निकल गया। एक बात। दूसरा जो निकला है उसके निकलने के लिए भी काच टूट जाना चाहिए, क्योकि कोई रध्र द्वार नही है। मगर दोनो सभव नही हुए। न तो काच टूटा, क्योकि सभी चीजो के निकलने के लिए काच बाधा नही है। सूरज निकल जाता है। किरणे निकल जाती है। एक्स-रे की किरण आपकी हड्डी को पार करके चित्र ले आती है और कही कोई टूटता नही, कही कुछ छेद नही होता। तो जब एक्स-रे की बहुत स्थूल किरण भी काच को बिना तोड़े, हड्डी को बिना तोडे, लोहे के सीखचो को बिना तोडे लोहे की दीवाल को पार कर लेती है तो आत्मा को ही कौन-सी कठिनाई हो सकती है? 'लाजिकली' कोई कठिनाई नही मालूम पडती। और, जगत मे बहुत कुछ 'वेटलेस' है। असल बात यह है कि जिसको हम वेट कहते है वह बहुत गहरे मे हम समझें तो वेट नही, सिर्फ 'ग्रेविटेशन' है। मगर, इसको जरा गणित की तरह समझना पडेगा।

आपका वजन है यहां, समझ लीजिये कि चालीस किलो। तो चांद पर आपका वजन चालीस किलो नहीं होगा। आप बिल्कुल यही होगे। चांद पर आपका वजन आठगुना कम हो जायेगा। इसलिए, आप अगर यहां छह फीट ऊंचे कूद सकते

है तो चाद पर आठगुना ज्यादा कूद सकेगे, क्योकि चाद की जो कशिश है, ग्रेविटेशन है वह पृथ्वी से आठगुना कम है और सब वजन जमीन के खिचाव का वजन है। यह हो सकता है कि जमीन आत्मा को न खीच पाये। कोई जरूरी नही है कि ग्रेविटेशन आत्मा को खीचता हो। फिर वजन नही होगा। मेरी अपनी समझ यह है कि पदार्थ पर जो नियम काम करते है वह पदार्थ की सघनता के कारण ही करते है। आत्मा को अगर ठीक से हम समझे तो विरलता की अन्त है वह। इसलिए, उस पर कोई नियम काम नही करते। वह नियम के बाहर हो जाती है। और, जब तक हम नये नियम से उसको खोजने नही जाते, जब तक हम पदार्थ के नियमो को ही आधार बनाकर आत्मा के सम्बन्ध मे खोज करते रहेगे, तब तक विज्ञान का उत्तर आत्मा के सम्बन्ध मे इन्कार का रहेगा। वह कहेगा नही है।

साइकिक सोसायटीज की जो मैने बात की। रायन और मायस के प्रयोग की मैने बात की, ओलिवर लाज और ब्राट की चर्चा की, यह सारे लोग विज्ञान की प्रतिष्ठित पदार्थ को नापने की पद्धति को छोडकर आत्मा के अज्ञात मापदडो की खोज कर रहे है। इनसे आशा बनती है कि कुछ सूत्र धीरे-धीरे निसृत होगे और विज्ञान उस बात की गवाही दे पायेगा जिस बात की गवाही रहस्यवादियो ने सदा से दी है, लेकिन प्रमाण नही दे पाये।

प्रश्न आपने कहा कि अर्जुन कृष्ण के प्रति सर्मापत हुए इसलिए परवश न होकर स्वतत्र हुए। विवेकानन्द रामकृष्ण के प्रति सर्मापत होकर भी परवश रहे, आत्मवान क्यो न हो पाये, इसका क्या कारण है ?

उत्तर इसके कारण है। रामकृष्ण और विवेकानन्द के बीच का जो सम्बन्ध है, पहली तो बात, गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध है। कृष्ण और अर्जुन के बीच जो सम्बन्ध है वह गुरु शिष्य का सम्बन्ध नही है। दूसरी बात, कृष्ण की पूरी चेष्टा अर्जुन के द्वारा जगत को कोई सन्देश पहुचाने की नही है। अर्जुन को ही सदेश देना है। रामकृष्ण की चेष्टा विवेकानन्द को सदेश देने की नहीं, विवेकानन्द के द्वारा जगत तक सदेश पहुचाने की है। कृष्ण को तो पता भी नही है कि वह जो कह रहे है वह गीता बन जायेगी। आकस्मिक घटना है कि वह बन गयी। कृष्ण ने तो सहज ही युद्ध के स्थल पर खडे होकर कहा होगा। यह पता भी नही होगा कि यह वक्तव्य इतना कीमती हो जायेगा और सदियो तक आदमी इसपर सोचेंगे। यह कहा तो गया था सिर्फ अर्जुन के लिए। अर्जुन को ही बदलने की थी यह खबर। यह उसके लिए ही था निपट। यह बडी 'इन्टीमेट' चर्चा थी। यह दो व्यक्तियो के बीच की सहज व्यक्तिगत बातचीत है। और, मेरा अपना

अनुभव यह है कि इस जगत मे जितना भी महत्वपूर्ण है वह सदा 'इन्टीमेट डायलाग' है। इसलिए, लिखने वाला कभी उस गहराई को उपलब्ध नही होता जो बोलनेवाला उपलब्ध होता है। इसलिए, दुनिया मे जो भी श्रेष्ठ है वह बोला गया है। सुबह हम बात कर रहे थे, अरविंद ने कुछ भी नही बोला, सब लिखा है। कृष्ण ने, क्राइस्ट ने, बुद्ध ने, महावीर ने, रमण ने, कृष्णमूर्ति ने सब बोला है। बोलने का माध्यम 'पर्सनल' है, लिखने का माध्यम 'इमपर्सनल' है। लिखते हम किसी के लिए नही, पत्रो को छोडकर। कौन है रिसीवर, उसका कोई पता नही होता—'एब्स्ट्रेक्ट' है। लेकिन, बोलने का माध्यम तो बडा व्यक्तिगत है, निजी है। हम किसी से बोलते है। कृष्ण तो अर्जुन से बोल रहे है सीधे। जगत का कोई सवाल नही है यहा। यहां दो मित्रो के बीच एक बात हो रही है।

रामकृष्ण के साथ स्थिति और है। जैसा मैंने सुबह कहा, उसे थोडा ख्याल मे लेगे तो समझ में आ जायेगा। रामकृष्ण को अनुभव तो हुआ, लेकिन रामकृष्ण के पास वाणी बिल्कुल नही थी। रामकृष्ण को जीवन भर यही पीडा रही कि कोई मुझे मिल जाय जो वाणी दे दे। वह स्वय बोल नही सकते थे। रामकृष्ण एकदम अशिक्षित, अपढ है। जान तो लिया उन्होने बहुत, लेकिन इसको कहे कैसे? इसके लिए उनके पास शब्द नही, सुविधा नही, व्यवस्था नही। कोई चाहिए जिसके पास शब्द हो, सुविधा हो, व्यवस्था हो। विवेकानन्द के पास तर्क है, वाणी है, अभिव्यक्ति है। रामकृष्ण के पास अनुभव है, तर्क नही, वाणी नही, अभिव्यक्ति नही। रामकृष्ण के जो वक्तव्य भी हमे उपलब्ध हैं, बाद मे बहुत काट-छाटकर सुधार कर किये गये है। क्योकि, रामकृष्ण तो देहाती आदमी थे। वह बोलने मे गाली भी दे देते थे। वह सब गालिया काटनी पडी। मै तो नही मानता कि ठीक हुआ। 'अथेंटिक' होनी चाहिए रिपोर्ट। जो उन्होने कहा था वैसा होना चाहिए था। लेकिन, हमारे मन मे डर लगेगा कि साधु और परमहस गाली दे रहा है, इसको अलग कर दें। इसलिए, बहुत काट-छाटकर रामकृष्ण को पेश करना पड़ा। विवेकानन्द जब रामकृष्ण के पास आये तो रामकृष्ण को आशा बधी कि यह व्यक्ति, जो मेरे भीतर घटा है, उसे दुनिया तक कह सकेगा। इसलिए, विवेकानन्द को 'इस्ट्रूमेट' बनना पडा। एक घटना आपको कहूँ, जिससे ख्याल में आ जाय।

विवेकानन्द को समाधि की बडी आकांक्षा थी। रामकृष्ण ने उन्हे समाधि का प्रयोग समझाया। करवाया। रामकृष्ण महिमाशाली थे, उनकी मौजूदगी भी किसी के लिए समाधि बन सकती थी। उनके स्पर्श से भी बहुत कुछ हो सकता था। उतना जीवन्त व्यक्तित्व था उनका। जिस दिन पहली दफा विवेकानन्द

को समाधि का अनुभव हुआ, विवेकानन्द ने क्या किया ? उस आश्रम में कालू नाम का एक आदमी था वह दक्षिणेश्वर के मंदिर के पास ही रहता था। बहुत भोलाभाला आदमी था। मदिरो के पास जब तक भोले-भाले आदमी रहें तभी तक मदिरो की सुरक्षा है। जिस दिन वहा चालाक आदमी पहुचते हैं, सब खराब हो जाता है। कालू दिन भर पूजा मे लग जाता था। क्योकि, उसके कमरे में जमाने भर के देवी देवता थे। जो भी देवी देवता मिलते थे कालू उनको ले आता था। उस कमरे मे कालू के लिए जगह नही बची थी। वह बाहर सोता था। जो भी आदमी भगवान के चक्कर मे पडेगा, एक दिन बाहर सोना पडेगा क्योकि भगवान भीतर सब जगह घेर लेता है। उसके पास सैकडो भगवान है। तरह-तरह के भगवान है, जहा जो भगवान मिले, ले आया। वह सुबह से पूजा शुरू करता तो साझ हो जाती। उसको तो सभी की पूजा करनी पडती। विवेकानन्द ने उसे कई दफा समझाया कि कालू बडा नासमझ है। फेक इन सबको, भगवान तो अदृश्य है। वह तो सब जगह मौजूद है। विवेकानन्द ने बहुत उसको तर्क दिये, लेकिन सीधे-सादे आदमी को तर्क भी नही दिये जा सकते। वह हसता था, कहता था, ठीक कहते हो। लेकिन, अब जिनको ले ही आये, इनका स्वागत सत्कार तो करना ही पडेगा। कई दफा उसको कहा कि फेक, कहा के ककड-पत्थर इकट्ठे कर रखे हैं—कही छोटे शकर, बडे शकर, न मालूम क्या क्या, और दिन भर इसी मे गवाता है। किसी को टीका लगाता है, कभी घण्टा बजाता है। तेरा समय इसमे जाया हो रहा है। कालू कहता, औरो का समय जिसमे जाया हो रहा है, मेरा इसमे जाया हो रहा है, और कोई खास फर्क नही पड रहा।

जिस दिन विवेकानन्द को पहली दफा समाधि लगी अचानक भीतर शक्ति की उर्जा का जन्म हुआ और जो पहला ख्याल आया वह यह आया कि इस ऊर्जा के क्षण मे मैं कह दू कालू को कि फेक अपने भगवानो को, तो वह रुक नहीं सकता। टेलीपैथी जैसा हुआ। उन्होने ऐसा सोचा, उधर बेचारे कालू जैसे सीधे सादे आदमी को सन्देश मिल गया। उसने बाधी पोटली अपने सब भगवानो की और चला गंगा की तरफ फेंकने। यह तो मन मे ही सोचा था विवेकानन्द ने, जो अपने कमरे मे बन्द थे। लेकिन, जब ऊर्जा जगे तो यह समझ ही लेना कि ऊर्जा जगी, भूलकर भी उसका उपयोग मत करना। अन्यथा भारी नुकसान होता है। उसे जगने देना, बस उसका जगना ही उसका उपयोग है। विवेकानन्द ने तत्काल उपयोग किया। जिस कालू को वह तर्क से नही समझा सके थे उसके पीछे के रास्ते से उपद्रव किया। उनको ख्याल ही नही था, उन्होने सिर्फ यह सोचा ही कि अगर इस वक्त मैं कालू को कह दू कि उठ कालू, फेक सब, इतनी ऊर्जा मेरे भीतर है कि अब कालू बच

नहीं सकेगा, यह उन्होंने सोचा ही। उधर कालू ने, जो अपनी पूजा आदि कर रहा था सबकी पोटली बांधी। सब भगवानों को कन्धे पर टांग कर वह बाहर निकला। रामकृष्ण मिल गये। रामकृष्ण ने उससे कहा कि पागल इन्हें अन्दर ले जा। उसने कहा कि सब बेकार है। रामकृष्ण ने कहा—कालू, यह तू नही बोलता है, यह कोई और बोल रहा है, तू भीतर चल। मै उसको देखता हूँ, जो बोल रहा है।

वह भागे गये, दरवाजा तोडा, और विवेकानन्द को हिलाया और कह कि बस यह तुम्हारी आखिरी समाधि हुई, अब आगे तुम्हे समाधि की अभी जरूरत नही है। यह कुजी मै अपने पास रखे लेता हूँ। तुम्हारी समाधि की चाभी मैं अपने पास रखे लेता हूँ। मरने के तीन दिन पहले लौटा दूगा। विवेकानन्द बहुत चिल्लाये और रोये कि आप यह क्या करते है, मुझे समाधि दे। रामकृष्ण ने कहा कि अभी तुझसे और बहुत काम लेने है। अभी तू समाधि मे गया तो बिलकुल चला जायेगा। वह काम जो चाहिए वह नही हो पायेगा। अभी तुझे जो मैंने जाना है वह सारी दुनिया तक पहुचाना है। तू मोह मत कर और स्वार्थी मत बन। तुझे एक ऐसा वृक्ष बनना है वट वृक्ष, जिसके नीचे हजारो लोगो को विश्राम मिल सके, छाया मिल सके, इसलिए तेरी चाभी अपने पास रखे लेता हूँ। मरने के तीन दिन पहले यह विवेकानन्द को वापस मिली। मरने के तीन दिन पहले उनको दुबारा समाधि उपलब्ध हुई।

इसमे जो मै कहना चाहता हूँ वह यह कि जिस समाधि की चाभी रखी जा सके वह समाधि 'साइकिक' से ज्यादा नही हो सकती। जो समाधि किसी दूसरे के हा या ना कहने पर निर्भर हो वह गहरे मनस से ज्यादा नही हो सकती। मन के पार की नही हो सकती। और, जिस समाधि मे कालू को मूर्तिया फेकने का ख्याल आ जाय वह समाधि बहुत आत्मिक नही हो सकती। उसका कोई कारण नही ह होने का। विवेकानन्द को जो समाधि घटी वह मानसिक है, शरीर से बहुत ऊपर है, लेकिन आत्मा के बहुत नीचे है। और फिर रामकृष्ण की जो तकलीफ थी, उसकी वजह से विवेकानन्द को रोकना जरूरी था कि वह और गहरे न चले जाये। अन्यथा कौन उस सदेश को लेकर जाता? आज रामकृष्ण को हम जानते हैं तो सिर्फ विवेकानन्द की वजह से। लेकिन, विवेकानन्द को बडी कुर्बानी करनी पडी। लेकिन, इस विराट जगत के लिए वैसी कुर्बानी अर्थपूर्ण है। और, रामकृष्ण को विवेकानन्द को रोकना पडा साइकिक पर, कि वह आगे न चले जाय अन्यथा फिर विवेकानन्द को राजी नही किया जा सकता था। रामकृष्ण को दुविधा यही थी कि बुद्ध को जो दोनो एक साथ मिले है वह रामकृष्ण को एक ही मिल पाया है।

जानना तो मिल गया है, बताना नही है उनके पास। इसलिए किसी और आदमी के कन्धे का सहारा लेना पड़ा। रामकृष्ण ने विवेकानन्द के कन्धो पर बैठकर ही यात्रा की है। इसमे मै मानता हूँ कि विवेकानन्द 'इन्स्ट्रूमेंट' बने। बनाये गये। लेकिन, कृष्ण अर्जुन को 'इन्स्ट्रूमेंट' नही बना रहे है। वैसी कोई बात ही नही उसमे, वह सिर्फ कह रहे है जो है। जो है, उसको प्रकट कर रहे हैं।



पर्व : पन्द्रह

अरविंद और योगी लेले

एलिस बेली के संदेश

आपके कोई गुरु या 'मास्टर'

तीव्र स्मृति वाली आत्माए

कुरुक्षेत्र में क्या चार घंटे गीता चली

कृष्ण और नेमीनाथ

आस्तिक और नास्तिक



१९

प्रश्न १ अरविन्द को कृष्ण-दर्शन हुए .. वे योगी लेले के सम्पर्क में भी तो आये थे ?

२ ऐलिसबेली के विषय में आपका क्या ख्याल है जब उसका कहना है कि उसे संदेश मिलते है ? ये संदेश कौन देता है ? कैसे देता है ?

३. क्या आपका भी ऐसे किसी 'मास्टर' या गुरु से सम्बन्ध है ?

उत्तर अरविन्द का कृष्ण-दर्शन, जेल की दीवालो मे, सीकचो में, जेलर

मे, स्वयं में, अगर कृष्ण का दर्शन है तो किसको पता लगता है कि कृष्ण का दर्शन हुआ ? कौन जानता है कि कृष्ण का दर्शन हुआ ? कौन पहचानता है कि कृष्ण दिखायी पड रहे है ? अगर पहचानने वाला पीछे बच जाता है तो प्रोजेक्शन है, प्रक्षेपण है। अगर कोई कहता है कि मुझे कृष्ण के दर्शन हुए तो कम-से-कम मै कृष्ण नही हूँ, इतना पक्का है। जिसे दर्शन होगे वह तो भिन्न हो जाता है।

नही, जिस विराट सागर रूप कृष्ण की मैंने बात की है, वह ऐसा नही है कि मुझे कृष्ण के दर्शन हुए। वह ऐसा ही है कि मै नही रहा। और, फिर जो बच गया है वह कृष्ण ही है। उसे कृष्ण कहे, क्राइस्ट कहे, बुद्ध कहे, इमसे कोई अन्तर नही पडता। यह हमारी पारिभाषिक शब्दावली की बात होगी की कौन-सी शब्दावली मे हम जन्मे। यदि एक बार कृष्ण के दर्शन हो जाय और अगर दर्शन प्रक्षेपण न हो, 'प्रोजेक्शन' न हो तो दुबारा लौटना असभव है। फिर, उस दर्शन का खो जाना असभव है। और, बडे मजे की बात यह है कि अरविन्द की सारी साधना उसके बाद शुरू होती है। जिस योगी लले की बात उठायी है उस योगी लेले से वह बाद मे मिलते है। योगी लेले से उनका बाद मे मिलना है और ध्यान सीखना है। लेले से ही उन्होने ध्यान सीखा। जिस व्यक्ति को अभी ध्यान भी सीखने को बाकी हो उसको कृष्ण के विराट दर्शन हो गये हो, यह नही माना जा सकता। और, कृष्ण के ही दर्शन हो गये हो तो अब ध्यान सीख कर क्या करियेगा ? किसके पास सीखने जाइयेगा ? बडे मजे की बात है कि लेले से उन्होंने जो ध्यान सीखा, वह बहुत छोटी-सी प्रक्रिया थी जिसमे कुछ बडा गहरा नही था। और, यह भी आप जान ले कि उसके बाद ध्यान मे उनकी कोई गति नही हुई। जितना उन्होने लेले से सीखा, वह आखिरी चरण था। कुल तीन दिनो तक वे लेले के साथ ध्यान के लिए बैठे थे, और एक छोटा-सा प्रयोग था 'विटनेसिंग' का, साक्षी भाव का। इसमे लेले ने कहा कि आप बस बैठ जाय और अपने विचारो को देखे। उन्होने विचार देखना शुरू किया, लेकिन भयकर विचारो का जाल मन पर उतरा। वे बहुत घबराये। लेले ने उन्हे इतना ही कहा की आप विचारो को ऐसे ही समझें, जैसे आपके मस्तिष्क मे चारो ओर मक्खिया चक्कर लगा रही है। आप बीच मे बैठे देखते रहे और उन मक्खियो को चक्कर लगाने दे। तीन दिन सतत वे विचारो का दर्शन करते रहे—कोई भी करे और सिर्फ देखता रहे तो विचार क्षीण हो जाते है, शात हो जाते है। मन निर्विचार हो जाता है। इसके बाद फिर उन्होने कोई बात लेले से नही सीखी। इसको उन्होने आखिरी बात समझ ली। यहा अरविन्द की बडी-से-बडी भूल हो गयी। यह बिल्कुल प्राथमिक चरण था। साक्षी भाव पहला चरण है। साक्षी भाव अद्वैत भाव

नही है। साक्षी भाव के माध्यम से अन्तत अद्वैत भाव की उपलब्धि होती है। पर और कदम आगे बढ़ाने पड़ते है। साक्षी भाव भी मिट जाना चाहिए। क्योंकि, जबतक मैं साक्षी हूँ और किसी का साक्षी हूँ, तब तक द्वैत बना रहता है। एक घडी आनी चाहिए कि न मै बचू, न वह बचे, जिसका मैं साक्षी हूँ। एक घड़ी आनी चाहिए कि जब शुद्ध चेतना ही बच जाय और उस चेतना मे 'जज' करना मुश्किल हो जाय कि कौन 'सब्जेक्ट' है, कौन 'ऑबजेक्ट' है। कौन जान रही है, कौन जाना जा रहा है। जब तक यह साफ है कि कौन जान रहा है और किसको जान रहा है तब तक द्वैत जारी रहता है। तब तक मन के बाहर जाना नही होता। तब तक मन का अतिक्रमण नही होता है। तब तक मन से 'ट्रासेडेंस' नही होती।

तो, न तो मै कहूगा कि अरविन्द का अनुभव वास्तविक अनुभव था; क्योकि जो आये और चला जाय वह वास्तविक नही है। वह स्वप्नवत है। वह 'प्रोजेकशन' है। जो आये और आ ही जाय फिर जाने का उपाय न हो वही वास्तविक अनुभव है। जो आये और खो जाय वह मन का खेल है, मन की लीला है। ध्यान के सम्बन्ध मे भी साक्षी भाव साधने के ऊपर वे कभी नही गये। जिस व्यक्ति से उन्होने सीखा था उस व्यक्ति से भी पीछे उन्होने कोई सम्बन्ध नहीं रखे। उस व्यक्ति के पास सम्भावना और भी थी आगे ले जाने की, लेकिन जब दुबारा लेले से अरविन्द का मिलना हुआ तो अरविन्द खुद गुरु हो चुके थे। लेले से उनका जो दूसरा मिलन है उसमे उनका जो व्यवहार है वह बडी हैरानी का है। उनकी पूरी चेष्टा ऐसी रही जैसे यह बात भुलायी जा सके कि इस आदमी से कुछ सीखा है। अरविन्द ने बहुत थोडा ही सीखा था, बहुत ज्यादा सीखा नही था।

अरविन्द के साथ ही ऐसा हुआ हो ऐसा नही, बहुत बार ऐसा हुआ है कि थोड़ा-सा अनुभव भी रोकने वाला सिद्ध हो जाता है। आनन्दपूर्ण होता है और फिर मन वहा ठहर जाता है। इसलिए, आध्यात्मिक साधना मे सबसे बडी कठिनाइया न तो बाहर के साधन मे आती है न बाहर के सम्बन्धो से आती है। आध्यात्मिक साधना मे सबसे बडी कठिनाइया भीतर के प्राथमिक अनुभवो से आती है। वे इतने सुखद है, इतने आनन्दपूर्ण है, इतने 'ब्लिसफुल' है कि मन होता है यही ठहर जाओ। और, पड़ाव को मकान समझ लेने की भूल अरविन्द के साथ नही, हजारो लोगो के साथ हुई है। पड़ाव को मुकाम समझ लेना बहुत आसान है। सुखद हो पड़ाव तो मंजिल मान लेने का मन होता है। अरविन्द ने फिर जितनी भी साधना दूसरो को बतायी वह लेले की बतायी गयी साधना से इच भर आगे नही गयी। इसलिए, मैं कहता हूँ कि उस साधना के आगे वे कही गये नहीं। क्योंकि, उन्होंने

कभी किसी को उसके आगे कोई बात नहीं कही। बस, वह उतनी ही बात। लेकिन, लेले बेचारा सीधा सादा आदमी था, उसने दो शब्दो मे कह दिया था अरविन्द जटिल चित्त के, बुद्धि के ठीक निष्णात व्यक्ति है वह उसी बात को हजारो पृष्ठ मे रगते रहे। लेकिन, लेले ने जो बताया था उससे जरा भी आगे उन्होंने कुछ बताया हो अपनी किसी किताब मे, किसी वक्तव्य मे, ऐसा नही है। उससे ज्यादा वह कुछ बता नहीं पाये। साक्षी भाव से ज्यादा कुछ भी फलित नही हुआ। और, मै मानता हूँ कि वह भी उन्होने खो दिया। यह भी जानकर आपको हैरानी होगी कि लेले ने खुद क्या कहा है अरविन्द से बाद मे ? लेले ने कहा है कि तू भ्रष्ट हो गया। लेले ने यह कहा है कि जो तुझे मिला था वह तूने खो दिया, और तू बकवास मे लग गया। तू सिद्धान्तवादी बातो मे पडा हुआ है। इससे कोई सम्बन्ध अनुभव का नही है। लेले का यह वक्तव्य बडा अद्भुत है। लेकिन, अरविन्द को मानने वाले इस वक्तव्य की इधर-उधर चर्चा नही करते। क्योकि, यह वक्तव्य बहुत हैरान करने वाला है। जिस आदमी से सीखा था, उस आदमी का यह वक्तव्य बहुत सूचक है। लेले ने अरविन्द से कहा कि कृपा करके इस लिखने-पढ़ने के जाल में मत उलझो, अभी तुम पहुचे नही वहा, जिसकी तुमने बात शुरू कर दी, लेकिन, लेले की इस बात पर अरविन्द ने कोई ध्यान नही दिया है। जब अरविन्द ने ही नही दिया तो अरविन्द-भक्त क्यो देने लगे। यह जो मैंने कहा— मौलिक बात, कि खोज तो व्यक्ति मे होती है लेकिन उसके भूल भरे होने की सभावना ज्यादा होती है। इसका यह मतलब नही है कि वह भूल ही होती है। भूल की सम्भावना ज्यादा होती है।

दूसरी बात भी मैंने कही कि परम्परा से जो बात आती है उसकी सड़ने, गलने की, गन्दे हो जाने की सम्भावना बहुत होती है। लेकिन, इसकी सारी सड़ाध और गलन के पीछे भी कही किसी सत्य का होना बहुत सम्भावी है। क्योकि, हजारो हजारो साल तक लोग बिल्कुल अकारण ही किसी गन्दगी को ढो नही सकते। हा, किसी हीरे की वजह से ककड पत्थरो को भी ढो सकते है, लेकिन यह हो सकता है कि वह हीरा कही बिल्कुल खो गया हो, ककड पत्थर ही दिखायी पडते हो। जो मैंने यह कहा, उसी के कारण दूसरी बात आपको समझाना चाहूगा।

अरविन्द कहते हैं, 'सुप्रामेटल' की, उस अति मानस की जो वे बात कर रहे हैं उसके सकेत वेद मे उपलब्ध है। इस मुल्क मे एक बडा अनैतिक कृत्य चलता रहा है। और वह अनैतिक कृत्य यह है कि इस मुल्क मे जो लोग कोई नयी बातें खोजते है वे भी साहस नही जुटा पाते यह कहने का कि यह नयी बात मेरी है। क्यो? क्योंकि

इस मुल्क को पता है कि नयी बातो के गलत होने की सम्भावना है। इसलिए, इस मुल्क की लम्बी परम्परा मे एक व्यवस्था बन गयी है कि कितनी ही नयी बात खोजो, किसी पुराने शास्त्र को आधार बनाओ। सदा यह बताओ कि वह वेद में है, सदा बताओ कि वह उपनिषद मे है। सदा बताओ कि वह ब्रह्मसूत्र मे है। इसीलिए वेद, उपनिषद और ब्रह्मसूत्र का अपना क्या अर्थ है, यह तय करना ही मुश्किल हो गया। क्योंकि, हर आदमी अपने को उनमे खोज कर बताता है। यह पुरानी दुकान की 'क्रेडिट' का लाभ लेने के उपाय है, और कुछ भी नहीं है। वेद मे है या नही, इसका सवाल नही है लेकिन, दयानन्द उसी सूत्र मे कुछ और दिखायेंगे जो उनको सिद्ध करना है। शकर कुछ और दिखायेंगे जो उनको सिद्ध करना है। उस सूत्र की दुर्गति हो गयी, उसकी बिल्कुल मिट्टी पलीद कर दी है। वेदो की, ब्रह्मसूत्र की और उपनिषद की—इन तीनो की बुरी तरह से कठिनाई हमने खडी की है—वही हाल गीता का भी किया है। प्रत्येक व्यक्ति यह सिद्ध करने की कोशिश करेगा कि वह जो कह रहा है वह वही है जो उपनिषद भी कहते, गीता भी कहती, वेद भी कहते हैं। इसलिए एक बहुत ही अजीब सी मानसिक व्यभिचार की स्थिति इस देश मे पैदा हुई। एक बौद्धिक व्यभिचार पैदा हुआ, 'इटलेक्चुअल प्रास्टीट्यूशन'। चीजो को सीधे न कहकर थोपने का आग्रह ही ज्यादा हो गया, क्योकि उसी के बल खडे हो सकते है। मै मानता हूँ कि यह आत्मविश्वास की कमी है। अगर अरविन्द को कोई सत्य का अनुभव हुआ है तो वेद उससे उल्टा भी कहते हो तो भाड मे जाय, वेद से क्या लेना देना? अगर अरविन्द को कोई सत्य दिखायी पडा है तो वह निपट निजता मे कह सकते है कि यह सत्य है। यह मैने देखा और जाना। लेकिन, भीतर अगर सदेह है तो फिर वेद का सहारा लिये बिना कोई रास्ता नही है। वेद के कन्धे पर बैठना पडेगा। फिर गीता के कन्धे पर बैठना पडेगा। फिर उपनिषद के कन्धे पर बैठना पडेगा। और, फिर इन सबको पीछे खडा करके दिखाना पडेगा कि जो मैने जाना वह इन्होने भी जाना।

यह भी ध्यान रहे कि वेद का ऋषि किसी का सहारा नहीं खोजता। उपनिषद का ऋषि किसी का सहारा नही खोजता। उसके वक्तव्य सीधे है। ब्रह्मसूत्र का ऋषि किसी का सहारा नही खोजता, उसके वक्तव्य सीधे हैं। वह कहता है, ऐसा है। लेकिन, भारत मे एक बौद्धिक पतन की लम्बी कहानी है जिसमे फिर कोई कहने की हिम्मत नही जुटाता कि ऐसा है और ऐसा मैं जानता हूँ। सीधा वक्तव्य खोता चला गया। अरविन्द उस कडी में आखिरी हिस्से हैं। इससे मै कहता हूँ कि रमण ज्यादा ईमानदार आदमी है, कृष्णमूर्ति ज्यादा ईमानदार

आदमी है। अगर गलती भी करनी है तो भी वेद पर मत थोपो। खुद ही अपने ऊपर लो। अगर ठीक भी खोजना है तो खुद ही अपने ऊपर लो। निर्णय तो हो सके, तब तो हो सके कि तुमने जो जाना था, उसमे कुछ सार था कि नही था। लेकिन, सबको 'कन्फ्यूजन' मे डाल दिया जाता है। सारी गवाहिया खडी कर दी जाती है। इसलिए, मै मानता हूँ कि भारत मे दर्शन का वैसा 'आनेस्ट', ईमानदार विकास नही हो सका जैसा पश्चिम मे दर्शन का ईमानदार विकास हुआ।

सुकरात अगर कहता है तो खुद 'अथारिटी' है, कांट कुछ कहता है तो खुद अधिकारी है, अगर विटगिंस्टीन कुछ कहता है तो खुद अधिकारी है। इनमें से कोई भी दूसरे पर अधिकार खोजने नहीं जाता। कोई भी यह कहने नही जाता कि मैं जो कहता हूँ वह ठीक है क्योकि सुकरात भी ऐसा कहता है। इसलिए, पश्चिम मे एक ईमानदारी दर्शन की पैदा हुई और उसी ईमानदारी से विज्ञान पैदा हुआ है। बल्कि, उसी ईमानदारी का परिणाम विज्ञान है। हिन्दुस्तान मे विज्ञान पैदा नहीं हो सका, क्योकि एक बहुत गहरी बौद्धिक बेईमानी मे हम फसे है। यहा यह तय करना ही मुश्किल है कि कौन आदमी क्या कह रहा है। क्योकि, हर आदमी दूसरे की वाणी बोल रहा है। हर आदमी दूसरे के शब्दो से जी रहा है। हर आदमी दूसरे शास्त्रो पर खडा हुआ है। मै तो कहूगा कि अरविन्द का यह आग्रह कि वेद मे भी यही है, एक आत्महीनता के बोध से पैदा होता है। इसमे बहुत अनुभव की बात नही है। इसमे बहुत आसान सहारे खोजने की बात है। इस मुल्क का मन, जो वेद से प्रभावित है, इस मुल्क का मन जो महावीर से प्रभावित है, जो बुद्ध से प्रभावित है, इस मुल्क का मन परम्परा मे रत है, इसलिए जब एक दफा कोई आदमी सिद्ध कर दे इतनी सी बात कि ऐसा ही वेद मे कहा है तो हम उसे स्वीकार कर लेते है। इस आदमी को अलग से जाचने की फिर हमे कोई जरूरत नही रह जाती। इसलिए, वेद की आड मे यह आदमी स्वीकृत हो जाता है। लेकिन, आड ही क्या लेनी ? सत्य को किस आड की जरूरत है ? अगर मुझे कुछ दिखायी पडता है तो मै कहूगा, ऐसा मुझे दिखायी पडता है। और, अगर वेद के ऋषियो को भी ऐसा दिखायी पडा होगा तो वह ठीक थे और नहीं दिखायी पडा होगा तो वह गलत थे। पर, मेरा दिखायी पडना मेरे आत्मविश्वास की बात है। मै वेद की वजह से गलत और सही नही हो सकता हूँ। मेरे लिए तो मेरी वजह से वेद सही और गलत हो सकते है। वह दूसरी बात है अगर मुझे कोई आकर कहता है कि आप ऐसा कहते है, लेकिन महावीर ने ऐसा कहा है, तो मै कहता हूँ कि अगर महावीर ने ऐसा कहा होगा तो वे गलत होंगे। क्योकि, मै कैसे पक्का करू कि महावीर ने ऐसा कहा है कि नही, मै पक्का कर सकता

हूँ कि मैं क्या कह रहा हूँ। सारी दुनिया भी अगर कहती हो कि ऐसा है, लेकिन मैं तो कहूँगा कि सारी दुनिया गलत होगी, मुझे जो दिखायी पड़ता है वह ऐसा है। मै सिर्फ अपने ही दिखायी पड़ने के लिए गवाह हो सकता हूँ, दुनिया भर के दिखायी पड़ने के लिए गवाह नही हो सकता हूँ। लेकिन, यह तरकीब बड़ी आसान है, बडी सुविधापूर्ण है। अपने व्यक्तित्व को सीधा-का-सीधा सत्य के आमने-सामने खड़े कर लेने में हजारो साल लगेंगे इतिहास को तय करने मे कि आपको मिला कुछ कि नही मिला। लेकिन, वेद की आड खडी कर लेने मे बडी आसानी है। वेद सही, फिर आप भी सही है, क्योंकि जो आप कहते है वही वेद मे कहा हुआ है। यह 'ट्रिक' बडी आसान है — एक छोटी-सी कहानी से समझाऊ।

एक फ्रेंच काऊटेस, शाही परिवार की औरत, बडी 'फेस्टीडियस' सब चीजों मे, अपने ढग से जीने की आदी है। वह एक 'एश्ट्रे' खरीद लायी थी चीन से। 'एश्ट्रे' पर जो रग था, उसने कहा कि यही रग मेरे बैठकखाने मे होना चाहिए। बड़े-बड़े चित्रकार बुलाये गये, लेकिन रग मे कुछ फर्क पड जाता था। उस 'एश्ट्रे'का रग ठीक-ठीक दीवाल पर न आ पाता। वह चीनी रग थे। वे रग भी उपलब्ध न थे। ठीक एश्ट्रे के रगो का ताल-मेल दीवालो पर नही बैठता था। बडे-बडे चित्रकार आये और हार कर चले गये। अन्त मे एक चित्रकार ने कहा, मै यह रग कर दूगा। लेकिन, एक शर्त पर कि एक महीने तक इस कमरे के भीतर कोई प्रवेश नहीं कर सकेगा। शर्त मजूर हो गयी। वह एक महीने के लिए दरवाजा बन्द करके अन्दर चला जाता, ताला लगा लेता, कुछ करता रहता, फिर बाहर निकल आता। महीने भर के बाद उसने महिला को कहा कि अब आप अन्दर आ जाय। अन्दर आकर देखा तो ठीक एश्ट्रे की 'कलर' की भाति सारी दीवाल हो गयी। उस महिला ने उसे लाखो रुपये इनाम दिये। मरते वक्त उस चित्रकार ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि एक ही रास्ता था। पहले मैंने दीवाले पोत दी, फिर उसी रग मे 'एश्ट्रे' पोत दी। तब मेल बिल्कुल बैठ गया।

यह अरविन्द और दयानद और सब पहले दीवाले पोतते, फिर एश्ट्रे पोतते थे। पहले अपना सिद्धान्त बना लेते है, फिर वेद पर पोत देते है। फिर, उसमे से सब निकाल लेते है। सस्कृत, ग्रीक, लैटिन और अरबी, जितनी भी पुरानी भाषाएँ हैं सब काव्य भाषाएँ है, विज्ञान भाषाएँ नही है। काव्य भाषाओ मे एक खतरा है, एक सुविधा भी है। सुविधा यह है कि काव्य भाषाओ के एक-एक शब्द अनेकार्थी होते है। खतरा यह है कि एक-एक शब्द चूकि अनेकार्थी होते है, इसलिए कभी तय नहीं किया जा सकता कि मूल रूप से जिस आदमी ने उन शब्दो का प्रयोग किया

था उसका क्या अर्थ है। एक-एक शब्द के दस-दस बारह-बारह अर्थ होते हैं तो आज किस हिसाब से हम तय करें कि जिस आदमी ने यह वक्तव्य दिया था उसका इन दस-बारह अर्थों में कौन-सा अर्थ रहा था। काव्य के लिए बड़ी अच्छी हैं ये भाषाएँ, क्योंकि काव्य में एक शब्द जितना अर्थी हो, उतने रंग आ जाते हैं। कविता की दो कड़ियों में जितने रंग आ जायं उतनी कविता गहरी हो जाती है। और हर पढ़ने वाला अपना अर्थ निकाल सकता है। और, ढंग ढंग के लोग प्रभावित हो सकते हैं लेकिन, विज्ञान ऐसे नहीं चलता। विज्ञान में तो भाषा 'एक्जेक्ट' होनी चाहिए। 'अ' का अर्थ 'अ' ही होना चाहिए। पुरानी कोई भाषा वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि विज्ञान, पुरानी भाषा में पैदा नहीं हुआ था। इसीलिए, विज्ञान अब रोज नयी भाषा पैदा करता जा रहा है। आप जानकर हैरान होंगे कि फिजिक्स, जो कि इस समय सर्वाधिक विज्ञान है, उसने तो धीरे-धीरे भाषा के शब्दों का उपयोग बन्द कर दिया है और गणित के 'फार्मूलों' का उपयोग शुरू कर दिया। क्योंकि, गणित का 'फार्मूला' एक्जेक्ट हो सकता है। आदमी के प्रयोग किये गये शब्दों की 'एक्जेक्टनेस' संदिग्ध है। उसमें कई अर्थ हो सकते हैं और हर उपयोग करनेवाले का अपना अर्थ हो सकता है। इसलिए, आइन्स्टीन की किताब सिर्फ वही आदमी समझ सकता है जिसने बहुत 'हायर मैथमेटिक्स' को समझा हो। आइन्स्टीन की किताब को समझने के लिए भाषा का ज्ञान पर्याप्त नहीं रहा। गणित का ज्ञान अनिवार्य हो गया। क्योंकि, भाषा गणित बन रही है। और, आइन्स्टीन जैसे लोगों का ख्याल है कि भविष्य की जो विज्ञान की भाषा होगी वह शब्द को छोड़कर सिम्बल्स को ले लेगी गणित के। क्योंकि, उसी में ठीक बात कही जा सकती है अन्यथा कोई भी कुछ अर्थ कर सकता है।

सब पुराने ग्रन्थ पुरानी भाषाओं में हैं। पुरानी भाषाएं काव्य के आसपास निर्मित हुई थीं, इसलिए जानकर हैरानी होगी कि हिन्दुस्तान में वैद्यक के ग्रन्थ भी कविता में लिखे हुए उपलब्ध हैं। थोड़ा सोचने जैसा मामला है। असल में कविता ही लिखने का ढंग थी। उसके कारण थे। क्योंकि, लिखना, बोलने के बहुत बाद में आया। और यादवाश्त रखकर ही शास्त्रों को मन में रखना पड़ता था। कविता को, पद्य को याद रखना आसान है, गद्य को याद रखना मुश्किल है। उसमें तुक के कारण सुविधा है कि वह याददाश्त में रह जाती है। इसलिए, सब वेद, सब उपनिषद, सब गीताएं, सब कुरान, काव्य की भाषा में पद्यबद्ध हैं। ताकि, उन्हें याद रखना आसान था। हजारों साल तक याद ही रखना पड़ा, लिखने का उपाय न था। और उस याद रखने के लिए कविता ने सुविधा दी, लेकिन अर्थ की सुविधा खो गयी। इसलिए, अब हर आदमी को सुविधा है कि जो अर्थ वेद

में करना चाहे, कर ले। मगर, अब मैं मानता हूँ कि किसी आदमी को ऐसा अर्थ करने नहीं जाना चाहिए। नहीं जाना चाहिए इसलिए कि यह बहुत बचकाना खेल हो गया। इसमे कोई बहुत प्रयोजन नही है और क्यो सहारा खोजा जाय ? क्यो न ऐसा कहा जाय कि मुझे ऐसा दिखायी पड़ता है। कोई वेद ने ठेका ले रखा है सदा के लिए ठीक होने का कि पीछे के लोगो को सिर्फ सिद्ध करना होगा कि जो वेद ने कहा है वह ठीक कहा है ? मुझे नही दिखायी पड़ता। और, जो मैने कहा कि पाण्डीचरी मे जो प्रयोग हो रहा है वह व्यर्थतम प्रयोग है अध्यात्म के क्षेत्र मे, इसको भविष्य को तय करने की जरूरत नही है। यह तो अध्यात्म की प्रक्रिया को समझकर आज तय किया जा सकता है। अगर एक आदमी पानी को गरम कर रहा है नीचे आग जला कर तो यह भविष्य के बच्चे तय नही करेंगे कि यह भाप बनेगा। यह हम अभी तय कर सकते है कि भाप बन जायेगा। लेकिन, अगर चूल्हे मे आग की जगह बर्फ रखी जा रही है तो यह कोई भविष्य के बच्चे तय नही करेंगे कि पानी भाप नही बनेगा, बर्फ बन जायेगा। यह हम तय कर सकते है। भविष्य के बच्चो पर छोड़ने का कोई सवाल नही है।

अध्यात्म भी एक विज्ञान है। अध्यात्म कोई ज्योतिष-शास्त्र नही है। कोई सामुद्रिक नही है। अध्यात्म के अपने गणित के सूत्र है। इसलिए उल्टी प्रक्रियाओ से कुछ हल होनेवाला नही है, यह आज कहा जा सकता है। और भविष्य अगर तय करेगा तो इतना ही तय करेगा कि मैने जो कहा था वह ठीक था, कि अरविन्द ने जो किया था वह ठीक था। भविष्य और कुछ तय नही करेगा। जगत मे समस्त विकास वैयक्तिक है, 'इण्डीवीजुअल' है। उपलब्धि 'काज्मिक' है। उपलब्धि ब्रह्माण्डगत है। जगत मे समस्त चेतना की अभिव्यक्ति व्यक्तिगत है। मूल स्रोत समष्टिगत है। सागर समष्टि है, लहर सदा व्यक्ति है। चेतना जहा भी दिखायी पड़ेगी व्यक्ति की दिखायी पड़ेगी। हा, जब व्यक्ति की चेतना को खोयेंगे तो समष्टि की चेतना का अनुभव शुरू होगा। लेकिन, मै अपनी चेतना को खोकर अनुभव करूगा। मेरे अनुभव के साथ आपका अनुभव नही हो जायेगा।

एक पुराना सूत्र ख्याल मे लेना जरूरी है। जिन लोगो ने सबसे पहले कहा, एक ही आत्मा है सब मे, तो जो मानते थे कि अनेक आत्माए है, उन्होने कहा कि सब तो एक आदमी मरे तो सबको मर जाना चाहिए। एक आदमी दुखी हो तो सबको दुखी हो जाना चाहिए। ठीक कहते है, उनकी दलील दुरुस्त है। अगर चेतना एक ही है हम सबके भीतर और उसके बीच कही कोई दीवाले नही है, व्यक्ति व व्यक्ति मे टूट नही गयी है चेतना, तो मै जब दुखी होऊगा तो आप कैसे सुखी रह सकते है? अगर मेरी चेतना जुड़ी हुई है आपसे तो मेरा दुख आपमे प्रवेश कर जायेगा।

जब मैं मरूंगा तो आप कैसे जिन्दा रह सकते हैं ? मैं मरूंगा तो आपको मरना पड़ेगा। इस तर्क के आधार पर वे लोग मानते रहे कि आत्मा एक नहीं है, सबमे अलग अलग है। मैं उनके तर्क को बहुत ठीक नही मानता। क्योकि, मैं यह मानता हूँ कि बिजली सारे 'बल्बो' मे एक है, लेकिन एक बल्ब को फोड दे तो सब बल्ब फूट जायेंगे ? हालांकि सारी बिजली को हटा ले, सब बल्ब बन्द हो जायेंगे। 'मेन स्विच आफ' कर दे तो सब बल्ब बुझ जायेंगे। लेकिन, एक-एक बल्ब का अपना स्विच भी है। और एक एक स्विच को बन्द करते रहे तो एक एक बल्ब बन्द होता रहेगा। और बिना स्विच बन्द किये भी एक बल्ब फोड दे तो वह तो खो जायेगा। लहरे सब अलग है। उनके नीचे का जुड़ा हुआ सागर एक है। इसलिए, यह नही कहा जा सकता कि जब एक लहर गिरेगी तो सब लहरो को गिरना चाहिए या जब एक लहर उठे तो सब लहरो को उठना चाहिए। एक लहर गिरेगी तो एक लहर गिरेगी बाकी लहरे उठ सकती है, कोई रोकने वाला नही है। अगर हम इसके विपरीत सोचते हुए चले कि समष्टि चेतना, ब्रह्म चेतना या परमात्मा उतर आये, तो मुझमे और आप मे क्या फर्क कर पायेगा ? मेन स्विच आफ हो गया ! इसलिए, अरविन्द जो कल्पना कर रहे है—कल्पना कहता हूँ—कल्पना सुखद है। बहुत कल्पनाएँ सुखद होती है लेकिन सुखद होने से कल्पनाएँ सही नही हो जाती ! यह बडी सुखद कल्पना है कि परमात्मा हम सब पर अवतरित हो जाय। लेकिन, अगर मैं अज्ञानी रहने का तय किया हुआ हूँ तो अरविन्द की कोई ताकत नही कि मुझ पर परमात्मा को उतरवा दें। न परमात्मा की बूद की कोई ताकत है कि मुझ पर उतर आये। इतनी स्वतन्त्रता तो मुझे देंगे कि मैं अज्ञानी रह सकू। और जिस दिन अज्ञानी रहने की स्वतन्त्रता न रह जायेगी उस दिन ज्ञान का कितना मूल्य होगा ? उस दिन तो अज्ञान एक परवशता होगी, ज्ञान भी एक गुलामी होगी, जो आपकी छाती पर सवार हो जायेगा। अरविन्द की कल्पना देखने मे सुखद है, भीतर भयावह है।

नही, मैं ऐसा नही देखता हू। आज तक की मनुष्य जाति का इतिहास ऐसा नही कहता। आज तक की मनुष्य जाति का इतिहास यही कहता है कि व्यक्ति चेतना उठती है और परमात्म चेतना मे लीन हो जाती है। जब लीन होती है तो परमात्म चेतना भी उतर आती है। फिर तय करना मुश्किल होता है कि बूद सागर मे गिरी कि सागर बूद मे गिर गया। लेकिन व्यक्ति सदा बूद ही है। अब तक सागर को बूद मे गिरते नही देखा गया। गिर जाने के बाद भले ही तय करना मुश्किल है कि कौन किसमे गिरा ? मिल जाने के बाद तय करना मुश्किल है कि कौन मिला, कौन किसमे गिरा, लेकिन मिलने के पहले ऐसा कभी नहीं हुआ कि सागर

बूदमे गिरा हो। अरविन्द इसकी कामना करते हैं कि सागर बूद मे गिर जाय। लेकिन किसी दिन अगर सागर बूद पर गिरेगा तो मै मानता हू कि बूद इन्कार ही करेगी। बूद को बूद होने का हक है। सागर इन्कार नही करता बूद को गिरने से; क्योकि बूद के गिरने से सागर का कुछ बनता बिगडता नही, कुछ कम ज्यादा नही होता। सागर को पता ही नही चलता बूद के गिरने का। बूद को ही पता चलता है जब वह सागर मे गिरती है कि मै सागर मे गिरी और सागर हो गयी। सागर ने कभी ऐसा वक्तव्य नही दिया कि मै बूद से एक हो गया। कभी परमात्मा का कोई वक्तव्य नही कि मै व्यक्ति से एक हो गया। सब वक्तव्य व्यक्तियो के है कि मै परमात्मा से एक हो गया। लेकिन सागर अगर बूद पर गिरे तो बूद कह भी सकती है कृपा करो, तुम तो मुझे मिटा ही दोगे और तुम्हारा गिरना मुझ पर भारी हो जायेगा। मै मानने को राजी नहीं हू कि 'काज्मिक कासेसनेस', ब्रह्माण्ड चेतना व्यक्ति के ऊपर गिरेगी जैसा अरविन्द का ख्याल है। और समस्त मनुष्य जाति के अनुभव के विपरीत है वह बात, इसलिए भविष्य पर नही छोडेगा। और फिर अरविन्द एक अर्थ मे अतीत हो गये। अब वे नहीं है जमीन पर।

अरविन्द ने और भी वक्तव्य दिये थे जो निपट नासमझी के सिद्ध हुए है। अरविन्द ने कहा था, मै 'फिजिकली इममार्टल' हू। मै शरीर रूप से अमृत हू। और मजा यह है कि वह अन्धे भक्त, जो अभी भी आशा कर रहे है कि परमात्म चेतना उनपर उतर आयेगी, वह यह भी माने बैठे हुए थे कि अरविन्द 'फिजीकली' शरीरगत रूप से अमर है। उनकी मृत्यु नही हो सकती। और जिस आदमी मे परमात्मा उतर आया हो, (और अरविन्द का ख्याल यह था कि परमात्मा आत्मा तक ही नही उतरेगा, 'फिजिकल बाडी' तक उतरेगा। ये जो भौतिक शरीर के अणु है, ये भी परमात्म रूप हो जायेंगे, जब वह उतरेगा) तो फिर मृत्यु कैसे घटित हो सकती है? तो तर्क तो ठीक ही था। इसी के सदर्भ मे था तर्क कि जब परमात्मा उतर ही आयेगा और शरीर के कण तक उतर आयेगा, 'मैटर' तक उतर जायेगा, प्रकृति तक उतर आयेगा तो फिर मृत्यु का क्या सवाल है? अमृत की बहुत लोगो ने बातें की है लेकिन वह आत्मिक अमृत्व की बातें की है। अरविन्द पहले आदमी है पृथ्वी पर जो भौतिक अमृत्व की, 'फिजिकल इममार्टिलिटी' की बाते करते है। लेकिन इस तरह की बात करने मे एक बडा फायदा है कि जब तक मै नहीं मरा हू तब तक आप मुझे हरा नहीं सकते। और जब मैं मर ही गया तो मुझे आप क्या हराइयेगा? जब तक अरविन्द जिन्दा थे, दलील सही थी। कैसे सिद्ध करियेगा कि यह बात गलत होगी? और जब मर गये तो अब किसके सामने सिद्ध

करने जाइयेगा ? लेकिन आश्चर्य यह नही है कि अरविन्द मर गये । अरविन्द के मरने के चौबिस घण्टे तक जो मा नाम की महिला उस आश्रम मे है मानने को राजी नही हुई कि वह मर सकते है । उन्होने यही माना कि वह गहरी समाधि मे चले गये है । और तीन दिन तक शरीर को बचाने की कोशिश की इस आशा में कि योगी का शरीर मरने के बाद सडता नही । क्यो कि इस मुल्क की एक पुरानी धारणा है कि योगी का शरीर 'डिसइन्टीग्रेट' नही होता । लेकिन तीन दिन बाद जब अरविन्द के शरीर से बदबू छूटने लगी तब बडी मुश्किल हुई । फिर इसको जल्दी से दफनाना पडा । क्योंकि यह खबर अगर सब जगह पहुच जाय तो जैसा अभी पूछा गया, कि यह मुल्क बहुत समझदार है और हर किसी को योगी नहीं कह देता । यह मुल्क मानता है कि योगी मर जाय तो उसके शरीर से बास नहीं आनी चाहिए, तो फिर क्या होगा ? जब बास आने लगेगी तो यह मुल्क कहेगा, कि अरे हम बडी गलती मे थे । यह आदमी योगी नही है इसको जल्दी दफनाओ और यह खबर मत फैलाने दो । और आज भी अरविन्द आश्रम मे बैठे हुए नासमझो मे बहुत ऐसे है जो मानते है कि वह वापस लौट आयेंगे । क्योकि वह 'फिजिकली इममार्टल' है ।

ये जो नासमझिया है हमारी, य जो अन्धविश्वास है, ये बडे विचारणीय है । हम क्या क्या पागलपन की बाते करते है ! मैं न तो मानता हू कि योगी के शरीर मे कोई विशेषता हो जाती है कि उसमे सडाध न आये, वह सडेगा । क्योंकि जिस योगी का शरीर सडेगा ही नही, वह मरेगा किसलिए ? आखिर सडने से तो मरना आता है । हमारी मृत्यु जो है, बुढापा जो है वह 'डिसइन्टीग्रेशन' की शुरूआत है । जब योगी बूढा हो जायेगा और जब योगी का शरीर बाकी सब नियम का पालन करेगा, बचपन मे जवानी मे जायेगा, जवानी से बुढापे मे जायेगा, बुढापे से मौत मे जायेगा तो सिर्फ एक नियम चूक जायेगा उसका कि मरने के बाद उसका शरीर सडगा नहीं ? इससे कोई सम्बन्ध नही है कि उसके भीतर की आत्मा ज्ञान को उपलब्ध हुई थी कि ज्ञान को उपलब्ध नही हुई थी । इससे उसके शरीर के सडने न सडने का कोई भी सम्बन्ध नही है । कोई 'रिलेवेंस' नही है । और आत्मा तो दोनो हालत मे आपके भीतर है चाहे आप योगी है, चाहे आप योगी नही है । आत्मा की मौजूदगी मे तो कोई फर्क नही पडता, सिर्फ आत्मा के बोध मे फर्क पडता है । योगी जानता है कि मै आत्मा हू और आप नही जानते । लेकिन इस बोध से शरीर के सडने न सडने का कोई सबध नही है । फिर योगी बीमार भी पडता है । तब हमे झूठी कहानिया गढनी पडती हैं । फिर हमे परेशानिया होती है ।

महावीर को मरने के पहले छह महीने पेचिस की बीमारी हुई। तब जैनियो को कहानिया गढ़नी पडी, क्योकि महायोगी को पेचिस की बीमारी हो जाय! और वह भी उसको जिसने महा-उपवास किये हो। उसका तो पेट कम-से-कम बिल्कुल ठीक ही होना चाहिए। पेचिस और महावीर को! तो फिर हम सबका क्या होगा? महावीर तो खाते-पीते ही नही। कथा तो यह है कि बारह साल मे उन्होने तीन सौ पैसठ दिन खाना खाया। कभी तीन महीने छोडकर, कभी दो महीने छोडकर, कभी चार महीने छोडकर एक दिन खाना खाया। इस आदमी को पेचिस हो जाय! हालाकि मेरे हिसाब से इस आदमी को ही होनी चाहिए। क्योकि, यह जो खाने के साथ अनाचार होगा तो पेट को नुकसान पहुचेगा। मेरे लिए तो सगतिपूर्ण है, यानी मै तो मानता हूँ कि इसमे सगति है कि पेचिस हुई छह महीने, लेकिन महावीर को महायोगी जो मानकर चल रहा है उसकी बडी दिक्कत है। मेरे लिए दिक्कत नही आती, महायोग होने से पेचिस होने की कोई बाधा मुझे नही पडती। मै महायोगी को इतना बडा मानता हू कि पेचिस से कोई खास नुकसान नही हो जाता है। लेकिन, कुछ है कि जिनके लिए पेचिस हो गयी तो महायोगी कैसे? उनको कहानी गढनी पडी कि यह पेचिस साधारण नही है। यह गोसालक के द्वारा, मत्र के द्वारा फेकी गयी पेचिस है जिसको महावीर ने झेल लिया है। करुणावश पी गये है और इसको झेल रहे है। जब योगी बीमार पडता है तो हमे कहना पडता है कि यह किसी की ली गयी बीमारी है। बडा मजा यह है कि योगी को खुद आप बीमार तक न नही होने देगे! हम कैसी नालायकियो की बातो मे पडे हुए है। इससे कोई मतलब नही है।

अरविन्द मरे, शरीर सडा। 'फिजिकल इमर्मार्टलिटी' की बात बेमानी हो गयी। पहले ही बेमानी थी। लेकिन, पहले यह कहा जाता है कि अभी आप कैसे कह सकते है, अभी तो अरविन्द जिन्दा है। लेकिन, तब भी हम कह सकते थे, क्योकि आज तक पृथ्वी पर 'फिजिकल इममार्टलिटी' सभव नही हुई। उसके कारण है। जैसे बुद्ध ने कहा है और ठीक कहा है कि जो भी चीज जोड से बनती है वह टूटेगी। क्योकि, सब जोडो की सीमा है। एक पत्थर को मै फेकूगा तो वह गिरेगा, क्योकि मेरे हाथ की ताकत है फेकने के लिए। वह ताकत जब चुक जायेगी तो 'रेसिसटैंस' टूट जायेगा, पत्थर गिर जायेगा। ऐसा कोई पत्थर नही हो सकता कि मै फेकू और गिरे ही नही। दूरी बढ़ सकती है लेकिन गिरेगा। जन्म होगा, मृत्यु होगी। हां, ऐसा योगी 'फिजिकल इममार्टलिटी' को उपलब्ध हो सकता है जो जन्म ही न ले। स्वयभू खडा हो जाय एकदम जमीन पर आकर। किसी माता पिता से जन्म न ले। बडा मजा है कि एक छोर को तो आप मानते है कि माता पिता से जन्म ले

और दूसरे छोर को नही मानते कि मृत्यु होगी। इस जगत मे दोनो छोर सदा साथ हैं। जो माता पिता से जन्मेगा वह मरेगा। क्योकि, माता पिता 'इममार्टल' को पैदा नहीं कर सकते। दो शरीर है वे बेचारे। दो शरीर जो पैदा करेंगे, वह शरीर के नियमो से चलेगा और शरीर के नियमो से मरेगा। लेकिन हम कहेंगे कि जब तक अरविन्द नही मरते तब तक आप कुछ नही कह सकते। मै कहता हू, मैं कह सकता हू। उनके मरने के लिए राह देखने की जरूरत नही है। क्योकि, सीधा गणित और विज्ञान का सूत्र है। इसमे उनकी कल्पनाओ से बाधा नहीं पडती, इसमे उनके अनुमानो से कोई अर्थ नही हैं। और, फिर मजा यह है कि मर जाने के बाद किससे कहियेगा? अब वह मर गये। अब किससे कहियेगा? अब अरविन्द से विवाद का कोई उपाय न रहा! और आप कहते हैं कि पाण्डीचरी मे जो हो रहा है वह बाद की पीढिया तय करेगी। तो यह पीढ़ी तो मूढ बन ही जायेगी वहा जाकर। इसका क्या होगा? इस पीढी का क्या होगा जो वहा बैठकर मूढता कर लेगी। इसको बनने दें? भविष्य की पीढिया तय करेगी, लेकिन यह पीढ़ी मर जायेगी। नही, भविष्य के लिए नहीं रुका जा सकता है। यह भी आदमी कीमती है जो वहा बैठकर काम मे लगे है। इनको भी खबर पहुचानी जरूरी है कि तुम जो कर रहे हो उसे एक दफा पुर्नविचार कर लो।

परमात्मा कभी नहीं उतरता व्यक्ति तक, व्यक्ति ही परमात्मा तक जाता है। लेकिन, जाकर जो अनुभव होता है वह ऐसे ही होता है कि परमात्मा ही उतर आया। वह बिल्कुल दूसरी बात है। उसका इससे कोई लेना देना नही है।

एलिस बेली के सम्बन्ध में एक सवाल पूछा है। एलिस बेली का ख्याल है कि कोई मास्टर के तिब्बत की किन्हीं गुफाओ, हिमालय की किन्ही कन्दराओ से उसे सन्देश देते रहे है। इसकी बहुत सम्भावना है। इसमे बहुत सचाइया है।

असल मे ऐसी आत्माए हैं जो शरीर से हट गयी है लेकिन जिनकी अनुकम्पा इस जगत से नहीं हट गयी हैं। ऐसी आत्माए है, जो अपने अशरीरी जगत से भी इस जगत के लिए निरतर सदेश भेजने की कोशिश करती है। और कभी उन्हें अगर मीडियम उपलब्ध हो जाय, माध्यम उपलब्ध हो जाय तो उसका उपयोग करती है। ऐसा कोई बेली के साथ पहली दफा हुआ हो, ऐसा नही है। ए पी सिनेट ने भी ठीक वैसे ही माध्यम का काम इसके पहले किया था। उसके पहले लीड बीटर ने भी, कर्नल अल्काट ने भी, एनीबेसेन्ट ने भी, ब्लेवेट्स्की ने भी—इन सबने भी इस तरह के माध्यम के काम किये थे। इसका एक लम्बा इतिहास है। ऐसी आत्माओ से सम्बन्धित होकर, जो आत्मिक विकास के दौर में हमसे आगे की

सीढ़ियो पर हैं, बहुत कुछ जाना जा सकता है और बहुत कुछ 'कम्युनिकेट' किया जा सकता है।

ठीक इस तरह का एक बहुत बडा प्रयोग, जो असफल हुआ वह ब्रह्मवादियों ने जे. कृष्णमूर्ति के साथ करना चाहा था। बडी व्यवस्था की थी कि कृष्णमूर्ति को उन आत्माओ के निकट सम्पर्क मे लाया जाय जो सदेश देने को आतुर है, लेकिन जिनके लिए माध्यम नही मिलते। और, कृष्णमूर्ति की पहली किताबे 'एट द फीट आफ द मास्टर' या 'लाइफ्स आफ अलक्योनी' उन्ही दिनो की किताबे है इसलिए, जे कृष्णमूर्ति उनके लेखक होने से इन्कार करते है। वे उन्होने अपने होश मे नही लिखी है। 'एट द फीट आफ द मास्टर', गुरु चरणो मे बडी अद्भुत किताब है, लेकिन कृष्णमूर्ति उसके लेखक नही है। सिर्फ माध्यम है। किसी आत्मा के द्वारा दिये गये सन्देश उसमे सग्रहीत है। बैली का भी दावा यही है। पश्चिम के मनोवैज्ञानिक इसे इन्कार करेंगे। क्योकि मनोविज्ञान के पास अभी कोई उपाय नही है जहा से वह स्वीकार कर सके। पश्चिम के मनोविज्ञान को अभी कुछ भी पता नही है कि मनुष्य के इस शरीर के बाद और शरीर भी है। पश्चिम के मनोविज्ञान को कोई पता नही है कि इस शरीर के बाद भी कोई शेष रह जाता है। पश्चिम के मनोविज्ञान को अभी यह भी बहुत स्पष्ट पता नही हो पा रहा है—मै मनोविज्ञान कह रहा हूँ, 'साइकिक साईसेस' की बात नही कर रहा हूँ—'साइकोलाजी' की बात कर रहा हूँ। 'ऑफीशियल साइकोलोजी' जो आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज और हावर्ड मे पढाई जाती है विद्यार्थी को, उस मनोविज्ञान को अभी इन सबका कोई भी पता नही है कि मनुष्य अशरीरी स्थिति मे भी रह सकता है। और, अशरीरी स्थितियो से भी सन्देश दिये जा सकते है। ऐसी बहुत-सी आत्माए है जो निरन्तर सन्देश देती रही है। इस सदी मे ही नही, महावीर के जीवन मे भी बहुत उल्लेख है।

महावीर एक गाव के किनारे खडे है। मौन है, एक ग्वाला अपनी गायो को उनके पास छोडकर और यह कहकर कि मै थोडी देर मे आता हूँ, जरा मेरी गायो को देखते रहना, गाव वापस चला आया। महावीर मौन खडे है, इसलिए हा भी नही भर सकते, ना भी नही कर सकते। वह लौट कर जब आया तब तक गायो चल पडी है और जगल के अन्दर खो गयी है। उस आदमी ने समझा कि बडा बेईमान आदमी मालूम पडता है, गाये चोरी करवा दी इसने। महावीर को उसने मारा, पीटा, ठोका। उनके कान मे कीले ठोक दी। और, कहा, बहरे हो? लेकिन वह फिर भी चुप रहे; क्योकि वह मौन है। तो कथा है कि इन्द्र ने आकर महावीर को कहा कि मै आपकी रक्षा का कोई उपाय करूं? यह इन्द्र कोई व्यक्ति नहीं है। यह अशरीरी एक आत्मा है। जो इतने निरीह, निपट, सरल आदमी पर

हुए व्यर्थ के अनाचार से पीड़ित हो गयी, लेकिन महावीर ने कहा, नहीं। यह बड़े मजे की बात है कि महावीर ग्वाले से नही बोले और इन्द्र से कहा नही। तो निश्चित ही यह 'नहीं' भीतर कहा गया है, बाहर नहीं कहा गया, नही तो ग्वाले से ही बोल लेते, उसमे क्या कठिनाई थी। इसलिए, इन्द्र से जो बात है यह 'इनर' है, यह भीतरी है, यह 'साइकिक' है, 'एस्ट्रल' है। महावीर तो ओठ बन्द किये है। यह बात किसी और तल पर हुई है। नही तो महावीर का मौन टूट गया होता, वह बारह साल के लिए मौन है। यह मौन नही टूटा। महावीर के पीछे चलने वालो को बडी कठिनाई आती है क्योकि इसे कैसे हल करें? अगर यह इन्द्र कोई आदमी है तो फिर महावीर बोल गये और मौन टूट गया। और जब इन्द्र से ही तोड दिया तो गरीब ग्वाले ने क्या बिगाडा था? उससे ही तोड लेते। लेकिन मौन न टूटा, क्योंकि ऐसे मार्ग है जहा बिना वाणी के वाणी सभव है। जहा बिना शब्द के बोला जा सकता है और जहा बिना कानो के सुना जा सकता है। और ऐसे व्यक्तित्व है जो अशरीरी है। महावीर ने कहा, नही। क्योकि, तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर मै परतन्त्र हो जाऊगा। मुझे असुरक्षित ही रहने दो। वह मेरी स्वतन्त्रता तो है। अगर तुमसे मैने रक्षा ली तो मै तुमसे बध जाऊगा। असल मे महावीर यह कह रहे हैं कि ग्वाला मुझे इतना नुकसान नही पहुचा सकता जितना तुमसे सुरक्षा लेकर मुझे पहुच जायेगा। उसे मारने दो, उससे कुछ हर्जा नहीं होता।

बुद्ध को जब पहली दफा ज्ञान हुआ तो देवताओ के आने की कथा है कि देवता आये और बुद्ध से प्रार्थना करने लगे। क्योकि, बुद्ध सात दिन तक बोले ही नही ज्ञान के बाद। उन्हे ज्ञान हो गया, लेकिन वाणी खो गयी। अक्सर ऐसा होगा ही। जब ज्ञान होगा, वाणी खो जायेगी। अज्ञान मे बोलना बहुत आसान है। क्योंकि कोई डर ही नही है कि क्या बोल रहे है। जिसका हमे पता नही है उस सबध मे बोलना बहुत सुविधापूर्ण है। देवता बुद्ध के आस-पास हाथ जोडे खडे रहे और प्रार्थना करते रहे, बोलो। सात दिन बाद वह सुन पाये। देवताओ ने प्रार्थना की कि आप नहीं बोलेंगे तो जगत का बडा अहित होगा। लाखो वर्षों मे ऐसा व्यक्ति पैदा होता है। आप चुप न रहे, आप बोले।

ये देवता कोई व्यक्ति नही है। ये वे आत्माए है जो आतुर है कि एक व्यक्ति को उपलब्ध हो गया है और इस व्यक्ति के पास अभी शरीर है, यह कह सकता है। इसको वह मिल गया है जो कहा जाने योग्य है। पृथ्वी पर ऐसी घटना मुश्किल से कभी घटती है। इसलिए, वे आत्माए प्रार्थना करती है कि आप कहें। बुद्ध को बमुश्किल राजी कर पाती है, लेकिन बुद्ध का वे माध्यम की तरह उपयोग नही

करतीं। सन्देश उनका और बुद्ध की वाणी नहीं है। बुद्ध का अपना ही सदेश है, अपनी ही वाणी है।

एलिसबेली जैसे व्यक्ति गलत नहीं कह रहे हैं। लेकिन ये सही कह रहे हैं इसको सिद्ध करना उनके लिए बहुत मुश्किल है। वे केवल माध्यम हैं। माध्यम इतना ही कह सकता है कि मुझे ऐसा सुनायी पडता है भीतर के अन्तर आकाश मे। लेकिन, कैसे सिद्ध करेगा कि भीतर के अन्तर आकाश में मुझे जो सुनायी पडता है, यह सही है? यह मेरे ही मन का खेल नहीं है, यह कैसे सिद्ध करेगा? यह मेरा ही 'अनकांसेस' नही बोलता है, यह कैसे सिद्ध करेगा? या मै ही अपने को किसी 'डिसेप्शन' मे नही डाल रहा हूँ, यह कैसे सिद्ध करेगा? बहुत मुश्किल है। माध्यम को सिद्ध करना मुश्किल है। इसलिए, बैली को मनोवैज्ञानिक हरा सकते हैं।

और, आखिरी सवाल पूछा है कि क्या मेरा किसी इस तरह के 'मास्टर' या ऐसे गुरु से सम्बन्ध है? नही, उधार काम मै करता ही नही। मेरा सम्बन्ध सिर्फ मुझसे है। जो भी मै कह रहा हूँ, वह मै ही कह रहा हूँ। उसकी भूल चूक, उसके सही गलत होने का सारा जिम्मा मुझपर है। किसी मास्टर से मेरा कोई लेना देना नही है। अगर मैं किसी को मास्टर बनाऊ तो डर यह है कि फिर मैं किसी का मास्टर बन सकता हूँ। वह काम मैं करता नही। न मै किसी का शिष्य हूँ, न किसी को शिष्य बनाने का सवाल है। निपट जो सीधा मुझे दिखायी पड रहा है वह मै कह रहा हूँ। इसलिए, मुझे सिद्ध करने जाने की जरूरत नही है कि मास्टर होते है कि नही होते है। मैंने सिर्फ बात कही है आपसे।

इतना मैं कहता हूँ, कि शरीर छूट जाने के बाद बुरी आत्माए भी बच जाती है जिन्हें हम प्रेत कहते है, अच्छी आत्माए भी बच जाती हैं, जिन्हें हम देवता कहते हैं। इन देवताओ के लिए पश्चिम मे जो नया शब्द है मास्टर का वह पकड गया है। इन देवताओ ने सदा सदेश भेजे है। वे आज भी सन्देश भेजने के लिए उत्सुक है। प्रेतात्माओ ने भी—बुरी आत्माओ ने भी सदेश भेजे है। अगर आपके मन की स्थिति ऐसी हो कि प्रेतात्मा आपको सदेश दे सके तो बराबर देगी। और बहुत, बार आदमियो ने ऐसे काम किये है जो उन्होने नही किये है, किसी ने उनसे करवाये हैं। बुरी आत्माए भी आपसे काम करवा लेती है जो आपने नहीं किया है। इसलिए, जरूरी नहीं कि जब अदालत मे एक आदमी कहता है कि यह हत्या मैंने नहीं की, मेरे बावजूद हो गयी है तो पक्का नही है कि वह आदमी झूठ ही कहता हो। यह हो सकता है। ऐसी आत्माए है, जिन्होंने निरन्तर हत्याए करवायीं। ऐसे घर हैं जमीन पर जिनपर उन आत्माओ का वास है कि उस घर

में जो भी रहेगा, वे उनसे हत्या करवा लेंगी। सिर्फ पीढियो तक नही चलते झगडे, जन्मो तक भी चलते है।

एक युवक मेरे पास लाया गया। जिस मकान मे वह रह रहा है, अभी कोई तीन साल पहले वह मकान खरीदा गया, तबसे उस लडके मे कुछ गडबड होनी शुरू हो गयी। उसका सारा व्यक्तित्व बदल गया। वह सौम्य था, विनम्र था, वह सब खो गया। वह दम्भी, अहकारी, हिंसक, हर चीज के तोडफोड मे उत्सुक, जरा-जरा-सी बात मे लडने को आतुर हो गया। अचानक जिस दिन घर मे वह आये, एकदम से 'पर्सनलिटी चेज' हुई, एकदम से व्यक्तित्व बदला। वह मेरे पास उसे लाये। उन्होने कहा कि हम बडी मुश्किल मे पड गये है। हम जैसे उसको घर के बाहर ले जाते है वह ठीक हो जाता है। जब वह मेरे पास लाये तो वह ठीक था। वह कहने लगा, मै खुद ही मुश्किल मे हूँ। अभी मै बिल्कुल ठीक हूँ। लेकिन, न मालूम उस घर मे जाकर क्या होता है कि मै एकदम गडबड हो जाता हूँ। उसको बेहोश किया। उसको सम्मोहित किया और उससे पूछा तो पता चला ग्यारह सौ साल लम्बी कहानी है। कोई आदमी ग्यारह सौ साल पहले उस खेत का मालिक था, जहा वह मकान है। और ग्यारह सौ साल से वह निरन्तर कोई पैतीस हत्याए करवा चुका। उसने सब वक्तव्य दिया कि मै तो इससे जब तक हत्या न करवा लू तब तक छोडनेवाला नही। ग्यारह सौ साल से निरन्तर वह उस परिवार के लोगो की हत्या करवा रहा है जिनके द्वारा उसकी हत्या ग्यारह सौ साल पहले की गयी थी। तबसे वह प्रेत है और उस जगह बैठा है। वह किसी रूप मे और कही पैदा हो वह उनकी हत्या करवा रहा है।

बुरी आत्माए भी अपने सदेश पहुचाने की चेष्टा करती है। बहुत बार आप इस ख्याल मे होगे कि आप कर रहे है, आप नही कर रहे होते हैं। बहुत बार आपसे ऐसा अच्छा कृत्य हो जाता है जो कि आप खुद ही नही सोच सकते कि मै कर सकता था। दूसरे की बात छोडे, दूसरा तो मानता ही नही कि किसी ने अच्छा किया। आप खुद भी नही मान पाते कि इतना अच्छा मै कर सकता था जो मैने किया। उसमे भी कोई सदेश काम करते चले जाते है। और मैने इस बीच एक बात कही, उसको थोडा और समझा दू। मैने कहा कि कृष्णमूर्ति के साथ एक बहुत बडा प्रयोग किया जा रहा था जो असफल गया। जिनको हम देवलोक की आत्माए कहे, उनमें बहुत-सी आत्माए एक साथ उत्सुक होकर इस व्यक्ति मे एक ऐसी चेतना को जन्माना चाहती थी जैसा कि बुद्ध या महावीर या कृष्ण।

इस तरह की एक बड़ी चेतना इस व्यक्ति के भीतर प्रवेश कर जाय, ऐसी कोई चेतना आतुर है। असल मे बुद्ध का ही एक आश्वासन अभी प्रतीक्षा कर रहा है।

बुद्ध का एक आश्वासन है कि मै मैत्रेय के नाम से एक बार और लौट आऊंगा। तो, मैत्रेय नाम का बुद्ध अवतार आतुर है। लेकिन, उसके योग्य शरीर उपलब्ध नहीं हो रहा है। उसके योग्य ठीक संस्थान और मीडियम उपलब्ध नहीं हो रहा है। थियोसाफी का सारा-का-सारा आयोजन, कोई सौ वर्ष की निरन्तर श्रम व्यवस्था एक ऐसे व्यक्ति को खोजने की थी जिसमें मैत्रेय की आत्मा प्रवेश कर जाय। इसलिए, तीन-चार व्यक्तियो पर मेहनत उन्होंने शुरू की, लेकिन सभी असफल हुआ। सर्वाधिक मेहनत कृष्णमूर्ति पर की गयी थी। लेकिन, वह नही हो सका। और, नही होने का कारण अति मेहनत ही बनी। सारे लोग इतने चेष्टारत हो गये, चारो तरफ से इतना दबाव डाला गया कि स्वभावत कृष्णमूर्ति का अपना व्यक्तित्व विद्रोही और बगावती हो गया। वह 'रीएक्ट' कर गया। उसने अन्ततः इन्कार कर दिया कि नही। और, उसके बाद चालीस साल हो गये, लेकिन कृष्णमूर्ति 'रिएक्शन' से पूरी तरह मुक्त नही है। वह अभी भी उन्ही के खिलाफ बोले चले जा रहे है जो अब है ही नही। बहुत गहरे मे वह घाव एकदम भर नही गया। लेकिन, थोड़ी गलती भी हो गयी। कृष्णमूर्ति की हैसियत के आदमी को दूसरे की आत्मा के प्रवेश को राजी नही किया जा सकता था। थोडी और कमजोर आत्मा चुननी थी। फिर उन्होंने कृष्णमूर्ति से कमजोर आत्माए चुनी। लेकिन उसकी भी तकलीफ है। उतनी कमजोर आत्मा उस आत्मा के प्रवेश के योग्य नही बन पाती। पात्र छोटा पड जाता है और मैत्रेय की आत्मा उसमे प्रवेश न कर पायेगी। जो पात्र बडा पड सकता है वहे खुद अपनी आत्मा मे इतना गहरा है कि किसी आत्मा के प्रवेश के लिए राजी क्यो हो? इसलिए, बचपन मे तो कृष्णमूर्ति को उन्होने किसी तरह राजी रखा, लेकिन जैसे-जैसे उनकी उम्र बढी, उनकी 'अवेयरनेस' बढ़ी, उनकी खुद की चेतना का जन्म हुआ वैसे इन्कार करता चला गया। एक बहुत बडा प्रयोग सफल नही हो सका। मैत्रेय की आत्मा आज भी भटकती है। कठिनाई यही है कि जो राजी हो सकते है उसके लिए वह योग्य नही है और जो योग्य है वे राजी नहीं हो सकते। इसलिए, कहा नही जा सकता कि कितनी देर लगेगी मैत्रेय के व्यक्तित्व को उतरने मे। उतर भी सकेगी जल्दी, यह भी सभावना सिकुड़ती जाती है। क्योंकि, अब तो कोई बड़ा आयोजन भी नही है उसकी तैयारी के लिए। अब तो आकस्मिक आयोजन ही काम कर सकता है। ऐसा ही आयोजन सदा काम करता है अतीत मे। बुद्ध के लिए किसी व्यक्ति को राजी नहीं करना पड़ा। एक गर्भ उपलब्ध हो गया और बुद्ध प्रवेश कर गये। महावीर के लिए

किसी को राजी नहीं करना पडा, गर्भ उपलब्ध हो गया और महावीर प्रवेश हो गये। लेकिन, उतने श्रेष्ठ गर्भ उपलब्ध होने मुश्किल होते चले गये हैं।

प्रश्न : गीता के सात सौ एक श्लोकों का पारायण करने में कम से कम चार घंटे लग जाते हैं। तो क्या कुरुक्षेत्र के रण मैदान में जब श्रीकृष्णार्जुन संवाद हुआ उस दरम्यान चार घंटे तक युद्ध स्थगित कर दिया गया?

उत्तर: बिल्कुल ठीक।

प्रश्न : आपने कहा था कि ज्यादा से ज्यादा एक साल तक शरीर छोड़ने के बाद आत्मा दूसरा जन्म ले लेती है। आज कहा कि ग्यारह सौ साल तक खून करवाते रहे!

उत्तर हा, ये विशेष स्मृतिवाले लोग है। साधारण स्मृति की बात कर रहा था मै, परन्तु हमारे बीच विशेष स्मृतिवाले लोग भी है।

कर्जन ने अपने सस्मरणो मे एक घटना लिखी है। कर्जन ने लिखा है कि उसके पास एक विशेष स्मृति का आदमी राजस्थान से लाया गया। विशेष शब्द भी छोटा पड जाता है उस स्मृति के लिए। वह सिर्फ राजस्थानी के अतिरिक्त कोई भाषा नही जानता है। तीस भाषा बोलनेवाले लोग लार्ड कर्जन के वायसराय भवन मे बिठाये गये। उन तीसो से कहा गया कि वह एक-एक वाक्य अपनी-अपनी भाषा का ख्याल मे ले ले। फिर, वह राजस्थानी ठेठ गवार गाव का आदमी पहले आदमी के पास जायगा और वह पहला आदमी अपनी भाषा के वाक्य का पहला शब्द उसे बतायेगा। फिर, एक जोर का घण्टा बजाया जायगा, फिर वह दूसरे के पास जायेगा। वह अपनी भाषा के अपने वाक्य का पहला शब्द बतायेगा। फिर, जोर का घण्टा बजाया जायेगा। ऐसे वह तीस लोगो के तीस वाक्यो का पहला शब्द लेकर पहले आदमी के पास वापस लौटेगा। अब वह दूसरा शब्द बतायेगा, फिर घण्टा, और ऐसा चलेगा। ऐसे घण्टो की लम्बी यात्रा मे वे तीस आदमी अपने तीस वाक्य बता पायेंगे और हर शब्द के बाद तीस शब्दो का अन्तराल होगा। बाद मे, इस प्रकार उस आदमी ने तीसो आदमियो के तीसो वाक्य अलग-अलग बता दिये कि इस आदमी का पूरा वाक्य यह है, इस आदमी का पूरा वाक्य यह है, इस आदमी का पूरा वाक्य यह है। अब ऐसा आदमी अगर प्रेत हो जाय तो ग्यारह सौ साल बहुत कम हैं, ऐसे आदमी के लिए वह ग्यारह लाख साल तक भी याद रख सकता है। यह विशेष स्मृति की बात है। और आप जो पूछते हैं, वह बहुत कीमती सवाल है गीता के बारे में। ठीक पूछते हैं।

चार घण्टे लग जायेंगे अगर हम गीता पढ़ें, तो चार घण्टे तक युद्ध रुका रहा होगा? सम्भव नहीं मालूम होता। कोई तो सवाल उठाता कि यह क्या हो

रहा है ? हम यहा युद्ध करने आये हैं, कोई लम्बा गीता का पाठ सुनने नही आये। यह कोई गीता ज्ञान-यज्ञ नही है कि चार घण्टे तक गीता का पाठ चले। ये चार घण्टे विचारणीय हैं। अगर हम इतिहासज्ञ से पूछेंगे तो वह कहेगा कि कुछ बात ऐसी हुई होगी कि गीता तो थोड़े मे कही गयी होगी, फिर बाद में उसका विस्तार किया गया। अगर हम महाभारत के जानकारो से पूछे तो वे कहेंगे, गीता जो है वह प्रक्षेप है। ऐसा मालूम होता है कि महाभारत पहले लिखा गया और फिर किसी कवि ने इस मौके को चुनकर अपनी पूरी कविता इसमे डाल दी। लेकिन, यह जगह मौजू नही मालूम पडती, युद्ध के स्थल पर। इतने बडे संदेश देने का कोई अवसर नही है। मै क्या कहूगा ? न तो मै मानता हूँ कि प्रक्षिप्त है गीता, न मै मानता हूँ कि पहले संक्षिप्त मे कही गयी और फिर बडे मे कही गयी। एक छोटे-से उदाहरण से समझाऊ तब ख्याल मे आ जाय।

विवेकानन्द जर्मनी गये और ड्यूसेन के घर में मेहमान हुए। ड्यूसेन पश्चिम मे उन दिनो 'इण्डोलाजी' का, भारतीय ज्ञान का बडे से बडा पण्डित था। उस कोटि के एक ही दो आदमी थे— मैक्समूलर का नाम गिना सकते है। फिर भी, कई मामलो मे मैक्समूलर से ड्युसेन की अन्तर्दृष्टि गहरी है। उपनिषदो को समझनेवाला पश्चिम मे वह पहला आदमी है, गीता को समझनेवाला भी पश्चिम मे वह ठीक पहला आदमी है। ड्यूसेन का अनुवाद ही लेकर शोपेनहार सड़क पर नाचा था। गीता का अनुवाद शोपेनहार ने जब पहली दफा पढा तो सिर पर रखकर वह बाजार मे नाचने लगा। उसने कहा, यह किताब पढने जैसी नहीं, नाचने जैसी है। और शोपेनहार साधारण आदमी नही था। असाधारण रूप से उदास आदमी था। उसकी जिन्दगी मे नाच बहुत मुश्किल बात है। वह एकदम 'पेसिमिस्ट' था। मानता ही यह था कि जिन्दगी दुख है। वह सुख से आगे आनेवाले दुख मे डालने की तरकीब है। जैसे कि हम मछली को आटा लगाकर काटा डाल देते है। बस आटा है सुख, असली चीज काटा है जो दुख है। वह शोपेनहार ड्यूसेन का अनुवाद लेकर नाचा था। उस ड्यूसेन के घर विवेकानन्द मेहमान थे। ड्यूसेन जर्मन भाषा मे लिखी एक किताब पढ रहा था। जब विवेकानन्द उसके पास गये थे तो वह आधी पढ रहा था। उसने कहा, यह बडी अद्भुत किताब है। विवेकानन्द ने कहा कि घण्टे भर के लिए मुझे भी दे दो। उसने कहा, आप तो ज्यादा जर्मन जानते नहीं। विवेकानन्द ने कहा कि जो ज्यादा जर्मन जानते हैं क्या वे समझ ही लेंगे ? उसने कहा, यह जरूरी नहीं है। तो विवेकानन्द ने कहा, उल्टा भी हो सकता है कि जो कम जर्मन जानता हो वह भी समझ ले। खैर मुझे दो। पर ड्यूसेन ने कहा, आप दो तीन दिन ही तो यहा मेहमान होंगे। पन्द्रह दिन तो मैं मेहनत

कर चुका, अभी आधी ही पढ पाया हूँ। विवेकानन्द ने कहा, मैं ड्यूसेन नही हूँ, मैं विवेकानन्द हूँ। खैर, वह किताब दे दी गयी और घण्टे भर बाद विवेकानन्द ने वह किताब वापस कर दी। ड्यूसेन ने कहा कि क्या किताब पढ गये ? विवेकानन्द ने कहा, पढ ही नहीं गये, समझ भी गये। ड्यूसेन ऐसे छोडनेवाला आदमी न था। उसने दस पाच प्रश्न पूछे जो हिस्सा वह पढ चुका था उस बाबत। और विवेकानन्द ने जो समझाया तो ड्यूसेन दग रह गया। उसने कहा कि आप समझ भी गये ! कैसे यह हुआ, यह चमत्कार कैसे हुआ ! विवेकानन्द ने कहा, पढने के साधारण ढग भी है, असाधारण ढग भी है।

हम सब साधारण ढग से पढते है, इसलिए जिन्दगी मे दस पाच किताबें पढ पायें, समझ पायें तो बहुत है। और ढग भी है, और असाधारण ढगो की बडी सीढिया है। ऐसे लोग भी है जो किताब को हाथ में रखे, आख बन्द करें और किताब फेंक दें। लेकिन, वे 'साइकिक' ढग है। वे बहुत आतरिक ढग है। मेरा अपना मानना जो है, वह मैं आपको कहू। कृष्ण ने यह गीता कोई प्रकट वाणी मे अर्जुन से नही कही है। यह बडा 'साइकिक कम्युनिकेशन' है। इसका किसी को पता ही नही चला है। आसपास जो युद्ध मे खडे हुए लोग हैं उन्होने यह नहीं सुनी है। नही तो भीड लग जाती वहां। वहा सभी इकट्ठे हो जाते। चार घटे कृष्ण जैसा आदमी बोलता हो तो कम-से-कम पाण्डव तो सब इकट्ठे हो ही जाते, कौरव भी इकट्ठे हो सकते थे। लेकिन, नहीं, यह कृष्ण और अर्जुन, के बीच 'इनर कम्युनिकेशन' है, 'यह साइकिक कम्युनिकेशन' है। यह शब्दो मे बाहर कहा नही गया, यह भीतर बोला गया है, भीतर पूछा गया है। इसकी खबर आसपास खडे लोगो को नही चली। सबसे पहले सजय को पता चला। अब यह भी बडे मजे की बात है कि इतनी दूर बैठा है सजय और अन्धे धृतराष्ट्र से कहता है। अन्धा धृतराष्ट्र पूछता है कि मेरे बेटे क्या कर रहे है युद्ध मे ? कौरव पाण्डवो के बीच क्या हो रहा है ? बहुत मीलो का फासला है। सजय उस कथा को कहता है कि वहा वे धर्म के क्षेत्र मे, कुरुक्षेत्र मे इकट्ठे हो गये है, वहा यह सब हो रहा है। वहा अर्जुन दुविधा मे पड गया है। वहा अर्जुन जिज्ञासा कर रहा है। वहां कृष्ण ऐसा समझा रहे हैं।

यह भी टेलीपैथिक कम्युनिकेशन है। सजय के पास और कोई उपाय नहीं है कुरुक्षेत्र में क्या हो रहा है उसको कहने का। तो, दो आदमियो ने गीता सुनी सबसे पहले। पहले सुनी अर्जुन ने, उसके साथ सुनी सजय ने, उसके बाद सुनी धृतराष्ट्र ने, उसके बाद सुनी जगत ने। फिर सब फैलाव हुआ। बाकी यह कोई बाहर कही गयी बात नहीं है। इसलिए, चार घण्टे हमें लगते हैं गीता को पढने

में, क्योंकि हम बाहर पड़ते हैं। चार क्षण में हो गयी हो, यह भी संभव है, एक क्षण भी न लगा हो, यह भी संभव है।

प्रश्न : जैन इतिहास के आधार पर जैनों के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ कृष्ण के चचेरे भाई थे। घोर तपश्चर्या के बाद शायद वे ही हिन्दुओं के अंगि ऋषि के नाम से प्रचलित हुए और अध्यात्म ज्ञान की परम्परा में वे श्रीकृष्ण के 'लिंक' रहे। आपकी इस सम्बन्ध में क्या दृष्टि है ? क्या ऐसा सम्बन्ध होता है ? क्योंकि आपने ही कहा कि कृष्ण का होना आंतरिक कारणों पर अवलंबित था। वे आंतरिक कारण क्या थे—'इसोटेरिक' ज्ञान के सबंध में ?

उत्तर नेमिनाथ कृष्ण के चचेरे भाई हैं। और यह उन दिनों की कथा है जब हिन्दू और जैन दो धाराए नहीं बनी थीं। हिन्दू और जैन महावीर के बाद स्पष्ट रूप से टूटे और अलग धाराए बनीं। नेमिनाथ कृष्ण के चचेरे भाई है और जैनो के बाईसवे तीर्थंकर हैं। लेकिन, नेमिनाथ और कृष्ण के बीच किसी तरह का कोई 'इसोटेरिक' सम्बन्ध नही है। किसी तरह का कोई गुह्य ज्ञान का सम्बध नही है। उसका कारण है, क्योकि नेमिनाथ एक बहुत ही विभिन्न प्रकार की 'वन डायमेशनल' परम्परा के व्यक्ति है। जैनो की जो चौबीस तीर्थंकरो की परम्परा है, जिसने सभवत त्याग की डायमेशन का इस पृथ्वी पर सर्वाधिक प्रयोग किया है। इस पृथ्वी पर इतनी लम्बी परम्परा और इतने अद्भुत व्यक्तियो की इतनी बडी कडी कही भी नही हुई है। जैनो के पहले तीर्थंकर ऋग्वेद के समकालीन या थोडे से पूर्वकालीन हैं। क्योकि, ऋग्वेद मे पहले तीर्थंकर के प्रति इतने सम्मानवाची शब्द है कि समकालीन लोग समकालीन के प्रति इतनी शिष्टता कभी नही दिखलाते। वे शब्द इतने आदरपूर्ण है कि ऐसा लगता है कि यह आदमी आदृत तब तक हो चुका होगा और थोडा वक्त बीत गया होगा। क्योकि, समकालीन आदमी के प्रति इतने सम्मानजनक शब्द! अभी तक मनुष्य इतना सभ्य नही हो पाया। पर इतना तो पक्का है कि वह समकालीन है, क्योकि उनका नाम उपलब्ध है और आदर से उपलब्ध है। वेद से लेकर महावीर तक हजारो साल का फासला है। इतिहास निर्णय नही कर पाता कि हजार साल कितने है। पश्चिम के नाप जोख के जो ढंग है उसमे क्रिश्चियनिटी एक बहुत गहरे पक्षपात से भरी है कि जीसस के चार हजार साल पहले ही सृष्टि बनी। तब कोई छह हजार साल जगत की सृष्टि को ही हुए तो इसमे हिन्दुओं की और जैनों की काल गणना का तो उपाय ही नही है। क्योकि, जब सृष्टि ही केवल छह हजार साल पहले बनी हो तो लाखों साल के लम्बे समय का कहा हिसाब होगा ? इसलिए, जिन लोगो ने पहली दफा पश्चिम की काल गणना के हिसाब से यहां सोचना शुरू किया उन्होंने हजार डेढ़ हजार के 'स्पान' में सारी बातों को

बिठाने की कोशिश की; लेकिन वह सच नहीं है। अब तो क्रिश्चियनिटी को अपनी काल गणना का ढग छोड देना पड़ा है। लेकिन, बड़े मजेदार लोग हैं। अधविश्वास भी बडी मुश्किल से छूटते हैं। अब तो जमीन मे ऐसी हड्डिया मिल गयीं जो लाखो साल पुरानी है। लेकिन, एक बडे मजे की बात आपसे कहू, अधविश्वासियो को कोई प्रमाण डिगा नही सकता। एक ईसाई थियोलाजियन ने, जब यह लाखो साल पुरानी हड्डिया जमीन से मिली, तो क्या कहा ? उसने कहा, कि भगवान के लिए सब कुछ सम्भव है। जब उसने पृथ्वी बनायी तो उसने ऐसी हड्डियाँ भी उसमे डाल दी कि जो पाच लाख साल पुरानी मालूम पड़े। आदमी का मन! लेकिन, अब विज्ञान की काल गणना लम्बी हुई। तिलक ने तो तय किया कि ऋग्वेद को कम-से-कम नब्बे हजार वर्ष हुए है—कम-से-कम ! नब्बे न भी हो तो भी लम्बा काल है। हजारो साल तक वेद सिर्फ स्मरण रखे गये है, फिर हजारो साल से लिखे हुए हैं। और, जितना काल उनका लिखा हुआ बीता है उससे भी बहुत बडा काल उनका अनलिखा बीता है। उसमे ऋग्वेद मे जैनो का पहला तीर्थंकर मौजूद है। और चौबीसवा तीर्थंकर तो बहुत ही ऐतिहासिक प्रमाणो से पच्चीस सौ साल पुराना है। यह जो चौबीस तीर्थंकरो की लम्बी परम्परा है, इसका कोई मुकाबला पृथ्वी पर कही भी नही है और भविष्य मे भी कही हो सकेगा, बहुत मुश्किल है। अब 'डायमेशन' धीरे-धीरे क्षीण होता चला गया। इसलिए, यह बात बहुत सार्थक मालूम पडती है कि चौबीस तीर्थंकर के बाद पच्चीसवा तीर्थंकर नही होगा। क्योकि, त्याग का 'डायमेशन' जो है वह सूख गया। लेकिन, अतीत मे वह बडा सार्थक 'डायमेशन' था।

नेमिनाथ उसमे बाईसवी कडी है। कृष्ण के वे चचेरे भाई है। कभी-कभी कृष्ण का उनसे मिलना भी होता है। यह भी बडे मजे की बात है, नेमिनाथ गाव से निकलते है तो कृष्ण सम्मान देने जाते है। नेमिनाथ कभी कृष्ण को सम्मान देने नही गये। त्यागी किसी को सम्मान दे, यह बडा मुश्किल है, बहुत कठिन है। त्यागी बडा कठोर हो जाता है, बडा पथरीला हो जाता है। उसके लिए व्यक्ति, सबध और राग का कोई मूल्य नहीं रह जाता तो ऐसा समझें कि कृष्ण की तरफ से नेमिनाथ चचेरे भाई है। नेमिनाथ की तरफ से कोई भाई-वाई नहीं है। क्योकि, नेमिनाथ कभी कुशल क्षेम पूछने भी नही गये, वह तो राग की दुनिया के बाहर हैं। विराग के डायमेशन है, जहा, वहा सब सबध छोड देने है, असंग हो जाना है। जहा कोई अपना ही नही जिससे कोई सम्बन्ध जोडने की बात हो। लेकिन, अगर कोई सोचता हो कि नेमिनाथ से कोई गुह्य बात कृष्ण को मिली हो, ऐसा नही है। क्योकि, नेमिनाथ कृष्ण को कुछ नही दे सकते, चाहते तो

कृष्ण से कुछ ले सकते थे। उसके कारण हैं। क्योंकि, कृष्ण मल्टी डायमेंशनल हैं। कृष्ण बहुत कुछ जानते हैं जो नेमिनाथ नहीं जानते, नही जान सकते हैं। नेमिनाथ जो जानते हैं, उसे कृष्ण जान सकते हैं, पहचान सकते है, उसमें कोई कठिनाई नही है। कृष्ण का व्यक्तित्व समग्र को आच्छादित करता है। नेमिनाथ का व्यक्तित्व एक दिशा को पूरा-का-पूरा जीता है। इसलिए, नेमिनाथ कीमती व्यक्ति थे कृष्ण के युग मे, लेकिन इतिहास पर उनकी कोई छाप नहीं छूट जाती। त्यागी की कोई छाप इतिहास पर नही छूट सकती।

इतिहास पर त्यागी की क्या छाप छूटेगी? एक ही घटना है जो इतिहास अंकित करेगा कि उसने सब छोड दिया। कृष्ण का व्यक्तित्व सारे हिन्दुस्तान पर छा गया। सच तो ऐसा है कि कृष्ण के साथ हिन्दुस्तान ने जिस ऊंचाई को देखा, फिर वह दुबारा नही देख पाया। कृष्ण के साथ उसने जो युद्ध लडा महाभारत फिर वैसा युद्ध नहीं लड पाया। फिर, हम छोटी-मोटी लडाइयो मे, टुच्ची लडाइयो मे उलझे रहे। महाभारत जैसा युद्ध कृष्ण के साथ सम्भव हो सका। और, ध्यान रहे साधारणतया लोग सोचते हैं कि युद्ध लोगो को नष्ट कर जाते है। लेकिन, हिन्दुस्तान ने तो कृष्ण के बाद, महाभारत के बाद कोई बडा युद्ध नही लडा। हिन्दुस्तान को तो सबसे ज्यादा समृद्ध होना चाहिए था। नष्ट होने का कोई कारण नहीं। लेकिन, आज पृथ्वी पर वे ही कौमे समृद्ध है जो बडे युद्धो से गुजरी है। युद्ध नष्ट नही कर जाते। युद्ध सोयी हुई ऊर्जा को जगा जाते है। असल मे युद्ध के क्षणो मे ही कोई कौम अपनी चेतना की, अपने होने की, अपने अस्तित्व के शिखरो को छूती है। चुनौती के क्षण मे ही हम जगते है। तो, महाभारत के बाद ऐसे जागरण का कोई क्षण नही आया कि जब हमने पूरी तरह अपने को जाना हो। पिछले दो महायुद्ध जहा गुजरे है, एक कथा है उनकी कि वह टूटे और मिटे, लेकिन वह अधूरी है कथा। जापान नष्ट हो गया था बुरी तरह, लेकिन सिर्फ बीस साल मे, जैसा जापान कभी नही था वैसा प्रकट हो गया। जर्मनी टूटकर बिखर गया था। दो युद्ध गुजरे उसकी छाती पर, लेकिन पहला युद्ध १९१४ मे गुजरा और बीस साल बाद वह फिर दूसरा युद्ध लडने के योग्य हो गया। और, कोई नही कह सकता कि दस-पांच वर्ष मे वह फिर तीसरा युद्ध लडने के योग्य नही हो जायेगा! यह बडी आश्चर्य कि बात है कि हमने युद्ध का एक ही पहलू देखा है कि वह नष्ट कर जाता है। हमने दूसरा पहलू नही देखा कि जो हमारी सारी सोयी हुई प्रसुप्त चेतना को जगा सकता है। हमने यह नही देखा कि उसकी चुनौती मे हमारे वे जो अंश बेकाम पड़े रहते है, सक्रिय हो उठते है। 'क्रिएटिव' हो उठते है। असल मे विध्वंस के साथ सृजन की क्षमता और आत्मा भी पैदा होती है। वे भी जीवन

के दो पहलू हैं इकट्ठे। और कृष्ण, जो इतने राग रंजित है, जो इतने नृत्य मे और गान मे मस्त है, जो गीत और बासुरी मे जिये है वे उस युद्ध को स्वीकार कर लेते है। इस स्वीकृति मे कोई विरोध नही पडता। और, इतने बडे युद्ध के वे कारण बन जाते है।

नेमिनाथ जैसे व्यक्ति इतिहास पर कोई रेखा नही छोड जाते। इसलिये बहुत मजे की बात है कि जैनों के चौबीस तीर्थंकरो मे पहले तीर्थंकर का उल्लेख हिन्दू ग्रन्थो मे है। फिर, पार्श्वनाथ का थोडा उल्लेख हिन्दू ग्रन्थो मे है तेईसवे तीर्थंकर का। और बाईसवे तीर्थंकर का अनुमान किया जाता है कि घोर अगिऋषि के नाम मे जिस व्यक्ति का उल्लेख है, वह नेमिनाथ है। महावीर तक का उल्लेख हिन्दू ग्रन्थो मे नही है। इतने प्रभावी व्यक्ति! लेकिन इतिहास पर कोई रेखा नही छोड जाते। असल मे 'रिननसिएशन' का मतलब ही यह है, त्याग का मतलब ही यह है कि हम इतिहास से विदा होते है। हम उस घटना क्रम से विदा होते है जहा चीजे घटती है, बनती है, बिगडती है। हम उस तरफ जाते है, जहा न कुछ बनता है, न कुछ बिगडता, जहा सब शून्य है। लेकिन, कृष्ण से सीखने को हो सकता है नेमिनाथ के लिए, लेकिन नेमिनाथ सीखेंगे नहीं। कोई जरूरत नही है, कोई प्रयोजन नहीं है। और, नेमिनाथ के पास एक धरोहर है। उनके पीछे इक्कीस तीर्थंकरो की एक बडी धरोहर है, एक बडे अनुभव का सार उनके पास है। जहा वे चल रहे है, उस यात्रा पथ पर उनके पास पर्याप्त पाथेय है। उनको कुछ सीखने की कही कोई जरूरत नही है। इसलिए, नमस्कार वगैरह होना है, कुछ आदान-प्रदान नही होता। ऐसे कृष्ण, कभी नेमिनाथ बोलते है तो वहा भी सुनने चले जाते है। इससे कृष्ण की गरिमा ही प्रकट होती है। इससे महिमा ही प्रकट होती है, सीखने की सहजता ही प्रकट होती है। नही, वह कृष्ण ही कर सकते है। क्योकि, जिसे जीवन के सब पहलुओ मे रस हो वह कही भी सीखने जा सकता है। वह किसी को भी गुरु बना सकता है। वह किसी से भी सीख ले सकता है।

प्रश्न . कृष्ण ने किस नास्तिकता से गुजर कर इतनी गहरी आस्तिकता पायी ?

उत्तर जो गहरा आस्तिक है वह गहरा नास्तिक होता ही है। सिर्फ उथले आस्तिक उथले नास्तिको के विरोध मे होते है। झगडा सदा उथलेपन का है। गहरे में कोई झगडा नहीं है। झगडा सिर्फ नासमझ आस्तिको का, नासमझ नास्तिको से है। समझदार आस्तिक नास्तिक से झगडने नहीं जायेगा। समझदार नास्तिक आस्तिक

से समझने नहीं आयेगा। क्योंकि, समझ कहीं से भी आ जाय, एक पर पहुंच जाती है। आस्तिक कहता क्या है? आस्तिक इतना ही कहता है कि परमात्मा है। लेकिन, जब आस्तिकता की गहराई बढ़ती है तो परमात्मा दूसरा नहीं रह जाता। जो है वही परमात्मा हो जाता है। नासमझ आस्तिक कहता है, वहां है परमात्मा, कहीं और। समझदार आस्तिक कहता है, यहीं है परमात्मा, यहीं। नास्तिक कहता है, कहीं कोई परमात्मा नहीं है। मतलब यही है कि उसके अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं है, जो है वही है। वह उसे प्रकृति का नाम देता है।

नीत्शे का एक वचन है और नीत्शे गहरे नास्तिको में एक है — उतना ही गहरा जितना कोई आस्तिक कभी गहरा होता है। नीत्शे का एक वचन है कि यदि कहीं भी कोई परमात्मा है तो मैं बरदाश्त न कर पाऊंगा। क्योंकि, फिर मेरा क्या होगा? तब मैं कहां खड़ा होता हूं। और, अगर किसी को परमात्मा होना ही है तो मेरे होने में हर्ज क्या है? मैं ही परमात्मा हो जाऊं। यह घोर नास्तिक है। यह कहता है कोई परमात्मा नहीं है, मतलब यही है कि जो है वही परमात्मा है। अतिरिक्त परमात्मा को सोचने की बात गलत है। गहरा आस्तिक भी यही कहता है कि अतिरिक्त परमात्मा नहीं है, जो है वही परमात्मा है। मैंने गहरी आस्तिकता और गहरी नास्तिकता मे कभी कोई फर्क नहीं देखा। असल मे, आस्तिक विधेयवादी शब्दो का प्रयोग करता है, इतना ही फर्क है। और नास्तिक निषेधवाची शब्दो का प्रयोग करता है, इतना ही फर्क है। इसलिए, जो विधेयवादी आस्तिक था उसने बुद्ध को, महावीर को नास्तिक कहा है। बुद्ध और महावीर राजी नही है नास्तिक मानने को अपने को। सांख्य या योग उथले आस्तिक को नास्तिक दिखायी पड़ते है। लेकिन, सांख्य और योग नास्तिक नहीं है। नास्तिक उस अर्थों मे नहीं है जिस अर्थों में दिखायी पड़ते है। सिर्फ वे शब्दो का प्रयोग करते है वह निषेध का है। कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति उथले आस्तिको को नास्तिक मालूम पड़ सकते है क्योंकि वह जो शब्द का प्रयोग करते है वह 'निगेटिव' के शब्द है। 'निगेटिव माइण्ड' पर उनका जोर है। और मुसीबत यह है कि कोई भी शब्द का हम प्रयोग करे, दो ही उपाय है — या तो पोजेटिव शब्द का उपयोग करे या निगेटिव शब्द का उपयोग करे। आस्तिक कह रहा है, जो है वह ईश्वर है। वह विधेयात्मक वक्तव्य दे रहा है। नास्तिक कह रहा है, जो है वह ईश्वर नही है, वह निषेधात्मक दे रहा है। ऐसे भी लोग हुए है जो इन गहराइयो को स्पर्श करते है। जैसे, उपनिषद् कहते है 'नेति नेति'। उपनिषद् कहते है, यह भी नही, वह भी नहीं। और, जो है वह कहा नहीं गया। नास्तिक भी आधा कहता है, आस्तिक भी आधा कहता है। 'नीदर दिस, नार दैट'। न यह, न वह। दोनो ही आधी आधी बातें

कहते हैं । हम पूरी कहते हैं , और पूरी कही नही जा सकती । इसलिए, हम चुप रह जाते है । वे लोग भी चुप हैं ।

कृष्ण को किसी नास्तिकता से गुजरने का कारण नहीं है । क्योंकि कृष्ण किसी उथली आस्तिकता को पकडने को आतुर नही है । असल मे कृष्ण, जो है उसको इतनी गहनता मे स्वीकार करते हैं कि उसे क्या नाम दिया जाता है इससे कोई फर्क नही पडता । उसे ईश्वर कहो , उसे प्रकृति कहो , उसे अनीश्वर कहो तो भी क्या फर्क पडता है , जो है वह है । ये पौधे फिर भी हसेगे , ये फूल फिर भी खिलेगे , ये बादल फिर भी चलेगे, ये पृथ्वी फिर भी होती रहेगी , ये चाद तारे घूमते रहेगे । यह जीवन उतरेगा और विदा होगा , लहरे बनेगी और मिटेगी । ईश्वर है या नही , यह सिर्फ नासमझो का विवाद है । जा है उससे क्या फर्क पडता है – 'दैट व्हिच इज ' उसमे क्या फर्क पडता है ।

मै एक गाव मे ठहरा हुआ था और उस गाव के दो बूढे आदमी मेरे पास आये । एक उसमे जैन था और एक उसमे ब्राह्मण हिन्दू था । वे दोनो पडोसी थे । दोनो । बूढे , और उनका विवाद लम्बा था । असल मे सब विवाद लम्बे होते है, क्योंकि विवाद मे कोई अत तो आता नही । आदमी चुक जाते है और विवाद चलते जाते है । साठ साल के ऊपर दोनो की उम्र थी । वह मुझसे मिलने आये । उन्होने कहा , हम एक सवाल लेकर आये है जो कि हमारे बीच मे पचास साल से चलता है । मै ईश्वर को नही मानता हू , ये सज्जन ईश्वर को मानते हैं । आपका क्या कहना है ? मैने कहा , आपने विवाद पूरा कर लिया । तीसरे के लिए उपाय कहा है ? आधा-आधा आप बाट चुके , अब मै कहा खडा होऊ ? फिर मैने उनसे पूछा कि चालीस-पचास साल से आप विवाद करते है, कुछ तय नही हो पाया , कुछ तय नही हो पाता ? वे कहने लगे, मेरी दलीले मुझे ठीक लगती है, इनकी दलीले इन्हे ठीक लगती है । न मै इनको गलत कर पाता , न ये मुझे गलत कर पाते है । मैने उनसे कहा कि आज तक कोई आस्तिक किसी नास्तिक को समझा पाया ? कोई नास्तिक किसी आस्तिक को समझा पाया ? क्या इससे यह पता नही चलता कि दोनो के पास आधी-आधी दलीले तो नही है ? क्योकि दोनो अपनी दलील पर मजबूत हैं । और कही ऐसा तो नही कि सत्य का आधा आधा छोर पकडे हुए हैं। इसलिए दोनो के हाथ मे छोर दिखायी पडता है और उससे विपरीत छोर को वह कैसे मान सकते है कि उपयोगी होगा ? मैने कहा कि मै तुम्हारे विवाद में न पडूं तो सहयोगी हो सकता हू । क्योंकि अगर मै पड जाऊ तो ज्यादा से ज्यादा यही होगा कि मै एक पक्ष मे खडे होकर दलीले दू । उससे कोई अन्तर पडेगा ? मैं तुमसे

यह कहता हू कि अब तुम दोनो जाओ और इस बात को देखने की कोशिश करो कि दूसरा जो कह रहा है, क्या उसमे भी सत्य हो सकता है? फिर, मैंने उनसे कहा कि यह तय हो जाय कि ईश्वर है, पक्का हो जाय, 'गारण्टीड'। कोई लिखकर दे दे और यह निर्णय हो जाय कि ईश्वर है, तो तुम क्या करोगे ? उन्होंने कहा, नही, करना क्या है ? मैंने कहा, फिर इस व्यर्थ विवाद मे क्यो पडे हो ? तुम, ईश्वर नहीं है तो भी श्वास लेते हो, इनका ईश्वर है तो भी ये श्वास लेते है। तुम ईश्वर को नही मानते तो भी प्रेम करते है, ये ईश्वर को मानते है तो भी प्रेम करते है। तुम ईश्वर को नही मानते तो ईश्वर तुम्हे दुनिया के बाहर निकाल नहीं देता, तुम्हे स्वीकार करता है। ये ईश्वर को मानते है तो इनको किसी सिंहासन पर नही बिठा दिया। वह इनकी भी फिक्र नही करता है। जब ऐसी स्थिति हो तो इस विवाद का कितना अर्थ है ? नही, ईश्वर और अनीश्वर को लेकर आस्तिक और नास्तिक को लेकर 'लिग्विस्टिक' भूल हो गयी, सिर्फ भूल हो गयी । और हमारी अधिक 'फिलोसिफी', तत्व चिन्तन नही है, फिलोल्लाजी मे की गयी भूले है। भाषा शास्त्र मे की गयी भूले है। शास्त्र की भूलें ऐसी है कि अगर उनको हम सत्य मानकर चल पडते है तो बडे उपद्रव बन जाते है।

समझ लो कि एक गूगा आदमी है और नास्तिक है, और एक गूगा आदमी है और आस्तिक है। इनके बीच विवाद कैसे चलेगा? ये क्या करेंगे जिससे कि ये कहे कि मैं आस्तिक हू, और एक कहे कि मै नास्तिक हू। एक दिन को सोचे कि चौबीस घण्टे के लिए हमारी भाषा खो जाय तो हमारे विवाद कहा होगे? चौबीस घण्टे के लिए आपकी भाषा छीन ली जाय तो कहा होगा हिन्दू, कहा होगा मुसलमान ? कहा होगा आस्तिक, कहा होगा नास्तिक ? और आप तो होगे, फिर भी भाषा के बिना। वह क्या होगे आप ? वह होना ही धार्मिक होना है। एक छोटी सी घटना और अपनी बात मै बन्द करू।

मैंने सुना है, मास्त्री एक मजाक किया करता था कि एक बार ऐसा हुआ कि सारी पृथ्वी के लोगो ने तय किया कि अगर हम सब मिलकर एक क्षण मे जोर से चिल्लाये तो चाद तक आवाज पहुच सकती है। अगर चाद पर कोई होगा तो सुन लेगा और जवाब भी आ सकता है। वे लोग इकट्ठे होकर जवाब देंगे। चांद पर आदमी की आखे बहुत दिन से गडी है। चाद पर सबध जोडने का मन बडा पुराना है। बच्चा पैदा नही होता और चांद से सम्बन्ध जोडना शुरू कर देता है। तो सारी पृथ्वी के लोगो ने एक खास दिन नियत किया कि ठीक बारह बजे सारी दुनिया के लोग जोर से हुकार करेंगे, 'हू' की आवाज

करेंगे इकट्ठे। चांद तक आवाज पहुंच जायेगी, शायद उत्तर मिल सकेगा। फिर वह दिन आ गया। और बारह बजे की आतुरता से लोगों ने प्रतीक्षा की सड़कों पर, गांवों में फैलकर, पहाड़ों की चोटियों पर। सब तरफ लोग फैल गये पूरी पृथ्वी पर ठीक बारह बजे, सन्नाटा छा गया, कोई चिल्लाया ही नहीं। क्योंकि सबने सोचा कि मैं सुन तो लूं 'हू' की आवाज। जब सारी पृथ्वी चिल्लायेगी तो एक मौका मैं न चूकूं चिल्लाने में, मैं सुन लूं। तो उस दिन बारह बजे जैसा सन्नाटा हुआ पृथ्वी पर, ऐसा कभी नहीं हुआ था।

अगर ऐसा सन्नाटा कभी हो जाय तो जो दिखायी पड़ता है, वह सत्य है। ऐसा सन्नाटा अगर भीतर हो जाय, भाषा और शब्द सब खो जाय तो जो दिखायी पड़ता है वह सत्य है। सत्य का आधा हिस्सा आस्तिकों के पास है, सत्य का आधा हिस्सा नास्तिकों के पास है। और आधा सत्य असत्य से सदा बदतर होता है। क्योंकि असत्य को छोड़ा भी जा सकता है, आधे सत्य को छोड़ा नहीं जा सकता। सत्य मालूम पड़ता है। और ध्यान रहे, सत्य तोड़ा नहीं जा सकता, काटा नहीं जा सकता। इसलिए अगर आपके पास आधा सत्य है तो सिर्फ आधे सत्य का सिद्धान्त हो सकता है। सिद्धान्त काटा जा सकता है। सत्य को काटने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए न आस्तिक सत्य है, न नास्तिक सत्य है। दोनों आधे आधे सत्यों के शब्दों को पकड़ कर लड़ते रहते हैं।

कृष्ण को पूरा ही स्वीकार है। इसलिए कृष्ण को आस्तिक कहें तो गलती हो जायेगी, कृष्ण को नास्तिक कहें तो गलती हो जायेगी। कृष्ण को क्या कहें, बिना गलती किये कहना मुश्किल है।



पर्व : सोलह

अनादि सत्य

कृष्ण के श्रेष्ठत्व की घोषणा

कृष्ण का अनुकरण





१६

प्रश्न : एक जगह लिखा है -"फ्राम टाइम टेक अवे द मैन, द सबजेक्ट, बट डू नाट टेक अवे द सरकमस्टांसेस देट इज आबजेक्ट। सम टाइम टेक अवे द सरकमस्टांसेस बट डू नाट टेक अवे द मैन " मैं यहां आया था तब मुझे ऐसा होता था कि मैं निरहंकारी रजनीशजी के पास आ रहा हूं और मेरा अहंकार विलीन हो जायेगा। मैं यहां आकर इतना छोटा हो गया जैसे कृष्ण कहते हैं कि अनादि काल से प्राप्त जो ज्ञान है वह ज्ञान मैं तुमको देता हूं, अर्जुन। वह कृष्ण की बात है; पर आप भी तर्क में कहते चले जाते

है। जब तर्क को छोड़कर, आप सब शास्त्रों में आ जाते हैं तब भी तुम कहने लगते हैं कि वही सत्य जो अनादि काल से चला आ रहा है श्री कृष्ण कहते हैं ... जो बुद्ध कहते हैं ... वही पुराने का समर्थन ... वही पुराने का सहारा ... ?

उत्तर सत्य तो अनादि है। अनादि का अर्थ पुराना नही है। अनादि का अर्थ है जिसका कोई प्रारम्भ नही है। अनादि का अर्थ है 'बिगिनिंगलेस', 'एनसिएंट' नही। पुराने का तो प्रारम्भ होता है, सत्य का कभी प्रारम्भ नही होता। और जो पुराना पड गया वह सत्य नही हो सकता। क्योकि सत्य तो अभी भी है, इस क्षण भी है। सत्य न तो नया होता है, न पुराना होता है। सब जिनको हम पुराना कहते है वह कभी नये थे और जिनको हम आज नया कहते है कल पुराने हो जायेंगे। नया पुराना हो जाता है, पुराना कभी नया था। सत्य न तो नया है, न पुराना है। सत्य तो वही है जो सदा है। अनादि का अर्थ यह है। तो, यदि कृष्ण कहते है, मैं वही सत्य कह रहा हूँ जो अनादि है तो आप यह मत समझ लेना कि कृष्ण कह रहे है कि मै वही सत्य कहता हू जो पुराना है। कृष्ण कह रहे हैं कि मै वही सत्य कहता हू जो है। अनादि का मतलब इतना ही होता है। जिन्होने पहले जाना होगा, अगर सत्य जाना है, तो यही जाना होगा, जो आज जान रहे है। यदि सत्य जानेगे, तो यही जानेगे। जो कल जानेगे, यदि सत्य जानेगे तो यही जानेगे। सिर्फ असत्य नये और पुराने हो सकते है, सत्य पुराना और नया नहीं हो सकता। इसलिए, सत्य की घोषणा दो प्रकार से हो सकती है।

बुद्ध उन सारे पुराने लोगो की बात नही करते जिन्होने सत्य जाना है। कोई कारण नही है। क्योकि, जब बुद्ध स्वयं ही सत्य जान रहे है तो और गवाहिया जुटाने से कुछ ज्यादा फर्क नही पडने वाला है। जो वह जान रहे है, जान रहे है। किन किन ने जाना, उनका नाम लेने मे सत्य से कुछ और जुड़ेगा नही। सत्य की गरिमा मे कोई फर्क पडने वाला नही है। सत्य की प्रतिष्ठा मे कोई अन्तर पडने वाला नही है। इसलिए, बुद्ध सीधे निपट कहते है कि ऐसा जो मैंने जाना, तुमसे कहता हूँ। और, जानबूझकर ही वह पुराने लोगो का नाम नही लेते, क्योकि पुराने लोगो का नाम लेने के साथ बुद्ध के समय तक बड़ा खतरा हो चुका है। बुद्ध अपने सुनने वालो को यह भी कहते है कि तुम इसलिए मत मान लेना कि मै कहता हूँ। तुम इसलिए मत मान लेना कि बुद्ध ने ऐसा जाना। जब तक तुम स्वयं न जान लो, तब तक तुम, किसने कहा, किसने जाना इससे कुछ प्रमाण मत जुटा लेना।

बुद्ध जिनसे बोल रहे है वे साधक है। बुद्ध जिनसे बोल रहे हैं वे सत्य की खोज पर निकले हुए लोग हैं। बुद्ध के सामने जो सुनने वाला है वह बहुत भिन्न है कृष्ण

के सामने जो सुनने वाला है उससे। अपितु सत्य को खोजने जो लोग निकले हैं उनसे यह कहना ही होगा कि तुम मेरी मत मान लेना क्योंकि फिर तुम खोज पर कैसे जाओगे? अगर बुद्ध अपने पिछले प्रमाणों को दोहरायें तब फिर वे रास्ता बना रहे हैं अपने से पीछे आने वालों के लिए कि वे भी बुद्ध के प्रमाण को दोहरायें। इसलिए, बुद्ध निपट रूप से पिछले किन्हीं सम्बन्धों की बात ही नहीं करते। वे कहते हैं ऐसा मैंने जाना है, यह सत्य मैंने देखा है, यह मैं तुमसे कहता हूं। और तुम भी जान न लो, तब तक मत मान लेना क्योंकि बुद्ध ने कहा है।

लेकिन, कृष्ण के सामने बहुत दूसरी तरह का आदमी है। वह कोई साधक नहीं है। वह कोई सत्य की खोज पर निकला हुआ व्यक्ति नहीं है। वह सिर्फ मोहग्रस्त हुआ है। वह सिर्फ विभ्रमित हुआ है, वह सिर्फ 'कन्फ्यूज्ड' हो गया है। स्थिति ने उसे भयभीत कर दिया है, इसलिए कृष्ण उसके सामने सत्य का अनावरण करने को उतने उत्सुक नहीं है जितना सत्य क्या है यह कहने को उत्सुक है। वह अनावरण कराने के लिए आया भी नहीं है। इसलिए, कृष्ण कहते हैं कि जो मैं तुमसे कह रहा हूँ अर्जुन, यह मैं ही तुमसे कह रहा हूँ ऐसा नहीं है, यह और भी पहले औरों ने औरों से कहा है। अगर अर्जुन साधक हो तो उसे भी सत्य के साक्षात्कार के लिए कहा जा सकता है। वह कोई साधक नहीं है। वह सिर्फ समझने के लिए आतुर है कि सत्य क्या है? खोजने का कोई सवाल नहीं है अर्जुन के लिए। वह कोई आश्रम में, किसी पहाड़ की कन्दरा में, किसी गुरु के पास बैठकर सत्य सीखने नहीं गया है।। वह आया है युद्ध करने, किन्तु युद्ध की स्थिति ने उसे भयभीत और डावाडोल कर दिया है। इसलिए, कृष्ण उससे कहते है कि जो मैं कह रहा हूँ यह मैं ही तुमसे कह रहा हूँ, ऐसा नहीं, यह मुझसे पहले औरों ने भी औरों से कहा है। वह जो अनादि है, जो सदा कहा गया है वही मैं तुमसे कह रहा हूँ।

अर्जुन के लिए इसमें अर्थ है। अर्जुन खुद खोजने जाता तो बात और हो जाती। अर्जुन खुद खोजने नहीं जा रहा है। इसलिए, कृष्ण केवल सत्य की लम्बी धारा की बात उससे कर रहे है। उधर बुद्ध के पास जो व्यक्ति आया है वह बुद्ध की शरण होकर आया है, किन्तु अर्जुन तो मित्र है। वह कृष्ण की शरण नहीं है। वहा इसको दूसरे दृष्टिकोण से लीजिये कि बुद्ध के भिक्षुओं ने बुद्ध की बात मान ली, लेकिन बुद्ध की पत्नी ने नहीं मानी। बुद्ध गांव वापस लौटे सत्य को जान लेने के बाद और पत्नी उनसे मिली है बारह साल के बाद। वे सारी दुनिया के लिए बुद्ध हो गये हैं; लेकिन अपनी पत्नी के लिए बुद्ध नहीं है। उनकी पत्नी ने वही बात शुरू की, जो बारह वर्ष पहले जब वे घर से गये थे, तब की थी। वह उसी तरह नाराज थी

और कहने लगी कि तुमने मुझे धोखा दिया, तुम मुझे छोड़कर भाग गये। बुद्ध की पत्नी का अपना कोण है। और अगर अपनी पत्नी को बुद्ध कहें कि मैं बुद्ध हूँ तो वह कहेगी कि छोड यह बात, कोई बुद्ध नही है, तुम वही के वही हो। बुद्ध की पत्नी के लिए बुद्ध को और तरह की बात करनी पडेगी। बुद्ध की पत्नी का एक दृष्टिकोण है। एक बहुत मीठी कथा इससे जुडी है।

आनन्द दीक्षित हुआ था और वह बुद्ध का बडा चचेरा भाई था। दीक्षा लेते समय उसने कहा कि मैं कुछ वचनबद्धता आपसे अभी करवा लेना चाहता हूँ, क्योंकि दीक्षा लेने के बाद तो मैं छोटा हो जाऊँगा। तीन वचन उसने लिये। कहा, एक वचन तो यह कि मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगा। तुम कभी यह न कह सकोगे कि जाओ विहार करो, उस जगह चले जाओ, इस जगह चले जाओ। दूसरा वचन मैं तुमसे यह लेता हूँ कि कभी भी मैं किसी को मिलाना चाहूँगा, चाहे आधी रात हो, तो भी तुम्हे मिलना पडेगा। और कोई भी प्रश्न मैं पूछना चाहूँ या पुछवाना चाहूँगा तो आप किसी तरह टाल न सकोगे, उस प्रश्न का उत्तर देना ही पडेगा। और तीसरी बात, कितनी ही निजी चर्चा किसी से हो रही हो, अगर मैं वहा मौजूद रहना चाहूँगा तो मुझे रोका नही जा सकेगा। ऐसे तीन वचन उसने बुद्ध से दीक्षा के पहले लिये। बुद्ध छोटे भाई थे इसलिए इस खेल को उन्होने निभा दिया। उन्होंने कहा कि ठीक है वह कोई ज्यादा माग भी नही रहा है। लेकिन, बडी कठिनाई आ गयी, बुद्ध को ख्याल मे न था। जब वह पत्नी से मिलने गये तब आनन्द ने कहा, मैं साथ नही छोड सकता। बुद्ध ने कहा, तू बडा पागल है, तू थोडा तो सोच, क्योकि मैं उसके लिए कोई गौतम बुद्ध नहीं, उसका पति हूँ। उसके लिए तो अभी पति हूँ। अगर तू मेरे साथ गया, तो वह बहुत मानिनी है, बहुत नाराज हो जायेगी, कि तुम आये भी बारह साल बाद तो एक आदमी को साथ लेकर आये। मुझे थोडा तो मौका देते कि वह एकान्त मे बारह साल की सब दुख पीडा, सारा क्रोध निकाल लेती। बुद्ध ने आनन्द से कहा कि माना मैंने तुझे वचन दिया था लेकिन तुझसे प्रार्थना करता हूँ कि तू इस बार कृपा करके उस वचन का आग्रह मत कर। यह थोडा सोचने जैसा है। बुद्ध का यह कहना अति मानवीय है, अद्भुत है। आनन्द कहता भी है कि क्या आपके लिए भी कोई पत्नी है? बुद्ध कहते है, मेरे लिए नही है, लेकिन उसके लिए मैं पति हूँ, इसको कैसे मिटाऊ? यह मेरे हाथ मे नही है। आनन्द दूर खडा रह गया और बुद्ध पत्नी के पास गये और उसने चिल्लाना शुरू किया। बारह साल की लम्बी बात थी, बहुत पीडाए थी। अचानक रात मे बिना कहे उसको छोडकर भाग गये थे। उसका दुख बिल्कुल स्वाभाविक है। बुद्ध चुपचाप खडे है। वह उसकी सारी बात सुन लेते है। फिर, वह आसू पोछती है

और बुद्ध उससे कहते है कि तू ठीक से देख। मै वही नहीं हू जो गया था। अब मैं तेरे पति की तरह नहीं आया हूँ, तेरा जो पति था वह मर चुका। मैं कोई और ही हूँ।

कृष्ण और अर्जुन के बीच स्थिति बहुत और है। अर्जुन मित्र है। गले मे हाथ डालकर घूमे, खेले है, गपशप की है। यहा कृष्ण सिर्फ इतना ही कहे कि मैंने जो सत्य जाना है वह मैं तुझसे कहता हूँ, तो वह कहेगा कि जानते हैं हम आपको और आपके सत्य को। लेकिन कृष्ण उससे कहते है कि और भी पहले इस सत्य को औरों ने भी औरो से कहा है, वही मै तुझसे कह रहा हूँ। तू मुझे मित्र मानकर कहीं इस ख्याल मे मत पड जाना—इसलिए 'पर्टीकुलर सिचुएशन' की बात है। वह चूक जाय ख्याल से तो आप गलती मे पड़ेगे। बुद्ध वैसी स्थिति मे नहीं है। बुद्ध कह सकते है कि मै कह रहा हूँ। किसी ने किसी से कहा हो कि न कहा हो इससे मुझे प्रयोजन नहीं है। और, तुमसे मै यह भी कहे देता हूँ कि मेरे कहने से तुम मत मान लेना। यहा बुद्ध कोई अहकार की घोषणा कर रहे हो ऐसा नहीं मालूम होता है। क्योकि, अहकारी यह कहेगा कि मै कहता हूँ, इसलिए मान लो। बुद्ध तो निपट निजता की बात कर रहे है। वह कहते हैं, मै कहता हूँ, इससे तुम मान मत लेना, लेकिन कहता मै ही हूँ। हम जानते हैं कि बुद्ध जो कह रहे हैं वह औरो ने भी कहा है। हम जानते है कि बुद्ध जो कह रहे हैं वह उपनिषद् ने भी कहा है। हम जानते है कि बुद्ध जो कह रहे हैं वह वेदो ने भी कहा है। लेकिन, बुद्ध क्यो जोर देते है इस बात पर। अगर कोई बुद्ध से कहे भी कि यह वेदो ने कहा है, उपनिषद् मे कहा है तो बुद्ध कहेगे कि नही, यह मै ही तुमसे कह रहा हूँ।

इसके भी कारण है। यह 'सरकमटेंसियल' है। क्योकि, बुद्ध के समय तक वेद और उपनिषद् की परम्परा मड चुकी थी। यह जानते हुए भलीभांति कि बुद्ध जो कह रहे है सारभूत, वही वेद-उपनिषद् मे कहा गया है फिर भी वेद उपनिषद् का सहारा नही दिया जा सकता, क्योकि उस सहारे पर बहुत बडा पाखण्ड का जाल खड़ा हो गया था जो जनता को लूट रहा था, घसीट रहा था, गलत रास्तो पर भटका रहा था, अन्धविश्वास मे डुबो रहा था। इसलिए, वेद और उपनिषद् के पक्ष मे वह बिल्कुल चुप रह जाते है। ऐसा नही है कि बुद्ध को यह बोध नहीं था या ख्याल नही था। लेकिन, कई बार इतिहास मे ऐसा वक्त आ जाता है कि कल के सत्यो को आज के सत्यवादी द्वारा उखाडकर फेंकना पडता है। क्योंकि, कल के सत्य, कल के होने की वजह से असत्यो के साथ इस बुरी तरह घुलमिल जाते है कि अब उनका साथ देना, उन असत्यों का भी साथ देना है जिनके साथ उनका जोड़ और गठबन्धन हो गया है। कृष्ण के सामने वैसा सवाल नहीं था।

कृष्ण के सामने वेद और उपनिषद् की परम्परा जरा भी अशुद्ध नही हुई थी। वह अपनी ऊचाई पर थी, शिखर पर थी। सच तो यह है कि हम गीता को इसलिये कह सके कि वह समस्त वेदो और समस्त उपनिषद् का सार है। असल में कृष्ण को हम कह सकते है कि उपनिषद् ने जो सस्कृति पैदा की थी उसके वे सारभूत है। जो 'एसेसियल' था उस सस्कृति मे वह सब कृष्ण से प्रकट हो गया है। कृष्ण तो उस सस्कृति के शिखर पर पैदा हुए और बुद्ध उस सस्कृति के बिल्कुल पतन की अवस्था के समय पैदा हुए— जो सस्कृति बिल्कुल धूलि धूसरित हो गयी थी और उसमें का सब सड गया था। ब्राह्मण, ब्रह्मज्ञानी नही रह गया था, ब्राह्मण सिर्फ ब्रह्म के नाम पर शोषक हो गया था। उस सस्कृति के साथ सब कुछ गन्दा जुड गया था। धर्म का जिससे कोई नाता नही था। पर, कृष्ण तो 'पीक' पर पैदा हुए हैं जब उपनिषद् अपनी कीर्ति के शिखर पर है और उनमे जो ज्ञान प्रकट हुआ था उसकी किरणें चारों ओर व्याप्त है। लेकिन, बुद्ध के वक्त तक वह सब नष्ट हो गया और लाश पडी रह गयी थी। उस लाश की गवाही बुद्ध नही दे सकते। यही कारण है यह न कोई बुद्ध का अहकार है और न कोई कृष्ण का अहकार है कि वह पुराने का समर्थन खोजते है।

प्रश्न : कृष्ण ने गीता के अध्याय दस में अपने को घोडो मे उच्चैःश्रवा, हाथियो मे ऐरावत, गौवो मे कामधेनु, सर्पों मे वासुकी, पशुओं मे सिंह, पक्षियो मे गरुड, नदियो मे गंगा, ऋतुओं में वसन्त आदि बताया है। अर्थात् अपने को सर्वश्रेष्ठ बताने का प्रयत्न किया है। तो, क्या वे निकृष्ट वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करते? क्या निकृष्ट वर्ग कृष्ण का रूप नहीं था? उन्होने निकृष्ट और साधारण का जिक्र क्यो नहीं किया?

उत्तर यह बडा मजेदार सूत्र है। इस सूत्र मे दो बाते है। पहली बात तो यह है कि कृष्ण इसमे अपने को सभी मे श्रेष्ठ घोषित करते है। वे ऋतुओ मे वसन्त कहते है, हाथियो मे ऐरावत कहते है, गायो मे कामधेनु कहते है। लेकिन, दूसरी मजे की बात यह भी है कि गाय और घोड जैसे निम्नतम प्राणियो मे भी वे अपनी तुलना खोजते है। ये दो बाते एक साथ हैं—इधर वह हर जाति मे अपने को श्रेष्ठ घोषित करते है, लेकिन इसकी जरा भी फिक्र नही करते कि जाति किसकी है। आखिर ऐरावत भी होगे तो हाथियो मे ही होगे न! और, कामधेनु होगे तो गायो मे ही होगे न! और वसन्त होगें तो ऋतुओ मे ही होगे न! ये दोनो बातें एक साथ हैं। निम्नतम मे भी जो श्रेष्ठतम है उसकी वे घोषणा करते है। कारण है कि इस श्रेष्ठतम की घोषणा क्यो की जा रही है!

ऊपर से देखने से लगेगा कि अहकार की बात है, क्योंकि हमें सिवाय अहकार के कुछ और लगता ही नही। भीतर से देखने पर पता चलेगा कि जब प्रत्येक जाति मे, प्रत्येक वर्ग मे श्रेष्ठतम की बात कही जा रही है तो उसका कुल मतलब ही इतना है कि जब वे कहते है कि हाथियो में ऐरावत हूँ तो वे यह कहते हैं कि जो हाथी ऐरावत नही हो पाये वे अपने स्वभाव से च्युत रहते है। ऐसे तो हर हाथी ऐरावत होने को पैदा हुआ है। जो ऋतु वसत नही हो पायी वह ऋतु होने से च्युत हो गयी, उसके स्वभाव से च्युत हो गयी। ऐसे तो हर ऋतु वसन्त होने को पैदा हुई है। जो गाय कामधेनु नही हो पायी वह असल में ठीक अर्थों मे गाय ही नहीं हो पायी, वह अपने स्वभाव से च्युत हो गयी। कृष्ण इस घोषणा मे सिर्फ इतना ही कहते है कि मैं प्रत्येक के स्वभाव की सिद्धि हू। जो हो सकता है चरम शिखर पर, वह मै हूँ। इसका मतलब आप समझे ? इसका मतलब यह है कि जो हाथी ऐरावत नही है वह कृष्ण नही है ऐसा नही, वह भी कृष्ण है, लेकिन वह पिछडा हुआ कृष्ण है। वह ऐरावत नही हो पाया है जो कि हो सकता है। जिसकी कि 'पोटेशियलिटी' है। कृष्ण यह कह रहे हैं कि सबके भीतर जो 'पोटेंशियलिटी' है वह मै हूं। इसको अगर हम पूरे सार मे रखे तो इसका मतलब हुआ कि सबके भीतर जो बीज रूप सभावना है, जो अतिम उत्कर्ष की सभावना है, जो अतिम विकास का शिखर है वह मै हूँ। और, जो इससे जरा भी पीछे छूट जाता है वह अपने स्वभाव के शिखर से च्युत हो जाता है। वह अपने को पाने से वचित रह गया है। इसमे कही भूलकर भी कोई अहकार की घोषणा नही है। इसका सीधा और साफ मतलब इतना ही है कि तुम जब तक हाथियो मे ऐरावत न हो जाओ तुम मुझे न पा सकोगे। तुम जब तक ऋतुओ मे वसन्त न हो जाओ तब तक तुम मुझे न पा सकोगे। तुम अपने पूरे खिलने मे, अपनी पूरी 'फ्लवारिंग' मे ही मुझे पाते हो। वह अर्जुन को यही समझा रहे हैं। वह उसको यही कह रहे है कि क्षत्रियो मे तू पूरा श्रेष्ठ हो जा, तो तू कृष्ण हो जायेगा। अगर कृष्ण कभी हजार दो हजार साल बाद आते तो वह जरूर कहते कि क्षत्रियो मे मै अर्जुन हू। जब कृष्ण अपने होने की यह घोषणा कर रहे हैं तो यह श्रेष्ठता का दावा नही है क्योकि श्रेष्ठता का दावा करने के लिए घोडो और हाथियो मे जाना पडेगा ! गायो और बैलो मे जाना पडेगा ! श्रेष्ठता का दावा तो सीधा ही हो सकता है। पर वह सीधा नही कर रहे हैं। असल में वह श्रेष्ठता का दावा ही नहीं कर रहे है, वह एक जागतिक विकास की बात कर रहे हैं कि जब तुम अपने श्रेष्ठतम रूप मे प्रकट होते हो तब तुम प्रभु हो जाते हो।

शब्द है हमारे पास ईश्वर। शब्द बनता है ऐश्वर्य से ही। जब तुम अपने पूरे ऐश्वर्य मे प्रकट होते हो तो ईश्वर हो जाते हो। ईश्वर शब्द ऐश्वर्य का ही रूप है।

हमने कभी सोचा नहीं। ईश्वर का मतलब ही यह है कि गायो मे कामधेनु और हाथियों मे ऐरावत और ऋतुओ मे वसन्त। ईश्वर का मतलब ही यह है कि जिसकी 'पोटेंशियलिटी' और 'एक्चुअलिटी' मे फर्क नही है। जिसकी वास्तविकता मे और जिसकी सभावना मे कोई फर्क नही है। जिसके जीवन मे सम्भावना और वास्तविकता एक ही हो गयी है। जो सम्भावना थी वह पूरी की पूरी वास्तविकता बन गयी है, वह ईश्वर है। जिसकी सम्भावना और वास्तविकता मे अन्तर है, 'डिस्टेंस' है वह अभी ईश्वर की तरफ यात्रा कर रहा है। यानी जो मेरे भीतर छिपा है, जिस दिन पूरी तरह प्रकट हो जायेगा उस दिन मैं ईश्वर को उपलब्ध हो जाता हू। लेकिन अभी, जो मेरे भीतर छिपा है वह थोडा थोडा प्रकट होता है। वह पूरा वसन्त नही बन पाता है। फूल पूरा नहीं खिल पाता है। अगर कृष्ण इस बगिया मे आये और वह कहें कि इन फूलो मे सबसे ज्यादा खिला हुआ पूरा फूल हू, तो क्या मतलब होगा? उसका मतलब यह होगा कि दूसरे फूल इतने ही खिल सकते थे, लेकिन नही खिल पाये है। और उचित ही है कि कृष्ण अधखिले फूल से अपने को नही जोडते। जो अभी शाखाओ मे छिपा है उससे नही जोडते। जो बीज मे पडा है उससे नही जोडते। वे उमसे जोडते है जो पूरा खिला है। क्योकि, जिससे वे बात कर रहे है उमको पूर्ण खिलाने की ही बात कर रहे है कि पूरा खिल जा। तू क्षत्रित्व का पूरा फूल बन जा, तू वसन्त हो जा क्षत्रित्व का। तो तू मुझे पा सकेगा। मुझे पा सकेगा का मतलब है कि तू अपने ईश्वर को पा सकता है। यहा कृष्ण पूरे समय दोहरा काम कर रहे है। कृष्ण का पूरा रोल डबल है। इधर वह अर्जुन के साथी है, उसके मित्र है, इसलिए अर्जुन पर ज्यादा डाट-डपट नही कर पाते। उससे मित्रता की भाषा बोलते है। लेकिन, साथ-ही-साथ पूरे समय वे पूरे खिले हुए फूल भी है। इस मित्रता के बीच में उनकी पूर्णता की घोषणाए जगह-जगह से फूट पडती है और अर्जुन तक पहुच जाती है। यह दोनो ही जरूरी है। अगर वह निपट मित्र रह जाय तो किसी काम के नही रहेंगे। और अगर वह निपट परमात्मा हो जाय तो अर्जुन कहेगा कि क्षमा करो, अपनी दोस्ती समाप्त! इन दोनो के बीच पूरे वक्त तालमेल बिठाना पड रहा है। जब जब भी उन्हे लगता है कि अर्जुन जरा राजी दिखता है तब वे परमात्मा होने की घोषणा करते है। और जब जब उन्हें दिखता है कि अर्जुन जरा सदिग्ध दिखता है तब वे फिर उससे मित्रता की बातें करने लगते है कि हे भारत, हे महाबाहो! उनका काम बडा 'डेलीकेट' और बडा नाजुक है। ऐसा नाजुक मौका बहुत कम आया है। बुद्ध के पास ऐसा नाजुक मौका नहीं है। क्योकि, जो आया है वह निश्चित है कि कौन है। जो बैठा

है वह निश्चित है कि कौन है। बात सीधी साफ होती है। महावीर को ऐसा मौका नही आता, क्योंकि बातें साफ सुथरी है। सीधा 'डायलाग' है। उसमे कुछ दोहरे रोल का काम नहीं है। कृष्ण के साथ बडी कठिनाई है। मित्र के गुरु होना बडी कठिन बात है। मित्र को उपदेश देना बडी कठिन बात है। मित्र को सलाह देना बडी कठिन बात है। अर्जुन कह सकता है कि ज्यादा ज्ञान मत बघारो। मेरे ही साथ खेले, मेरे साथ बडे हुए और मुझे ही इतना ज्ञान! कृष्ण पूरे वक्त उसे थपथपाते भी जा रहे है कि हे महाबाहो, और उससे कहते भी चले जाते है कि तू अज्ञानी है! तू पहचान नही पा रहा है कि असली बात क्या है। यह दोनो बाते साथ चल रही है। इसको ख्याल में लेंगे तो सरलता हो सकती है।

प्रश्न : आचार्यजी, लगभग सभी महापुरुषो का कुछ तो चरित्र वैयक्तिक होता है, और कुछ होता है समष्टिगत। अभी पिछले दिनो में कृष्ण के जीवन पर चर्चा रही है। उसमे बहुत कुछ वैयक्तिक विशेषताएं भी थीं जो कि आज के युग मे, मुमकिन है कि यदि हम उनका थोड़ा सा भी अनुकरण करने लगें, तो पिट जाने की ही सभावना है, और तो कोई दूसरी बात दिखायी नहीं पडती। आज हम किसी दधि और दूध की मटकी को ककडी मारकर फोड नहीं सकते है। आज हम कहीं स्नान करती हुई बालाओ के वस्त्रो को उठाकर भाग नहीं सकते है। और तो और, किसी राधा के साथ चाहते हुए हम प्रेम नहीं कर सकते है। आज कृष्ण का होना कठिन हो गया है। उधर कृष्ण ने गीता में कर्मयोग की बात कही है। यह जीवन दर्शन हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण है, जो जीवन जीने की कला सिखाता है, जीवन का एक नया मार्ग हमें देता है, एक नयी दृष्टि देता है और हम जीवन के हर क्षण मे उसे व्यवहार रूप मे उतार भी सकते है। इसलिए आचार्यजी, हम चाहते है कि उनके जीवन दर्शन पर विशद रूप से कुछ चीज हमारे सम्मुख प्रस्तुत करें ताकि हम उसका अनुसरण कर सके।

उत्तर : पहली बात तो यह ख्याल में लेनी चाहिए कि आज कृष्ण का होना कठिन हो गया है, ऐसा नहीं है। उस दिन भी आसान नही था। अन्यथा बहुत कृष्ण हो जाते। फिर, आपको कठिन मालूम होता है कृष्ण 'होना'। लेकिन कृष्ण आज भी पैदा हो तो आज भी सरल होगा कृष्ण को। लेकिन, यह भ्रांति वहां से शुरू होती है जहां से हम अनुकरण का ख्याल

लेते है। वही से उपद्रव शुरू होता है। न तो आप उस दिन कृष्ण का अनुकरण कर सकते थे, न आज कर सकते है। कर ही नही सकते और करेंगे तो ठीक कहते हैं कि मुसीबत मे पडेंगे। उनके जीवन पर जो चर्चा हुई है वह इसलिए नही कि आप अनुकरण करेंगे। बल्कि इसलिए कि कृष्ण के व्यक्तित्व के अगर पूरे जीवन को हम समझ पाये तो शायद अपने जीवन को समझने के लिए सुविधा हो। अनुकरण के लिए नही है कुछ भी। अगर इस कृष्ण के व्यक्तित्व का, जो कि बडा विराट्, बहुआयामी है, पूरा खुलाव हो जाय तो हम अपने व्यक्तित्व को भी खोलने की कुजी पा सकते है। लेकिन, आप अगर अनुकरण की भाषा मे सोचेंगे तो कृष्ण को नही समझ पायेंगे। उन्हे समझना मुश्किल हो जायेगा।

जिसका भी हम अनुकरण करना चाहते है उसे हम समझना तो चाहते ही नही। और अनुकरण हम करना ही इसलिए चाहते है कि हम अपने को भी नही समझना चाहते। किसी को अपने ऊपर आरोपित करके जी लेगें तो सुविधा होगी, समझने की झझट से बच जायेगे। समझने का काम तो वही से शुरू होता है जहा से हम न किसी का अनुकरण करना चाहते न किसी के जैसे होना चाहते, बल्कि इस बात का पता लगाना चाहते है कि मै क्या हू, और क्या हो सकता हूँ? जिन लोगो ने अपनी जिन्दगी मे पूरी तरह खुलाव से अपने को प्रकट किया है उनकी जिन्दगी को समझने से अपनी जिन्दगी को समझने का रास्ता सुगम हो जाता है। इससे जिन्दगिया एक नही हो जायेंगी, जिन्दगी तो अलग-अलग ही होगी। और उपाय भी नही है कि वह एक जैसी हो जाय। अगर इतनी सारी चर्चाओ मे कही भूलकर भी आपके मन मे अनुकरण का ख्याल रहा, जैसा कि प्रश्न से लगा कि रहा होगा, तो आप कृष्ण को ही समझ नही पायेंगे, अपने को भी समझना मुश्किल हो जायेगा।

दूसरी बात, कृष्ण के विचार, उनके सत्य जो सदा उपयोग के हो सकते है, लेकिन उनमे भी मै आपसे यही कहना चाहूगा कि वे भी अनुकरणीय नही है। क्योंकि, जब कृष्ण का जीवन्त व्यक्तित्व अनुकरण नही किया जा सकता तो शब्दो मे प्रकट सिद्धान्त और सत्य कैसे अनुकरण किये जा सकते है? नही, वह भी नहीं किया जा सकता। वह भी समझा ही जा सकता है। हा, उसके समझने की प्रक्रिया में आपकी समझ बढती है और वह समझ आपके काम आ सकती है। सिद्धान्त काम नहीं आयेंगे, समझ ही काम आयेगी। लेकिन, हर हालत मे अनुकरण हमारी मांग होती है। या तो जीवन का अनुकरण करे या हम सिद्धान्तो का अनुकरण करें, लेकिन अनुकरण हम करेंगे ही।

पहली बात, आपसे उनके सिद्धान्त के सम्बन्ध मे बात करने के पहले यह कह देना जरूरी है कि जीवन अनुकरणीय नही है -इसलिए नही कि आज मटकी नही फोडी जा सकती, इसलिए भी नही कि आज प्रेम नहीं किया जा सकता, इसलिए भी नही कि आज बासुरी नही बजायी जा सकती। सब किया जा सकता है। इसमे कोई कठिनाई नही है। मटकी फोडने से उस दिन भी तकलीफ आती थी, आज भी आयेगी। बांसुरी बजाने से उस दिन भी आदमी मुश्किल मे पडता था, आज भी पडेगा। थोडे बहुत भेद होगे। कोई बहुत बुनियादी फर्क नही पडता है इससे। इसलिए नही कह रहा हू कि अनुकरण नहीं किया जा सकता, क्योंकि परिस्थिति बदल गयी है। अनुकरण ही गलत है, परिस्थिति बिल्कुल वही हो तो भी अनुकरण 'स्वीसाइडल है'। अपने को मारना हो, आत्महत्या करनी हो तो ही अनुकरण ठीक है। कृष्ण किसका अनुकरण करते है? कोई व्यक्तित्व दिखायी नही पडता कृष्ण ने जिसका अनुकरण किया हो! बुद्ध किसका अनुकरण करते है? कोई व्यक्तित्व दिखायी नही पडता। बडे मजे की और बडे रहस्य की बात है कि उन्ही लोगो का हम अनुकरण करते है जिन्होंने कभी किसी का अनुकरण नही किया। यह बडी 'एबसर्ड' बात है। ये लोग किसी का अनुकरण नही करते। ये सारेके सारे अपनी निजता के फूल है। हम किसी और के फूल के ढग से खिलना चाहेगे तो कठिनाई मे पड ही जायेगे। और यह कठिनाई मटकी फोडने की कठिनाई, राधा के प्रेम की कठिनाई नही है, यह बहुत गहरी कठिनाई है। वह तो बहुत छोटी कठिनाइया हैं। उसमे तो आप रोज पडते ही रहते है, वह रुकता नही। कोई दूसरो की स्त्रियो से प्रेम करने से रुकता हो ऐसा दिखायी नही पडता। कोई अपनी पत्नियो से डरकर दूसरे की पत्नियो का नाम न लेता हो ऐसा भी नही है। पत्निया डराये चली जाती है, पति डरे चले जाते है। पति डराये चले जाते है, पत्निया डरी चली जाती है। यह कोई आज की बात नही है वह सदा की बात है। असल में जब तक पति और पत्नी रहेगे, तब तक डर रहेगा। आदमी जैसा है, वह चूकि डरा हुआ है इसलिए उसकी सारी व्यवस्था मे डर व्याप्त हो जाता है। नही, यह सवाल नहीं है कि अनुकरण मे यह भय है। अनुकरण मे जो बुनियादी भय है वह मै आपसे कह दू, फिर कल सुबह से आप प्रश्न उठाइए जीवन के सत्यो के सम्बन्ध मे। क्योकि जीवन के सम्बन्ध मे मैं चर्चा नहीं कर रहा था आप प्रश्न उठा रहे थे। कल सुबह से आप प्रश्न उठाइये उनके दर्शन और सत्यों के सम्बन्ध मे, उसकी चर्चा कर लूगा।

जो अनुकरण का बुनियादी भय है वह यह है कि इस जगत मे दो व्यक्ति एक जैसे नही है। न हो सकते है। बेजोड़ हैं। अद्वितीय सब है। कोई तुलना का उपाय नही। बस आप आप ही है। आप जैसा पहले कभी नहीं हुआ और आप जैसा बाद मे भी कभी नही होगा। असल मे आपका कोई साचा भगवान के पास नही है जिस साचे मे और लोग ढाले जा सकते है। जब भी आप अपनी इस निजता को अस्वीकार कर देंगे और किसी जैसे होने की कोशिश करेगे तो जो भूल भगवान ने नही की वह आप करेगे। उसने आपको बनाया व्यक्ति और आप नकल बनने की कोशिश मे लग जायेंगे। उसने आपको दी निजता और आप पराये को ओढने लग जायेंगे। वही कठिनाई है। लेकिन, अब तक सभी धर्म अनुकरण पर जोर देते रहे है। सारी दुनिया मे मा, बाप, शिक्षक, गुरु सिखाते रहे है—किसी जैसे हो जाओ। बस अपने जैसे भर मत होना। एक भूल भर मत करना, बाकी सब करना। कृष्ण जैसे हो जाना, राम जैसे हो जाना, बुद्ध जैसे हो जाना। बस एक भूल भर मत करना, अपने जैसे मत हो जाना। क्या कारण है कि सारी दुनिया की शिक्षाए किसी आदमी को यह नही कहती कि अपने जैसे हो जाओ ? कुछ कारण है।

बडा कारण तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अगर अपने जैसा हो जाय तो खतरा है समाज को, गुरुओ को, मा बाप को, व्यवस्थापको को, सबको खतरा है। क्योंकि, कौन कैसा हो जायेगा, इसके बाबत पहले से सुनिश्चित नही हुआ जा सकता। लेकिन, राम जैसे हो जाओ, इसमे खतरा नही है। राम के बाबत सुनिश्चित है, हमे पता है पक्का कि राम क्या करते है, क्या नही करते है। ऐसा ही तुम भी करो ताकि खतरनाक न रह जाओ। तुम्हारे बाबत 'प्रीडिक्शन' हो सके, तुम्हारे बाबत घोषणा हो सके कि तुम ऐसा करोगे। और जिस दिन तुम न करो तो हम तुम्हे अपराधी ठहरा पाये। अगर प्रत्येक व्यक्ति अपना जैसा हो तो बहुत मुश्किल हो जायेगा तय करना कि क्या अपराध है और क्या अपराध नही है। क्या पाप है, क्या पुण्य है, क्या ठीक है, क्या गलत है, बहुत मुश्किल हो जायेगा। इसलिए, समाज की जड-व्यवस्था को इसी मे सुविधा है कि सब साफ-सुथरी रेखाये रहे। चाहे जिन्दगी कट जाय और लोग मर जाय, चाहे उनके व्यक्तित्व समाप्त हो जाय, चाहे उनकी आत्माए दीन हो जाय इसकी कोई चिन्ता नही। ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य समाज के लिए जी रहा है। समाज मनुष्य के लिए नही जी रहा। शिक्षा मनुष्य के लिए नहीं है, मनुष्य इसलिए पैदा हुआ है कि वह शिक्षा के काम आ सके। सिद्धान्त मनुष्य

के काम में आयें, इसलिए नही है, मनुष्य इसलिए पैदा किया गया है कि सिद्धांतो के काम मे आ सके। धर्म मनुष्य के लिए नही है, मनुष्य धर्म के लिए है। मनुष्य को नीचे रखते है, साधन बनाते हैं और मनुष्य के ऊपर सब चीजों को थोप देते है। खतरा यह है। अनुकरण का खतरा परिस्थितिगत खतरा नहीं है, आत्मगत खतरा है। अनुकरण का खतरा अपने को धीरे-धीरे मारने और 'पायजनिग' का खतरा है। अपने को धीरे-धीरे जहर देने का खतरा है। उस जहर पर आपने कृष्ण का 'लेबल' रखा है, कि बुद्ध का, कि महावीर का, इससे कोई फर्क नहीं पडता। दुनिया मे कोई 'टाइप' नही है जिसमे सबको ढलना है। प्रत्येक को अपने जैसा होना है। इसलिए कृष्ण पर जो मै बात कर रहा हू कोई भूल कर यह न समझ ले कि मै आपसे कह रहा ह कि आप कृष्ण जैसे हो जाय। नही, बाहर से जो मुसीबते आयेगी वे गौण है। भीतर से जो मुसीबत आयेगी वही असली है। आप बिना मुर्दा हुए कृष्ण जैसे नही हो सकते और मुर्दे अगर पिट जाय तो आश्चर्य है कुछ ? मुर्दे पिटेगे ही। वह जो डर है पिटाई का, वह मुर्दा होने का डर है। जिन्दा आदमी तो जैसा होता है, होता है। और जितना जिन्दा आदमी होता है उतना ही जैसा होता है वैसा ही होता है। और बडे मजे की बात है कि जो समाज जिन्दा आदमी की निन्दा से शुरू करता है यात्रा, वह प्रशसा पर पूरी करता है।

सदा ऐसा हुआ है। जिन्दा आदमी को गाली से हम प्रारम्भ करते है, निन्दा से शुरू करते है और पूजा पर अन्त होता है। यह हमारा ढग है। यह बात दूसरी है कि वह जिन्दा आदमी पूरा जिन्दा न हो, बीच से लौट जाय, यह बात दूसरी है। अगर वह जिन्दा आदमी पूरा है तो आपकी गाली पूजा तक पहुचेगी ही। सदा पहुचती रही है। उसका अपना 'लाजिक' है। हा, अगर वह मुर्दा आदमी है तो डर जायेगा, गाली से लौट जायेगा। तब पूजा तक नहीं पहुच पायेगा। यह उसका कसूर है, इसमे आपकी कोई गल्ती नही है। आपने तो ठीक से शुरूआत की थी, वह बीच से भाग गया। कृष्ण को इससे कोई फिक्र पैदा नहीं होती।

क्या आप सोचते है कि कृष्ण भगवान की तरह स्वीकृत हो गये थे उस दिन ? नहीं। कृष्ण पर सब दोषारोपण थे और आज भी है। अगर आप अपनी आख बचाकर चले तो ही दोषारोपण से बच सकते है कृष्ण के, अन्यथा बहुत मुश्किल है मामला। सब दोषारोपण थे। जीसस को जब सूली दी गयी, तो जिन लोगो ने सूली दी थी उन्होंने एक आवारा आदमी को सूली दी थी। जीसस को जब सूली पर लटकाया तो दोनों तरफ दो चोर भी लटकाये थे, अकेले जीसस को सूली नहीं दी थी। तीन क्रास खडे किये थे, बीच मे जीसस को लटकाया था। दोनों तरफ

दो चोर भी लटकाये, इस बात की सूचना के लिए कि जीसस की हैसियत हम चोरों से ज्यादा नही समझते । और, मजे की बात यह है कि और लोगो ने मजाक किया हो, किया हो, एक चोर ने भी मरते वक्त आखिरी समय जीसस से मजाक किया था । उस चोर ने कहा था कि अब तो हम साथ मर रहे है, बडा सम्बन्ध हो गया। अगर तुम्हारे प्रभु के राज्य मे आऊ तो जरा जगह मेरे लिए भी बना देना । वह भी सदिग्ध है कि कहा का प्रभु का राज्य और कहा का क्या ? चोर ज्यादा आश्वस्त था । वे लोग जो सूली पर लटका रहे थे, वे ही नही निश्चित थे कि यह आदमी आवारा और फिजूल है, वह चोर भी यही समझ रहे थे कि तुमसे बेहतर तो हमीं है । हम कुछ करके मर रहे है, तुम बिना किये ही मरे जा रहे हो ।

कृष्ण या क्राइस्ट को, महावीर या बुद्ध को, उनका समाज एकदम से उन्हे भगवान नही कह देता है । गालियो से शुरु करता है । पर, वे जिन्दा आदमी है वे गालिया पिये चले जाते है । कब तक आप गालिया देगे ? और जो आदमी गालिया पिये ही चला जाता है, फिर धीरे-धीरे आप उसका सम्मान करने लगते है । वह सम्मान को भी पीता चला जाता है, वह उससे भी प्रभावित नही होता है, फिर आप उसको भगवान बनाने मे लग जाते है ।

कृष्ण की चर्चा मेरे लिए इसलिए महत्वपूर्ण नही है कि आप उनका अनुकरण करे । इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि ऐसा व्यक्ति, इतना 'मल्टी डायमेशनल' व्यक्ति पृथ्वी पर नही हुआ । इस बहु आयामी व्यक्तित्व के अगर सारे खजाने आपके सामने खुल जाय तो आपको अपने खजाने खोलने का ख्याल आ जाय, बस इससे ज्यादा नही । आपके खजाने आपके होगे । और कोई नही कह सकता कि आपके खजाने कृष्ण से ज्यादा गहरे और ज्यादा समृद्ध नही होगे । यह कोई सवाल नही है । लेकिन जो कृष्ण के भीतर घटित हुआ वह किसी और के भीतर भी घटित हो सकता है, इसका स्मरण ही काफी है । उस स्मरण के लिए ही सारी चर्चा है ।

लेकिन, आप पूछते है कि जीवन-सिद्धान्त । हमारा मन होता है कि कोई सिद्धान्त मिल जाय तो उनको आरोपण करना आसान होगा । उनके सिद्धान्तो की हम कल सुबह से चर्चा करेगे, लेकिन वह भी आरोपण के लिए नही, वह भी जिन्दगी को समझने के लिए । कृष्ण जैसे लोग जब पैदा होते है तो जिन्दगी को बड़ी गहराई से देखते है और गलती होगी यह कि हम उनकी आख मे आख डालकर थोड़ी देर जिंदगी को न देखें । उनकी आंख मे आख डालकर जिन्दगी को देख लेने से हमारी भी देखने की क्षमता, हमारा 'पर्सपेक्टिव' बदलता है । मनाली आप आये है,

यह चारो तरफ पहाड़ है, लेकिन आपके पास जितनी आख और जितना 'पर्सपेक्टिव' है उतना सौंदर्य ही तो इन पहाड़ो मे दिखायी पड़ेगा ? यहीं निकोलस रोरिक भी था। उसके चित्र आप देख आयेंगे तो यह पहाड़ कुछ और कहते हुए मालूम पड़ने लगेंगे तत्काल, क्योकि उसकी आख मे आपने आख डालकर देखना शुरू कर दिया। निकोल्स रोरिक रूस से यात्रा करके इन पहाड़ो मे आ गया है। आज तो रास्ता है, तब तो रास्ता भी नहीं था, और तब से वह जिन्दगी भर यहीं रह गया। इस हिमालय ने उसे बिल्कुल ही पागल कर दिया। जहा तक मेरा ख्याल है, आपको काफी दिन हो गये हिमालय मे आये, अब शायद ही आपको पहाड़िया दिखायी पड़ती हो। पहले दिन दिखायी पड़ी होगी थोड़ी बहुत देर, अब नही दिखायी पड़ती होगी। अब बात खत्म हो गयी। पहाड़ है, ठीक है, बात खत्म हो गयी। लेकिन, निकोलस जिन्दगी भर लगा रहा यहा। वह एक एक पहाड़ो को पोतता रहा, रगता रहा जिन्दगी भर, और पहाड़ नही चुके। निकोलस का मन नही चुका ! तो, निकोलस की आख से अगर आप देख पायेंगे एक दफा तो ये पहाड़ कुछ और आपको कहते दिखायी पड़ने लगेंगे। उसने सैकड़ो ढगों से इन पहाड़ो को देखा। कभी चाद मे, कभी अधेरे मे, कभी सूरज मे, कभी वर्षा मे, कभी बर्फ मे, कभी धूप मे, हजार रगो मे इन पहाड़ो को देखा और जिन्दगी भर बस इन पहाड़ो को ही रगता रहा। मै नही कहता कि निकोलस ने जैसा देखा वैसा आप देखना। वैसा आप देख भी नही सकते, उपाय भी नही है। लेकिन, निकोलस को जानने के बाद ये पहाड़ सिर्फ साधारण पहाड़ नही रह जायेंगे जो एक दफा देखकर चुक जाते है।

प्रेम तो बहुत लोगो ने किया है, लेकिन कभी फरहाद और मजनू को पढ लेना उपयोगी है। हमारा प्रेम जल्दी चुक जाता है। पता नही चलता, कब चुक गया। ठीक से याद भी नही कर सकते कि कभी था। सब रूखा-सूखा रह जाता है भीतर। नदी आने के पहले ही विदा हो जाती है और मरुस्थल हो जाते है। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी रहे है जो कि जिन्दगी भर प्रेम किये ही चले गये। इनके प्रेम का हिसाब लगाना मुश्किल है। अगर इन प्रेम करनेवालो से आप थोड़े परिचित हुए तो अपने प्रेम को समझने मे बड़ी सुविधा हो जायेगी। और, हो सकता है कि आपके भीतर भी कोई धारा अन्तर्गर्भ मे बहती हो और उसका स्मरण आ जाय। ऐसा नही कि आप मजनू हो जायेंगे, उसका तो कोई उपाय नहीं है। होना भी नही है। और इस तरह बना हुआ मजनू क्या मजनू हो सकता है ? बाहर से बाल वगैरह बढा लेगा, मजनूं की तरह फटे कपड़े पहन लेगा, मजनू की तरह सड़क से गुजर के चिल्लाने लगेगा—लैला, लैला ! लेकिन, सब बेकार होगा,

उसमे कोई मतलब नहीं होगा। उसके भीतर से कही कुछ आयेगा नहीं। लेकिन, आपका भी अपना प्रेम है जो मजनू और फरहाद के प्रेम से शायद अधिक हो जाय, सुलग जाय, शायद बारूद आग पकड जाय और आपको भी पता चले कि मैं भी ऐसे ही चुक जाने वाला नही हूँ, मेरे भीतर भी कोई धारा है। उसी अर्थ मे मै कह रहा हूँ। बहुत लोगो ने गीत लिखे है, लेकिन कालिदास या रवीन्द्रनाथ का गीत पढकर आपको पहली दफा कुछ दिखायी पडना शुरू होता है जो आपको शायद कभी दिखायी नही पडा था। वह आपकी भी सम्भावना थी, लेकिन प्रसुप्त थी।

कृष्ण के सिद्धान्तो की कल सुबह हम बात करेगे, इस आशा मे नहीं कि आप उनको मानकर सिद्धान्तवादी हो जाय। कृष्ण जैसा गैरसिद्धान्तवादी आदमी नही है। इसलिए, इस उपद्रव मे पडना ही नही। कृष्ण को समझने का कुल मतलब इतना है कि जब ऐसा महिमा का पूरा खिला हुआ आदमी जगत को देखता है तो उसका 'वर्डिक्ट' क्या है— वह क्या कह जाता है इस जगत की बाबत ? चित्त की गहराइयो की बाबत वह क्या खबर दे जाता है ? आदमी के खिलने के सम्बन्ध मे वह क्या सूचनाए दे जाता है ? वे सूचनाए शायद आपके अन्तर्गर्भ मे पडी हुई किन्ही धाराओ को छू दे, तो ऐसा नही कि फिर आप कृष्णवादी हो जायेंगे। तब ऐसा ही होगा कि आप अपने होने की यात्रा पर निकल जायेंगे। तभी आप समझ पायेंगे कि यह आदमी जो स्वधर्म मे मर जाने को कहता है, यह आदमी आपके ऊपर सिद्धान्त थोपने वाला आदमी नही हो सकता है। तो कल आप पूछें। जो आप पूछेंगे उसकी मैं बात करूंगा। मुझे इसमे सुविधा पडती है कि आप पूछ लेते हैं। क्योकि, इसमे मुझ सोच-विचार की झझट नही रह जाती। नही तो मुझे सबसे बडी दिक्कत यही हो जाती है कि क्या कहूं ? ऐसे जब तक आपसे बोलता हूँ तभी तक सब विचार मेरे साथ होते है। जब मैं नही बोल रहा हूँ तब मैं खाली हो जाता हूँ तो मुझे बडी कठिनाई होती है। मै कहूं क्या ? आप कुछ पूछ लेते हैं, खूटी बन जाते है, मुझे टागने की सुविधा हो जाती है। अपनी तरफ से मेरा बोलना बहुत मुश्किल होता जा रहा है। इधर बहुत मित्रो ने कहा कि आप कुछ स्वतत्र रूप से बोले। वह मेरे लिए मुश्किल है। और ज्यादा दिन अब मैं स्वतत्र रूप से नही बोल सकूगा। उसमें बहुत कठिनाई पडती है, क्योकि मुझे समझ ही नही पडता। आप पूछ लेते है तो मुझे 'रिस्पौंड' करना पडता है। आप नहीं पूछते है तो मेरे पास अपने से बोलने को क्या है ! अपनी तरफ से अब मै चुप हूँ, आपकी तरफ से ही बोल रहा हूँ, इसलिए कल सवाल उठा लेंगे। जो सवाल आप उठा लेंगे, उसकी हम बात कर लेंगे।



पर्व : सत्रह

अनासक्ति

कर्म सन्यास और निष्काम कर्म

निष्काम और निष्क्रियता

समान व्यसन की मैत्री

समत्व की उपलब्धि ही स्वर्ग





१७

प्रश्न आचार्यजी, श्रीकृष्ण कहते हैं कि निष्कामता और अनासक्ति से बन्धनों का नाश होता है और परम पद की प्राप्ति होती है। कृपया इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए समझायें कि किस साधना या उपासना से यह उपलब्धि होगी। सामान्य जन के लिए सीधे निष्काम व अनासक्त होना तो संभव नहीं है।

उत्तर सबसे पहले तो अनासक्ति का अर्थ समझ लेना चाहिए। अनासक्ति थोड़े से अभागे शब्दों में से एक है कि जिसका अर्थ नहीं समझा जा सका है। अना-

सक्ति से लोग समझ लेते है—विरक्ति। अनासक्ति विरक्ति नही है। विरक्ति भी एक प्रकार की आसक्ति है। विरक्ति विपरीत आसक्ति का नाम है। कोई आदमी काम मे आसक्त है, वासना मे आसक्त है। कोई आदमी काम के विपरीत ब्रह्मचर्य मे आसक्त है। कोई आदमी धन मे आसक्त है, कोई आदमी धन के त्याग मे आसक्त है। कोई आदमी शरीर के श्रृंगार मे आसक्त है, कोई आदमी शरीर को कुरूप करने मे आसक्त है। लेकिन, शरीर को कुरूप करने वाला विरक्त मालूम पडेगा, धन का त्याग करने वाला विरक्त मालूम पडेगा, क्योंकि उसकी आसक्तिया 'निगेटिव' है, नकारात्मक है।

आसक्ति के दो रूप है— किसी के पक्ष मे आसक्त होना, या किसी के विपक्ष मे आसक्त होना। जो विपक्ष मे आसक्त है वह भी उतना ही आसक्त है जितना पक्ष मे आसक्त है। अनासक्ति, इन दोनो तरह की आसक्तियो से मुक्ति का नाम है। अनासक्ति का नाम है, आसक्त भी नही, विरक्ति भी नही। अनासक्ति दोनो का अतिक्रमण है। इसलिए, मैने कहा कि अनासक्ति थोडे से अभागे शब्दो मे एक है। वह विरक्ति के साथ पर्यायवाची हो गया है।

आध्यात्मिक जगत मे ऐसे बहुत-से शब्द है जो इसी भाति भ्रान्त हो गये है। 'वीतराग' ऐसा ही शब्द है। वीतराग, विराग का पर्यायवाची बन गया है। वीतराग का अर्थ है, राग और विराग दोनो के पार। महावीर की धारा मे जो वीतराग का अर्थ है, कृष्ण की धारा मे वह अनासक्ति का अर्थ है। अनासक्ति और वीतरागता पर्यायवाची है। लेकिन महावीर वीतराग होगे राग और विराग दोनो को छोडकर, और कृष्ण अनासक्त होगे दोनो को स्वीकार करके—उतना फर्क है। और ये दो ही ढग है। इसलिए, वीतराग और अनासक्ति की परिणति तो एक है, मार्ग भिन्न है। वीतराग का मतलब है, जिसने राग भी छोडा विराग भी छोडा। लेकिन, छोडने पर जोर है। अनासक्त का अर्थ है, जिसने राग भी स्वीकारा, विराग भी स्वीकारा। स्वीकार पर जोर है। इसलिए, बहुत गहरे मे वीतराग शब्द निषेधात्मक है और अनासक्ति शब्द विधेयात्मक है, वह 'पोजेटिव' है।

अनासक्ति चित्त वह है जिसने सब स्वीकार किया। यह बडे मजे की बात है कि जिसने सब स्वीकार किया, जैसा है वैसे के लिए ही राजी हो गया, ऐसे व्यक्ति के चित्त पर किसी चीज की कोई रेखा नही छूटती। हम किसी चीज को जोर से पकडे तो ही रेखा छूटती है चित्त पर। किसी चीज को जोर से छोडें तो भी रेखा छूटती है चित्त पर। लेकिन, न हम पकडे, न हम छोडें तब हम दर्पण की भांति हो जाते है, कोई रेखा नहीं छूटती है। चित्त रेखांकित न हो, चित्त पर कोई रेखा

न छूटे, ऐसे चित्त का नाम अनासक्त है। यह अनासक्ति, पूछा है, कैसे साधारण जन को आये ?

सभी जन साधारण है जब तक अनासक्ति न आ जाय। इसलिए ऐसा सवाल नही है कि साधारण जन को कैसे आये ? अनासक्ति आ जाय तभी असाधारणता मे फलित होती है। इसलिए, ऐसा नही है कि साधारण जन के लिए अनासक्ति का और रास्ता होगा, असाधारण जन के लिए और होगा। क्योकि, असाधारण जीवन का एक ही अर्थ है कि वह अनासक्ति को उपलब्ध हुआ है। यह अनासक्ति कैसे उपलब्ध हो ? इसको समझने के पहले जरा इसे समझ ले कि यह हमसे चूक कैसे गयी है ? अनासक्ति, कृष्ण की दृष्टि मे स्वभाव है। इसलिए, ऐसा नही है कुछ कि हमे कुछ साधना है अनासक्ति मे, इतना ही जानना है कि स्वभाव से हम चूक कैसे गये है, हमने अनासक्ति खोयी कैसे ? कोई व्यक्ति मेरे पास आया और उसने पूछा, मैं ईश्वर को खोजता हूँ। तो, मैंने उससे पूछा कि तुमने खोया कब ? अगर खोया हो तो खोज सकते हो। उसने कहा, नही मैंने खोया तो कभी भी नही। मैंने कहा कि फिर खोजना पागलपन है। जिसे खोया ही न हो उसे खोजा कैसे जा सकता है ? इसलिए, असली सवाल मैंने उस व्यक्ति को कहा कि यह नहीं है कि तुम ईश्वर कैसे खोजो, असली सवाल यह है कि तुम यह खोजो की तुमने ईश्वर को खोया भी है ? और, अगर तुम्हे यह पता चल जाय कि मैंने खोया ही नहीं तो खोज पूरी हो जाती है।

अनासक्ति स्वभाव है। यह बहुत मजे की बात है। क्योकि, अनासक्ति हमारा स्वभाव है, इसीलिए हम आसक्त भी हो सकते है और विरक्त भी हो सकते है। अगर आसक्ति हमारा स्वभाव हो तो विरक्त हम कभी भी नहीं हो सकते। अगर विरक्ति हमारा स्वभाव हो तो हम आसक्त कभी भी नही हो सकते। एक वृक्ष की शाखा है। हवा चलती है पश्चिम की तरफ तो शाखा पश्चिम मे झुक जाती है। हवा चलती है पूरब की तरफ तो शाखा पूरब मे झुक जाती है। वह इसीलिए झुक जाती है कि शाखा न पूरब मे है, न पश्चिम मे है। वह बीच मे है। हवाए जिस तरफ चलती है वह उसी तरफ झुक जाती है। पानी को हम गरम करते है, गरम हो जाता है, ठण्डा करते है तो ठण्डा हो जाता है। क्योकि, पानी खुद न ठण्डा है न गरम। अगर पानी गरम ही हो तो फिर ठण्डा न हो सकेगा। ठण्डा ही हो तो फिर गरम न हो सकेगा। पानी का स्वभाव ठण्डे और गरम के पार है। इसलिए, दोनो तरफ यात्रा सम्भव है। हम विरक्त लोगो को देखते हैं और लोगो को जोर से चीजो की पकड़े देखते हैं। इसका अर्थ इतना ही है कि हमारा स्वभाव दोनों नहीं है। इसलिए, हम जिस तरफ जाना चाहें जा सकते हैं। हमारा स्वभाव दोनों

का अतिक्रमण करता है, इसलिए हम दोनों तरफ झुक सकते हैं। हम आंख खोल सकते हैं,आख बन्द कर सकते हैं, क्योंकि आख का स्वभाव न खुला होना है, न बन्द होना है। अगर आंख का स्वभाव खुला होना हो तो फिर बन्द कैसे करियेगा? अगर आंख का स्वभाव बन्द होना हो तो खोलियेगा कैसे? आख खुलती और बन्द होती है, क्योंकि आख खुलने और बन्द होने, दोनो का अतिक्रमण करती है। दोनो के पार है। खुलना और बन्द होना बाहरी घटनाए हैं। आख भीतर न खुली है, न बन्द है। सिर्फ पलकें ही झपकती और खुलती है।

बहुत गहरे मे चित्त हमारा, चेतना हमारी अनासक्त है, सिर्फ पलकें ही आसक्त होती हैं और विरक्त होती है। तो,पहली बात जो समझ लेनी जरूरी है वह यह कि स्वभाव हमारा अनासक्ति है। और, यह भी ध्यान रहे कि जो हमारा स्वभाव है उसे ही पाया जा सकता है। जो हमारा स्वभाव नही है उसे हम कभी न पा सकेगे। सिर्फ हम वही पा सकते हैं जो बहुत गहरे मे हम हैं ही। एक बीज फूल बन जाता है, क्योकि गहरे मे वह फूल है ही। एक पत्थर फूल नही बन पाता, क्योकि गहरे को छोड दे, उथले मे भी वह फूल नही है। पत्थर को बो दे तो पत्थर ही रह जाता है। बहुत गहरे मे वह पत्थर ही है। बीज को बो दे, देखने मे दोनों एक-से मालूम पडते थे, पत्थर की ककडी और बीज। लेकिन, जब बोया तब पता चलता है कि बीज पत्थर नही था, वह फूल हो गया। अब हम कह सकते है कि बीज फूल था ही, इसीलिए फूल हो गया। अगर न होता तो नही हो सकता था। जीवन के गहनतम सूत्रो मे से एक है कि हम वही हो सकते हैं, जो हम हैं ही। किसी गहरे तल पर है, फिर हम परिधि पर भी प्रकट हो जायेंगे। अनासक्ति हमारा स्वभाव है। इसीलिए, अनासक्ति पायी जा सकती है। जो बीज है वह फूल बन सकता है।

अनासक्ति सभी का स्वभाव है। ऐसा नही कि किसी का है और किसी का नहीं। जहा भी चेतना है, चेतना सदा अनासक्त है। हा, चेतना का व्यवहार, पलक के झपने और बन्द होने जैसा आसक्त हो जाना है या विरक्त हो जाना है। यह दूसरी बात ठीक से समझ लें। चेतना अनासक्त है, व्यवहार आसक्त या विरक्त है अगर मुझे निपट अकेला छोड दिया जाय जहां सिर्फ मेरी चेतना ही है तो उस क्षण मे मैं आसक्त हूं या विरक्त? नही, उस क्षण में मैं कोई भी नहीं हूं। आसक्ति और विरक्ति सदा दूसरे के सम्बन्ध मे पैदा होती है। अगर मैं कहूं कि फलां आदमी आसक्त है तो आप तत्काल पूछेंगे कि किस चीज में? क्योंकि, बिना किसी चीज के आसक्त कैसे होगा? अगर मैं कहू कि फलां आदमी विरक्त है

तो आप पूछेंगे, किस सम्बन्ध मे ? क्योकि, विरक्ति का कोई अर्थ नही। विरक्ति और आसक्ति दोनो वस्तुओ, या व्यक्तियो, या 'पर' से हमारे सम्बन्ध है। 'रिलेशनशिप्स' है। वह हमारा 'व्यवहार है'। वह हम नहीं है। यह दूसरी बात ठीक से ध्यान मे रख लें कि आसक्त या विरक्त हमारा व्यवहार है। और इसलिए, यह भी सुविधापूर्ण है कि जिसके प्रति आज हम आसक्त हैं, कल विरक्त हो सकते हैं। जिसके प्रति आज विरक्त है, कल आसक्त हो सकते है। और, ऐसा भी नही है कि कल ही हो, कभी-कभी तो ऐसा होता है कि एक ही क्षण में, एक ही आदमी के किसी हिस्से के प्रति हम आसक्त है और किसी हिस्से के प्रति विरक्त होते है। एक ही चीज के प्रति भी हमारी दुविधा होती है, द्वन्द्व होता है। कहीं से वह पकडने योग्य लगती है, कही से वह छोडने योग्य लगती है। लेकिन, एक बात तय है कि विरक्ति और आसक्ति हमारा व्यवहार है, हमारा स्वभाव नहीं है। व्यवहार का मतलब है जिसमे 'पर' अनिवार्य हो। जो अकेले मे न हो सकेगा। और, स्वभाव का मतलब है, जो निपट अकेले मे ही है। अगर मुझे बिल्कुल ही अकेला छोड दिया जाय सारी वस्तुओं से, सारे लोगो से, सारे विचारो से, मैं निपट अपने अकेलेपन मे, टोटल 'लोनलीनेस' मे रह जाऊ तो वहा आसक्ति और विरक्ति ये दोनो बाते असगत होगी। वहा मै कोई भी नही होऊगा। क्योकि, ये सारे-के-सारे सम्बन्धो के सूचक शब्द है। वहा असग होऊगा या वहा मै अनासक्त होऊगा। यह मै समझाने के लिए कह रहा हूँ कि आप इन शब्दो की पूरी अर्थवत्ता को समझ ले तो फिर बहुत कठिनाई नही रहेगी।

आसक्ति-विरक्ति सम्बन्ध है, पर अपेक्षित। जो 'दी अदर' है वह अनिवार्य है। इसीलिए, आसक्ति भी गुलामी है और विरक्ति भी गुलामी है। दासता है। क्योकि, जो दूसरे के बिना न हो सके उसमे हम कभी स्वतत्र नही हो सकते। इसलिए, आसक्त भी एक तरह का गुलाम होता है और विरक्त भी दूसरे तरह का गुलाम होता है। आपके पास तिजोरी न हो तो मुश्किल मे पड जाते है, विरक्त के कमरे मे रात तिजोरी रख दो तो मुश्किल मे पड जाता है। लेकिन, तिजोरी से दोनो का बडा गहरा सम्बन्ध है। आसक्त के पास स्त्री न हो, पुरुष न हो तो मुश्किल मे पड जाता है। विरक्त के कमरे में रात स्त्री को ठहरा दो, पुरुष को ठहरा दो तो उतनी ही मुश्किल मे पड जाता है। दोनो गुलाम है। और, दोनो दूसरे पर निर्भर है। दूसरे के होने या न होने पर इससे फर्क नहीं पड़ता। लेकिन, दूसरा उनके होने मे अनिवार्य है। वह दूसरे के बिना अपने को नहीं सोच पा सकता। लोभी धन के बिना नहीं सोच पाता। त्यागी धन के साथ नही सोच पाता। लेकिन, दोनो के केन्द्र पर धन कहीं पर खड़ा

मौजूद रहता है। हमारा व्यवहार ठीक से समझ लें तो फिर व्यवहार मे परिवर्तन से कोई अन्तर नही पडता कि आसक्त विरक्त हो जाते हैं या विरक्त आसक्त हो जाते है। जो लोग घने आसक्ति मे खडे है, जब वे मुझे मिलते है तो सदा रोते मिलते हैं कि हम बहुत बन्धन मे पड़े है। इससे छुटकारे का उपाय क्या है? जो विरक्त है, जब वे मुझे मिलते है तो कहते है, कही हमने भूल तो नही कर दी। हम जिन्दगी से भाग गये। कही ऐसा तो नही है कि जिन्दगी मे कुछ लोगो को मिल रहा हो और वह हमे नही मिल रहा। विरक्त को सदा ख्याल बना रहता है कि पता नही, आसक्त तो कुछ नही लूट रहा। आसक्त को सदा ख्याल बना रहता है कि कही विरक्त तो कुछ नही लूट रहा। पता नही, विरक्त को क्या मिल रहा है जो आसक्त सोचता रहता है कि मुझे नही मिल रहा। दोनो की स्थितिया भर अलग है, परिस्थितिया भर अलग है, मनस्थितिया अलग नही है। दोनों मनस्थितियो पर निर्भर है।

पर-निर्भरता से न कोई स्वतन्त्रता है, न कोई सत्य है। पर-निर्भरता से न कोई आनन्द है, न कोई मुक्ति है। 'पर' ही बन्धन है। लेकिन, विरक्त कहता है हम 'पर' को छोडकर भाग जाते है। लेकिन, उसे पता नही कि जिसे वह छोडकर भागता है उससे उसके सबध नही टूट गये, सिर्फ भागने के सम्बन्ध हो जाते है। और, जिसे हम छोडकर भागते है वह हमारा पीछा करता है। वह नही करता पीछा, लेकिन हम छोडकर भागे है उस कारण ही हम उसमे भयभीत हैं, हम उससे डर है, हम उससे चिन्तित है। वह हमारी वृत्ति हमारा पीछा करती है। और फिर, 'पर' को छोडकर जाइयेगा कहा? सब जगह 'पर' मौजूद है, सिर्फ एक जगह को छोडकर। स्वय के भीतर को छोडकर और तो सब जगह 'पर' मौजूद है। घर छोडकर जाइयेगा तो आश्रम मौजूद है। पत्नी-पति को छोडकर जाइएगा तो शिष्य-शिष्याए मौजूद है। गाव को छोडकर जाइयेगा तो जगल मौजूद है। महलो को छोडकर जाइयेगा तो झोपडिया मौजूद है। कीमती वस्त्र छोडकर जाइयेगा तो लगोटिया मौजूद है, नगापन मौजूद है। वह सब मौजूद है। 'पर' को छोड़कर इस जगत मे भागा नही जा सकता, क्योंकि जगत ही पर है। भागियेगा कहां? जगत तो होगा। जहा भी जाइयेगा वहा जगत होगा। इसलिए, जगत को छोडकर नही भागा जा सकता और पर को भी छोडकर नही भागा जा सकता, पर तो रहेगा ही। हा, नये रूपो मे प्रकट होगा। नये-नये रूप लेगा। 'पर' सिर्फ स्वय के गहरे केन्द्र मे प्रवेश नही कर सकता, क्योकि स्वय के बहुत गहरे केन्द्र पर 'स्व' भी मिट जाता है। 'मैं' भी मिट जाता है, इसलिए पर के होने का उपाय मिट जाता है। इसको अब ऐसा समझिये कि जब तक आप है, तब तक पर से नहीं बच सकते।

अभी मैंने कहा कि जबतक आप जगत मे है, कहीं भी भागिये, पर होगा। अब मैं दूसरी बात आपसे कहता हूँ कि जब तक आप हैं, अगर आख भी बन्द कर लीजिये और जगत न हो तो भी पर होगा। हां, बन्द आख मे होगा। सपने मे होगा, कामना में होगा, कल्पना मे होगा, वासना मे होगा, लेकिन पर होगा। जब तक आप हैं तब तक 'पर' भी होगा।

स्वभाव का मतलब है, जहा 'स्व' भी मिट जाता है। इसलिए, स्वभाव भी उन अभागे शब्दो मे एक है, क्योंकि उसका मतलब होता है, स्वय का भाव। लेकिन, जहाँ स्वभाव शुरू होता हैं वहा स्व मिट जाता हैं। स्वभाव का स्वय से कोई भी सम्बन्ध नही है। स्वभाव का मतलब ही हैं कि जो हमसे होने के पहले था। हमसे होने के बाद होगा। हम है तब भी हैं, हम नही हैं तब भी है। अगर मैं बिल्कुल भी मिट जाऊ, मेरा मैं बिल्कुल भी मिट जाय तब भी जो शेष रह जायेगा वह स्वभाव है। स्वभाव मे स्व शब्द खतरनाक हैं। उससे खतरा पैदा होता है, उससे लगता है कि स्वय का होना। नही, स्वभाव का मतलब है 'द नेचर', स्वभाव का मतलब है प्रकृति, स्वभाव का मतलब है जो हमारे बिना भी है। जब आप रात सो गये होते है तो स्व नही होता। लेकिन, स्वभाव होता है। जब गहरी प्रसुप्ति मे होते है तब स्व नही होता, लेकिन स्वभाव होता हैं। जब एक आदमी मूर्छित पड़ा है, गहरी मूर्छा मे तब स्व नही होता, लेकिन स्वभाव होता हैं। सुषुप्ति और समाधि मे इतना ही फर्क है कि सुषुप्ति मे मूर्छा के कारण स्व नही होता, समाधि मे अमूर्छा के कारण, जागरण के कारण, ज्ञान के कारण स्व नही होता।

तो जब तक जगत है, तब तक पर है और जब तक मैं हूँ तब तक पर है। अब इसे हम और तरह से भी ले ले। जब तक मैं हूँ तभी तक जो मुझे दिखाई पड रहा है वह जगत है। जगत मेरे मै के बिन्दु से देखा गया कोण, मेरे मैं के बिंदु से देखा गया सत्य हैं। अगर मेरा मै मिट जाय तो पर कोई भी नहीं है। फिर, मै किससे बधूगा और किससे बधगा। फिर मै ही हूँ। तो अनासक्ति स्वभाव है। कैसे चले इसकी तरफ? जो बडी-से-बडी भूल हुई है वह यह है कि कोई विरक्ति की तरफ चल पडे अनासक्ति को पाने के लिए। ख्याल रहे, आसक्ति उतना बडा खतरा नहीं है अनासक्ति के मार्ग पर; क्योंकि आसक्ति का चेहरा साफ है। कोई भूल नहीं करेगा आसक्ति को अनासक्ति समझने की। कैसे करेगा? कोई भूल नहीं करेगा धन को पकड़ने को अनासक्ति समझने की, लेकिन धन को छोडने को अनासक्ति समझने की भूल होती रही है, होती है, हो सकती है। इसलिए, बड़ा खतरा, अनासक्ति की यात्रा मे आसक्ति नहीं है, बड़ा खतरा विरक्ति है। विरक्ति के चेहरे पर बुर्का है। विरक्ति को जो न पहचान पाये वह अनासक्ति के नाम पर विरक्ति

का खोटा सिक्का लेकर घूमता रहेगा। इसलिए, अनासक्ति की यात्रा में विरक्ति से सावधान रहने की पहली जरूरत है। विरक्ति भी आसक्ति है, इतना समझते ही सावधानी उत्पन्न हो जाती है।

दूसरी बात 'पर' कहीं भी हम जायेंगे रहेगा, इसलिए हम उसी जगह चले जहा 'पर' नही रहेगा। हम भीतर चलें। हम स्वय में चले, हम अपने एकान्त मे चलें, हम अपने अकेलेपन मे उतरे। लेकिन, इसका क्या मतलब है? क्या मैं बाहर के जगत से आख बन्द कर लू तो एकान्त मे उतर जाऊंगा? अकेला हो जाऊंगा? आख तो हम रोज बन्द करते हैं, लेकिन एकान्त नहीं होता। क्योंकि, आख बन्द करते ही वे चित्र, वे प्रतिमाए, वे प्रतीक, वे 'इमेजेस' जो हमने बाहर से ग्रहण की थीं, भीतर से उठनी शुरू हो जाती हैं। विचार आते है, कल्पनाए आती है, स्वप्न आते है, दिवास्वप्न आते है और फिर हम जगत को ही देखते रहते है। हा, अब जो जगत होता है वह कल्पित होता है। जो बाहर आख के था वह वास्तविक था। अब उसकी सिर्फ छायाए होती है। अब सिर्फ फिल्म होती है उसकी। अब वह खुद नही होता। हम अपनी आखो और अपने मन का उपयोग बिल्कुल 'मूवी कैमरे' की तरह कर रहे है। जो देखते है, उसे उतारते चले जाते है। फिर, आँखे बन्द करके उसको पर्दे पर देखते रहते है मन के। यह पर की छाया है। यह भी हट जाय तो हम स्व मे उतरते है। यह हट सकती है, इसमे कोई कठिनाई नही है। हम इसे चलाते है इसीलिए यह चलती है। हम इसे चलाने मे उत्सुक न रह जाय, हमारी रुचि इसके चलाने मे न रह जाय तो ये प्रतिमाए तत्काल गिर जाती है, इनका कोई अर्थ नही रह जाता। हमारा रस ही इन प्रतिमाओ के चलने का मूल आधार है। ध्यान रहे, रस ही नही, विरस भी। जिसे हम याद करना चाहते है वह भी याद आता है और उससे भी ज्यादा वह याद आता है जिसे हम भूलना चाहते हैं। लेकिन, जिसे न हम भूलना चाहते, जिसे न हम याद करना चाहते, वह अचानक गिर जाता है। वह हमारे चित्त से अर्थहीन हो जाता है। वह पर्दे से हट जाता है। तो, इस भीतर चलती हुई फिल्म को अगर कोई साक्षी भाव से देखे, सिर्फ देखे—न रस ले, न विरस ले, न आसक्त हो, न विरस हो इस भीतर की फिल्म पर, तो थोडे ही दिन मे साक्षी का बोध इस फिल्म को गिराता जाता है। और एक क्षण आता है जब निपट चेतना रह जाती है। और कोई 'ओब्जेक्ट,' कोई विषय नहीं होता, निर्विषय चेतना रह जाती है। इस निर्विषय चेतना मे जिसका अनुभव होता है वह अनासक्ति है। इस निर्विषय चेतना से जो व्यवहार निकलता है उसका नाम अनासक्ति योग है। निश्चित ही अब व्यवहार बिल्कुल दूसरा होगा। जिस व्यक्ति ने अपने इस स्वभाव की अनासक्ति को पहचाना, जिसने जाना कि मुट्ठी

बंध जाती है, खुल जाती है, लेकिन मुट्ठी के दोनों काम नहीं हैं। इसलिए, दोनों काम कर पाती है। अब ऐसा व्यक्ति, बाहर के जगत में लौटकर, भीतर से बाहर आकर वही नहीं होगा जो बाहर से भीतर आते वक्त था। इसने अपने चेतना के दर्पण को पहचाना है, अब यह चित्त का उपयोग कैमरे की तरह नहीं; दर्पण की तरह करेगा। और, अब इसके चित्त का सम्बन्ध नहीं पैदा होगा, सम्बन्ध बनेंगे, लेकिन सम्बन्ध पैदा नहीं होगा। सम्बन्ध होंगे, लेकिन असगता होगी। यह प्रेम भी करेगा ऐसे ही जैसे पानी पर लकीर खींची जाती है। यह लड़ेगा भी ऐसे ही जैसे पानी पर लकीर खींची जाती है। इसका दर्पण, लड़ने को भी दिखायेगा और प्रेम को भी दिखायेगा। और, यह दोनो के बाहर—पूरे समय दोनो के बाहर चलता रहेगा।

इस व्यक्ति के व्यवहार की स्थिति अभिनय की हो जायेगी, 'एक्टिंग' की हो जायेगी। यह व्यक्ति अब कर्ता नही, अभिनेता हो जायेगा। कृष्ण अगर कुछ हैं तो अभिनेता हैं, और उनसे कुशल अभिनेता पृथ्वी पर दूसरा नही हुआ है। उन्होंने इस पूरे जगत को मच बना लिया है। बाकी अभिनेता एक छोटे-से मच को मच बनाते है। उन्होंने पूरी पृथ्वी को मच बना लिया। इससे क्या फर्क पडता है ? दस-पाच तख्त रखकर हम एक मच बनाते है। फिर, उस पर अभिनय चलता है। यह पूरी पृथ्वी मच क्यो नही हो सकती ? इस पूरी पृथ्वी पर अभिनय क्यो नहीं चल सकता ? और अभिनेता जो है, उसे न तो आसू बाधते है, न उसे मुस्कुराहट बाधती है। जब वह रोता है तब भी रोता नही, जब हसता है तब भी हसता नही, जब प्रेम करता है तब भी प्रेम करता नही, जब लडता है तब भी लडता नहीं। उसकी मित्रता मित्रता नही, उसकी शत्रुता शत्रुता नही। ऐसे व्यक्ति का जीवन एक त्रिभुज बन जाता है। हम त्रिभुज नही है, हमारा तीसरा जो कोण है, वह जो 'थर्ड एगल' है वह अन्धेरे मे डूबा हुआ है। हमारे सिर्फ दो कोण हमे दिखायी पडते है। आसक्ति, विरक्ति। इन दोनो को जोडने वाला ट्रायगल का तीसरा हिस्सा अधेरे में दबा है। अनासक्त व्यक्ति का वह भी प्रकाश में आ जाता है। उसकी पूरी जिन्दगी ऐसी है कि वह दोनो कोणो पर व्यवहार करता है। लेकिन, रहता सदा अपने तीसरे कोण पर है। जब भी दूसरो से सम्बन्ध होता है तो वह आसक्त दिखायी पडता है, विरक्त दिखायी पडता है; लेकिन वह सिर्फ दिखायी पडता है, वह सिर्फ 'एपियरेंस' है। रहता सदा अपने तीसरे कोण पर है। इस तीसरे कोण पर, इस 'थर्ड एगल' पर हो जाने का नाम अनासक्ति है। हम सबके पास तीनों कोण हैं। लेकिन, दो कोण हमारी आंखों के सामने और एक कोण हमारी आंख के पीछे है। दो कोण स्पष्ट है। बायें और दायें साफ है, राग और विराग साफ

है। इधर कुआं इधर खाई साफ है। लेकिन, तीसरा कोण जो अन्धेरे में डूबा है वह तो जब हम अपने भीतर उतरेंगे एकान्त मे, तभी हमे स्पष्ट होगा, तभी रोशनी वहा पहुचेगी। जिसने अपने तीसरे कोण को पा लिया उसने कृष्ण को पा लिया, उसने बुद्ध को पा लिया, उसने महावीर को पा लिया, उसको कुछ पाने को बचता नहीं। क्योंकि, एक बार उसे यह पता हो गया कि आसक्त होते हुए मैं अनासक्त होता हूँ। विरक्त होते हुए मैं अनासक्त होता हूँ, तब फिर आसक्ति और विरक्ति खेल हो गये।

एक विचारक ने एक किताब लिखी है, जिसका नाम है— 'गेम दैट पिपुल प्ले' —खेल, जो लोग खेलते है। उस बडी किताब मे उसने सब खेलो की चर्चा की है, केवल बुनियादी खेल की नही चर्चा कर पाया। बुनियादी खेल यह है कि अनासक्त रहते हुए आसक्त और विरक्त का जो खेल है वह बुनियादी खेल है, वह 'अल्टीमेट प्ले' है। बहुत कम लोग खेल पाते है। उसको पता भी नही होगा, इसलिये कोई चर्चा नही की। अनासक्ति भीतर उतरने से उपलब्ध होती है। और भीतर उतरना साक्षी भाव से सम्भव होता है। इसलिए, जीवन के किसी भी कोण से साक्षी होना शुरू हो जाय, आप भीतर पहुच जायेंगे। और जिस दिन आप भीतर पहुच जायेंगे उस दिन आप अनासक्त हो जाते है।

प्रश्न **आचार्यजी, आसक्ति पर आपने अभी प्रकाश डाला। इसी के साथ गीता मे कृष्ण ने दो बाते कही है। कर्म से सन्यास अर्थात पूर्ण कर्म मे कर्तापन का त्याग, और निष्काम कर्म अर्थात् समत्व बुद्धि से कर्मों का करना। अतएव अनासक्ति, कर्म-सन्यास और निष्काम-कर्म इन तीनो मे क्या रिश्ता या भिन्नता है, इस पर और प्रकाश डाले।**

उत्तर अनासक्ति योग मूल है। अनासक्ति योग तीसरा कोण है। इस कोण से जीवन के दो कोण निकलेंगे। करते हुए न करना, न करते हुए करना। एक को हम कर्म-सन्यास कहे, एक को हम निष्काम-कर्म कहे। निष्काम-कर्म का अर्थ है करते हुए न करना। करते हुए भी करने की कामना जहां नहीं है। करते हुए भी करने का आग्रह जहा नही है। करते हुए भी न करना आ जाय तो दुख या पीडा वहा नही है। करते हुए भी जहा करने का फल न मिले तो कोई विषाद नही है। करते हुए भी सब किया हुआ अनकिया हो जाय तो कोई पीडा नहीं है। यह निष्काम-कर्म है। इसको बाद मे हम थोडा और विस्तार से समझेंगे।

न करते हुए भी करते हुए पाना। इसे थोडा समझना पड़ेगा। यह और भी कठिन है। जिसको सन्यास कहे कि न करते हुए करते हुए पाना। मैं कुछ भी नहीं

करता, लेकिन आपके द्वार पर भिक्षा तो मांगने आता हूँ, और आपने अगर चोरी की है और चोरी का अन्न खाते है तो मुझे भी चोरी का अन्न देते है। अगर व्यक्ति सच में सन्यासी है तो वह कहेगा मै भी चोर हूँ। अगर सच मे सन्यासी नही है तो वह कहेगा कि मुझे क्या मतलब कि तुम क्या करते हो। मुझे कोई प्रयोजन नहीं। अगर व्यक्ति झूठा सन्यासी है तो वह चोर की रोटी खाकर चोर नहीं होगा। लेकिन, अगर सच्चा सन्यासी है तो वह कहेगा कि नहीं करता हूँ मै चोरी, लेकिन मै भी भागीदार तो हूँ। यह तो मैने कहा कि भिक्षा मागता है, समझ ले कि भिक्षा भी नही मागता। ठीक सन्यासी इस पृथ्वी पर है अगर, और वियतनाम मे लोग कट रहे है तो वह मानता है कि मै भी जिम्मेदार हूँ। नही करता हुआ भी मै इसका भागीदार हूँ। इस पृथ्वी पर जो चेतना निर्मित हुई है वह मेरे बिना तो नही हो सकती है। मै भी हूँ। अगर इस गाव मे मै हूँ और इस गाव मे हिन्दू मुस्लिम दगा हो जाय, और न मै हिन्दू हूँ न मै मुसलमान हूँ, मै सिर्फ सन्यासी हूँ तो भी जिम्मेदार मै हूँ। जरूर मैने भी कुछ ऐसा किया होगा जिसने इस झगडे को बल दिया। या हो सकता है मैने कुछ भी न किया होगा, मै खडा देखता रहा, मेरा खडा होना भी झगडे के लिए आधार बन सकता है। सन्यास का अर्थ यह है कि न करते हुए भी जानना कि जो भी हो रहा है, चूँकि मै भी हूँ, उससे बच नही सकता। उसमे मै भी भागीदार हूँ। होऊंगा ही। क्योकि, मै एक हिस्सा हूँ और मै जो कुछ भी करूँगा उसके विराट फल आयेंगे। अगर हिन्दू-मुस्लिम लड रहे थे और मै चुपचाप निकल गया तो कम-से-कम मै रोक तो सकता ही था। मैने नही रोका, नही रोकना भी मेरा कृत्य है। नही रोकने की भी जिम्मेदारी मेरी है। आमतौर से लोग जिसे सन्यास समझते है वह सन्यास नही है, वह विरक्ति है। कृष्ण जिसे सन्यास कहते है, वह बहुत कठिन मामला है। वह अनासक्त व्यक्ति की स्थिति है। वह यह कहता है कि जो मै नही कर रहा हूँ उसके लिए भी मै जिम्मेवार हूँ, क्योकि मै भी हूँ। और चेतना अन्तत सयुक्त है, इकट्ठी है।

सागर मे आपने लहरे देखी है, लेकिन शायद ही आपको कभी ख्याल आया हो। लहरे आती हुई मालूम पडती है, आती नही। आप कहेगे, कैसी बात कर रहे है, लहरें बराबर आती है। लगता है कि एक लहर मील भर दूर से चली आ रही है। और, आप स्नान भी करते है उस लहर मे सागर के तट के किनारे बैठकर, तो आप मेरी कैसे मानेंगे कि नहीं आ रही है? लेकिन, जो जानते है सागर को वह कहेंगे कि कोई लहर आती नही। एक लहर दूसरी लहर को उठाती है। वह मील भर की लहर इस किनारे तक नहीं आती। वह मील भर की लहर जब उठती है तब पड़ोस में गड्ढा पैदा हो जाता है। उस गड्ढे की वजह से, वहाँ

गड्ढा खत्म होता है दूसरी लहर पैदा हो जाती है। वह लहर अपने उठने से हजारों लहरों को उठाती है, आती नहीं। उस लहर के हजारों धक्कों का कोई धक्का सिर्फ आता है। जब आप सागर के किनारे नहाते हैं तो वह मील भर से आती हुई लहर आपके पास नहीं आती। बस, सागर की छाती कंप गयी है उसके उठने की वजह से, और कंपन आते हैं आपके पास। कंपती हुई जो लहर आपको दिखायी पड़ती है वह इतनी 'कंटीन्युअस' है कि आप कभी फर्क नहीं कर पाते कि यह लहर सच में आ रही है। लेकिन, अगर इस किनारे आयी हुई लहर से कोई बच्चा डूबकर मर जाय तो क्या मील भर दूर उसी लहर को जिम्मेदार ठहरा सकेंगे कि तू जिम्मेदार है? वह कहेगी कि मैंने डुबाया नहीं। मैं गयी नहीं तट पर कभी। मैं सदा यहीं हूँ। मील भर का फासला है उस बच्चे के डूबने में और मेरे होने में। न, कृष्ण कहते हैं कि अगर वह लहर सन्यासी है तो कहेगी कि मैंने डुबाया। क्योंकि, मैं सागर का हिस्सा हूँ। उस तट पर गयी या नहीं, यह सवाल नहीं है। उस तट पर जो गया है उसमें भी मेरा हाथ है।

इस जगत में कहीं भी कुछ घट रहा है, सन्यासी उसमें अपने को कर्ता मानता है जो उसने कभी किया ही नहीं। यह बड़ा कठिन है। कर्म करते हुए अपने को अकर्ता मानना इतना कठिन नहीं है। हालांकि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लेकिन, संन्यास की यह दृष्टि हमारे ख्याल में नहीं है। सन्यास की हमारी कुल इतनी दृष्टि है कि जो छोड़कर चला जाता है। जो कहता है कि अब मैंने छोड़ ही दिया तो मेरी क्या जिम्मेदारी? लेकिन, यह जगत पूरा-का-पूरा सागर की छाती पर उठी हुई लहरों जैसा है। इसमें कोई लहर यह नहीं कह सकती कि मैं जिम्मेदार नहीं हूँ जो 'पैटर्न' बन रहा है उसका। जिन्दगी बड़ी जटिल है, उसमें भी चेतना के सागर में लहरें हैं। मैं एक शब्द बोलता हूँ, मैं कल नहीं रहूँगा, लेकिन उस शब्द के परिणाम अनन्त काल तक जगत में आते रहेंगे। कौन होगा जिम्मेदार? मैं नहीं बोलता हूँ, चुप खड़ा रह जाता हूँ, लेकिन मेरी चुप्पी के परिणाम इस जगत में अनन्त काल तक प्रभावी होते रहेंगे। कौन होगा जिम्मेदार? हो सकता है कि जिस लहर के धक्के से यह किनारे की लहर उठी, वह अब न हो, और बच्चा डूब कर मरा तो वह लहर कहेगी कि मैं किनारे गयी नहीं। उस लहर को आप किसी अदालत में जिम्मेदार न ठहरा सकेंगे, कोई मुकदमा न चला सकेंगे। लेकिन, कृष्ण की अदालत में वह लहर भी मुकदमे में फंस जायेगी। कृष्ण कहेंगे कि तेरा होना या न होना दोनों अर्थों में इस विराट जाल को पैदा करता है। इसमें तू भागीदार है ही। इसलिए, न करते हुए जानना कि कर रही है। यह एक पहलू है। इसका अर्थ संन्यास है। ऐसा आदमी सन्यासी नहीं है जो कहता है कि हमारा क्या जिम्मा?

हिन्दुस्तान में संन्यासी थे, हजारों लाखों की संख्या में। मुल्क गुलाम था। वह सन्यासी कहते, हमें क्या मतलब ? इस मुल्क की गुलामी का हमसे क्या मतलब ? हम तो सन्यासी हैं। लेकिन, उन लाखों सन्यासियो का यह भाव भी इस मुल्क को गुलाम बनाने मे सहयोगी है। जिम्मेदारी उनकी है, वह भाग नही सकते। सन्यासी किसी भी जिम्मेदारी से भागेगा नहीं। संन्यासी का मतलब ही यह है कि जो दूसरे की जिम्मेदारी है वह भी अपनी है। यह जो दूसरे का पाप है वह भी अपना है। वह जो दूसरे का पुण्य है वह भी अपना है। क्योंकि, हम अलग कहा है ? अगर दूसरा नहीं है तो फिर न करते हुए भी कर्ता हूँ। यह बडे मजे की बात है अगर न करते हुए भी कोई कर्ता हो जाय तो अनासक्त हो जायेगा। क्योंकि, अब तो अपना कर्म और पराया कर्म का भी कोई फासला नहीं रहा। अब मैं किसको छोडू और किससे भागू। अगर मै चोरी न करू तो भी कोई फर्क नहीं पडता, जमीन पर चोरी चलती रहेगी। मै चोरी करू तो भी कोई फर्क नही पडता। तो अब किसको मै अपना मानू, इसका कोई अर्थ नहीं रहा। अगर सभी कुछ का मै भागीदार हूँ, सभी पाप मेरे, सभी पुण्य मेरे, सभी युद्ध मेरे, सभी शातिया मेरी तो अब मैं किसको छोडू और किसको पकडू। अब पकडने न पकड़ने का कोई सवाल न रहा। सभी हाथ मेरे हैं अगर, तो इन दो हाथो को छोड़कर अगर भाग भी जाऊगा तो क्या फर्क पड़ता है ? और, सभी आंखें अगर मेरी है तो मैंने अपनी दो आखें फोड भी ली तो क्या फर्क पडता है ? और अगर सभी घर मेरे है तो मै एक घर छोडकर जगल चला गया तो क्या फर्क पडता है।

संन्यास का अर्थ है कि यह जो कर्म का विराट 'पैटर्न' है, यह जो जाल है, इसमें हम भागीदार हैं। हम इसके हिस्से हैं। इसलिए, न करते हुए जानना कि मैं कर रहा हूँ। ठीक दूसरा पहलू कृष्ण कहते है, करते हुए जानना कि नहीं कर रहा हूँ। अब तो वह भी कठिन मालूम पडेगा। इस बात को समझने के बाद वह और भी कठिन हो जायेगा। ऐसे साधारणत वह सरल मालूम पडता है। आदमी कहता है कि हम अभिनेता बनकर कर सकते है। लेकिन, बडी है कठिन बात वह भी। सच तो यह है कि जो अभिनेता होता है वह भी कई बार चूक जाता है और कर्ता हो जाता है। अभिनय करते वक्त भी पच्चीस दफा चूक जाता है। अभिनय जो आदमी करता है, वह जब अपने अभिनय मे पूरा लीन होता है तब वह भूल जाता है कि मै अभिनय कर रहा हूँ। तब तो वह वही हो जाता है जो वह कर रहा है। तब वह आविष्ट हो जाता है। तब अभ्यास हो जाता है। इस अभ्यास को थोड़ा समझना जरूरी है अभिनेता के। क्योंकि, जब अभिनेता को अभ्यास पकड़ जाता हो कि मैं यही हो गया, तो हम जो जी रहे हैं, हम फिर अभिनेता कैसे हो पायेंगे ? राम की लीला

खोये तो राम अभिनेता कैसे हो पायेंगे ? अगर रामलीला में भी सीता खोती हो और रामलीला मे बने राम के भी असली आंसू आ जाते हो—आ जाते हैं कई बार—क्यो न आ जाते होगे ! जब देखनेवालो के आ जाते है, जो कि राम नहीं बने है, जब वे रोने लगते है तो जो सच में राम बना है उसकी स्थिति तो और जरा गहरे मे है ! अगर उसकी सीता खो जाती है और वह रोने लगता हो और वे आंसू थोडी देर के लिए असली आसू हो जाते हो तो हैरानी नहीं है। अभिनेता भी भूल जाता है उन क्षणो मे कि मैं अभिनय कर रहा हूँ, तो हम तो जीवन मे है । वहा यह जानना कि हम अभिनय कर रहे है, बडी कठिन, बडी 'आरडूअस' बात है । लेकिन, जो हम कर रहे है अगर उसे हम ठीक से पहचान ले तो तत्काल दिखायी पडने लगेगा कि यह हम अभिनय कर रहे है । रास्ते पर आप गुजर रहे है और किसी ने कहा, कहिये कैसे हैं, और आप कहते है, बिल्कुल ठीक, और ख्याल मे भी नही आता कि क्या आप कह रहे है ! एक क्षण वही रुक जाय और गौर से देखें, बिल्कुल ठीक है ? तो, तत्काल पता चलेगा कि जो आपने कहा है वह अभिनय वचन था । एक आदमी मिलता है, उसको आप नमस्कार करते है और कहते है कि आपको देखकर बडा आनन्द हुआ । रुक जाय एक क्षण, पीछे लौटकर देखें, सच मे ही आनन्द हुआ है ? तब दिखायी पड जायेगा अभिनय कर रहे है । जिन्दगी के क्षणो मे कभी-कभी जब आप कर्ता होते है, एक क्षण रुक जाय और लौटकर पीछे देखे कि जो आप कर रहे है, वह है ? किसी से कहते है कि मेरे प्रेम का तेरे लिए कोई अन्त नही । तेरे बिना मै जी न सकूगा । लेकिन, कितने प्रेमी मरे है ? फिर, लौट कर जरा पीछे देखे । नही जी सकेंगे ? और, अभिनय साफ हो जायेगा । जिन्दगी मे चारो तरफ मौके खोल लें और रुक जाय । एक क्षण को पीछे देखे और देखे कि आप जो कर रहे है, जो कह रहे है, वह क्या है ? अभिनय आप तभी समझ पायेगें जब अभिनय दिखायी पडने लगे ।

मै नसरुद्दीन की कहानी निरन्तर कहता रहता हूँ । एक सम्राट की पत्नी से उसका प्रेम है । रात चार बजे वह विदा हो रहा है और दूसरे गांव जा रहा है। तो, उससे कहता है कि तेरे बिना मैं कैसे रह सकूगा ? एक पल बिताना मुश्किल हो जायेगा । तुझसे ज्यादा सुन्दर, तुझसे ज्यादा प्रेमी कोई भी नहीं है ! वह स्त्री उसकी यह बाते सुनकर रोने लगी है । नसरुद्दीन ने लौट कर देखा, उसने कहा कि माफ कर, ये बाते मैंने दूसरी स्त्रियो से भी कही हैं । उनसे भी मैंने यही कहा है कि तेरे बिना पल भर न रह सकूगा; लेकिन मैं हूँ और मै रहूगा, क्योंकि कल मुझे फिर किसी स्त्री से कहने का मौका

आ सकता है। यह मैंने भी सभी स्त्रियों से कहा है कि तुमसे ज्यादा सुन्दर कोई भी नहीं है। वह स्त्री बहुत नाराज हो जाती है। वह बहुत दुखी हो जाती है। नसरुद्दीन कहता है, मैं तो सिर्फ मजाक करता हूँ। वह फिर खुश हो जाती है।

यह जो आदमी है नसरुद्दीन, यह आदमी समझ सकता है कि जिन्दगी अभिनय है। यह आदमी पहचान सकता है कि जिन्दगी अभिनय है, लेकिन इस स्त्री को पहचानना बड़ा मुश्किल पड़ जायेगा कि जिन्दगी अभिनय है। ऐसा नहीं है कि अभिनय होने से जिन्दगी कुछ खराब हो जाती है। सच तो यह है कि अभिनय होने से जिन्दगी बड़ी कुशल हो जाती है, इसलिए कृष्ण कहते हैं योग तो कर्म की कुशलता है। असल में जब जिन्दगी अभिनय हो जाती है तो दंश चला जाता है, पीड़ा चली जाती है, कांटा चला जाता है, फूल ही रह जाते हैं। जब अभिनय ही करना है तो क्रोध किसलिए करना है। पागल हैं? जब अभिनय ही करना है तो प्रेम का अभिनय क्या नहीं किया जा सकता है? फिर, क्रोध के अभिनय का क्या प्रयोजन है? जब सपना ही देखना है तो दीनता, दरिद्रता का क्यों देखना, सम्राट होने का देखा जा सकता है। अपने कृत्यों को झांक-झांककर देखने से धीरे-धीरे पता चलता है कि मैं अभिनय कर रहा हूँ। पिता का अभिनय कर रहा हूँ, बेटे का अभिनय कर रहा हूँ, मां का अभिनय कर रहा हूँ, पत्नी का अभिनय कर रहा हूँ, पति का अभिनय कर रहा हूँ। प्रेमी का अभिनय कर रहा हूँ, मित्र का अभिनय कर रहा हूँ। हमें दिखायी पड़ना चाहिए। आप एकएक कृत्य को 'एटामिकली', एक-एक कृत्य को अणु में पकड़ लें और देखें कि क्या हो रहा है, और आप बहुत हसेंगे। हो सकता है, बाहर आंसू गिर रहे हों और भीतर हंसी आनी शुरू हो जाय कि यह मैं क्या कर रहा हूँ। हो सकता है, बाहर कुछ और हो रहा है, भीतर कुछ और शुरू हो जाय। तत्काल आप इस स्थिति को समझ पाने में समर्थ होते चले जायेंगे। जैसे-जैसे यह साफ होगा, वैसे-वैसे जिन्दगी अभिनय हो जायेगी।

एक जेन फकीर मर रहा है। मरते वक्त उसने मित्रों से पूछा कि मुझे जरा कुछ बताओ। क्योंकि, मरे तो बहुत लोग है, मैं भी मरना चाहता हूँ; लेकिन कोई नये ढंग से मरें, कब तक पुराने ढंग से मरते रहेंगे? उन्होंने कहा, आप कैसी बातें कर रहे हैं, मरना कोई मजाक है? उस फकीर ने कहा, तुमने कभी किसी आदमी को चलते-चलते मरते हुए सुना है? चल रहा हो और मर गया हो। लोगों ने कहा, ऐसा तो सुना नहीं, फिर भी एक बूढ़े ने कहा कि ऐसी एक कहानी मैंने पढ़ी है कि एक दफा एक फकीर चलता हुआ मर गया। उस मरने वाले फकीर ने कहा कि फकीर ही चलते हुए मर सकता है। मर गया होगा। छोड़ो इस ढंग को। तुमने

कभी किसी को खड़े-खड़े मरते हुए सुना है? किसी ने कहा, हां मुझे ऐसा पता है कि एक आदमी एक बार खड़े-खड़े मर गया था। तो, उस फकीर ने कहा कि जो ढंग से जिन्दा रहा हो वह ढंग से मरता है, मर सकता है। अच्छा, तुमने कभी यह सुना है कि कोई आदमी शीर्षासन करते हुए मर गया हो? उन्होंने कहा, न सुना, न सोच सकते हैं। शीर्षासन करते कोई कैसे मरेगा? तो, फकीर ने कहा कि फिर यह ढंग अपने लिए ठीक रहेगा। वह शीर्षासन लगाकर खड़ा हो गया और मर गया। अब बड़ी मुसीबत हुई उस मनुष्य की। सब तरफ से जांच-पड़ताल की गयी उसकी; पाया कि न सांस का कोई पता है, न धड़कन का कोई पता है। वह मर ही गया, लेकिन शीर्षासन कर रहा हो मुर्दा, तो कौन उतारे? फिर, पीछे कोई झंझट भी खड़ा हो! तब किसी ने कहा, इसकी बहन भी साध्वी है और वह पास की एक 'मौनेस्ट्री' में रहती है। जब भी यह कोई उपद्रव करता था तो उसको लोग बुलाकर लाते थे इसको ठीक करवाने के लिए। तो, उसको बुला लिया जाय। वह बड़ी बहन कोई नब्बे वर्ष की बूढ़ी औरत थी। वह आयी। उसने अपना डण्डा जोर से बजाया और कहा कि जिन्दगी भर मजाक की, अब मरते वक्त भी छोड़ते नहीं हो? ढंग से मरो, जैसा कि सदा लोग मरते रहे हैं। वह आदमी नीचे उतर कर बैठ गया और उसने कहा कि भई, नाराज मत होओ, हम ढंग से मरे जाते हैं, हमें क्या फर्क पड़ता है। वह आदमी बैठ गया और मर गया। उसकी बहन ने लौट कर भी नहीं देखा उसे फिर। वह डण्डा लेकर वापस चली गयी।

अब यह जो आदमी है, अगर मृत्यु के क्षण में अभिनय कर सकता है तो इसकी पूरी जिन्दगी एक अभिनेता की जिन्दगी है। इसको मैं कहूंगा, यह निष्काम कर्म है। तब, सब खेल हो जाता है। तब, जिन्दगी एक खेल है। तब, हम सारी चीजों को खेल की तरह ले सकते हैं। लेकिन, हम पहचानेंगे अपने भीतर के अभिनेता को अपने कृत्यों में, तभी यह समझ पायेंगे। आप अभिनय कर न सकेंगे, आप अभिनय कर ही रहे हैं। इस सत्य को पहचानना है।

यह नहीं कहते कृष्ण कि तुम अभिनय करो। अगर कोई अभिनय करेगा तो अभिनय करने में कर्ता बन जायेगा और गम्भीर हो जायेगा। क्योंकि, कर्ता तो रहेगा ही वह, अभिनय का कर्ता हो जायेगा। कृष्ण यह कह रहे हैं, तुम जो करते हो उसे मैं जानता हूँ कि वह अभिनय है। तुम भी जानो, तुम भी पहचानो, तुम भी खोजो और जिस दिन दिख जाय कि वह अभिनय है, उस दिन तुम करते हुए भी अकर्ता हो जाओगे।

फिर, दो हिस्सों में उन्होंने बांट दिया—निष्काम कर्मी को और संन्यासी को। वह अपने-अपने ढंग की बात है, वह किसकी क्या पसन्द है उसकी बात है। कोई

करते हुए न करने वाला हो जायेगा, कोई न करते हुए करने वाला हो जायेगा। दो ही तरह के लोग हैं जगत मे। वह अपने 'टाइप' की बात है। जैसे, मैं मानता हूँ कि पुरुष के लिए आसान पड़ेगा कि वह करते हुए न करने वाला हो जाय, स्त्री के लिए आसान पड़ेगा कि वह न करने वाली होती हुई करने वाली हो जाय। उसके 'टाइप' के फर्क हैं। स्त्री का जो चित्त है वह 'पैसिव' है। पुरुष का जो चित्त है वह 'एक्टिव' है। पुरुष चित्त करने वाले का है। स्त्री चित्त न करने वाले का है। स्त्री को अगर कुछ करना हो तो वह न करने के ढग से करती है। पुरुष को कुछ न भी करना हो तो वह करने वाले की तरह हमला कर देता है। मोटा विभाजन कर रहा हूँ। मोटा इसलिए कहता हूँ कि पुरुषो मे कई स्त्रैण-चित्त लोग हैं, और स्त्रियो मे कई पुरुष-चित्त स्त्रिया हैं। स्त्री कुछ करना भी चाहे तो उसकी सारी व्यवस्था 'न' करने की होगी। अगर वह किसी को प्रेम करती है तो भी दिखाना भी नही चाहेगी कि प्रेम करती है। प्रकट भी नही करना चाहेगी कि प्रेम करती है। सब तरफ से छिपायेगी। इस प्रेम को वह न करना बनायेगी। और, पुरुष अगर प्रेम न भी करता हो तो भी वह इतना उपाय करके प्रकट करेगा कि चारो तरफ से घेर लेगा और प्रेम की वर्षा कर देगा कि मैं प्रेम करता हूँ। दो ही तरह के चित्त है जगत मे—स्त्रिया और पुरुष मैं नही कह रहा हूँ, स्त्री-चित्त और पुरुष-चित्त की बात कर रहा हूँ। कृष्ण ने इन दो चित्तो को ध्यान मे रखकर ही दो हिस्से कर दिये। सन्यास का तो मतलब एक ही है, हिस्से दो हैं। अगर स्त्रैण-चित्त का प्रतीक्षारत व्यक्तित्व समर्पण करनेवाला, खोनेवाला, 'पैसिव माइड' इस दिशा मे जायेगा तो न करना ही उसकी व्यवस्था होगी। और, न करते हुए के बीच अपने को कर्ता जानना उसका अनुभव होगा। इसलिए, स्त्री कभी 'इनीसिएटिव' नही लेती किसी चीज का। कोई पहल नही करती। और पुरुष-चित्त, 'एक्टिव माइड' की व्यवस्था इसकी विपरीत होगी।

ये जो चित्त के दो विभाजन हैं, इस विभाजन के कारण दो हिस्से हैं—करते हुए न करता हुआ जानना, न करते हुए करता हुआ जानना। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

प्रश्न : आचार्यजी, एक तकलीफ और पैदा हो गयी। जैसे, आज 'प्राइवेट सेक्टर' है। अगर हमने प्राइवेट सेक्टर को नष्ट कर दिया तो 'इनिसिएटिव' खत्म हो जाता है। और, 'इनिसिएटिव' खत्म हो जाने पर गति रुक जाती है। तो, अनासक्ति में उतर जाने पर या निष्काम में उतर जाने पर या कर्म संन्यास में उतर जाने पर ऐसा लगता है कि जो स्फूर्ति है, जो

'इलिसिएटिव' हैं वह सारी चीज 'कन्वर्ट' हो जाती है जाकर निष्क्रियता में—कहीं ऐसी बात नहीं हो जाय ?

उत्तर : ऐसा हो सकता है, अगर उल्टा व्यक्तित्व हो। जैसा मैंने कहा, दो तरह के व्यक्तित्व है। मैने कहा, एक व्यक्तित्व जिसको स्त्रैण व्यक्तित्व कहे, जो कि न करते हुए भी करने वाले का है। अगर स्त्रैण व्यक्तित्व सन्यास हो जाय तो निष्क्रियता आ जायेगी, क्योंकि वह उस व्यक्तित्व का स्वभाव नहीं है। दूसरा, जैसा मैंने कहा पुरुष व्यक्तित्व, जो कि करने वाले मे ही न करने वाले को जान सकता है। करेगा तो सही। करना तो उसका जीवन ही होगा। अब इसके भीतर वह जान सकता है कि मैं अकर्ता हूँ। यह जाना जा सकता है। अगर ऐसा व्यक्ति न करने की दुनिया मे उतर जाय और फिर जानना चाहे कि मैं कर्ता हूँ तो निष्क्रिय हो जायेगा। निष्क्रियता फलित होती है विपरीत व्यक्तित्व के कारण, इसलिए बहुत साफ-साफ चुनाव जरूरी है, और प्रत्येक व्यक्ति को समझना जरूरी है कि उसका 'टाइप' क्या है। अपने से उल्टे को चुनने से कठिनाइया पैदा होती है। अपने से उल्टे को चुनकर सिर्फ एक ही फल हो सकता है कि हमारा समस्त जीवन क्षीण हो जाय। उल्टे भर को चुनने की भूल न हो तो कर्म फैलेगा, बड़ा होगा, प्रखर हो जायेगा, प्रखरता आयेगी। निखर जायेगा कर्म। क्योंकि, पुरुष चित्त का कर्म अगर कही से भी बाधा पाता है तो उसके कर्ता होने से बाधा पाता है। अगर कर्ता विदा हो जाय और सिर्फ कर्म ही रह जाय तो कर्म की गति का अनुमान ही लगाना मुश्किल है—पूर्ण गति को उपलब्ध हो जायेगा, क्योंकि कर्ता होने मे जितनी शक्ति खर्च होती थी वह भी अब कर्म को मिलेगी। कर्म पूर्ण हो जायेगा, 'टोटल एक्ट' पैदा हो जायेगा। स्त्री को कर्म करने मे जितनी कठिनाई पडती है अगर उससे मुक्ति मिल जाय और वह अपने अकर्म मे पूरी राजी हो जाय तो उसके अकर्म, उसके न करने से विराट कर्म का जन्म होगा। क्योंकि सारी शक्ति उसको उपलब्ध हो जायेगी। ढग मे फर्क होगे। लेकिन हम अक्सर भूल मे पड जाते है। हम अक्सर अपने से विपरीत व्यक्तित्व को चुन लेते है। उसका भी कारण आप समझ ले।

हमारी पूरी जिन्दगी मे आकर्षण विपरीत का होता है, 'दी अपोजिट' का। पूरी जिन्दगी मे पुरुष स्त्री को पसन्द करता है, स्त्री पुरुष को पसन्द करती है। अध्यात्म मे यही उपद्रव बन जाता है। उसमे भी हम विपरीत से चुन लेते है। अध्यात्म विपरीत की यात्रा नही है, अध्यात्म स्वभाव की यात्रा है। अध्यात्म उसका पाना नही है जो आकर्षक है, अध्यात्म उसका पाना है जो मैं हूँ ही। लेकिन, जीवन की यात्रा मे विपरीत आकर्षक है, यही भूल हो जाती है।

मैंने एक कहानी सुनी है कि एक छोटे से द्वीप पर, सागर के अनजान किसी कोने मे, लोग एक बार बिल्कुल निष्क्रिय हो गये और तामसी हो गये। उन्होने सब काम-धाम बन्द कर दिया। जो मिल जाता, खा पी लेते, पडे रहते, सोये रहते। उस द्वीप के ऋषि बडे चिन्तित हुए, उन्होने कहा कि अब क्या करे? लोग सुनते ही नही। तुम तामसी हो गये हो, यह भी तो सुनने कोई नही आता। ऋषि बहुत डोडी भी पीटते तो पीट के आ जाते, लेकिन कोई आता नही सुनने उनको। कोई रास्ता न सूझे। गाव धीरे-धीरे मरने लगा, सिकुडने लगा। बडी कठिनाई हो गयी, क्या किया जाय, क्या न किया जाय? गाव के एक बहुत वृद्ध आदमी से जाकर उन्होंने सलाह ली। उसने कहा, अब एक ही उपाय बचा है कि पास मे एक द्वीप है, सब स्त्रियो को उस पर भेज दो, पुरुषो को इस पार रहने दो। उन्होने कहा, इससे क्या होगा? वह बोला, वह जल्दी नाव बनाने मे लग जायेगे। उधर स्त्रिया भी जल्दी तैयारी मे लग जायेगी, इनको बाटो। अब इनका पास पास होना ठीक नही है। विपरीत को विपरीत ही खडा कर दो, फिर जल्दी सक्रियता सूझने लगेगी। जवानी मे आदमी सक्रिय इसीलिए होता है, बुढापे मे निष्क्रिय इसीलिए हो जाता है। और कोई कारण नही है। जवानी मे पुरजोश उसमे स्त्रीत्व और पुरुषत्व होता है। वह दोनो नाव बनाने मे लग जाते है। यात्राए करने मे लग जाते है। बुढापा आते आते सब थक जाता है। स्त्री पुरुष को जान लेती है, पुरुष स्त्री को जान लेता है। विपरीतता कम हो जाती है। वह जो 'अपोजिट' का आकर्षण है, परिचित होने से विदा हो जाता है। बुढापे मे आदमी शिथिल हो जाता है।

जिन्दगी के सहज नियम मे विपरीत आकर्षक है। अध्यात्म के सहज नियम मे स्वभाव आकर्षक है, विपरीत नही। इसीलिए भूल होती है। इसलिए, अध्यात्म जिन जिन मुल्को मे फैलता है वह निष्क्रिय हो जाता है। यह मुल्क हमारा निष्क्रिय हुआ। और उसका कुल कारण इतना है कि विपरीत का आकर्षण वहा भी खीच कर ले गये। वहा जिसे पुरुषगत साधना चुननी चाहिए थी उसने स्त्रीगत साधना चुन ली और जिसे स्त्रीगत साधना चुननी चाहिए थी उसने पुरुषगत साधना चुन ली। दोनो मुश्किल मे पड गये। पूरा मुल्क निष्क्रिय हो गया। जिसको मीरा होना चाहिए वह महावीर हो गया, जिसको महावीर होना चाहिए था वह झाझ मजीरा लेकर मीरा हो गया। वही दिक्कत हो गयी। इसलिए, भविष्य के अध्यात्म की जो सबसे बड़ी वैज्ञानिक प्रक्रिया मेरे ख्याल मे आती है वह यह है कि हम साफ इस सूत्र को करे कि 'बायोलाजी' का जो नियम है वह 'स्प्रीच्युअलिटी' का नियम न हो। जीव शास्त्र जिस आधार से चलता है वह विपरीत का आकर्षण है। अध्यात्म

विपरीत का आकर्षण नही है, स्वभाव मे निमज्जन है । वह दूसरे तक पहुचना नही है, अपने तक पहुचना है । लेकिन, जिन्दगी का अनुभव बाधा डालता है ।

मैंने सुना है कि जब पहली दफा बिजली आयी तो फ्रायड के घर एक आदमी मेहमान हुआ । उसने कभी बिजली नही देखी थी । उसने तो हमेशा लालटेन देखी थी, दिया देखा था । उसको सुलाकर फ्रायड कमरे के बाहर चला गया । वह बडी मुश्किल मे पडा, प्रकाश मे नीद न आये । उसने सीढ़िया लगाकर किसी तरह फूकने की कोशिश की; लेकिन फूकने से बिजली बुझी नही । अब वह आदमी भी क्या करे, उसकी कोई गलती नही । उसका एक ही अनुभव था कि दिये फूकने से बुझ जाते है । उसकी परेशानी का अन्त नही । सामने बटन लगा है, लेकिन बटन से कोई सम्बन्ध नही है। उसके चित्त मे बटन कही दिखायी ही नही पडता। आखिर अनुभव ही तो हमे दिखलाता है। वह सारे कमरे मे सब तरह की खोज करता है कि माजरा क्या है ? चढकर बल्ब को सब तरफ से देखता है कि कहा से द्वार है जिसमे से फूक मार दू । कही कोई द्वार नही मिलता। नीद आती नही, करवट बदलता है, लेकिन पुराने अनुभव से ही जीता है । डर लगता है कि किसी से जाकर कहू तो लोग कहेगे कि ऐसे नासमझ कि तुम्हे दिया बुझाना नही आता ? पूछने मे भी भयभीत है । सुबह जब उठता है और फ्रायड कमरे मे आता है तो देखता है बिजली जली है । वह पूछता है कि क्या बिजली बुझायी नही ? उसने कहा, बुझायी तो बहुत, बुझी नही । अब तुमने पूछ ही लिया तो निवेदन कर दू । रात इसी को बुझाने मे बीती । क्योकि, इसके जलते नीद नही आती और यह है कि बुझती नही । फ्रायड ने कहा, पागल हुए हो ? यह रहा बटन । लेकिन, उस आदमी के अनुभव मे बटन का कोई सवाल नही उठता था । उस आदमी को हम दोषी नही ठहरा सकते ।

हमारी जिन्दगी भर का अनुभव विपरीत के आकर्षण का अनुभव है । इसलिए, जब हम अध्यात्म के जगत मे पहुचते है, जहा कि यात्रा बिल्कुल बदल जाती है, हम उसी अनुभव से दिये फूकते चले जाते है, बटन का हमे ख्याल नही होता । यह भूल बडी लम्बी है । और बडी पुरानी है । इसलिए, जिस मुल्क मे अध्यात्म प्रभावी हो जाता है वह निष्क्रिय हो जाता है। और, जिस मुल्क मे सेक्स प्रभावी होता है वह सक्रिय होता है । इसलिए, दुनिया की सभी सक्रिय सभ्यताए कामुक सभ्यताए होती है। और, दुनिया की सभी निष्क्रिय सभ्यताए आध्यात्मिक सभ्यताए होती हैं । ऐसा होना आवश्यक नही है । ऐसा अब तक हुआ है । इसलिए जिस मुल्क में मुक्त काम हो जायेगा, 'फ्री सेक्स' होगा उस मुल्क की 'एक्टीविटी' एकदम बढ़

जायेगी। उसकी 'एक्टीविटी' का हिसाब न रहेगा। अगर हम प्रकृति मे चारो तरफ नजर डाले तो 'एक्टीविटी' सेक्स से ही पैदा होती है। वसन्त मे फूल खिलने लगते हैं, और किसी कारण से नही। पक्षी गीत गाने लगते है, और किसी कारण से नही। पक्षी घोसले बनाने लगते है किसी और कारण से नहीं। सबके पीछे काम और 'सेक्स' की ऊर्जा है। पक्षी वह घोसला बना रहा है जो उसने कभी बनाया नही। उस अण्डे को रखने की तैयारी कर रही है मादा, जो उसने कभी रखा नही। लेकिन सब तरफ गुनगुन हो गयी है। सब तरफ गीत चल रहा है, सब तरफ भारी क्रिया पैदा हो गयी है। वह 'बायोलाजिकल एक्टिविटी' है। आदमी भी अभी एक ही तरह की 'एक्टिविटी' जानता है 'बायोलजिकल'। इसलिए, जिन मुल्को मे सेक्स स्वतन्त्र है उन मुल्को मे मकान आकाश को छूने लगेगे। वह घोसला बनाने का ही विस्तार है, कोई और बडी बात नही है। जिन मुल्को मे मुक्त होगा काम उन मुल्को मे नाच, रग, गीत पैदा हो जायेंगे, रग-बिरगे कपडे फैल जायेगे। वह पक्षियो के गीत और मोर के पख का विस्तार है। कोई बहुत अन्तर नही है। जिन मुल्को मे हम कहेगे कि हम जीव शास्त्र के विपरीत चलते है और नियम जीव शास्त्र का ही मानेगे, विपरीत मे आकर्षित होगे वहा सब उदास शून्य हो जायेगा। वहा मकान झोपडे रह जायेगे जमीन से लग जायेगे, वहा सब गतिविधि क्षीण हो जायगी, वहा कोई गीत नही गायेगा, गीत गाता हुआ आदमी अपराधी मालूम पडेगा, वहा रग-बिरगे कपडे खो जायेगे, वहा सौदर्य खो जायेगा। वहा सब उदास, दीन-हीन और क्षीण हो जायगा।

मेरा अपना मानना यह है कि दोनो के अपने नियम हैं। और, ठीक पूरी सस्कृति दोनो नियमो पर खडी होती है। ठीक सस्कृति मुक्त काम होगी, काम मे आनन्द लेगी, काम मे उल्लसित होगी तो क्रिया होगी। विराट क्रिया का जाल फैलेगा। और, ठीक अध्यात्म, ठीक टाइप के चुनाव से अगर होगा तो आध्यात्मिक क्रिया का जाल फैलेगा। कृष्ण ठीक अपने टाइप मे है। बुद्ध अपने टाइप मे है, महावीर अपने टाइप मे है। इसलिए, कृष्ण एक तरह की क्रिया करते है, लेकिन ऐसा नही है कि बुद्ध कोई क्रिया नही करते। बुद्ध का जीवन भी क्रिया का विराट जाल है। महावीर भी एक क्षण शान्त नही बैठे है। चालीस वर्ष सतत्, एक गाव से दूसरे गाव भाग रहे है, भाग रहे हैं। युद्ध पर लडने वह नही जाते है, लेकिन किसी और बडे विराट युद्ध मे वह सलग्न है। किसी चीज को तोडने, मिटाने बनाने मे वह सलग्न है। बुद्ध बासुरी नही बजाते, लेकिन बुद्ध की वाणी मे किसी और बडी बासुरी का स्वर है। इससे कोई अन्तर नही पडता। लेकिन, बुद्ध ने अपना 'टाइप' पा लिया।

प्रामाणिक रूप से बुद्ध ने वह पा लिया जो वह हो सकते हैं, वह हो गये हैं। कृष्ण ने पा लिया, जो वह हो सकते हैं, वह हो गये हैं। पीछे चलने वाले साधक अक्सर टाइप की भूल मे पडते है। 'टाइप' का कन्फयूजन'—इसकी मैने पीछे बात की, वह वही मतलब है, "स्वधर्मे निधन श्रेय"। अपनी निजता मे मर जाना श्रेयस्कर है और दूसरे के धर्म को स्वीकार कर लेना भयावह है।

टाइप समझने मे बहुत कठिनाई नही है। एक तो रास्ता यह है कि जो तुम्हे आकर्षित करता हो, समझना वह तुम्हारा 'टाइप' नही है। सीधा सूत्र है। वह तुम्हारा 'टाइप' नही है। उससे बचना। उससे सावधान रहना। और, जो तुम्हे विकर्षित करता हो, उस पर जरा चितन करना, वह तुम्हारा 'टाइप' होगा। अब यह बडी मुश्किल की बात है। जो तुम्हे विकर्षित करता हो, 'रिपल्सिव' सिद्ध हो वह तुम्हारा 'टाइप' है। जैसे, पुरुष कैसे पहचाने कि मैं पुरुष हूँ? अगर पुरुषो के प्रति उसे कोई प्रेम लगाव पैदा न होता हो, वह पहचान ले। और, क्या रास्ता है? पुरुष उसे आकर्षित नही करते, वह विकर्षक है। स्त्री कैसे समझे कि वह स्त्री है? स्त्री को देखकर ही दिक्कत होती हो और अडचन पैदा हो जाती हो। दो स्त्रियो को पास रखना बडी कठिन बात है। वह विकर्षक है, वह एक दूसरे के लिए आकर्षक नही है, 'रिपल्सिव' है। एक दूसरे को हटाती है। एक दूसरे की तरफ उनकी आकर्षण की धारा नही बहती, विकर्षण की धारा बहती है। इसलिए, दो स्त्रियो को साथ रखने से बडी कठिनाई और कुछ नही है। जो तुम्हे आकर्षित करे, बस समझ लेना कि तुम्हारा 'टाइप' नही होगा। जो तुम्हे विकर्षित करे, वह तुम्हारा टाइप होगा। यह बडी कठिन और जटिल बात है। और, इसलिए बडे मजे की बात है। आमतौर से जिन चीजो की तुम निन्दा करते हो और जिनके तुम खिलाफ हो वह तुम्हारी होगी। वह तुम्हारे भीतर होगी। जो आदमी दिन-रात सेक्स का विरोध करता है उसकी खबर मिलती है कि उसके भीतर सेक्सुअलिटी है। यह बडा जटिल है। लेकिन, ख्याल मे ले लिया जाय तो बहुत आसान हो जायेगा। जो आदमी दिन-रात धन की निन्दा करता हो, जानो कि वह धन लोलुप है। जो आदमी ससार मे भागता हो, जानना कि ससारी है। उसके टाइप का मैं कह रहा हूँ। आपका विपरीत जो है वह आपके लिए आकर्षक होता है। इसलिए, जो आपको आकर्षित करे, समझ लेना कि वह आपका टाइप नही है।

प्रश्न : कभी यह आकर्षित करे, कभी वह आकर्षित करे तो ?

उत्तर : तो समझना कि तुम 'कन्फयूज टाइप' हो। उसका और कोई मतलब नहीं होता।

प्रश्न : समान व्यसन हो तो मैत्री हो जाती है ?

उत्तर . बहुत-सी बातें इसमे ख्याल मे लेनी पड़ेंगी। समान व्यसन की जो मैत्री है वह एक ही टाइप के लोगो मे भी हो सकती है। लेकिन,समान व्यसन उनकी मैत्री का आधार होगा। उनके बीच कोई मैत्री नही होगी। व्यसन ही उनकी मैत्री का सेतु होगा। अगर व्यसन टूट जाय तो मैत्री तत्काल छूट जायेगी। अगर दो आदमी शराब पीते है तो मैत्री हो जाती है। शराब पीने के कारण। एक ही काम दोनो करते है, इसलिए मैत्री हो जाती है। लेकिन, मैत्री नही है कोई भी। क्योकि, मैत्री सदा अकारण होती है। अगर कारण है तो मैत्री नही, सिर्फ 'एसोसिएशन' है, साथ है। साथ और मैत्री मे फर्क है। हम दो आदमी एक रास्ते पर चल रहे है। साथ हो जाता है। यह कोई मैत्री नही है। फिर, मेरी मजिल का रास्ता मुड जाता है अलग, और आपकी मजिल का अलग तो हम अपने रास्तो पर चले जाते है। एक रास्ते पर चलने वाले दो राहगीर जैसे बीच मे साथ हो जाते हैं ऐसे एक व्यसन पर चलने वाले दो लोग साथ हो जाते है। लेकिन, यह मैत्री नही है। सच तो यह है कि मैत्री सदा विपरीत व्यक्तित्वा मे होती है। इसलिए, मैत्री जितनी गहरी होगी उतने विपरीत व्यक्तित्व होगे। क्योकि, वह 'काम्प्लीमेटरी' होते है। मित्र जो है वह एक दूसरे को 'काम्प्लीमेटरी' होते हैं। एक दूसरे के परिपूरक होते है। इसलिए, अक्सर ऐसा होगा कि दो बुद्धिमान लोगो मे मैत्री नही हो सकेगी। वह 'काम्प्लीमेटरी' नही है। उनमे कलह हो सकती है, मैत्री नही हो सकती। अगर बुद्धिमान की किसी से मैत्री होगी तो वह निर्बुद्धि से होगी, वह 'काम्प्लीमेटरी' है। दो शक्तिशाली व्यक्तियो मे मैत्री नही हो सकती। असल मे दो समकक्ष और ठीक एक दिशा से आये हुए व्यक्तियों मे मैत्री कभी नही होती। दो कवियो मे मैत्री मुश्किल है। दो चित्रकारो मे मैत्री मुश्किल है। अगर होगी तो उसके कारण उसके चित्रकार होने से अन्य होगे। क्योकि एक व्यक्ति मे बहुत सी बातें है। दोनो शराब पीते हो यह हो सकती है मैत्री, कि दोनो जुआ खेलते हो यह हो सकती है मैत्री। लेकिन, यह सग साथ है। यह मैत्री नही है। मैत्री का नियम भी विपरीत का ही है। मैत्री प्रेम का ही एक रूप है। इसलिए, मनोवैज्ञानिक तो यह कहते है कि अगर दो पुरुषो में बहुत गहरी मैत्री है तो किसी-न-किसी गहरे अर्थों में वह 'होमोसेक्सुअल' होने चाहिए। अगर दो स्त्रियों मे बहुत गहरी मैत्री है तो वह 'होमोसेक्सुअल' होने चाहिए। एकदम से राजी होना बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन, इसमे सचाइयां हैं। इसलिए, आप देखेंगे कि बचपन जैसी मैत्री फिर बाद मे कभी निर्मित नहीं होती, क्योंकि

बचपन में एक 'फेज होमोसेक्सुअलिटी' का हर आदमी की जिन्दगी मे आता है । लडके, इसके पहले कि लडकियो मे उत्सुक हो, लडको मे उत्सुक होते हैं। लडकिया इसके पहले कि लडको मे उत्सुक हो पहले लडकियो मे उत्सुक है । असल मे 'सेक्स मेच्योरिटी' होने के पहले काम की दृष्टि से, यौन की दृष्टि से परिपक्व होने के पहले कोई काम भेद बुनियादी नही होता । लडके लडको मे उत्सुक होते है, लडकिया लडकियो मे उत्सुक होती है । इसलिए, बचपन की सहेलिया और बचपन के मित्र चिरस्थायी हो जाते है । 'सेक्स' के जन्म के बाद, जब 'सेक्स' अपने पूरे प्रभाव मे प्रकट होता है तो जो लोग सहज स्वस्थ है, लडके लडकियो मे उत्सुक होना शुरू हो जायेगे । पुरानी मित्रताए और सहेलीपन शिथिल होने लगेगे या याददाश्तें रह जायेगी । धीरेधीरे नयी मैत्रिया बननी शुरू होगी जो 'अपोजिट्स' मे होगी, विपरीत से होगी । हा, बीस•तीस 'परसेंट' लोग नही पार कर पायेंगे इस स्थिति को । उसका मतलब है कि उनकी 'मेटल एज' पिछड गयी । उसका मतलब है कि वह मानसिक रूप से अस्वस्थ है । ऐसा हो सकता है कि एक लडका अट्ठारह बीस साल का हो गया, फिर भी लडकियो मे उत्सुक नही है लडको मे ही उत्सुक है । तो इसकी मानसिक उम्र पिछड गयी । यह मानसिक रूप से बीमार है, इसकी चिकित्सा की जरूरत है । अगर कोई लडकी पच्चीस साल होकर लडकियो मे ही उत्सुक है और लडको मे उत्सुक नही है तो इसके मानस के साथ कुछ बीमारी हो गयी है । कोई दुर्घटना घट गयी है । यह स्वस्थ नही है । इसका यह मतलब नही है कि बाद मे मित्रताए नही होगी, बाद मे मित्रताए होगी, लेकिन वे 'एसोसिएशन' की होगी । एक ही क्लब मे आप ताश खेलते है, मित्रता हो जायेगी , एक ही धधे मे काम करते है, मित्रता हो जायेगी । एक ही सिद्धान्त को मानते है, कम्युनिस्ट हैं दोनो, तो मित्रता हो जायेगी । एक ही गुरु के शिष्य हो गये है तो मित्रता हो जायेगी, लेकिन ये मित्रताए वैसी मित्रताए नही है जैसा कि यौन जन्म के पहले गहरा एक प्रगाढ मैत्री का सम्बन्ध होता है । इसलिए, बचपन की मैत्री फिर कभी नही लौटती । वह लौट नही सकती । उसका आधार खो गया और विपरीत मे बडा गहरा आकर्षण है ।

अगर आप इसको ऐसा भी समझें तो थोडा ख्याल मे आ जायेगा । आप अक्सर देखेंगे, नगे फकीर के पास कपडो को प्रेम करने वाले लोग पहुचेगे । त्यागी के पास भोगी इकट्ठे हो जायेंगे । जो खूब खाने पीने मे मजा लेते है वे किसी उपवास करने वाले की पूजा मे लगे रहते है । एक बडे मजे की बात है, महावीर नग्न थे और जैन कपडा बेचने का ही काम करते है । कैसे जैनो ने कपड़ा बेचने का काम

चुन लिया ? थोड़ा सोचने जैसा है। जरूर कपड़े को प्रेम करने वाले लोग महावीर के इर्दगिर्द इकट्ठे हो गये। महावीर सब छोड़कर दीन हो गये। हिन्दुस्तान में महावीर को माननेवाले सबसे ज्यादा समृद्ध हैं। यह आकस्मिक नहीं है, यह 'एक्सिडेंटल' नहीं है घटनाए। इनके ऐतिहासिक कारण हैं। असल में महावीर ने जब सब छोड़ा तो जो सबसे ज्यादा प्रभावित होगे वे ही होगे जो सब पकड़े हुए हैं। क्योंकि, वह कहेंगे, अरे, हम एक पैसा नहीं छोड़ सकते और इस आदमी ने सब छोड़ दिया, लात मार दिया! भगवान है यह आदमी! यह जो आकर्षण है चित्त का, यह उनकी पकड़ की वजह से है। त्यागी महावीर से बिल्कुल प्रभावित नहीं होगा। वह कहेगा, क्या किया तुमने, इसमे है ही क्या। राग को लात मार दी तो मार दी, इसमे कौन सी बड़ी बात है। लेकिन, राग को जो समझता था हीरा है, वह फौरन महावीर के चरणो मे सिर रख देगा कि मान गये। आप है आदमी। हम एक पैसा नहीं छोड़ सकते और तुमने सब छोड़ दिया? तुम हमारे गुरु हुए। फिर, जो कुछ नहीं छोड़ सकता उसके मन मे छोड़ने की कामना सदा बनी रहती है। जो कुछ भी नहीं छोड़ सकता वह भी सोचता है कि बड़ा दुख झेल रहा हूँ पकड़ने मे। कब वह दिन आयेगा जब सब छोड़ूँ। तो, जो सब छोड़ देता है वह उसका आदर्श बन जाता है फौरन, कि इस आदमी को वह दिन आ गया जिसकी मुझे अभी प्रतीक्षा है। कोई बात नहीं, अभी मैं तो नहीं हो सका, लेकिन तुम हो गये। हम तुम्हे भगवान तो मान ही सकते हैं। इसलिए, त्यागियो के पास भोगी इकट्ठे हो जायेंगे। यह बड़ा 'मेगनेटिक' काम है जो अपने आप चलता रहता है। इसको अगर हम पहचान ले तो हम सारी दुनिया की चेतना को 'मेगनेटिक फील्ड्स' मे बाट सकते हैं कि किस तरह दुनिया की चेतना आकर्षित होती रहती है, बनती रहती है, मिटती रहती है। अजीब काम चलता रहता है जो दिखायी नहीं पड़ता ऊपर से। तो, जब भी आप किसी से आकर्षित हों तो एक बात पक्की समझ लेना कि इस आदमी से बचना। यह आपका 'टाइप' नहीं है। यह उल्टा 'टाइप' है। 'काम्प्लीमेंटरी' है। अध्यात्म की यात्रा मे सहयोगी न होगा, ससार की यात्रा मे साथी हो सकता है। अध्यात्म की यात्रा मे आपको अपनी ही खोज करनी पड़ेगी स्वधर्म की, मैं कौन हूँ। वह खोज हो जाय तो आप जीवन को बिना छोड़े, गति को बिना छोड़े, कर्म को बिना छोड़े अकर्म को उपलब्ध हो जायेंगे। ससार को बिना छोड़े सत्य को उपलब्ध हो जायेंगे। सब जैसा है वैसा ही रहेगा, सिर्फ आप बदल जाते हैं। और, जिस दिन आप बदल जाते हैं उस दिन सब बदल जाता है। क्योंकि, जो सब दिखायी पड़ता है वह आपकी दृष्टि है।

प्रश्न . श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यदि तू सुख-दुख, लाभ-हानि, जय-पराजय को समान समझकर युद्ध करेगा तो तू पाप को नहीं, स्वर्ग को उपलब्ध होगा। यह क्यों और कैसे सम्भव है? क्या हिंसा तब हिंसा की घटना न रह जायेगी?

उत्तर इसमे दो तीन बाते ख्याल मे लेनी चाहिए। पहली तो बात यह कि कृष्ण कहते है कि हिंसा एक असत्य है जो हो नही सकती। भ्रम है, जो सम्भव नही है कि कोई मारा जा सकता है। 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे'। शरीर के मार डालने से वह नही मरता जो पीछे है। और, शरीर मरा ही हुआ है इसलिए शरीर मरता है, यह कहना व्यर्थ है। कृष्ण पहले तो यह कहते है कि हिंसा असभव है। क्या इसका यह मतलब है कि कोई भी व्यक्ति किसी की हिंसा करे? नही। कृष्ण यह कहते है, हिंसा तो असभव है, लेकिन हिंसक वृत्ति सभव है। तुम किसी को मारना चाहो यह सभव है, कोई नही मरेगा, यह दूसरी बात है। तुम्हारे मारने से कोई मरेगा नही, यह दूसरी बात है। तुम मारना चाहते हो, इसमे पाप है। उसके मरने का तो कोई सवाल नही, वह तो मरेगा नही। हिंसा मे पाप नही, हिंसकता मे पाप है। तुमने मारना चाहा, वह नही मरा, यह दूसरी बात है। तुम्हारी चाह तो मारने की है। कोई नही बचेगा कि कोई बचेगा, इसमे पुण्य नही है। तुमने बचाना चाहा, इसमे पुण्य है। एक आदमी मर रहा है। सब जानते हुए कि मरेगा, तुम बचाने की कोशिश मे लगे हो। तुम्हारी इस बचाने की कोशिश से वह बचेगा नही, मर जायेगा कल, लेकिन तुम्हारी बचाने की कोशिश मे पुण्य है। पाप दूसरे को नुकसान पहुचाने की वृत्ति है, पुण्य दूसरे को लाभ पहुचाने की वृत्ति है।

कृष्ण तीसरी बात कहते है, वह कहते है कि अगर तू पाप और पुण्य, अगर तू सुख और दुख दोनो के पार उठ जा तो फिर न पाप है, फिर न पुण्य है। फिर कुछ भी नही है। फिर न हिंसा है, न अहिंसा है। अगर तू इन दोनो के ऊपर उठ जाय और जान ले कि उस तरफ हिंसा नही होती तो मै नाहक हिंसा के ख्याल से क्यो मारू? और, उस तरफ कोई बचता नही तो मै नाहक बचाने के पागलपन मे क्यो पडू? अगर तू सत्य को देखकर अपनी वृत्तियो को भी समझ ले कि ये वृत्तिया व्यर्थ है, असभव है। अगर तू दोनो बातो को ठीक से समझ ले तो तू स्वर्ग को उपलब्ध हो ही गया। हो जायेगा, ऐसा नही, हो ही गया। क्योकि, हो जाने का क्या सवाल है? ऐसी स्थिति मे जहा सुख और दुख, लाभ और हानि, जय और पराजय, हिंसा और अहिंसा सब समान हो गये है, समत्व उपलब्ध हुआ, ऐसी स्थिति मे स्वर्ग मिल ही गया। अब कुछ स्वर्ग बचा नही पाने को। ऐसी स्थिति मे, ऐसी समत्व बुद्धि को ही कृष्ण योग कहते है।

वे कहते यह हैं कि दो तरह की भ्रांतियां हैं। एक भ्रांति यह कि कोई मरेगा और एक भ्रांति यह कि मैं मारूंगा। एक भ्रांति यह कि कोई बचेगा और एक भ्रांति यह कि मैं बचाऊंगा। यह दोनों ही भ्रांतियां हैं। अगर पहली भ्रांति छूट जाय कि कोई मरता नहीं, कोई बचता नहीं, जो है वह है, अगर यह पहली भ्रांति छूट जाय तो फिर एक दूसरी भ्रांति बचती है। कोई नहीं मरता तो भी मैं मारने की कोशिश करता हूँ तो पाप है। कोई नहीं बचता तो भी मैं बचाने की कोशिश करता हूँ तो पुण्य है। लेकिन, पाप और पुण्य भी अधूरा अज्ञान है। आधा ! आधा अज्ञान बच गया। अगर यह भी चला जाय कि न मैं किसी को बचाता, न कोई बचता, न मैं किसी को मारता, न कोई मरता। अगर यह पूरा ही चला जाय तो ज्ञान है। फिर ऐसे ज्ञान वाला व्यक्ति, जो हो रहा है वह होने देता है। बाहर भीतर कहीं भी जो हो रहा है वह होने देता है। क्योंकि, अब न होने देने का कोई सवाल नहीं है। तब वह 'टोटल एक्सेप्टिबिलिटी' को, समग्र स्वीकार को उपलब्ध हो जाता है। कृष्ण अर्जुन से यही कहते हैं कि तू सब देख और स्वीकार कर और जो होता है होने दे। तू धारा के खिलाफ लड़ मत, तू बह और फिर तू स्वर्ग को उपलब्ध हो जा।



पर्व : अठारह

जीवन के 'रिचुअल्स' और यज्ञ

जन्मबन्धन की प्रतीति से मुक्ति

नपुंसकता का अनुपात

अर्धनारीश्वर

जैन शास्त्रों में स्त्री को मोक्ष नहीं





१८

प्रश्न . साधना जगत में यज्ञो और 'रिचुअल्स' का बहुत उल्लेख है। यज्ञ की बहुत सी विधियां भी हैं। होमात्मक यज्ञ की बात आती है, लेकिन गीता में जपयज्ञ और ज्ञानयज्ञ की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। साथ ही आपने जप पर बात करते हुए अजपा जप के बारे में कहा था। तो, गीता के जपयज्ञ, ज्ञानयज्ञ और अजपा जप पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

उत्तर : जीवन मे 'रिचुअल' की, क्रियाकाण्ड की अपनी जगह है। जिसे हम जीवन कहते हैं वह नब्बे प्रतिशत 'रिचुअल' और क्रियाकाण्ड से ज्यादा नही

है। जीवन को जीने के लिए, जीवन से गुजरने के लिए बहुत कुछ जो अनावश्यक है, आवश्यक मालूम होता है। आदमी का मन ऐसा है। मनुष्य जाति के पूरे इतिहास मे हजारो तरह के 'रिचुअल', हजारो तरह के क्रियात्मक खेल विकसित हुए है। ये सारे-के-सारे खेल अगर गम्भीरता से लिये जाय तो बीमारी बन जाती है। अगर ये सारे खेल खेल की तरह लिये जाय तो उत्सव बन जाते है। जैसे

पहली बार जब अग्नि का आविष्कार हुआ तो सबसे बडे आविष्कारो मे अग्नि का आविष्कार था। आज हमे पता नही कि आदमी ने सबसे पहले अग्नि पैदा की थी। लेकिन, जिसने भी पैदा की हो, उससे बडी क्राति अभी तक नही हो सकी है। बहुत कुछ आदमी ने फिर खोजा है। फिर, न्युटन है, गेलीलियो है, कोपरनिकर है, केपलर है, आइन्स्टीन है, मेक्सब्लाक है और हजारो खोजी है, लेकिन अब तक भी, हमारी अणु की खोज भी, हमारा चाद पर पहुच जाना भी उतना बडा आविष्कार नही जितना बडा आविष्कार उस दिन हुआ था, जिस दिन पहले आदमी ने अग्नि पैदा कर ली थी। आज हमे बहुत कठिनाई होगी यह सोचकर, क्योकि अग्नि आज बिल्कुल सहज बात है। माचिस मे बन्द है, लेकिन सदा ऐसा नही था। फिर, हमारा जो भी विकास हुआ है—मनुष्य का, जैसा मनुष्य आज है उसमे नब्बे प्रतिशत अग्नि का हाथ है। हमारे जो भी आविष्कार हुए है वे सब बिना अग्नि के हो नही सकते थे। उन सबकी बुनियाद मे वह अग्नि का आविष्कर्ता खडा है। स्वभावत, जब पहली बार अग्नि किसी ने खोजी होगी तो हमने अग्नि का भी स्वागत किया था उसके चारो ओर नाच कर। यह जिन्दगी की बिल्कुल सहज घटना थी। अग्नि को और किसी तरह धन्यवाद दिया भी नही जा सकता था। अग्नि ने एक केन्द्रीय अर्थ उस दिन मनुष्य की जिन्दगी मे बना लिया था। मनुष्य के सारे पुराने धर्म किसी न किसी रूप मे अग्नि या सूरज के आसपास विकसित हुए है। रात थी अधकारपूर्ण। खतरनाक पशुओ का डर था। दिन उजाले से भरा था, निर्भय। हमला कोई कर सके, इसके पहले पता चल जाता था। उस समय सूर्य बडा मित्र मालूम हुआ। अन्धकार बडा शत्रु था। सूर्य के साथ सब खतरे तिरोहित हो जाते थे, भय मिट जाते थे। तो, सूर्य परमात्मा की तरह ख्याल मे आया था। और, जब अग्नि का आविष्कार कर लिया तो स्वभावत रात के अन्धकार पर हमारी विजय हो गयी। सूर्य से भी ज्यादा अग्नि प्रीतिकर हो गयी थी। इस अग्नि के आसपास, नाच का, गान का, नृत्य का, प्रेम का, उत्सव का विकसित हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक था। वह विकसित हुआ।

कभी आपने ख्याल किया कि जब यूरी गागरिन पहली बार अतरिक्ष की

यात्रा करके लौटा तो सारी पृथ्वी उत्सव से भर गयी और यूरी गागरिन एक दिन मे विश्वविख्यात व्यक्ति हो गया। ठेठ दूर देहात के गाव मे भी उसका नाम पहुच गया था। लाखो लोगो ने अपने बच्चो का नाम यूरी गागरिन के ऊपर रखा— सारी दुनिया मे, बिना जाति, पाति, धर्म की फिक्र किये हुए। यूरी गागरिन की हैसियत पाने के लिए किसी आदमी को सत्तर अस्सी साल मेहनत करनी पडती है, तब सारी दुनिया उसे जान पाती है। इस आदमी ने कुछ और नही किया, यह सिर्फ पृथ्वी की जो 'आरबिट' है उसको पार कर गया। लेकिन, बडी घटना थी। यूरी गागरिन जहा गया, वहीं लोग दीवाने हो गये उसके दर्शन करने को। बडे नगरो मे कई लोग मरे 'एक्सीडेंट' से जहा यूरी गागरिन गया।

मनुष्य का मन उस सब के प्रति उत्सव से भर जाता है जो नया है, या जिस नये का आगमन होता है। नये बच्चे के जन्म पर भी हम बैण्ड बाजा बजाते और उत्सव से भर जाते हैं। जब भी इस जगत मे नया कुछ पैदा होता है तो हमारा चित्त उत्सव से उसका स्वागत करता है। और, उचित है कि ऐसा हो। क्योकि,जो आदमी नये के स्वागत मे भी उत्सवपूर्ण नही रहेगा उस दिन समझना चाहिए कि आदमी के भीतर कुछ महत्त्वपूर्ण मर गया है। यह मैंने इसलिए कहा कि हम यज्ञ को समझ सके। यज्ञ उन लोगो का आविष्कार था जिनकी जिन्दगी मे अग्नि पहली बार आयी थी। और, इस अग्नि के लिए वे उत्सव मना रहे थे। इसके चारो ओर नाच रहे थे और जो कुछ श्रेष्ठ उनके पास था अग्नि को उन्होंने दिया। क्या दे सकते थे वे ? उनके पास गेहू था उन्होने गेहू दिया। उनके पास सोमरस था, उस दिन भी सुरा थी, वह उन्होने दी। उनके पास जो श्रेष्ठतम गाय होगी वह उन्होने अग्नि को दी। उनके पास जो भी था, वह उन्होंने अग्नि को भेट किया। एक देवता अव-तरित हुआ था जिसने जिन्दगी को सब बदल दिया था। उसके उत्सव मे उन्होने सब यह किया। यह बहुत सहज था। लेकिन, यह बहुत 'सोफिस्टिकेटेड' नही था। यह बिल्कुल ग्रामीण चित्त से उठी हुई बात थी और उस समय ग्राम ही थे जगत मे, ग्रामीण चित्त ही था।

गीता के समय तक ऐसा यज्ञ बेमानी हो गया था, क्योकि गीता के समय तक अग्नि घर घर की चीज हो गयी थी। उसके आसपास नाचना व्यर्थ मालूम होने लगा था। उसमे गेहू फेकना, मत्र पढ़ना सार्थक नही रह गया था। हजारो लोग इसका विरोध कर चुके थे इस बीच की प्रतिक्रिया मे, क्योकि उनको कुछ भी पता नही था कि अग्नि का पहला आगमन जिनकी जिन्दगी मे हुआ था वे उसे भगवान की तरह ही स्वीकार कर सकते थे। उनके लिए वह बडा वरदान थी। इस-

लिए गीता ने फिर शब्दो पर नयी कलमे लगायी। और, कृष्ण ने नये शब्द ईजाद किये ज्ञान यज्ञ। यज्ञ पुराना शब्द था, ज्ञान से उसे जोडा। जैसे अभी विनोबा ने नयी कलम लगायी भूदान यज्ञ। यज्ञ था शब्द पुराना, भूदान से उसे जोडा। कृष्ण के समय तक जीवन काफी 'सोफिस्टिकेटेड', काफी विकसित हुआ था और तब अग्नि के आसपास नाचना अपने मे अर्थपूर्ण नही था। इसलिए, ज्ञान की अग्नि जलाने की बात कृष्ण ने उठायी थी, लेकिन स्वभावत पुराने शब्दो का उपयोग करना पडता है। अब अगर नाचना ही था तो ज्ञान की ज्योति के आसपास नाचना था। अब कुछ भेट भी करना था तो गेहू के दानो से क्या भेट होगी, अपने को ही दान कर देना था। ज्ञान यज्ञ का अर्थ है, ज्ञान की अग्नि मे जो स्वय को जो समर्पित कर देता है। ज्ञान यज्ञ का अर्थ है, ज्ञान की अग्नि मे जो स्वय की अस्मिता और अहकार को जला डालता है। ज्ञान यज्ञ का अर्थ है कि साधारण अग्नि से नही ज्ञान की अग्नि से, जिसमे व्यक्ति जलता है और समाप्त हो जाता है। अग्नि का प्रतीक लेकिन जारी रहा। इसके जारी रहने के पीछे बहुत गहरे कारण थे।

सबसे बडा गहरा कारण जो था वह यह था कि अतीत के मनुष्य की जिन्दगी मे सदा ऊपर की तरफ जाने वाली चीज सिवाय अग्नि के और कोई भी न थी। पानी नीचे की तरफ जाता है। उसे कही से भी डालो, वह नीचे की जगह खोज लेता है। अग्नि के साथ कुछ भी उपाय करो, उसकी लपटे सदा ऊपर की तरफ भागती है। पुराने मनुष्य के समक्ष एक अग्नि भर ऐसी चीज थी, जो सदा ऊपर की तरफ भागती है, ऊर्ध्वगमन ही जिसका स्वभाव है। जिसे हम नीचे की तरफ बहा ही नही सकते। उसकी लपटे आकाश की यात्रा की, अज्ञात की यात्रा की सूचक हो गयी। जमीन के 'ग्रेविटेशन' को तोडने वाली वह पहली चीज मालूम पडी। पृथ्वी की कशिश का अग्नि पर कोई प्रभाव नही। एक कारण तो यह था कि ऊर्ध्वगमन की प्रतीक अग्नि बन गयी। इसलिए, जिन्होने अग्नि की लपटो के आसपास नृत्य किया था, नाचे थे, गीत गाये थे, खुशी प्रकट की थी उन्होने एक प्रतीक के अर्थ मे लिया कि वह दिन होगा जिस दिन अग्नि की लपटो की तरह ऊपर की तरफ यात्रा करेगे। अभी आदमी का मन जैसा है वह सदा नीचे की तरफ यात्रा करता है पानी की तरह। वह नीचे गड्ढे खोजता है। उसे पर्वत शिखर पर भी छोड दो तो बहुत जल्दी खाई मे नीचे आकर विश्राम करने लगता है। अग्नि के आस-पास नाचने वाले ऋषियो ने घोषणा की कि हम ऊपर की तरफ की यात्रा के सूत्र को नमस्कार करते है। और, हम अपने भीतर के प्राणो को अग्नि जैसा बनाना चाहते है कि वे ऊपर की तरफ भागें। यह बडा 'सिम्बालिक', बडा प्रतीकात्मक था।

दूसरी बात अग्नि में और बड़ी खबी की थी, वह और भी गहरी थी कि अग्नि पहले तो ईंधन को जलाती है और फिर खुद ही जल जाती है। पहले ईंधन राख होता है, फिर खुद राख हो जाती है। ज्ञान के लिए यह प्रतीक बड़ा गहरा बन गया। ज्ञान पहले तो अज्ञान को जलाता है, अज्ञान को मिटाता है और फिर ज्ञान ज्ञान को भी मिटा देता है। इसलिए, उपनिषद् कहते हैं, अज्ञानी तो भटकते ही हैं अन्धकार मे, ज्ञानी महाअंधकार मे भटक जाते है। निश्चित ही, यह व्यग्य मे कही गयी बात है उन ज्ञानियो के लिए, जिनके पास उधार ज्ञान है। क्योकि, जिनके पास अपना ज्ञान है, वे तो बचते ही नही। उनके भटकने का तो उपाय नही है। तो, ज्ञान की घटना जिनके जीवन मे घटी उनको दिखायी पड़ा कि ज्ञान की घटना अग्नि जैसी है। पहले अज्ञान जलेगा, फिर ज्ञान भी जलेगा, फिर ज्ञानी भी जलेगा और पीछे तो सिवाय राख के कुछ बचेगा नही सब तिरोहित हो जायेगा। इतना शून्य होने को जो तैयार है वह ज्ञान की यात्रा पर निकल सकता है।

तीसरी बात, अग्नि की लपटे हमने उठती देखी है। थोड़ी दूर तक ही दिखायी पडती है, फिर खो जाती है। अग्नि बहुत थोड़ी दूर तक दृश्य है, इसके बाद अदृश्य हो जाती है। ज्ञान भी बहुत थोड़ी दूर तक दिखायी पडता है। या ऐसा कहे, थोड़ी दूर तक ज्ञान का सम्बन्ध दृश्य से रहता है। और, इसके बाद उसका सम्बन्ध अदृश्य से हो जाता है। फिर, दृश्य खो जाता है, अदृश्य ही रह जाता है। इन सारे कारणो से अग्नि बड़ा ही समथ प्रतीक ज्ञान का बन गयी। और, कृष्ण ज्ञान यज्ञ शब्द का उपयोग कर सके। ये प्रतीक अगर हमारे ख्याल मे हो तो ज्ञान यज्ञ सदा जारी रहेगा। अग्नि के आस-पास निर्मित हुए दूसरे 'रिचुअल' और यज्ञ तो खो जायेंगे, क्योकि वे परिस्थिति से पैदा होते है, लेकिन ज्ञान यज्ञ सदा जारी रहेगा। इसलिए, कृष्ण ने यज्ञ को पहली दफा परिस्थिति से मुक्त करके शाश्वत अर्थ दे दिया। वेद जिस यज्ञ की बात करते थे वह परिस्थिति से बधा था, एक घटना से जुड़ा था। कृष्ण ने उसे उस घटना से मुक्त कर दिया। अब कृष्ण के अर्थ मे ही यज्ञ का प्रयोजन होगा आगे। उसका अर्थ कृष्ण के द्वारा ही निकल सकता है। अब जो कृष्ण के पहले की यज्ञ की बात करता है वह असामयिक, 'आउट आफ डेट', व्यर्थ की बात करता है। उसमे कोई अर्थ नही रह गया, वह बात समाप्त हो चुकी।

कृष्ण जप यज्ञ की भी बात करते है। जप के साथ भी वही राज है जो ज्ञान के साथ है। जप पहले तो दूसरे विचारो को जलायेगा, जब दूसरे विचार जल जायेंगे तो जप का विचार भी जल जायेगा। जो शेष रह जाये वह अजपा स्थिति होती

है। इसलिए उसको भी अग्नि का प्रतीक बनाया जा सकता है, वह भी यज्ञ बनाया जा सकता है। आपके मन मे बहुत विचार है। आप एक शब्द का जप की भाति प्रयोग करते है। सारे विचारो को हटा देते है। एक ही विचार पर आप अपने मन को डोलाते है। एक घडी ऐसी आती है कि यह विचार भी बेमानी हो जाता है कि इसको क्यो दोहराये चले जाना। जब सब विचार ही छूट गये, तो इस एक को क्यो पकडे चले जाना? फिर, यह भी छूट जाता है। फिर, आप जिस स्थिति मे होते है वह अजपा स्थिति है। वहा जप भी नही है। अग्नि ने पहले ईंधन जलाया, फिर खुद भी जल गयी। लेकिन, खतरा है जप के साथ। जैसा कि ज्ञान के साथ खतरा है। खतरे सब चीजो के साथ है। ऐसा कोई भी रास्ता नही है जिस पर न भटका जा सके। ऐसा रास्ता हो भी कैसे सकता है? जो भी रास्ता पहुचा सकता है उस पर यात्री चाहे तो भटक भी सकता है। सब रास्ते इस तरह भटकाने वालो की तरह प्रयोग किये जा सकते है। और, आदमी ऐसा है कि वह सब रास्तो को पहुचने के लिए काम मे कम लाता है, भटकने के ज्यादा काम मे लाता है।

मैने कहा कि ज्ञान यज्ञ है, जैसा कृष्ण कहते है, लेकिन आदमी ज्ञान का अर्थ ले सकता है पाण्डित्य, 'इन्फर्मेशन', सूचनाए, शास्त्र, सिद्धान्त और शब्द मे तथा इनको इकट्ठा कर ले सकता है। तब वह भटक गया। वैसा आदमी ज्ञान को उपलब्ध ही नही हुआ। ज्ञान के नाम से उसने कुछ और ही अपने उपर थोप लिया। और ध्यान रहे, अज्ञान से इतना नुकसान नही है, जितना मिथ्या ज्ञान से है, बासे ज्ञान से है। क्योकि, बासे ज्ञान मे कोई अग्नि नही होती। बासा ज्ञान, समझना चाहिए कि बुझ गये अगारे, बुझे कोयलो की तरह है। उसे कितना ही इकट्ठा कर लो कोई जीवन रूपातरण नही होता है। कोई अगर ज्ञान का यह अर्थ ले ले तो भटकेगा। ऐसे ही जप के साथ भी कठिनाई है। जप का अगर कोई यह अर्थ ले ले कि जप करते-करते ही पहुच जाऊगा, तो गलती मे है। जप करते-करते कोई कभी नहीं पहुचा है। जप का उपयोग ऐसा ही किया जाता है जैसे पैर मे एक काटा लग गया हो और उस काटे को हम दूसरे काटे से निकाल देते है, लेकिन फिर दूसरे काटे पहले वाले काटे के घाव में रख नही लेते सुरक्षित। पहला काटा निकला कि दूसरा बिल्कुल वैसे ही बेकार है जैसे पहला है और दोनो को एक साथ फेंक देते है। लेकिन हो सकता है कोई नासमझ, वह कहे कि जिस काटे ने मेरा काटा निकाला उसको म कैसे फेंक सकता हूँ? वह कहे कि शिष्टता भी तो कम-से-कम

इतना कहती है कि जिस कांटे ने मेरा कांटा निकाला उसको मैं संभाल कर रखूं। तब वह आदमी पागल है। बुद्ध निरन्तर एक कहानी कहते हैं —

गांव में कुछ लोग एक नाव से उतरे। वे बड़े बुद्धिमान हैं। उन्होंने तय किया कि जिस नाव ने हमें नदी पार करायी उस नाव को हम छोड़ कैसे सकते हैं? जिस पर हम बैठकर सवार हुए, अब उचित है कि उसको हम अपने ऊपर सवार करें। तो उन्होंने नाव को अपने सिरों पर उठा लिया और बाजार की तरफ चले। गांव में उनसे लोग पूछने लगे कि पागलो, हमने नाव पर तो बहुत बार लोगों को देखा, लेकिन नाव लोगों पर नहीं देखी। यह बात क्या है? वे सब कहने लगे, तुम तो अकृतज्ञ, तुम्हें 'ग्रेटीटयूट' कुछ पता नहीं। हम जानते हैं अनुग्रह का भाव। इस नाव ने हमें नदी पार करवायी, हम इस नाव को सभार पार करवा के रहेंगे। अब तो सदा यह हमारे सिर पर रहेगी। बुद्ध यह मजाक में कहते हैं कि बहुत लोग हैं जो फिर साधन को इस बुरी तरह पकड़ लेते हैं कि वही साध्य हो जाता है। नदी पार करने को नाव है, सिर पर ढोने को नाव नहीं है। जप का उपयोग किया जा सकता है इस होश के साथ कि वह भी एक कांटा है। और, अगर आपने उसको कांटा नहीं समझा और प्रेम में पड़ गये उसके, तो जो दूसरे विचार आपको भरे हुए थे वह तो हट जायेंगे जप आपको भर देगा। एक आदमी चौबीस घंटे निरर्थक विचारों से भरा हुआ है। और दूसरा आदमी चौबीस घंटे 'राम राम राम राम राम' कर रहा है। इन दोनों के मन पर एक सा तनाव है। और, मजे की बात यह है कि जो आदमी चौबीस घंटे 'राम राम राम राम' कर रहा है उसकी बजाय हो सकता है जो व्यर्थ विचारों से भरा है उसके जीवन में कुछ सार्थकता फलित हो जाय। उसके व्यर्थ विचारों में भी कुछ आ सकता है, इसके पास सिवाय 'राम राम' के कुछ आने को नहीं। यह राम राम छोड़ने को राजी नहीं होगा। यह कहेगा, सब विचारों से छुटकारा दिलाया राम राम ने। अब मैं कैसे छोड़ सकता हूँ इसे? अब मैं नाव को सिर पर रखूंगा।

जप को यज्ञ कहना बड़ी 'सीक्रेट' बात है। कृष्ण जब जप को यज्ञ कहते हैं तो वह कहते हैं, ध्यान रखना, जप भी अग्नि की भांति है। पहले दूसरे को जलायेगा, फिर खुद को जलायेगा। और, जब खुद को जला ले तभी समझना कि सार्थक हुआ है। तो, हम शब्द का उपयोग कर सकते हैं दूसरे शब्दों को बाहर करने में लेकिन फिर उस शब्द को भी बाहर करना पड़ेगा। लेकिन मोहग्रस्त हुए और उस शब्द को सम्हाल कर रखा तो जप यज्ञ न रहेगा, जप सम्मोहन हो जायेगा। फिर हम जप शब्द से ही 'ओबसेस्ड' हो गये। फिर हम उसी में पीड़ित होकर रहने

लगेंगे। और, वही हमारा पागलपन बन जायेगा। इसलिए, जो लोग जप करते वक्त जप मे लीन हो जाते हैं वे लोग फिर जप को कभी न छोड सकेंगे क्योकि लीनता मे एक गहरा सम्बन्ध स्थिर हो जाता है। जो लोग जप करते समय साक्षी बने रहते हैं, जो ऐसा अनुभव नही करते कि मैं जप कर रहा हूँ, बल्कि ऐसा अनुभव करते है कि जप मन से हो रहा है और मैं देख रहा हूँ वे एक दिन जप के पार जा सकते है, तब जप यज्ञ हो जाता है। क्योकि, तब जप अग्नि की भाति हो जाता है। पहले वह दूसरे विचारो को जला देता है, फिर खुद जलकर राख हो जाता है। आप जब खाली रह जाते है शून्य—आप ध्यान को, समाधि को उपलब्ध होते है। इसलिए, कृष्ण ने ज्ञान और जप दोनो के साथ यज्ञ का प्रयोग किया। यज्ञ का प्रयोग अग्नि के केन्द्र पर है और अग्नि के प्रतीक को हम समझ ले तो ये दोनो बाते भी साफ समझ मे आ सकती है। असल मे जो जलने को तैयार है वह यज्ञ के लिए तैयार है, जो मिटने को तैयार है वह यज्ञ के लिए तैयार है,. जो होम होने के लिए तैयार है वह यज्ञ के लिए तैयार है। और तब, सब यज्ञ छोटे पड जाते है और जीवन यज्ञ ही शेष रह जाता है।

प्रश्न आचार्यजी, श्रीकृष्ण कहते हैं कि ज्ञानी जन कर्म फल त्याग कर जन्मरूप बंधन से छूट जाते हैं और परम पद को प्राप्त करते हैं। तो क्या कृष्ण जन्म को बन्धन मानते है ? आपकी दृष्टि की कुछ कल्पना दें।

उत्तर कृष्ण कहते हैं, ज्ञानी जन कर्म फल की आसक्ति को छोडकर, फलासक्ति को छोडकर जन्मरूपी बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। ये सब बाते समझने जैसी है।

पहली बात, कर्म से मुक्त होकर नही, फलासक्ति से मुक्त होकर। कर्म से मुक्त होने को नही कहा जा रहा है, फलासक्ति से मुक्त हो जाते है। फलासक्ति से मुक्त हो जाने का जोर ही इसलिए है कि कर्म पीछे बचाया गया है। कर्म तो रहेगा। फलासक्ति नही रहेगी। फलासक्ति से मुक्त होकर कोई कैसे कर्म को उपलब्ध होगा, यह थोडा सोचने जैसा है। हम अगर फल से मुक्त हो जाय तो कर्म से ही मुक्त हो जायेंगे। अगर कोई आपसे कहे कि फल की कामना न करे और कर्म करे, तो आप कहेंगे, मैं पागल हूँ ? अगर फल की कामना नही है तो कर्म क्यो होगा ? फल की कामना से ही तो कर्म होता है। एक कदम भी उठाते है तो किसी फल की कामना से उठाते है। अगर फल की कामना ही नही होगी तो यह कदम ही क्यो उठेगा ? हम उठायेंगे ही क्यो ? 'फलासक्ति से मुक्त होकर' इस शब्द ने, जिन लोगो

ने कृष्ण को सोचा है उन्हें, बडी कठिनाई मे डाला है । और सबसे बडी कठिनाई उन्होंने यह पैदा की है कि तब उन्होने एक बहुत ही रहस्यपूर्ण ढग से फल की पुन-र्प्रतिष्ठा कर दी है । तब उन्होंने यह कहा कि जो फलासक्ति से मुक्त होते है वे मोक्ष को या मुक्ति को उपलब्ध हो जाते हैं । मुक्ति और मोक्ष को फल की तरह उपयोग मे लाना शुरू किया है कि तुम ऐसा करोगे तो ऐसा मिलेगा । तुम ऐसा नही करोगे तो ऐसा नही मिलेगा, यही तो फल की आकाक्षा है । मोक्ष को भी फल बना लिया, तभी वे लोगो को समझा पाये कि तुम सब और फलो को छोड दो । मोक्ष को अगर पाना चाहते हो तो सब फलो को छोडकर ही तुम मोक्ष को पा सकते हो । लेकिन यह तो कृष्ण के साथ बडी ज्यादती हो गयी । अगर कृष्ण ऐसा कहते हैं कि जो सब फलासक्ति से मुक्त हो जाते है वे ज्ञानीजन जन्मरूपी बन्धन से मुक्त होते है । तो उनके मुक्त होने की जो बात है वह सिर्फ परिणाम की सूचक है । 'कोन्सीक्वेंस' की खबर है । वह फल नही है । ऐसा नही है कि जिन्हे जन्मरूपी बधन से मुक्त होना है वे फल की आकाक्षा छोड दे । तब तो फिर यह फल की ही आकाक्षा होगी । यह सिर्फ खबर है कि ऐसा होता है । फल की आकाक्षा छोडने से मुक्ति होती है, ऐसा होता है । लेकिन, मुक्ति की आकाक्षा जो करता है उसे तो मुक्ति कभी फलित नही हो सकती । क्योकि, वह फल की आकाक्षा करता है । लेकिन, हम बिना फलाकाक्षा के कर्म कैसे करेगे ?

इसे समझने के लिए यह देखना जरूरी होगा कि हमारी जिन्दगी मे दो तरह के कर्म है । एक कर्म तो वह है जो हम अभी करते है कल कुछ पाने की आशा मे । ऐसा कर्म भविष्य की तरफ से 'पुल' है, खीचना है । भविष्य खीच रहा है लगाम की तरह । जैसे, एक गाय कोई गले मे रस्सी बाधकर लिये जा रहा है । ऐसा भविष्य हमारे गले मे रस्सिया डालकर हमे खीचे लिये जा रहा है । यह मिलेगा, इसलिए हम यह कर रहे हैं । वह मिलेगा इसलिए हम वह कर रहे हैं । मिलेगा भविष्य मे, कर अभी रहे है । रस्सी अभी गले मे पडी है, हाथ मे जो फदा है रस्सी का, वह भविष्य का है । मिलेगा, नही मिलेगा, यह पक्का नही है । क्योकि, भविष्य का अर्थ ही यह है कि जो पक्का नही है । भविष्य का अर्थ ही है कि जो अभी नही हुआ है, होगा । लेकिन, उस आशा मे हम रस्सी मे बधे हुए पशु की तरह भागे चले जा रहे है । यह बडे मजे की बात है, यह शब्द पशु बडा बढिया है । कभी आपने शायद ख्याल न किया होगा कि पशु का मतलब ही होता है, जो पाश मे बधा हुआ चला जा रहा है । तब तो हम सब पशु है । पशु जो भविष्य से बधा है, जिसकी लगाम भविष्य के हाथों में है और जो आज इसलिए जीता है कि कल कुछ होगा । कल भी इसलिए

जियेगा कि परसो कुछ होगा। जो हर दिन आज, कल के लिए जियेगा और कभी नहीं जी पायेगा क्योकि जब आयेगा तब आज आयेगा और जीना उसका सदा कल होगा। कल भी यही होगा, परसो भी यही होगा, क्योंकि जब भी समय आयेगा, वह आज की तरह आयेगा और यह आदमी पाश मे बधा हुआ पशु की तरह, भविष्य से खिचा हुआ कल मे जियेगा। इसकी पूरी जिन्दगी अनजियी, 'अनलिव्ड' बीत जायेगी। मरते वक्त यह कह सकेगा कि मैंने सिर्फ जीने की कामना की, मैं जी नही पाया हूँ। और, मरते वक्त इसकी सबसे बडी पीडा यही होगी कि अब आगे कोई कल नही दिखायी पडता। अगर आगे कोई दिखायी पड जाय तो यह मौत को भी झेलने को राजी हो जायेगा। इसलिए, मरता हुआ आदमी पूछता है, पुनर्जन्म है? मै मरूगा तो नही। वह असल मे यह पूछ रहा है कि कल है अभी बाकी ? अगर कल है तो चल सकता है, क्यो कि मेरे जीने का ढग कल पर निर्भर है। अगर कल नही है तब तो बडा मुश्किल हो गया। मै तो रोज कल के लिए जिया और आज अचानक पाता हू कि आज के साथ ही सब समाप्त होता है, और कल नही है। 'फ्यूचर ओरिएटेड लिविग' जो है वह फलासक्ति का अर्थ है। भविष्य केन्द्रित जीवन!

एक ऐसा कर्म भी है जो भविष्य से खिचाव की तरह नही निकलता, बल्कि 'स्पोटेनियस' है और झरने की तरह हमारे भीतर से फूटता है। जो हम हैं, उससे निकलता है। जो हम होगे उमसे नही। रास्ते पर आप जा रहे है, किसी आदमी का जो आपके सामने चल रहा है उसका छाता गिर गया है। आपने उठाया और छाता दे दिया। न तो छाता देते वक्त यह ख्याल आया कि कोई 'प्रेस रिपोर्टर' आसपास ह या नही, न छाता देते वक्त यह ख्याल आया कि कोई 'फोटोग्राफर' आसपास है या नही। न छाता देते वक्त यह ख्याल आया कि कोई देख रहा है कि नही देख रहा है। न छाता देते वक्त यह ख्याल आया कि यह आदमी धन्यवाद देगा कि नही। तो यह कर्म फलासक्ति रहित हुआ। यह आपसे निकला सहज। लेकिन समझे कि उस आदमी ने आपको धन्यवाद नही दिया। दबाया छाता और चल दिया। और आपके अगर मन मे विपाद की जरा सी भी रेखा आयी तो आपको फलाकाक्षा का पता नही था, लेकिन अचेतन मे फलाकाक्षा प्रतीक्षा कर रही थी। आप सचेतन नही थे कि इसके धन्यवाद देने के लिए मैं छाता उठाकर दे रहा हूँ, लेकिन अचेतन मन माग ही रहा था कि धन्यवाद दो। उसने धन्यवाद नही दिया। उसने छाता दबाया और चल दिया। तो आपके मन मे विपाद की एक रेखा छूट गयी और आपने कहा कि यह कैसा कृतघ्न, कैसा अकृतज्ञ आदमी है, मैंने छाता उठाकर दिया और धन्यवाद भी नहीं। तो भी फलाकाक्षा हो गयी। अगर कृत्य

अपने में पूरा हैं, 'टोटल' है अपने से बाहर उसकी कोई माग ही नही है, तो फलाकाक्षा रहित हो जाता है। कोई भी कृत्य जो अपने मे पूरा है, 'सर्किल' की तरह है, वृत्त की तरह अपने को घेरता है और पूर्ण हो जाता है। अपने से बाहर की कोई अपेक्षा ही उसमे नही है, बल्कि छाता देकर आपने उसे धन्यवाद दिया कि तूने मुझे एक पूर्ण कृत्य करने का मौका दिया, जिसमे कि कोई आकाक्षा न थी, वह अवसर मेरे लिए दे दिया। वह इतना आनन्द दे जाता है कि उसके पार कोई माग नही है। फलाकाक्षा रहित कृत्य का मेरी दृष्टि मे जो अर्थ है वह यह कि कृत्य पूर्ण हो, उसके बाहर कोई सवाल ही नही है। वह खुद ही इतना आनन्द दे जाता है, वह खुद ही अपना फल है, कृत्य ही अपना फल है। आज ही अपना फल है, यही क्षण अपना फल है।

जीसस एक गाव से गुजर रहे है। उस गाव के आसपास लिली के फूलो के बडे खेत है। वह अपने शिष्यो से कहते है, देखते हो, लिली के फूलो को ? शिष्य बडी देर से देख रहे थे, लेकिन नही देख रहे थे। क्योकि, सिर्फ आखो से ही नही देखा जाता है, प्राणो से देखा जाता है। जीसस ने कहा, देखते हो इन लिली के फूलो को ? शिष्य ने कहा, देखते है, इसमे देखने जैसा क्या है! जैसे लिली के फूल होते है, वैसे है। जीसस ने कहा कि नही, मै तुमसे कहता हूँ कि सम्राट सोलोमन भी अपनी पूरी प्रतिष्ठा और गौरव मे इतना सुन्दर न था जितने ये गरीब लिली के फूल इस गाव के किनारे है। यहूदी विचार मे कुबेर का तुलनात्मक प्रतीक है सोलोमन। कहा सोलोमन, कहा ये गरीब लिली के फूल अनजान गाव के रास्तो पर खिले, शिष्य ने कहा। जीसस ने कहा, लेकिन देखो गौर से। सोलोमन भी अपनी पूरी 'ग्लोरी' मे, जब वह पूरा अपने वैभव पर था तब भी इस एक साधारण लिली के फूल के बराबर सुन्दर न था। कोई पूछता है कि क्या कारण है ? तो जीसस कहते है, फूल अभी और यही खिलते है। सोलोमन सदा भविष्य मे रहता है। भविष्य का तनाव कुरूप कर जाता है। फूलो को कल का कोई पता नही। यही हवा का झोका सब कुछ, यही सूरज की किरण सब कुछ, यही पृथ्वी का टुकडा सब कुछ है। यही राह, यही होना, बस यही सब कुछ है, इसके बाहर कुछ होना नही। ऐसा नही कि साझ नही आयेगी। साझ अपने से आयेगी। आपकी अपेक्षाओ से आती है या आपकी आकाक्षाओ से आती है क्या ? ऐसा नही कि इन फूलो मे बीज नही लगेंगे और फल नही बनेगे, वह अपने से लगते है, आपकी अपेक्षाओ से नही लगते है। लेकिन, हम उस पागल औरत की तरह है जिसके बाबत हम सबको पता होगा ही, क्योकि हम सब उसकी तरह है।

एक पागल औरत एक दिन सुबह अपने गाव से नाराज होकर चली गयी। गांव भर के लोगो ने कहा, क्या कर रही हो, कहा जा रही हो ? उसने कहा, अब मैं जा रही हूं, तुमने मुझे बहुत सताया, कल से तुम्हे पता चलेगा। पर, लोगो ने कहा, बात क्या है ? उसने कहा, मैं वह मुर्गा अपने साथ लिये जा रही हूं जिसकी बाग देने से इस गाव मे सूरज उगा करता है। अब यह सूरज दूसरे गाव मे उगेगा। वह दूसरे गाव पहुच गयी। मुर्गे ने बाग दी, सूरज उगा, उसने कहा, अब रोते होगे नासमझ। क्योकि, अब सूरज इस गाव मे उग रहा है।

उस बूढी औरत के तर्क मे कोई खामी है ? जरा भी नही। उसके मुर्गे की बाग देने से सूरज उगता था और फिर जब दूसरे गाव मे भी बाग देने से सूरज उगा तब तो बिल्कुल पक्का ही हो गया न, कि अब उस गाव का क्या होगा ? मुर्गे ऐसी भ्राति मे नही पडते, लेकिन मुर्गे के मालिक पड जाते है। मुर्गे तो सूरज उगता है इसलिए बाग देते है। मुर्गों के मालिक समझते है कि अपना मुर्गा बाग दे रहा है इसलिए सूरज उग रहा है। हम सबका चित्त ऐसा ही है।

भविष्य तो आता है अपने से। वह आ ही रहा है। वह हमारे रोके न रुकेगा। फल आते है अपने से, वे हमारे रोके न रुकेंगे। हम अपने कृत्य को पूरा कर ले, इतना काफी है। उसके बाद हमे होने की जरूरत नही है। कृष्ण इतना ही कहते है कि तुम्हारा कृत्य पूरा हो, 'द एक्ट मस्ट बी टोटल'। टोटल का मतलब है कि उसके बाहर करने को तुम्हें कुछ भी न बचे। तुमने पूरा उसे कर लिया, बात खत्म हो गयी। इसलिए, वे कहते है कि तुम परमात्मा पर छोड दो फल। परमात्मा पर छोडने का मतलब यह नही कि कोई नियन्ता, कोई 'कट्रोलर' कही बैठा है, उस पर तुम छोड दो और वह तुम्हारा हिसाब-किताब रखेगा। नही, परमात्मा पर छोडने का कुल इतना ही मतलब है कि तुम कृपा करो, तुम सिर्फ करो, और समष्टि से उस करने की प्रतिध्वनि आती ही है। वह आ ही जायेगी। जैसे कि इन पहाडो मे मै जोर से चिल्लाऊ और कोई मुझसे कहे कि तुम चिल्लाओ भर, प्रतिध्वनि की चिन्ता मत करो, पहाड प्रतिध्वनि करते ही है। तुम पहाडो पर छोड दो प्रतिध्वनि की बात, तुम नाहक चिन्तित मत होओ, क्योंकि तुम्हारी चिन्ता तुम्हे ठीक से ध्वनि भी न करने देगी और फिर हो सकता है, प्रतिध्वनि भी न हो पाये। क्योंकि प्रतिध्वनि होने के लिए ध्वनि तो होनी चाहिए ? फलाकांक्षा कर्म को करने ही नहीं देती, बल्कि फलाकाक्षा मे उलझे हुए लोग कर्म करने से चूक ही जाते है। क्योकि, कर्म का क्षण है वर्तमान और फल का क्षण है भविष्य। जिनकी आखे भविष्य पर गडी है, वे अगर वर्तमान के बहुत नाजुक क्षण से चूक जाते हो तो इसमे आश्चर्य

नहीं है। क्योंकि, आंखें तो गडी हैं भविष्य पर, कल पर, फल पर। तो काम बेमानी हो जाता है। किसी तरह करते हैं। नजर लगी होती है आगे, ध्यान लगा होता है आगे, और जहां ध्यान है वहीं हम हैं। अगर ध्यान वर्तमान क्षण पर नहीं है तो गैर ध्यान मे 'इनअटेंटिवली', जो होता है, होता है। उस होने मे बहुत गहराई नहीं होती, उस होने मे पूर्णता नही होती, उस होने मे आनन्द नही होता। कृष्ण की फलाकांक्षा रहित कर्म की जो दृष्टि है उसका कुल मतलब इतना है कि तुम इतना भी अपना हिस्सा भविष्य के लिए मत छोडो कि इस काम मे बाधा पड जाय। तुम इस काम को पूरा ही कर लो। भविष्य जब आये तब तुम भविष्य मे पूरे हो लेना, कृपा करके अभी तुम इसी मे पूरे हो लो। भविष्य आयेगा और तुम्हारे पूरे होने से फल निकलेगा। उसकी तुम चिन्ता ही मत करो, उसे तुम निश्चित हो परमात्मा पर छोड सकते हो।

इसका मतलब यह हुआ कि हम जो कर रहे है वह हमारा आनन्द हो जाय तभी हम भविष्य से और फल से बच सकते है। जो हम कर रहे हैं वह हमारे आनन्द से सृजित हो, वह हमारे आनद से निकले, उसका आविर्भाव हमारे आनन्द से हो। वह हमारे भीतर से झरने की तरह फूटे। किसी भविष्य के लिए नही। पशु की तरह नही, झरने की तरह। झरना किसी भविष्य के लिए नही फूट रहा है। भला आप सोचते होगे कि नदिया सागर के लिए बह रही है? गलती मे है आप। सागर तक पहुच जाती है यह दूसरी बात है। नदिया बहती है अपने वेग से, नदिया बहती है अपने 'ओरीजनल सोर्स' की क्षमता से। गगोत्री की क्षमता से गगा बहती है। सागर तक पहुचती है, यह बिल्कुल दूसरी बात है। इस पूरी लम्बी यात्रा मे गगा को सागर मे कुछ लेना-देना नही है। सागर मिलेगा कि नही मिलेगा, इससे कोई सम्बन्ध ही नही है। गगा की भीतरी ऊर्जा इतनी है कि वह बहाये लिये जाती है।

बहाये लिए जाती है। और, हर तट पर गगा नाच रही है। कोई सागर के तट पर ही नाचती है, ऐसा नही, हर तट पर नाच रही है। पत्थरो मे, पहाडो में, गड्ढो मे, ऊचाइयो पर, नीचाइयो मे, सुख मे, दुख मे, निर्जन मे, रेगिस्तान मे, वृक्षो मे, हरियाली मे, मनुष्यो मे, न मनुष्यो मे, वह हर जगह नाच रही है। जहा है जिस तट पर, वहा नाच पूरा है। उसी नाच से वह अगले तट पर पहुच जाती है यह दूसरी बात है। लेकिन, अगले तट पर पहुचने के लिए वह किसी तट से जल्दी में नही है। फिर, एक दिन वह सागर तक भी पहुच जाती है। सागर तक पहुच जाना उसके जीवन की फलश्रुति है, वह फल है। लेकिन, उस फल के लिए कहीं कोई आकांक्षा नही है। एक झरना फूट रहा है, अपनी भीतरी ऊर्जा से

फूटता है। कृष्ण यह कह रहे है कि आदमी ऐसा जिये कि अपनी भीतरी ऊर्जा से उसका कृत्य फूटता रहे। मेरी दृष्टि मे, सन्यासी और गृहस्थ मे यही फर्क है। गृहस्थ रोज कल के लिए जीता है, सन्यासी आज की ऊर्जा से फूटता है और जीता है। आज पर्याप्त है। कल आयेगा, वह भी आज की तरह आयेगा। उसमे भी हम आज की तरह जी लेंगे।

मुहम्मद के जीवन मे एक छोटी-सी घटना है। मुहम्मद उन थोडे-से सन्यासियो मे से है जैसे सन्यासी मै दुनिया मे देखना चाहूगा। मुहम्मद को रोज लोग भेट कर जाते है। कोई मिठाइया दे जाता है, कोई रुपये दे जाता है, कोई कुछ कर जाता है। साझ तक लोग आते है, खाते है, पीते है। साझ को मुहम्मद अपनी पत्नी को कहते है कि अब सब बाट दो, क्योकि साझ हो गयी। तो जो भी होता है, सब बाट दिया जाता है। साझ मुहम्मद फिर फकीर हो जाते है। उनकी पत्नी उनसे कहती है कि यह ठीक नही, कल के लिए कुछ बचाना उचित है। तो, मुहम्मद कहते है, जो आज ले आया था, कल उसकी फिर प्रतीक्षा करेंगे। और, जब आज बीत गया तो कल भी बीत जायेगा। फिर, वह अपनी पत्नी से कहते है कि क्या तू मुझे नास्तिक समझती है कि मै कल का इन्तजाम करू ? कल का इन्तजाम नास्तिकता है। कल का इन्तजाम इस बात की सूचना है कि जिस समष्टि ने मुझे आज दिया, कल पता नही देगी, नही देगी। कल का इन्तजाम अश्रद्धा है। कल का इन्तजाम अश्रद्धा है जागतिक ऊर्जा पर, विश्व प्राण पर। जिसने मुझे आज दिया, वह कल मुझे देगा या नही देगा इसलिए मैं इन्तजाम कर लू ? लेकिन, मै कितना इन्तजाम कर पाऊगा ? मेरे इन्तजाम कहा तक काम पडेगे। मुहम्मद कहते है बाट दे, कल सुबह फिर श्रद्धा से प्रतीक्षा करेंगे। मुहम्मद कहते है, मै आस्तिक हूँ। तो, कल के लिए बचाकर नही रख सकता, नही तो परमात्मा क्या कहेगा कि ऐ मुहम्मद, तुझे इतना भी भरोसा नही !

रोज साझ सब बट जाता है। फिर, मुहम्मद की मौत आती है। मरने की रात चिकित्सको ने कहा कि आज वह बच न सकेंगे। उनकी पत्नी ने सोचा कि आज तो कुछ बचा ही लेना चाहिए। रात दवा दारू की जरूरत हो सकती है। तो, उसने पाच दीनार, साझ को जब सब बाटा है, तो छिपा दिये। रात को बारह बजे मुहम्मद बडी तडपन मे है, बडी पीडा मे है। आखिर उन्होने अपनी चादर उघाडी और पत्नी से पूछा कि मै सोचता हूँ, समझता हूँ, मालूम होता है कि आज गरीब मुहम्मद गरीब नही है, कुछ घर मे बचा है ? उसकी पत्नी तो बहुत घबरा गयी। उसने कहा कि आपको कैसे पता चला ? मुहम्मद ने कहा कि तेरे चेहरे को

देखकर पता चलता है कि आज तू वैसी निश्चित नहीं है जैसी सदा रहती है। घर मे तूने जरूर कुछ बचाया है। जो चिन्तित है वे बचा लेते है, जो बचा लेते है वे भी चिन्तित हो जाते हैं। वह 'व्हिसियस सर्किल' है। मुहम्मद कहते है, उसे निकाल और बाट दे। मुझे शाति से मरने दे। आखिरी रात कही ऐसा न हो कि परमात्मा कहे कि आखिरी रात मुहम्मद तू चूक गया। और, जब मैं उसके सामने जाऊ तो अपराधी की तरह खडा होना पडे। निकाल कहा है? उसकी पत्नी ने घबराहट मे वह पाच रुपये जो छिपा रखे थे कि रात दवा दारू कि जरूरत पडे, निकाले। मुहम्मद ने कहा, किसी को भी पुकार कर दे सडक से। उसने कहा, आधी रात कौन होगा? उसने कहा, तू पुकार तो। पुकार दी गयी है, कोई बाहर सडक पर भिखारी था वह भीतर आ गया। मुहम्मद ने कहा, देख आधी रात को देने वाला आ सकता है तो लेने वाला भी आ सकता है। ये पाच रुपये दे दे। वह पाच रुपये उसे दे दिये गये, फिर मुहम्मद ने चादर ओढ ली। वही उनका आखिरी कृत्य था। मुहम्मद डूब गये उसी वक्त। जैसे, वह पाच रुपये अटकाव थे। जैसे, वह पाच रुपये बाधा थे। जैसे, वह पाच रुपये पीडा थी, जैसे वह पाच रुपये की गाठ उस सन्यासी को भारी पड रही थी।

प्रत्येक कृत्य, प्रत्येक क्षण और प्रत्येक दिन अपने मे पूरा होता जायेगा। तो भी कल आता है, कल सदा आता रहा है, लेकिन तब कल रोज नया होता है। बासा नही होता है। और, तब कल जैसा भी आता है वह 'फ्रस्ट्रेट' नही करता। कल हमे विषाद से भर देगा अगर आज की हमारी अपेक्षाओ के विपरीत पडा! और, किन अपेक्षाओ के अनुकूल भविष्य पडता है? कभी नही पडता। क्योकि, भविष्य इतने विराट् पर निभर है और हमारी अपेक्षाएँ इतने क्षुद्र पर निर्भर हैं कि इस क्षुद्र की अपेक्षाएँ इस विराट् मे कैसे पूरी होगी? उनका कोई पता ही नही चलेगा। यह ऐसा ही है जैसे कि नदी की बहती धार मे एक बूद तप करती हो कि अगर पश्चिम को कल बहे तो बडा अच्छा है। एक बूद कहा निर्णायक होगी कि पश्चिम को बहे? नदी को जहा बहना है बहेगी। एक बूद उसके साथ ही होगी। लेकिन, कल दुखी होगी। क्योकि, उसने तय किया था पश्चिम बहने का और नदी पूरब बही जा रही है। और, तब विषाद और पीडा भर जायेगी। वह अपेक्षाए, फलाकाक्षाएँ, विषाद, दुख, फ्रस्ट्रेशन और पीड़ा से भर जाती हैं, असफलताओ से भर जाती है। जो आदमी प्रतिपल पूरा जी रहा है उसके जीवन मे विषाद नही है। इसलिए, जो कर रहे हैं, उस करने मे पूरे हो जाएँ और फल परमात्मा पर छोड दे। ऐसा जो करेगा तो कृष्ण कहते है कि वह जन्मरूपी बन्धन से छूट जाता है।

वह बड़े मजे की बात कह रहे हैं। वह यह कह रहे हैं, जन्मरूपी बन्धन से। जन्म बन्धन है ऐसा वह नही कह रहे। असल मे जो आदमी फलाकाक्षा से भरा है वह आदमी जन्म लेने की आतुरता से भरा होता है। क्योंकि, फल के पूरा करने के लिए कल तो होना चाहिए न ! जो आदमी फलो मे जीता है वह आदमी जन्म लेने की आतुरता मे जीता है। उसे जन्म लेना ही पड़ेगा। इसलिये, जो आदमी फलो मे जीता है उसके लिए जन्म बन्धन बन जाता है। उसकी मुक्ति नही रहती। रहेगी नही मुक्ति, क्योकि जन्म का भी आनन्द उसे नही है। आनन्द तो उसे कुछ फल मिलने का है। जन्म भी उसके लिए आनन्द नही है, जन्म भी एक अवसर है जिसमे वह कुछ फलो को पाकर आनंदित होना चाहता है। मृत्यु उसके लिए दुख होगी, क्योकि मृत्यु उसके उन सब मार्गों को तोड देगी जिन मार्गों से भविष्य मे जिया जा सकता था। और, जन्म उसके लिए बन्धन मालूम पड़ेगा। जन्म उसके लिए इसलिए बन्धन मालूम पड़ेगा कि वह उस जीवन को जानता ही नही है जो मुक्ति है। एक बार कोई जीवन को जान ले तो जन्म भी नहीं रह जाता है, और मृत्यु भी नही रह जाती। कृष्ण ने उसमे जो बात कही है वह अधूरी है। उसे पूरा किया जाना चाहिए। वह कह रहे हैं, जन्मरूपी बन्धन से मुक्त हो जाता है। मै आपसे कह रहा हूँ, वह मृत्युरूपी बन्धन से भी मुक्त हो जाता है। इसका मतलब यह नही है कि जन्म और मृत्यु बन्धन है। इसका मतलब यह है कि जन्म और मृत्यु बन्धन प्रतीत होते हैं अज्ञान में। ज्ञानी के लिए तो जन्म और मृत्यु रह ही नही जाते। यह जो बन्धन की प्रतीति है वह अज्ञानी चित्त की प्रतीति है और जो मुक्ति की प्रतीति है वह ज्ञानी चित्त की प्रतीति है। जन्म बुरा है, ऐसा वह नही कह रहे। लेकिन, जैसे हम है, उनको जन्म बन्धन मालूम होगा। हम जैसे आदमी प्रेम तक को बन्धन बना लेते है। मेरे पास न मालूम कितने मित्रो की लड़कियो के लड़को के विवाह के आमत्रण आते हैं। उसमे लिखा रहता है कि मेरी पुत्री प्रणय के बन्धन मे बधने जा रही है। मेरा बेटा विवाह के बन्धन मे बध रहा है। हम प्रेम को भी बन्धन बना लेते हैं। जबकि प्रेम मुक्ति है। कहना तो यही उचित होगा कि मेरी बेटी प्रेम मे मुक्त होने जा रही है। हम कहते है बेटी प्रेम मे बधने जा रही है। हम प्रेम को भी बन्धन बना लेते है। प्रेम बन्धन है, ऐसा नहीं, हम जैसे है, हम प्रेम को भी बन्धन बना लेते है। हम जैसे है, हम जन्म को भी बन्धन बना लेते हैं। हम जैसे है, हम मृत्यु को भी बन्धन बना लेते हैं। हम जैसे है, हम पूरे जीवन को बन्धनो की एक शृखला बना लेते हैं। जो

व्यक्ति क्षण मे जीता, वर्तमान मे जीता, फलाकाक्षा से मुक्त जीता, अनासक्त जीता, जो व्यक्ति जीवन को अभिनय की तरह जीता, जो करता हुआ न करता है, जो न करता हुआ करता है ऐसा व्यक्ति जिन्दगी मे जो भी हो उस सबको मुक्ति बना लेता है। उसके लिए बन्धन भी मुक्ति हो जाते है। हमारे लिए मुक्ति भी बन्धन है। यह हमारे होने के ढग पर निर्भर करता है। इसलिए, कृष्ण की बात मे, कि जन्म बन्धन है ऐसे जन्म की निन्दा नही है। हम जैसे है, हमने जन्म को बन्धन बनाया है। और, अगर हम फलाकाक्षा रहित होकर जीना शुरू करे तो जन्म हमारे लिए बन्धन नही रह जायेगा। ऐसा व्यक्ति जीवन मुक्ति को उपलब्ध होता है। यही जीवन है मुक्ति। यही है वह जीवन, अभी है वह जीवन। हमारे देखने पर निर्भर करता है।

मैंने सुना है एक विद्रोही सूफी फकीर को, किसी खलीफा ने कारागृह मे डाल दिया। उसके हाथो मे जजीरे डाल दी, उसके पैरो मे बेडिया डाल दी और वह सूफी फकीर जो निरन्तर स्वतन्त्रता के गीत गाता था, जेल के सीखचो मे डाल दिया गया। वह सम्राट, वह खलीफा उससे मिलने गया। उसने पूछा कि कोई तकलीफ तो नहीं है? उस फकीर ने कहा, तकलीफ कैसी? शाही मेहमान को तकलीफ कैसे हो सकती है? आप मेहमान, आप 'होस्ट', तकलीफ कैसे हो सकती? हम बडे आनन्द मे है। झोपडे से महल मे ले आये। सम्राट ने कहा, मजाक तो नही करते हो? उस फकीर ने कहा, जिन्दगी को मजाक समझा, इसलिए ऐसा कह पाते है। सम्राट ने पूछा, जजीरे बहुत बोझिल तो नहीं है? ये जजीरे कोई पीडा तो नही देती? उस फकीर ने जजीरो को गौर से देखा और कहा, मुझसे बहुत दूर है। मेरे और इन जजीरो के बीच बडा फासला है। तुम इस भ्रम मे होगे कि तुमने मुझे कारागृह मे डाला, लेकिन मेरी मुक्ति को तुम कारागृह नही बना सकते, क्योकि मैं कारागृह को भी मुक्ति बना सकता हूँ।

इस पर ही सब निर्भर करता है कि हम कैसे देखते है। उस फकीर ने कहा, बडा फासला है इन जजीरो मे और मुझमे। तुम कैसे मुझमे जजीरे डालोगे? मसूर को शूली दी गयी और मसूर के हाथ पैर काटे गये। लाखोलोग देखने इकट्ठे थे; लेकिन मसूर हसता ही रहा और उसकी हसी बढती ही गयी। जब उसके पैर काटे तब वह जितना हस रहा था, जब हाथ काटे तो और जोर से हसने लगा। लोगो ने पूछा कि पागल मसूर, यह कोई हसने की घडी है? मसूर ने कहा, मै इसलिए हस रहा हूँ कि तुम समझ रहे हो, मुझे मार रहे हो और तुम किसी और को काटे जा रहे हो। याद रखना, मसूर ने कहा कि मसूर

को जब तुम काट रहे थे तब वह हंस रहा था। ध्यान रखना तुम मसूर को छू भी नहीं सकते, काटना तो बहुत दूर की बात है और तुम जिसे काट रहे हो, वह मसूर नहीं है। मसूर तो वही है जो हंस रहा है। उन्होंने जीभ काट दी मसूर की। लेकिन, तब मसूर की आंखे हंस रही थीं। उन लाखो लोगो ने कहा, जीभ तो तुमने काट दी, लेकिन मसूर हंस रहा है। उसकी आंखे हंस रही है। उन जल्लादो ने उसकी आंखे फोड दी, लेकिन मसूर का चेहरा हंसता रहा। उसका रोयां रोयां हंस रहा था। लोगो ने कहा, तुम इसको न रुला सकोगे। अब इस आदमी के पास काटने को भी कुछ न बचा, लेकिन उसका पूरा अस्तित्व हंस रहा है।

जीवन वैसा ही हो जाता है, जैसे हम है। जन्म वैसा ही हो जाता है जैसे हम है, मृत्यु वैसे ही हो जाती है जैसे हम है। यदि हम मुक्त है तो जन्म मुक्ति है, जीवन मुक्ति है, मृत्यु मुक्ति है। यदि हम बधे है पाश मे, पशु है, तो जन्म बन्धन है, जीवन बन्धन है, प्रेम बन्धन है, मृत्यु बन्धन है, सब बन्धन है। परमात्मा भी तब एक बन्धन की तरह ही दिखायी पडता है।

प्रश्न : पहले एक चर्चा में आपने कहा था कि पुरुष में साठ प्रतिशत पुरुष और चालीस प्रतिशत स्त्री, तथा स्त्री में उसका उल्टा अनुपात होता है। यदि पचास-पचास प्रतिशत अनुपात हो जाय तो क्या नपुंसक पैदा होगा? परमात्मा को अर्धनारीश्वर क्यों कहा है?

उत्तर मैने ऐसा नही कहा कि साठ और चालीस का अनुपात होता है— उदाहरण के लिए कहा। अनुपात बहुत हो सकते है। सत्तर तीस भी हो सकता है, अस्सी बीस भी हो सकता है। नब्बे दस भी हो सकता है। इक्यावन उनचास भी हो सकता है। और पचास पचास भी हो सकता है। और, जब पचास पचास होता है तभी वह व्यक्ति यौन की दृष्टि से द्वन्द्व के बाहर हो जाता है, जिसको हम नपुंसक या 'इम्पोटेंट' कह रहे है। यह बडे मजे की बात है कि इस मुल्क ने ब्रह्म शब्द को नपुंसक लिंग मे रखा है। ब्रह्म पुरुष है कि स्त्री? नहीं, ब्रह्म 'इम्पोटेंट' है। वह जो कि 'ओमनीपोटेंट' है, वह जो कि सर्वशक्तिमान है, उसका जो हमने लिंग रखा है उसको हमने नपुंसक लिंग मे रखा है। क्योंकि, वह कैसे स्त्री हो सकता है, वह पक्ष हो जायेगा। वह कैसे पुरुष हो सकता है, वह पक्ष हो जायेगा। वह निष्पक्ष है। निष्पक्ष है तो वह पचास पचास दोनो पूरा है। तभी वह निष्पक्ष हो सकता है। अर्धनारीश्वर की कल्पना ब्रह्म की कल्पना है। उसमे नारी तत्व और पुरुष तत्व आधा आधा है। वह दोनों है एक साथ, क्योंकि

वह दोनो नहीं है। अगर पुरुष है तो स्त्री तत्व का इस जगत में कहां से आविर्भाव होगा ? अगर वह स्त्री है तो पुरुष तत्व कहां से आयेगा, कहा से शुरू होगा ? कहा से पैदा होगा ?—वह दोनो ही है, एक साथ दोनो है। इसलिए, दोनो को पैदा कर पाता है। और, हम जब तक स्त्री है और पुरुष है, तब तक हम परमात्मा के टूटे हुए दो हिस्से है। इसलिए, स्त्री पुरुष का आपसी आकर्षण एक होने का आकर्षण है। स्त्री पुरुष का आकर्षण पूरा होने का आकर्षण है।

अर्धनारीश्वर की हमारी कल्पना और हमारी प्रतिमा बडी अनूठी है। दुनिया ने बहुत प्रतिमाएँ बनायी है, लेकिन अर्धनारीश्वर मे, जो बहुत मनोवैज्ञानिक सत्य है, उसका कोई मुकाबला नही है। अर्धनारीश्वर मे हम इतना ही कह रहे है कि परमात्मा दोनो है एक साथ, और पूरा है। एक पहलू उसका स्त्रैण है और एक पहलू उसका पुरुष है। या ऐसा कहे कि वह दोनो का सम्मिलन है, दोनो का मध्य है या दोनो का 'बियान्ड' है, दोनो का पार है। यह जो मैने कहा कि परमात्मा, ब्रह्म की यह जो मध्य की स्थिति है—जीसस ने एक बहुत अच्छा शब्द उपयोग किया है। 'इनच ऑफ गाड'। जीसस ने कहा है, जिसे प्रभु को पाना है उसे प्रभु के लिए नपुंसक हो जाना पडेगा। बडी अजीब बात कही है। पर, कही बिल्कुल ठीक है। जिसे प्रभु को पाना है उसे प्रभु जैसा होना ही पडेगा। इसलिए, बुद्ध अपनी पूरी गरिमा में या कृष्ण अपनी पूरी गरिमा मे न स्त्री है, न पुरुष है। अपनी पूरी गरिमा में वे दोनो है। अपनी पूरी गरिमा में वे मिश्रित है। अपनी पूरी गरिमा मे, एक अर्थ है। वे पार हो गये दोनो द्वन्द्वो के और द्वन्द्वो के बाहर हो गये।

लेकिन, हमारे बीच द्वन्द्व है—मात्राओ का द्वन्द्व है। और, जो उन्होने पूछा, हमारे बीच 'थर्ड सेक्स' पैदा होता है कभी, उसका क्या कारण है ? उसका वही कारण है। अगर उसके भीतर 'फिजियोलोजिकली' शारीरिक तल पर दोनो तत्व समान रह गये तो उसका लिंग विकसित नहीं हो पाता, किसी भी दिशा मे उसकी जाति ठीक से विकसित नही हो पाती। दोनो बराबर समतुल शक्तिया एक दूसरे को काट जाती है। यह भी सभव हो गया है। पहले तो कभी कभी आकस्मिक होता था कि कोई स्त्री बाद के जीवन मे पुरुष हो गयी या कोई पुरुष बाद मे स्त्री हो गया।

लन्दन मे पीछे एक बडा मुकदमा चला। और, सनसनीखेज मुकदमा था। मुकदमा यह था कि एक लड़की और लड़के का विवाह हुआ। लेकिन, विवाह के

बाद वह लडकी जो थी वह लडका हो गयी। अदालत में जो मुकदमा था वह यह था कि उस लडकी ने धोखा दिया। वह लडका थी ही। बडी कठिनाई हुई इस मुकदमे मे। उस लडकी का तो कहना था, वह लडकी थी और यह विकास उसमे बाद मे हुआ है। लेकिन, तब तक विज्ञान इस सम्बन्ध मे बहुत साफ नही था। लेकिन, अभी इधर बीस पच्चीस वर्षों मे विज्ञान बहुत साफ हुआ और घटनाए बहुत तरह की घटी है जिनमे 'सेक्स' रूपातरण हुआ। जिनमें कोई पुरुष स्त्री हो गया, कोई स्त्री पुरुष हो गयी। अगर ये 'मार्जिनल केसेज' है, अगर उन्चास और इक्यावन की मार्जिन है तो बदलाहट कभी भी हो सकती है। थोडे से 'केमिकल' फर्कों से बदलाहट हो सकती है। और अब, अब तो बहुत सुविधापूर्ण हो गयी है बात और भविष्य मे बहुत ज्यादा दिन नही है कि कोई आदमी जिन्दगी भर पुरुष रहने का कष्ट भोगे, या कोई स्त्री जिन्दगी भर स्त्री रहने के ही चक्कर मे रहे। इसमे बदलाहट कभी भी की जा सकती है। सेक्स रूपातरित हो सकेगा। क्योंकि, उसके केमिकल सूत्र सारे ख्याल मे आ गये है। अगर एक केमिकल की मात्रा बढा दी जाय व्यक्तित्व के शरीर मे, 'हारमोन्स' बदल दिये जाय तो उस व्यक्तित्व मे स्त्री प्रकट हो सकती है। पुरुष स्त्री हो सकता है, और स्त्री पुरुष हो सकती है। स्त्री और पुरुष एक ही तरह के व्यक्ति है सिर्फ मात्राओ के फर्क है उनमे।

अर्धनारीश्वर इस बात की सूचना है कि विश्व का मूल स्रोत न तो स्त्री है, न पुरुष है। वह दोनो एक साथ है। लेकिन, क्या मै आपसे यह कहूँ कि वह जो इम्पोटेंट है, नपुसक है वह परमात्मा के ज्यादा निकट पहुच जायेगा ? यह मै नही कह रहा हूँ। परमात्मा दोनो है, और नपुसक दोनो नही है, इस फर्क को आप ख्याल मे ले लेना। परमात्मा दोनो है एक साथ और जिसे हम नपुसक कहे वह दोनो नही है। नपुसक हमारा सिर्फ अभाव है, 'एब्सेन्स' है और परमात्मा भाव है, 'प्रेजेंस' है। परमात्मा मे स्त्री और पुरुष दोनो है इसलिए, अर्धनारीश्वर की प्रतिमा है, उसमे आधी स्त्री है, आधा पुरुष है। हम परमात्मा को नपुसक जैसा भी बना सकते थे। जिनमे न स्त्री होती है, न पुरुष होता है, लेकिन वह अभाव होता। परमात्मा दोनो का भाव है, दोनो की 'पोजीटीविटी' है। नपुसक बेचारा दोनो का अभाव है। उसके पास कोई व्यक्तित्व नही है। उसकी पीडा का कोई अन्त नही है। इसलिए, जब जीसस कहते है, 'इनच ऑफ गाड' तब वह बिल्कुल दूसरी बात कह रहे है। वह यह नहीं कह रहे है कि लोग नपुसक हो जाय। वह यह कह रहे है कि परमात्मा मे, परमात्मा के लिए, वे न स्त्री रह जाय, न पुरुष रह जाय और तब वे दोनो रह जायेंगे, दोनो हो जायेंगे।

प्रश्न : जैन शास्त्रों में क्यों कहा है कि स्त्रियों के लिए मोक्ष नहीं है ?

उत्तर उसका कारण है कि जैन शास्त्र पुरुष चित्त के द्वारा निर्मित शास्त्र है। जैन साधना पुरुष साधना है। जैन साधना की पूरी प्रक्रिया 'अग्रेसिव' है, आक्रमक है और इसलिए जैन शास्त्र सोच ही नही सकता कि स्त्री को कैसे मोक्ष हो सकता है ? अगर कृष्ण के भक्त से हम पूछे तो वह बहुत मुश्किल मे पडेगा। वह कहेगा स्त्री के सिवा और किसी का मोक्ष हो ही कैसे सकता है ? पुरुष का मोक्ष होगा कैसे ? क्योकि, कृष्ण भक्त अगर पुरुष भी है तो अपने को स्त्री बनाकर कृष्ण के प्रेम मे पडता है।

मीरा जब गयी वृन्दावन, वहा के मदिर मे उसके प्रवेश पर रोक लगायी गयी। क्योकि उस मदिर मे जो पुजारी था वह स्त्रियो को नही देखता था। जब मीरा को रोका तो मीरा ने कहा, एक सवाल उन पुजारी से पूछ लो कि क्या कृष्ण के अलावा और कोई पुरुष भी है। कृष्ण के पुजारी होकर अभीतक पुरुष बने हुए हो ? तो उस पुजारी ने कहा, उसको आने दो। मेरी भूल मुझे पता चल गयी। मै गलती मे था। कृष्ण के तो आसपास 'पैसिव', समर्पण, सरेण्डर – वह जो स्त्री का चित्त है, वह है। महावीर के आसपास पुरुष चित्त की गति है। महावीर स्वय पुरुष चित्त के साधक है। उनकी सारी साधना पुरुष चित्त की साधना है। इसलिए महावीर सोच भी नही सकते, मान भी नही सकते कि स्त्री मोक्ष जा सकती है। महावीर की परम्परा मे स्त्री को थोडी प्रतीक्षा करनी पडे, उसे एक पर्याय और लेनी पडे। एक बार पुरुष होना पडे, फिर मोक्ष को वह जा सकती है। और मै मानता हू गलती है। अगर महावीर की ही साधना करनी हो तो दुनिया मे कोई स्त्री नही कर सकती। स्त्रैण चित्त महावीर की साधना ही नही कर सकता। सिर्फ पुरुष चित्त ही कर सकता है। और अगर पुरुष चित्त की साधना करनी हो तो कृष्ण के साथ बहुत कठिनाई है। पुरुष चित्त का कृष्ण के साथ ताल-मेल नही बैठेगा।



पर्व : उन्नीस

महावीर की वीतरागता क्राइस्ट की होली इनडिफरेंस
बुद्ध की उपेक्षा और कृष्ण की अनासक्ति
सुख-दुख में अनुद्विग्न वह स्थितप्रज्ञ
उत्तरायण दक्षिणायन का सूर्य
स्थितप्रज्ञ और भक्त
कृष्ण का विराट आकर्षण
सेक्स और कृष्ण





१९

प्रश्न . आचार्यजी, महावीर की वीतरागता, क्राइस्ट की 'होली इनडिफरेंस', बुद्ध की उपेक्षा और कृष्ण की अनासक्ति—इनमें क्या सूक्ष्म विभिन्नता है ? इसपर प्रकाश डालें।

उत्तर क्राइस्ट की तटस्थता और बुद्ध की उपेक्षा, महावीर की वीतरागता और कृष्ण की अनासक्ति, इनमें बहुत-सी समानताएं हैं । लेकिन बुनियादी भेद भी हैं। समानता अंत पर है, उपलब्धि पर है। भेद मार्ग में है। अंतिम क्षण में ये चारों बातें एक ही जगह पहुंचा देती हैं। लेकिन चारों के रास्ते

बड़े अलग अलग है। जीसस जिसे तटस्थता कहते है, बुद्ध जिसे उपेक्षा कहते इनमे बडी गहरी समानता है। यह जगत जैसा है, इस जगत की धाराएँ जैसी है, इस जगत के अतर्द्वन्द्व जैसे हैं, इस जगत मे भेद और विरोध जैसे हैं– उनके प्रति तटस्थता हो सकती है लेकिन तटस्थता कभी भी प्रसन्नता नही हो सकती। तटस्थता बहुत गहरे मे उदासी बन जाएगी। इसलिए जीसस उदास है और अगर वे किसी आनन्द को पाते भी है, तो वह इस उदासी के रास्ते से ही उन्हे उपलब्ध होता है। लेकिन उनका पूरा रास्ता उदास है। वे जीवन के पथ पर गीत गाते हुए नही निकलते। तटस्थता उदासी बन ही जाएगी। और जीसस की तटस्थता बहुत उदासी बन गई है। अगर न मै यह चुनू, न वह चुनू, अगर कोई चुनाव न हो तो मेरे भीतर की बहने वाली सारी धाराएँ रुक जाएँगी। नदी न पूरब बहे न पश्चिम बहे, न दक्षिण बहे न उत्तर बहे, तटस्थ हो जाय तो वह उदास तालाब बन जाएगी। तालाब भी सागर तक पहुच जाता है लेकिन नदी के रास्ते से नही, सूर्य की किरण के रास्ते से पहुचता है। नदी, जो बीच का रास्ता नाचते हुए, गीत गाते हुए तय करती है वह भाग्य तालाब का नही है। तालाब सूखता है धूप मे, गर्मी मे उत्तप्त होता है, उडता है, भाप बनता है, बादल बनता है। सागर तक पहुच जाता है। लेकिन नदी की मुदिता, उसकी प्रफुल्लता, उसकी 'एक्सटैसी' तालाब को नही मिलती। तालाब नाचता हुआ बादलो पर नही चढता, नदी नाचती हुई सागर मे उतर जाती है। तालाब सीधा कभी सागर तक नही पहुचता, बीच मे भाप बनता है, फिर पहुचता है। तो जीसस एक उदास बादल की तरह है जो आकाश मे मडराता है और सागर की यात्रा करता है। नाचती हुई नदी की तरह नही है।

बुद्ध और जीसस की जीवन-व्यवस्था मे थोडी निकटता है, लेकिन एकदम निकटता नही है। क्योंकि बुद्ध और तरह के व्यक्ति हैं। जहा जीसस की तटस्थता जीसस को उदास कर जाती है वहा बुद्ध की उपेक्षा बुद्ध को सिर्फ शात कर जाती है, उदास नही। तटस्थता और उपेक्षा मे इतना ही फर्क है। उपेक्षा मे न उदासी है जीसस जैसी, न कृष्ण जैसा नाचता हुआ गीत है, न महावीर जैसा झरता हुआ अप्रगट सुख और आनन्द है। बुद्ध शात है, तटस्थ नहीं है वे। तटस्थता तो उदासी ले ही आएगी। वे उपेक्षा को उपलब्ध है। पाया है कि यह भी व्यर्थ है, पाया है कि वह भी व्यर्थ है इसलिए उत्तेजित होने का उन्हें कोई उपाय नही रहा है। उन्हे कोई भी

'आल्टरनेटिव', कोई भी विकल्प उत्तेजित नही कर पाता। सब विकल्प समान हो गए हैं। जीसस के लिए तटस्थता है। विकल्प समान हैं, पर जीसस अभी भी कहेगे, यह ठीक है और वह गलत है। यह करो और वह मत करो। यद्यपि वे दोनो से तटस्थ हैं, लेकिन बहुत गहरे मे उनका चुनाव जारी है। बुद्ध अचुनाव को, 'च्वाइसलेसनेस' को उपलब्ध होते है। बुद्ध को अगर हम ठीक से समझे तो बुध्द के लिए न कुछ सही है न कुछ गलत है। सिर्फ चुनाव ही गलत है और अचुनाव सही होना है। 'च्वाइस' गलत है 'च्वाइसलेसनेस' सही है, इसलिए जीसस अपनी तटस्थता मे, 'होली इनडिफरेंस' मे भी मदिर मे जाकर कोडा उठा लेते है और सूदखोरो को कोडे से पीट देते है, उनके तख्त उलट देते है। यहूदियो के मदिर मे, सिनागाग मे पुरोहित ब्याज का काम भी करते थे। हर वर्ष लोग इकट्ठे होते थे मेले पर, और तब वे उन्हे उधार देते थे और सूद लेते थे। सूद की दरे इतनी बढ गई थी कि लोग अपना मूल तो कभी चुका ही नही पाते थे। जिदगी भर मेहनत करके बस इतना ही काम करते थे कि वह हर वर्ष आकर पुरोहितो को उनके ब्याज का पैसा चुका जाएँ। पूरे मुल्क का धन सिनागाग मे इकट्ठा होने लगा। तो जीसस कोडा उठा लेते है, तख्ते उलट देते है सूदखोरो के। जीसस तटस्थ है लेकिन चुनाव जारी है। वे कहते है कि इस जगत के प्रति एक तटस्थता चाहिए। लेकिन इस जगत मे अगर गलत हो रहा है, तो जीसस चुनाव करते है। लेकिन बुद्ध को हम हाथ मे कोडा उठाए हुए नही सोच सकते। उनका कोई चुनाव ही नही है। अचुनाव के कारण वे गहरी साइलेंस मे, गहरी शाति को उपलब्ध हुए है। इसलिए, बुद्ध को समझते वक्त 'शाति' सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द है। बुद्ध की प्रतिमा से जो भाव प्रकट होता है और झरता है चारो तरफ वह शाति का है। कहना चाहिए शाति, मूर्तिमत बुद्ध मे हुई है। कोई उत्तेजना नही है। तालाब की उत्तेजना भी नही है। तालाब भी कम-से-कम धूप की किरणो मे भाप बनता है और आकाश की तरफ उडता है। बुद्ध इतने शात है कि वे कहते है कि मै सागर की तरफ जाने की भी उत्तेजना नही लेता। सागर को आना हो तो आ जाय। वे इतनी भी यात्रा करने की तैयारी में नहीं है। उतनी यात्रा भी तनाव है। इसलिए, बुद्ध ने सागरवाची जितने भी प्रश्न है सबको इन्कार कर दिया। कोई पूछे ईश्वर ह, कोई पूछे ब्रह्म है, कोई पूछे मोक्ष है, कोई पूछे आत्मा का मरने के बाद क्या होता है? इस तरह के जितने भी प्रश्न है बुद्ध उनको हस कर टाल देते है। वे कहते है यह पूछो ही मत। क्योंकि, अगर कुछ भी है तो उस

तक की यात्रा पैदा होती है और यात्रा अशान्ति बन जाती है। वे कहते हैं—मैं जहा हूँ वहीं हूँ। मुझे कोई यात्रा नही करनी है, मुझको कोई तनाव नहीं करना है। इसलिए, अगर बुद्ध की उपेक्षा बहुत गहरे मे देखें तो सिर्फ ससार की उपेक्षा नही है। जीसस की उपेक्षा सिर्फ ससार की उपेक्षा है, लेकिन परमात्मा का चुनाव जारी है। बुद्ध की उपेक्षा परमात्मा की भी उपेक्षा है। वे कहते है, परमात्मा को भी पाना है तो यह भी तो मन की 'डिजायर', तृष्णा और ईर्ष्या है। आखिर नदी क्यो सागर को पाना चाहे, और नदी सागर को पाकर भी क्या पा लेगी? अगर सागर मे ज्यादा जल है तो मात्रा का ही फर्क पडता है। नदी मे भी जल है, और सागर के जल मे और नदी के जल मे फर्क क्या है! बुद्ध कहते हैं, हम जो हैं—है, और वहीं शात है। इसलिए, बुद्ध की उपेक्षा यात्राविहीन है। बुद्ध के चेहरे पर, बुद्ध की आखो मे यात्रा नही देखी जा सकती है। वे स्थिर है, ठहर गये है, वही है, जैसे कोई ताल बिल्कुल शात हो। न नदी की तरह भागता हो, न आकाश की तरफ उडता हो, बिल्कुल शात हो। एक लहर भी न उठती हो, एक 'रिपल' भी पैदा न होती हो। ऐसे बुद्ध का होना है।

स्वभावत बुद्ध की शाति 'निगेटिव' होगी, नकारात्मक होगी। उसमे कृष्ण का प्रकट आनद नहीं हो सकता, उसमे महावीर का अप्रकट आनद भी नहीं हो सकता। लेकिन, जो इतना शात होगा कि जिसे सागर तक पहुचने की इच्छा भी नही है, क्या वह अतत आनद को उपलब्ध नहीं हो जायगा? हो जायगा। लेकिन, वह बुद्ध की भीतरी दशा होगी। उनके अतरतम मे वह आनद का दिया जलेगा, लेकिन बाहर उनकी सारी-की-सारी आभा, उनका जो प्रभामडल है, वह शाति का होगा। दिये की गहरी ज्योति जहा होगी वहा तो आनद होगा, लेकिन उसका प्रभामडल सिर्फ शाति का होगा। बुद्ध को हिलते डुलते सोचना भी कठिन मालूम पडता है। बुद्ध की कोई चितना करे, सोचे तो ऐसा भी नही लगता कि यह आदमी उठकर चला भी होगा। उनकी प्रतिमा देखें तो ऐसी लगती है जैसे यह आदमी सदा बैठा ही रहा हो! यह उठा भी होगा, हिला भी होगा, डुला भी होगा, इसने पैर भी उठाया होगा, इसने ओठ ही खोला होगा, यह बोला भी होगा ऐसा भी मालूम नही पडता। बुद्ध की प्रतिमा 'जस्ट स्टिलनेस' की प्रतिमा है, जहा सब चीजे ठहर गयी है, जहां 'मूवमेंट' नही है, किसी तरह की कोई गति नहीं है। तो, बुद्ध की आभा जो है वह शान्ति की है। फिर, बुद्ध की उपेक्षा समस्त तनावों की उपेक्षा है। चाहे वे तनाव मोक्ष के ही क्यो न हो। कोई आदमी मोक्ष ही क्यो न पाना चाहे, बुद्ध कहेगे, कि पागल हो! कहीं मोक्ष है? कोई कहे आत्मा

को पाना है, तो बुद्ध कहेंगे, कि पागल हो ! कहीं आत्मा है ? असल मे जबतक पाना है तबतक बुद्ध कहेंगे, तुम पा न सकोगे। तुम उस जगह खडे हो जाओ जहा पाना ही नहीं है। तब तुम पा लोगे। लेकिन, यह बात वे कभी साफ कहते नहीं हैं। क्योंकि, अगर वे इतना भी कहे कि तब तुम पा लोगे,तो हम तत्काल पाने को दौड पडेंगे। तो, बुद्ध सिर्फ निषेध करते जाते है। वे कहते है—न परमात्मा है, न आत्मा है, न मोक्ष है, कोई भी नही है। है ही नही कुछ ! क्योंकि, जबतक कुछ है तबतक तुम पाना चाहोगे। और जबतक, तुम पाना चाहोगे तबतक तुम न पा सकोगे। क्योंकि, जो भी पाना है वह ठहर के, रुक के, मौन मे, थिरता मे, शून्य मे पाना है। और तुम्हारी चाह, तुम्हारी तृष्णा तुम्हें दौडाती रहेगी। तृष्णा मूल है बुद्ध के लिए, और उपेक्षा सूत्र है तृष्णा से मुक्ति का। चुनो ही मत, पूछो ही मत कि कहीं जाना है। मजिल बनाओ ही मत, मजिल नही है कोई।

जीसस के लिए मजिल है। इसलिए, जगत के प्रति वे एक 'होली इनडिफरेस' पवित्र तटस्थता की बात करते है। लेकिन, परमात्मा के प्रति उनकी इनडिफरेस नही हो सकती। अगर हम जीसस से पूछे कि बुद्ध तो कहते है, कोई परमात्मा नहीं है। कैसा परमात्मा ? कोई आत्मा नहीं है। कैसी आत्मा ? न कुछ पाने को है, न कोई पानेवाला है। बुद्ध जो बात करते है वह बहुत अद्भुत है। अगर उनसे पूछो कि कोई भी नहीं है, तो वे कहते है यह जो हमे दिखाई पड रहा है सिर्फ सघटन है, सिर्फ सघात है, सिर्फ एक 'कम्पोजीशन' है। जैसे रथ है—उसका चाक अलग कर ले, घोडे अलग कर ले, बल्ली अलग कर ले, तो फिर रथ पीछे नही बचता। रथ सिर्फ एक जोड है। ऐसे ही तुम भी एक जोड हो। यह सारा जगत एक जोड है। चीजे टूट जाती है पीछे कुछ भी नही बचता। न कोई आत्मा, न कोई परमात्मा और, यही पाने योग्य है। लेकिन, यह सदा बुद्ध भीतर कहते है। यह कभी बाहर नहीं कहते। इसलिए, जो बहुत गहरे समझ सकते है वही समझ पाते है, अन्यथा बुद्ध के पास से तृष्णालु व्यक्ति सभी लौट जाते है। जिसको कुछ भी पाना है वह कहते है यह आदमी व्यर्थ है। इसके पास पाने को कुछ भी नही है। शात होने को हम नही आये है, हम कुछ पाने को आये है। बुद्ध उनपर हसते है। क्योंकि,वे कहते है शात होकर पाया जा सकता है। वह जो परमात्मा है, शात होकर ही पाया जा सकता है। वह जो आत्मा है, उसे शात होकर ही पाया जा सकता है। वह जो मोक्ष है, तुम उसको लक्ष्य मत बनाओ। तुम अगर मुझसे पूछोगे मोक्ष है ? और म कहू—है, तो तुम तत्काल लक्ष्य बना लोगे। और, लक्ष्य की तरफ दौडता आदमी

कभी शान्त नही होता है। इसलिए, बुद्ध की अपनी तकलीफ है। उनकी उपेक्षा शान्ति को ले जाती है—इतनी गहरी शान्ति मे जहा कोई यात्रा ही नहीं है।

महावीर की वीतरागता, बुद्ध की शान्ति से मेल खाती है थोडी दूर तक। क्योकि, इस जगत मे वे भी उपेक्षा के पक्ष मे है। और, थोडी दूर तक महावीर की वीतरागता जीसस से मेल खाती है। क्योकि, उस जगत मे मोक्ष के प्रति उनका चुनाव है। महावीर मोक्ष के प्रति अचुनाव मे नही है। क्योकि, महावीर कहेगे, अगर मोक्ष भी नही है तो फिर शाति होने का प्रयोजन भी क्या है? फिर, अशात होने मे हर्जा भी क्या है? अगर कुछ पाने को ही नहीं है तो फिर चुप और मौन बैठने का प्रयोजन भी क्या है? महावीर कहेगे कि सब छोडा जाय, यदि कुछ पाने को है, और जो पाने को है उसी के लिए सब छोडा जा सकता है। इसलिए, मोक्ष के प्रति महावीर की उपेक्षा नही है। वीतरागता उनकी, इस जगत का जो द्वन्द्व है, उसके पार ले जाने वाली है। निर्द्वन्द्व की उपलब्धि का मार्ग है। लेकिन, महावीर की वीतरागता किसी उपलब्धि का मार्ग है, बुद्ध की उपेक्षा अनुपलब्धि का द्वार है जहा सब शून्य हो जायगा और सब खो जायगा। बुद्ध का सन्यास एक अर्थ म पूर्ण है। उसमे परमात्मा की भी माग नही है। महावीर के सन्यास मे मोक्ष की जगह है। महावीर यह कहते है कि सन्यास सभव ही नही है, अगर मोक्ष नही है, तो फिर सब किस लिए? क्योकि, महावीर का चिंतन बडा वैज्ञानिक और 'कॉजल' है। महावीर कहते है कोजलिटी के बिना, कार्य-कारण बिना कुछ होता ही नही। इसलिए, वे बुद्ध से राजी नही होंगे कि हम सिर्फ शात हो जाय बिना किसी वजह के। महावीर कहते है, अशात होने की भी वजह होती है और शात होने की भी वजह होती है। वे कृष्ण से भी राजी न होंगे इस बात के लिए कि हम सब कुछ स्वीकार कर ले। क्योकि, महावीर कहते है, अगर हम सब कुछ स्वीकार कर लेते है तो हम आत्मवान ही नही रह जाते है, हम तो पदार्थ की तरह हो जाते है। आत्मा के होने का अर्थ यह है कि 'डिस-क्रिमिनशन'। महावीर कहते है, आत्मवान होने का अर्थ है विवेक—यह ठीक है और यह गलत है, इस बात का विवेक ही आत्मवान होने का अर्थ है। और, जो गलत है उसे छोडते जाना है। राग भी गलत है और विराग भी गलत है; इसलिए दोनो को छोड देना है और वीतरागता को पकड लेना है। महावीर के लिए वीतरागता उपलब्धि है, और वीतरागता से मोक्ष है। तो, महावीर सिर्फ शात ही नहीं है— शात तो है ही, लेकिन आनदित भी है। मोक्ष की उप-लब्धि की किरणे उनके भीतर ही नही फैलती, उनके शरीर से चारो ओर

नाचने लगती हैं। इसलिए, अगर महावीर और बुद्ध को साथ-साथ खडा करे तो बुद्ध बिल्कुल 'पैसिव साइलेंस' मे है, जैसे हों ही नहीं! महावीर 'एक्टिव साइलेंस' में है, बहुत होके है। बहुत मजबूती से है। हा, उनके होने मे चारो तरफ आनद की प्रखरता है। लेकिन, अगर कृष्ण के पास महावीर को खडा करे तो महावीर का आनद भी साइलेंट मालूम पडेगा, शात मालूम पडेगा, और कृष्ण का आनद आदोलित मालूम पडेगा। कृष्ण नाच सकते हैं, महावीर नाच नही सकते। अगर महावीर के नाच को देखना है तो उनकी शाति, मौन, उनकी थिरता मे ही देखना होगा। वह दिखायी पड सकता है उनके रोयें-रोयें से, उनकी सास-सास से, उनकी आखो के हिलने-डुलने से, उनके चलने से। सब तरफ से उनका आनद दिखायी पडेगा, लेकिन वे नाच नहीं सकते। यह नाच देखना पडेगा। यह 'इनडाइरेक्ट' है, यह परोक्ष है। तो, महावीर की वीतरागता प्रकट रूप से आनद को घोषित करती है। इसलिए, महावीर की प्रतिमा और बुद्ध की प्रतिमा मे वही फर्क है। महावीर की प्रतिमा मे आनद प्रकट होता मालूम पडेगा। बुद्ध एकदम भीतर चले गये है उनके बाहर कुछ जाता हुआ मालूम नहीं पडता। वह बिल्कुल ऐसे हो गये हैं जैसे 'न हो'! महावीर ऐसे हो गये है जैसे 'हो'! महावीर स्वय हो गये है, जैसे पूरी तरह हैं। उनके अस्तित्व की घोषणा समग्र है, इसलिए महावीर ईश्वर को इन्कार कर देते है, लेकिन आत्मा को इन्कार नही कर पाते। महावीर कह देते है कोई परमात्मा नही है—हो भी कैसे सकता है? मै ही परमात्मा हूँ। इसलिए, महावीर कहते है, आत्मा ही परमात्मा है। तुम सब परमात्मा हो, कोई और अलग परमात्मा नहीं है। यह घोषणा उनकी प्रगाढ आनद की 'एक्सटेसी' से निकलती है। हर्षोन्माद मे वे यह घोषणा करते है कि मैं ही परमात्मा हूं। कोई और ऊपर परमात्मा नही है। क्योकि, महावीर कहते है, अगर मुझसे ऊपर कोई भी परमात्मा है तो फिर मे कभी पूरी तरह स्वतत्र नही हो पाऊगा। स्वतत्रता की फिर कोई सभावना न रही। एक परमात्मा ऊपर बैठा ही है। अगर मेरे ऊपर कोई एक नियता है, जिसके कानून से जगत चलता है, तो मेरी मुक्ति का क्या अर्थ है? कल अगर वह सोच ले कि वापस भेज दो इस मुक्त आदमी को ससार मे, तो मै क्या कर सकूगा? इसलिए, महावीर कहते हैं — स्वतत्रता की गारटी सिर्फ इसमें है कि परमात्मा न हो। परमात्मा और स्वतत्रता दोनो साथ-साथ नहीं चल सकते है। इसलिए, परमात्मा को इन्कार कर देते है, लेकिन आत्मा को बडी प्रगाढता से घोषित करते है कि आत्मा ही परमात्मा है। इसलिए, महावीर मे प्रकट आनन्द दिखाई पडता है। वह उनकी

वीतरागता है। वीतरागता में वे बुद्ध से सहमत हैं अचुनाव के लिए। राग और विराग में चुनाव नहीं करना है, लेकिन ससार और मोक्ष मे चुनाव नहीं करना है, इस बात मे वे बुद्ध से राजी नही है। वे कहते है—ससार और मोक्ष मे तो चुनाव करना ही है। इस मामले मे वे जीसस से राजी है। इस मामले में जीसस की तटस्थता उनके करीब आती है। लेकिन जीसस का परमात्मा परलोक मे है और मरने के बाद ही जीसस प्रसन्न हो सकते है, जब परमात्मा से मिल जाय। महावीर का कोई परमात्मा परलोक मे नही है। महावीर का परमात्मा भीतर है और वह यहीं पाकर प्रसन्न है। इसलिए, जीसस उदास है और महावीर उदास नहीं है।

कृष्ण की अनासक्ति का भी तीनो से कुछ तालमेल है और कुछ बुनियादी भेद भी है। कृष्ण को अगर हम इन तीनो का इकट्ठा जोड और कुछ ज्यादा कहे तो कठिनाई नही है। कृष्ण की अनासक्ति उपेक्षा नही है। कृष्ण कहते है—जिसके प्रति उपेक्षा हो गयी उसके प्रति हम अनासक्त नहीं हो सकते। क्योकि, उपेक्षा भी विपरीत आसक्ति है। रास्ते से मै गुजरा और मैंने आपकी तरफ देखा ही नहीं। देखने मे भी एक आसक्ति है, न देखने मे भी एक आसक्ति है। सिर्फ विपरीत आसक्ति है, कि नही देखूगा। फिर, कृष्ण कहते है—उपेक्षा किसके प्रति ? क्योकि, परमात्मा के अतिरिक्त कुछ है ही नही। जिसके प्रति भी उपेक्षा हुई, वह परमात्मा ही है। यह जगत पूरा-का-पूरा ही अगर परमात्मा है, तो उपेक्षा किसके प्रति ? और, उपेक्षा करेगा कौन ? और, जो उपेक्षा करेगा वह अहकार से मुक्त कैसे होगा ? मै करूगा उपेक्षा ? बुरे की उपेक्षा करूगा अच्छे के लिए, ससार की उपेक्षा करूगा मोक्ष के लिए ! करेगा कौन? और, करेगा किसकी? इसलिए, उपेक्षा जैसे नकारात्मक और 'कडेमनेटरी', निंदात्मक शब्द का उपयोग कृष्ण नही कर सकते। तटस्थता का भी उपयोग वे नही कर सकते। क्योकि, कृष्ण कहेगे—परमात्मा खुद भी तटस्थ नही है, तो हम कैसे तटस्थ हो सकते है ? तटस्थ हुआ नहीं जा सकता। कृष्ण कहते है—हम सदा धारा मे है, तट पर हो नही सकते। जीवन एक धारा है। जीवन का कोई तट है ही नही जिस पर हम खडे हो जाय, और तटस्थ हो जाय, और हम कह दें कि हम धारा के बाहर है। हम जहा भी है धारा के भीतर हैं, हम जहा भी है जीवन में है, हम जहा भी है अस्तित्व मे है। तट पर हम खडे हो नहीं सकते। होना ही, अस्तित्व ही—धारा है। इसलिए, तटस्थ हम होगे कैसे ? हा, नदी के किनारे हम तट पर खडे हो जाते है। नदी बहती जाती है। हम तट पर खडे रहते हैं।

लेकिन, जीवन की ऐसी कोई नदी नहीं है जिसके किनारे हम खड़े हो जाय। जीवन की नदी का कोई किनारा ही नहीं है, तो तटस्थता शब्द का प्रयोग वे नहीं कर सकते। उपेक्षा शब्द का वे प्रयोग नहीं कर सकते। वीतराग शब्द का वे इसलिए प्रयोग नही कर सकते, क्योकि वे यह कहते है कि अगर राग बुरा है, अगर विराग बुरा है, तो है ही क्यो ? बुरे का अस्तित्व भी कैसे हो सकता है ? या तो हम ऐसा माने कि जगत मे दो शक्तिया है। एक शुभ की, परमात्मा की शक्ति है। एक अशुभ की, शैतान की शक्ति है। जैसा कि जरथुस्त्र मानते है, जैसा कि ईसाई मानते है, जैसा कि मुसलमान मानते हैं। उन सबकी तकलीफ यही है कि अगर जगत मे अशुभ है तो फिर अशुभ की शक्ति हमे अलग करनी पड़ेगी परमात्मा से, अन्यथा परमात्मा फिर अशुभ का भी स्रोत है। वह जरथुस्त्र नही सोच पाये, मोहम्मद नही सोच पाये। जीसस भी राजी नही है। इसलिए, शैतान, डैविल, अशुभ के लिये हमे कोई जगह बनानी पड़ती है। कृष्ण यह कहते है कि अगर अशुभ भी है, अलग भी है, तो भी क्या वह परमात्मा की आज्ञा से है, या परमात्मा की आज्ञा के बिना है ? उसके होने मे भी परमात्मा के सहारे की जरूरत है, या वह स्वतन्त्र रूप से है ? तो, वह ठीक परमात्मा के समतुल शक्ति हो गयी। फिर, इस जगत मे शुभ कभी फलित नहीं हो सकता। फिर, वह हारेगा भी क्यो ? हारने की जरूरत भी क्या है ? फिर, इस जगत मे दो परमात्मा होगे। और, इस जगत मे दो परमात्मा की कल्पना असभव है। इसलिए, कृष्ण कहते है—शक्ति एक है और उसी शक्ति से सब उठता है। जिस शक्ति से स्वस्थ फल लगता है वृक्ष मे, उसी शक्ति से सड़ा हुआ फल भी लगता है। उसके लिए किसी अलग शक्ति के होने की जरूरत नही है। और, जिस चित से बुराई पैदा होती है उसी चित्त से भलाई पैदा होती है। उसके लिए अलग शक्ति की जरूरत नही है। शुभ और अशुभ एक ही शक्ति के रूपातरण है। अधकार और प्रकाश एक ही शक्ति के रूपातरण है। इसलिए, कृष्ण यह कहते है कि मै दोनो को छोड़ने को नहीं कहता। दोनो को उनकी समग्रता मे जीने को कहता हूं।

अनासक्ति का अर्थ, एक के पक्ष मे दूसरे की आसक्ति नहीं, शुभ के पक्ष मे अशुभ की आसक्ति नही। आसक्ति ही नही, चुनाव ही नहीं, और जीवन जैसा है वह समग्र जीवन की पूर्ण स्वीकृति और इस समग्र जीवन के प्रति स्वय का पूर्ण समापन, पूर्ण समर्पण। 'अनासक्ति' का अर्थ यह है कि मै अलग हूं नहीं, एक ही हूं इस जगत से। कौन चुने, किसको चुने ? जगत जैसा करवा रहा है वैसा मैं लहर की तरह सागर मे बहा जा रहा हूँ। मै अलग हूं ही नहीं। इसमे कुछ

समानताए मिलेगी। कृष्ण, बुद्ध जैसी शाति को उपलब्ध हो जायेंगे, क्योकि कुछ उन्हे पाना नहीं है। जो भी है, वह पाया हुआ है। वे महावीर जैसे वीतराग दिखायी पडेंगे किन्हीं क्षणों मे; क्योकि उनके आनद का कोई पारावार नहीं है। वे जीसस जैसे परमात्मा की घोषणा करते दिखायी पडेंगे, इसलिए नहीं कि इस लोक मे और ऊपर के लोक मे परमात्मा कहीं बैठा है, बल्कि सब कुछ परमात्मा ही है। कृष्ण की अनासक्ति समग्र समर्पण है, मैं का 'न' हो जाना है, 'मैं' है ही नहीं यह जानना है। इसके जान लेने के बाद, जो हो रहा है वह हो रहा है, इसमे, कोई उपाय ही नहीं है। इसमे हम कुछ कर सकते है ऐसा है ही नही। इसमे हमारे द्वारा कुछ हो सकता है इसकी कोई सभावना ही नहीं है। कृष्ण अपने को एक लहर की तरह सागर मे देखते है। कोई चुनाव नहीं करना है, इसलिए कोई आसक्ति नही है। अनासक्ति की यह स्थिति अगर ठीक से हम समझे तो स्थिति नही है, 'स्टेट्स आफ माइड' नही है, यह समस्त 'स्टेट्स् आफ माइड' को छोड देना है। समस्त स्थितियो को छोड देना है और अस्तित्व के साथ एक हो जाना है। इसमे कृष्ण वहीं पहुच जाते हैं जहा अपनी-अपनी सकरी गलियो से महावीर पहुच जाते है, जीसस पहुच जाते है, बुद्ध पहुच जाते है। लेकिन, उनके चुनाव पगडडियो के है। कृष्ण का चुनाव राजपथ का है। पगडडियोवाला भी पहुच जाता है। पगडडियो की सुविधाए भी है, असुविधाए भी है। राजपथ की भी सुविधाए है, असुविधाए है।

व्यक्तिगत चुनाव है। कुछ लोग है जो पगडडियो पर ही चलना पसद करेंगे। उन्हे चलने का मजा ही तब आयेगा जब पगडडी होगी, जब वे अकेले होगे। जब न कोई आगे होगा, न कोई पीछे होगा। जब भीड के धक्के न होंगे, और जब प्रतिपल उन्हे रास्ते खोजने पडेंगे घने जगल मे, तभी उनकी चेतना को चुनौती होगी। वह पगडडियो को खोजकर ही पहुचेगे। कुछ लोग हैं जो पगडडियो पर चलना बिल्कुल आनदपूर्ण न पायेंगे। अकेला होना उन्हें भारी पड जायगा। सबके साथ होना ही उनका होना है, सबके साथ ही उनका आनद है। आनद उनके लिए सह-जीवन, सहयोग मे, साथ मे है, सग मे है। राजपथ पर चलेगे। निश्चित ही, पगडडियो पर चलनेवाले उदास चित्त ही चल सकते हैं। राजपथ पर चलनेवाले उदासी से चलेगे तो पगडडियो पर धक्का दे दिये जायेंगे। राजपथ पर, जहा लाखो लोग चलेगे, वहा नाचते हुए ही चला जा सकता है, वहा गीत गाते हुए ही चला जा सकता है। पगडडियो पर चलनेवाले शाति से चल सकते हैं, राजपथ पर चलनेवालो पर अशाति के बादल भी आते रहेंगे। उनको उसके लिए भी राजी

होना पड़ेगा। वही उनकी शांति होगी। पगडंडी पर चलनेवाले अपनी निपट निजता के आनंद में तल्लीन हो सकते हैं। राजपथ पर चलनेवालों को दूसरों के सुख-दुख में भागीदार भी होना पड़ेगा। यह सब भेद होंगे। लेकिन कृष्ण जैसा मैंने कहा, 'मल्टी डाइमेंशनल' हैं। उनका चुनाव राजपथ का है। और ठीक से अगर हम समझें तो परमात्मा तक पहुंचने का कोई एक मार्ग नहीं बन सकता है कि वह परमात्मा तक पहुंचा दे। परमात्मा तक पहुंचने के लिए कोई बना हुआ मार्ग नहीं है। सब अपनी तरह से, अपने ढंग से पहुंच सकते हैं। पहुंचने पर, यात्रा एक ही मंजिल पर पूरी हो जाती है—उनकी भी, जो वीतरागता से जाते हैं—उनकी भी, जो तटस्थता से जाते हैं—उनकी भी, जो उपेक्षा से जाते हैं—उनकी भी, जो आनन्द से जाते हैं।

मंजिल एक है, रास्ते अनेक हैं। प्रत्येक व्यक्ति को उसके क्या अनुकूल है उसे चुन लेना चाहिए। उसे इसकी बहुत चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि कौन गलत है, कौन सही है। उसे इस फिक्र मे ही पड़ना चाहिए कि उसके अनुकूल, उसके स्वभाव के अनुकूल क्या है।

प्रश्न गीता मे उल्लेख है कि उत्तरायण का सूर्य हो तब जिसका अंत होता है तो मोक्ष होता है यदि दक्षिणायन का सूर्य हो तो क्या कोई तकलीफ पड़ती है? स्थितप्रज्ञ और भक्त के विषय में गीता मे जो बात कही है इन दोनों में क्या समानता व भिन्नता है?

स्थितप्रज्ञ मनुष्य सुख मे अनुद्विग्न रहेगा और दुख मे भी अनुद्विग्न रहेगा तो ऐसी मुसीबत खड़ी होने की शक्यता नहीं कि सुख-दुख दोनों में उसकी संवेदनशीलता 'सेंसिटीविटी' 'ब्लंट' हो जाय! अगर सुख को सुख की भांति और कष्ट को कष्ट की भांति न लें तो उसकी संवेदना को मन कैसे कहेंगे हम?

उत्तर. यह सूत्र बहुत बहुमूल्य है। कृष्ण का यह कहना कि सुख और दुख मे अनुद्विग्न रहे वही स्थितप्रज्ञ है। यह प्रश्न बहुत अच्छा है। महत्वपूर्ण है कि यदि सुख में कोई सुखी न हो और दुख मे कोई दुखी न हो तो क्या उसकी संवेदनशीलता, उसकी 'सेंसिटीविटी' मर नहीं जायेगी? दो उपाय हैं, सुख मे और दुख मे अनुद्विग्न होने के। एक उपाय यही है जो प्रश्न में उठाया गया है कि, अगर संवेदनशीलता मार डाली जाय तो सुख सुख जैसा मालूम न होगा, दुख दुख जैसा मालूम न होगा। जैसे कि जीभ जला दी जाय तो न प्रीतिकर स्वाद का पता चलेगा, न अप्रीतिकर स्वाद का पता चलेगा। जैसे, आंखें फोड़ डाली जाय तो न अन्धेरे का

पता चलेगा, न उजाले का पता चलेगा। जैसे कि कान नष्ट कर दिये जायं तो न संगीत का पता चलेगा, न विसंगीत का पता चलेगा। सीधा रास्ता यही मालूम पड़ता है कि संवेदनशीलता नष्ट कर दी जाय, 'सेंसिटीविटी' मार डाली जाय तो व्यक्ति दुख-सुख मे अनुद्विग्न हो जायेगा। और, साधारणत कृष्ण को न समझने वाले लोगो ने ऐसा ही समझा है। और, ऐसा ही करने की कोशिश की है। जिसको हम सन्यासी कहते हैं, त्यागी कहते हैं, विरक्त कहते हैं वह यही करता रहा है। वह संवेदनशीलता को मारता रहा है। संवेदनशीलता मर जाय तो स्वभावत सुख-दुख का पता नही चलता। लेकिन, कृष्ण का सूत्र बहुत और है। कृष्ण कहते है, सुख-दुख मे अनुद्विग्न। वह यह नही कहते हैं कि सुख-दुख मे असंवेदनशील। सुख-दुख के पार, उनके विगत, उनके आगे, उनके ऊपर, साफ है यह बात कि सुख-दुख मिट जाय, ऐसा वह नही कहते। अगर सुख-दुख मिट जाय तो उनके पार कैसे होइयेगा? सुख-दुख का अगर पता ही न चले तो सुख-दुख मे अनुद्विग्नता का क्या अर्थ होगा? कोई अर्थ नहीं होगा। मरा हुआ आदमी सुख-दुख के बाहर होता है, अनुद्विग्न नहीं होता। नही, इसलिए मैं दूसरा ही अर्थ करता हूँ। एक और मार्ग है जो कृष्ण का मार्ग है। अगर कोई व्यक्ति सुख को पूरा अनुभव करे, इतना पूरा अनुभव करे कि बाहर रह ही न जाय, सुख मे पूरा हो जाय। सुख के प्रति पूरा संवेदनशील हो तो अनुद्विग्न हो जायेगा। क्योंकि, उद्विग्न होने को बाहर कोई बचेगा नही। अगर कोई व्यक्ति दुख मे पूरा डूब जाय, 'टोटल' दुख मे डूब जाय तो दुख के बाहर दुखी होने को कौन बचेगा? कृष्ण जो कह रहे है वह संवेदनशीलता का अन्त नही है, संवेदनशीलता की पूर्णता की बात है। अगर हम पूरे संवेदनशील हो जाय, समझे कि मुझपर दुख आया, यह मुझे पता चलता है कि दुख आया, क्योंकि दुख से अलग खड़ा होकर मैं सोचता हूँ। मैं ऐसा कहता हूँ कि मुझपर दुख आया, मैं ऐसा नहीं कहता हूँ कि मैं दुख ही हो गया हूँ। और, जब हम यह भी कहते है कि मैं दुखी हो गया हूँ तब भी फासला बनाये रखते हैं। हम ऐसा नही कहते कि मैं दुख हूँ। इसे थोडा समझना उपयोगी होगा।

हम जिन्दगी मे सब चीजो को तोडकर रख देते है जब कि वे सत्य नही हैं। जब मैं किसी से कहता हूँ कि मुझे तुमसे प्रेम है तब भाषागत ठीक बात कही जाने पर भी अस्तित्वगत रूप से गलत है। जब मुझे किसी से प्रेम होता है तो ऐसा नहीं कि मुझे किसी से प्रेम है, बल्कि ऐसा होता है कि मैं किसी के प्रति प्रेम हूँ। मैं पूरा ही प्रेम होता हूँ। मेरे पार कुछ बच ही नहीं रहता जो कि प्रेम न हो। और अगर मेरे पार इतना भी कोई बच रहता है जो कहने को भी हो कि मुझे उससे प्रेम हो गया है

तो मैं पूरा प्रेम मे नहीं चला गया हूँ। और जो पूरा प्रेम मे नहीं चला गया है वह प्रेम में गया ही नही है। वह जा ही नही सकता। जब हम पर दुख आते हैं तब हम पूरे उनमे नहीं हो जाते। अगर हम पूरे हो जाय और उनके बाहर, हमारे भीतर कुछ भी न बचे तो कौन रहेगा, कौन उद्विग्न होगा, कौन पीड़ित होगा? मै दुख ही हो जाऊ तो सवेदनशीलता पूर्ण होगी। अपनी पूरी त्वरा मे, अपनी पूरी चरमता मे होगी। क्योकि, मेरी पुलक-पुलक और रोया-रोया दुख से भर जायेगा। मेरी आख, मेरा श्वास, मेरा अस्तित्व दुख हो जायेगा। लेकिन तब, उद्विग्न होने को कोई नहीं बचेगा। मैं दुखी हूँ, उद्विग्न कौन होगा? ऐसे ही जब सुख आये तो मैं पूरा सुख हो जाऊ तो उद्विग्न कौन होगा? मै सुख ही हो जाऊगा। और, अगर सुख और दुख मे मैं इस तरह पूरा होता चला जाऊ तो कभी सुख और दुख की 'कम्परीजन', तुलना करने का मौका किस पर आयेगा? कौन तोलेगा कि जब मैं दुखी था तो बहुत बुरा था, अब मैं सुखी हूँ तो बहुत अच्छा है, और अब आगे भी सुख ही होना चाहिए, दुख नही होना चाहिए। प्रतिपल हमारे पूरे अस्तित्व को घेर ले तो सवेदनशीलता समग्र होती है, पूर्ण होती है, लेकिन उद्विग्नता खो जाती है। उद्विग्नता का कोई, कारण नहीं रह जाता।

एक मित्र मेरे पास आये अभी दो दिन पहले और उन्होंने कहा, मैं सिगरेट पीता हूँ और इससे बडा परेशान हूँ। मैंने कहा कि मालूम होता है कि तुमने अपने को दो हिस्सो मे तोडा होगा। एक सिगरेट पीने वाला, एक परेशान होने वाला। नही तो यह कैसे सभव है? या सिगरेट पियो, या परेशान होओ। ये दो बाते एक साथ तभी सभव हैं जब तुमने अपने को दो हिस्सो मे तोड लिया। तुमने अपने दो 'सेल्फ' बनाये, एक जो सिगरेट पिये चली जाती है, और एक जो पश्चाताप किये चली जाती है। वह जो पश्चाताप करती है वह पश्चाताप करती रहेगी जिन्दगी भर, और जो सिगरेट पीती है वह जिन्दगी भर सिगरेट पीती रहेगी। जो पश्चाताप करती है वह कभी-कभी नियम व्रत भी लेगी। और जो पश्चाताप नही करती सिगरेट पीती है, वह नियम व्रत तोडेगी। मैंने उनसे कहा, या तो तुम सिगरेट ही पियो या पश्चाताप ही करो। दो दो काम एक साथ करोगे तो कष्ट पैदा होता है। सिगरेट पियो तो सिगरेट पीने वाले ही हो जाओ। फिर, पीछे बचाओ मत अपने को। वह जो दूर खड़ा होकर कहे कि बुरा कर रहे हो, भला कर रहे हो उसे पार मत बचाओ। और, मैंने उनसे कहा, अगर किसी दिन पूरी सिगरेट पियो और पूरे हो जाओ, तो पूरा आदमी सिगरेट छोड भी सकता है। क्योंकि, तब वह पूरी तरह कर सकता है छोड़ना भी। जब पीना पूरा कर सकता है तो छोड़ना भी पूरा कर सकता है।

अब वह दुविधा में नहीं जीता है। यह जो अधूरा-अधूरा बटा हुआ आदमी है वह कष्ट पाता है। इसके कष्ट का अन्त नहीं है, यह कष्ट झेले ही चला जाता है। यह हर हालत में उद्विग्न होगा। उद्विग्नता इसका भाग्य बन जायेगी, यह अनुद्विग्न हो ही नहीं सकता। अनुद्विग्न वही हो सकता है जो टोटल है, पूरा है। ऐसा व्यक्ति साक्षी नहीं हो सकेगा। ऐसा व्यक्ति साक्षी के पार जा चुका। साक्षी सिर्फ साधन है, सिद्धि नहीं है। कृष्ण साक्षी नहीं है। अर्जुन को कह रहे हैं कि तू साक्षी हो जा। कृष्ण सिद्ध है। सिद्ध मतलब ही यह है कि अब इतना भी फासला नहीं तोडा जाता कि कौन देख रहा है और कौन दीखने वाला है। अब तो सिर्फ देखने की क्रिया रह गयी, जिसके दो छोर है। एक पर लोग कहते हैं, दिखायी पडने वाला है, एक छोर पर लोग कहते है कि देखने वाला है। और देखना पूरा हो गया है। वह इकट्ठा है।

साक्षी जगत को दो मे तोड़ता है। 'आब्जेक्ट' और 'सब्जेक्ट' मे। देखने वाले मे, दिखायी पडने वाले मे। साक्षी कभी भी अद्वैत नही है। साक्षी द्वैत की अंतिम सीमा-रेखा है। वह जगह है, जहा तख्ती लगी है कि अब अद्वैत शुरू होता है। लेकिन, साक्षी हुए बिना कोई अद्वैत मे मुश्किल से जा पाता है। साक्षी होने का मतलब है, हमने बहुत मे तोडना बन्द किया, दो मे तोडना शुरू किया। दो मे तोडने के बाद बहुत कठिन नहीं है। क्योकि, जो आदमी साक्षी होगा उसे साक्षी होने मे कभी-कभी वे क्षण बीच मे आयेंगे जब वह पायेगा, न साक्षी रह गया, न जिसका साक्षी था वह रह गया। सिर्फ साक्षी होना रह गया। जैसे कि मै किसी को प्रेम करता हूँ, तो प्रेम करने वाला है, प्रेम किया जा रहा है— वह है। लेकिन, प्रेम मे ऐसे क्षण आते है जब करने वाला भी नही बचता और जिसे किया जा रहा है वह भी नही बचता, सिर्फ प्रेम की एक लहर बचती है जो दोनो को छूती है। एक लहर—जिसके एक छोर पर करने वाला होता है, एक छोर पर किया जाने वाला है। प्रेम के गहरे क्षणो में प्रेमी और प्रेमिका या प्रेम-पात्र नही बचते, प्रेम ही बचता है। वह अद्वैत के क्षण हैं। साक्षी मे भी ऐसे क्षण आते है जब 'सब्जेक्ट', 'ऑब्जेक्ट' मिट जाते है, सिर्फ 'कासेसनेस' रह जाती है जिसके दो छोर रह जाते है। एक दूर वाला छोर, एक पास वाला छोर। पास वाला छोर, जिसे हम 'मैं' कहते रहे हैं, दूर वाला छोर जिसे हम 'तू' कहते रहे है, लेकिन अब यह एक ही लहर के दो छोर हैं। जिस दिन यह स्थिति पूर्णता को उपलब्ध हो जाती है और कभी नहीं खोती उस दिन साक्षी मिट जाता है। उस दिन सिद्ध रह जाता है।

कृष्ण साक्षी नहीं हैं। हां, कृष्ण अर्जुन से साक्षी होने की बात कह रहे हैं। पूरे समय साक्षी होने की बात कह रहे हैं और उस क्षण की भी चर्चा चलाये आ रहे हैं जब कि साक्षी भी मिट जायेगा। वे साधन की भी बात कर रहे हैं, साध्य की भी बात कर रहे हैं। वे रास्ते की भी बात कर रहे हैं, वे मंजिल की भी बात कर रहे हैं। जब वे कह रहे हैं कि सुख-दुख में अनुद्विग्न, तब वे साक्षी की बात नहीं कर रहे हैं। हालांकि गीता समझने वाले बहुत लोगों ने ऐसा ही समझा है कि वे साक्षी की बात कर रहे हैं। यही समझा है कि सुख के तुम साक्षी हो जाओ। देखते रहो, भागो मत तो अनुद्विग्न हो जाओगे। दुख को देखते रहो, भागो मत तो अनुद्विग्न हो जाओगे। लेकिन, अगर दुख और सुख को कोई मात्र देखे ही, तो देखना भी एक तनाव और उद्विग्नता होगी। पूरे वक्त 'डिफेंस' की हालत होगी। वह पूरे वक्त अपने को बचाता रहेगा। मैं जो कह रहा हूँ, बहुत और बात कह रहा हूँ। मैं यह कह रहा हूँ कि 'टोटल इनवाल्वमेंट' साक्षी की तरह दूर खड़े होना नहीं, अभिनेता की तरह पूरी तरह कूद जाना। एक ही हो जाना। नदी आपको डुबाती है, क्योंकि आप अलग हैं। आप नदी ही हो गये, ऐसी बात कह रहा हूँ। अब कैसे डुबायेगी? किसको डुबायेगी, कौन डूबेगा, कौन चिल्लायेगा-- बचाओ? जो स्थिति है जिस पल में, उस पल में पूरी तरह एक हो जाना है। और, जब वह पल बीत गया, दूसरा पल आयेगा--आपको पल के साथ पूरे एक होने की कला आ गयी तो आप हर पल के साथ एक होते चले जायेंगे। और तब, बड़े मजे की बात है, दुख भी आयेगा और आपको निखार जायेगा। सुख भी आयेगा और आपको निखार जायेगा। दुख भी आपको कुछ दे जायेगा और सुख भी आपको कुछ दे जायेगा। तब दुख भी मित्र मालूम होगा और सुख भी मित्र मालूम होगा। तब जीवन के अंतिम क्षणों में विदा होते वक्त आप अपने सुखों को भी धन्यवाद दे सकेंगे और अपने दुखों को भी धन्यवाद दे सकेंगे, क्योंकि दोनों ने मिलकर आपको बनाया। यह दिन ही नहीं है जो आपको बनाता है, इसमें रात भी सम्मिलित है। यह उजाला ही नहीं है जो आपकी जिन्दगी है, अन्धेरा भी आपकी जिन्दगी है। यह जन्म ही नहीं है जो खुशी का अवसर है, मृत्यु भी उत्सव का क्षण है। लेकिन, यह तभी होगा जब हम प्रतिपल को पूरा जी लें तब हम यह न कह पायेंगे कि दुख विपरीत था और सुख साथी था, दुख शत्रु था। नहीं तब हम ऐसा कह पायेंगे कि दुख दायां हाथ था, सुख बायां हाथ था। दोनों के साथ हम चल पाये। दुख बायां पैर था, सुख दायां पैर था। दोनों हमारे पैर हैं। जब आप अपना बायां पैर उठाते हैं तब आप आधा नहीं उठाते, आप पूरे ही अपने बायें पैर के साथ होते हैं। जब आप

अपना दायाँ पैर उठाते हैं तब पूरे ही आप अपने दायें पैर के साथ होते हैं। जब आप चुप होते हैं तब भी आपको अपनी चुप्पी में पूरा होना चाहिए, जब आप बोलते हैं तब अपने बोलने मे पूरा हो जाना चाहिए।

विकल्प जब हम चुनते हैं तभी उद्विग्नता शुरू होती है। और,जब तक चुनने वाला अलग खडा है तब तक चुनाव जारी रहता है। इसलिए,साक्षी बहुत ऊंची अवस्था नही है, मध्य अवस्था है। कर्ता के बजाय अच्छी है, इस अर्थ मे कि कर्ता सीधा छलांग नही लगा सकता अद्वैत मे। साक्षी 'जम्पिग बोर्ड' के करीब पहुच जाता है, जहा से छलाग हो सकती है। लेकिन,साक्षी भी तट पर खडा है और कर्ता भी तट पर खडा है। कर्ता जरा तट से दूर खडा है, जहा से सीधी छलाग नहीं हो सकती, साक्षी तट के बिल्कुल किनारे खडा है जहा छलाग हो सकती है। लेकिन, दोनो ने जब तक छलाग नही ली तब तक दोनो एक ही भूमि के टुकडे पर खडे है। छलाग के बाद ही अद्वैत बच रहता है। यहा जो अनुद्विग्नता की बात कृष्ण कहते हैं वह अद्वैत की बात है। उद्विग्न होने वाला ही न बचे वह पूरा ही डूब जाय, इसलिए मै मानता हूँ कि कृष्ण की यह जो दृष्टि है यह 'एंटी सेंसिटीविटी' की नहीं है। यह संवेदनशीलता के विपरीत नही है। बल्कि, पूर्ण संवेदनशीलता की उपलब्धि है।

दक्षिणायन और उत्तरायण की बात कृष्ण ने जो गीता मे कही है वह हमारे सूर्य और हमारे दक्षिणायन और उत्तरायण की नही है। इस पृथ्वी पर जो सूर्य उत्तर और दक्षिणायन होता रहता है उसकी कोई बात नही है। कि, दक्षिणायन के सूर्य के समय मुक्ति हो जायेगी, मोक्ष हो जायेगा और उत्तरायण के सूर्य के समय मुक्ति नहीं होगी, मोक्ष नहीं होगा। यह बहुत 'सिम्बालिक' है। यह हमारे भीतर चित्त के प्रकाश सूर्य की बात है। और जैसे, हमने इस पृथ्वी को हिस्सो मे बाटा हुआ है, ऐसे ठीक हमने मनुष्य के व्यक्तित्व को दो हिस्सो मे बाटा है। उस मनुष्य के व्यक्तित्व के भीतर सूर्य की या प्रकाश की या सत्य जो भी हम नाम देना पसद करें, एक गति है। और,मनुष्य के भीतर चक्रो की एक व्यवस्था है। अगर उस व्यवस्था में एक विशेष जगह तक प्रकाश का अनुभव शुरू नही हुआ है तो व्यक्ति मुक्त नही होता है। एक विशेष जगह तक भीतर अन्तरजीवन में सूर्य का प्रवेश हुआ है तो व्यक्ति मुक्त होता है। वह लम्बी चर्चा होगी, उसे फिर कभी उठाना ठीक होगा। अभी इतना ही समझ लेना है कि बाहर के उत्तरायण और दक्षिणायन की बात नही है। भीतर भी हमारे सूर्य के गति की व्यवस्था है। भीतर भी हमारा एक अस्तित्व है जहा प्रकाश की गतिया हैं। उन प्रकाश की गतियों की वह चर्चा है।

और, उसमें यह कहा है कि दक्षिणायन के चक्रों पर जब प्रकाश होगा—ऐसी स्थिति में जीवन से छूटा हुआ व्यक्ति जन्म-मरणरूपी बन्धन से मुक्त हो जाता है। वह फिर अपने को सदा मुक्त पाता है। ऐसे ही जैसे हम कहते है कि सौ डिग्री पर पानी गरम होता है तो भाप बन जाता है। सौ डिग्री के नीचे होता है तो भाप नहीं बनता। ऐसी एक विशेष भीतर सूर्य की व्यवस्था की बात है, वह जो हम चक्रो की और अन्तर्शरीरो की पूरी बात समझे तभी ख्याल मे आ सकती है। इसलिए, उसे फिलहाल न उठायें। अभी इतना भर समझ लेना उचित है।

प्रश्न . स्थितप्रज्ञ और भक्त में क्या भेद या समानता है ?

उत्तर स्थितप्रज्ञ का अर्थ है जो भक्त नही रहा, भगवान हो गया। भक्त का अर्थ है जो भगवान होने की यात्रा पर है। भक्त रास्ते मे है, स्थित-प्रज्ञ पहुच गया है। रास्ता वही है, पहुचना वही है। मुकाम पर पहुचे हुए आदमी का नाम स्थितप्रज्ञ है और भक्त यात्री का नाम है जो चल रहा है। दोनो में समानता होगी ही, क्योकि रास्ता और मजिल जुडे होते है अन्यथा रास्ता मजिल तक कैसे पहुचेगा ? समानता होगी ही, क्योकि मजिल सिर्फ रास्ते की पूर्णता है। जहा रास्ता पूरा हो जाता है वहा मजिल आ जाती है। समानता होगी ही, क्योकि जो रास्ते पर है वह एक अर्थ मे मजिल पर ही है। थोडा फासला है बस। अन्तर जो है वह पहुचने का और पहुचे होने का है। भक्त चल रहा है, स्थितप्रज्ञ बैठ गया है, पहुच गया। इसलिए, भक्त के लिए सारी अपेक्षाए है जो स्थित प्रज्ञ की उप-लब्धि बनेगी, क्योकि तभी वह वहा तक पहुच सकेगा। भक्त की आखिरी मजिल, उसका भक्त होना मिट जाने की है। जब तक वह भगवान न हो जाय तब तक तृप्ति नही हो सकती। भक्त कितना ही चिल्लाये और रोये परमात्मा के मिलने को, मिलन हो भी जाय और दोनो आलिंगनबद्ध खडे भी हो जाय तो भी भक्त का चिल्लाना बन्द नही होगा। क्योकि, आलिंगन कितने ही निकट हो, फिर भी दूर है। हम किसी को कितने ही छाती से लगा ले, फिर भी दोनो के बीच फासला है। अन्तर तो पूर्ण तभी मिट सकता है जब एक ही हो जाय। इच भर का अन्तर उतना ही है जितना लाख मील का अन्तर है। अन्तर की मात्रा से कोई फर्क नहीं पडता। इच के हजारवे हिस्से का अन्तर उतना ही अन्तर है जितना कि लाख मील का अन्तर है। तो, भक्त की तृप्ति भगवान की छाती से लगकर बैठ जाय, तब भी नहीं हो सकती। तब भी फासला है। यही तकलीफ तो प्रेमी की है। प्रेमी का कष्ट ही यही है, क्योकि कितने ही पास आ जाय तो भी दुखी रहेगा। प्रेमी को कितना ही पा ले तो भी दुखी रहेगा। अगर यह बात समझ में आ जाय कि उसका

दुख असल में यह है कि जब तक वह प्रेमी ही न हो जाय तब तब दुखी ही रहेगा, और यह होना बड़ा मुश्किल है। प्रेम के तल पर तो होना मुश्किल है, बहुत मुश्किल है, कैसे यह होगा ? कितने ही पास आके नही सभव है। इसलिए, प्रेमी जितने ही पास आयेंगे उतना ही कष्ट शुरू होने लगेगा। क्योकि, जितने पास आयेंगे उतना 'डिसइलूजनमेंट' होगा। दूर थे तो यह ख्याल था कि पास आने से सुख मिल जायेगा। अब पास ही आ गये, अब कैसे सुख मिलेगा ? अब और पास आने का कोई उपाय भी न रहा। तब प्रेमी एक दूसरे पर क्रोधित होना शुरू हो जाते हैं। शायद सोचते है कि दूसरा कुछ बाधा डाल रहा है, दूसरा कोई नुकसान पहुचा रहा है, दूसरा शायद ठीक से प्रेम नही कर रहा है, दूसरा शायद धोखा दे गया, दूसरा शायद किसी और के प्रेम मे पड गया है। इसलिए, प्रेमी की चिन्ता शुरू हो जाती है पास आने पर। असली कारण यह है कि प्रेमी तब तक तृप्त नही हो सकता, जब तक कि वह इतने निकट न आ जाय कि दूरी ही न बचे। यह तब तक नही हो सकता है जब तक वह एक न हो जाय। इसलिए, जो भी प्रेमी है वे आज नही कल, भक्त बनने शुरू हो जायेंगे, क्योंकि जब शरीरधारी व्यक्ति के इतने निकट आना असम्भव है तब अशरीरी परमात्मा के निकट ही इतना आया जा सकता है जहा फासला ही न बचे। तो सब प्रेमी, आज नही कल, भक्त बनेगे। और, सब प्रेम-निवेदन आज नही कल प्रार्थना बन जाते है। अन्तत बनने ही चाहिए, अन्यथा दुख देते रहेंगे। जो प्रेमी भक्त नही बन पाता वह सदा दुखी रहेगा। क्योकि, आकाक्षा उसकी भक्त की है और माग वह प्रेम से पूरी करना चाह रहा है। चाहता कुछ और है, कर कुछ और रहा है। चाहता वह यह है कि बिल्कुल एक हो जाऊ, कि इतना फासला भी न रहे कि मै और तू का फासला भी बचे। चाहता वह यह है, लेकिन जिससे वह यह करना चाह रहा है उससे यह नही हो सकता। उससे मैं और तू का फासला बना ही रहेगा। दो व्यक्ति कभी इतने निकट नही आ सकते जहा कि मैं और तू का फासला गिर जाय, सिर्फ दो अव्यक्ति इतने निकट आ सकते है जहां मै और तू का फासला मिट जाय। परमात्मा अव्यक्ति है। जिस दिन भक्त भी अव्यक्ति हो जायेगा उस दिन उपलब्धि हो जायेगी। परमात्मा तो है नही इस अर्थ में, जिस अर्थ मे भक्त है। परमात्मा का तो होना न होने जैसा है। उसकी उपस्थिति अनुपस्थिति जैसी है। यह बड़े मजे की बात है, थोडी ख्याल में लेनी जरूरी है।

हम निरन्तर पूछते है, दुनिया मे सारे भक्तो ने पूछा है कि परमात्मा प्रकट क्यो नहीं होता? अगर परमात्मा प्रकट हो जाय तो उससे मिलन असभव है। सिर्फ अप्रकट से ही पूर्ण मिलन हो सकता है। भक्तो ने निरन्तर पूछा है कि तुम छिपे

छिपे क्यों हो ? सामने क्यों नहीं आते हो ? अगर वह सामने आ जाय तो इतना बड़ा पर्दा गिर जायेगा कि फिर मिलन हो ही नहीं सकता । वह छिपा है; इसीलिए मिलने की सम्भावना है । वह अदृश्य है; इसीलिए उसमे डूबा जा सकता है । वह दृश्य बन जाय तो दीवाल बन जायेगी और मिलन असंभव है ।

एक बहुत अद्भुत फकीर एकहार्ट ने कहा है, परमात्मा को धन्यवाद दिया है कि तेरी अनुकम्पा अपार है कि तू दिखायी नहीं पड़ता । तेरी अनुकम्पा अपार है कि तू पकड़ में नहीं आता । तेरी अनुकम्पा अपार है कि तू खोजे से कहीं भी नहीं मिलता, कहीं नहीं पाते हैं तुझे । क्यों है तेरी अनुकम्पा अपार ? क्योंकि, इस भांति तू हमें भी निरन्तर सिखाये जाता कि जब तक तुम भी ऐसे न हो जाओ कि खोजे से न मिलो, कि जब तक तुम भी ऐसे न हो जाओ कि दिखायी न पड़ो, कि जब तक तुम ऐसे न हो जाओ कि न होने जैसे हो जाओ, तब तक मिलन असंभव है । भगवान तो अरूप है, जिस दिन भक्त अरूप हो जाता है उस दिन मिलन हो जाता है । इसलिए, बाधा सिर्फ भक्त की तरफ से है, भगवान की तरफ से कोई बाधा नहीं है । स्थितप्रज्ञ का अर्थ है, भक्त जो अरूप हो गया । अब वह भगवान को भी नहीं चिल्लाता, क्योंकि कौन चिल्लाये ? अब वह प्रार्थना भी नहीं करता, क्योंकि कौन करे ? किसकी करे ? या अब हम ऐसा कह सकते हैं कि वह जो भी कहता है वही प्रार्थना है । अब वह जो भी चिल्लाता है वही भगवान के लिए निवेदन है । अब हम दोनों तरह से कह सकते हैं । स्थितप्रज्ञ का अर्थ है कि मनुष्य भी वैसा हो गया जैसा परमात्मा है । भक्त का अर्थ है कि उसने यात्रा तो शुरू की परमात्मा की तरफ, लेकिन अभी वह मनुष्य है । उसकी सब आकांक्षाएं अपेक्षाएं मनुष्य की हैं । मीरा कितनी चिल्ला रही है । उसके गीत बड़े अद्भुत हैं । इस अर्थ में अद्भुत हैं कि वे बड़े मानवीय हैं । उसकी सारी चिल्लाहट एक प्रेमी की चिल्लाहट है— एक भक्त की । वह कहती है—सेज सजा दी और तुम आ जाओ । मैं तुम्हारे लिए द्वार खोलकर प्रतीक्षा कर रही हूँ । ये सब मानवीय प्रतीक्षा है । भक्त का मतलब है—मनुष्य, जो परमात्मा की तरफ चल पड़ा । लेकिन, अभी मनुष्य है । स्थितप्रज्ञ का अर्थ है, मनुष्य अब मनुष्य नहीं रहा, अब वह किसी की तरफ नहीं जा रहा है, अब जाने का कोई सवाल नहीं है । अब वह जहां है, वहीं है । वहीं परमात्मा तो सदा था, सिर्फ हम अरूप हो जाते हैं, हम अदृश्य हो जाते हैं, हम न हो जाते हैं । जीसस का वचन है, जो अपने को बचायेगा वह खो देगा । और जो अपने को खो देता है वह पा लेता है ।

स्थितप्रज्ञ ने अपने को खो दिया, इसलिए पा लेता है। भक्त अभी पाने चला है और खुद है। अनुभव उसे धीरे-धीरे मिटायेगा। कबीर का वचन है, खोजते-खोजते फिर मैं ही खो गया। और कोई उपाय न था। खोजने निकले थे किसी को, आखिर मैं पाया कि खोज ने खुद को छीन लिया। 'हेरत हेरत हे सखी, गया कबीर हेराइ'। खोजने निकले थे सखी, लेकिन आखिर ऐसा हुआ कि वह तो मिला नहीं, खुद ही खो गया। लेकिन, जिस दिन खो गया उस दिन खोज पूरी हो जाती है। उस दिन वह मिला ही हुआ है। लाओत्से का बहुत अद्भुत वचन है। लाओत्से कहता है —'सीक एण्ड यु विल नाट फाइन्ड', खोजो और तुम न पा सकोगे। 'डू नाट सीक एण्ड फाइण्ड'—मत खोजो, पाओ, 'बिकाज ही इज हियर एण्ड नाऊ'—वह अभी और यहीं है। खोज की वजह से तुम दूर निकल जाते हो, क्योंकि कोई भी यहीं और अभी नहीं खोजेगा। खोज का मतलब ही कहीं और है। खोजने कोई मक्का जायेगा, कोई मदीना जायेगा, कोई काशी जायेगा, कोई मानसरोवर, कैलाश जायेगा। खोजने को जायेगा। हां, कोई मनाली जायेगा। और, वह वहीं है। यहीं है, अभी है, इसलिए खोजने वाला उसे जब तक खोजता रहता है तब तक, खोजता चला जाता है। जिस दिन खोजने वाला खोज-खोजकर थक जाता है और मिट जाता है और गिर जाता है, तब वह मनाली में गिरे, कि मक्का में, कि मदीना में, कि कैलाश पर, वह कहीं भी गिर जाय, वह जहां भी गिर जाय वहीं पाता है कि वह मौजूद है। वह सदा मौजूद है, हमारी मौजूदगी बाधा है। हम गैरमौजूद हो जाय। भक्त अभी मौजूद है, स्थितप्रज्ञ गैरमौजूद हो गया। भक्त की अभी 'प्रेजेन्स' है, स्थितप्रज्ञ की कोई 'प्रेजेन्स' नहीं है। वह 'अब्सेंट' हो गया। वह अब है नहीं। यह समझ लेना जरूरी है कि जब तक भक्त 'प्रेजेन्ट' है तब तक ईश्वर 'एब्सेंट' रहेगा। जब तक भक्त मौजूद है तब तक ईश्वर गैरमौजूद है। और इसलिए भक्त ईश्वर को 'प्राक्सी' की तरकीब से मौजूद करता रहता है। कभी मूर्ति बनाकर रख लेता है, कभी मन्दिर बना लेता है। यह 'प्राक्सी' है। इससे कोई हल नहीं है। यह भक्त का ही बनाया हुआ खेल है। वह थोड़े ही दिन में ऊब जायेगा अपने ही बनाये हुए भगवान से। बहुत तृप्ति नहीं मिल सकती, कैसे मिलेगी? प्राक्सी पकड़ में आ ही जायेगी। तब वह फेंक देगा मूर्तियों-वूर्तियों को। वह कहेगा, अब मैं उसी को चाहता हूं जो है। लेकिन, वह तभी मिलता है, जब मैं नहीं हूं, एक ही शर्त है उसकी। मेरा होना ही दीवाल है, मेरा न होना द्वार बन जाता है। बस भक्त और स्थितप्रज्ञ में उतना ही फर्क है। स्थितप्रज्ञ द्वार है, भक्त अभी दीवाल है। दीवाल हम भी है, लेकिन भक्त ऐसी दीवाल है जिसके भीतर चीख-पुकार

शुरू हो गयी। भक्त ऐसी दीवाल है जिसने दरवाजे होने की तरफ श्रम शुरू कर दिया। हम एसी दीवाल हैं जो आराम से विश्राम करते हैं जिनकी कोई यात्रा शु नही हुई है।

प्रश्न : सेक्स के सम्बन्ध मे श्रीकृष्ण के विद्रोही और क्रांतिकारी अनुदान पर सविस्तार प्रकाश डालने की कृपा करें।

श्रीकृष्ण के प्रति स्त्रियों के अति आकर्षित होने में क्या कारण है? हजारों लाखों गोपियां उनके पीछे दीवानी थीं, ऐसा क्यो होता था?

यदि प्रेम पूर्णता से काम शून्यता आती है तो काम शून्यता की उपलब्धि के बाद बच्चे कैसे पैदा होगे? अर्थात काम शून्यता मे सभोग कैसे घटित होगा? क्या आत्म समाधि, ब्रह्म समाधि और निर्वाण समाधि के बाद सभोग सम्भव है? क्योंकि सभोग के लिए प्राणो की चंचलता आवश्यक है न?

उत्तर : इस सम्बन्ध मे बहुत सी बात हो गयी है। इसलिए, कुछ थोडी बाते और ख्याल मे ले लेनी चाहिए।

कृष्ण के प्रति आकर्षण लाखो स्त्रियो का ठीक ऐसा ही है जैसे पहाड से पानी भागता है नीचे की तरफ और झील मे इकट्ठा हो जाता है। हमने कभी नही पूछा कि पहाड से पानी झील की तरफ क्यो भागकर इकट्ठा होता है। अगर हम पूछे तो उत्तर यही होगा, क्योंकि झील-झील है, गड्ढा है। पानी गड्ढ मे भर जाता है। गिरता है पर्वत के शिखर पर, भरता है झील मे। पर्वत के शिखर पानी ही नही रोक पाते। पानी का स्वभाव है कि वह गड्ढे को खोजे, क्योंकि वही वह निवास कर सकता है। अगर इसको हम ठीक से समझें तो स्त्री का स्वभाव है कि वह पुरुष को खोजे। वह पुरुष मे ही निवास कर सकती है। पुरुष का स्वभाव है कि वह स्त्री को खोजे, वह स्त्री मे ही निवास कर सकता है। यह स्वभाव है। यह वैसे ही स्वभाव है जैसे और जीवन की सारी चीजो का स्वभाव है। जैसे आग का कुछ स्वभाव है, जैसे पानी का कुछ स्वभाव है, ऐसे ही पुरुष होने का स्वभाव है कि वह स्त्री मे अपने को खोजे। स्त्री का मतलब है वह जो पुरुष मे अपने को खोजती है। स्त्रैण होने का मतलब ही यही है कि जो पुरुष के बिना अधूरी है। पुरुष होने का मतलब ही यही है जो स्त्री के बिना अधूरा है। अधूरा होना स्त्री पुरुष का होना है। इसलिए, उनकी निरन्तर खोज है। जब यह खोज पूरी नही हो पाती

तो 'फ्रस्ट्रेशन' है, दुख है, पीडा है। जब यह खोज पूरी नहीं हो पाती तो स्वभाव के प्रतिकूल होने के कारण कष्ट है, सताप है, चिन्ता है।

कृष्ण के प्रति इतने आकर्षण का एक ही कारण है कि कृष्ण पूरे पुरुष हैं। जितना पूर्ण पुरुष होगा उतना आकर्षक हो जायेगा स्त्रियो मे। जितनी स्त्री पूर्ण होगी उतनी आकर्षक हो जायेगी पुरुषो मे। पुरुष की पूर्णता कृष्ण मे पूरी तरह प्रकट हो सकी है। महावीर कम पुरुष नही है, ठीक कृष्ण जैसे ही पूरे पुरुष है। लेकिन, महावीर की पूरी साधना अपने पुरुष होने को छोड देने की साधना है। महावीर की पूरी साधना, वह जो स्त्री-पुरुष के नियम का जगत है; उसके पार हो जाने की साधना है। फिर भी, इस सारी साधना के बावजूद महावीर की भिक्षुणिया चालीस हजार है और भिक्षु दस हजार है। फिर भी, स्त्रिया ही ज्यादा आकर्षित हुई। जहाँ चार साधु महावीर के दीक्षित हुए वहा तीन स्त्रिया हैं और एक पुरुष है। महावीर को छू भी नही सकती वे स्त्रिया; महावीर के निकट भी नही बैठ सकती आकर, लेकिन फिर भी स्त्रिया महावीर के लिए कम दीवानी नही है। हालाकि इस बात को भी कभी इस तरह देखा नही गया। और, जो दस हजार पुरुष महावीर के पास आये है इनकी भी अगर हम कभी बहुत खोज-बीन करे तो पता चलेगा कि इनके चित्त मे कही न कही स्त्रैणता है। होगी ही। जरूरी नही है कि एक आदमी शरीर से पुरुष हो तो मन से भी पुरुष हो। ऐसा भी जरूरी नही है कि एक आदमी शरीर से स्त्री हो तो मन से भी स्त्री हो। मन जरूरी रूप से शरीर के साथ सदा तालमेल नही रखता। फिर, महावीर का आकर्षण आधी बात है। हमारा चित्त भी तो उस तरफ बहना चाहिए? कृष्ण के साथ तो और भी अद्भुत स्थिति है। कृष्ण तो कुछ छोडकर भागे हुए नही हैं। स्त्रिया उनके पास सिर्फ साध्वी होकर खडी रह सकती हैं ऐसा नही, न सिर्फ उनको देख सकती हैं, कृष्ण के साथ नाच भी सकती हैं। तो, अगर कृष्ण के पास लाखो स्त्रिया इकट्ठी हो गयी हो तो कुछ आश्चर्य नही है, ये सहज है। बिल्कुल सरलता से है।

बुद्ध वैसे ही पूर्ण पुरुष है इसलिए बहुत मजेदार घटना घटी है। बुद्ध ने स्त्रियो को दीक्षा देने से इन्कार कर दिया। क्योकि बुद्ध के सामने खतरा बिल्कुल साफ है। वह खतरा यह है कि स्त्रिया दौड पडेंगी और भारी भीड़ स्त्रियो की इकट्ठी हो जायेगी। और जरूरी नहीं है कि ये स्त्रिया साधना के लिए ही आतुर होकर आयी हो। बुद्ध का आकर्षण बहुत कीमती हो सकता है। कृष्ण के पास जो गोपिया पहुच गयी हैं वह कोई परमात्म-उपलब्धि के लिए

पहुंच गयी हो, ऐसा नहीं है। कृष्ण भी काफी परमात्मा हैं। यानी कृष्ण के पास होना भी बड़ा सुखद हैं। कृष्ण को तो इससे चिन्ता नहीं होती कि कौन किसलिए आया है, क्योकि कृष्ण को कोई चुनाव नहीं है। लेकिन, बुद्ध को चुनाव है और बुद्ध सख्ती से इन्कार करते हैं कि स्त्रियों को दीक्षा नहीं देंगे। बहुत दिनो तक यह संघर्ष चलता है और स्त्रिया सख्ती से बुद्ध की इस बात की खिलाफत करती है कि हमारा क्या कसूर है कि हमे दीक्षा नहीं मिलेगी। तब बड़ी मजबूरी मे, बडे दबाव मे और बडे आग्रह मे बुद्ध राजी होते है। यह थोड़ा सोचने जैसा मामला है—बुद्ध का इतनी देर तक यह कहे चले जाना कि नही दूगा दीक्षा। क्योकि, बुद्ध को इसमें साफ एक बात दिखायी पडती है कि जो सौ स्त्रिया आती हैं उसमे निन्यानवे के आने की सम्भावना का कारण बुद्ध है, बुद्धत्व नही। यह साफ दिखायी पड रहा है। और, यह भी साफ दिखायी पड रहा है कि बुद्ध 'रिसिस्ट' करते है। तब, कृशा गौतमी नाम की एक स्त्री बुद्ध को कहती है कि क्या हम स्त्रियो को बुद्धत्व नहीं मिलेगा? फिर, आप कब दुबारा आयेंगे हमारे लिए? और, अगर हम चूके तो जिम्मेदारी तुम्हारी होगी! हमारा कसूर क्या है? हमारा स्त्री होना कसूर है? यह सौवीं स्त्री है, निन्यानवे वाली स्त्री नही है। इस कृशा गौतमी के लिए बुद्ध को झुकना पड़ता है। यह बुद्ध के लिए नही आयी है, यह बुद्धत्व के लिए आयी है। वह कहती है, हमे तुमसे प्रयोजन नही, लेकिन तुम्हारे होने का लाभ पुरुष ही उठा पायेंगे, हम सिर्फ स्त्री होने से वंचित रह जायेंगी? स्त्री होने का ऐसा दण्ड हमे मिलेगा? आप भी इसमे चुनाव करते है? कृशा गौतमी को आज्ञा दी जाती है, फिर द्वार खुल जाता है। और, फिर वही होता है जो महावीर के पास हुआ कि पुरुष कम पड जाते है, स्त्रिया रोज ज्यादा होती चली जाती हैं।

आज भी मंदिरों मे स्त्रिया ज्यादा है, पुरुष कम है। तब तक पुरुष मंदिरो मे कम होंगे जब तक स्त्री तीर्थंकर और स्त्री अवतारो की मूर्तिया मंदिर में न हो। क्योकि, सौ जाते है, उसमे से निन्यानवे बहुत सहज कारणो से जाते है, एक ही असहज कारण से जाता है। कृष्ण के पास तो बहुत ही सरल बात है, कृष्ण के लिए तो कोई बाधा ही नहीं है। कृष्ण तो जीवन की समग्रता को अंगीकार कर लेते हैं। कृष्ण अपने पुरुष होने को स्वीकार करते हैं। किसी के स्त्री होने को स्वीकार करते हैं। सच तो यह है कि कृष्ण ने शायद भूल कर भी, जरा सा भी अपमान किसी स्त्री का नहीं किया। जीसस के वचनो में भी सम्भावना है, महावीर के वचनो में भी, बुद्ध के वचनो में भी

स्त्री के अपमान की सम्भावना है। और, कारण सिर्फ इतना ही है कि वे अपने पुरुष होने को मिटाना चाह रहे है। और कोई कारण नही है। स्त्री से कोई वास्ता नही है। महावीर या बुद्ध या जीसस अपने 'सेक्सुअल बीइग' को अपने 'बायोलॉजिकल बीइग' को, अपने जैविक अस्तित्व को पोछ डालना चाह रहे हैं। स्वभावत स्त्री उनको न पोछने देगी। स्त्री पास पहुचेगी तो उनका पुरुष होना प्रकट हो सकता है। उनके पुरुष होने को भोजन मिलता है। लेकिन, जीसस जैसे उदास आदमी के पास भी, जिसके ओठ पर बासुरी नही है, उसके पास भी स्त्रिया इकट्ठी हो गयी। जीसस की शूली पर से लाश जिन्होने उतारी वह पुरुष न थे, वे स्त्रिया थी। उस युग की सर्वाधिक सुन्दरी स्त्री 'मैरी मैग्देलम'ने उस लाश को उतारा। पुरुष तो जा चुके थे और स्त्रिया रुकी थी। लेकिन, जीसस ने स्त्रियो के लिए सम्मान का कभी एक वचन नही कहा।

महावीर कहते है कि स्त्रिया—स्त्री पर्याय से मोक्ष न जा सकेगी। उन्हे एक बार पुरुष का जन्म लेना होगा। फिर, वे मोक्ष जा सकती है। बुद्ध तो उनको दीक्षा देने से इन्कार करते है कि हम दीक्षा ही न देगे। और, जब दीक्षा भी दे दी तब भी उन्होने जो वचन कहे वे हैरानी के थे। बुद्ध ने कहा मेरा जो धर्म हजारो साल चलता अब वह पाच सौ साल से ज्यादा नही चल पायेगा, क्योकि स्त्रिया दीक्षित हो गयी है।

प्रश्न इस कथन में सचाई तो थी।

उत्तर सवाल यह नही है। बुद्ध की तरफ से कथन मे सचाई थी क्योकि बुद्ध का जो मार्ग है उस मार्ग मे या महावीर का जो मार्ग है उस मार्ग मे स्त्री के लिए उपाय नही है बहुत। लेकिन, महावीर और बुद्ध बड़े आकर्षक है और स्त्री आ जाती है। सचाई उनके मार्ग के सन्दर्भ मे है, सचाई 'एब्सलूट' नही है। स्त्री के लिए कोई बाधा नही है मोक्ष जाने मे। लेकिन मार्ग अन्यथा होगा। महावीर वाले मार्ग से नही हो सकता। ऐसे ही जैसे हमने दो रास्ते मे, पहाड़ पर एक सीधी चढाई हो और वहा तख्ती लगा दी हो कि स्त्रियां यहा से नहीं, और एक लम्बी चढाई का गोल रास्ता हो वहा एक तख्ती लगी हो कि स्त्रियां यहा से। बस इतना ही फर्क है। यह रास्ते के सन्दर्भ मे सच है। महावीर के रास्ते के सन्दर्भ मे यह बिल्कुल सच है कि स्त्री जा नही सकती मोक्ष अगर महावीर के मार्ग से ही जाने की किसी स्त्री की जिद हो तो। उसे एक बार पुरुष के रूप मे लौटना जरूरी है। क्योंकि, सीधी चढ़ाई का रास्ता है। चढ़ाई के कई कारण है।

बड़ा कारण तो यह है कि न कोई परमात्मा है महावीर के रास्ते पर, न कोई सगी साथी। नही कोई है जिसके कन्धे पर हाथ रखा जा सके। स्त्री का व्यक्तित्व अपने आप मे ऐसा है कि कोई झूठा कन्धा भी मिल जाय तो भी ठीक है। उसको कन्धे पर हाथ चाहिए। वह किसी के कन्धे पर हाथ रखकर आश्वस्त हो जाती है। यह उसके व्यक्तित्व का ढग है। इसमे और कोई कारण नही है। पुरुष किसी के कन्धे पर हाथ रखे तो दीन अनुभव करता है अपने को। स्त्री किसी के कन्धे पर हाथ रखे तो उसकी गरिमा बढ जाती है।

यह जो गाधीजी की बात उठायी है, वह भी ख्याल मे ले लेनी चाहिए।

गाधी जी स्त्रियो के कन्धे पर हाथ रखकर चले है। शायद इस भाति के वे पहले पुरुष है। कोई पुरुष कभी किसी स्त्री के कन्धे पर हाथ रखकर नही चला है। नही, बूढे नही, गाधीजी बूढे नही थे तब भी वे रखते थे। गाधीजी का स्त्री के कन्धे पर हाथ रखकर चलना किसी विशेष घोषणा के लिए है। इस मुल्क मे, जहा सदा ही स्त्री ने पुरुष के कन्धे पर हाथ रखा हो, जहा सदा ही स्त्री अर्धांगिनी रही हो और नम्बर दो की अर्धांगिनी, नम्बर एक की कभी नहीं। जहा स्त्री सदा ही पीछे रही हो, आगे कभी नही। जहा स्त्री का होना ही 'सेकेन्डरी' हो गया हो, द्वितीय कोटि का हो गया हो, वहा गाधी को लगता है कि किसी पुरुष को यह घोषणा करनी चाहिए कि स्त्री के कन्धे भी इतने कमजोर नही, उस पर भी हाथ रखा जा सकता है। यह एक लम्बी परम्परा के खिलाफ प्रयोग है, और कुछ भी नही, और कोई कारण नही। हालाकि, गाधीजी स्त्रियो के कन्धे पर हाथ रखे हुए बहुत सुन्दर नही मालूम पडते, और गाधीजी के हाथ के नीचे दबी हुई स्त्रिया भारी बोझ से ग्रसित मालूम होती हैं। असल में यह बिल्कुल स्वभाव के प्रतिकूल किया जा रहा है। यह है नहीं ठीक। सिर्फ एक परम्परा का विरोध है। एक व्यवस्था का विरोध है वह बात अलग है। लेकिन स्त्री और पुरुष के व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे गाधी की समझ बहुत गहरी नही है। इसलिए, गाधी ने बहुतसी स्त्रियो को करीब-करीब पुरुष बनाकर छोड दिया। इससे स्त्री जाति को फायदा हुआ है ऐसा मैं नहीं कहूगा। स्त्री जाति को गहरा नुकसान हुआ है। क्योंकि, स्त्री को पुरुष नही बनाया जा सकता। उसके स्त्री होने का अपना ढंग है। और, उसके ढग की खूबी ही यह है। यह बड़े मजे की बात है कि न केवल स्त्री, जब किसी के कन्धे पर हाथ रखती है तो खुद गौरवान्वित होती है, उस पुरुष को भी गरिमा से भर देती है। यह कुछ

सिर्फ लेना ही नहीं है, इसमें देना भी है। यह सिर्फ कन्धे का सहारा लेकर, ऐसा नही है, कि स्त्री को ही कुछ मिल जाता है, पुरुष को भी बहुत कुछ मिलता है। ऐसा पुरुष, जिसके कन्धे पर किसी स्त्री ने कभी हाथ नहीं रखा वह भी बहुत दीनता का अनुभव करता है।

महावीर, बुद्ध, जीसस, इन सारे लोगो के व्यक्तित्व मे जैविक व्यक्तित्व का निषेध इनकी साधना का हिस्सा है। कृष्ण के जीवन मे समस्त की स्वीकृति साधना है। उसमे जैविक भी स्वीकार है, उसमे वह जो 'सेक्सुअल बीइंग' है वह भी स्वीकार है। वह जो काम शरीर है वह भी स्वीकार, वह जो काम चित्त है वह भी स्वीकार है। कृष्ण कहते है, सब स्वीकार है, निषेध कुछ भी नही है। कृष्ण के हिसाब से तो जो निषेध करता है वह किसी-न-किसी अर्थ मे थोडा बहुत नास्तिक है। असल मे निषेध करना ही नास्तिकता है। कोई कहता है, हम शरीर को स्वीकार नही करते, वह शरीर के प्रति नास्तिक है। कोई कहता है, हम योन को स्वीकार नही करते तो वह योन के प्रति नास्तिक है। कोई कहता है, हम ईश्वर को स्वीकार नही करते तो ईश्वर के प्रति नास्तिक है। लेकिन, अस्वीकृति नास्तिकता का ढग है। स्वीकृति आस्तिकता है। इसलिए, न मै महावीर को, न बुद्ध को और न जीसस को इतना आस्तिक कह सकता हूँ जितना आस्तिक मै कृष्ण को कहता हूँ। समस्त स्वीकृति, निषेध तो है ही नही। जो भी है उसकी अपनी जगह है अस्तित्व मे। इस वजह से कृष्ण के पास अगर लाखो स्त्रिया इकट्ठी हो सकी तो आकस्मिक नही है। महावीर के पास इकट्ठी हो तो भी एक 'डिस्टेस' एक 'फार्मल डिस्टेस' जरूरी है। महावीर के पास शिष्टाचार का फासला रखना पडेगा। महावीर के गले से स्त्री जाकर मिल जाय तो एकदम अशिष्ट हो जायेगी। न तो महावीर इसे बरदाश्त करेगे, न उस स्त्री को इससे कोई सुख और शांति मिलेगी, अपमान ही मिलेगा।

प्रश्न महावीर किसलिए बरदाश्त नही करेंगे ?

उत्तर महावीर इसलिए बरदाश्त नही करेगे कि महावीर उसे बिलकुल स्वीकार नही करेंगे, वह पत्थर की तरह खडे रह जावेंगे। उनका पूरा अस्तित्व उसे इन्कार करेगा। वह कहेगे नही कि मत छुओ, अगर ऐसा लगेगा कि कोई शिलाखण्ड को हाथो मे ले लिया। और स्त्री का अपमान इससे नही होता कि कोई कह दे कि मत छुओ, अपमान इससे होता है कि वह किसी को छूये और दूसरी तरफ से कोई 'रिस्पोस' न हो। इसमे महावीर किसी स्त्री का अपमान करने आ रहे हैं, ऐसा नहीं है, यह उनका अपना होने का ढग है।

लेकिन, कृष्ण के साथ स्थिति बिल्कुल और है। कृष्ण के साथ अगर कोई स्त्री फासला रखना चाहेगी तो मुश्किल में पड़ जायेगी। वह अगर दूर खड़ी होगी तो पायेगी कि खिंचती है पास। जैसे कि कृष्ण पुकारते हुए हैं, निमंत्रण देते हैं। मैं ने कहा कि महावीर एक शिलाखण्ड की तरह खड़े रह जायेंगे। कोई छुयेगा तो पता चलेगा कि पत्थर है।

हेनरी थारो के सम्बन्ध में इमर्सन ने कहीं कहा है कि अगर हेनरी थारो से हाथ कोई मिलाये तो ऐसा लगता है कि वृक्ष की किसी सूखी शाखा को हाथ मे ले लिया है। क्योंकि, हेनरी थारो उत्तर ही नही देता, सिर्फ हाथ दे देता था। और, हाथ बिल्कुल मुर्दा होता। उसमे कुछ नही होता, उसमे कोई गर्मी नहीं होती, उसमे कोई धारा नहीं होती। उसमे कुछ होता ही नही, सिर्फ हाथ होता है। हेनरी थारो की महावीर से दोस्ती बन सकती है। कृष्ण से अगर कोई दूर भी खडा हो जायगा तो ऐसा लगेगा, वह छू रहे हैं। वह स्पर्श कर रहे है। वह बुला रहे हैं। उनका पूरा अस्तित्व निमत्रण है, आमत्रण है। इस आमत्रण को अगर हजारो स्त्रियो ने स्वीकार किया हो तो आश्चर्य नही है। कोई आश्चर्य नही है। यह सहज हुआ।

रह गयी बात यह कि हम पूछते है कि क्या कृष्ण के लिए सभोग जैसी बात सम्भव है? कृष्ण के लिए कुछ भी असभव नहीं है। हमारे लिए सभोग प्रश्न है, कृष्ण के लिए प्रश्न नही है। हम नही पूछते कि फूलो के लिए सभोग सम्भव है, हम नही पूछते कि पक्षियो के लिए सभोग सम्भव है, हम नहीं पूछते कि सारा जगत सभोग की एक लीला में लीन है। यह सारा अस्तित्व सभोगरत है। आदमी पूछना शुरू करता है कि क्या कृष्ण के लिए सभोग सम्भव है? क्योंकि, आदमी जैसा है, तनाव से भरा हुआ, जीवन के प्रति निन्दा से भरा हुआ है, उसके लिए सभोग जैसी सहज चीज भी सम्भव नही रह गयी। उसके लिए सभोग जैसा अस्तित्व का क्षण भी जटिल जाल बन गया है। वह भी सिद्धातो की दीवालो की ओट में खडा हो गया है।

सभोग का अर्थ क्या है? सभोग का अर्थ इतना ही है कि दो शरीर इतने निकट आ जाए जितने कि प्रकृति उन्हें निकट ला सकती है। और कोई अर्थ नहीं है। दो शरीर अपनी जैविक निकटता मे, 'बायोलाजिकल इन्टीमेसी' मे आ जाए। प्रकृति की आखिरी निकटता सभोग है। प्रकृति के तल पर जो निकटतम मात्रा है वह सभोग है। उसके आगे प्रकृति का उपाय नहीं। उसके आगे फिर परमात्मा का ही खेल शुरू होता है। लेकिन, कृष्ण प्रकृति की निकटता

को स्वीकार करते हैं। वह कहते हैं प्रकृति भी परमात्मा की है। कृष्ण के लिए संभोग विचारणीय नहीं है, समस्या नहीं है, जीवन का एक सत्य है। हमें बहुत कठिनाई होगी। हमने सभोग को एक समस्या बना दिया है, जीवन का तथ्य नहीं रखा। अभी हमने और चीजों को नहीं बनाया, हम और चीजों को भी कल बना सकते हैं। हम कह सकते हैं कल कि कृष्ण आंख खोलते हैं कि नहीं। अगर हम कभी एक सवाल उठा ले और एक सिद्धान्त बना लें कि आंख खोलना पाप है तो फिर यह भी हो जायेगा। फिर, हम पूछेंगे कि उन्होंने आंख खोली कि नहीं? जिनको हम सवाल बना लेते है उनको हम पूछते हैं कि ऐसा करेंगे या नहीं।

मेरी अपनी समझ यह है, कृष्ण के जीवन में कोई मर्यादा नहीं है। यही उनका व्यक्तित्व है, यही उनकी विशेषता है। मर्यादा वे मानते ही नहीं। मर्यादा ही उनके लिए बन्धन है। और अमर्यादा ही उनके लिए मुक्ति है। लेकिन, जो अर्थ हम लेते हैं अमर्यादा का वह उनके लिए नहीं है। हमारे लिए अमर्यादा का अर्थ मर्यादा का उल्लंघन है, कृष्ण के लिए अमर्यादा का अर्थ मर्यादा की अनुपस्थिति है। इसको ख्याल में ले लेना, नहीं तो कठिनाई होगी। कृष्ण के लिए सभोग विचारणीय नहीं है, फलित होता है तो हो जाता है। हो सकता है। नही फलित होता है तो नहीं होता है। इसकी चिन्ता से वह नही चलते, इसको सोचकर वह नहीं चलते। हमारी बड़ी अजीब हालत है। हमने सभोग को मानसिक, 'साइकोलोजिकल' बना लिया है। हम संभोग को भी सोचते हैं। करते है तो सोचते है, नहीं करते है तो सोचते हैं। सभोग भी हमारा निर्णय बन कर चलता है। कृष्ण के लिए निर्णय नही है। अगर किसी का प्रेम-क्षण इतने निकट आ जाय कि सभोग घटित हो जाय, 'हैपनिंग' हो जाय, तो कृष्ण 'एवैलेबल' है, कृष्ण उपलब्ध है। न घटित हो तो कृष्ण आतुर नही हैं। न कृष्ण के मन मे कोई विरोध है, न कोई प्रशसा है। जो हो जाता है उसमे सहज जीने की सिर्फ राजी, स्वीकृति, स्वीकार है। मैं फिर दोहराऊँगा कि हमारे अर्थों में स्वीकार नहीं, क्योंकि हम स्वीकार भी अगर करते है तो अस्वीकार के खिलाफ करते हैं। कृष्ण का स्वीकार का मतलब है सिर्फ कि अस्वीकार नहीं। इसलिए कृष्ण को समझना हमें सबसे ज्यादा जटिल है। महावीर को समझना आसान, बुद्ध को समझना आसान, जीसस को समझना आसान, मुहम्मद को समझना आसान है। सारी इस पृथ्वी पर कृष्ण को समझना सर्वाधिक कठिन है इसलिए, सर्वाधिक अन्याय उनके साथ हो जाना सहज ही हो जाता है।

हमारी सारी धारणाएँ, महावीर, बुद्ध, जीसस और मुहम्मद ने निर्मित की हैं। हमारी सारी धारणाओं का जगत, हमारे विचार, हमारे सिद्धान्त, हमारे शुभ अशुभ की व्याख्या महावीर, बुद्ध, जीसस, मुहम्मद, कन्फ्यूसियस—इन्होंने तय की है। इसलिए इनको समझना हमें सदा आसान है क्योंकि हम इनसे निर्मित हुए हैं। कृष्ण ने हमे निर्मित नहीं किया। असल में कृष्ण किसी को निर्मित ही नहीं करते, वह कहते—जो है ठीक है। निर्माण का सवाल क्या है! इसलिए, कृष्ण को समझना बहुत मुश्किल हो जायेगा। जब भी हम कृष्ण को समझते हैं तो या तो महावीर का चश्मा हमारी आंख पर होगा या बुद्ध का चश्मा होगा या क्राइस्ट का होगा या कन्फ्यूसियस का होगा। किसी-न-किसी मर्यादा को स्वीकार करने वाले व्यक्ति का चश्मा अनिवार्य रूप से हमारी आंख पर होगा, उससे हम कृष्ण को देखेंगे। और, कृष्ण कहते हैं—तुम्हें अगर मुझे देखना है तो चश्मा उतार दो। बहुत मुश्किल है मामला। चश्मा नहीं उतारोगे तो कृष्ण में कुछ-न-कुछ गड़बड़ दिखायी पड़ेगी। वह आपके चश्मे की वजह से दिखायी पड़ेगी। लेकिन आप चश्मा उतारो तो कृष्ण अत्यंत सहज पुरुष हैं।

पूछा जा सकता है, इतनी सहज स्त्री क्यों पृथ्वी पर नहीं हो सकती? एकाध स्त्री तो होनी ही चाहिए न। कृष्ण को एकाध जवाब स्त्री को देना चाहिए था। क्या कारण है। कुछ कारण है। इतना ही कारण नहीं है कि स्त्री दबायी गयी। यह कारण नहीं है कि पुरुष ने उसे स्वतंत्रता नहीं दी, यह बात फजूल है, इसका कोई अर्थ नहीं है। जितनी स्वतन्त्रता जिसे चाहिए उसे सदा मिल जाती है, अन्यथा वह जीने से इन्कार कर देगा। नहीं, कोई स्त्री कृष्ण का उत्तर नहीं दे पायी। शायद अभी और हजार दो हजार वर्ष लग जायेंगे तब शायद स्त्री उत्तर दे पाये।

न देने का कारण है। स्त्री का सारा व्यक्तित्व, सारा ढंग, उसके होने की प्राकृतिक व्यवस्था 'मोनोगेमस' है। वह एक पर निर्भर रहना चाहती है। उसका चित्त मोनोगेमस है अब तक। कल भी रहेगा, ऐसा जरूरी नहीं है। पुरुष 'पोली-गेमस' है। पुरुष एक से ऊब जाता है, स्त्री एक से बिल्कुल नहीं ऊबती। स्त्री एक के साथ जनम भर जीने की कामना करती है। फिर, दुबारा भी जन्म मिले तो उसी के साथ रहने की कामना करती है। यह जो स्त्री-पुरुष का संबंध है यह पुरुष ने कम तय किया है, यह स्त्री ने ज्यादा तय करवा लिया है। यह पुरुष की वजह से नहीं है एक पत्नीव्रत या एक पतिव्रत, यह स्त्री की वजह से है। इसके अबतक 'बायोला-जिकल' कारण भी थे, दैविक कारण भी थे; क्योंकि स्त्री को निर्भर होना है।

बहुतों पर निर्भर नही हुआ जा सकता । यह ख्याल मे ले लेना जरूरी है । स्त्री को कन्धे पर हाथ रखना है, बहुत कन्धो पर हाथ नही रखे जाते। निर्भर जिसे होना है वह बहुतो पर निर्भर होगी तो अनिश्चितमना हो जायेगी । निर्भरता उसकी 'इनडिसीसिव' हो जायेगी । उसमें निर्णय नहीं रह जायेगा । जैसे एक बेल है उसे एक वृक्ष पर निर्भर होना है, वह बहुत वृक्षो पर एक साथ नहीं चढ़ सकती । उसे एक वृक्ष पर ही चढ़ना होगा । लेकिन,एक वृक्ष बहुतसी बेलो को आमन्त्रित कर सकता है । एक वृक्ष पर जितनी बेलें चढ जाय उतनी उसे तृप्ति होगी, क्योकि उतना ही वह वृक्ष मालूम होने लगेगा । एक पुरुष बहुतसी स्त्रियो के हाथो को निमन्त्रित कर सकता है कि मेरे कन्धे पर रखो, क्योंकि उतनी ही उसके पुरुष होने की गहरी रस की स्थिति उसे उपलब्ध होगी । मगर,स्त्री एक पर निर्भर होना चाहेगी । इस एक पर निर्भर होने का कारण चित्त मे तो है ही, बहुत ज्यादा 'बायोलाजिकल' शारीरिक कारण है, जैविक कारण है। उसके बच्चे होंगे । उस बच्चे के लिए कोई निर्धारक, कोई नियन्ता, कोई फिक्र करने वाला होना चाहिए । नौ महीने वह असमर्थ होगी । उसके बाद उसके बच्चे के सम्हालने मे उसे सारा वक्त लगाना पडेगा । अगर वह बहुतो पर निर्भर है तो इसमे अनिश्चय पैदा होगा और कठिनाई पैदा होगी । इसलिए,मैंने कहा, हजार दो हजार साल लग जायेंगे। क्योकि बहुत जल्दी वैज्ञानिक विकास के साथ स्त्रिया इन्कार कर देंगी बच्चो को पेट मे सम्हालने से । वे प्रयोगशालाओ मे सम्हालने जायेगी । जिस दिन स्त्री बच्चे को पेट मे रखने से मुक्त हो जायेगी उस दिन स्त्री भी कृष्ण जैसा व्यक्ति पैदा कर सकती है। उसके पहले नही पैदा कर सकती ।

यह जो मैंने कृष्ण के सहज होने की बात कही , इसे मनुष्यता जितनी गहरे मे समझ पाये उतनी चिन्ताओ, तनावो और सतापो से मुक्त हो सकती है । आदमी के अधिक तनाव आदमी के अपने ही स्वभाव से सघर्ष के परिणाम है । आदमी की अधिक चिन्ताए अपने से ही लडने की चिन्ताए है । और,मजा यह है कि हम अपने से लड सकते हैं, लेकिन जीत नही पाते । हार ही होती है,हार ही होगी । कभी कभी कोई जीत जाता है । बडी अनूठी वह घटना है । उस कभी-कभी कोई जीतने वाले के अनुसरण मे लाखो लोग अपने से लडते चले जाते है । और यह लाखो लोग सिर्फ चिन्तित होते है, असफल होते ह । हारते और परेशान होते हैं । मेरी अपनी दृष्टि ऐसी है कि महावीर के मार्ग से कभी कोई एकाध आदमी उपलब्ध हो सकता है । लेकिन, महावीर के मार्ग पर सौ मे से निन्यानबे आदमी चलते है । कृष्ण के मार्ग से निन्यानबे आदमी उपलब्ध हो सकते है लेकिन कृष्ण के मार्ग से एकाध

आदमी भी नही चलता है। महावीर का मार्ग पगडण्डी का है। बुद्ध का जीसस का— इनके मार्ग बहुत सकरे हैं, बहुत 'नैरो' है और बड़े दुरूह हैं। क्योंकि, व्यक्ति को अपने से ही लड़कर गुजरना है। कभी कभी कोई सफलता उपलब्ध होती है। कृष्ण का मार्ग राजपथ की तरह है, उसपर बहुत लोग जा सकते हैं। लेकिन उस पर बहुत कम लोग जायेंगे। बहुत कम लोग जाते है, क्योकि सहज होने की क्षमता ही जैसे आदमी खोता चला गया है। असहज ही सहज हो गया। रुग्ण होना ही हमारा स्वास्थ्य हो गया है और स्वस्थ होने की धारणा ही भूल गयी है। पुनर्विचार की जरूरत है मनुष्य पर, लेकिन मै मानता हूँ कि पुनर्विचार पैदा हो रहा है। फ्रायड के बाद अब भविष्य मे कृष्ण रोज रोज सार्थक होते चले जायेंगे क्योकि फ्रायड के बाद पहली बार मनुष्य के चित्त की सहजता को स्वीकृति मिलने की भूमिका बन रही है। जैसा मनुष्य है उस मनुष्य को ही विकसित करना है। अब तक जैसा मनुष्य होना चाहिए उसको हमने पैदा करने की कोशिश की। अब तक आदर्श कीमती था और मनुष्य को उस आदर्श तक पहुचना ही जरूरी था। अब फ्रायड के बाद एक रूपांतरण पूरी दुनिया के ध्यान मे आया, जिसको हम कहें बौद्धिक जगत मे एक ऊहापोह शुरू हुआ है, वह यह कि हम आदमी को पहुचाने की सारी कोशिश करके भी नही पहुचा पाये। कभी कभी कोई एकाध आदमी पहुच पाता है, उससे कोई हल नही होता। वह नियम नही है, सिर्फ अपवाद है, अपवाद सिर्फ नियम को सिद्ध करते है और कुछ नही करते। वह सिर्फ इतना सिद्ध करते हैं कि सब न पहुच सकेगे। फ्रायड के बाद पहली दफा 'आनेस्ट थिंकिंग', ईमानदार चिंतन शुरू हुआ है। वह ईमानदार चिन्तन यह कह रहा है कि आदमी क्या है। उसको हम समझने चले है।

अब एक पत्नी है, उसकी आकाक्षा है कि उसका पति कभी किसी दूसरी स्त्री को देखकर प्रसन्न न हो। यह आकाक्षा पुरुष के स्वभाव के बिल्कुल प्रतिकूल है। लेकिन, स्त्री स्वभाव के बिल्कुल अनुकूल है। अगर पुरुष की आकाक्षा से नीति और नियम बनाये जाय तो स्त्री दुखी और पीड़ित हो जायेगी। अगर स्त्री की आकाक्षा से नीति और नियम निर्धारित किये जाय तो पुरुष दुखी हो जाय। और, मजा यह है कि दो में से एक दुखी हो जाय तो दूसरा सुखी नहीं हो सकता। उसका कोई उपाय नहीं रह जाता। लेकिन, अब तक यही हुआ है।

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि पुरुष और स्त्री दोनो के स्वभाव को समझने की दोनो कोशिश करे? जब पुरुष किसी स्त्री को देखकर प्रसन्न हो तो स्त्री इससे पीड़ित न हो, जाने कि यह पुरुष का स्वभाव है। और जब उसकी स्त्री उदास और

परेशान दिखायी पड़े तो उसका पति उसपर टूट न पड़े, जाने कि यह स्त्री का स्वभाव है। अगर हम एक संतापहीन, तनावमुक्त जगत पैदा करना चाहते हो तो हमे व्यक्तियो के स्वभाव को समझने की कोशिश करनी चाहिए और स्वभाव क्यो है, उसकी जड़ो मे जाना चाहिए। अगर स्वभाव बदलना हो तो जड़े बदलनी चाहिए। स्वभाव को बदलने की ऊपर से नैतिक चेष्टा नही करनी चाहिए। स्त्री तब तक ईर्ष्यालु रहेगी जब तक आर्थिक रूप से स्वतंत्र नही है। तब तक ईर्ष्यालु रहेगी जब तक बच्चे का बोझ अकेले उसपर पड़ जाता है। तब तक ईर्ष्यालु रहेगी जब तक उसका होना द्वितीय कोटि का है। अगर स्त्री की ईर्ष्या को मिटाना हो तो उसे ठीक पुरुष के बराबर प्रथम कोटि की जगह, पुरुष के बराबर आर्थिक स्वावलबन, पुरुष के बराबर उसकी जैविक मजबूरी से मुक्ति की व्यवस्था पर ध्यान देना होगा, तो हम स्त्री को ईर्ष्या से तत्काल मुक्त कर सकेगे। और, स्त्री उसी तरह दूसरे पुरुषो मे भी रस लेने को आतुर हो जायेगी जैसा पुरुष सदा से रहा है। यह अभी तक नही हो सका, लेकिन अब हो सकता है। मनुष्य की बाबत हमारी समझ गहरी हुई है। पुरानी हमारी सारी व्यवस्था मनुष्य की समझ पर निर्भर नही थी, बल्कि मनुष्य की जरूरतो पर थी। मनुष्य के समाज मे क्या जरुरी है वह हमने नियम बनाये थे। मनुष्य के स्वभाव के लिए क्या जरूरी है, वह हमने नियम नही बनाये थे। लेकिन फ्रायड के बाद एक क्राति घटित हुई और मै मानता हूँ, फ्रायड द्वार बनेगा कृष्ण की वापसी का आलम। कृष्ण वापस लौटेंगे, वह फ्रायड के द्वार से वापस लौटेंगे। फ्रायड ने बड़ा प्राथमिक काम किया है। अभी बहुत काम उस दिशा मे होना जरूरी है। फ्रायड का काम बिल्कुल 'क ख ग' का है। अभी बहुत कुछ बाकी है। लेकिन, चोट शुरू हो गयी है। आने वाले भविष्य मे निरन्तर अधिक लोगो को कृष्ण के जीवन से रोशनी मिलने की सभावना बढ़ती जाने वाली है। उनकी सहजता धीरे-धीरे हमारे अनुकूल और प्रीतिकार होती जाने वाली है। मेरा अपना मानना है कि महावीर, बुद्ध, जीसस, कन्फ्यूसियस को मानकर हम एक स्वस्थ दुनिया पैदा नही कर सके। एक प्रयोग जरूर किया जाने जैसा है कि कृष्ण की तरफ देखकर हम दुनिया को एक व्यवस्था दे पायें। और, मेरी अपनी समझ है कि जो दुनिया हमने अब पैदा की है उससे वह दुनिया बेहतर हो सकेगी। क्योंकि, अब तक जो दुनिया हमने पैदा की है वह अपवाद को नियम मानकर की है, अब हम नियम को ही नियम मानकर करेंगे।



पर्व : बीस

चुनाव 'क्रॉस' या बंसी का

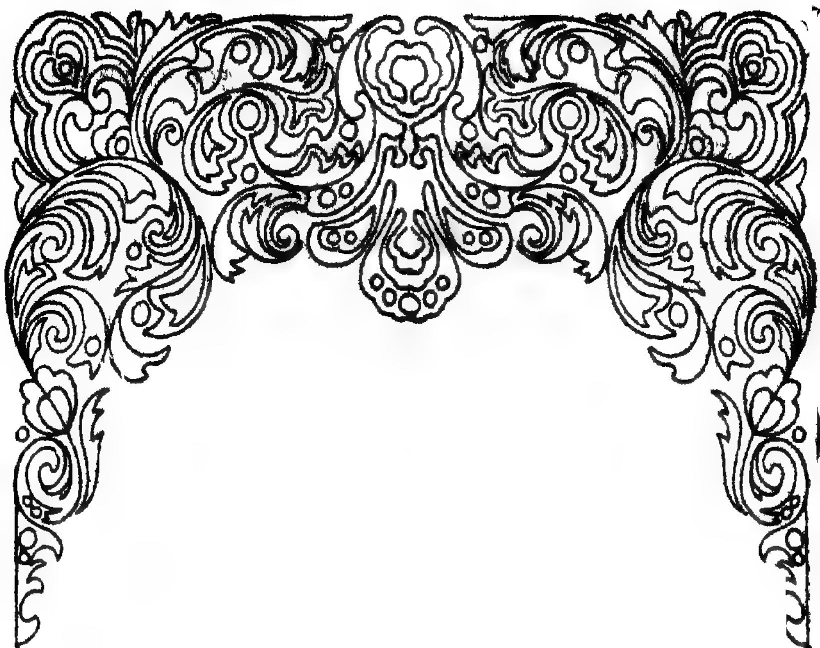
बांसुरी के बावजूद महाभारत

कृष्ण आत्मसात कैसे हों

मनुष्य की सभ्यता कृष्ण की समझ से ही सहज हो सकेगी

समापन





२०

प्रश्न : कृष्ण के संदर्भ में जीसस की चर्चा करते समय एक बार आपने कहा, जीसस के 'क्रास' से जिस सभ्यता का प्रारम्भ हुआ उसका अन्त आधुनिक स्थिति में जाकर 'एटम बम' पर हुआ। आधुनिक सभ्यता को वर्तमान स्थिति में क्रास या बंसी के बीच चुनाव करना है। इस बात को फिर स्पष्ट करेंगे। तथा जिस प्रकार क्रास की संस्कृति का अन्त एटम बम पर हुआ है अभी, उसी प्रकार बंसी पर जो जीवन धारा चली उसका भी तो अन्त सुदर्शनचक्र और महाभारत पर हुआ था! मैं यह पूछना चाहूंगा कि आप क्रास और एटम बम का जोड़ चुनेंगे कि

बंसी और महाभारत का जोड़ भारत के लिए चुनेंगे ?

उत्तर : क्रास मृत्यु का सूचक है। कब्र पर लगता है तो उसका अर्थ है, और जब जीवन पर लग जाता है तो खतरनाक है। लेकिन, बहुत सारे तथाकथित धार्मिक लोगो ने मनुष्य के शरीर को कब्र ही समझा है। उनकी इस समझ का परिणाम खतरनाक होने वाला है। अगर मनुष्य की छाती पर क्रास लटका दिया जाय, जैसे कब्र पर क्रास लगा होता है तो हम जीवन को स्वीकार नही करते, अस्वीकार करने की घोषणा करते हैं। हम जीवन को वरदान नही मानते, अभिशाप मानते है। ईसाइयत, जीसस का नाम नही कह रहा हूँ, ईसाइयत ऐसा समझती रही है कि जो मनुष्य का जीवन है, पाप का फल है, 'ओरीजनल सिन' का फल है। जिसे हम जिन्दगी समझ रहे हैं, वह जिन्दगी परमात्मा के द्वारा दिया गया वरदान नही, परमात्मा के द्वारा दी गयी सजा है। ऐसा चिन्तन गहरे मे दुखवादी और 'पैसीमिस्ट' है। ऐसा चिन्तन गुलाब के फूल के पास खड़े होकर काटो की गिनती करता है और फूल को भूल जाता है। ऐसा चिन्तन दो अन्धेरी रातो के बीच मे एक छोटे से दिन को देखता है, दो प्रकाश या प्रकाशित दिनो के बीच मे एक अन्धेरी रात को नही। ऐसा चिन्तन जीवन के दुखो को बटोरकर इकट्ठा कर लेता है, जीवन के सुखो को विस्मृत कर देता है। असल मे दुख को बटोरकर इकट्ठा करना ही रुग्ण चित्त का लक्षण है। जो अस्वाभाविक और भटका हुआ है और फिर उस दुख के आधार पर पूरे जीवन के सम्बन्ध मे जो 'फिलॉसोफी', जो दर्शन का फैलाव होता है, वह उदासी का, अन्धेरे का, निषेध का, नकार का और क्रास का हो जाता है। जीसस का प्रभाव, शायद वे शूली पर न लटकाये गये होते तो दुनिया पर इतना न पड़ता। शायद दुनिया उन्हे भूल ही गयी होती। लेकिन, जीसस का शूली पर लटकाया जाना ही क्रिश्चियनिटी का जन्म बन गया। आज कोई एक अरब आदमी के करीब ईसाइयत मे सम्मिलित है। यह मै जीसस की विजय नही मानता हूँ। यह मै क्रास की विजय मानता हूं। जीसस शूली पर लटके हुए हमारे उदास और रुग्ण चित्तो को बड़े ही ठीक मालूम पड़ेंगे। वे हमारे जीवन के प्रतीक ही मालूम पड़ेंगे। हम सब शूली पर लटके हुए लोग है। हम सब दुख मे जी रहे लोग हैं। हम सब दुख को ही चुनते हैं, इकट्ठा करते है। हम दुख के ढेर लगाये चले जाते हैं और आखिर मे दुख ही हाथ मे रह जाता है, सुख सब खो जाते हैं।

कृष्ण, बिल्कुल ही विपरीत व्यक्तित्व है। और, कृष्ण की बासुरी का प्रतीक क्रास के ठीक उल्टा है। जैसे बासुरी को कब्र पर रखने का कोई अर्थ नही होता। उसे जिन्दा ओठ चाहिए और सिर्फ ओठ ही नही चाहिए, नाचते हुए ओठ भी चाहिए,

गाते हुए ओठ भी चाहिए। और, ओठ ऐसे ही नहीं नाचते और गाते हैं, जब तक कि भीतर के प्राण आनन्द से उल्लसित नहीं हो। मेरे लिए जीसस के क्रास और कृष्ण की बासुरी मे चुनाव दिखायी पडता है। ऐसा नहीं है कि जिन्दगी मे दुख नहीं है। दुख जिन्दगी मे है। लेकिन, जो आदमी उन्हें इकट्ठा कर लेता है, जो उन्हें समूहगत रूप से देखने लगता है उसे फिर सुख दिखायी पडने बन्द हो जाते हैं। ऐसा भी नही है कि जिन्दगी मे सुख नही है, सुख है। जो आदमी सुखो को इकट्ठा कर लेता है और सुखो की उस आनन्दराशि मे डूबता है, उसे दुख दिखायी पडने बन्द हो जाते हैं। जीवन मे तो सुख और दुख दोनो हैं। सब कुछ निर्भर करता है व्यक्ति पर कि वह क्या देखता है? मेरी अपनी समझ है कि अगर कोई आदमी गुलाब के फूल को ठीक से देख पाये और प्रेम कर पाये तो उसे कांटे दिखायी पडने बन्द हो जाते हैं। क्योकि, जो आखे गुलाब के फूल से रस जाती है, रम जाती है, वे आखे काटो को देखना बन्द कर देती हैं। ऐसा नही है कि काटे मिट जाते है, बल्कि ऐसा कि काटे भी गुलाब के साथी और मित्र हो जाते हैं। और, वह गुलाब के फूल की रक्षा की तरह ही दिखायी पडते है। वे एक ही पौधे पर फूल की रक्षा के लिए निकले हुए कांटे होते है। लेकिन, जो आदमी काटो को चुन लेता है उसे फूल दिखायी पडना बन्द हो जाता है। जो आदमी काटो को चुनता है वह यह कहेगा कि जहा इतने काटे है वहा एक फूल खिल कैसे सकता है? जहा कांटे ही काटे है वहा फूल असभावना है। जरूर मैं किसी भ्रम मे हूँ, इसलिए फूल दिखायी पड रहा है। जहा काटे-ही-काटे हैं, वहा फूल हो नही सकता। काटा सत्य हो जाता है, फूल स्वप्न हो जाता है। और जो आदमी फूल को देख लेता है, देख पाता है, प्रेम कर पाता है और जी पाता है उस आदमी को एक दिन लगना शुरू होता है कि जिस पौधे पर गुलाब जैसा कोमल फूल खिलता हो उस पौधे पर काटे कैसे हो सकते है? उसके लिए काटे धीरे-धीरे भ्रम और झूठे हो जाते है।

मर्जी है आदमी की कि वह क्या चुने? स्वतन्त्रता है आदमी को कि वह क्या चुने। सार्त्र का एक वचन बहुत अद्भुत है। वह कहता है—'वी आर कण्डेम्ड टु बी फ्री'। हम मजबूर हैं स्वतन्त्र होने को। जबरदस्ती है हमारे ऊपर स्वतन्त्रता। हम सब चुन सकते हैं। सिर्फ एक स्वतत्रता को नही चुन सकते। वह हमे मिली ही हुई है। कोई यह नही कह सकता कि मै परतन्त्रता चुन सकता हूँ; क्योंकि वह चुनना भी उसकी स्वतन्त्रता ही है। इसलिए सार्त्र कहता है 'कण्डेम्ड टु बी फ्री'। कभी भी स्वतंत्रता के साथ किसी ने 'कण्डेम्ड' शब्द का प्रयोग नहीं किया होगा। मनुष्य स्वतंत्र है, और परमात्मा के होने की यह घोषणा है। मनुष्य जो

चुनना चाहे, चुन सकता है। यदि मनुष्य ने दुख चुना तो चुन सकता है। जिंदगी उसके लिए दुख बन जायेगी। हम जो चुनते हैं, जिन्दगी वही हो जाती है। हम जो देखने जाते है वह दिखायी पड़ जाता है। हम जो खोजने जाते हैं, वह मिल जाता है। हम जो मांगते है वह 'फुलफिल' हो जाता है, उसकी पूर्ति हो जाती है। दुख चुनने जायेंगे, दुख मिल जायेगा। लेकिन, दुख चुनने वाला आदमी अपने लिए ही दुख नहीं चुनता। वही से अनैतिकता शुरू होती है। दुख चुनने वाला आदमी दूसरे के लिए भी दुख चुनता है। यह असभव है कि दुखी आदमी और किसी के लिए सुख देने वाला बन जाय। जो लेने तक मे दुख लेता है वह देने में सुख नहीं दे सकता। यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि जो हमारे पास नही है उसे हम कभी दे नही सकते। हम वही देते है जो हमारे पास है। यदि मैंने दुख चुना है तो मैं दुख ही दे सकता हूँ। दुख मेरा प्राण हो गया है। जिसने दुख चुना है वह दुख देगा। इस-लिए, दुखी आदमी अकेला दुखी नही होता। अपने चारो तरफ दुख के हजार तरह की तरंगे फेंकता रहता है। अपने उठने बैठने, अपने होने, अपनी चुप्पी, अपने बोलने, अपने कुछ करने न करने, सबसे चारो तरफ दुख के वर्तुल फैलाता है। उसके चारो तरफ दुख की लहरे घूमती रहती है और परिव्याप्त होती रहती है। जब आप अपने लिए दुख चुनते है तो अपने ही लिए नही चुनते, आप इस पूरे ससार के लिए भी दुख चुनते हैं। जब मैंने कहा, दुख के चुनाव ने मनुष्य को युद्ध तक पहुचा दिया है और एक ऐसे युद्ध तक, जो कि 'टोटल स्वीसाइड' बन सकता है। जो कि समग्र-आत्मघात बन सकता है। यह मनुष्य के दुख का चुनाव है जो हमे उस जगह ले आया।

हमने सुना है बहुत बार, जानते है हम कि कभी कोई दुखी आदमी आत्म-घात कर लेता ह। लेकिन, हमे इस बात का ख्याल नही था कि एक ऐसा वक्त भी आ सकता है कि पूरी मनुष्यता इतनी दुखी हो जाय कि आत्मघात कर ले। हमारे बढ़ते हुए युद्ध आत्मघात के बढ़ते हुए चरण है। यह दुख के चुनाव से सम्भव हुआ है। और, दुख को जब हम धर्म की तरह चुन लेते हैं तो फिर अधर्म की तरह चुनने को कुछ बचता भी नही। जब दुख को हम धर्म बना लेते है तो फिर अधर्म क्या करेगा? और, जब दुख धर्म बन जाता है तो गौरवान्वित भी हो जाता है, 'ग्लोरी-फाइड' भी हो जाता है।

यह जो दुख की धारा क्रास के आस-पास निर्मित हुई, मैं नहीं कहता जीसस के आस-पास, क्योंकि जीसस का क्रास से कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। जीसस बिना क्रास के भी हो सकते थे। जिन लोगों ने जीसस को सूली दी, जिन्होंने क्रास

दिया, ईसाइयत उनने पैदा की है। इसलिए, मैं निरन्तर ऐसा कहता हूँ कि ईसाइयत को पैदा करने वाले जीसस नहीं हैं, ईसाइयत को पैदा करने वाले वे पण्डे और पुरोहित है जिन्होने जीसस को शूली दी। ईसाइयत का जन्म क्रास से होता है, जीसस से नही। जीसस तो बेचारा क्रास पर लटकाया गया है। यह बिल्कुल ही 'सेकेण्ड्री' बात है। कोई लेना देना नही है। वह क्रास महत्वपूर्ण होता चला गया हमारे चित्त में। और, जो जो लोग अपने को क्रास पर अनुभव करते है, लटका हुआ शूली पर—चाहे वह शूली परिवार की हो, चाहे वह शूली प्रेम की हो, चाहे वह शूली राष्ट्रो की हो, चाहे वह शूली धर्मों की हो, चाहे वह शूली दैनिक जीवन की हो। जो लोग भी अनुभव करते है, शूली पर लटके हैं, उन्हे जीवन एक महापाप हो जाता है। वे सारे महापाप को अनुभव करने वाले लोग क्रास से प्रभावित होते चले गये है। और, 'पैसिमिस्टो' का एक बड़ा गिरोह सारी दुनिया मे इकट्ठा हो गया।

पिछले दो महायुद्ध ईसाई मुल्को ने लड़े और पैदा किये। गैर ईसाई मुल्क, अगर उन युद्धो मे आये भी तो घसीटे गये हैं। सिर्फ एक जापान ऐसा मुल्क था जो गैर ईसाई था, जो युद्ध मे आक्रामक की तरह आया था। लेकिन, जापान को अब पूर्वी मुल्क कहना मुश्किल है। जापान बहुत गहरे अर्थों मे (भूगोल का ख्याल छोड दे तो) अब पश्चिम का हिस्सा है। और, जापान के पास भी 'स्वीसाइड' की लम्बी परम्परा है जिसको वे हाराकिरी कहते हैं। जरा सा आदमी दुखी हो जाय तो मर जाय, बस इसके सिवाय कोई उपाय नही है। जैसे कि कल फूल खिलने की कोई सम्भावना न रही। आज शाम फूल मुर्झा गया, तो मर जाओ। कल सुबह फूल खिलने का कोई उपाय नही। इतनी प्रतीक्षा भी नही, इतना धैर्य भी नही। तो हाराकिरी वाला एक मुल्क और पश्चिम के क्रास वाले मुल्को ने इधर पिछले दो बडे युद्ध लड़े है। तीसरा युद्ध पूरी मनुष्यता का अन्त हो सकता है। जैसे जीसस शूली पर लटके है ऐसे पूरी मनुष्यता शूली पर लटक सकती है। मैं नही कहता कि इसमे जीसस का हाथ है, मैं कहता हूँ, क्रास पर लटकाने वाले लोगो का हाथ है। और, मैं यह भी नही कहता हूँ कि जीसस से प्रभावित होकर लोग क्रास के पास आये है, क्रास से प्रभावित होकर जीसस के पास आये हैं। दूसरी बात पूछी है, यह तो मैं मानता हूँ कि क्रासवादी, दुखवादी, 'सैडिस्ट' सभ्यता मनुष्य को अन्तत आत्मघात में ले जाने वाली है। असल मे क्रास को लेकर चलने का कोई अर्थ नहीं है। और अगर जिन्दगी क्रास भी रख दे तो फूल लटका देना भी हमारा चुनाव है।

कृष्ण ठीक मुझे विपरीत मालूम पड़ते हैं। उनकी बांसुरी मुझे ठीक विपरीत

मालूम पड़ती है। और, यह भी मैं आपको कह दूं कि जीसस को क्रास पर दूसरे लटकाते हैं, कृष्ण के ओठो पर कोई बासुरी नही रखता। इसलिए, यह ख्याल मे रख लेना जरूरी है कि कृष्ण की बांसुरी उनके व्यक्तित्व का प्रतीक है। और, जीसस का क्रास उनके व्यक्तित्व का प्रतीक नही है, उसे दूसरो ने दिया है। कृष्ण की बासुरी अपने हाथो से ओठो पर रखी गयी है। कृष्ण की बासुरी मे मुझे जीवन के अहोभाव, जीवन के अनुग्रह, जीवन के प्रति 'ग्रेटीट्यूट' का गीत, धन्यवाद, आभार मालूम होता है। कृष्ण का चुनाव जीवन मे सुख का चुनाव है, आनन्द का चुनाव है। और जैसा मैंने कहा, जो दुख को चुनता है वह दुख देने वाला बन जाता है, जो आनन्द को चुनता है वह आनन्द देने वाला बन जाता है। यह भी थोड़ी समझ लेने वाली बात है कि अगर कृष्ण बासुरी बजायेंगे, यह आनन्द कृष्ण तक ही सीमित नहीं रहेगा, यह उन कानो तक भी पहुच जायेगा जिनपर उस बासुरी के स्वर पड़ते है। अगर जीसस को आप शूली पर लटका हुआ देखेंगे और उनके पास से गुजरेंगे तो आप भी उदास हो जायेंगे। कृष्ण को अगर नाचते हुए देखेंगे किसी वृक्ष की छाया मे, और पास से गुजरेगे तो आप भी प्रफुल्लित होगे।

सुख भी सक्रामक है, दुख भी सक्रामक है। वे सब फैलते है और दूसरे तक हो जाते है। इसलिए, जो आदमी अपने लिए दुख चुनता है वह सारी दुनिया के लिए 'कण्डमनेशन' चुनता है। वह यह कह रहा है कि दुखी होकर अब सारी दुनिया के दुखी होने का निर्णय करता हूँ। जो आदमी जीवन मे सुख का चुनाव करता है वह सारी दुनिया के लिए गीत, सगीत और नृत्य चुनता है। मै धार्मिक आदमी उसी को कहता हूँ जो दूसरे के लिए भी सुख चुनता है। मेरे लिए धार्मिक का अर्थ आनन्द के अतिरिक्त कुछ और हो ही नही सकता है। कृष्ण इस अर्थ मे मेरे लिए धार्मिक है। उनका सारा होना आनन्द के एक स्फुरण के अतिरिक्त और कुछ भी नही है।

लेकिन, पूछा गया है कि कृष्ण की बासुरी के बाद तो महाभारत का युद्ध हुआ! यह कृष्ण की बासुरी के बावजूद हुआ। यह कृष्ण की बासुरी के कारण नहीं हुआ। क्योंकि, बासुरी से युद्ध होने का कोई आन्तरिक सम्बन्ध नहीं है। क्रास का और युद्ध का तो एक आन्तरिक सम्बन्ध है, एक 'लाजिकल रिलेशनशिप' है। लेकिन, बासुरी से युद्ध का कोई भी तार्किक सम्बन्ध नही है। कृष्ण की बासुरी के बावजूद यह युद्ध हुआ। इसका मतलब यह है कि हम इतने दुखवादी है कि कृष्ण की बांसुरी भी हमे प्रफुल्लित नहीं कर पायी। बांसुरी बजती रही और हम युद्ध मे उतर गये। बासुरी बजती रही; लेकिन हम अहोभाव से नहीं भर पाये। बांसुरी

हमारी बांसुरी नहीं हो पायी। यह भी बहुत मजे की बात है कि दूसरे का सुख अपना सुख बनाना बहुत मुश्किल है। दूसरे का दुख अपना दुख बनाना बहुत आसान है। इसलिए, आप दूसरे के रोने में रो सकते हैं लेकिन दूसरे के हसने मे हसना मुश्किल हो जाता है। अगर किसी के मकान मे आग लग गयी है तो आप सहानुभूति बता पाते हैं, लेकिन किसी का मकान बडा हो गया है तो उसके आनन्द में भाग नहीं ले पाते। इसमें बुनियादी कारण है।

जीसस के क्रास के साथ हम निकट हो पाते हैं। लेकिन, कृष्ण की बासुरी के साथ, हो सकता है हम ईर्ष्या से भर कर लौट जाय। कृष्ण की बासुरी हममे सिर्फ ईर्ष्या ही जगाये, कोई समानुभूति, कोई 'सिम्पैथी' पैदा न करे। लेकिन, जीसस का क्रास हममे 'सिम्पैथी' पैदा करता है, ईर्ष्या पैदा नहीं करता। जीसस का क्रास इसलिए भी ईर्ष्या पैदा नही करता कि हम कोई क्रास पर लटकने के लिए तैयार तो नहीं हैं। कृष्ण बासुरी बजा रहे हैं तो हमारा मन ईर्ष्या से भर सकता है और ईर्ष्या दुख बन सकती है। सुख मे सहभागी होना बडी कठिन बात है। दुख मे सहभागी होना बडी सरल बात है। अति साधारण चित्त का व्यक्ति भी दुख मे सहभागी हो जाता है। लेकिन, अति असाधारण चित्त का व्यक्ति चाहिए जो सुख मे सहभागी हो सके। दूसरे के सुख मे 'पार्टीसिपेट' करना, दूसरे के सुख में डूबना और दूसरे के सुख को अपने जैसा अनुभव कर पाना बडी ऊचाई की बात है। दूसरे के दुख मे कठिनाई नही है। कारण है इसके।

पहला कारण तो यह है कि हम दुखी हैं ही 'आलरेडी', कोई भी दुखी हो, हमे कोई दिक्कत नहीं आती। हम उसमे डूब पाते है। सुखी हम नही है। कोई सुखी हो तो हमारा कोई तालमेल नही बन पाता। कोई सम्बन्ध नही बन पाता। युद्ध हुआ, कृष्ण की बासुरी के बाद भी। और भी मजे की बात है कि जीसस के क्रास के बाद युद्धो की गति बढते बढ़ते अभी दो हजार साल लगे, तब हुआ। कृष्ण तो बासुरी बजा रहे थे तभी युद्ध हो गया। मैं फिर से दोहराता हूँ कि कृष्ण की बासुरी के बावजूद युद्ध हुआ है। कृष्ण की बासुरी न तो समझी जा सकी है, न पकडी जा सकी है, न पहचानी जा सकी है। यह भी सोचने जैसा है कि कृष्ण तो खुद युद्ध मे उतरे हैं, जीसस को युद्ध मे नहीं उतारा जा सकता। जीसस को अगर कोई कहेगा कि आप युद्ध में उतरे तो जीसस कहेंगे, पागल हो गये हो? पुराने पैगम्बरो ने कहा था कि जो तुम्हारी तरफ ईंट फेंके, तुम उसकी तरफ पत्थर मारना। और, जो तुम्हारी एक आंख फोड़े तुम उसकी दोनो आंखे छीन लेना। लेकिन, मैं तुमसे कहता हूँ कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने

कर देना, और मैं तुमसे कहता हूँ कि कोई तुम्हारा अगर कोट छीने तो तुम अपनी कमीज भी दे देना। और मै तुमसे कहता हूँ कि कोई अगर एक मील तक बोझा ढोने को कहे तो तुम दो मील तक ढो देना। हो सकता है सकोच मे हो बेचारा, ज्यादा न कह पा रहा हो। यह जो जीसस है, इसको हम युद्ध मे नही उतार सकते। यह चीज थोडी जटिल मालूम पडेगी। जीसस को युद्ध मे नहीं उतारा जा सकता, लेकिन कृष्ण युद्ध मे उतर जाते हैं। जीसस को इसलिए युद्ध मे नही उतारा जा सकता कि जीवन इतना बदतर है कि उसके लडने का कोई अर्थ नही। कृष्ण को युद्ध मे उतारा जा सकता है। जीवन इतना आनन्दपूर्ण है कि उसके लिए लडा जा सकता है। इसे थोडा समझ लें।

जीसस के लिए जीवन इतना व्यर्थ है, जैसा जीवन है वह इतना दुखपूर्ण है कि आपने एक चाटा मार दिया तो दुख मे कोई बढती नही होती। कहना चाहिए कि जीसस पहले से ही इतने पिटे हुए है कि आपके इस चाटे से कोई फर्क नही पडता। वह दूसरा गाल भी सामने कर देते हैं कि आपको उनका गाल फेरने की तकलीफ भी न हो। जीसस इतने दुखी हैं कि उन्हे और दुखी नही किया जा सकता। इसलिए, जीसस को तो लडने के लिए तैयार नही किया जा सकता। लडने के लिए तो केवल वे ही तैयार हो सकते है जो जीवन के, आनन्द के पोषक है। अगर जीवन के आनन्द पर हमला हो तो वह लडेंगे। वह जीवन के आनन्द के लिए अपने को दाव पर लगा देंगे। वे जीवन के आनन्द को बचाने के लिए सब कुछ करने को तैयार हो सकते है। महावीर को तैयार नही किया जा सकता युद्ध के लिए, बुद्ध को भी तैयार नहीं किया जा सकता युद्ध के लिए। सिर्फ कृष्ण को तैयार किया जा सकता है, या एक और आदमी मुहम्मद, उसे तैयार किया जा सकता है युद्ध के लिए। मुहम्मद किसी बहुत गहरे रास्ते से कृष्ण के थोडे समीप आते हैं। पूरा आना तो मुश्किल है। जिनको ऐसा लगता है कि जीवन मे कुछ बचाने योग्य है, केवल वे लडने के लिए तैयार किये जा सकते हैं। जिनको ऐसा लगता है कि जीवन मे कुछ बचाने योग्य ही नहीं है, उनके लडने का क्या सवाल है! लेकिन, कृष्ण युद्धखोर नही हैं। युद्धवादी नही है। है तो जीवनवादी, लेकिन अगर जीवन पर सकट हो तब वह लड़ने को भी तैयार है। कृष्ण ने पूरी कोशिश की है कि युद्ध न हो। इसके सब उपाय कर लिये गये हैं कि यह न हो। इस युद्ध को टाला जा सके और जीवन बचाया जा सके, इसके लिए कृष्ण ने कुछ भी उठा नहीं रखा। लेकिन, जब ऐसा लगता है कि कोई उपाय ही नहीं, अब मृत्यु की शक्तियां लडेंगी ही, और अधर्म

की शक्तिया झुकने के लिए तैयार नही, समझने के लिए भी तैयार नही है तब कृष्ण जीवन के पक्ष मे और धर्म के पक्ष मे लड़ने को खड़े हो जाते है।

मेरे देखे कृष्ण के लिए जीवन और धर्म दो चीजें नही है। वे लडने को तैयार हो जाते है। स्वभावत कृष्ण जैसा आदमी जब लडता है तब भी प्रफुल्लित और आनन्दित होता है। और जीसस जैसा आदमी अगर न भी लडे तो भी उदास मिलेगा। कृष्ण जैसा व्यक्ति जब लडता है तब भी आनन्दित है, क्योकि लडना भी जीवन के एक हिस्से की तरह आया है। इसे जीवन से अलग बाटा नही जा सकता। और, जैसा मैंने पीछे आपको बार-बार कहा, कृष्ण की जिन्दगी मे ऐसा चुनाव नही है जैसा कि आमतौर से साधुओ और 'प्यूरेटन' और नैतिकवादियो का होता है। कृष्ण ऐसा नही कहते है कि युद्ध हर हालत मे बुरा है। कृष्ण कहते है, युद्ध बुरा भी हो सकता है, अच्छा भी हो सकता है। हर हालत मे कोई चीज न बुरी होती है, न कोई चीज हर हालत मे अच्छी होती है। ऐसे क्षण होते है जब जहर अमृत होता है और अमृत जहर हो जाता है। और ऐसे क्षण भी होते है, जब अभिशाप वरदान बन जाता है और वरदान अभिशाप हो जाते है। कृष्ण कहते है, हर हालत मे कुछ तय नही है। यह प्रतिपल और प्रति परिस्थिति मे तय होता है कि क्या शुभ है। इसे कोई पहले से तय करके नही चल सकता कि यह शुभ है। परिस्थिति बदले तो कठिनाई हो सकती है। इसलिए, कृष्ण तो प्रतिपल निर्णय के लिए राजी है। उन्होने कोशिश कर ली है कि युद्ध न हो, लेकिन देखते है कि युद्ध होगा ही, तो फिर बेमन से लडना बेकार है। कृष्ण जैसा आदमी बेमन से नही लडेगा। लडने भी जायेगा तो फिर पूरे मन से ही जायेगा। पूरे मन से कोशिश कर ली है कि युद्ध न हो। अब युद्ध होना ही है तो कृष्ण पूरे मन से लडने जाते है। युद्ध करने का ख्याल न था कि वह सीधे युद्ध मे भागीदार बनेंगे। वे सीधे सक्रिय होंगे युद्ध मे, इसका ख्याल न था। लेकिन, ऐसा क्षण आ जाता है कि उन्हे सीधे ही भागीदार हो जाना पडता है और वे सुदर्शन हाथ मे ले लेते है।

जैसा मैंने पीछे कहा, कृष्ण क्षणजीवी है। सभी आनन्दवादी क्षणजीवी होते है। सिर्फ दुखवादी क्षणजीवी नही होते। सिर्फ दुखवादी लबा हिसाब रखते हैं और लबे हिसाब की वजह से दुखी रहते हैं। वे पृथ्वी जबसे बनी है तबसे सारा दुख इकट्ठा कर लेते है। और जब जगत का अन्त होगा तब तक का सारा दुख इकट्ठा करके अपने ऊपर रख लेते है। दुख इतना ज्यादा मालूम पडता है कि वह उसके नीचे दबकर मर जाते है। आनन्दवादी क्षणवादी है, वह कहता है क्षण के अतिरिक्त अस्तित्व नहीं है।

जब भी अस्तित्व है तब क्षण मे है। 'मोमेंट टु मोमेंट', क्षण से क्षण में उसकी यात्रा है। न वह कल का हिसाब रखता है जो बीत गया, न वह आने वाले कल का हिसाब रखता है जो आने वाला है। क्योंकि, वह कहता है, जो बीत गया वह बीत गया और जो अभी नही आया वह अभी नही आया है—इस क्षण मे जो है—इस क्षण के प्रति पूरी 'रिस्पोस्बिल्टी', इस क्षण के प्रति पूरा-का-पूरा 'रिस्पोस', इस क्षण के प्रति पूरा खुला होना उसका आनन्द है। दुखवादी 'क्लोज्ड' है। वह इस क्षण की तरफ देखता नही। अगर आप उसको फूल के पास ले जाय और कहे फूल खिले हैं तो वह कहेगा कि साझ मुर्झा जायेंगे। दुखवादी से आप कहे कि देखे, यह यौवन है। वह कहेगा, देख लिया, बहुत यौवन, सब यौवन बुढापे के अतिरिक्त और कही नही जाता है। आप उससे कहेगे यह सुख है। वह कहेगा, हमने बहुत सुख देखे, जरा उल्टा के देखो, सब सुखो के पीछे दुख छिपा है। हमे धोखा नही दिया जा सकता है। दुखवादी विस्तार मे देखता है, क्षण मे होता ही नही। सुखवादी कहता है, साझ जब मुर्झायेंगे तब मुर्झायेंगे, लेकिन साझ तो आने दो, अभी से दुखी होने का क्या कारण है? आनन्दवादी कहता है, साझ आने दो, अभी से दुखी होने का क्या अर्थ? जब फूल ही दुखी नही है साझ की वजह से और आनन्द से नाच रहे है तो हम क्यो दुखी हो जाय! और, मजा यह है कि आनन्दवादी चित्त साझ को गिरते हुए फूलो का भी मजा ले पाता है। क्योकि किसने कहा है कि सिर्फ खिलते हुए फूलो मे सुख होता है, गिरते हुए फूलो मे नही होता? शायद नही देखा हमने, वह हमारे दुख के कारण है। किसने कहा की बच्चे ही सुन्दर होते है और बूढे नही होते है? बुढापे का अपना सौंदर्य है। जब कोई आदमी सच मे ही बूढा होता है—जैसे रवीन्द्रनाथ, तो उसके सौन्दर्य का कोई हिसाब नही। कोई वाल्ट विटमैन, उसके सौंदर्य का बुढापे मे कोई हिसाब नही है। वाल्ट विटमैन का बुढापे मे देखकर ऐसा लगता है कि और क्या सौंदर्य होगा? असल मे बचपन मे अपना ढग है सौंदर्य का, जवानी का अपना ढग है, बुढापे का अपना ढग है लेकिन ढगो की फुर्सत किसे है? जब सारे बाल शुभ्र हो जाते है और जीवन की जब सारी यात्रा पूरी होने के करीब आती है तो वैसा ही सौदर्य होता है जैसा सूर्यास्त का होता है। किसने कहा कि सूर्योदय मे ही सौदर्य है। सूर्यास्त का अपना सौंदर्य है। लेकिन, दुखवादी सूर्योदय के समय भी सौंदर्य नही देखता। वह कहता, क्या पागलपन मे पडे हो, अभी घडी भी नही बीत पायेगी और ये सब सूर्यास्त हो जानेवाला है। अन्धकार हो जायेगा।

कृष्ण क्षणवादी है। समस्त आनन्द की यात्रा क्षण की यात्रा है। कहना चाहिए यात्रा ही नही, क्योकि क्षण मे यात्रा कैसे हो सकती है, क्षण मे सिर्फ डूबना होता है।

समय मे यात्रा होती है। क्षण मे आप लम्बे नही जा सकते, गहरे जा सकते है। क्षण मे आप डुबकी ले सकते है। क्षण मे कोई लम्बाई नही है, सिर्फ गहराई है, समय मे लम्बाई है, इसलिए जो क्षण में डूबता है वह समय के पार हो जाता है। जो क्षण मे डूबता है वह 'इटरनिटी' को, शाश्वत को उपलब्ध हो जाता है। कृष्ण क्षण मे है साथ ही शाश्वत मे है। जो क्षण मे है वह शाश्वत मे है। जो समय मे है 'टाइम ऐज ए सीरीज' वह कभी शाश्वत से सम्बन्ध नही जोड पाता। वह तो समय के क्षणो का हिसाब लगाता रहता है। कणो का हिसाब लगाता रहता है। जब वह जीता है तो मरने का हिसाब लिखता रहता है। जब सुबह होती है तब सांझ की सोचता रहता है। जब प्रेम आता है तब बिछोह की सोचता है। जब मिलन होता है तब वह विरह के आसुओ मे पीडित हो जाता है। इसलिए,कृष्ण को अगर किसी क्षण में ऐसी घडी आ गयी कि सुदर्शन हाथ में ले लेना पडा तो वह पिछले कृष्ण की 'प्रामिस' के लिए रुकेंगे नही जिसने कहा था कि युद्ध मे मै सक्रिय होने को नही हूँ। क्योकि, वह कहेंगे कि अब वह कृष्ण ही कहा, जिसने वायदा किया था। अब गगा वहा कहा है जहा थी, अब फूल वहा कहा है जहा थे, अब बादल वहा कहा हैं जहा थे? अब सब बदल गया है तो मैंने कोई ठेका लिया है वही होने का। सब जा चुका है। अब मै जहा हूँ वहा हूँ। और, इस क्षण से मेरा जो 'रिस्पौस' है, इस क्षण मे मेरी जो प्रतिध्वनि है, मेरा वही अस्तित्व है। वे क्षमा नही मागते, वे कोई पश्चाताप नही करते, वे यह नही कहते कि मैने भूलकर यह वचन दिया था। वे यह नही कहते कि बुरा हो गया, गलत हो गया, मै दुखी हूँ,पश्चाताप कर लूगा, पीछे प्रायश्चित कर लूगा। वे ऐसा कुछ भी नही कहते। वे क्षण के प्रति बडे सच्चे है। अब इसको थोडा समझना चाहिए। 'टु बी ट्रू टु दी मोमेंट'। वे इतने सच्चे है कि क्षण ऐसी घटना ले आता है जिसको उन्होने कभी सोचा भी नही था, तो भी वे डूब जाते है, वे कूद जाते है। हा, हमे बहुत बार लगेगा कि हमारे प्रति वे सच्चे नही मालूम होते, क्योकि कहा था कि युद्ध मे नही उतरेंगे और अब युद्ध मे उतर गये। जो क्षण के प्रति सच्चा है वह अस्तित्व के प्रति सच्चा है, लेकिन समाज के प्रति बहुत सच्चा नही हो सकता। क्योकि समाज समय मे जीता है और वह 'इटरनिटी' मे जीता है। समाज समय मे जीता है, वह पीछे का हिसाब रखता है, आगे का हिसाब रखता है। कृष्ण जैसा आदमी क्षण मे जीता है। वह हिसाब रखता ही नही।

मैंने सुनी है एक कहानी, एक बहुत बडे झेन फकीर रिझाई के पास एक युवक मिलने आया। उस युवक ने कहा कि मै सत्य की खोज मे आपके पास आया

हूँ। रिझाई ने कहा, सत्य की बात छोडो, अभी कुछ मैं पूछना चाहता हूँ। तुम पेकिंग से आते हो ? उसने कहा, हा। तो रिझाई ने पूछा, पेकिंग मे चावल क्या भाव है ? वह आदमी इतनी लम्बी यात्रा करके आया है उसके पास। यह सोचकर नही आया था कि चावल के दाम बताने पडेंगे। उस आदमी ने कहा कि माफ करिये पहले यह आपको सूचित कर दू, ताकि और इस तरह के सवाल आप न पूछे कि मै जिन रास्तो से गुजर जाता हूँ उन्हे तोड देता हूँ। और जिन पुलो को पार कर जाता हूँ उन्हे गिरा देता हूँ। और जिन सीढियो से चढ जाता हूँ उन्हें मिटा देता हूँ। मेरा कोई अतीत नही है। रिझाई ने कहा, फिर बैठो, फिर सत्य की कोई बात हो सकती है। मैने तो जानने के लिए यह पूछा कि कही पेकिंग मे चावल के जो दाम है वह तुम्हे याद तो नही है। अगर वह याद है तो सत्य से तुम्हे मिलाना बहुत मुश्किल हो जायेगा, क्योकि सत्य सदा क्षण मे है, वर्तमान मे है, उसका अतीत से कोई लेना देना नही है। और, जो अतीत मे जीता है वह वर्तमान मे नही जी पाता। जो अतीत मे जीता है भविष्य मे हो सकता है उसका मन, वर्तमान मे नही हो पाता।

कृष्ण के बावजूद युद्ध हुआ है और कृष्ण युद्ध मे भागीदार हो सके है, क्योकि आनन्द का पक्षपाती लड भी सकता है। फिर कृष्ण का कहना यह है कि लडना जीवन के भीतर का हिस्सा है। जीवन जब तक है, तब तक किसी-न-किसी भाति का युद्ध जारी रहेगा। युद्ध के तल बदलेंगे, युद्ध के आधार बदलेगे, युद्ध के मार्ग बदलेंगे, 'प्लेन' बदलेंगे युद्ध के, गुण बदलेगा युद्ध का, लेकिन युद्ध जारी रहेगा। ऐसा नही हो सकता है, कि युद्ध बन्द हो जाय। युद्ध उसी दिन बन्द हो सकता है कि या तो मनुष्यता न रहे, समाप्त हो जाय या मनुष्यता पूर्ण हो जाय। दो ही अर्थों मे युद्ध बन्द हो सकता है। मनुष्य पूर्ण हो जाय तो समाप्त हो जाना है, या मनुष्य समाप्त हो जाय तो समाप्त हो सकता है। मनुष्य जैसा है, उस मनुष्य के जीवन मे युद्ध जारी रहेगा। फिर ख्याल क्या करना है, युद्ध न हो इसका ? नही, कृष्ण इतना ही कहते है, युद्ध धर्मयुद्ध हो, इतना। शाति धर्मशाति हो, इतना। ध्यान रहे, शाति भी अधार्मिक हो सकती है और युद्ध भी धार्मिक हो सकता है। लेकिन, शान्तिवादी सोचता है कि शाति सदा ही धार्मिक है और युद्धवादी सोचता है कि युद्ध सदा ही ठीक है। कृष्ण कोई वादी नही है। वे बहुत 'लिक्विड' है, बहुत तरल है। जिन्दगी मे वहा पत्थर की तरह कटी हुई चीजे नही है। उनकी जिन्दगी मे सब हवा की तरह तरल है। वे कहते है, मान लो मै रास्ते से गुजर रहा हूँ, एक शान्त आदमी हूँ और कोई

किसी को लूट रहा है। मैं शांति से गुजर जाऊंगा, क्योंकि मैं कहता हूँ कि लड़ना मेरे लिए नही है। मैं शांति से गुजर रहा हूँ, लेकिन मेरी शांति अधार्मिक हो गयी, क्योंकि मेरी शांति भी सहयोगी हो रही है किसी के लुटने मे और किसी के लूटने मे। अनिवार्य नही है कि शांति सदा ही धर्म हो। बर्ट्रेंड रसेल जैसे लोग 'पैसिफिस्ट' शांति को सदा ही ठीक मान लेते हैं। वे मान लेते है शांति ही ठीक है, शान्त होना ही ठीक है। लेकिन, ऐसी शांति 'इम्पोटेंस' भी बन सकती है। ऐसी शांति नपुसकता हो सकती है। इसलिए, कृष्ण बारबार अर्जुन को कहते है, दौर्बल्य त्याग। मैंने कभी सोचा न था कि तू 'क्लीव' हो सकता है। तू नपुसक हो सकता है। तू कैसी नपुसको जैसी बाते कर रहा है? जबकि युद्ध सामने हो और जबकि युद्ध (कृष्ण की दृष्टि मे) धर्म के लिए हो, तब तू कैसी कमजोरी की बातें कर रहा है? तेरी शक्ति कहा खो गयी? तेरा पौरुष कहा गया? शान्ति, जरूरी नही है कि धर्म हो। युद्ध भी, जरूरी नही है कि धर्म हो। कहा जा सकता है कि तब तो सब युद्धखोर कह सकते है कि हमारा युद्ध धर्म है। कह सकते हैं, जिन्दगी जटिल है। कोई उन्हे रोक नही सकता। लेकिन, धर्म क्या है, इसका विचार स्पष्ट फैलता चला जाय तो कठिन होता जायेगा उनका ऐसा दावा करना। कृष्ण की दृष्टि मे धर्म क्या है, वह मै कहू

कृष्ण की दृष्टि मे जीवन को जो विकसित करे, जीवन को जो खिलाये, जीवन को जो नचाये, जीवन को जो आनदित करे वह धर्म है। जीवन के आनन्द मे जो बाधा बने, जीवन की प्रफुल्लता मे जो रुकावट डाले, जीवन को जो तोड़े, मरोड़े, जीवन को जो खिलने न दे, फूलने न दे, फलने न दे, वह अधर्म है। जीवन मे जो बाधा बन जाए वह अधर्म हैं। और, जीवन मे जो सीढ़िया बन जाय वह धर्म है।

प्रश्न कृष्ण को सही ढग से किसने और कब आत्मसात किया? हमे उनको आत्मसात करना हो तो क्या करें?

कृष्ण को आत्मसात कर मानव सभ्यता और संस्कृति जिन जीवन-आयामो मे प्रवेश कर पायेगी उसकी रूपरेखा प्रस्तुत करने की कृपा करें।

उत्तर कोई किसी दूसरे को आत्मसात कैसे कर सकता है? करे भी क्यो? दायित्व भी ऐसा नही हैं। मैं अपने को ही आत्मसात करूगा। कृष्ण को कैसे करूगा? और, जब कृष्ण खुद को आत्मसात करते है तो कृष्ण को कोई दूसरा आत्मसात करने क्यो जाय? नहीं दूसरे को आत्मसात करना व्यभिचार है। दूसरे को आत्म-सात करना अपने साथ अन्याय है। दूसरे को आत्मसात करने की बात ही गलत

हूँ। मेरी अपनी आत्मा हूँ। वह खिलनी चाहिए। अगर मैं दूसरे को आत्मसात करू तो मेरी आत्मा का क्या होगा? दूसरा मुझपर हावी हो जाय, दूसरा मुझपर छा जायेगा, दूसरे को मैं ओढ लूगा तो मेरा क्या होगा? मेरा दायित्व मेरे होने के प्रति है। नही, कृष्ण को समझना काफी है, आत्मसात करने की कोई भी जरूरत नही है। समझना पर्याप्त है। और, समझना इसलिए नही कि उनके पीछे जाना है। समझना इसलिए कि कृष्ण जैसा व्यक्ति जब खिलता है तो उसके खिलने के नियम क्या है? कृष्ण जैसा व्यक्ति जब अपनी सहजता मे प्रकट होता है तो उसकी सहजता के नियम क्या है? मैं भी अपनी सहजता मे प्रगट हो सकता हूँ। कृष्ण को समझने से एक सूत्र तो यह मिलेगा कि अगर कृष्ण खिल सकते है तो मेरे रोये चले जाने की जरूरत क्या है? जब कृष्ण नाच सकते है तो मैं क्यो न नाच सकूगा? ऐसा नही है कि कृष्ण का नाच और आपका नाच एक हो जायेगा। आपका नाच आपका होगा, कृष्ण का नाच कृष्ण का होगा। लेकिन, कृष्ण के समझने से आपके आत्म आविर्भाव मे सहायता मिल सकती है, आत्मसात करने मे नही।

इसलिए, यह कहता हूँ कि किसी को आत्मसात करने की जरूरत नही है, हालाकि कुछ नासमझो ने करने की कोशिश की है। पूरा तो कोई भी नही कर पायेगा, क्योकि वह असभव है। मैं दूसरे को ओढ ही सकता हूँ, दूसरे को आत्मा नही बना सकता। कितना ही गहरा ओढू तो भी मैं पीछे अलग रह ही जाऊँगा। अभिनय ही कर सकता हूँ दूसरे का। होना तो सदा अपना ही होता है, दूसरे का कभी नही होता। 'बारोड बीइग', उधार आत्मा नही होती, हो नही सकती। रहूगा तो मैं 'मैं' ही। कृष्ण को आत्मसात करने की कोशिश बहुत लोगो ने की है, बुद्ध को करने ही कोशिश की है, राम को करने की कोशिश की है, क्राइस्ट को करने की कोशिश की है, लेकिन कोई किसी को आत्मसात नही कर पाता है। वहा असफलता सुनिश्चित है। जो वैसा करने चलता है उसने असफलता को ही अपनी नियति बना लिया है। और, तब असफलता ही नही होगी, आत्मघात भी होगा। और, जो लोग आत्मघात करते है साधारणत उनको हमे आत्मघाती नही कहना चाहिए, क्योकि वे केवल शरीर-आघाती है, वे केवल अपने शरीर की हत्या करते है। लेकिन जो दूसरे को आत्मसात करते है वे वास्तव मे आत्मघाती है, वे अपनी आत्मा को ही मार डालने की कोशिश करते है। सब अनुयायी, सब शिष्य, सब अनुकरण करने वाले, सब पीछे चलने वाले आत्मघाती होते है। लेकिन, कुछ लोगो ने ऐसा करने की कोशिश की है और उस कोशिश में दोहरे परिणाम

निकलते है। एक तो वह आदमी सिर्फ ओढ पाता है, अभिनय कर पाता है। दूसरा, उसके ओढने मे ही कृष्ण का पूरा रूप बदल जाता है। क्योकि, मैं ओढूगा कृष्ण को, तो मेरे ढग से ओढूगा, उतना तो कम-से-कम मैं रहूगा ही। आप ओढेंगे तो आपके ढग से ओढ़ेंगे, उतने तो कम-से-कम आप रहेगें ही। इसलिए, न केवल अपने साथ व्यभिचार होता है; बल्कि कृष्ण के साथ भी व्यभिचार हो जाता है। जितने भी 'थियोलाजियन' है, जितने भी धर्म शास्त्री है–चाहे क्राइस्ट, चाहे कृष्ण, चाहे बुद्ध, चाहे महावीर–इनको ओढने की चेष्टा मे चलते है वे सब ऐसा ही करते है। वे मनुष्यता की विफलता की अद्भुत कहानिया है और मनुष्यता के आत्मघाती होने के अद्भुत प्रमाण है।

लेकिन, मीरा या चैतन्य जैसे लोग कृष्ण को ओढते नही। जरा नही ओढते। मीरा कृष्ण को ओढती नही। चैतन्य कृष्ण को ओढते नही। वे कृष्ण को आत्मसात नही करते है। वे तो जो है–है। उसको ही पूरा प्रगट करते है। मीरा के प्रगट होने मे कृष्ण का व्यक्तित्व ओढा नही जाता है। मीरा के प्रगट होने या चैतन्य के नाच मे और चैतन्य के गीतो मे कृष्ण ओढ़े नही गये है, न आत्मसात किये गये है। चैतन्य चैतन्य है, अपने ढग है। हा, उनके ढग मे कृष्ण के प्रति जो प्रेम की धारा है, वह है। जैसे जैसे यह धारा बडी होती है वैसे वैसे चैतन्य खोते जाते है। वैसे वैसे कृष्ण भी खोते जाते है। और एक घडी आती है कि सब खो जाता है। उस सब खो जाने मे न कृष्ण बचते है, न चैतन्य बचते है–उस क्षण अगर हम पूछे कि तुम कृष्ण हो कि चैतन्य? तो चैतन्य कहेगे कि मुझे कुछ पता नही चलता कि कौन है। मैं हूँ, या शायद मैं भी नही बचता। 'ए प्योर एक्सीस्टेंस' है और यह जो उपलब्धि है, यह चैतन्य की अपनी ही आत्मा का फूल है। इसमे कोई ओढ़ना नही है, इसमे किसी को आत्मसात करना नही है। ऐसी भूल कभी करनी भी नही चाहिए। ऐसी भूल करने का हमारा मन होता है। मन होता है इसलिए कि 'रेडी-मेड' कपडे खरीद लेना सदा आसान है। तत्काल पहने जा सकते है, बडी सुविधा जो है। उधार तो कभी भी हो सकता है, कमाई वक्त माग सकती है। इसलिए ओढ़ने का मन होता है कि किसी को भी ओढ़ ले और झझट के बाहर हो जाय। लेकिन, कभी कोई उस तरह झझट के बाहर नही हुआ, और गहरी झझट के भवर मे पड गया है।

इसलिए धार्मिक आदमी मै उसे कहता हूँ जो अपना आविष्कार करता है। हा, इस आविष्कार करने मे महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट की समझ सही हो सकती है। क्योकि, जब हम दूसरे को समझते है तब हम अपने को समझने के भी

आधार रख रहे होते हैं। जब हम दूसरे को समझते हैं तब उसको समझना आसान पडता है बजाय अपने को समझने के। क्योकि, दूसरे से एक फासला है, एक दूरी है, और समझ के लिए उपाय है। अपने को समझने के लिए बडी जटिलता है क्योकि फासला नही है समझने वाले मे और जिसे समझना है उसमे। तब समझ के लिए दूसरा उपयोगी होता है। लेकिन, उसे समझ लेने के बाद हमारी अपनी ही समझ बढनी चाहिए। हमारी अपने प्रति समझ बढ़नी चाहिए।

आपने कई बार अनुभव किया होगा कि अगर कोई आदमी आये और अपनी कोई मुसीबत आपके पास लाये तो आप जितनी योग्य सलाह उसे दे पाते हैं, वही मुसीबत आप पर पड जाय तो उतनी योग्य सलाह अपने को नही दे पाते हैं। यह बडे मजे की बात है। क्या मामला है ? यह आदमी बडा बुद्धिमान है, किसी की भी दिक्कत हो तो उसको सलाह दे पाता है। जब दिक्कत उसी पर आती है, वही दिक्कत, तो अचानक वह खुद सलाह मागने चला जाता है। नही, इतनी निकटता होती है कि समझने के लिए अवकाश नही मिल पाता। दूसरे को समझना आसान होता है। और जब दूसरे की समझ हमारी धीरे धीरे अपनी समझ बनती चली जाय तो कृष्ण बाद मे भूल जायेंगे, फिर क्राइस्ट भूल जायेंगे, बुद्ध-महावीर भूल जायेंगे, अन्तत हमी रह जायेंगे। आखिर मे मेरी शुद्धता ही बचनी चाहिए। वैसी शुद्धता की उपलब्धि ही मुक्ति है। वैसे परम शुद्ध हो जाने का नाम निर्वाण है। वैसे परम शुद्ध हो जाने का नाम ही भागवत चैतन्य की उपलब्धि है। हा, लेकिन जो कृष्ण को समझकर वहा तक पहुचेगा वह हो सकता है, कृष्ण नाम का उपयोग करे, वह कहे कि मैंने कृष्ण को पा लिया। यह सिर्फ पुराने ऋण का छुटकारा है। यह सिर्फ पुराने ऋण के प्रति अनुग्रह है। और कुछ भी नही है। वैसा पहुचने वाला कह सकता है, मैंने जीसस को पा लिया है। वह सिर्फ जीसस के प्रति, जीसस को समझने से जो समझ उसे मिली थी, उसके प्रति ऋण का छुटकारा है। इससे ज्यादा नही है। पाते तो सदा हम अन्तत अपने को ही हैं। कोई दूसरे को नही पा सकता। लेकिन जिस दिन हम अपने को पाते हैं उस दिन कोई दूसरा रह नही जाता है। इसलिए हम कोई न कोई शब्द का उपयोग करेंगे। जो हमने यात्रा पर उपयोगी पाया होगा, वह हम उपयोग करेंगे। एक छोटी सी बात आपके एक प्रश्न के सदर्भ मे —

दो तीन शब्द कहे जा सकते हैं— मनुष्य की सभ्यता, कृष्ण की समझ से सहज हो सकेगी, क्षणजीवी हो सकेगी, आनन्द समर्पित हो सकेगी, दुखवादी नही रहेगी, समयवादी नही रहेगी, निषेधवादी नही रहेगी। अनुग्रहपूर्वक जीवन को वरदान समझा जा सकेगा। जीवन और परमात्मा मे भेद नही रहेगा। जीवन ही परमात्मा

है ऐसी प्रतिष्ठा धीरे धीरे बढ़ती जायेगी। जीवन के विरोध मे कोई परमात्मा कही बैठा है ऐसा नही, जीवन ही परमात्मा है। सृष्टि के अतिरिक्त कोई स्रष्टा कही बैठा है ऐसा नहीं—सृष्टि की प्रक्रिया, सृजन की शक्ति, 'क्रियेटिविटी इटसेल्फ' परमात्मा है।

ये पूरी बाते जो मैने इस बीच कही है उनको ख्याल मे लेगे तो जो मैने अतिम बात कही है वह स्पष्ट हो जायेगी। इन दिनो मै बहुत सी बाते मैने आपसे कही, कुछ रुचिकर लगी होगी, कुछ अरुचिकर लगी होगी। रुचिकर लगने से भी समझने में बाधा पडती है, अरुचिकर लगने से भी समझने मे बाधा पडती है। जो रुचिकर लगती है उसे हम बिना समझे पी जाते है, जो अरुचिकर लगती है उसे हम बिना समझे द्वार बन्द करके बाहर छोड देते है। मैने जो बाते कही वह इसलिए नही कि आप उनको पी जाय या द्वार के बाहर छोड दे। मैने सिर्फ इसलिए कही कि आप उनको सहजता और सरलता से समझ पाये। मेरी बातो को घर मत ले जाइए। उन बातो को समझने मे जो समझ आपके पास आयी हो, जो प्रज्ञा, जो 'विजडम' आयी हो, उसको घर ले जाइए। फूलो को यही छोड जाइए, इत्र कुछ बचा हो आपके हाथ मे तो उसे ले जाइए। मेरी बातो को ले जाने की कोई भी जरूरत नही है। मेरी बाते वैसी ही बेकार है, जैसी सब बाते बेकार होती है। लेकिन इन बातो के सन्दर्भ मे, इन बातो के सघर्ष मे, इन बातो के आमने-सामने 'एनकाउण्टर' मे आपके भीतर कुछ पैदा हुआ हो – वह तभी पैदा हो सकता है जब आपने पक्षपात न लिये हो। वह तभी पैदा हो सकता है जब आपने ऐसा न कहा हो कि ठीक कह रहे है, ऐसा ही मै मानता हू। कि गलत कह रहे है, ऐसा मै मानता नही। तभी आपमे समझ, 'अण्डरस्टैंडिग' पैदा हो सकती है। अगर आपने समझा हो कि ये तो कृष्ण के पक्ष मे बोल रहे है, हमारे महावीर के पक्ष मे नही बोलते तो आप दुख ले जायेंगे, समझ नही ले जायेगे। उसका जिम्मा मेरा नही होगा। जिम्मा महावीर का भी नही होगा। आपका ही होगा। आपने सोचा कि यह तो हमारे जीसस के पक्ष मे नही बोले तो आप समझ नही ले जायेंगे। या आपने ऐसा समझा कि ये तो हमारे कृष्ण के सम्बन्ध मे बोल रहे है तो आप नासमझ ही लौट जायेंगे। आपके कृष्ण से मुझे क्या लेना-देना है? न रुचि, न अरुचि, न पक्ष, न विपक्ष—मुझे जो दिखायी पडता है उसे सीधा मैने आपकी आखो के सामने फैला दिया है। और मै खुद ही क्षणजीवी व्यक्ति हू। इसलिए भरोसे का नही। कल क्या कहूगा, इससे आज कोई 'प्रामिस' नही बनती है। इससे आज कोई आश्वासन नही है। आज जैसा मुझे दिखायी पडता था वैसा मैने कहा। आज जो आपकी

समझ मे आया हो—समझ मे आया हो उसका मूल्य नही है – समझ मे आने में आपकी समझ बढी हो उसका मूल्य है। मै आशा करता हूँ, इन दस दिनो मे सबके पास थोडी बहुत समझ का विकास हुआ होगा। थोडी बहुत दृष्टि फैली होगी, द्वार थोडे बहुत खुले होगे। सूरज को आने के लिए थोडी बहुत जगह बनी होगी। मै नही कहता हूँ कि आपके भीतर जब सूरज आये तो आप उसे क्या नाम दें—कृष्ण कहे, बुद्ध कहे, राम कहे यह आपकी मर्जी है। मै इतना ही कहता हूँ, दरवाजा आपके चित्त का खुला हो तो समझ मे आ जायेगा। नाम आप पर निर्भर होगा क्योकि सूरज अपना कोई नाम कहता नही कि मेरा नाम क्या है ? नाम आप अपना दे लेगे। लेकिन दरवाजा सिर्फ उनके ही चित्त का खुलता है जो समझपूर्वक, समझ मे, समझ के साथ जीते है। पक्षो और धारणाओ और सिद्धातो के साथ नही। सिद्धातो और धारणाओ और पक्षो के साथ वे लोग जीते है जिनको अपनी समझ का भरोसा नही है। तो वे पक्के, बधे बधाये, सीमेट कांक्रिट के, बाजार मे बिकते हुए सिद्धातो को ले आते है। समझ तो पानी की तरह तरल है। समझ तो बहाव है। एक 'फ्लो' है। लेकिन सिद्धान ? सिद्धात कोई बहाव नही है। अगर आपने सिद्धातो की आड से मुझे सुना हो—चाहे मित्र हो उन सिद्धान्तो के, चाहे शत्रु— तो फिर आप नही समझ पायेगे कि मैने क्या कहा है।

आखिरी बात आपसे कह दू कृष्ण से मुझे कुछ लेना-देना नही, कृष्ण से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। कृष्ण के पक्ष मे आप हो जाय इसलिए नही कहा है, कि कृष्ण के विपक्ष मे आप हो जाय इसलिए नही कहा है। कृष्ण को तो मैने एक 'कैनवस' की तरह उपयोग किया, जैसे कि एक चित्रकार एक 'कैनवस' का उपयोग करता है। 'कैनवस' से उसका कोई मतलब ही नही होता। कुछ रग उसे फैलाने होते है 'कैनवस' पर। वह उन रगो को फैला देता है। कुछ रग मुझे फैलाने थे आपके सामने वह कृष्ण के 'कैनवस' पर मैने फैला दिये। मुझे महावीर का कैनवस भी काम दे जाता है, बुद्ध का कैनवस भी काम दे जाता है। मुझे जीसस का कैनवस भी काम दे जाता है। और एक कैनवस पर जिन रगो का मै उपयोग करता हूँ, कोई जरूरी नही है कि दूसरे कैनवस पर भी उन्ही रगो का उपयोग करू। और ऐसा भी मुझसे कोई कभी नही कह सकता कि कल आपने जो चित्र बनाया था, आज तो उससे बिल्कुल विपरीत बना दिया। अगर मै चित्रकार हूँ तो विपरीत बनाऊगा ही और अगर सिर्फ 'कापीइस्ट' हूँ तो कल उसी की नकल करूगा। इसलिए मेरे वक्तव्यो को जडता से पकडने की कोई भी जरूरत नहीं है। मेरे वक्तव्यो को समझे और

छोड दें । समक्ष पीछे बाकी रह जायेगी , वक्तव्य छूट जायेगा । इससे एक और फायदा होगा कि किसी दिन मुझे पकडने का खतरा पैदा नही होगा । नही तो मेरे वक्तव्यो को पकडा पक्ष से या विपक्ष से, तो मैं पकडा जाऊगा । नही, मुझे कोई हर्जा नही होगा, हर्जा आपको हो जायेगा । जब भी हम किसी को पकड लेते है तभी हम अपने को खो देते है ।

जब हमारे हाथ सबसे खाली हो जाते है तब अचानक हमारे हाथो मे हम ही भर जाते है । इस आशा मे ये सारी बाते कही । मेरी बातो को इतने प्रेम, इतनी शांति, इतने मौन , इतने आनन्द से सुना, उसके लिए बहुत अनुग्रहीत हूँ। और अन्त मे सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ। मेरे प्रणाम स्वीकार करे ।





सम्पूर्ण रजनीश
साहित्य की
जानकारी एव
प्राप्तिस्थल

जीवन जागृति केन्द्र,
२१, इजराइल मोहल्ला,
भगवान भुवन, मस्जिदबदर
रोड, बम्बई–४००००९